एक अजनबी | प्रो० राजशेखर भूसनूरमठ

[पिछले माह (11-13 दिसम्बर 1988) 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' ने एन० सी० एस० टी० सी०, नई दिल्ली के आर्थिक सहयोग से एक गोष्ठी का आयोजन किया था। इस गोष्ठी में भाग लेने कन्नड़ भाषा के प्रख्यात विज्ञान लेखक प्रो० राजशेखर भूसनूरमठ भी पधारे थे। प्रो० भूसनूरमठ भौतिक विज्ञान के अध्यापक होने के साथ ही अपनी विज्ञानकथाओं के लिए विख्यात हैं। हमारे आग्रह पर उन्होंने मूलरूप से कन्नड़ भाषा में लिखी हुई एक कहानी (साइंस फिक्शन) 'विज्ञान' में प्रकाशनार्थ प्रदान की। यहाँ उसी कहानी का हिन्दी अनुवाद 'एक अजनबी' शीर्षक से प्रकाशित किया जा रहा है। इसका हिन्दी अनुवाद किया है श्रीमती सुजाता के० भूसनूरमठ ने। हम मूल लेखक और अनुवादिका दोनों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। —सम्पादक]

मैं उन दिनों भारत भ्रमण पर था। सच कहूँ तो पर्यटन में मेरी कोई विशेष रुचि नहीं है और न ही ऐसी ट्रैवल एजेन्सियों में ज्यादा विश्वास करता हूँ। पर अपने एक जिगरी दोस्त, जो ऐसी एक एजेन्सी का मालिक है, की जोर-जबरदस्ती के आगे मुझे घुटने टेकने पड़ गए थे।

यात्रा का पहला चरण समाप्त हो चुका था। अब दिल्ली से श्रीनगर की दूरी हमें विमान द्वारा तय करनी थी। इस कारण मेरे सहयात्री, खासकर बच्चे काफी उत्सुकतापूर्वक रात का इन्तजार कर रहे थे। एक ही हफ्ते की यात्रा ने हम सब को एक-दूसरे के इतने करीब ला दिया था कि पूरा यात्री दल एक बड़ा परिवार सा ही लगता था। पर जरा एकान्त-प्रिय और मितभाषी होने के कारण मेरी अब तक किसी से कोई खास मित्रता नहीं हो पाई थी। अधिकतर समय मैंने किताबें पढ़ने में ही बिता दिया था।

उसी रात ठीक साढ़े सात बजे हमारा पचास-सीटर विमान कश्मीर के लिए पालम से रवाना हुआ। सूरज क्षितिज के नीचे पहुँच चुका था और उसकी डूबती किरणों ने सारे आकाश को लाल रंग से रंग दिया था। वातावरण में दिन की गर्मी अब भी कुछ शेष थी। सब यात्रियों के बीच कश्मीर की सुन्दरता पर एक अच्छी-खासी चर्चा छिड़ चुकी थी। मेरी इस चर्चा में कोई दिलचस्पी नहीं थी, इसलिए मैं सबसे अलग, जहाँ कुछ सीटें खाली पड़ी थीं, जाकर बैठ गया। कुछ ही देर में मुझे नींद ने आ घेरा।

अचानक मेरी नींद खुली तो पाया कि मेरे पास की खाली सीट पर अब एक आदमी आराम से बैठा है। मुझे बड़ी कोफ्त हुई। जैसे ही मैं कुछ कहने के लिए उसकी तरफ मुड़ा तो मेरा मुँह खुला का खुला रह गया।

वह एक अजनबी था!

मैंने उस पर दृष्टि जमाते हुए ही विमान-परिचारिका को आवाज़ दी।

"मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ?" परिचारिका की मधुर आवाज़ जब सुनाई पड़ी, तो मेरी तंद्रा टूटी।

"मैडम, यह सज्जन कौन हैं? कृपया बताइए।" उसने कुछ अजीब-सी निगाहों से मुझे देखा और फिर जल्दी-जल्दी यात्रियों की सूची देखने लगी। देखते ही देखते उसका मुख पीला पड़ गया।

"सर! मैं नहीं जानती! इस आदमी को तो इस फ्लाइट पर होना नहीं चाहिए था! हे भगवान!" कहती हुई वह तेज़ी से फ्लाइट अफसर के केबिन की ओर दौड़ पड़ी। मैं हतप्रभ-सा बैठा रह गया।

विमान के अंदर एकाएक खामोशी छा गई। मेरे सहयात्रियों को इस बात का पता चलने में देर नहीं

श्रीमती सुजाता के० भूसनूरमठ, के० सी० स्टाफ क्वार्टर्स, मालमड्डी, धारवाड़, कर्नाटक—580007

लगी थी। अब सभी उस अजनबी की तरफ मुड़-मुड़कर देख रहे थे और आपस में खुसर-पुसर कर रहे थे। पर किसी की भी इतनी हिम्मत नहीं थी कि उससे पूछे कि वह कौन है और इतनी ऊँचाई पर उड़ने वाले विमान के अंदर वह पहुँचा तो कैसे। जब मुझे कुछ होश आया तो मैंने ही अपनी सारी हिम्मत बटोरकर उससे पूछा, "आप कौन हैं? यहाँ कैसे आ गए?" सब दम साधे उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

लेकिन वह केवल एक रहस्यमयी मुस्कराहट दिखा कर रह गया!

अब फिर पूछने की मेरी हिम्मत न पड़ी।
जितने मुँह उतनी ही बातें।

किसी की घबराई हुई फुसफुसाहट सुनाई पड़ी,
"हाय! यह तो भूत-प्रेत है!"
"मुझे तो यह पागल लगता है!"
"कहीं यह विमान अपहरणकर्ता तो नहीं?"

"क्या पता साक्षात् ईश्वर ही रूप धरकर आए हों!"

तभी फ्लाइट अफसर अपने कुछ सहायकों के साथ वहाँ आया और उस व्यक्ति की तलाशी लेने लगा। उसने कोई आपत्ति न की। हम सबकी दृष्टि वहीं पर टिकी थी। वह बहुत ही पुराने ढँग के कपड़े पहने हुए था, और उसमें न जाने कैसी एक विचित्रता थी। तलाशी खत्म हुई, लेकिन उसके पास से कोई संदिग्ध कागज़ या हथियार बरामद नहीं हुआ। तभी—

उस विचित्र व्यक्ति के हाथ-पैर अजीब ढँग से हिलने-डुलने लगे और देखते ही देखते वह अचानक अदृश्य हो गया!

इसकी प्रतिक्रिया हम लोगों पर क्या हुई होगी, इसका अंदाजा तो आप लगा ही सकते हैं। कुछ औरतें चीख़ मारकर बेहोश हो गईं तो कुछ हाय-तौबा मचाने लगीं। विमान परिचारिका का तो खून ही जम गया था। जहाँ थी, वहीं खड़ी की खड़ी रह गई। किसी की बुद्धि काम नहीं कर रही थी।

श्रीनगर पहुँचने में अब केवल दस-पंद्रह मिनट बाकी थे। भय कुछ कम हुआ तो दृश्य बदला। कुछ यात्री छोटे-छोटे घेरे बनाकर भूतों की बातें कह-सुन रहे थे तो कुछ भय पर काबू पाने के लिए पी रहे थे। औरतों को होश में लाया जा रहा था। सभी श्रीनगर जल्दी से जल्दी पहुँचने की मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे। मैं, जो भूत-प्रेतों में जरा भी विश्वास नहीं करता था, अब अपने विश्वास से डगमगाने लगा।

अभी हम पूरी तरह सँभल भी न पाए थे कि एक और अप्रत्याशित घटना घटी। वह (तथाकथित) 'भूत' फिर प्रत्यक्ष हो गया! उस वक्त वह चालक के केबिन से मुस्कराता हुआ धीमी चाल से हमारे पास आ रहा था। सबकी साँस जहाँ की तहाँ रुक गई।

"देवियों और सज्जनो!" मनुष्यों की ही आवाज में उसने जब शांति से बोलना आरम्भ किया तो हम लोगों को कुछ राहत मिली, "मेरी गणना के हिसाब से अब मैं बीसवीं सदी में पहुँच गया हूँ। कृपया घबराइये नहीं। आप मुझे जो भूत समझ रहे हैं, मैं वह नहीं हूँ, मैं तो भविष्य का भूत हूँ!" फिर हँसते हुए उसने बात जारी की, "मैं आपको और अधिक अँधेरे में नहीं रखना चाहता। सुनिये, मैं एक वैज्ञानिक हूँ! इक्कीसवीं सदी का! मैं तो बस अपने नए आविष्कार, एक 'टाइम मशीन', का परीक्षण कर रहा था, इस कारण उसमें यात्रा करते-करते बीसवीं सदी में, आपके पास पहुँचा गया। शायद आप सब मेरी बात पर जरा भी विश्वास नहीं करेंगे, वैसे कोई करेगा भी नहीं क्योंकि 'समय की घड़ी' के हिसाब से मैं आप सबसे सौ वर्षों से भी ज्यादा आगे हूँ……।

"मगर अब आप की मशीन है कहाँ?" मैंने बीच में ही बात काटी। मुझे एच० जी० वैल्स की 'द टाइम मशीन' की याद हो आई थी।

वह रहस्यमयी हँसी हँसा, "शायद आपकी मेरी मशीन के बारे में गलत धारणा है। यह केवल मुझ जैसे यात्री को ही समय में आगे या पीछे ले जा सकती है, आप लोगों को नहीं। यह कोई लकड़ी या लोहे की बनी ठोस मशीन नहीं है जो आप देख सकें।"

इससे पहले कि मैं और कुछ पूछता वह 'शुभ रात्रि' कहता हुआ न जाने फिर कहाँ गायब हो गया।

अब वह रहस्यमय व्यक्ति सचमुच ही इक्कीसवीं सदी का एक वैज्ञानिक था या कोई भूत-पिशाच, इसका निर्णय आज तक हममें से कोई नहीं कर पाया है। मैं उसके बाद भी कई बार उसी विमान द्वारा श्रीनगर जा चुका हूँ, पर कभी उस अजनबी से मुलाकात न हो पाई, और न ही उसके बारे में कुछ अधिक जानकारी मिली।

पर आज भी वह घटना जब याद आती है तो, शरीर में झुरझुरी-सी दौड़ जाती है। □□

हरे आक्रमणकारी

प्रो० जयंत नार्लीकर

टॉम रोरिक ने कार के डैशम्बोर्ड पर नज़र डाली और मन में हिसाब लगाया। अभी भी एल-पासो सैंतीस मील दूर था। किसी भूगोल की पुस्तक में यह पढ़ना कि टेक्सास एक बड़ा राज्य है एक बात है और उसको पार करने का प्रयत्न बिल्कुल दूसकी बात। यद्यपि टॉम हज़ारों मील की कार-यात्राएँ कर चुका था परंतु आज उसे इस सीधी सड़क पर कार चलाने की एक-रसता तोड़ने के लिये एक सहयात्री की आवश्यकता महसूस हुयी। ऊपर से मानव-बस्तियों से रहित यह लगभग एक जैसी विस्तृत भू-दृश्यावली भी परिवेश की नीरसता में वृद्धि कर रही थी।

अंतिम घंटे में थकान असहनीय हो आई थी। उसे रात होने के पहले एल-पासो पहुँच जाना था और भोजन तथा विश्राम के विचार को भी तब तक प्रतीक्षा करनी थी। पर क्या वह यह यात्रा पूरी कर सकेगा? अपनी कार चलाने की योग्यता पर उसका अविश्वास बढ़ने लगा। क्या वह दस-मिनटों के लिये कहीं रुक कर एक झपकी ले ले? लेकिन यदि वह सोता ही रह जाए और उसकी नींद बहुत देर में खुले?

फिर निर्णय अचानक ही हो गया। उसने सड़क के एक मोड़ को देखने में गलती कर दी और एक झटके के साथ अपने को सड़क के किनारे पाया। टॉम ने समझ लिया कि इस स्थिति में वह थोड़ा देर तक तो कार चलाने की स्थिति में नहीं है और उसने सड़क के किनारे कार रोक दी।

पश्चिम का आकंश चमकदार रंगों से भरा हुआ था। टॉम की अपने छात्र जीवन में देखी हुयी पश्चिमी फिल्में याद आयीं—सूर्यास्त के समय अन्तहीन मैदानों में घोड़े दौड़ाते हुए नायकों वाली फिल्में। तब यह सोचना कठिन था कि पृथ्वी पर ऐसा स्थान भी है और यह सब कुछ सच भी हो सकता है। एक सप्ताह पूर्व ही जो मनहट्टन के भीड़ भरे इलाके में रहा हो, उसके लिए यह अविश्वसनीय था। उसे लगा क्यों न यह कल्पना की जाए कि आप किसी दूसरे ही ग्रह में हैं? आखिर टॉम वैज्ञानिक कथा साहित्य का रसिया था। उस विलक्षण परिवेश में टॉम ने अपनी कल्पना को बस यूँ ही स्वतंत्र छोड़ दिया।

एक अपरिचित रूपाकार का अंतरिक्षयान······ विचित्र अंतरिक्षीय प्राणी···अत्यन्त उन्नत सभ्यता··· फिर क्या उन सबका वास्तव में अस्तित्व है? अथवा मनुष्य अंतरिक्ष में अकेला है···वैसे ही, जैसे इस असीम खालीपन के बीच टॉम···

एकाएक टॉम ने अनुभव किया कि वह अकेला नहीं है। पश्चिमी क्षितिज पर उसे एक सफेद धब्बा दिखा। क्या यह सूर्यास्त के पश्चात् का शुक्र था?··· लेकिन धीरे-धीरे धब्बा बढ़ने लगा था। टॉम के क्लाँत मस्तिष्क को यह विचित्र लग रहा था···लेकिन उसके मस्तिष्क ने निष्कर्ष निकाला, यह जो भी था उसकी ओर बढ़ रहा था। लेकिन था यह कितना बड़ा?

जीवन में पहली बार टॉम ने खाली भू-दृश्य के बीच किसी वस्तु के वास्तविक आकार का अनुमान लगाने की कठिनाई अनुभव की। क्या यह कोई संकटा-पन्न हवाई जहाज़ था जो ज़मीन पर उतरने की तैयारी कर रहा था? लेकिन इसकी ऊँचाई तो घट नहीं रही और जब यह थोड़ा निकट दिखा तो स्पष्ट हुआ कि इसका आकार हवाई जहाज़ जैसा नहीं था।

जैसे-जैसे वह वस्तु निकट आती गयी, टॉम एक विचित्र सी आवाज़ के प्रति सजग हो उठा—वह आवाज़ जो उसके लिये असह्य हो उठी थी। टॉम ने कार के सारे शीशे बंद कर दिये। आवाज़ तो कम हो गयी पर टॉम ने महसूस किया कि वह आवाज़ के तीखेपन से परेशान हो उठा है।

उसका अंतिम चेतन प्रयत्न था, सीट पर निढाल पड़ जाने के बाद कानों में लगाने के लिए कुछ ढूंढने की असफल क्रिया।

o o o o o

जब शिव ने राज्य-परिवहन की बस छोड़कर अपने फार्म की ओर कदम बढ़ाए तो वह बिलकुल चलने की स्थिति में नहीं था। सतारा में उसकी सुबह ठीक प्रारम्भ हुयी थी और उसने अचानक ही जुए में काफी पैसा जीत लिया था। दुर्भाग्य से उसने सारे पैसे की शराब पी डाली थी।

इसीलिये जब बस के कंडक्टर ने उसे गाँव के बस स्टाप पर धीरे से उतार दिया तो शिव ने पैदल चलकर कुछ पैसा बचाने की सोची। उसे एक छोटा रास्ता भी मालूम था जिससे एक किलोमीटर की बचत हो सकती थी। इस रास्ते से वह पहले भी कई बार गया था लेकिन दिन में ही। अगर वह नशे में न होता तो इस अँधियारी रात में इस रास्ते से नहीं जाता। क्योंकि, गाँव वालों को पूरा विश्वास था कि इस रास्ते पर भूत लगते थे।

लेकिन आज शिव भयभीत नहीं था—कम से कम शराब ने इतनी हिम्मत तो उसमें पैदा ही कर दी थी। वह जल्दी-जल्दी अपने फार्म की ओर बढ़ने लगा।

"......"शिव के मुँह से एक गाली निकली, वह किसी से टकरा गया था। भला अंधियारी रात के इस प्रहर में और कौन इस रास्ते पर जा रहा था।

लेकिन शिव को स्थिति समझने में अधिक देर नहीं लगी। एक रोशनी चमकी, शिव ने उसे देखा और वह पूरे होश में आ गया।

वह एक मानवाकृति से टकराया था—एक पूरी तरह हरी मानवाकृति। जब शिव ने उसे ध्यान से देखा, वह आकृति चमकने लगी और आकाश की ओर उठने लगी—उस ओर एक विचित्र अंतरिक्षयान दिखाई दे रहा था।

भय के कारण शिव चिल्ला भी नहीं सका। परन्तु अंतरिक्षयान की ओर से आती हुयी विचित्र तीखी ध्वनि से उसके कानों में पीड़ा होने लगी थी।

फिर वह कुछ जान नहीं सका।

o o o o o

किसी को उसका वास्तविक नाम ज्ञात नहीं था। सभी उसे सिस्टर मारिया ही पुकारते थे। वह सिसली के एक आश्रम में भिक्षुणी थी। जिस दिन से उसे कोई आश्रम के दरवाज़े पर छोड़ गया था। वह गूंगी-बहरी अनाथ लड़की जानी जाती थी। परन्तु अपने सुन्दर अक्षरों और जीवंत चित्रों द्वारा वह सभी तक अपनी बात पहुँचा सकती थी।

उस झेंपू लड़की के लिये आश्रम की मुख्य व्यवस्थापिका से मिलने का समय लेना एक असामान्य घटना थी। रोज की तरह सायंकालीन प्रार्थना के पश्चात् वह बाहर टहलने गयी थी, परन्तु लौट कर आने पर वह बहुत उत्तेजित दिख रही थी।

"क्या बात है, मेरी बच्ची" मदर सुपीरियर ने प्यार से पूछा। उन्होंने मारिया के सामने कागज़-पेंसिल रख दी।

मारिया को बहुत कुछ बताना था। उसने कई तस्वीरें बना दीं और उनके नीचे कुछ पंक्तियाँ लिख दीं।

मदर सुपीरियर ने अविश्वास के साथ उन कागज़ों को देखा। परन्तु मारिया स्वप्न देखने वाली लड़कियों में से नहीं थी। जो कुछ वह बताना चाह रही थी उसमें सत्य का अंश होना अनिवार्य था। परन्तु यह सब कुछ क्या व्यक्त कर रहा था?

मदर की अंगुलियाँ क्रास पर जकड़ गयीं और उन्होंने मारिया से कुछ और सवाल पूछने शुरू किये।

o o o o o

पार्टी अपने पूरे यौवन पर थी। नासा के गोडार्ड अंतरिक्ष उड़ान केन्द्र तथा मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने रॉजर बकलैण्ड को विदा देने के लिये यह पार्टी उसी के आवास पर आयोजित की थी।

रॉजर बकलैण्ड नासा के अंतरिक्षीय कार्यक्रमों—स्काईलैब, स्पेसलैब, शटल—का प्रमुख वैज्ञानिक रहा था। दस वर्षों की अवधि में उसने वह ख्याति अर्जित कर ली थी कि किसी भी आयोजन के लिये सबसे पहले उसी का नाम लिया जाता था। जब वह किसी नई योजना से जुड़ता तो कहता, "बस! यह मेरा अंतिम वैज्ञानिक कार्य है। इसके पूरा होने के बाद सिर्फ मैं गोल्फ और समुद्र पर नाव से यात्रा में व्यस्त

रहूँगा।" लेकिन उसके सहकर्मी जानते थे कि उसका यह निश्चय केवल सप्ताहांत तक ही सीमित रहने वाला था। सोमवार आया नहीं कि रॉजर अपनी मेज़ पर दिखेगा।

"मैं एक शर्त लगा सकता हूँ"— रॉजर के एक सहकर्मी ने मार्टिनी की चुस्की लेते हुए कहा—"इस बार तुम दो महीनों के बाद ही वापस आओगे।"

"लेकिन जॉन अगर मैं बिल्कुल वापस न आऊँ, तो तुम्हारी शर्त का क्या होगा ?" रॉजर ने शरारत भरे ढँग से पूछा।

"ऐसा नहीं होगा। हम लोग इतने भाग्यशाली कहाँ हैं। बस दो महीने बीतें और तुम यहीं होगे। अंतरिक्ष यात्रा तो अब बहुत सुरक्षित हो गयी है।"

"क्या यह अजीब बात नहीं है ?" एक दूसरे वैज्ञानिक ने सहमति व्यक्त करते हुए कहा, "अंतरिक्ष यात्रा हवाई यात्राओं से अधिक सुरक्षित है और हवाई यात्राएँ सड़कों की वाहन यात्राओं से अधिक सुरक्षित।"

"और यदि इसी तर्क को आगे बढ़ाया जाये तो सबसे अधिक असुरक्षित है अपने पैरों पर कहीं जाना, सड़क पार करना। यदि मेरी बात से सहमत न हों तो कभी पैदल सड़क पार करने की कोशिश तो करके देखिये।" बिली बोन्स ने जो भारत की यात्रा से अभी अभी वापस आया था, कहा।

वार्ता के इस बिन्दु पर बम्बई के कुमार मराठे ने अनुभव किया कि उसे एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिये। "बिली, तुम एक बात भूल गये हो" उसने कहा, 'बम्बई की सड़कों की जेबरा क्रॉसिंग पट्टियाँ सड़कों के शृंगार के लिये हैं, कोई मोटर चालक किसी पैदल को रास्ता देने के लिये वहाँ रुकेगा नहीं"""तुम अनपढ़ पश्चिमी लोग यह साधारण बात भी नहीं समझते ?"

सभी लोग हँसने लगे लेकिन बोन्स ने अनुभव किया कि रॉजर अपनी सामान्य प्रसन्न मुद्रा में नहीं है। विली बोन्स वैज्ञानिक नहीं था। पार्टी में उसकी उपस्थिति रॉजर के साथ उसके रहने के कारण थी। और व्यक्तियों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण विली का कार्य था······

पार्टी समाप्त हुयी और अंतिम अतिथि ने दो बजे रात विदा ली। रॉजर ने बर्तन धोने की मशीन में दस जूठे गिलास रखे और बोतलें यथा स्थान रख दीं।

इस बीच विली निष्क्रिय नहीं था। उसने कॉफ़ी बना ली थी। वह जानता था कि कॉफ़ी उन दोनों के लिये स्फूर्तिदायक होगी। "दूध डालूँ या रहने दूँ" उसने पूछा।

"नहीं दूध नहीं, धन्यवाद", रॉजर ने कृतज्ञता पूर्वक काफी का कप उठाते हुए कहा और सोफे पर अपने को निढाल छोड़ दिया।

बिली झूले वाली कुर्सी पर बैठा। काली कॉफ़ी की एक चुस्की लेकर उसने अपनी पीठ कुर्सी से सटा दी और फिर वह प्रश्न पूछा जो वह बहुत देर से पूछना चाह रहा था।

"अच्छा रॉजर अब बताओ, एक अंतरिक्ष वैज्ञानिक को एफ० बी० आई० (फेडरल ब्यूरो ऑव इनवेस्टीगेशन) के सदस्य की सहायता क्यों चाहिये ?"

कमरे में कुछ क्षणों तक शांति रही। तब तक रॉजर ने अपनी कॉफ़ी जल्दी से समाप्त कर ली। वह समझ नहीं पा रहा था कि आखिर क्या उत्तर दे। विली भी धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करता रहा। अंत में रॉजर ने मौन तोड़ा, "विली, तुम जानते हो आज की यह पार्टी अपने साथियों से अंतरिक्ष-अभियान पर जाने के पूर्व विदा लेने के लिये थी।"

"लेकिन इसमें नया क्या है ? पहले भी तुम अंतरिक्ष अभियानों में जा चुके हो। यह कोई पहली अंतरिक्ष यात्रा तो है नहीं तुम्हारे लिये ?"

"सच है, लेकिन मुझे विश्वास है कि यह मेरी अंतिम यात्रा होगी" रॉजर ने कहा। विली के चेहरे पर अविश्वसनीयता के भाव देख कर रॉजर अपने स्थान से उठा और अपनी मेज़ से कागजों का एक पैकेट निकाल कर उसने विली के सामने रख दिया।

विली ने देखा कि पैकेट में अखबारों की कतरनें थीं—"टेक्सास में उड़नतश्तरियाँ दिखीं", "एक

भारतीय ग्रामीण युवक की उड़ने वाले हरे मनुष्यों से भेंट", "सिसली की भिक्षुणी की देवदूतों से मुलाकात।"

"तुम्हें कब से इन बेवकूफियों में दिलचस्पी हो गयी", विली ने पूछा। उसे मालूम था कि बचपन से ही रॉजर को उड़नतश्तरियों और ऐसी असामान्य घटनाओं के प्रति घोर अविश्वास था।

परन्तु रॉजर गंभीर था। "विली मैं जानता हूँ कि तुम अपुष्ट समाचारों के प्रति मेरा दृष्टिकोण जानते हो", उसने कहा, "पहले भी कई बार मैंने सार्वजनिक रूप से उनलोगों की भर्त्सना की है जिन्होंने किसी दूसरे ग्रह के यात्रियों अथवा उनके अंतरिक्षयानों को देखने के दावे किये थे—..."

"मुझे मालूम है रॉजर, लेकिन......"

लेकिन रॉजर इतना उत्तेजित था कि उसने विली को बोलने नहीं दिया, वह कहता गया "उड़नतश्तरियों में विशेष रुचि उन्नीस सौ सत्तावन से शुरू हुयी, जब केनेथ एनल्डि नामक शौकिया वायुयान चालक ने यह दावा किया उसने तश्तरीनुमा आकारों को अपने यान का पीछा करते हुए देखा था। इसके बाद ऐसे दावों की बाढ़-सी आ गयी—..."

रॉजर फिर कॉफ़ी भर ली। चुस्की के बीच विली ने अपनी बात कही, "लेकिन यह सभी दावे वैज्ञानिकों द्वारा जाँच के बाद अस्वीकार किये गये थे।"

"यही बात है, प्रोजेक्ट ब्लू बुक, प्रोजेक्ट साइन ऐसी कई व्यापक जाँचें हुयी थीं। और उनसे क्या पता चला था?...कुछ भी ऐसा नहीं जिससे यह सिद्ध होता कि देखी गयी वस्तु किसी दूसरे ग्रह से आयी थी। बहुत से लोग शुक्र तारे को ही उड़नतश्तरी समझ बैठे थे। शायद उन्होंने मानव निर्मित यान ही देखे होंगे। कुछ को प्रकाशीय भ्रम हुए होंगे। और कुछ लोग तो मानसिक रूप से परेशान और अविश्सनीय थे...। सबसे बुरे गवाह तो वे थे जो साक्ष्य में ही गड़बड़ी करते थे..."

"हाँ, रॉजर, मैंने एक साधारण व्यक्ति के रूप में इस विवाद के संबंध में जानने का प्रयत्न किया और मैं तुमसे पूरी तरह सहमत हूँ। इसीलिये तो मुझे आश्चर्य हो रहा है कि तुम इन विवरणों को गंभीरतापूर्वक ले रहे हो", विली कहता गया, 'इस टेक्सास की घटना को ही लो। उस व्यक्ति ने स्वयं स्वीकार किया है कि उस समय वह बेहद थका हुआ था और मानसिक रूप से सावधान भी नहीं था......यह भारतीय ग्रामीण भी शराब के नशे में था...हाँ सिस्टर मरिया की विश्वसनीयता के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। और विश्वसनीयता की यही समस्याएँ मैक्सिको, कम्बोडिया और आस्ट्रेलिया की घटनाओं के सम्बन्ध में भी हैं। लेकिन चूँकि तुम यह सब मुझे दिखा रहे हो, इसका मतलब है कि बात केवल इतनी ही नहीं है......"

"तुम ठीक ही कहते हो विली। इनमें से कोई भी विवरण विश्वसनीय नहीं है। किसी भी जिरह में यह सभी दावेदार अपनी बात साबित नहीं कर पाएँगे। लेकिन बात इतनी ही नहीं है...।"

रॉजर ने अपनी मेज़ की एक ड्रार का ताला खोल कर एक लिफाफा निकाला, जिस पर 'अतिगोपनीय' लिखा हुआ था। लिफाफा खोलकर रॉजर ने एक बड़ा फोटोग्राफ बाहर निकाला।

विली ने पहले उस चित्र को नंगी आँखों से देखा, फिर अपनी जेब से एक आवर्द्धन-लेंस निकाल कर उसने पुनः ध्यान से देखा। इस बीच रॉजर उसे विनोदपूर्ण दृष्टि से देखता रहा।

अपेक्षित प्रतिक्रिया ही हुयी। विली ने होंठ सिकोड़ कर सीटी बजाई। रॉजर कहता गया "जिसे तुम आवर्धन लेंस से देख रहे हो उस चित्र को हम लोग कम्प्यूटर संचालित हज़ार गुने आवर्धन के अंतर्गत देख चुके हैं। लेकिन तुम्हें इस चित्र का मूल भाव पता चल गया होगा।"

"लेकिन तुम्हें यह चित्र मिला कहाँ से?"

"यह चित्र मेरे सहकर्मी डिक फ्रॉस्ट ने एक अंतरिक्ष अभियान के दौरान भेजा था। शायद यह उसके जीवन का अंतिम कार्य था क्योंकि हम नहीं जानते कि उसे अथवा उसके अंतरिक्षयान का क्या हुआ?"

"रहने भी दो !" विली ने विश्वास करने से इन्कार कर दिया। "यह कदापि नहीं हो सकता कि एक पूरा अंतरिक्षयान ही अदृश्य हो जाए और कोई उसके बारे में जान न सके। मुझे याद नहीं आता कि मैंने इस संबंध में कहीं कुछ पढ़ा हो" विली के स्वर का आश्चर्य और अविश्वास कम नहीं हुआ था। रॉजर ने सहमति में सिर हिलाया।

"मुझे यह सारी सूचना जो अतिगोपनीय श्रेणी में आती है, तुम्हें देनी नहीं चाहिये थी। परन्तु यह हमारा चौथा अंतरिक्षयान था, जो हमने खोया था। पहला अंतरिक्षयान सेना का था, दूसरा सी० आई० ए० का था, तीसरे में वैज्ञानिक प्रयोग थे। फ्रॉस्ट को तीसरे खोए हुए अंतरिक्षयान के सम्बन्ध में भेजा गया था। उसे निर्देश था कि यदि वह कुछ असामान्य देखे तो उसका टी० वी० चित्र भेज दे। यह कार्य मात्र एक आपाती बटन दबाने से सम्पन्न होने वाला था, यदि निरीक्षक किसी कारण अशक्त हो जाये।"

"और यही हुआ। फ्रॉस्ट केवल पाँच सेकेण्डों तक ही अपनी चेतना में कार्य कर सका। एक शाब्दिक संदेश भेजते हुए उसने यह बटन दबाया जिससे इस चित्र की तरह के लगभग सौ चित्र हम लोगों को मिले।" रॉजर ने वाक्य पूरा किया।

"और वह संदेश ? आखिर फ्रॉस्ट ने कहा क्या था ?", विली ने उत्तर पाने की आशा में पूछा।

"विली, तुलने मुझसे प्रश्न किसा था कि आखिर एक वैज्ञानिक को एफ० बी० आई० के सदस्य की सहायता क्यों चाहिये। उस प्रश्न का उत्तर है—फ्रॉस्ट का अंतिम संदेश मात्र कुछ शब्दों का था :

"अंतरिक्षयान···जिससे हरे-हरे लोग बाहर आ रहे हैं···लेकिन···"

विली ने अपना पाइप सुलगाया। उसके लिये यह एक महत्वपूर्ण कर्मकाण्ड था जो सबसे अधिक उपयोगी उस समय सिद्ध होता था जब विली को कुछ सोचने के लिए समय की आवश्यकता होती थी। जब उसने पाइप सुलगा कर धुएँ के कुछ छल्ले हवा में उछाल दिये, तो बोला—

"यह फ्रॉस्ट कैसा व्यक्ति है ? क्या वह कल्पनाओं में बह जाता है ?"

"अच्छा होगा मैं उसके लिये भूतकाल का प्रयोग करूँ क्योंकि मैं यह विश्वास नहीं कर पाता कि वह जीवित बच पाया होगा। नहीं, मैं उसे सनकी भी नहीं कह सकता। वास्तविकता-प्रिय यथार्थवादी व्यक्ति था। जो उससे कहा जाय उसे कुशलतापूर्वक पूरा करता था। परन्तु हम उससे नए विचारों या संकल्पनाओं की आशा कभी नहीं रखते थे", रॉजर ने समझाने की कोशिश की।

"एक स्वतन्त्र समाज में, जैसे समाज में हम रहते हैं, ऐसी दुर्घटनाओं को लम्बे समय तक गुप्त रख पाना संभव नहीं है। इससे सिनेटर ब्लैकमैन को मसाला मिल जाएगा", विली के चेहरे पर रूखी हँसी दिखाई दे रही थी।

सिनेटर ब्लैकमैन यू० एफ० ओ० के किसी दूसरे ग्रह-नक्षत्र से आने की विचारधारा के प्रबल पक्षधर थे। वह सदैव ही वैज्ञानिकों पर इस बात का आरोप लगाते थे कि वे जनता को भ्रम में रखने के लिये तथ्यों को छुपा लेते हैं।

"सच है ! मैं एक खोजपूर्ण यात्रा पर जा रहा हूँ, अंतिम रूप से यह पता लगाने कि आखिर फ्रॉस्ट का क्या हुआ। इस यात्रा में मेरे पाँच सहायक और भी हैं। यदि हम लोग भी न लौटे···"

"तब तो यह रहस्य-मंजूषा खोलनी ही पड़ेगी। ब्लैकमैन की वैसी इच्छा हो चाहे नहीं ?" विली ने कहा "लेकिन रॉजर, इस संपूर्ण घटना की तुम्हारी व्याख्या क्या है ?"

"विली मैंने तुमसे सलाह लेने के लिये ही तुम्हें यहाँ बुलाया है क्योंकि मैं स्वयं कोई निष्कर्ष निकाल नहीं पा रहा हूँ। यह हरे प्राणी पूरी पृथ्वी पर और वातावरण के ऊपर भी दिखाई दे रहे हैं। फ्रॉस्ट से सम्बन्धित दुर्घटना से पहले मैं इसे बेवकूफी मान रहा था, परन्तु तुमने चित्र देखा है। उसमें बहुत स्पष्ट रूप में हरे मानवीय प्राणी सिगार की आकृति के अंतरिक्ष-यान के पास दिख रहे हैं। यह चित्र किस कल्पनाशील

भिक्षुणी के द्वारा नहीं बनाया गया है। यह शुद्ध इलेक्ट्रॉनिक्स है, जहाँ ग़लती होने और ठगे जाने की कोई सम्भावना नहीं है। और फ्रॉस्ट भी मानसिक रूप से न तो थका हुआ था और न ही वह शराब के नशे में था। हमारे आधार-केन्द्र पर अंकित उसकी मानसिक स्थिति पूरी तरह सामान्य थी। नहीं···मुझे फ्रॉस्ट के वाक्य का 'लेकिन' उलझन में डाल रहा है। लगता है फ्रॉस्ट को जो उसने देखा था उस पर कोई संदेह था। यह संदेह आखिर क्यों था ?"

"रॉजर, अपराध सम्बन्धी मेरा अनुभव तुम्हारी सहायता के लिये है। मैं, जो कुछ भी कर सकूँगा अवश्य करने का प्रयास करूँगा, फिर भी कोई आशा मत रखना। हाँ, अगर मुझे कोई बात सूझ ही जाये तो मैं तुमसे कहाँ संपर्क स्थापित कर सकता हूँ" कहते हुए विली बोन्स ने अपनी डायरी का एक पृष्ठ खोल लिया।

"यह एक गोपनीय फोन नंबर है" रॉजर ने विली को एक फोन नम्बर बताया और कहता गया "इस नंबर पर 'बी' नाम के सज्जन से संपर्क स्थापित करना। वही मेरे मुख्य अधिकारी हैं। यद्यपि मैं उनसे कभी मिला नहीं हूँ और न ही उनके बारे में कुछ जानता हूँ लेकिन यदि तुम कुछ सूचना दोगे तो वह उस पर आवश्यक कार्यवाही करेंगे।"

"एक और अनुरोध है मेरा" विली ने चित्र पर निगाह डालते हुए कहा। बिना कोई उत्तर दिये हुए रॉजर ने चित्र विली को दे दिया।

विली दूसरे दिन अपने घर लौटा लेकिन हरे आदमियों के बारे में उसकी जानकारी पहले जितनी ही थी। रॉजर की तरह उसे भी यह विश्वास करना कठिन था कि यह हरे प्राणी किसी दूसरे ग्रह से आए हैं। लेकिन पूरी दुनिया से मिले साक्ष्यों और फ्रॉस्ट के भेजे हुए चित्र को एक बारगी अस्वीकार कर पाना भी सहज नहीं था।

उसने उड़नतश्तरियों के नकली साक्ष्यों के संबंध में सुन रखा था परन्तु उन साक्ष्यों की वास्तविकता शीघ्र ही स्पष्ट हो गही थी। फिर यह चित्र नासा संगठन के अपने वैज्ञानिक द्वारा खींचा और श्रेष्ठतम प्रयोगशालाओं में विकसित किया गया था। इसलिये चित्र की विश्वसनीयता में संदेह करने का कोई आधार नहीं दिखता था।

फिर भी विली ने चित्र पर किसी और की सम्मति प्राप्त करने का निर्णय लिया। चित्र के 'अति गोपनीय' होने के कारण यह कार्य वह एफ० बी० आई० के किसी विशेषज्ञ से नहीं करा सकता था और उस स्थिति में यह चित्र उसके पास होना भी नहीं चाहिये था। इसलिये उसने यह कार्य व्यक्तिगत रूप से अपने एक विश्वासी मित्र द्वारा कराने का निश्चय किया।

वास्तव में जॉर्ज बाल्डविन इस कार्य के लिये सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति था। वह एक खगोलशास्त्री था जो इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का प्रयोग आकाशगंगा, नीहारिकाओं, क्वैसर आदि के अन्तरिक्षीय चित्रों से नवीनतम सूचनाएँ प्राप्त करने के लिये कर रहा था। जॉर्ज वास्तव में उसकी सहायता करने में सक्षम था—यह सोचकर विली ने वेस्टर्न कोस्ट स्थित जॉर्ज की प्रयोगशाला से संपर्क स्थापित किया।

"जॉर्ज ! मैं विली बोन्स बोल रहा हूँ···हलो ! सुनो, क्या तुम मेरे लिये एक चित्र का निरीक्षण कर सकते हो ? यह सचमुच बहुत आवश्यक है ?"

"तुम हमेशा ऐसी ही जल्दबाज़ी करते हो। अच्छा आज से दो रात्रियों के लिये मैं पालोमर वेधशाला जा रहा हूँ। उसके बाद मुझे मेक्सिको जाना है······"।

"मेक्सिको की यात्रा फिर कभी हो जाएगी। मैं दो दिनों बाद तुमसे लास एंजिल्स में मिलूँगा।" विली ने जॉर्ज को किसी प्रकार की आपत्ति करने का अवसर दिये बिना फोन रख दिया।

विली ने एक मानसिक गणना की। रॉजर को केप केनेडी से दस दिनों में रवाना होना था। जॉर्ज के कार्यक्रम के कारण दो दिनों का यह नुकसान होना ही है। बचे आठ दिन। 'बी' महोदय को अपने निष्कर्षों से अवगत करने के लिये भी उसे एक दिन चाहिये था- यदि सचमुच बताने लायक कोई विशेष बात हो।

इसलिये केवल एक सप्ताह के समय में उसे सारे तथ्य मालूम होने चाहिये।

दो दिनों के बाद वह जॉर्ज से उसकी प्रयोगशाला में मिला। जॉर्ज की आँखें नींद से बोझिल लग रही थीं। विली ने जॉर्ज को चित्र दिखाया। चित्र के पीछे लगी आधिकारिक मुहरों को मिटाने की सावधानी उसने पहले ही बरती थी।

"यह क्या मज़ाक है" जॉर्ज ने शिकायत-सी की "तुमने यह चित्र किसी विज्ञान-कथा पत्रिका में क्यों नहीं छपवा दिया ?"

"ठीक हैं, तुम बताओ यह क्या है ? कल्पना या तथ्य ? यह चित्र नकली है या वास्तविक ? इसकी सच्चाई से कितनी चीज़ें जुड़ी हैं, जॉर्ज ?"

"यह चित्र किसी साधारण कैमरे से खींचा हुआ नहीं है, यह इलेक्ट्रॉनिक कैमरे से खींचा गया है। तुम्हारे बिना बताये इतना तो मैं जानता ही हूँ। लेकिन इसमें और बहुत कुछ हो सकता है। अब बताओ, तुम इसमें क्या जानना चाहते हो ?" जॉर्ज ने कहा।

"काश मुझे पता होता। लेकिन तुम्हें इस चित्र के प्रत्येक वर्ग किमी० क्षेत्र का सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण करना होगा, इसमें कितना समय लगेगा ?" बिली ने व्याग्रतापूर्वक पूछा।

"एक सप्ताह, या यदि अपनी स्वाभाविक निद्रा न लूँ तो उससे कुछ कम भी" जॉर्ज का उत्तर था।

विली मुस्कराया और उसने नींद न आने वाली गोलियों की एक शीशी जॉर्ज के हाथों में रख दी।

"इनसे कम से कम तुम्हारी नींद आधी हो जायगी। बाद में जितनी इच्छा हो सो लेना।"

जॉर्ज क्रमबद्ध रूप से काम नरने के लिये प्रसिद्ध था परन्तु विली उसे पहली बार कार्य करते हुए देख रहा था। जॉर्ज के यंत्रों से चित्र को इतना अधिक विस्तार मिल रहा था कि विली आश्चर्यचकित था। यहाँ तक कि वह चित्र के हरे आदमियों को अलग-देख सकता था।

"क्या विश्व में ऐसे दूसरे यन्त्र भी हैं ?" विली ने प्रशंसापूर्ण स्वर में कहा "मुझे नहीं मालूम" जॉज का उत्तर था "लेकिन यह यन्त्र तो मैंने स्वयं बनाया है।"

किन्तु अपनी सारी दक्षता के बावजूद जॉर्ज समय की गति को नहीं रोक सकता था। धीरे-धीरे सप्ताह समाप्ति पर आ पहुँचा। फिर भी जॉर्ज को चित्र में ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिल सका जो फ्रॉस्ट के अंतिम वाक्य 'लेकिन' को स्पष्ट कर सकता। "बी" को सूचित करने के लिये कोई तथ्य अभी तक उसे प्राप्त नहीं हो सके थे।

अंतिम दिन प्रयोगशाला में एक नन्हा आगंतुक आया। वह जॉर्ज बाल्डविन का दसवर्षीय पुत्र जॉर्ज जूनियर था। वह चतुर भी था और जिज्ञासु भी। विली पर उसने प्रश्नों की ऐसी बौछार की कि विली को उत्तर देना कठिन हो गया। मौका पाते ही विली ने कहा "जूनियर, मैं तुमसे एक सवाल पूछना चाहता हूँ। आज तुम यहाँ क्यों आए हो और यहाँ कितनी देर रहोगे ?"

"यह तो दो सवाल हो गये" जूनियर ने कहा, "मैं यहाँ डैडी की मदद करने आया हूँ और जब तक वह काम पूरा नहीं कर लेते तब तक यहाँ रहूँगा। उसके बाद मुझे उन्हें मैक्सिको ले जाना है। हम लोग पहले ही कार्यक्रम से एक सप्ताह पीछे हो गये हैं।"

शाम तक जॉर्ज ने कार्य पूरा कर लिया। उसने विली को कम्प्यूटर टर्मिनल को संचालित करना बताया, फिर कहा "अब चित्र के जिस हिस्से को तुम चाहो यंत्र की परिवर्धन क्षमता के अनुसार बड़ा करके देख सकते हो। हाँ, और जो भी सूचना मुझे मिल सकी है, मैंने टेप पर अंकित कर दी है। अच्छा,······

विली को निराशा की अनुभूति हुई। उसे लगा कि चित्र से कोई विशेष सूचना नहीं प्राप्त हो सकी है—अन्यथा जॉर्ज उसे अवश्य ही बताता। वह यूँ ही टर्मिनल का संचालन करने लगा—उसे कुछ प्राप्त होगा इस आशा से नहीं वरन् जूनियर के प्रश्नों के उत्तर में। जल्दी ही जूनियर स्वयं चित्र के विभिन्न भागों को पर्दे पर ला रहा था और अपनी प्रतिक्रिया भी

व्यक्त करता जा रहा था—"ओह !" "क्या यह हरे लोग वास्तविक हैं ?" "यह कैसा यान है ?"······ और तरह-तरह के प्रश्न······

"अबे देखिये, वह आदमी हैमबर्गर खा रहा है ?" अचानक जूनियर ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा, "काश, मेरे पास भी होता ?"

"बिल्कुल अमेरिकी बच्चा है" विली ने सोचा। स्वयं उसे हैमबर्गर और ऐसी दूसरी चीजें बिल्कुल पसन्द नहीं थीं, परन्तु अचानक उसे जूनियर के कथन का अर्थ समझ में आया।

जूनियर के पास जाकर वह आश्चर्य भरे स्वर में बोला—"कहाँ, कहाँ दिखाई दिया तुम्हें हैमबर्गर ?"

जूनियर ने पर्दे पर एक हरे आदमी की ओर संकेत किया जो सैण्डविच जैसी कोई चीज़ खा रहा था। विली ने चित्र के उस भाग को आवर्धित किया तो सैण्डविच स्पष्ट हो आया।

"आप मुझे बेवकूफ नहीं बना सकते !" जूनियर ने कहा—"मैं हैमबर्गर खूब पहचानता हूँ" जूनियर ने शांतभाव से कहा—

"उस स्थिति में तुमने मेरी एक बड़ी समस्या हल कर दी है। तुम्हें एक नहीं दो हैमबर्गर मिलेंगे।" विल ने सप्ताह में पहली बार प्रसन्नता का अनुभव किया।

o o o o o

लास एंजिल्स से वाशिंगटन डी० सी० जाने वाली अंतिम हवाई उड़ान में जब विली ने अपनी जगह ली और आराम से बैठा तो पिछले तीन घंटे उसकी आँखों के आगे कौंधते चले गये···स्नान घर से लौटने पर जॉर्ज को जूनियर की खोज के सम्बन्ध में बताया जाना, जॉर्ज द्वारा चित्र के उस भाग को आवर्धित करके देखना और हैमबर्गर की पुष्टि करना, विली का "बी" को फोन करना जिसके कारण उसे अंतिम उड़ान में जगह मिल सकी······

इसका तात्पर्य था कि यह हरे व्यक्ति अंतरिक्ष से नहीं आये थे। वे अमेरिकी थे—अंतरिक्षीय अपहरण-कर्ता, जो प्रशिक्षित वैज्ञानिकों की सेवाएँ प्राप्त कर रहे थे और सरकार से निष्कृति मूल्य माँग रहे थे। परन्तु वे सारी दुनिया में क्या कर रहे थे···? शायद "बी" इस विवाद पर कुछ प्रकाश डाल सकें।

इलास हवाई अड्डे पर विली का स्वागत फूलों वाली टाई पहने एक युवक ने किया। 'बी' ने फोन पर यही निश्चय किया था।

"जोनाथन" उसने अपना परिचय दिया।

"विली" विली का उत्तर था।

"आइए, चलें, "बी" महोदय आपकी प्रतिक्षा कर रहे हैं।" कहते हुए जोनाथन ने विली का सामान अपने हाथों में लेकर एक वर्दीधारी ड्राइवर वाली काली बड़ी लाइमोसीन कार में बैठने का संकेत किया।

"विचित्र है यह कार" विली ने आश्चर्य व्यक्त करते हुक कहा। यद्यपि बाहर से अन्दर देखा जा सकता था परन्तु भीतर बैठने के बाद उसे बाहर कुछ भी नहीं दिख रहा था।

'बी" संकोची जीव हैं, वह नहीं चाहते कि लोग जानें कि वह कहाँ काम करते हैं।" जोनाथन ने स्पष्ट करने का प्रयत्न किया।

वाशिंगटन विली के लिये परिचित स्थान था इसलिये उसने यह अनुमान लगाने का प्रयत्न किया कि आखिर कार जा किस ओर रही थी। उसे लगा कि वेल्टवे से वे वर्जीनिया की ओर मुड़ गये थे। उसके आगे कुछ दूर तक विली को रास्ते का सही अनुमान रहा लेकिन फिर ड्राइवर ने गाड़ी इतनी जल्दी-जल्दी मोड़ी कि उसका दिशा ज्ञान समाप्त हो गया। कार भूमि के नीचे एक कार पार्क में लिफ्ट के पास रुकी। जोनाथन ने विली को बिना इधर-उधर देखने का अवसर दिये लिफ्ट में घसीट लिया। वे बारहवीं मंजिल पर रुके।

लिफ्ट से निकल कर जोनाथन ने एक सामान्य से दरवाज़े पर दस्तक दी, दरवाज़े पर 'बी' लिखा हुआ था।

दरवाजा खुला। जोनाथन ने विली को दरवाज़े

के भीतर करते हुए दरवाजा बाहर से बंद कर दिया। विली ने आशापूर्ण दृष्टि से चारों ओर देखा परन्तु उसे निराश होना पड़ा। कमरा खाली था।

कमरे में केवल एक मेज़ थी जिसके सामने एक कुर्सी रखी हुई थी। विली सोच रहा था कि अब उसे क्या करना चाहिये तभी उसे मेज़ के पीछे से आवाज़ आती सुनाई दी—

"विली, कृपया बैठ जाओ"

शायद मेज़ के पीछे कोई स्पीकर छुपा है—विली ने सोचा कुर्सी पर बैठ कर उसने अगली घटना की प्रतिक्षा की ।

"अपनी संकोची प्रवृत्ति के लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ—इसीलिये मैं सामने नहीं आ रहा—लेकिन मैं आपको पूरी तरह देख सकता हूँ। यदि आप मुझे कोई वस्तु दिखाना चाहते हैं तो उसे कृपया मेज़ पर रख दें।" आवाज़ पूरी तरह संतुलित थी।

"बी महोदय, मैं आपको ऐसी सूचना देना चाहता हूँ जो रॉजर बकलैण्ड और उसके अभियान दल को अनावश्यक यात्रा से बचा सकता है और शायद उनके जीवन की रक्षा भी कर सकता है" विली की आवाज़ में बेचैनी थी परन्तु 'बी' की आवाज़ में न तो कोई औत्सुक्य था और न ही कोई आश्चर्य की अनुभूति।

"कृपया कहते जाइए, मैं आपकी बात सुन रहा हूँ। यदि आप मुझे यह विश्वास दिला सकें कि आपकी सूचना महत्वपूर्ण है तो मैं इस अंतरिक्षीय अभियान को अभी भी रोक सकता हूँ।"

"रॉजर ने मुझे इन हरे व्यक्तियों के अतिक्रमण के सम्बन्ध में बताया था। उसने यह भी कहा था कि इन व्यक्तियों के सम्बन्ध में खोज के लिये वह कल रवाना हो रहा है। उनके बारे में···वे किस ग्रह से आते हैं आदि प्रश्नों के सम्बन्ध में खोज करने के लिये। परंतु वह चाहता था कि मैं स्वतंत्र रूप से इन व्यक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त करूँ। उसने मुझे डिक फ्रॉस्ट का खींचा हुआ एक चित्र भी दिया" विली कहता जा रहा था परन्तु "बी" की आवाज़ ने उसे बीच में रोक दिया।

"गम्भीर विश्वास-भंग की स्थिति है। रॉजर को तुम्हें वह चित्र नहीं देना चाहिये था। उसी ने तुम्हें मेरा फोन नं० भी दिया होगा खैर, बताओ तुम्हें क्या जानकारी मिली?"

"मैंने इस चित्र का विश्लेषण एक विशेषज्ञ से कराया और मुझे जो जानकारी मिली वह सम्भवतया आपके वैज्ञानिक नहीं प्राप्त कर सके थे।" विली ने चित्र मेज़ पर रख दिया और विश्लेषण-प्रक्रिया समझाता गया। अंत में उसने कहा "अंतरिक्षयान के एक व्यक्ति द्वारा हैमबर्गर खाना यह सिद्ध करता है कि ये हरे व्यक्ति किसी अन्य ग्रह के नहीं पृथ्वी के ही मनुष्य हैं—सम्भवतया अमेरिका के ही। वे हमारे वैज्ञानिकों और तकनीकी विशेषज्ञों का अपहरण किसी घृणित उद्देश्य के अंतर्गत कर रहे हैं। इसलिये मेरा सुझाव है कि कल वैज्ञानिकों के दल को इस कार्य के लिये मत भेजिये। अच्छा हो, इन अपराधियों को वशीभूत करने के लिये सशस्त्र सैनिक भेजे जायें।"

थोड़ी देर तक शांति रही, फिर 'बी' का स्वर उभरा। "बधाई हो, विली, तुमने एक समस्या हल कर दी है। मैं रॉजर का अभियान रोक सकता हूँ परन्तु इसका श्रेय तुम्हें मिलना चाहिये। थोड़ी देर बाहर प्रतीक्षा करो। मैं तुम्हें रॉजर के पास फ्लोरिडा भेज रहा हूँ। उसे सारी बातें समझा देना।"

रॉजर से विदा लेने के बाद पहली बार विली ने आराम की साँस ली।

° ° ° ° ° °

"बी" ने अपने काले टेलीफोन का रिसीवर रख दिया। इस टेलीफोन से वह अपने सहायकों से बात-चीत करते थे और अभी-अभी उन्होंने जोनाथन को इस सम्बन्ध में निर्देश दिये थे। अब उन्होंने हरे फोन का रिसीवर उठाया। उनकी मेज़ पर वैसे एक लाल रंग का टेलीफोन और भी था।

"श्री ए" उन्होंने आदरपूर्ण स्वर में कहा।

"ओह! बी, क्या हालचाल है? सब कुछ तैयार है न?"

"हाँ, सब कुछ ठीक ही था" बी ने कहा "परन्तु

अब एक समस्या आ गयी है। अभी-अभी एफ० बी० आई० का एक एजेन्ट विली बोन्स मेरे पास आया था। उसे मालूम हो गया है कि हरे व्यक्ति अमेरिकी ही हैं।"

उधर से एक गाली फोन पर सुनाई दी। परन्तु 'ए' अपने को नियंत्रित करना जानते थे—उन्होंने विली ने जो कुछ बताया था उसका विवरण 'बी' से जानना चाहा। जब 'बी' सब कुछ बता चुके तो 'ए' ने कहा।

"वह माइक ही होगा! कम्बख्त हैम्बर्गर के लिये जान भी दे सकता है। मुझे नहीं मालूम वह कितने हैम्बर्गर खा सकता है। लगता है...इस बार उसका हैम्बर्गर हम लोगों को भारी पड़ गया।"

थोड़ी देर फिर खामोशी रही। फिर 'बी' ने उत्तर दिया, उनकी आवाज़ में दुख था। "अब हम क्या करें? लगता है पूरी दुनिया की निगरानी करने की हमारी योजना व्यर्थ हो गयी। और वह भी ऐसे समय जब उसके परिणाम सामने आने लगे थे। रॉजर और उसके अभियान दल के सदस्यों के अपहरण के पश्चात् इन अंतरिक्ष-निवासियों के संबंध में बड़ा शोर मचता और चारों ओर भय व्याप्त हो जाता। सिनेटर ब्लैकमैन ने तो आकाश पाताल एक कर दिया होता। इसके लिये पहले से ही एक जाँच कमेटी की योजना बना ली गयी थी। जाँच में विश्व के श्रेष्ठतम वैज्ञानिक यह पुष्टि करते कि यह सब किसी दूसरे ग्रह के निवासियों का कार्य नहीं है—उनका अस्तित्व ही नहीं है। इस पूरे विवाद के बीच हरे व्यक्ति अपना जासूसी का कार्य स्वतन्त्रतापूर्वक करते रहते। सब कुछ कितना आश्चर्यजनक था—लेकिन उस कम्बख्त माईक के हैम्बर्गर के कारण सब कुछ नष्ट हो गया।"

"बी, तुम ऐसे बोल रहे हो जैसे सारी योजना किसी अतीत की वस्तु रही हो। नहीं, नहीं अभी भी सब कुछ वैसा ही है" 'ए' के उत्तर में पर्याप्त ठंडापन था।

"यह सब कुछ कैसे चलता रह सकता है यदि विली बोन्स इसके बारे में बात करना शुरू कर दे। वह तो फ्लोरिडा के रास्ते पर है"। 'बी' के स्वर की व्यग्रता स्पष्ट हो आई थी।

"वाह! यही तो मैं भी चाहता था। हम विली को भी उस गुप्त स्थान पर भेज देंगे। वहाँ वह अपनी खोज जारी रख सकता है।"

'बी' की समझ में बात आ गयी। अपहरण किये गये वैज्ञानिकों की टोली में विली को भी भेज दिया जाये तो कोई कुछ भी नहीं जान सकेगा। लेकिन उनका विवेक उनके प्रश्न में स्पष्ट हो आया "एक राष्ट्र के जो व्यक्ति की स्वतंत्रता और मानवीय अधिकारों के लिये गर्व करता है, के लिये उसके अपने नागरिकों का अपहरण और उन्हें एक गुप्त स्थान पर रहने के लिये विवश करना कितना उचित है?"

परन्तु 'ए' के पास इन सभी शंकाओं का सामाधान प्रस्तुत था। वे शालीनतापूर्वक बोले, "किसी राष्ट्र को अपने ही नागरिकों के अपहरण का अपराधी नहीं ठहराया जा सकता। फिर जिन वैज्ञानिकों का हमने अपहरण किया है वे एक सुविधापूर्ण जीवन जी रहे हैं और राष्ट्र की सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर कार्य करते हुए कार्य-संतोष प्राप्त कर रहे हैं। फ्रॉस्ट भी अपना नया दायित्व रुचिपूर्वक निभा रहा है।"

अपने विचारों को प्रतिध्वनित-सा करते हुए 'ए' कहते गये "याद करो, मैनहट्टन परियोजना में श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों ने भयानकतम अस्त्र के निर्माण के लिये पूरी निष्ठा से कार्य किया था क्योंकि वे पूरी तरह आश्वस्त थे कि वे राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये कार्य कर रहे थे "यदि परियोजना के गुणों के प्रति वैज्ञानिक आश्वस्त हों तो वे सदैव निष्ठापूर्वक कार्य करेंगे। हमने अपने वैज्ञानिकों को यह समझा दिया है कि इस अंतरिक्ष युग में पृथ्वी के स्वामित्व की अपेक्षा अंतरिक्ष विजय का कार्य अधिक महत्वपूर्ण हो उठा है, इसलिये वे प्रसन्नतापूर्वक हमारे कार्य में अपना योगदान कर रहे हैं।"

"ठीक है" 'बी' ने गहरी साँस खींचते हुए कहा, "ऐसा ही होना था हाँ, यही हो भी सकता था।" वह स्वयं कभी वैज्ञानिक रहा था और उसे वैज्ञानिकों को

राजनीतिक चालों से मुहरे बनता देखकर बड़ा दुःख होता था। वह इसे रोक भी नहीं सकता था। आखिर, पहले भी ऐसा ही होता रहा है।

व्यवहारिक विषयों पर चर्चा करते हुए 'बी' ने टिप्पणी की--

"हमें एक समस्या का समाधान और ढूंढना है।"

"वह क्या है?" 'ए' ने पूछा।

"विली मेरे विभाग में कार्य नहीं करता अतः उसके अपहरण के लिये मुझे उच्चतम अधिकारी के आदेश की आवश्यकता होगी।"

"मैं उसकी व्यवस्था कर दूँगा, अच्छा विदा", 'ए' ने तथ्यपूर्ण रूप में उत्तर दिया।

जब 'बी' ने हरे टेलीफोन का रिसीवर रखा तो उसने विली से भी मानसिक विदा ले ली थी। 'ए' की त्वरित कार्यशैली से परिचित होने के कारण उसे शीघ्र परिणाम की आशा थी। उसे निराश नहीं होना पड़ा।

उसकी मेज़ के लाल टेलीफोन की घंटी बजनी शुरू हो गयी थी। ☐☐

मूल कथा अंग्रेज़ी में 'साइंस टुडे' दिसम्बर 1984 अंक में प्रकाशित।

अनुवादक—राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप, ए० पी० एन० डिग्री कॉलेज, बस्ती (उ०प्र०)। हम 'साइंस टुडे' पत्रिका, मूल लेखक और अनुवादक के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

—सम्पादक

[पृष्ठ 18 का शेषांश]

दशक में जी० डेवानकाउल्योर ने विराट-पिण्ड असमांगिकता का पक्षपोषण करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया था कि हमारी मंदाकिनी एक महाविराट-पिंड समूह का सदस्य है।

आज उन्नत तकनीक के कारण हम इन महाविराट असमांगिक पिंड समूहों में विश्वास करने लगे हैं। महाविस्फोट ब्रह्माण्ड विज्ञान की मुख्य अनुसंधान धारा इन पिंडों के प्रारंभ के सम्बन्ध में खोज कर रही है। इसके समाधान की कुंजी कण-भौतिकी (पर्टिकिल फिजिक्स) में है, ऐसा विश्वास किया जाता है। प्रत्येक मंदाकिनी के प्रारंभ का परिदृश्य उस समय कार्यरत कण-भौतिकी के रूप पर आधारित होना चाहिये। और इन अनुसंधानों की मूल भावना गोल्ड-हायल के अत्यधिक समान है।

परन्तु इन दोनों मॉडलों में एक अंतर अवश्य है। गोल्ड-हायल मॉडल ने भौतिकी के ज्ञात नियमों के आधार पर सतत मंदाकिनी-निर्माण प्रक्रिया और वर्तमान अंतर्मंदाकिनी माध्यम के सम्बन्ध में परीक्षण करने योग्य भविष्यवाणियाँ की थीं। इसके विपरीत महाविस्फोट सिद्धांत के द्वारा मंदाकिनी-निर्माण की व्याख्या में अटकलें अधिक लगायी गयी हैं।

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि ब्रह्माण्ड विज्ञान के संदर्भ में स्थिर स्थिति सिद्धांत का योगदान उससे कहीं अधिक है, जितना आज स्वीकार किया जाता है। क्या यह सिद्धांत पुनः अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है? इस सम्बन्ध में मेरी धारणाएँ निम्न हैं:—

(1) यह सिद्ध किया जा चुका है कि यदि ब्रह्माण्ड के संपूर्ण हीलियम और प्रकाश को लघुतरंग पृष्ठभूमि विकिरण में परिवर्तित कर दिया जाये तो हम उक्त तापक्रम पर पहुँच जाएँगे। यदि स्थिर स्थिति सिद्धांत द्वारा इसकी विस्तृत यांत्रिकी ज्ञात हो सके तो यह मॉडल भी पुनर्स्वीकृति प्राप्त कर सकेगा।

(2) अंतरिक्ष के निरीक्षण की उन्नत विधियों ने अतीत में हमारी ब्रह्माण्डीय अवधारणा को विस्तारित किया है। इस शताब्दी के अंत तक लगायी जाने वाली अंतरिक्षीय और अन्य दूरबीनें हमारे द्वारा विश्वास किये जासे वाले ब्रह्माण्ड के 10 अरब प्रकाश वर्षों के आयाम और समय-मापनी में विस्तार कर सकते हैं। उस स्थिति में भी हम कह सकेंगे कि ब्रह्माण्ड स्थिर स्थिति में है और हम जो कुछ निरीक्षण कर रहे हैं वह ब्रह्माण्ड का भ्रमपूर्ण चित्र उपस्थित कर रहा है। ☐☐

अनुवादक—राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप, प्रवक्ता (शिक्षा) ए० पी० एन० महाविद्यालय, बस्ती (उ० प्र०)-272001

मंगल यात्रा

विजय जी

एक छोटी सी मानवीय भूल ने पूरे 'फोबोस मिशन' की सफलता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। धरती से चालीस करोड़ मील की दूरी पर मंगल ग्रह की परिक्रमा कर रहे अन्तरिक्षयान से रेडियो-सिग्नल द्वारा धरती पर मिली जानकारी के अनुसार महिला अन्तरिक्षयात्री राधा माँ बनने वाली हैं। अन्तरिक्षयान को यदि तुरन्त मंगल की कक्षा से धरती पर लाया भी जाय तब भी कम से कम एक वर्ष का समय तो लग ही जायेगा। राधा की जीवन सम्बन्धी भावी आशंका से जितना धरती के वैज्ञानिक चिन्तित थे उससे अधिक परेशान स्वयं राधा और उसके सहयात्री पति शशांक थे। अब क्या होगा······?

राधा और शशांक की अन्तरिक्षयात्रा धरती से एक वर्ष पूर्व 1 मई 2019 को प्रारम्भ हुई थी। यह संयोग ही था जो मंगल विजय का श्रेय भारतीय अन्तरिक्षयात्रियों को मिलने वाला था। अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष संगठन द्वारा जिन तीन जोड़ों को मंगल यात्रा के लिए चुना गया था उनमें एक अमेरिकी, दूसरा रूसी और तीसरा जोड़ा भारतीय था। इन तीनों में से एक ही जोड़े को अन्तरिक्षयात्रा पर जाना था। अन्तिम क्षणों में शशांक और राधा का भारतीय जोड़ा ही शारीरिक और मानसिक परीक्षा में खरा उतरा और इसे ही मंगल विजय का जिम्मा सौंपा गया।

धरती से मंगल ग्रह तक जाने और लौटने में लगभग तीन वर्ष का समय लगता है। इस लम्बी और उबाऊ यात्रा की दृष्टि से ही पति-पत्नी अन्तरिक्ष यात्री भेजने की योजना बनाई गयी थी। फोबोस मिशन नाम मंगल ग्रह के उपग्रह फोबोस के नाम पर रखा गया है। अन्तरिक्ष यात्रा की सारी तैयारियों में कहीं कोई त्रुटि नहीं थी। खाने-पीने की पर्याप्त सामग्री ट्यूबों में भरी पड़ी थी। यान के अंदर 'जैविक पुनरुत्पादन प्रणाली' अच्छी तरह काम कर रही थी। इस प्रणाली द्वारा अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा छोड़े गये व्यर्थ पदार्थ कार्बन डाइऑक्साइड, मूत्र आदि पुनः साफ करके ऑक्सीजन और पेय जल में बदले जा रहे थे। सारे यंत्र, कम्प्यूटर और स्वचालित कैमरे अपना काम बखूबी कर रहे थे।

राधा की मानवीय भूल मात्र यह थी कि अन्तरिक्ष यात्रा पर निकलते समय वह 'कॉन्ट्रासेप्टिव' लेना भूल गयी थी। अन्तर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष संगठन को भी इस मामूली सी चीज की याद नहीं आयी।

भावी आशंका से घिरे आन्तरिक्षयात्रियों को शीघ्र ही मिशन के अगले सबसे महत्वपूर्ण चरण की तैयारी करनी थी। अगले चरण में यान से मॉड्यूल को अलग होना था। यह मॉड्यूल यान से ही जुड़ा भाग था, जिसे मंगल पर उतरने लायक बनाया गया था। पहले से तय योजना के अनुसार राधा को मॉड्यूल में प्रवेश करना था। उसके बाद मॉड्यूल को यान से अलग होकर मंगल की सतह पर उतरना था। वहाँ राधा को मंगल की सतह पर चहलकदमी करनी था, वहाँ की मिट्टी के नमूने एकत्र करने थे तथा कुछ उपकरण स्थापित करने थे। इसने बाद मॉड्यूल में स्थित राकेट को दागकर मॉड्यूल को पुनः मंगल की कक्षा में लाना था और यान से जोड़ लेना था।

लेकिन राधा के इस वक्तव्य से कि वह माँ बनने वाली है, सारी योजनाओं पर पानी फिर गया। थोड़ी देर तक तो शशांक भौचक्का सा रह गया। अब क्या होगा···? धरती और धरती के अंतरिक्ष स्टेशन तथा चन्द्रमा के अन्तरिक्ष स्टेशन से करोड़ों मील दूर मंगल ग्रह की कक्षा तक सहायता की कहीं से कोई उम्मीद

जवाहर कॉलेज, जारी, इलाहाबाद—212106

नहीं है। धरती पर तुरन्त लौटने में भी एक वर्ष से अधिक ही समय लगेगा। ऐसे में राधा का क्या होगा? अन्तरिक्षयान में राधा के प्रसव का मतलब होगा जच्चा-बच्चा की अकाल मौत। अन्तरिक्षयात्रा वैसे भी कष्टदायी यात्रा होती है जहाँ अन्तरिक्षयात्री लम्बे और कठिन अभ्यास के बाद ही आता है। एक तो यहाँ पूरे समय भारहीनता की दशा में रहना पड़ता है और दूसरे स्पेस सूट, ऑक्सीजन जैसी जीवनरक्षक वस्तुयें मात्र दो अन्तरिक्षयात्रियों के लिए उपलब्ध थीं। वह भी प्रौढ़ आयु वालों के लिए। नवजात शिशु की प्राणरक्षा का तो कोई सवाल ही नहीं था। फिर स्पेस सूट में बँधे-बँधे और बिना डॉक्टरी सुविधा के राधा प्रसव-वेदना बरदाश्त कर पायेगी, इसमें भी संदेह था।

शशांक का दिमाग बड़ी तेज़ी से काम कर रहा था। उसने धरती के संदेश की प्रतीक्षा करना व्यर्थ समझा। और निर्णय लिया कि राधा के शरीर को अत्यन्त न्यून तापक्रम पर जमा देने के अलावा अन्य कोई रास्ता नहीं है। इस सम्बन्ध में शशांक ने राधा से विचार-विमर्श किया। राधा ने सहर्ष अनुमति दे दी। अब इसके अलावा विकल्प ही क्या था?

शशांक और राधा दोनों के नेत्र सजल हो गये। राधा को साल भर तक की लम्बी नींद में सुलाने के लिए शशांक ने क्रायोनिक उपकरणों (शीतलन यंत्रों) से खेलना शुरू कर दिया। लम्बी अन्तरिक्ष यात्राओं में संकटपूर्ण घड़ी के लिए अंतरिक्षयानों में ये क्रायोनिक उपकरण लगाये जाते हैं। उदाहरण स्वरूप अन्तरिक्षयानों के रास्ते से भटक जाने पर, यान में ईंधन समाप्त हो जाने पर, किसी तकनीकी गड़बड़ी के कारण यदि यान धरती तक लौटने में असमर्थ हो जाय तो ऐसी स्थिति में सहायता यान भेजने और भटके यान को धरती तक लाने में वर्षों का समय लग सकता है। इतने समय तक अन्तरिक्षयात्री की भोजन सामग्री समाप्त हो चुकी होगी। ऐसी स्थिति में जीवनरक्षा का एकमात्र उपाय यही है कि अन्तरिक्ष यात्री यान में ही अपने शरीर को अत्यन्त न्यून ताप पर जमा दे। जब वर्षों बाद यान धरती पर लाया जायेगा तो यह जमा हुआ शरीर पुनर्जीवित किया जा सकेगा।

शशांक और राधा ने रुंधे गले से एक दूसरे को अभिवादन किये और कामना की कि वे पुनः एक वर्ष बाद धरती पर मिलेंगे, जब यान धरती पर लौटेगा और राधा की चेतना वापस लायी जायेगी। शशांक ने राधा को बेहोशी का हल्का इंजेक्शन दिया। उसके शरीर के तापक्रम को शून्य से नीचे लाये। क्रायोनिक उपकरणों के जरिये उसके रक्त को निकाल कर उसकी जगह एन्टीफ्रीज़ पदार्थ भर दिया। यह सब काम रोबोट नर्स की सहायता से फटाफट हो गया। फिर शशांक ने अन्तरिक्षयान के संचालन का सारा जिम्मा कम्प्यूटर को सौंप कर स्वयं मंगल पर उतरने का निर्णय लिया।

शशांक के मॉड्यूल में घुसते ही मॉड्यूल अन्तरिक्ष यान से अलग हो गया। अन्तरिक्षयान अपनी कक्षा में चक्कर लगाता रहा और मॉड्यूल हवाई जहाज़ की तरह धीरे-धीरे मंगल पर उतरने लगा। मंगल की सतह के पास पहुँचते ही माड्यूल से बर्छी जैसे पाये निकलकर मंगल की धरती में धँस गये ताकि न्यून गुरुत्वाकर्षण के कारण मॉड्यूल मंगल की ज़मीन पर स्थिर रहे। इस तरह शशांक मंगल की धरती पर उतरने वाला प्रथम अन्तरिक्षयात्री बना। और मिशन पूरा होने के बाद धरती पर वापस आने पर राधा से उसका पुनर्मिलन किस प्रकार हुआ यह अपने आप में एक दूसरी रोचक कथा है। □□

नहीं, महाविस्फोट से नहीं*

डॉ० जयंत विष्णु नार्लीकर

आज स्थिर स्थिति ब्रह्माण्ड विज्ञान (स्टेडी स्टेट कास्मोलॉजी) की स्वयं की स्थिति क्या है ? इसका प्रथम और अतथ्यपूर्ण उत्तर है, "कहीं नहीं" इसके बाद भी यदि आपने यह धारणा नहीं बना ली है कि ब्रह्माण्डीय समस्या का पूर्ण समाधान हो चुका है, तो आगे पढ़ें·········

स्थिर स्थिति ब्रह्माण्ड विज्ञान की प्रस्तावना 1948 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के तीन खगोल भौतिकशास्त्रियों हर्मन बोंडी, थामस गोल्ड और फ्रेड हायल ने की थी जो महाविस्फोट सिद्धान्त (बिग बैंग थ्यूरी) की व्याख्याओं से पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे और परस्पर विचार-विमर्श किया करते थे। (संयोग वश) 'बिग बैंग' शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम फ्रेड हायल ने ही किया था)। लगभग दो दशकों तक महा-विस्फोट सिद्धान्त के प्रतिद्वन्द्वी सिद्धांत के रूप में स्थिर स्थिति सिद्धान्त ब्रह्माण्डीय-विवाद के मंच का केन्द्र बना रहा। इसकी वर्तमान स्थिति की विवेचना के लिये एक संक्षिप्त ऐतिहासिक परिदृश्य की आवश्यकता है।

संक्षिप्त रूप में बोंडी और गोल्ड द्वारा प्रस्तुत स्थिर स्थिति का विचार उनके पूर्ण ब्रह्माण्डीय सिद्धांत (पर्फेक्ट कास्मोलॉजिकल प्रिंसिपल) का उत्पादन था। इस सिद्धांत को समझने के लिये 1922 में रूसी खगोल भौतिकविद् अलेक्जेंडर फ्रीडमैन द्वारा प्रस्तुत किये गये महाविस्फोट मॉडलों पर दृष्टि डालनी होगी जो ब्रह्माण्डीय सिद्धान्त पर आधारित थे। इसे ब्रह्माण्डीय सिद्धान्त में किसी निश्चित क्षण पर, ब्रह्माण्ड के समांग और समदेशिक होने की कल्पना की गयी थी। ऐसी परिस्थिति में यदि कोई निरीक्षण-कर्ता ब्रह्माण्ड के किसी भी भाग का निरीक्षण करता तो उसे उस भाग में अन्य भागों की तुलना में किसी प्रकार के अंतर का आभास नहीं होता।

ब्रह्माण्डीय नियम की प्रस्तुति अंतरिक्ष के निरीक्षणों (जिनमें व्यापक स्तर पर समांगता और समदेशिकता दिखाई देती है) तथा सैद्धांतिक आवश्यकता के परिणामस्वरूप की गयी थी। सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त के जटिल समीकरण इस पूर्वकल्पनाओं के आधार पर सरलतापूर्वक हल किये गये। इन समाधानों ने ब्रह्माण्ड की सदैव विस्तृत होती संरचना जिसमें मंदाकिनियों से जड़ा हुआ दिक् (**Space**) भी विस्तार प्राप्त कर रहा था, प्रस्तुत की। 1920 में एडविन हबल और मिल्टन हुमासन के अंतरिक्षीय पिंडों से आने वाले प्रकाश में वर्णक्रम में रक्ताभ क्षेत्र की ओर रेखाओं के विचलन (रेड शिफ्ट फेनामेनन) ने ब्रह्माण्ड के उपरोक्त चित्र की पुष्टि की। फ्रीडमैन की संकल्पनाओं के अनुसार ब्रह्माण्डीय विकास के क्रम में अतीत एक का क्षण ऐसा भी होना चाहिये जब विस्तार प्राप्त करता हुआ संपूर्ण अंतरीक्ष शून्य आयतन के परिणाम में हो-इसे ही परवर्ती साहित्य में महाविस्फोट अथवा 'बिग बैंग' की संज्ञा दी गयी थी। यही क्षण सृष्टि रचना का प्रथम क्षण था। इस क्षण के पूर्व कुछ भी अस्तित्व में नहीं था, न दिक् न काल।

बोंडी, जो कार्ल पापर की दार्शनिक विचार-धारा से प्रभावित थे, का दृढ़ विश्वास था कि किसी भी वैज्ञानिक सिद्धान्त में परीक्षण और खण्डन की स्थितियों की संभावना होनी चाहिये। महाविस्फोट सिद्धान्त की उनकी आलोचना इन तर्कों पर आधारित थी कि इस घटना का न तो कोई निरीक्षण प्रमाण उपलब्ध है और न ही हम इस तथ्य से आश्वस्त हो सकते हैं कि इस संरचना की सृष्टि के तत्काल बाद भी

टाटा इंस्टीट्यूट आफ फडामेंटल रिसर्च, बम्बई—400005

*'साइंस टुडे' (फरवरी 1987) में प्रकाशित लेख 'नाट विद ए बैंग' का हिन्दी अनुवाद। 'विज्ञान' पत्रिका इस लेख के अनुवाद और प्रकाशन के लिये 'साइंस टुडे' पत्रिका और डॉ० नार्लीकर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती है—सम्पादक।

ब्रह्माण्ड उन्हीं नियमों से नियंत्रित हो रहा था जिन्हें हम आज जानते हैं।

इन दोनों आधारों पर यह आलोचना आज भी सत्य है। आइए, माइक्रोवेव बैकग्राउन्ड रेडियेशन अथवा लघु तरंग पृष्ठभूमि विकिरण के निरीक्षणों पर ध्यान दें। यदि यह संकल्पनात्मक महाविस्फोट का अवशेष है तो भी इससे महाविस्फोट की घटना का निरीक्षण असंभव है। क्योंकि जब ब्रह्माण्ड आज की अपेक्षा आकार में हजारवें-लाखवें आकार का रहा होगा, इसमें विकिरण ऐसे आंदोलित रूप में गड्ड-मड्ड रहे होंगे कि किसी प्रकार के व्यवस्थित निरीक्षण की संभावना समाप्त हो जाती है। जहाँ तक प्रारंभिक स्थिति में भौतिकीय नियमों का संबन्ध है, महान एकीकृत सिद्धान्तों, अधिसममिति, कालूजा-क्लीन की ब्रह्माण्डीय बहुआयामी विचारधारा इत्यादि से यह संकेत प्राप्त होता है कि जब ब्रह्माण्ड अत्यधिक गर्म और सघन रहा होगा तो कार्यरत नियम आज की अपेक्षा भिन्न रहे होंगे। और इस नवीन भौतिकी के के लिये कोई प्रत्यक्ष परीक्षण भी नहीं है। इसकी वैधता के संबंध अतीत में ब्रह्माण्ड पर इसके प्रभाव का अध्ययन ही कुछ संकेत दे सकता है। अतः इस महाविस्फोट-संकल्पना के संदर्भ में हमारे पास प्रयोग के पुनर्परीक्षण की स्थिति भी नहीं है।

इस रूप में यह न तो भौतिकी है और न ही विज्ञान ! इस कल्पना के विकल्प के रूप में बोंडी और गोल्ड ने पूर्ण ब्रह्माण्डीय सिद्धांत (पी० सी० पी०) को प्रस्तुत किया जिसके अन्तर्गत ब्रह्माण्ड को काल और दिक् में एकरूप (यूनिफार्म) होना अपेक्षित था। काल के संदर्भ में यह एकरूपता इसे स्थिरता प्रदान करती है और लम्बे समयान्तराल में अपरिवर्तित रखती है। उस स्थिति में हमारा यात्री-निरीक्षक जिसकी आँखें बन्द हैं, इस अवस्था का निरीक्षण नहीं कर पाता। पूर्ण ब्रह्माण्डीय सिद्धान्त में अपरिवर्तनीय ब्रह्माण्ड के साथ भौतिक नियमों की अपरिवर्तनीयता सुनिश्चित की जाती है। अतः आज के प्राकृतिक नियमों को सृष्टि के प्रारंभ में भी कार्यरत माना जाता है।

स्वाभाविक रूप से अपरिवर्तनीय नियमों पर आधारित ब्रह्माण्ड विज्ञान, संकल्पनाओं पर आधारित ब्रह्माण्ड विज्ञान की तुलना में खण्डन से अधिक असुरक्षित है। स्थिर स्थिति सिद्धान्त का यही गुण है।

फ्रेड हायल ने इस सिद्धान्त पर अधिक तथ्यपूर्ण रूप से विचार किया। उनके अनुसार प्रत्यक्षतम ब्रह्माण्डीय निरीक्षण को पदार्थ और विकरण की व्याख्या करनी थी। यह अस्तित्व में कैसे आए ? महाविस्फोट सिद्धान्त इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं देता। यह केवल महाविस्फोट की घटना की ओर निर्देशित कर देता है कि वहीं से सब कुछ प्रारंभ हुआ। परन्तु इसमें किसी चर्चा को कोई स्थान इसलिये प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि उसक्षण दिक्-काल की ज्यामिति, जो सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त का आधार है, भंग हो जाती है। गणितज्ञ इसे अद्वितीय निर्देश क्षण की संज्ञा देते हैं।

क्या कोई अनुसंधानिक इन अभौतिकीय लक्षणों से बच सकता है ? क्या कोई ऐसे सिद्धांत की कल्पना कर सकता है जिसमें प्रत्येक काल में पदार्थ की उत्पत्ति होती रहती है ? यदि ऐसा सिद्धांत हो तो इसे पदार्थ और ऊर्जा की अनिश्वरता के अतिपवित्र नियम के साथ किस प्रकार समायोजित किया जा सकता है।

प्रारम्भ में यह बाधाएँ अलंघ्य प्रतीत होती थीं। यदि सामान्य सापेक्षता सिद्धांत की आधारभूत संरचना का अतिक्रमण किये बिना इन्हें पार करना हो तो भौतिकी-चिंतन में एक अतिरिक्त निवेश अपेक्षित होगा। फ्रेड हायल ने एक ऋणात्मक ऊर्जा और ऋणात्मक तनाव के ब्रह्माण्डीय भंडार का विचार प्रस्तुत किया। कुछ समय पश्चात् 1950 में अंग्रेज खगोल-भौतिक विज्ञानी डब्ल्यू० एच० मैकगी ने स्थिर स्थिति मॉडल का एक स्वरूप प्रस्तुत किया जिसमें ब्रह्माण्डीय अधःस्तर ऋणात्मक तनाव के प्रभावान्तर्गत विस्तरित होता है। 1961 में इन संप्रदायों के आधार पर मारिस पाइस ने एक परिष्कृत सिद्धांत सी-फील्ड (जो ऋणात्मक ऊर्जा का भंडार है) ब्रह्माण्ड-विज्ञान प्रस्तुत किया। इस सिद्धांत ने साठ के दशक में हायल और

मेरे द्वारा स्थिर स्थिति सिद्धांत के सैद्धांतिक-विकास में महत्वपूर्ण प्रेरणा प्रदान की थी।

वैसे भौतिकी में ऋणात्मक ऊर्जा और ऋणात्मक तनाव अज्ञात नहीं है। सरल रूप में, न्यूटन के गुरुत्वीय-बल में ऋणात्मक ऊर्जा ही होती है। उदाहरण के लिये, दो पिंड लें जो एक दूसरे को गुरुत्वीय रूप से आकर्षित करते हैं। जैसे-जैसे पिंड एक दूसरे के निकट आते हैं, उनका वेग और साथ-साथ उनका गुरुत्वाकर्षण-बल बढ़ता जाता है। इसमें ऋणात्मक गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा का विचार निहित है जो पिंडों के बीच की दूरी घटाने के साथ और ऋणात्मक होती जाती है।

स्थानीय अर्थात विस्कक्षीय तनाव भी ऋणात्मक हो सकते हैं। फिर भी पचास और साठ के दशकों में सैद्धांतिक भौतिकशास्त्रियों ने ऋणात्मक ऊर्जा वाले ब्रह्माण्डीय क्षेत्र को शंकित रूप में देखा था। उनकी एक और आपत्ति पदार्थ की सतत उत्पत्ति के सम्बन्ध में थी। यदि यह उत्पत्ति बेरयान (Baryons) कणों को ही (न्यूट्रॉन अथवा प्रोटॉन की भाँति) तो क्या इससे बेरयान कणों की संख्या की अपरिवर्तनीयता का नियम भंग नहीं होता?

आज इन आपत्तियों पर विचार करना व्यंग्यपूर्ण है। बेरयान संख्या की अपवर्तनीयता का खण्डन अब स्वीकृत नहीं है, यह मूल अंतर्क्रियाओं के एकीकरण प्रयत्न का आवश्यक घटक है। यही नहीं, महाविस्फोट सिद्धांत के अंतर्गत भी एक ऐसे क्षण की कल्पना की गयी है जब बेरियान कणों की संख्या स्थिर नहीं थी।

और ऋणात्मक तनाव? वे भी आज के वैज्ञानिक चिंतन में मान्य हो रहे हैं, साथ-साथ लोकप्रिय भी। आज के सृष्टि के प्रारम्भ की विचारधाराओं में पदार्थ के रूप में अनेक परिवर्तनों की कल्पना की जाती है। इन परिवर्तनों के बीच विशेष बल-क्षेत्र कार्य करते हैं और यह बल-क्षेत्र शून्य में ऋणात्मक तनाव की सृष्टि करते हैं—(यह न्यूनतम ऊर्जा स्थिति है) और मैकगी की स्थापनाओं के अनुरूप ब्रह्माण्ड का तीव्र विस्तार करते हैं। आज हम इन दृश्यावलियों को स्फीतिक ब्रह्माण्ड (इन्फ्लेशनरी यूनिवर्स) के नाम से पुकारते हैं।

स्फीतिक-ब्रह्माण्ड में ऐसे क्षेत्रों की कल्पना की गयी है जहाँ स्थिति परिवर्तन की पूर्णता के साथ तीव्र परिवर्तन की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। ऐसे क्षेत्रों का विस्तार इसके पश्चात् फ्रीडमैन के मॉडलों के अनुरूप होता है। विश्वास किया जाता है कि हम ऐसे एक फ्रीडमैन-बुलबुले के भीतर ही रह रहे हैं।

यह भी एक मनोरंजक तथ्य है कि ब्रह्माण्ड की यह बुलबुला-संकल्पना भी दो दशकों पूर्व स्थिर स्थिति सिद्धांत से उद्‌भूत हुयी थी। 1964 में सी क्षेत्र सिद्धांत के गणितीय समाधानों पर विचार करते हुए हायल और मैंने यह देखा कि यह समाधान दो प्रकार के हैं। पहला—सक्रिय प्रकार के समाधानों में पदार्थ के अनवरत उत्पादन द्वारा सी-क्षेत्र ब्रह्माण्ड को स्थिर स्थिति की ओर ले जाता है। दूसरा—निष्क्रिय प्रकार तब अस्तित्व में आता है जब सी-क्षेत्र की तीव्रता का स्तर एक सीमा से नीचे जाकर प्रभावहीन हो जाता है। तब ब्रह्माण्ड का विस्तार फ्रीडमैन के मॉडल के अनुरूप होता है। इस कारण हमें ऐसा प्रतीत हुआ कि हमारा निरीक्ष्य ब्रह्माण्ड एक ऐसा बुलबुला हो सकता है जो एक निश्चित दिक्-क्षेत्र में सी-क्षेत्र के सक्रिय रूप से निष्क्रिय रूप में परिवर्तन के कारण अस्तित्व में आया हो।

सैद्धांतिक चर्चा को छोड़ कर हम आज हमारे द्वारा प्रत्यक्षीकृत ब्रह्माण्ड पर दृष्टि डालें। इस विशाल रचना में भी स्थिर स्थिति सिद्धांत द्वारा प्रस्तावित एक महत्वपूर्ण लक्षण प्राप्त होता है। 1958 में गोल्ड और हायल ने यह तर्क प्रस्तुत किया था कि यदि नवीन पदार्थ न्यूट्रॉनों के रूप में हो तो न्यूट्रॉनों का (बीटा) क्षरण उच्च गतिक ताप उत्पन्न करेगा। परिणामी दबाव दिक् के विस्तार की प्रवृत्ति को रोकने में गुरुत्व बल की अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्रों में सहायता करेंगे। इस प्रकार निश्चित आकार के क्षेत्र संकुचित होकर और छोटी इकाइयों में, जिन्हें हम मंदाकिनियाँ कहते हैं, टूट जाएँगे।

यह विचार 10 करोड़ प्रकाश वर्षों के विस्तार वाली अपेक्षाकृत बड़ी मंदाकिनिओं तक ले गया। मंदाकिनी-समूहों के रूप में पदार्थ के असमांगिक पिण्ड पचास के दशक में भी ज्ञात थे। परन्तु सिद्धांत की अपेक्षा के रूप में विराट-पिण्डों (सुपर क्लस्टर्स) की क्या स्थिति थी? मुझे स्मरण आता है साठ के प्रारंभिक

[शेष पृष्ठ 13 पर]

प्रतिकैन्सर ओषधों के प्रभावों के अध्ययन हेतु एक नई देन : चुम्बकीय अनुनाद प्रतिबिम्बन

कु० नीता मंगल एवं डॉ० सुरेश चन्द्र आमेटा

कैन्सर एक घातक रोग है। विश्व की कई प्रयोग शालाओं में रसायनज्ञ खोज में लगे हुए हैं कि कोई ऐसी ओषधि निकल जाये जिससे इस रोग की प्राण-घाती जकड़न से प्राणीमात्र को छुटकारा दिलाया जा सके। किसी भी नई ओषधि का कैन्सर पर प्रभाव होता है या नहीं, यह जानने के लिये लगभग तीन सप्ताह का समय लग जाता है। तब तक कुछ परिस्थितियों में काफी देर हो चुकी होती है और चिकित्सक हाथ मलने के सिवाय कुछ नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में आवश्यकता है, किसी ऐसी विधि की जो कम से कम समय में और कैन्सर की छोटी से छोटी ट्यूमर कोशिका के बारे में सूचना दे सके। इसी प्रयास में अमेरिका के टेक्सॉस केन्द्र की लक्षित निदान एवं ओषधीय प्रयोगशाला (Laboroa. tory of torgeted diagnosis and therapy) में रोगविज्ञान के सहायक प्राध्यापक तथा निदेशक डॉ० एफ० डेविड रेनि को अप्रत्याशित सफलता मिली।

'फेडरेशन ऑव अमेरिकन सोसाइटी फॉर एक्स-पेरीमेंटल बायलोजी' के वाशिंगटन में आयोजित सम्मेलन में डॉ० रेनि ने एक नई विधि "चुम्बकीय अनुनाद प्रतिबिम्बन" के बारे में बताया। इस विधि से सुई की नोक के बराबर ट्यूमर पर किसी ओषधि का प्रभाव 30 घंटे के अन्दर जाँचा जा सकता है। कीमोथेरापी कैन्सर विशेषज्ञों के लिये एक महत्वपूर्ण औज़ार है, परन्तु इसकी क्षमता उस समय प्रमाणित हो जाती है जब कोई कारक या कारक-समूह रोगी के ट्यूमर पर इस तरह कार्य करता है कि कोई ओषधि आंतरिक रूप से भी प्रभावित करेगी, यदि वह बाहरी रूप से भी प्रभावी है। तत्कालीन चिकित्सीय विधियों को यह बताने में लगभग तीन सप्ताह का समय लग जाता है कि कोई कारक ट्यूमर कोशिका के ऊपर प्रभावकारी है अथवा नहीं। इस कारण समय रहते ही बेहतर चिकित्सा नहीं की जा सकती है तथा ओषधि-प्रतिरोधक कोशिकाओं की संख्या में भी भरपूर वृद्धि हो जाती है।

डॉ० रेनि ने बताया कि उन्होंने एक चुम्बकीय धातु गैडोलीनियम (Gd) को एक कुलीरक डाइएथि-लीन ट्राइएमीन पेन्टा-एसीटिक अम्ल (डी टी पी ए) तथा डेक्स्ट्रॉन बहुलक के साथ एक स्वास्थ्यकर रंजक बनाने के लिये जोड़ा जो कि Gd–डी टी पी ए-टेक्स्टॉन के नाम से जाना जाता है। गैंडोलीनियन चुम्बकीय अनुनाद प्रतिबिम्बन की छाया को जहाँ और भी उज्जवल बना देता है, वहीं डी टी पी ए धातु तत्व मानव शरीर में जमा होने से रोकता है जब कि डेक्स्ट्रॉन बहुलक अपने आकार के कारण उस रंजक को अत्यधिक स्पन्जी कोशिकाओं में जमा होने में सहायता करता है जैसे कि कैन्सर ग्रस्त कोशिकाएँ।

इसी अध्ययन में डॉ० रेनि और उनके सहकर्मियों ने डलास में टेक्सॉस विश्वविद्यालय के स्वास्थ्य विज्ञान केन्द्र में कुछ चूहों में मानव कैन्सर कोशिकाएँ प्रविष्ट करायी। उपरोक्त वर्णित रंजक को शरीर में प्रवेश करने के पहले चुम्बकीय अनुनाद प्रतिबिम्बन द्वारा सूक्ष्म परीक्षण में सजातीय धूसर ट्यूमर द्रव पाये गये। रंजक को शरीर में अन्त:शिरीय रूप से प्रविष्ट कराने के बाद चुम्बकीय अनुनाद प्रतिबिम्बन की छाया ट्यूमर के सभी प्रभावित क्षेत्रों में ज्यादा चमकदार दिखाई दी। इसकी पुष्टि विशेष ऊतिकीय अभिरंजन से भी की गयी।

इस प्रायोगिक समूह के चूहों को बाद में डिप्थी-

रसायन विज्ञान विभाग, विज्ञान महाविद्यालय, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर—313001

रिया के विषाणु दिये गये। ऐसा पाया गया कि ये विषाणु चयन करके मानव कैन्सर कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं। यह प्रभाव उन कोशिकाओं पर पड़ा जो इनकी ग्राहक थीं, परन्तु यह चूहों पर कोई असर नहीं करती थीं। उन लघु क्षेत्रों में जहाँ इन विषाणुओं ने ट्यूमर कोशिकाओं को पूरी तरह नष्ट नहीं किया, वहीं जीवित बची कोशिकाओं ने उपापचयी उत्पाद प्रत्युत्पन्न कर दिये जिन्होंने रक्त-प्रवाह करने वाली वाहिकाओं को और छितरा दिया। इस प्रकार और भी ज्यादा मात्रा में ये रंजक रक्त-वाहिकाओं में से निकल कर ट्यूमर में चले जाते हैं।

इसके विपरीत मृत ट्यूमर क्षेत्र के अन्दर रक्त-प्रवाह लगभग रुक-सा जाता है। इस प्रकार विरोधी रंजक इस क्षेत्र में प्रतिबाधित हो जाते हैं तथा चुम्बकीय अनुनाद प्रतिबिम्बन के सूक्ष्म निरीक्षण में ये क्षेत्र काले रंग के दिखने लगते हैं।

खोजकर्त्ताओं ने इस बात की पुष्टि भी की है कि ट्यूमर कोशिका की छाया की तीक्ष्णता में परिवर्तन तथा इलाज के अनुसार प्रभावित क्षेत्रों की स्थिति में परिवर्तन, विरोधी रंजक के बाहरी व आन्तरिक परीक्षण एवं ट्यूमर के ऊतक को रोग के निदान में सहायक पाया जाता है।

साधारणतया स्वास्थ्य केन्द्रों पर एक्स-किरणों की मदद से पहचानी जाने वाली कोशिकाओं की तुलना में यह विधि 100 गुना छोटी रोग ग्रस्त कोशिकाओं को पहचान सकने में समर्थ पायी गयी है, जो कि कैन्सर रोगी के लिये वरदान प्रमाणित हुई है। इस विधि से एक मीलीमीटर से भी कम व्यास के ट्यूमर को आसानी से पहचाना जा सकता है।

जब विषाणुओं की इतनी मात्रा दी गयी ताकि ट्यूमर कोशिकाएँ तुरन्त ही नष्ट हो जायें, तब यह पाया गया कि चुम्बकीय अनुनाद प्रतिबिम्बन परीक्षण के समय वहाँ एक भी चमकीला क्षेत्र नहीं है। इस प्रकार इस अध्ययन में सभी चूहे ट्यूमर से मुक्त हो गये।

इस विधि का प्रयोग विकिरण चिकित्सा के प्रभाव को ज्ञात करने के लिये डिप्थीरिया विषाणुओं के अलावा अन्य ओषधियों के लिये भी किया जा सकता है। डॉ० रेनि का सोचना है कि अगले तीन वर्षों के अन्दर यह विधि चिकित्सकों के लिये उपलब्ध हो जायेगी। □□

[पृष्ठ 21 का शेषांश]

अतः चिकित्सा विज्ञानियों का कहना है कि कैंसर की पहचान शरीर में काम न कर रही कोशिकाओं की पहचान से काफी शुरू में ही की जा सकती है।

ध्वनि तरंगों के ऊपर नित्य नये-नये अनुसंधान हो रहे हैं। यह अभी एकदम नया क्षेत्र है। शरीर के अन्दर ध्वनि तरंगे भेजने और उनके व्यवहार की पूरी जानकारी अभी नहीं हो पायी है। नये प्रयोगों के मॉडल, पिछले प्रयोगों के आधार पर ही तय करते हैं। अभी हमें कोशिकाओं के आकार के हजारवें भाग से तीस हजारवें भाग तक की जानकारी इस विधि से मिल जाती है। लेकिन इस क्षेत्र में अभी अनुसंधान की काफी गुंजाइश है।

एटॉमिक रेडिएशन का काफी पहले से कैंसर के इलाज के लिए प्रयोग हो रहा है। माइक्रोकम्प्यूटर की मदद से यह पता लगाया जाता है कि रेडिएशन का प्रभाव ऊतकों पर कैसे व क्यों पड़ता है। अभी तक के प्रयोगों के द्वारा इस कम्प्यूटरयुक्त उपकरण की नब्बे प्रतिशत क्षमता का प्रमाण मिलता है। कम्प्यूटर उपकरणों द्वारा सबसे घातक कैंसर यानि जिगर के कैंसर और थायराइड के ऊतकों की पहचान में 99 प्रतिशत सफलता मिली है।

ध्वनि तरंगे तो अब शल्य-चिकित्सकों का भी कार्य कर रही हैं। एक्स किरणों एवं ध्वनि तरंगो की मदद से बगैर शल्य-चिकित्सा किये पथरी जैसे रोगों का इलाज होने लगा है। यह विधि पिछले वर्ष अप्रैल में विश्व बाजार में आयी, लेकिन अभी इसके द्वारा भारत में बम्बई में ही इलाज हो रहा है। ध्वनि तरंगों द्वारा इस प्रकार का इलाज सामान्य शल्य-चिकित्सा के मुकाबले कई मायनों में लाभदायक है। न इसमें दर्द होता है न ऑपरेशन (शल्य-क्रिया) का लफड़ा, न रक्त की क्षति होती है और न ही अलग से अतिरिक्त रक्त की व्यवस्था करनी पड़ती है। इस इलाज में कुल तीन घण्टे लगते हैं जिसमें तरंगें छोड़े जाने के 40 मिनट भी शामिल हैं और तीसरे दिन ही अस्पताल से छुट्टी मिल जाती है। बगैर ऑपरेशन के ध्वनि तरंगों से पथरी का इलाज करने वाली इस कम्प्यूटर चालित मशीन का नाम है–लिथोट्रिप्टर। इस शब्द की उत्पत्ति लिथोट्रिप्सी सब्द से हुई है। लिथोट्रिप्सी का अर्थ है आघात तरंगें (जो वास्तव में ध्वनि तरगें ही होती हैं) से पेट के अन्दर की भंगुर पथरी चूर-चूर करना।

आज यू० टी० सी० पद्धति कैंसर के पहचान में सबसे अधिक विश्वसनीय, उपयुक्त और सफल है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इस दिशा में यह अंतिम पड़ाव है। निश्चित ही इससे भी बेहतर तकनीक खोजी जा सकती है। □□

कम्प्यूटरी आवाज़ से होगी कैंसर की पहचान

राजेन्द्र कुमार राय

निकट भविष्य में कैंसर का इलाज ध्वनि तरंगों से होगा। कैंसर एक ऐसी भयावह और प्राणघातक व्याधि है, जिससे लम्बे समय से मानव ग्रस्त है। सीधे शब्दों में कहा जा सकता है कि कैंसर मानव शरीर में होने वाला एक प्राणघातक फोड़ा है, जिसका प्राचीन आयुर्वेद में "कर्कट" नाम से उल्लेख किया गया है। कई शोधों, खोजों और अनुसंधानों के बाद भी अभी तक इसका कोई मुकम्मल इलाज नहीं खोजा जा सका है। वैज्ञानिकों और चिकित्सकों का कहना है कि अगर कैंसर की पहचान समय रहते हो जाये तो प्रत्येक वर्ष लाखों लोगों को मौत से बचाया जा सकता है।

प्रारम्भ से ही कैंसर की पहचान करने के तरीके ज़ोरों से खोजे जा रहे हैं। नित्य नये-नये शोध हो रहे हैं। बिना सर्जरी के कैंसर की पहचान का कोई तरीका अभी तक नहीं था। पिछले दिनों इस दशा में एक सफलता मिली है। अल्ट्रासोनिक टिश्यू करैक्टराइजेशन (यू० टी० सी०) इस नई विधि का नाम है, जिससे ध्वनि तरंगों की सहायता से कैंसर की पहचान की जा सकेगी। ध्वनि तरंगे जब बीमार कोशिकाओं के समूह (ऊतकों) से टकरा कर लौटती हैं तो उनमें कुछ परिवर्तन आ जाता है। इन्हीं परिवर्तनों से ऊतकों की गहराइयों में चल रही कोशिकीय उथल-पुथल का अनुमान किया जा सकता है। यू० टी० सी० इसी दिशा रेखा पर काम करती है।

कैंसर की एक खास बात यह है कि काफी समय तक यह रोग भीतर ही भीतर बिना किसी प्रकार का कष्ट दिये बढ़ता ही चला जाता है। मरीज़ का ध्यान जब इस पर जाता है तब तक काफी देर हो चुकी होती है और रोग लगभग लाइलाज हो चुका होता है।

हिस्टोग्रॉफ एक ऐसा नक्शा है जो ध्वनि तरंगों से शरीर के भीतर के हिस्सों के ऊतकों के बारे में पूरी जानकारी देता है। अगर किसी व्यक्ति के पूरे शरीर का हिस्टोग्रॉफ तैयार किया जाये तो यह पता लग जाता है कि उसके शरीर में कहीं भी कैंसर होने की आशंका है कि नहीं।

इसके पक्ष में एक सुखद बात यह है कि इस विधि में सारा काम बगैर एक बून्द खून बहाये या बगैर एक सेन्टीमीटर भर काटे हो जाता है। यह ऐसी ध्वनि तरंगों से होता है, जिसे हमारे कान सुन नहीं सकते हैं। यानि उनकी तीव्रता काफी कम होती है। वास्तव में, इस विधि में ध्वनि विज्ञान को बहुत परिष्कृत रूप में उपयोग में लाया जाता है। इसलिए ध्वनि तरंगे काफी सावधानी के साथ भेजी जाती हैं। बहुत तेज़ गति से भेजी गयी ध्वनि तरंगें वापस नहीं लौटती हैं। इसका कारण यह होता है कि भेजी गयी ध्वनि तरंगों में कुछ ऊतकों द्वारा सोख ली जाती हैं। कुछ विभिन्न प्रकार के कोणों में फैल जाती हैं। यह सब कुछ बहुत संवेदनशील और अच्छे उपकरणों में रिकार्ड हो जाता है। इसी रिकार्ड के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि शरीर के कौन से भाग के ऊतकों में गड़बड़ी है। यह तकनीक दूसरे शब्दों में शरीर के भागों का आंतरिक दूरदर्शन है।

इन ध्वनि तरंगो को भेजने में काफी सावधानी बरती जाती है क्योंकि इनको भेजने में जरा सी ग़लती का अर्थ है—ज़िदगी और मौत का फैसला। हमारा शरीर करोड़ों कोशिकाओं से मिलकर बना है। शरीर की प्रत्येक कोशिका का अपना अलग-अलग महत्व है। कुछ कोशिकाएँ तो इतनी छोटी होती हैं कि उन्हें केवल काफी उच्चशक्ति वाले माइक्रॉस्कोप से ही देखा जा सकता है। लेकिन इन करोड़ों कोशिकाओं में से किसी भी एक के कार्य न करने का अर्थ है कैंसर।

[शेष पृष्ठ 20 पर]

द्वारा प्रतिभा प्रकाशन, निकट वैशाली होटल, बलिया (उ० प्र०)—277001

संचार उपग्रह : विकास और उपयोग

विष्णु दत्त शर्मा

एक समय था जब देश-विदेश में समाचारों को भेजने की व्यवस्था कबूतर नामक पक्षी के द्वारा की जाती थी और प्रेम-पत्रों को निर्दिष्ट स्थान तक आकाश मार्ग से ले जाने तथा वहाँ से प्रत्युत्तर लाने के लिए कबूतर को प्रशिक्षित किया जाता था। किन्तु आज वैज्ञानिक युग है और समाचार-विचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रेषणार्थ उपग्रहों का प्रयोग किया जाने लगा है। अखबारों, रेडियो एवं दूरदर्शन समाचारों में भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह, जिसे संक्षिप्त में "इनसैट" भी कहते हैं, की काफी चर्चा है। "इनसैट" भारत का प्रथम घरेलू उपग्रह है।

भारत में उपग्रह संचार-प्रणाली ने संचार के क्षेत्र में एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और इसकी अभूतपूर्व संचार-क्षमता ने समाज को हर प्रकार से प्रभावित किया है। संचार-प्रणाली की दक्षता एक राष्ट्र के तकनीकी एवं भौतिक विकास का मापदंड है। जिस प्रकार वायुयान के उपयोग ने संसार के परिवहन क्षेत्र में मौलिक क्रांति को जन्म दिया, उसी प्रकार अंतरिक्ष-तकनीकी के विकास ने संचार-प्रणाली को आधारभूत नई दिशा प्रदान की है। पर विडंबना यह है कि जिसकी सम्पूर्ण उपलब्धियों को अभी तक पूर्णरूपेण समझा नहीं जा सका है।

विश्व में उपग्रह संचार-प्रणाली का विकास बढ़ता चला जा रहा है और इसकी नई दिशाओं पर विकास एवं शोध-कार्य सभी कार्यशील देशों में चल रहे हैं। उपग्रह संचार-प्रणाली का विकास सन् 1957 ई० के उपरांत अबाध गीत से होता चला आया है। कृत्रिम सैटेलाइट के रूप में सोवियत संघ ने सन् 1957 में स्पुतनिक—1 पहली बार अंतरिक्ष में उतारा। उसके बाद से क्रमशः विभिन्न आकार-प्रकार वाले विशेषताओं और जटिल वैज्ञानिक गुणों को समेटे हुए उपग्रह पृथ्वी की कक्षा में छोड़े गए। यूं तो उपग्रह द्वारा संचार की परिकल्पना आर्थर सी० क्लार्क ने सन् 1945 ई० में प्रकाशित एक लेख में की थी किन्तु अंतरिक्ष में प्रयुक्त होने वाली इलैक्ट्रॉनिक तकनीकों का विकास न होने के कारण उनकी भविष्यवाणी को सफलीभूत होने में अनेक वर्ष लग गए।

भारत में उपग्रह संचार का आविर्भाव सन् 1965 ई० में हुआ जब प्रथम प्रायोगिक भू-उपग्रह संचार केन्द्र (इस्केस) अहमदाबाद में बनाया गया। इसका निर्माण संयुक्त राष्ट्र कार्यक्रम के अन्तर्गत हुआ। उपग्रह दो प्रकार के होते हैं—(1) सक्रिय उपग्रह, और (2) निष्क्रिय उपग्रह।

निष्क्रिय उपग्रह एक परावर्त्तक की भाँति कार्य करते हैं और भूतल से प्रेषित संकेतों को पृथ्वी की ओर परावर्तित करते हैं। इनमें किसी प्रकार के सक्रिय इलैक्ट्रॉनिकी अवयवों का प्रयोग नहीं होता। निष्क्रिय परावर्त्तकों द्वारा प्रयोगात्मक संचार सम्बंध स्थापित करने में वैज्ञानिकों ने सफलता प्राप्त की थी, जिसके अन्तर्गत चन्द्रमा का उपयोग सन् 1954 में तथा अल्यूमिनियम-लेपित गुब्बारों का उपयोग सन् 1960 ई० में किया गया था। निष्क्रिय उपग्रह किफ़ायती, साधारण और विश्वसनीय होते हैं। इनको अन्तरिक्ष में रहने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करना होता और इनमें न ही किसी यंत्र के विफल होने की आशंका रहती है, इसी कारण ये उपग्रह अनिश्चित काल के लिए कार्य कर सकते हैं।

प्रथम प्रायोगिक निष्क्रिय संचार उपग्रह इको-1 एक हज़ार मील वाली कक्षा में अगस्त 1960 ई० में छोड़ा गया था, जिसका आकार एक गुब्बारे के समान था और उसका व्यास सौ फुट था। इसका प्रयोग दूर-दूर तक ध्वनि, संगीत एवं दूरदर्शन संकेतों का प्रेषण करने के लिए किया गया। निष्क्रिय उपग्रह का मुख्य दोष यह है कि अभिग्राही भू-केन्द्र पर उपयोगी संकेत (सिग्नल) प्राप्तार्थ प्रेषक भू-केन्द्र से बहुत अधिक शक्तिशाली सिग्नल के प्रेषण की आवश्यक्ता पड़ती है।

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली

सक्रिय उपग्रह में संकेतों को अभिग्रहण तथा प्रेषण करने के लिए रेडियो साधन होते हैं। इन संचार उपग्रहों की ऊँचाई निष्क्रिय उपग्रहों की तरह असीमित होती हैं। इन उपग्रहों में अनेक समस्याएँ आती हैं और सबसे प्रमुख समस्या इसकी विश्वसनीयता है। एक सक्रिय उपग्रह में एक या एक से अधिक प्रेषित्र और अभिग्राही होते हैं। यह साधन राकेट द्वारा कक्षा में स्थापित किए जाते हैं। इन उपग्रहों का मुख्य लाभ प्रेषित्र शक्ति की अत्यधिक बचत है। एक बहुत बड़े निष्क्रिय उपग्रह की अपेक्षा एक बहुत छोटे सक्रिय उपग्रह प्रेषित्र से कहीं अधिक सिग्नल पावर अभिग्रह की जा सकती है। यही कारण है कि सक्रिय उपग्रह अधिक प्रचलित हुए हैं।

$$\text{प्रेषित्र शक्ति} = \frac{\text{अभिग्रहित शक्ति} \times (\text{उपग्रह की ऊँचाई})^4}{(\text{उपग्रह का व्यास})^4}$$

मूल रूप से संचार उपग्रह अंतरिक्ष में रखा हुआ एक रिपीटर स्टेशन होता है। माइक्रोवेव संचार प्रणाली और उपग्रह संचार प्रणाली में अंतर केवल इतना है कि माइक्रोवेव संचार प्रणाली में 60 कि० मी० की दूरी पर अनेक रिपीटर स्टेशनों का प्रयोग होता है और यह सभी रिपीटर स्टेशन पृथ्वी पर स्थित होते हैं। उपग्रह संचार प्रणाली में केवल एक रिपीटर स्टेशन का प्रयोग होता है तथा यह पृथ्वी से 3600 कि० मी० की दूरी पर अंतरिक्ष में स्थापित किया जाता है। संचार उपग्रहों का सर्वाधिक लाभ यह है कि ये पृथ्वी के विशाल क्षेत्र में संचार व्यवस्था स्थापित कर सकते हैं। एक संचार उपग्रह पृथ्वी के एक तिहाई भाग में संचार व्यवस्था कर सकता है। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक साथ संचार व्यवस्था स्थापित करने के लिए तीन उपग्रहों (देखें चित्र) की आवश्यक्ता पड़ती हैं।
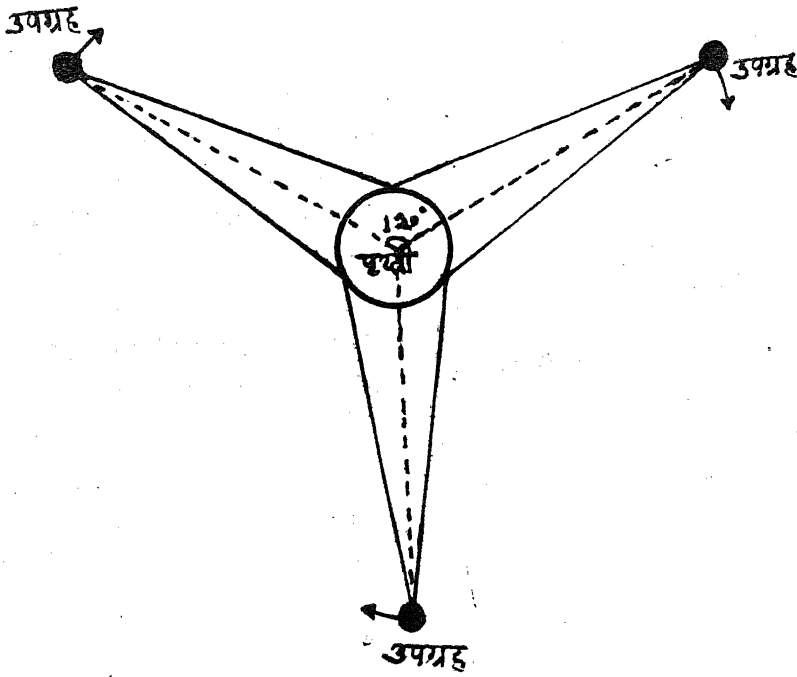
संचार उपग्रह के संदर्भ में अन्तरिक्ष कक्षाओं का बड़ा महत्त्व है। किसी संचार उपग्रह की उपयोगिता इस बात पर निर्भर करती है कि उपग्रह किस कक्षा में स्थापित किया गया है। कक्षा में विभिन्न बलों के संतुलन के कारण उपग्रह नीचे नहीं गिरता और यही कारण था कि प्राचीन भारत के मनीषियों ने अंतरिक्ष में त्रिशंकु-स्थापना की कल्पना की थी क्योंकि बलों के विषय में छान्दोग्योपनिषद् (7-8-1) में वर्णित है—

"बलेन वे पृथिवीतिष्ठति बलेनान्तरिक्ष बलेन द्योर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन यशवश्च वयांसि च तृणवनस्यतय: श्वापदान्या कीट पतंगपिपीलिकं बलेन लोकस्तिष्ठति।"

[अर्थात बल से ही पृथ्वी स्थित है, बल से ही अंतरिक्ष, बल से ही द्युलोक, बल से ही पर्वत, बल से ही देवता और मनुष्य, बल से ही पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, श्वापद तथा कीट-पतंग एवं पिपीलिका पर्यंत समस्त प्राणी स्थित हैं तथा बल से ही लोक स्थित है]

इसके अतिरिक्त उपग्रह का पृथ्वी पर न गिरने का कारण यह भी है कि उपग्रह पृथ्वी के चारों ओर किसी विशिष्ट गति से चक्कर लगाता है। यह गति इतनी होती है कि उपग्रह पर लग रहे गुरुत्वाकर्षण बल को निष्प्रभावी कर देती है। यह गति उपग्रह की पृथ्वी से दूरी (ऊँचाई) के अनुसार बदलती रहती है। यदि उपग्रह पृथ्वी के समीप होगा तो उस पर गुरुत्वाकर्षण बल अधिक लगेगा और इसलिए उपग्रह की गति भी अधिक होगी। गति के बदलने से उपग्रह का कक्षीय समय भी बदलता है। उपग्रह पृथ्वी के जितना समीप होगा, उसका कक्षीय समय उतना ही कम होगा। निम्न सारणी में अलग-अलग कक्षीय ऊँचाइयों पर कक्षीय समय दर्शाया गया है—

उपग्रह की पृथ्वी से ऊँचाई	कक्षीय समय
1. 100 कि० मीटर	1 घंटा 26 मिनट
2. 500 ,,	1 ,, 34 ,,
3. 1000 ,,	1 ,, 45 ,,
4. 10,000 ,,	5 ,, 47 ,,
5. 35,860 ,,	23 ,, 58 ,,
6. 36,000 ,,	24 ,, 06 ,,

विभिन्न उपयोगों के कारण उपग्रहों को अलग-अलग ऊँचाइयों पर छोड़ा जाता है। 200-500 कि० मी० ऊँचाई से पृथ्वी पर उपग्रह की दृष्टिगोचरता बहुत अल्प समय के लिए ही होती है। अतः यह कक्षा दूर संचार हेतु उपयुक्त न होकर अंतरिक्ष विज्ञान संबंधी अध्ययनों के लिए उपयोगी है। सुदूर-संवेदन के लिए उपग्रह की ऊँचाई 100 कि० मी० की जाती है। 36,000 कि० मी० की ऊँचाई पर उपग्रह का प्रयोग दूर-संचार के लिए किया जाता है। भारत के लिए उपग्रह संचार प्रणाली का महत्त्व दूर-संचार के अतिरिक्त सुदूर क्षेत्रों तक टेलीविजन सेवा को भी पहुँचाना है। सुदूर क्षेत्रों में टेलीविजन कार्यक्रम की बढ़ती लोकप्रियता सन् 1975 में किए गए उपग्रह शैक्षणिक दूरदर्शन परीक्षण से सिद्ध हो चुकी है। दूर-दराज़ के पिछड़े क्षेत्रों में इस प्रणाली को शिक्षा हेतु लाभप्रद बनाया जा सकता है। कृषि के क्षेत्र में भी उपग्रह संचार प्रणाली एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

उपग्रह संचार प्रणाली अनेक टेलीफोन, टेलीविजन तथा अन्य प्रकार के चैनलों के एक साथ प्रेषण एवं अभिग्रह की क्षमता रखती है। इसका उपयोग सुदूर क्षेत्रों के लोगों को स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करने में किया जाता है। उपग्रह के माध्यम से दूर दराज़ में स्थित किसी रोगी के शरीर के कुछ विशिष्ट आँकड़े किसी शहर के अस्पताल के विशेषज्ञ को भेजे जा सकते हैं। इस प्रकार विशेषज्ञ उपग्रह के माध्यम से उचित परामर्श दे सकता है। आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञ उस दूर के रोगी का अपने अस्पताल में बैठे हुए एक्स-रे भी ले सकता है। उपग्रह द्वारा हृदय की गति एवं नाड़ी-गति को भी अध्ययन द्वारा ज्ञात कर लिया जाता है। भारत में उपग्रह के माध्यम से अनेक गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन किया जा चुका है। उपग्रह संचार-प्रणाली प्राकृतिक संकट में भी लाभदायक सिद्ध हो चुकी है। कुछ वर्ष पूर्व वर्मा के जंगलों में लगी आग का विवरण सर्वप्रथम भारत ने ही उपग्रह की सहायता से दिया था। मौसम की जानकारी आप सभी प्रतिदिन उपग्रह द्वारा प्राप्त टेलीविजन के माध्यम से देखते ही हैं। □□

चीनी खेत में बनती है

डॉ० कन्हैयालाल

गन्ने के तने में चीनी का बनना व संचयन एक महत्वपूर्ण अवस्था है। यह क्रिया कार्बन डाइ ऑक्साइड के छः अणु और पानी के एक अणु के मिलने से शुरू होती है। इससे प्राथमिक चीनी का एक अणु और पानी के छः अणु बनते हैं। यह प्रक्रिया गन्ने के पत्तियों के क्लोरोफिल में सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में सम्पन्न होती है। इसमें विकीर्ण ऊर्जा रसायनिक ऊर्जा में स्थान्तरित होती है। इस प्रक्रम को 'प्रकाश संश्लेषण' कहा जाता है।

संग्रहित शर्करा जिसका कि गन्ने के पौधों द्वारा ऊर्जा के उत्पादन में कोई उद्योग नहीं होता है, वह पौधे में एक शुष्क पदार्थ के रूप में जमा होती है और शर्करा के रूप में स्थिति ऊर्जा (पोटेन्शियल एनर्जी) की तरह संचित होती है। पत्तियों का ग्लूकोज प्रथम अवस्था में ईक्षु शर्करा (सुक्रोज) तथा बहुशर्करा (पालीसेकेराइड) परिवर्तित होकर पौधों को बढ़ाता है। **जब ग्लूकोज व सुक्रोज गन्ने की पत्तियों से तने में स्थान्तरित होती है, तब सुक्रोज गन्ने के निचले भाग में जमा होती रहती है। इस क्रिया को गन्ना पकने की क्रिया (राइपिनिंग) कहा जाता है। ग्लूकोज गन्ने की नई गाँठों में अधिकतम होती है लेकिन जैसे-जैसे गाँठे पुरानी होती जाती है, वैसे-वैसे इसकी मात्रा कम होती जाती है। पूर्ण तौर पर परिपक्व गन्ने में केवल ऊपरी हिस्से को छोड़कर शेष भागों में ग्लूकोज बिल्कुल नहीं रहता है।**

किसी भी जाति के गन्ने की अधिकतम उपज तभी प्राप्त की जा सकती है जबकि गन्ना काटने के समय वह भली-भाँति परिपक्व हो। गन्ने की परिपक्वता पर वर्षा, तापमान, आर्द्रता, मृदा एवं उर्वरा स्तर का विशेष प्रभाव पड़ता है। चीनी उपलब्धि की वांछित प्रतिशत मात्रा में वृद्धि व गिरावट तत्कालीन वातावरण द्वारा प्रभावित होती है। ठन्डे मौसम की लम्बी अवधि से गन्ने की वृद्धि रुक जाती है और ईक्षु शर्करा (सुक्रोज) संचय में वृद्धि होने लगती है।

35 डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक तापमान होने पर ईक्षु शर्करा (सुक्रोज) का ग्लूकोज तथा फ्रक्टोज में प्रत्यावर्तन होने लगता है, जिससे पौधे में संचित चीनी कम होने लगती है। भारत के समुद्र तक की पूरे वर्ष की सम जलवायु तथा अधिक उर्वरा युक्त मृदा गन्ने में समान परिपक्वता की प्रतिकूल दशाएँ हैं। इसी प्रकार वर्ष के उन दिनों में जब गन्ने स्वाभाविक रूप से परिपक्व न हों तथा अपेक्षाकृत कम अवस्था के हों और उन्हें काटना आवश्यक हो, अथवा लगातार वर्षा के कारण चीनी की प्रतिशत मात्रा कम होने की सम्भावना हो, तो परिपक्वता दायक रसायनों के उपयोग द्वारा कृत्रिम रूप से गन्ना पका कर ईक्षु शर्करा (सुक्रोज) में वृद्धि की जा सकती है।

उत्तर प्रदेश में साधारणतया गन्ने की फसल की बढ़वार अक्टूबर तक होती रहती है। नवम्बर से मार्च तक की अवधि गन्ने की परिपक्वता की होती है। मार्च के बाद उसमें 'इनवर्जन' के कारण चीनी की मात्रा घटने लगती है। यही कारण है कि प्रदेश की चीनी मिलें न तो दिसम्बर के पूर्व पेराई आरम्भ करना चाहती हैं, और न ही मार्च/अप्रैल के बाद पेराई जारी रखना चाहती हैं। मिलों की पेराई सत्र बढ़ाने में, जिससे कि वे बिना किसी नुकसान के अधिक से अधिक मात्रा में गन्ना पेर सकें, परिपक्वता बर्धक रसायनों की एक महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

लगभग 300 से अधिक गन्ने की परिपक्वता वर्धक रसायनों का चुनाव किया गया जिसमें मुख्य 2-4—डाइक्लोरोफेनाक्सीएसिड (2-4—डी), पोलारिस (एन-विस फास्फॉनोमेथाइल ग्लाइसीन) साइकोसेल (2—क्लोरोइथाइल फास्फोरिक एसिड) सी० पी०—41845, सोडियम मेटासिलीकेट, बेयर-

वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी, गेंदासिंह गन्ना प्रजनन एवं अनुसंधान संस्थान, सेवरही पो०—तमकुही राज, जिला देवरिया।

6159, टैफीजीन, जी०-एस० 21, जी० एस० 4921, बेनेडियमसल्फेट, जिबेरेलिक एसिड, सिलिकॉन, सेन्ट्रीमाइड, (सेटिल्ट्री ट्राइमेकाइल अमोनियम ब्रोमाइड), हयामीन 1622 (डाइआइसो व्यूटाइल फिनॉक्सी इथाक्सी इथाइल डाइमिथाइल बेन्जिल अमोनियम क्लोराइड) नैरमा इसीमा-ए आरियोफार्जिल, साइक्लोसेरिन, मैग्नामाइसिन, नियास्टेम, स्ट्रिप्टो-माइसिन सल्फेट रिफामाइसिन, नोबोवायोसिन, नियोमाइसिन, राइपेन्थाल, सुकरोल 59-जी, डालायान और रेकूजा इत्यादि हैं।

आवश्यकता अविष्कार की जननी होती है। दक्षिण भारत के समुद्रतटीय प्रदेशों में जहाँ परिपक्वता एक समस्या बनी रहती है, वहाँ सर्वप्रथम परिपक्वता पर अध्ययन शुरू किया गया। परिणामस्वरूप 2,4-डी को गन्ने की रस की किस्म के लिए लाभप्रद पाया गया है। साथ ही साथ साइकोसेल के उपयोग से को० 6314 एवं को० 419 के रस-गुण को सुधारा जा सकता है।

बड़े पैमाने पर सम्पन्न किये गये प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला है कि पोलारिस से 0.44 से 1.77 यूनिट की ईक्षु शर्करा (सुगर रिकबरी) में बढ़ोत्तरी हुई। आधुनिक अध्ययन से भी पता चला है कि पोला-रिस के उपयोग से अवकृत शर्करा स्तर, इनवर्टरेसिओ, रस-नत्रजन और नाइट्रोजन-फॉस्फोरस अनुपात कम हुआ।

यों तो उत्तरी भारत में गन्ने में परिपक्वता कोई जटिल समस्या नहीं है, लेकिन सुगर रिकबरी आदि के दृष्टिकोण से परिपक्वतावर्धक रसायनों का प्रयोग नितान्त आवश्यक है। गन्ना शोध संस्थान शाहजहाँपुर (अक्षांश 27.33° एन, देशान्तर 79.54° ई) पर सर्व प्रथम वर्ष 1967-70 तक 2-4 डी, साइकोसेल, तथा सीपी-41845 परिपक्वतावर्धक रसायन का उपयोग को० 1148 जाति पर किया गया जिससे निष्कर्ष निकला—(1) साइकोसेल (1000 पीपी एम) व सीपी–418451 (2500-5000 पीपी एम) ईक्षु शर्करा एवं रस की शुद्धता (प्योरिटी) को बढ़ाया जबकि 2,4–डी ने ठीक उलटा प्रभाव डाला। (2) शाहजहाँपुर परिस्थितियों में अक्टूबर माह में परिपक्वतावर्धक रसायन के पर्णीय छिड़काव का उत्तम समय पाया गया। (3) गन्ने का ऊपरी हिस्सा, निचले हिस्से की तुलना में अधिक प्रभावी रहा। (4) रसायनों का प्रभाव अपरिपक्व गन्ने पर विशेष रहा।

गन्ने की प्रजाति को० 1148 के पेड़ी पर परि-पक्वतावर्धक रसायन अकेले व सम्मिलित रूप से छिड़काव करने के पश्चात यह देखा गया कि पोलारिस इथ्रेल, साइकोसेल, 2,4–डी ईक्षु शर्करा की शुद्धता में वृद्धि तथा ग्लूकोज की मात्रा में घटोत्तरी होती है। तराई क्षेत्र में पुराने को० 1148 गन्ने पर 4 कि०ग्राम प्रति 1000 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर की दर से साइकोसेल का पर्णीय छिड़काव करने से उपचारित गन्ने में सुगर रिकबरी 0.89 प्रतिशत अधिक रही है।

आल इण्डिया कोआर्डिनेशन रिसर्च प्रोजेक्ट के अन्तर्गत पोलारिस 4 कि० ग्रा० प्रति हेक्टेयर का पर्णीय छिड़काव दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में करने के पश्चात 30दिन के अन्तराल पर 120 दिन तक रस-विश्लेषण करने से पता चला है कि पोलारिस का प्रभाव मार्च महीने तक अधिक रहता है। पोलारिस से 0.10 से 1.28 प्रति० ईक्षु शर्करा तथा 0.01 से 4.58 प्यो-रिटी (शुद्धता) तथा 0.01 से 0.09 प्रतिशत ग्लूकोज में घटोत्तरी हुयी।

सोडियम मेटासिलीकेट 4 कि० ग्राम की दर से तथा पोलारिस 5 कि० ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 2000 लीटर पानी में घोल बना कर 4 से 8 सप्ताह पूर्व गन्ने पर पर्णीय छिड़काव करने से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। सोडियम मेटासिलीसेट गन्ने में सुगर रिकबरी बढ़ाने में पोलारिस से कहीं अधिक प्रभाव-शाली रहा।

अतः गन्ने में चीनी परता बढ़ाने हेतु गन्ने के जमने से परिपक्वता अवधि तक जीव-रसायनिक अध्ययन करना आवश्यक है, जिसके तहत सुगर रिक-बरी बढ़ायी जा सकती है।

□□

इशारों ही इशारों में····

श्याम सरन विक्रम

अन्तरिक्षयानों के लिये आवश्यक यंत्रों-संयंत्रों के निर्माण दौरान चोटी के वैज्ञानिकों को सचमुच ही ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाने पड़ जाते हैं। धरा-गगन का मिलन वे ही तो करा सकते हैं। ऐसे निर्माणों बीच काफी बचत और छीजन भी इस योग्य रह जाती है कि उनके उपभोग द्वारा नित्योपयोगी उपकरणों में क्रान्तिकारी सुधार, परिवर्तन लाये जा सकें। इस दिशा में वैज्ञानिकगण सतत् प्रयत्नरत रहते हैं।

उदाहरणार्थ आप एक सपना संजोकर देखिए, वैज्ञानिक भरसक उसे सचकर दिखायेंगे। कल्पना कीजिये, एक परिचित व्यक्ति अस्पताल में पड़ा है, पक्षाघात से पीड़ित है, बिस्तर से लगा पड़ा है, अन्य भी एक-दो ऐसी तीव्र संक्रामक रोगों से पीड़ित है कि उसके सगे-सम्बन्धी गैर हो चुके हैं और उसे सहारा बस केवल तीन का है—नर्स, डॉक्टर और भगवान। इतने पर भी मन से हार न मानता उसे देखकर आप अचम्भित होंगे। वह आश्वस्त है और विश्वस्त भी कि उसका टिका हुआ मनोबल न केवल इस कसौटी से उसे उबार ले जायेगा बल्कि यथा समय वह नया स्वास्थ्य भी पा लेगा।

अब इसे कोरी कल्पना अथवा परीकथा न मानें। सचाई ये है कि वह रोगी पलंग पर पड़ा उच्छवास की एक फुसकार से, नीरोग पांव के अँगूठे की छोटी सी हरकत से, तनिक सिर घुमाने से, और तो और नेत्र-पलक झपका कर ही अपने पलंग का सिरहाना ऊँचा-नीचा कर सकेगा, दर्वाज़े, खिड़कियाँ, रोशनदान खोल-मूंद सकेगा, कमरे का ताप नियंत्रित कर सकेगा, टी० वी० का स्वर ऊँचा नीचा या बन्द कर सकेगा, पुस्तक का पृष्ठ पलट सकेगा, टेलीफोन डायल कर सकेगा···सब कुछ लेटे ही लेटे, बगैर हाथ पाँव हिलाये, इशारों ही इशारों में!

फोटो सेल तथा रिमोट कंट्रोल (दूर नियंत्रक) द्वारा कार के दर्वाज़े, गैराज का गेट, दोनों हाथ ट्रे में घिरे हों तो दफ्तर या किचन के बीच का दर्वाज़ा स्वतः खुलने वाली बातें तो इधर दशाधिक वर्षों से सपनों की दुनियाँ छोड़कर यथार्थतायें बन चुकी हैं। उसी शृंखला को आगे बढ़ाती ये नवोपलब्धियाँ आज कितने लाख लाखों को वरदान सिद्ध हो सकती हैं! परन्तु यह सब इतना सरल भी तो नहीं कि यहाँ लिख दिया और आपने पढ़ लिया! इन उपलब्धियों के पीछे वैज्ञानिकों की सूझ-बूझ और परिश्रम कितना अथक, कितना अथाह होगा, यह केवल अनुमान का ही विषय है।

अलबामा (अमेरिका) के हन्ट्सविले अस्पताल के एक विशेष निर्मित कक्ष में, एक विशेष ही निर्मित पलंग के इर्दगिर्द इन ऐलेक्ट्रॉनिक सुविधाओं को फिट करने का सफल प्रयोग किया जा चुका है। कमरे में स्थान-स्थान पर लगे संयंत्रों का संचालन एक मध्यस्थ इलेक्ट्रॉनिक यंत्र समूह से किया जाता है। प्रसिद्ध अमेरिकी अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान 'नासा' में कार्यरत जीवविज्ञान और चिकित्साविज्ञान के संयुक्त इंजिनियरों के एक दल ने इस कार्य को सम्पन्न किया है।

यह तो सर्वविदित है कि अन्तरिक्ष में उड़ रहे यान के अन्दर नाविकगण कहीं भाराधिक्य तो कहीं भारहीनता तथा अन्यान्य कारणों से अपनी इच्छानुसार हाथ-पाँव न हिला पाने के कारण कितने विवश रहते हैं! उन्हीं की सुविधार्थ इस लेख के प्रारम्भ में लिखी इलेक्ट्रॉनिक सुविधाओं की व्यवस्था रखी गयी थी। यह वैज्ञानिकों की सूझ-बूझ है कि वे सुविधायें भूतल पर भी अस्पतालों में उपलब्ध करा पा रहे हैं। □□

68, असिस्टेन्ट लाइन, बिरलानगर, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)—474004

जॉन बर्डन सेण्डरसन हाल्डेन

द्वारिका प्रसाद

जॉर्ज बर्नार्ड शा से किसी ने तीन महान् व्यक्तियों का नाम पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया—जी० बी शा, जार्ज बर्नार्ड शा एवं जी० बी० एस० । जे० बी० एस० हाल्डेन के बारे में यह बात बड़ी सटीक होगी । वे एक बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे और 20वीं शताब्दी के वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, मानवतावादी विचारकों तथा विभिन्न संस्कृतियों के प्रतिनिधि के रूप में हम उन्हें अग्रणी पाते हैं । सांख्यिकी, जैव-रसायन, आनुवंशिकी, मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, भारतीय दर्शन, साहित्य, इतिहास, मानव विज्ञान, अर्थशास्त्र, ब्रह्माण्ड-विज्ञान, भाषाओं का उद्गम, धर्मों के इतिहास, मधुमक्खियों का नृत्य आदि विविध विषयों में उनकी रुचि रही ।

'अभूतपूर्ण विविधता' उनके व्यक्तित्व व कृतित्व में देखने को मिलती है । अपनी मृत्यु के समय प्रकाशित जीवनी में हाल्डेन ने लिखा है : "मैंने हर जगह अपनी टाँग अड़ाई है और मुझे इसका अफसोस भी नहीं है । कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है कि अब से सौ साल बाद मुझे किस बात के लिये याद किया जायगा ।"

चूँकि उन्होंने अन्यान्य क्षेत्रों में योगदान किया है, यह कहना अत्यन्त कठिन है कि उनकी सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि क्या थी। फिर भी, यदि एक विषय चुनना पड़े तो यह कहा जा सकता है कि उनको आर० ए० फिशर तथा एस० राइट के साथ जैव-विकास के गणित-सिद्धान्त के संस्थापकों के रूप में सबसे अधिक याद किया जायेगा ।

हाल्डेन डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त की कतिपय कमजोरियों को दूर करना चाहते थे । जैसा कि सर्वविदित है डार्विन ने प्रमाणित किया कि आज के जीवों का विकास हर जाति के विशिष्ट निर्माण से नहीं वरन् प्रतीत में अति भिन्न जातियों से धीरे-धीरे अवतरण होकर हुआ । परन्तु 'योग्यतम की प्रतिजीविता' के सिद्धान्त से जहाँ यह तो सिद्ध हो पाया कि कुछ जातियाँ रह सकती हैं और कुछ समाप्त हो सकती है; "प्रतिजीविता के जन्म" के बारे में डार्विन का विकासवाद कोई प्रकाश नहीं डाल पाया । यह सम्भवतः इस लिये नहीं हो पाया कि आनुवंशिकता की प्रक्रियाओं की खोज शेष थी । विकास का अर्थ है जातियों के आनुवंशिक गुणों में परिवर्तन, इसलिये आनुवंशिकी के नियमों के बिना विकास प्रक्रिया का पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता था । यद्यपि इन नियमों की खोज मेण्डल ने लगभग उसी समय प्रारम्भ की थी जब डार्विन ने विकासवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, मेण्डल के आनुवंशिकता के सिद्धान्त वैज्ञानिकों को सन् 1900 के आसपास ही मालूम हुये । मेण्डल के अनुसार जीवों को सभी आनुवंशिक गुण बिना किसी परिवर्तन के एक जीव से दूसरे तीव में चले जाते हैं, क्योंकि इन गुणों के वाहक पृथक अविभाज्य कण होते हैं, जिन्हें 'जीन' कहते हैं । ये जीन बड़े जटिल संगठन वाले होते हैं, जो नकल करते हुये बढ़ते हैं और माता-पिता से संतान में अविभाजित इकाइयों के रूप में आते हैं । आनुवंशिकी के ये परमाणु, जीन, जीव की कोशिकाओं में बड़ी तरतीब से रहते हैं । सैकड़ों या हज़ारों जीन एक कतार में अति सूक्ष्म समूहों में बन्द रहते हैं । इन समूहों को 'क्रोमोसोम' कहते हैं, जो जोड़ों में रहते हैं । क्रोमोसोमों का एक सेट पिता से और दूसरा माता से बनता है । हाल्डेन ने आनुवंशिकता के सिद्धान्तों को गणित का अधार प्रदान किया तथा सांख्यिकी का इस्तेमाल करके अनेक दिलचस्प परिणाम प्राप्त किये । जनसंख्याओं के आनुवंशिक गुणों पर वरण, म्यूटेशन, प्रतियोगिता आदि प्रभावों के अध्ययन इनमें मुख्य थे । इस प्रप्रार वे यह सिद्ध करने में सफल हुये कि

मुख्य प्रशिक्षक, स्टाफ ट्रेनिंग सेन्टर, भारतीय स्टेट बैंक, इलाहाबाद

वरण का प्रभाव म्यूटेशन से कभी-कभी संतुलित हो जाता है। उन्होंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि जैविक विकास के पीछे मुख्य कारण प्राकृतिक वरण (नैचुरल सेलेक्शन) ही होता है, यद्यपि अपने माता-पिता से भिन्न संतान होने के कारण वरण के अतिरिक्त अन्य कारण भी होते हैं। आनुवंशिकी के अलावा तमाम अन्य क्षेत्रों में उन्होंने योगदान किया। इसमें उनकी अभूतपूर्व स्मरण शक्ति तथा कठोर प्रश्रिम की शक्ति के साथ-साथ व्यावहारिक दृष्टिकोण का भी काफी हाथ था। वे शतप्रतिशत पूर्णता के लिये परेशान नहीं होते थे। उनके अनुसंधानों में प्रायोगिक कार्य अधिक नहीं था, परन्तु अध्ययन, मनन, चिन्तन काफी गहन था।

हाल्डेन बचपन से ही विद्रोही थे। वे ब्रिटेन की राजनीति में भी विद्रोही थे और किसी से भी न दबते थे। 'स्वेज काण्ड' पर उन्होंने ब्रिटिश सरकार से नाराज़ होकर अपना देश छोड़कर भारत में बसने का निश्चय किया था। वे भारत और भारतीयों से बहुत पहले से प्यार करते थे। 1960 में वे भारतीय नागरिक बने और इस देश में तेज़ी से बढ़ते विज्ञान के विकास में योगदान किया। 1922-32 के बीच वे कैम्ब्रिज विश्व विद्यालय में जीव-रसायन (बायोकेमिस्ट्री) के रीडर रहे। 1932-36 में लंदन के आनुवंशिकी समाज के अध्यक्ष रहे, 1937-57 के मध्य लंदन विश्वविद्यालय में जीव आनुवंशिकी के प्रोफेसर रहे। 1959 से 1961 तक भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता में प्रोफेसर रहे तथा 1962 से 1 दिसम्बर 1964 (स्वर्गवास) तक आनुवंशिकी व जीव-सांख्यिकी प्रयोगशाला, भुवनेश्वर के निदेशक रहे। उन्होंने भारतीयों को यही पढ़ाया कि विज्ञान में निपुणता मूल्यवान यंत्रों से काम करके नहीं बल्कि साधारण हिसाब तथा प्रेक्षण से भी आ सकती है। अपनी स्वतन्त्र वृत्ति के कारण उन्होंने अनेक व्यक्तियों का विरोध मोल लिया क्योंकि वे अन्याय या सरकारी रुकावटों को चुपचाप सहन नहीं कर सकते थे।

बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न, निर्भीक, मानवीय मूल्यों के धनी, इस महान वैज्ञानिक की जन्म शताब्दी 5 नवम्बर, 1992 ई० को होगी— तब तक हम अथक लगन और परिश्रम से विज्ञान —विशेषकर आनुवंशिकी के क्षेत्र में विशेष प्रगति कर सके तो यह शताब्दी-समारोह के लिये हमारी सबसे महत्वपूर्ण श्रद्धांजलि होगी। □□

[पृष्ठ 31 का शेषांश]

अधिक प्राप्त करते हैं। यह मानव की ज़िम्मेदारी है कि वह अपने पर्यावरण की खाद्य-श्रृंखलाओं को यथा सम्भव सन्तुलित बनाये रखे और उनसे छेड़छाड़ न करे, क्योंकि आहार-श्रृंखलाओं में गड़बड़ी का अन्तिम शिकार खुद वही होगा। यह कुछ ऐसा ही है जैसे कि कोई व्यक्ति किसी डाल पर बैठकर उसी को काटता चले। अब जैसे मात्र अपने स्वार्थ के लिये आये दिन आदमी हरे जंगलों को काटता जा रहा है, जिससे केवल उत्पादन ही नहीं बल्कि सभी श्रेणियों के उपभोक्ता भी नष्ट हो रहे हैं। जंगल में भोजन की कमी पाकर बहुत से शाकाहारी चौपाये आबादी वाले क्षेत्र में भागकर आते हैं और खड़ी फसलों को भयंकर क्षति पहुँचा जाते हैं। इसका दुष्परिणाम अन्त में मानव को ही भोगना पड़ता है। बढ़ते प्रदूषण के प्रति भी लोगों में चेतना का अभाव है। पर्यावरण में प्रदूषण के ज़हर फैलते जाने से आहार-श्रृंखलायें विषाक्त हो रही हैं। कई नगरों में माताओं के दूध में डी डी टी के अवशेष पाये गये हैं। माँ के दूध पर पल रहे शिशुओं के लिये इससे बढ़कर खतरे की और कौन सी बात हो सकती है? अपने पर्यावरण की आहार श्रृंखलाओं के प्रति मानव को सजग रहने की ज़रूरत है। □ □

पारिस्थितिकी (अ) सन्तुलन और आहार श्रृंखलायें

अरविन्द मिश्र

जीव-जन्तुओं को ऊर्जा खाद्य पदार्थों से मिलती है, जो उनकी विविध जैवीय क्रियाओं के लिये बहुत आवश्यक है। धरती पर ऊर्जा का एकमात्र स्रोत सूर्य है। क्लोरोफिल से युक्त पौधे तो इस ऊर्जा को प्रयोग में लाये जाने योग्य पदार्थ यानी भोजन में बदल देते हैं और इस तरह भोजन-निर्माण में वे आत्म-निर्भर होते हैं। किन्तु जन्तुओं में यह क्षमता नहीं है। पौधे जहाँ अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं वहीं प्राणियों में स्वयं भोजन बना सकने की क्षमता नहीं होती और फलस्वरूप जीव-जन्तुओं को वनस्पतियों अथवा जीवों पर निर्भर रहना पड़ता है। पौधों, लताओं और अन्य वानस्पतिक उत्पादों जैसे फल-फूलों को शाकाहारी जीव-जन्तु खाते हैं। इन शाकाहारी जीव-जन्तुओं को मांसाहारी जीव-जन्तु खाते हैं। बहुत से जीव-जन्तु शाकाहारी और मांसाहारी दोनों होते हैं। आदमी तो विकास की राह पर बदलती दुनिया के साथ वह सर्वभक्षी हो गया है। कुछ लोग जहाँ लहसुन खाने से परहेज़ करते हैं वहीं बहुतों को मेढक की टाँग और भुने हुये दीमकों में अपूर्व स्वाद मिलता है। आदमी भोजन-श्रृंखला या पारिस्थितिकी तंत्र के शीर्ष पर है, सबसे ऊपर।

मोटे तौर पर समझने के लिये हम कह सकते है कि "एक समुदाय में खानपान की आदतों से सम्बन्धित वह क्रम या श्रृंखला, खाद्य-श्रृंखला है, जिसमें सभी वर्ग के जीव-जन्तु एक दूसरे पर निर्भर होते हैं और जिसमें प्रायः छोटा जीव उससे बड़े जीव द्वारा खाया जाता है, फिर मंझला जीव उससे भी बड़े जीव द्वारा खाया जाता है।" 'जीवः जीवस्य भक्षवंम' की हमारी पुरानी कहावत को ही वैज्ञानिकों ने और भी सटीक तरीके से भोजन-श्रृंखला के रूप में परिभाषित किया है। हमारे यहाँ दार्शनिकों ने "मत्स्य न्याय" का सिद्धान्त यह देखकर प्रतिपादित किया था कि तालाब में बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। और बड़ी मछली को उससे बड़ी मछली खाती है। संक्षेप में यही भोजन श्रृंखला है।

ऊर्जा-वैज्ञानिकों का मानना है कि किसी पारिस्थितिकी तन्त्र में एक जीवधारी से दूसरे जीवधारी में खाद्य ऊर्जा का प्रवाह ही भोजन श्रृंखला है। यानी दूसरे शब्दों में सौर ऊर्जा का प्रवाह ही भोजन श्रृंखलाओं के रूप में प्रकट होता है। जीव जगत् में भोजन श्रृंखला के रूप में ऊर्जा का प्रवाह सम्बन्धित प्राणी समूहों की कई कड़ियों से होकर बढ़ता है। जितनी कड़ियाँ कम होंगी उतना ही ऊर्जा का अपव्यय भी कम होगा और उपयोग अधिक होगा। इसके विपरीत जीवों की अधिक कड़ियों में ऊर्जा का क्षय भी अधिक होगा, क्योंकि इसका इस्तेमाल श्वसन आदि क्रियाओं में अधिक होगा। इस तरह खाद्य-श्रृंखलाओं में ऊर्जा का प्रवाह रेखीय (लीनियर) होता है। खाद्य श्रृंखलाओं के प्रत्येक चरण को ऊर्जा का स्तर कहा जा सकता है।

किसी खाद्य-श्रृंखला का सबसे अच्छा और सरल उदाहरण तालाब के पारिस्थितिकी तन्त्र का है। तालाब के जलचरों में आहार-श्रृंखला का रूप कुछ ऐसा होता है—

तालाब के छोटे पौधे, शैवाल और सूक्ष्म वानस्पतिक प्लवक पानी के अकार्बनिक तत्वों के सहयोग से प्रकाश-संश्लेषण द्वारा भोजन का उत्पादन करते हैं और इस तरह वे आत्मपोषी तो होते ही हैं, भोजन के प्राथमिक उत्पादक भी होते हैं। साथ ही, यही आत्मपोषी वनस्पतियाँ भोजन-श्रृंखला के प्रथम चरण को भी जन्म देती हैं। तालाब के दूसरे छोटे जीव समूह तालाब के इस प्राथमिक उत्पादन का उपभोग करने के कारण उपभोक्ताओं की श्रेणी में आते हैं। यहाँ भी एक विशाल उपभोक्ता संस्कृति का अस्तित्व है। परन्तु सब

18, अधिकारी होस्टल, झाँसी—3

कुछ बहुत ही नियमित, व्यवस्थित और सन्तुलित है। हाँ, उपभोक्ताओं की अलग श्रेणियाँ भी हैं। जैसे मछली का ही उदाहरण लें। छोटी शाकाहारी मछलियाँ जो हरी वनस्पतियों और वनस्पति प्लवकों को खाती हैं, उपभोक्ताओं की पहली कतार का प्रतिनिधित्व करती हैं और खाद्य-श्रृंखला के दूसरे चरण पर आती हैं। मांसाहारी मछलियाँ जो इन शाकाहारी मछलियों का भक्षण करती हैं, खाद्य-श्रृंखला के तीसरे चरण का निर्माण करती हैं। इसी तरह इन मछलियों को खाने वाले पक्षी जैसे बगुले आदि तथा स्वयं मानव खाद्य-श्रृंखला के चौथे चरण की रूपरेखा बनाते हैं। कुछ वे मछलियाँ जो मांसाहारी मछलियों को भी खाती हैं इसी चौथी श्रृंखला में ही आती हैं। इस तरह खाद्य-ऊर्जा का संचरण क्रमशः उच्चतर श्रेणियों में होता रहता है। तालाब में ही जीवाणुओं और कवकों की एक बड़ी जमात भी उपभोक्ताओं के रूप में सड़ी-गली वनस्पतियों का विघटन कर अपना भोजन प्राप्त करती है और उनसे अकार्बनिक तत्वों को मुक्त करती है, जिसका उपयोग पौधे व सूक्ष्म प्लवक पुनः भोजन बनाने में करते हैं। तालाब में इस तरह एक सन्तुलित भोजन-चक्र चलता रहता है।

पारिस्थितिकी सन्तुलन के लिये उत्पादक और उपभोक्ता जीव-जन्तुओं के बीच भी एक सन्तुलन बना रहना आवश्यक है। यह देखा गया है कि किसी पारिस्थितिकी तंत्र में भोजन-श्रृंखालाओं की जितनी ही विविधता, होगी, उतना ही वह स्थायी होगा। जैसे यदि जंगल के पारिस्थितिकी तंत्र के पहली श्रेणी के किसी उपभोक्ता प्राणी खरगोश की संख्या में कमी हो जाय तो इसी श्रेणी के दूसरे उपभोक्ता प्राणियों जैसे चूहों की संख्या बढ़ने लगती है, क्योंकि ऐसी दशा में प्राथमिक उत्पादनों की उपलब्धता बढ़ती जाती है। इससे खाद्य-श्रृंखला के तीसरे चरण पर आने वाली द्वितीय श्रेणी के मांसाहारी उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य पर कोई असर नहीं पड़ता। उनके लिये खरगोश न सही खाने के लिए अधिक संख्या में चूहे मिलने लगते हैं। खाद्य-श्रृंखलाओं की व्यवस्थित कड़ियों में किसी भी तरह का बदलाव पारिस्थितिकी असन्तुलन को जन्म दे सकता है। जैसे यदि किसी क्षेत्र में साँपों का पूरी तरह सफाया कर दिया जाय तो वहाँ चूहों की जनसंख्या बहुत बढ़ जायेगी, चूहों की संख्या बढ़ेगी तो आदमी को अनाज के लाले पड़ जायेंगे। इसी तरह यदि जंगल के बाघों, शेरों और तेंदुओं का भारी विनाश होगा तो हिरन कुल के पशुओं की संख्या विकराल रूप ले लेगी जो फसलों को क्षति पहुँचायेंगे। आदमी के लिए फिर मुसीबत होगी। ऐसे कई और भी उदाहरण हैं, जो हमें प्राकृतिक संतुलन के लिये जीव-जन्तुओं की नैसर्गिक खाद्य-श्रृंखलाओं के संरक्षण की ज़रूरत बताते हैं।

प्रदूषण का जहर खाद्य-श्रृंखलाओं के कई स्तरों में घुलता जा रहा है। आपने जापान के मिनामाता खाड़ी समूहों में पारे के प्रदूषण से हुई मौतों के बारे में सुना होगा, जहाँ औद्योगिक कचरों में मौजूद पारा मछलियों की कोशिकाओं में इकट्ठा होता रहता था। इन्हीं मछलियों को किनारे बसे मज़दूर खाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि पारे का अंश उनकी कोशाओं में एकत्रित होकर उन्हें अपाहिज करता हुआ मौत की नींद सुलाने लगा। एक अध्ययन में यह भी देखा गया कि पेस्टीसाइड से प्रभावित मछलियों को खाते रहने से बगुलों के अन्डों के कैल्शियम कवच इतने कमज़ोर होते गये कि उनसे बच्चे निकलने के पहले वे फूटने लगे थे। तालाबों में पेस्टीसाइड पास के खेतों से बहकर आता था। इस तरह हम पाते हैं कि प्रदूषण का बढ़ता प्रकोप हमारी खाद्य-श्रृंखलाओं को भी दूषित करता जा रहा है, जिसकी रोकथाम हमारे हित में बेहद ज़रूरी है।

मानव शाकाहारी और मांसाहारी दोनों है। इस तरह कहीं तो वह खाद्य-श्रृंखला में उपभोक्ताओं की पहली कतार में है तो कहीं मांसाहारी के रूप में दूसरी या तीसरी कतार में। किसी तालाब की आहार श्रृंखला में मछली खाने वाले मानवों की स्थिति इसी तरह है। केवल साग-सब्ज़ी पर रहने वाले लोग उपभोक्ताओं की पहली कतार में आते हैं और ऊर्जा भी

[शेष पृष्ठ 29 पर]

विज्ञान परिषद् से मेरे संबंध कैसे बने

डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल

कहा जा सकता है कि 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' से मेरे संबंध साठ के दशक से ही बन गये थे, जब अनुसंधान पत्रिका में मेरे दो शोध-पत्र 1960 एवं 1962 के वर्ष में छपे। परंतु इन शोध-पत्रों के प्रकाशनों को मैं परिषद् से अपने भावनात्मक संबंधों की शुरुआत नहीं मानता। उस समय मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में शोधछात्र था और इन प्रकाशनों में वस्तुतः मेरे गुरू तथा शोध पत्रों के वरिष्ठ लेखक **प्रो० रमेश चंद्र कपूर** का ही हिंदी प्रेम तथा परिषद् में उनकी निष्ठा झलकती है। हाँ ! इससे इतना अवश्य हो गया कि परिषद् मेरे लिये अनजानी नहीं रह गई।

अपने वर्तमान संबंधों का प्रारंभ मैं 1975 से मानता हूँ। तब तक कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में रसायन के प्रवक्ता के पद पर कार्य करते हुये 12-13 वर्ष बीत चुके थे और छात्र जीवन से ही हिन्दी में लिखने पढ़ने की प्रवृत्ति के कारण रसायनशास्त्र से संबंधित विषयों पर कुछ कलम घिसने का भी प्रयत्न करने लग गया था। 1973 में हरयाणा हिंदी ग्रन्थ अकादमी के सहयोग से कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के रसायन विभाग से एक हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। नाम था **'रसायनी'**। पत्रिका का स्तर बहुत अच्छा था, परंतु किन्हीं कारणों से इसके केवल दो अंकों का प्रकाशन हो सका—एक 1973 में तथा दूसरा 1974 में। दोनों में ही मेरे लेख थे, क्रमशः "बोरेनों की आणविक संरचना" तथा "संकुलों का क्रिस्टल क्षेत्र सिद्धांत"। ये मेरे सबसे पहले लेख थे जिनके माध्यम से मैंने अपने अंदर के हिन्दी लेखक को पहचाना। परन्तु इस पहचान के परिणामस्वरूप जब मैंने तीसरा लेख "अति भारी तत्व" लिखा, तब तक 'रसायनी' का प्रकाशन ठप हो चुका था। इन परिस्थितियों में मुझे याद आई परिषद् की और अगली बार जब मैं इलाहाबाद गया (परिवारिक कारणों से इलाहाबाद मैं बराबर ही आता-जाता रहता हूँ) तो वह लेख लेता गया। रसायन विभाग में पूछने पर किसी ने डॉ० **शिवगोपाल मिश्र** से मिलने की सलाह दी और उनकी प्रयोगशाला तक मुझे पहुँचा दिया। अंदर डॉ० साहब बैठे थे। उन्होंने मुझे बड़े प्रेम से बिठाया और लेख को ध्यान से पढ़ा। जहाँ तक मुझे याद आता है – उन्होंने कहा था कि यद्यपि **'विज्ञान'** के सम्पादक डॉ० **शिव प्रकाश** हैं परन्तु लेख के प्रकाशन के सम्बन्ध में मैं आश्वस्त रहूँ। उन्होंने यह भी कहा कि वे **'अनुसन्धान पत्रिका'** का कार्य देखते हैं और यदि मैं नियमित रूप से शोध-पत्र उसमें भेज सकूँ तो उन्हें प्रसन्नता होगी।

मेरा उपरोक्त लेख **'विज्ञान'** के जनवरी 1975 अंक में शान के साथ छपा—शान के साथ इसलिये क्योंकि अंक में पहला लेख वही था। इसके बाद फिर एक लंबी अवधि तक 'विज्ञान' या 'अनुसंधान पत्रिका' में कुछ नहीं भेज सका परन्तु जब भी इलाहाबाद विश्वविद्यालय जाता, डॉ० मिश्र मुझसे लिखने का आग्रह करते। लगता है उन्होंने मेरे लेखक को पहचान लिया था और मुझे खोना नहीं चाहते थे। अंत में उनका धैर्य रंग लाया और मैंने अपना पहला स्वतंत्र शोध-पत्र 'अनुसंधान पत्रिका' में भेजा जो 1980 में छपा और उसके बाद अन्य भी छपे। अब तक मैं लोक विज्ञान पर भी काफी लिखने लगा था और मान्यवर डॉ० साहब के सतत अग्रह से अपने लेख **'विज्ञान'** में भी भेजने लगा। 1983 से **'विज्ञान'** में प्रतिवर्ष मेरे एक दो लेख छपने लग गये और यह क्रम आज भी जारी है।

प्रोफेसर, रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा-124001

डॉ० मिश्र मुझे बराबर उत्साहित करते रहे। उन्हीं के आग्रह से 'इंडियन साइंस कांग्रेस' के बनारस अधिवेशन के तुरंत बाद मैं परिषद् का आजीवन सभ्य बना। फिर कुछ समय पश्चात् अंतरंग सभा का बाह्य अंतरंगी निर्वाचित हुआ और आज तक इस पद पर कार्यरत हूँ।

1983 में 'विज्ञान' में छपे एक लेख के लिये मुझे **'डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार'** के लिये मनोनीत किया गया और फिर 1985 में परिषद् ने जब 12 हिंदी विज्ञान लेखकों का सम्मान करने का निर्णय लिया तो इस सूची में भी मेरा नाम था। यह मेरे लिये निश्चय ही गौरव की बात थी और इसके लिये मैं अपने को परिषद् का आभारी मानता हूँ। यह कहने में मुझे किंचित भी संकोच नहीं है कि यदि इस सम्मान के योग्य अपने को बना पाया तो इसके पीछे मान्यवर डॉ० मिश्र के प्रोत्साहन का बहुत बड़ा हाथ है। उन्होंने यदि मुझमें हिन्दी में लिखने एवं हिन्दी के लिये कार्य करने की अकुलाहट को न पहचाना होता तो मैं इस क्षेत्र में संभवतः इतना आगे न बढ़ पाता। सच तो यह है कि आज भी डॉ० मिश्र मुझसे इस क्षेत्र में नया-नया कार्य करने का आग्रह करते रहते हैं और इस प्रकार मेरे लिये नयी संभावनाओं का द्वार खोलते जाते हैं।

अब तो परिषद् से मेरे संबंध इतने प्रगाढ़ हो चुके हैं कि उससे अलग अपने अस्तित्व की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। जब भी लोक विज्ञान पर कुछ ऐसा लिखता हूँ जिसमें तकनीकी पक्ष प्रबल होता है तो वह लेख 'विज्ञान' को ही भेजता हूँ। "पेट्रोल का धुँआ—रसायनों का शैतानी मिश्रण" (मार्च 1985) तथ "मुफ्त में बदनाम बेचारा गंधक" (नवंबर 1986) आदि लेख इसी बात के उदाहरण हैं।

परिषद् के साथ मेरे संबंधों में एक नया अध्याय जुड़ा मई 1988 में। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 44 वें अधिवेशन (इलाहाबाद) के अवसर पर मैंने एक अखिल भारतीय गोष्ठी आयोजित की जिसका विषय था—'विज्ञान की उच्च शिक्षा का माध्यम अविलंब हिन्दी / प्रादेशिक भाषायें हो जानी चाहिये'। अध्यक्षता डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने की। मेरी चिंता थी कि इस सफल गोष्ठी की कार्यवाही का प्रकाशन किस प्रकार किया जाय ताकि व्यक्त किये गये विचार सदैव के लिये रिकार्ड पर आ सकें। तभी 'विज्ञान' के वर्तमान सम्पादक एवं मेरे अनन्य मित्र श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने 'विज्ञान' के एक अंक में यह सारी सामग्री प्रकाशित करने का प्रस्ताव सामने रख कर मुझे उबार लिया। 'विज्ञान' का यह अगस्त 1988 अंक अब परिषद् के साथ मेरे घनिष्ठ संबंधों की सनद बन गया है।

यहाँ सुदूर रोहतक में रहते हुये भी परिषद् के लिये सोत्साह कार्य करता रहा हूँ। परिषद् के 75वें वर्ष में रोहतक शाखा की स्थापना, जिसके उद्घाटन में डॉ० मिश्र ने स्वयं सम्मिलित होकर उसे आशीर्वाद दिया, मेरे और परिषद् के संबंधों की आज तक की सबसे मज़बूत कड़ी है। परन्तु अभी तो मैं भविष्य में काफी आगे झाँक रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि इस दिशा में और लंबा रास्ता तय कर सकूँगा।

□□

विज्ञान के बढ़ते चरण

डॉ० ईश्वरचन्द्र शुक्ल

आज के विज्ञान में प्रत्येक दिशा में कुछ न कुछ शोध होते ही रहते हैं। इनमें से कुछ मानवता के विकास के द्योतक हैं तथा कुछ मानवता के हित में हैं। इसी प्रकार की कुछ उपलब्धियों की यहाँ पर चर्चा की जा रही है—

1. अभिकलक की द्रुततम स्मृति चिप्पी—आई० बी० एम० के शोधकर्ताओं ने अभिकलक (कम्प्यूटर) की विश्व में द्रुततम गतिक स्मृति चिप्पी का निर्माण कर लिया है। ऐसी प्रायोगिक चिप्पियाँ सूक्ष्म सूचनाओं को एक सेकेन्ड के दो सौवें खरब भाग में पुनः प्राप्त कर सकती हैं। यह गतिक संयोगिक स्मृति चिप्पी की तुलना में तीन गुना द्रुत है। अभिकलक में गतिक संयोगिक स्मृति चिप्पी सामान्य रूप से प्रयोग की जाती है, जो कि अधिक सुसंहति तथा सस्ती है लेकिन स्थिर संयोगिक अभिगम स्मृति चिप्पी से धीमी गति से कार्य करती है। आई० बी० एम० कम्पनी ने 1988 में सैनफ्रान्सिसको में यह घोषणा की कि उन्होंने ऐसी स्थिर संयोगिक अभिगम स्मृति चिप्पी का निर्माण किया है जो कि सूचना को एक सेकेन्ड के एक सौ दसवें खरब भाग में पुनः प्राप्त कर सकती है। दूसरी इसी प्रकार की चिप्पी का भी निर्माण किया गया है जो कि सूचना के दस लाखवें भाग को भी एकत्र कर सकती है। इस प्रकार की अभिकलक चिप्पी का निर्माण अभूतपूर्व है।

इसी प्रकार जापान की तीन अग्रगण्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरण निर्माता कम्पनियों—हिटेची, टोशिबा तथा मैशूशिता ने भी अपने 16—मेगाबिट गतिक संयोगिक स्मृति चिप्पी के स्वतन्त्र निर्माण की घोषणा की है। इनकी धारक क्षमता भी असाधारण है। यह चिप्पी 17.5 × 7-10 मिमी० आकार की है लेकिन इसमें किसी समाचार पत्र के 64 मानक पृष्ठों के बराबर सूचना भरी जा सकती है। इन कम्पनियों ने भी इस अन्वेषण की घोषणा 1988 में सैनफ्रान्सिसको में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय ठोस अवस्था सम्मेलन में दी। इस चिप्पी का निर्माण सर्वप्रथम निप्पो कम्पनी ने फरवरी माह में किया था जो कि अन्य सबसे अधिक धारक क्षमता वाली प्राप्त स्मृति चिप्पियों जैसे एक मेगाबिट गतिक संयोगिक स्मृति चिप्पी से दो पीढ़ी आगे है। चार मेगाबिट गतिक संयोगिक स्मृति चिप्पी भी अभी हाट में नहीं आई है।

हिटेची की 16-मेगाबिट गतिक संयोगिक स्मृति चिप्पी में 1.3 × 3.2 माइक्रॉन के स्मृति कोष्ठ हैं तथा अभिगम समय एक सेकेन्ड का सौवाँ भाग है। मैशूशिता की स्मृति कोष्ठ 1.5 × 2.2 माइक्रॉन है, जो कि संसार का सबसे छोटा स्मृति कोष्ठ है। टोशिबा का स्मृति कोष्ठ 1.7 × 3.6 माइक्रॉन के आकार का है (माइक्रॉन = मिमी. का हज़ारवाँ भाग)। टोशिबा का अभिगम समय एक सेकेन्ड का सात सौवाँ भाग है, जो कि अब तक घोषित तीन 16—मेगाबिट चिप्पियों से सबसे मन्द है। टोशिबा की चिप्पी में क्रमिक आँकड़ा पढ़ने तथा लिखने की विशेष अभिगम विधि है, जिसका कि चक्र समय एक सेकेन्ड का एक सौ लाखवाँ भाग है।

2. दूषित रक्त उपचार की नई विधि—प्रो० ए० साइपिन तथा उनके सहयोगियों ने मास्को के प्रति-रोपण विज्ञान एवं कृत्रिम अंग शोध संस्थान में रक्त-शोधन की एक नई विधि 'परफ्यूसन' का अविष्कार किया है। इस विधि का प्रयोग एक बारह वर्ष के चेकोस्लोवाकिया निवासी बालक, जिसके फेफड़ों, यकृत, गुर्दों तथा हृदय में गम्भीर रक्त प्रदूषण हो गया था, के उपचार के लिये किया गया है। इसमें

ए—6 विश्वविद्यालय आवास, चैथमलाइन, इलाहाबाद—211002

दूषित रक्त को सुअर की तिल्ली की सहायता से चालिस मिनट के अन्दर शुद्ध कर लिया जाता है। एक पंप की सहायता से दूषित रक्त को दाता तिल्ली से प्रवाहित किया जाता है। इस क्रिया में रक्त प्राकृतिक रूप से छन जाता है जो कि संक्रमण को नष्ट करने के साथ ही साथ शिथिल अंग की रक्षी शक्तियों को भी उद्दीपित करता है। वैज्ञानिकों ने यह भी स्थापित किया कि यकृत दाता तिल्ली रोगी के रक्त में क्रियाशील जैविक पदार्थों का निष्कासन करता है। 'परफूसन' क्रिया को कई बार करने से उपरोक्त रोगी तीन सप्ताह में स्वस्थ हो गया। विगत दो वर्षों में इस विधि द्वारा लोगों को फेफड़े, मूत्रविकारों तथा मवादयुक्त संक्रमण के निदान में सहायता मिली है। शोध संस्थान के चिकित्सक अधिकारिक रूप से यह नहीं कहते कि यह नई विधि सभी रोगों का उपचार है, लेकिन इसका प्रयोग उपचार की अन्य गहन विधियों के साथ किया जाय, इसकी सलाह देते हैं। सुअर की तिल्ली को गम्भीर रक्त विकारों में छानक के रूप में प्रयोग करने से घातक परिणामों में आधी कमी आई है। रूसी चिकित्सक आजकल इस विधि से अन्य रोगों के उपचार की सम्भावनाओं पर भी शोध कर रहे हैं। अमेरिका, कनाडा, जर्मनी तथा स्पेन के चिकित्सकों ने इस नई विधि के बारे में तीव्र रुचि दिखाई है।

3. विटामिन 'सी' यौगिकों से फल तथा शाक को तरोताज़ा रखना—विटामिन सी के व्युतपन्न कटे हुये सेब को अड़तालिस घंटे तक प्रयोगशाला परीक्षण में भूरा होने से बचा सकते हैं तथा सलाद-छड़-शैली में फलों एवं शाकों के रखने के लिये सल्फाइट का विकल्प बन सकते हैं। सेब के टुकड़ों को एस्कॉर्बिक अम्ल-6-वसा अम्ल एस्टर अथवा एस्कॉर्बिक अम्ल-2-फॉस्फेट में डुबोकर रखने से अड़तालिस घंटे तक भूरा होने से बचाया जा सकता है। ताज़े फल तथा शाक कटने, टुकड़े करने अथवा छीलने पर भूरा होना प्रारम्भ कर देते हैं। वायु में खुला छोड़ने पर एन्ज़ाइम पॉलीफीनोल ऑक्सीडेस, पॉलीफीनोल तथा इन फलों में विद्यमान प्राकृतिक रसायनों से क्रिया करता है। अभी तक इस क्रिया को धीमा करने के लिये सल्फाइट का प्रयोग सबसे अधिक प्रभावशाली था, लेकिन इसके प्रयोग का एफ० डी० ए० में जुलाई 1987 से कच्चे फल तथा शाक के लिये निरोध कर दिया है। सामान्य विटामिन-'सी' भी इस कार्य में प्रयुक्त हो सकता है, लेकिन इसका प्रभाव कम समय तक रहता है। विटामिन सी के व्युतपन्न विटामिन-'सी' से कहीं अधिक प्रभावशाली हैं।

विटामिन-'सी' के व्युतपन्न सिनामिक अम्ल, बीटा साइक्लोडेक्सट्रिन तथा वाणिज्य अकार्बनिक फॉस्फेट यौगिक के साथ मिलाकर प्रयोग करने पर भी भूरा होने की क्रिया को रोकते हैं। इनमें से कुछ यौगिक जापान में विभिन्न खाद्य पदार्थों के लिये प्रयुक्त किये जा रहे हैं। एस्कॉर्बिल पॉमिटेट संयुक्त राज्य अमेरिका में वसा तथा तेल के परिरक्षण में प्रयुक्त होता है।

4. तिलहन की फसल में कृत्रिम जीन सहायक—डी एन ए के टुकड़ों को जोड़कर एक संश्लेषित वनस्पति जीन का निर्माण किया गया है। इस नये जीन में सोयाबीन तथा अन्य तिलहन पौधों में तेल पैदा करने वाली मुख्य प्रोटीन का 'ब्लू प्रिंट' है। वैज्ञानिकों ने नये जीन को सामान्य जीवाणु **एशीशिया कोलोई**—में सफलतापूर्वक भर दिया है। एक बार जीवाणु की आनुवंशिक रचना में प्रवेश करने पर जीन एसिल वाहक प्रोटीन को निर्माण का निर्देश देता है। पौधों में इस प्रोटीन की आवश्यकता वसा अम्लों के बनाने में कई पदों में होती है। ये अम्ल पौधों में कोषिका झिल्ली तथा बीज में तेल भंडारण के अवयव हैं। एसिल वाहक जीन का निर्माण एक नये यंत्र डी एन ए संश्लेषक जो कि न्यूक्लियोटाइड उत्पादन-डी एन ए खण्ड—सरल कार्बनिक रसायनों से करता है। जीन की रचना ऐसे सोलह खण्डों को एन्ज़ाइम द्वारा आपस में जोड़कर की गई है।

सिद्धांततः किसी भी प्राकृतिक जीन को प्रयोगशाला में संश्लेषित कर सकते हैं। प्राकृतिक जीन में संश्लेषित जीन की तरह निर्माण खण्ड—न्यूक्लीइक अम्ल एक क्रम में जुड़े होते हैं, जो कि भाषा का कार्य

करते हैं। कई कृत्रिम पदों द्वारा यह न्यूक्लीइक अम्ल भाषा प्रोटीन में विशिष्ट अमीनो अम्ल क्रम, जो कि एक पौधे में होता है, जानने के लिये अनूदित की जाती है। अभी यह बताने में समय लगेगा कि यह शोध वैज्ञानिकों को जीनीय अभियंत्रित तिलहन जो कि अधिक उत्पादन या अधिक स्वास्थ्यप्रद वनस्पति तेल पैदा करेंगे, के उत्पादन में सहायता करेगा।

5. पारंपरिक पौधे से यकृत-शोथ संक्रमण का निवारण—भारतीय चिकित्सकों ने एक पारंपरिक पौधे को, जिसका प्रयोग ग्रामीण क्षेत्रों में पीलिया के उपचार में किया जाता है, 'हिपेटाइटिस बी विषाणु' के संक्रमण से मुक्ति पाने में भी सहायक पाया है। स्नातकोत्तर मूल औषधि विज्ञान संस्थान मद्रास के चिकित्सकों ने अपने अध्ययन से बताया कि फाइलेंथस निरूराई' का प्रभाव अति महत्वपूर्ण है। ग्रामीण क्षेत्रों में शताब्दियों से इस पौधे का अर्क पीलिया रोगियों को औषधि के रूप में दिया जाता रहा है। संस्थान के चिकित्सक इस पौधे की वास्तविक क्षमता का आकलन करने के लिये अध्ययनरत हैं। उन्होंने पाया कि पौधा वास्तव में विषाणु को निष्क्रिय कर देता है। मूषकों तथा अफ्रीका के हर बंदरों से प्राप्त विशेष कोशिका, जो कि आविषालुता परीक्षण में अत्यन्त संवेदनशील है, पर किये गये आविषालुता परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि पौधा हानिरहित है। वाहकों पर नियंत्रित प्रयोग किये गये जिसमें साठ वाहक प्रशासित कैपसूल पौधे से बनाये गये थे। एक महीने के उपचार के बाद चिकित्सकों ने देखा कि साठ प्रतिशत वाहक विषाणु संक्रमण से मुक्त थे। राष्ट्रीय विषाणु विज्ञान संस्थान, पूना तथा भारतीय औषधि शोध परिषद् ने पौधे का परीक्षण 'हिपेटाइटिस बी' के वाहकों के ऊपर देश के अन्य चिकित्सालयों में करने की रुचि दिखाई है।

6. देशी गाय से विदेशी संतान—भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान तथा राष्ट्रीय प्रतिरक्षा संस्थान के सहयोग से एक देशी गाय में बिना शल्य-क्रिया के भ्रूण प्रतिरोपण करके शुद्ध 'होलसटीन-फ्रीजियन' जाति की बछिया पैदा कर दिखाई गई है। भारत में पहली बार वैज्ञानिकों ने पूर्णतः विदेशी जाति की बछिया देशी गाय को 'सरोगेट मदर' (धात्री माँ) के रूप में प्रयोग करके, पैदा करने में सफलता प्राप्त की है। इस तकनीक ने 8-9 करोड़ भटकती हुई गायों से अधिक दूध देने वाली गायों के पैदा करने का रास्ता खोल दिया है। अनेक हरियाणा गायें इस समय इस विधि से गर्भ धारण किये हुये हैं। वे सभी उच्च आनुवंशिक स्तर की विदेशी संतान को जन्म देंगी।

इस विधि से शुद्ध होल्सटीन-फ्रीजियन पशु के अण्डे तथा शुक्राणु से भ्रूण पैदा किया जाता है, जिसको देशी गाय के गर्भाशय में रोपित किया जाता है। प्रत्येक तीन-चार महीने बाद दाता पशु से अण्डे एकत्र किये जा सकते हैं। इस प्रकार एक सर्वोत्तम गाय सिद्धान्ततः लगभग एक दर्जन बछड़े-बछिया पैदा कर सकती है, जबकि परंपरागत विधि से केवल एक ही संतान उत्पन्न होगी। इस विधि से पैदा बच्चे में 'सरोगेट मदर' के कोई भी आनुवंशिक गुण नहीं होते हैं। इसमें स्थानीय संक्रमण की प्रतिरक्षा अधिक होती है। यह प्रतिरक्षा 'सरोगेट मदर' से आती है जो कि विदेशी गाय, जिसने अण्डा (Egg) दिया है की तुलना में संक्रमण के प्रति अधिक प्रतिरोध क्षमता होती है। □□

रामानुजन जन्मदिवस समारोह

विज्ञान परिषद् के तत्वावधान में राजकीय महाविद्यालय जालोर में दिनांक 22 दिसम्बर को भारत के महान **गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन** के जन्मदिवस समारोह का आयोजन किया गया। मुख्य **अतिथि प्रोफेसर डी० एस० जुनेजा** (गणित विभाग), जोधपुर विश्वविद्यालय ने **'रामानुजन के व्यक्तित्व एवम् कृतित्व'** पर ज्ञानवर्धक वार्ता प्रस्तुत की। उन्होंने विद्यार्थियों का आह्वान किया कि जिस प्रकार विपरीत परिस्थितियों के बावजूद **रामानुजन** ने गणित के क्षेत्र में महान योगदान दिया, उसी प्रकार सभी विद्यार्थियों को श्रम करना चाहिये। इस अवसर पर डॉ० जुनेजा ने सत्र 1988-89 की विज्ञान परिषद् का उद्घाटन भी किया।

निम्न पदाधिकारी मनोनीत किये गये—

अध्यक्ष—**पुखराज जांगिड**, उपाध्यक्ष—**क्रांतिलाल सुथार**, सचिव—लहरी राम, कोषाध्यक्ष—विष्णुदत्त पुरोहित।

कार्यक्रम का संचालन **डॉ० प्रवीण माथुर** ने किया। प्राचार्य के आशीर्वाद शब्दों के साथ समारोह का समापन हुआ।

भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन

देशी भाषाओं में विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए 75 साल पूर्व स्थापित संस्था 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' ने अपने अमृत जयंती समारोह के अन्तर्गत 11-13 दिसम्बर, 1988 को **'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन'** विषय पर एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की। इस संगोष्ठी में देश की अधिकांश संविधानसम्मत भाषाओं के विज्ञान लेखकों/संपादकों ने भाग लिया। यह संगोष्ठी 'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी हेतु राष्ट्रीय संचार परिषद्' (एन० सी० एस० टी० सी०), नई दिल्ली के आर्थिक सहयोग से आयोजित की गई थी। संगोष्ठी की विषय-वस्तु **चार** सत्रों में विभाजित थी। उद्घाटन एवं समापन सत्र को मिलाकर कुछ छः सत्र आयोजित किए गये। इस गोष्ठी में प्रस्तुत किए गये आलेखों की संक्षिप्तियों को अलग से प्रकाशित किया गया था और इस प्रकाशन को 'विज्ञान' के पाठकों को भेजा जा चुका है। आलेखों का संकलन अलग से एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। यहाँ उद्घाटन सत्र के विषय में एक रिपोर्ट प्रस्तुत है।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता **प्रो० रामचरण मेहरोत्रा** (जयपुर) ने की तथा मुख्य अतिथि के रूप में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति **प्रो० वहीदुद्दीन मलिक** उपस्थिति थे। इनके अलावा मंच पर परिषद् के उपसभापति **डॉ० चन्द्रिका प्रसाद, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती**, परिषद् के प्रधानमंत्री **डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्त** तथा गोष्ठी के संयोजक **डॉ० शिवगोपाल मिश्र** थे। संगोष्ठी के इस उद्घाटन सत्र का शुभारंभ इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभाग की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत सरस्वती-वन्दना से हुआ। इसके पश्चात् **डॉ० प्रभाकर द्विवेदी** ने राष्ट्रभाषा की वंदना की। वरदायिनी माँ वीणापाणि तथा राष्ट्रभाषा की वंदना के उपरांत सत्र के संचालक और परिषद् के संयुक्त मंत्री **श्री अनिल कुमार शुक्ल** ने मंच पर आसीन व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय दिया तथा परिषद् के दूसरे संयुक्त मंत्री **डॉ० अशोक कुमार गुप्त** एवं 'विज्ञान' पत्रिका के संपादक **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** ने उन्हें मालाएँ पहनाईं।

परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्त ने देश के कोने-कोने से आए गोष्ठी के प्रतिभागियों का 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' की तरफ से हार्दिक स्वागत किया और उनके सहयोग एवं समर्थन के लिए आभार व्यक्त किया। इसके पश्चात् स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने विज्ञान परिषद् के 75 वर्षीय गौरवशाली इतिहास का स्मरण कराया और कहा कि परिषद् का महत्व 'नागरी प्रचारिणी सभा', 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' तथा साहित्य अकादमियों से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

संगोष्ठी के संयोजक डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने परिषद् की अमृत जयंती के उपलक्ष्य में 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' विषय पर गोष्ठी के आयोजन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला। डॉ० मिश्र ने कहा कि हम सभी हिन्दी हैं, हिन्द वाले हैं, चाहे हमारी भाषाएँ एवं बोलियाँ अनेक हैं। हम चाहते हैं कि हिन्दी भाषा अपनी सहेलियों से खुलकर बोल सके और सहेलियाँ भी अपनी मुस्कान बिखेर सकें। डॉ० मिश्र ने संतोष व्यक्त किया कि आज जब, 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' की उम्र 75 साल है, तब 'विज्ञान प्रगति' 'आविष्कार' और 'वैज्ञानिक' जैसी पत्रिकाएँ अपने निखार पर हैं और 'विज्ञान गंगा', 'जिज्ञासा' तथा 'विज्ञान परिचय' जैसी पत्रिकाओं ने हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के लिए आशा की नई किरणें सजाई हैं। आपसी समन्वय और प्यार की इसी भावना के साथ 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' ने अपनी 75वीं वर्षगांठ के अवसर पर इस राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया है। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि यह संगोष्ठी हम सबके लिए एक-दूसरे से जुड़ने का अवसर सिद्ध होगी।

[शेष पृष्ठ 43 पर]

संगोष्ठी के अंतिम दिन 13 दिसम्बर 1988 को निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किए गए—

प्रस्ताव संख्या—1

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की स्थापना के 75 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में 11-13 दिसम्बर 1988 को आयोजित त्रिदिवसीय संगोष्ठी 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' में देश भर की वैज्ञानिक समितियों के प्रतिनिधियों तथा विज्ञान लेखकों ने परस्पर सहयोग बढ़ाने तथा हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच आपसी आदान-प्रदान को बढ़ावा देने के उद्देश्य से निम्न संकल्प पारित किए—

(1) देश की समस्त भाषाओं की वैज्ञानिक समितियों का एक अखिल भारतीय संगठन स्थापित किया जाय। इस संगठन का नाम 'भारतीय विज्ञान साहित्य परिषद्' होगा।

(2) इस संगठन का मुख्यालय इलाहाबाद में 'विज्ञान परिषद् भवन, में होगा।

(3) इस संगठन का प्रथम औपचारिक अधिवेशन 'मराठी विज्ञान परिषद्' के रजत जयंती अधिवेशन के अवसर पर बम्बई में होगा। इस प्रथम अधिवेशन में ही इस महापरिषद् की नियमावली स्वीकृति की जाएगी तथा पदाधिकारियों एवं कार्यकारिणी के के सदस्यों का चुनाव किया जाएगा।

(4) जब तक महापरिषद् का प्रथम औपचारिक अधिवेशन नहीं आयोजित होता, तब तक 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के प्रधानमंत्री इसके 'संयोजक' होंगे। वे अपनी सहायता के लिए किसी अन्य व्यक्ति/व्यक्तियों के नाम प्रस्तावित कर सकते हैं, इस महापरिषद् के गठन की घोषणा पर हस्ताक्षर करने वाले सभी व्यक्ति इसके संस्थापक सदस्य हैं अतः वे सभी, संप्रति, महापरिषद् की तदर्थ कार्यकारणी के सदस्य होंगे। जिन भाषाओं की वैज्ञानिक समितियों का कोई प्रतिनिधि इस घोषणा के समय उपस्थित नहीं है, उन समितियों से अनुरोध किया जाएगा कि अपने किसी एक प्रतिनिधि का नाम तदर्थ कार्यकारिणी के लिए शीघ्र भेजें।

(5) इस महापरिषद् की सदस्यता ऐसी प्रत्येक संस्था एवं समिति के लिए खुली है जो किसी भी मान्य भारतीय भाषा के माध्यम से जनसामान्य में वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार एवं वैज्ञानिक मनोवृत्ति के (प्रचार) का कार्य कर रही हैं।

(6) 'भारतीय विज्ञान साहित्य महापरिषद्' द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दो पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाएगा। पहली पत्रिका **'विज्ञान संगम'** द्वैमासिक होगी, जिसमें सभी भारतीय भाषाओं से चुने गये सर्वोत्कृष्ट वैज्ञानिक लेखों, विज्ञान कथाओं आदि के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होंगे। इन प्रकाशित रचनाओं के साथ इनका अंग्रेजी सारांश भी होगा। दूसरी पत्रिका **'विज्ञान संक्षेपिका'** त्रैमासिक होगी और इसमें हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में छपे सभी वैज्ञानिक लेखों के सारांश छपेंगे।

(7) इन दोनों पत्रिकाओं के संपादक मंडल में सभी मान्य भारतीय भाषाओं से कम-से-कम एक विज्ञान लेखक होगा। इस प्रकार हर भाषा का संपादक (अपनी परिषद् द्वारा मनोनीत) अपनी भाषा के सर्वोत्कृष्ट लेख के चयन, अनुवाद तथा सारांश की तैयारी के लिए उत्तरदायी होगा। संपादक मंडल के प्रत्येक सदस्य को उचित मानदेय दिया जाएगा।

(8) इस महापरिषद् की सदस्यता प्राप्त समस्त वैज्ञानिक समितियाँ अपने प्रकाशन विनिमय के रूप में अन्य सदस्यों को भेजेंगी। ये समितियाँ अपने क्षेत्र में प्रकाशित/उपलब्ध पत्र-पत्रिकाओं में छपे वैज्ञानिक रचनाओं की प्रतिलिपि व कतरनें संपादक मंडल को उपलब्ध कराएँगी।

(9) विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में स्तरीय विज्ञान साहित्य के प्रसार को सुनिश्चित करने के लिए यह महापरिषद् 'भाषाई विज्ञान फीचर सेवा' शुरू करने का काम प्राथमिकता के आधार पर करेगी।

(10) इस महापरिषद् के वार्षिक अधिवेशन प्रति वर्ष अलग-अलग भाषाओं की वैज्ञानिक समितियों के

तत्वावधान में आयोजित किए जाएँगे। आगामी वर्ष की आयोजक समिति का निश्चय प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन में कर लिया जाएगा। आयोजक समिति आगामी वर्ष के लिए नयी कार्यकारिणी के नाम प्रस्तावित करेगी और इस प्रकार चुनी गयी कार्यकारिणी प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन के अंत में कार्यभार ग्रहण करेगी।

मूल प्रस्तावक—डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रस्ताव संख्या—2

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के अमृत जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित अखिल भारतीय गोष्ठी 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' के लिए देश के कोने-कोने से आये विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधियों तथा विज्ञानप्रेमियों की यह सभा सर्वसम्मति से प्रस्ताव करती है कि—

(1) सभी भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखकों/पत्रकारों/संपादकों के संक्षिप्त परिचय एवं पते का विवरण संकलित करने वाली संदर्भ विवरणिका शीघ्र प्रकाशित की जाय—ताकि विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखकों के बीच आपसी संपर्क आसान हो सके। केन्द्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी हेतु राष्ट्रीय संचार परिषद् (एन० सी० एस० टी० सी०) इस महत्वपूर्ण कार्य को प्राथमिकता के आधार पर शीघ्र सम्पन्न करे।

(2) वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी० एस० आई० आर०) द्वारा 'तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन' के अवसर पर प्रकाशित 'तकनीकी हिन्दी प्रकाशन निर्देशिका' (1966-83) को अद्यतन एवं पूर्ण बनाकर पुनर्प्रकाशित किया जाय। 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' इस कार्य को लेने को तत्पर है और सर्वाधिक उपयुक्त संस्था है। अतः विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग उसे इस कार्य के लिए आर्थिक अनुदान उपलब्ध कराए।

(3) अन्य भारतीय भाषाओं की विज्ञान समितियाँ भी अपने-अपने राज्य सरकारों एवं केन्द्रीय सरकार के आर्थिक अनुदान से अथवा अपने स्रोतों से इसी प्रकार की प्रामाणिक निर्देशिकाएँ प्रकाशित करने का कार्य प्राथमिकता के आधार पर करें।

(4) राष्ट्रभाषा हिन्दी में वैज्ञानिक शोध को प्रकट करने की क्षमता 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' के 30 वर्षों से निरन्तर प्रकाशन ने पूर्णतया प्रमाणित कर दिया है। अतः सरकारी अनुदान से प्रकाशित सभी वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं (जर्नलों) में हिन्दी में भी शोध-पत्रों के छपने की सुविधा दी जाय। इन समस्त शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित सभी शोध-पत्रों का सारांश अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी छापना अनिवार्य किया जाय। ताकि हिन्दी सम्पर्क भाषा के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह भली-भाँति कर सके।

मूल प्रस्तावक—श्री अनिल कुमार शुक्ल

प्रस्ताव संख्या—3

(क) राष्ट्रीय सूचना नीति के निर्माण, क्रियान्वयन एवं समीक्षा के प्रत्येक स्तर पर जनप्रिय विज्ञान की सूचना सुलभ बनाने की आवश्यकता पर गौर किया जाय और इस आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में उचित कदम अविलम्ब उठाए जायँ। क्योंकि आज के इलेक्ट्रॉनिक युग में, एकतरफ विशिष्ट सुविधा प्राप्त वर्ग के पास सूचनाओं का अम्बार लगता जा रहा है तो दूसरी ओर जनसाधारण के पास सूचनाओं का पहुँचना दुर्लभ, जटिल तथा महँगा बनता जा रहा है। अतः जनोपयोगी वैज्ञानिक सूचनाओं की उपलब्धता में व्याप रही इस विषमता को समाप्त करने की दिशा में अविलंब प्रभावी कदम उठाए जायँ।

(ख) 'रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर्स', के वार्षिक प्रतिवेदनों में वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं से संबंधित एक नया सूचना संवर्ग अविलंब शुरू किया जाय।

(ग) दूरदर्शन पर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान एवं तकनीकी संबंधी अधिकाधिक कार्यक्रम शुरू किये जायँ।

मूल प्रस्ताविका—डॉ० (श्रीमती) बी० अनुराधा

प्रस्ताव संख्या - 4

(क) 1964-66 के शिक्षा आयोग की संस्तुतियों के आधार पर स्थापित विभिन्न प्रदेशों की ग्रन्थ अकादमियों तथा सरकारी सहायता प्राप्त अन्य साहित्यिक अकादमियों द्वारा प्रोत्साहन एवं सम्मान स्वरूप प्रदान किए जाने वाले पुरस्कारों में प्रायः वैज्ञानिक पुस्तकों/विज्ञान लेखकों की उपेक्षा की जाती है। उपेक्षापूर्ण स्थिति में सुधार के लिए अविलंब निम्न कदम उठाए जायँ—

(1) पुरस्कारों की चयनसमिति में किसी वरिष्ठ विज्ञान लेखक को अनिवार्यतः शामिल किया जाय।

(2) पुरस्कारों के लिए आवेदन संबंधी विज्ञापन उस क्षेत्र/प्रदेश की भाषा में छपने वाली सभी विज्ञान पत्रिकाओं में अवश्य निकाले जायें।

(3) दीर्घकालीन विशिष्ट सेवाओं के लिए सम्मानित किए जाने वाले व्यक्तियों में प्रतिवर्ष कम से कम एक विज्ञान साहित्यकार अवश्य हो।

(ख) यदि कोई विज्ञान लेखक अपनी लोकप्रिय वैज्ञानिक रचनाओं को पुस्तक रूप में छपाना चाहे तो उसे सरकार की तरफ से उपदान (Subsidy) अवश्य दिया जाये, ताकि लेखक, प्रकाशकों के मुखापेक्षी न रहें और अपने प्रयास से भी वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन कर सकें।

(ग) देश के सभी स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों एवं सार्वजनिक पुस्तकालयों द्वारा प्रतिवर्ष क्रय की जाने वाली पुस्तकों का कम से कम 15% लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकों का हो। ऐसी अनिवार्य व्यवस्था वैज्ञानिक साहित्य के सृजन एवं प्रसार की दिशा में महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगी।

(घ) अच्छे विज्ञान लेखन के लिए विभिन्न सरकारी मंत्रालयों तथा संस्थाओं द्वारा लेखकों को पुरस्कृत किया जाता है। वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन को बढ़ावा देने के लिए इसी प्रकार की आर्थिक सहायता या उपदान (Subsidy) वैज्ञानिक साहित्य के निजी प्रकाशकों को भी दी जाय—ताकि वे इस ओर उन्मुख एवं प्रेरित हों।

मूल प्रस्तावक—डॉ० आर० एस० भूसनरमठ
तथा
डॉ० एम० एन० मोघे

प्रस्ताव संख्या—5

(1) भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली द्वारा हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन एवं रिपोर्टिंग पर नियमित पाठ्यक्रम अविलम्ब शुरू किया जाय—ताकि विज्ञान लेखकों की प्रशिक्षित टोलियाँ वैज्ञानिक साहित्य की गुणवत्ता एवं स्तर को और ऊँचा उठा सकें।

(2) विभिन्न प्रदेशों की वैज्ञानिक समितियाँ अपने-अपने प्रदेशों में नवोदित विज्ञान लेखकों के लिए 'विज्ञान रचना शिविर' आयोजित करने की परंपरा शुरू करें। इन रचना शिविरों में वरिष्ठ विज्ञान लेखकों के सहवास एवं दिशा निर्देशन में दूरदर्शन, आकाशवाणी एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए रचे जाने वाले साहित्य में भेद एवं समानताओं की मूलभूत जानकारी नवोदित विज्ञान लेखकों को हो सकेगी।

मूल प्रस्तावक—श्री रमेश दत्त शर्मा
तथा
डॉ० मनोहर एम० मोघे

प्रस्ताव संख्या—6

सभी भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखकों एवं वैज्ञानिक संस्थाओं के आपसी आदान-प्रदान को बढ़ावा देने तथा देश की विविध भाषाओं में रचे जा रहे वैज्ञानिक साहित्य में शब्दावली की एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' द्वारा तैयार अखिल भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली अविलम्ब विभिन्न प्रदेशों की स्वयंसेवी वैज्ञानिक समितियों को उपलब्ध करा दी जाय।

मूल प्रस्तावक—श्री प्रेमानन्द चंदोला

प्रस्ताव संख्या—7

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित विषयों पर नीति-निर्धारण एवं उनके क्रियान्वयन पर निगरानी रखने के लिए सरकार द्वारा बनाई जाने वाली विभिन्न समितियों से सम्बन्धित प्रदेशों की विज्ञान समितियों/ विज्ञान परिषदों के प्रतिनिधि अवश्य शामिल किये

जायँ—ताकि सरकार को उस क्षेत्र की आम जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप निर्णय लेने में आसानी हो। सरकार द्वारा हाल ही में शुरू किये गये प्रौद्योगिकी मिशनों की सफलता इस प्रकार से सुनिश्चित हो सकेगी।

मूल प्रस्तावक—डॉ आर० एस० भूसनूरमठ

प्रस्ताव संख्या—8

(क) संघ की सेवाओं एवं पदों में भरती के समय अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त किए जाने सम्बन्धी, संसद के 1967 के संकल्प को अविलम्ब लागू किया जाय। इसी माँग को लेकर 'अखिल भारतीय भाषा संरक्षण संगठन' द्वारा 16 अगस्त 1988 से चलाए जा रहे धरने एवं अनशन के प्रति पूरी सहानुभूति एवं समर्थन व्यक्त करते हुए हम संघ एवं राज्य सरकार की सभी भरती परीक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त किए जाने की पुरजोर माँग करते हैं।

(ख) संघ एवं राज्य सरकार की समस्त वैज्ञानिक सेवाओं में साक्षात्कार एवं पदोन्नति के लिए भारतीय पत्रिकाओं में प्रकाशित भारतीय भाषाओं के लेखों/शोधपत्रों की संख्या एवं गुणवत्ता को महत्व दिया जाय।

मूल प्रस्तावक—श्री विश्वंभर प्रसाद 'गुप्त बंधु'

प्रस्ताव संख्या—9

विज्ञान लेखकों की बढ़ती हुई संख्या के बावजूद लेखों के स्तर में अपेक्षित सुधार नहीं दिखाई पड़ता। दूसरे के लेखों का चोरी से पुनर्प्रकाशन या नकल कर लेने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। ऐसी दुष्प्रवृत्तियों को रोकने तथा रचे जा रहे वैज्ञानिक साहित्य के स्तर में सुधार हेतु लेखकों के लिए मार्गदर्शक आचार संहिता बनाए जाने की आवश्यकता है। इस दिशा में विविध वैज्ञानिक समितियाँ अग्रणी भूमिका निभा सकती हैं।

मूल प्रस्तावक—श्री डी० एन० भटनागर

प्रस्ताव संख्या—10

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के अमृत जयंती समारोह के अवसर पर एकत्रित विविध भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखक एक स्वर से यह माँग करते हैं कि विज्ञान के प्रसार की दृष्टि से भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हो रही वैज्ञानिक पत्रिकाओं को राष्ट्रीय महत्व की पत्रिकाएँ घोषित किया जाय और इनके प्रबन्ध एवं वित्त सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करके इनका प्रसार बढ़ाने के लिए अविलम्ब कदम उठाए जायँ।

मूल प्रस्तावक—श्री तुरशनपाल पाठक

राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी

संकुल रसायन—विविध आयाम

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 7-8 अप्रैल 1989 को प्रयाग नगर में, "संकुल रसायन-विभिन्न आयाम" (Coordination Chemistry-Various Dimensions) विषय पर दो दिवसीय एक गोष्ठी का आयोजन कर रहा है।

सम्मेलन को विश्वास है, विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी माध्यम से सम्पन्न होने वाली यह गोष्ठी संभवतः पहली बार हो रही है।

हिन्दी के माध्यम से विज्ञान की पूर्ण प्रगति संभव है—इस धारणा को सम्पुष्ट करना ही गोष्ठी का लक्ष्य है।

संकुल विज्ञान के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् प्रो० डॉ० हीरा लाल निगम (पूर्व कुलपति, रीवां विश्वविद्यालय) इस गोष्ठी में अपना उद्गीथ वचन (की नोट एड्रेस) प्रदान करेंगे।

इस गोष्ठी के संयोजक—डा० ओम प्रभात अग्रवाल, प्रोफेसर, रसायन-विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक 124001 तथा सहसंयोजक डा० ब्रज भूषण, रीडर, रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक 124001 हैं।

विज्ञान परिषद् में रामन पर संगोष्ठी

24 दिसम्बर को 'डॉ० रामन और उनका कार्य' विषय पर 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' द्वारा आयोजित गोष्ठी सफलता पूर्वक सम्पन्न हुई। ज्ञातव्य है कि यह वर्ष डॉ० रामन का जन्म शताब्दी वर्ष है। गोष्ठी की अध्यक्षता वरिष्ठ विद्वान डॉ० जे० पी० श्रीवास्तव और संचालन 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने किया। धन्यवाद ज्ञापन परिषद् के प्रधान मंत्री प्रो० पूर्णचन्द्र गुप्त ने किया।

इस अवसर पर कनाडा से प्रेषित अपने एक आलेख द्वारा कु० पूनम वार्ष्णेय ने रामन के जीवन और कार्यों तथा कानपुर आई० आई० टी० के श्री आशुतोष मिश्र ने रामन के प्रमुख योगदान 'रामन प्रभाव' की बारीकियों पर सफलतापूर्वक प्रकाश डाला। डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने रामन द्वारा प्रस्तुत मिट्टी की भौतिक रचना की चर्चा करते हुए बताया कि यह उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचायक है कि भौतिकी के इस महान वैज्ञानिक की मृदा रसायन पर भी सूक्ष्म पकड़ थी। डॉ० अशोक कुमार गुप्ता ने रामन की विलक्षण प्रतिभा और डॉ० रामसुरंजन धर दुबे ने रामन के जीवन के कुछ प्रेरक प्रसंगों की चर्चा की। श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी ने वैज्ञानिक रामन के व्यक्तित्व के कुछ अनछुये मानवीय पक्षों को अनुकरणीय बताया। डॉ० सुप्रभात मुकर्जी ने रामन से प्रेरणा लेते हुए देश में विज्ञान के शैक्षणिक स्तर के उन्नयन पर बल दिया। संगोष्ठी को समापन की ओर ले जाते हुए संचालक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने रामन द्वारा देश के युवा वैज्ञानिकों को दिए गए संदेश—"अपने को प्रयोगशाला तक सीमित मत रखो। विज्ञान का सार उपकरणों में नहीं, स्वतंत्र चिंतन और कठोर परिश्रम में है" को अनुकरणीय बताया।

अध्यक्ष डॉ० जे० पी० श्रीवस्तव ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में रामन से संबंधित कुछ विशिष्ट संस्मरणों और रामन के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि डॉ० सी० वी० रामन के लिए विज्ञान ही धर्म, प्रयोगशाला उनका मंदिर और शोधकार्य ही उनकी पूजा थी।

इस अवसर पर प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव द्वारा रखे गए प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित किया गया और सरकार से निवेदन किया गया कि—

1. वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए नये उपकरण तथा समुचित सुविधा की व्यवस्था हो।

2. एन० पी० सी०, एन० सी० एल० जैसी प्रयोगशालाओं तथा अन्य समस्त वैज्ञानिक संस्थानों की कार्यशैली में सुधार हो, वहाँ व्याप्त असंतोष का वातावरण दूर किया जाये।

3. वैज्ञानिक उपकरणों के क्रय में विशेषज्ञों की सम्मतियों का सम्मान किया जाये।

4. वैज्ञानिकों के वेतन, आवासीय सुविधाओं, चिकित्सीय सुविधाओं आदि में तीव्रता से सुधार किया जाये।

5. पदों के चयन व रिक्त स्थानों की पूर्ति में जो विलंब होता है उसे दूर किया जाये तथा प्रोन्नति हेतु मूल्यांकन में प्रतिभा को वरीयता दी जाये।

6. रामन का अनुकरण करते हुये आज के वैज्ञानिक अपने शोधपत्र भारतीय शोधपत्रिकाओं में ही प्रकाशनार्थ भेजें।

अन्त में परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्त ने रामन को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अध्यक्ष एवं सभी उपस्थित वक्ताओं और श्रोताओं को धन्यवाद ज्ञापित किया। □□

विज्ञान परिषद् में रामानुजन पर गोष्ठी

भारत में प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों की कभी कमी नहीं रही। ऐसे लोगों की उम्र नहीं उनका काम उन्हें अमर कर देता है। **स्वामी विवेकानन्द** और **रामानुजन** ऐसे ही प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। रामानुजन का निधन मात्र 33 वर्षों की छोटी उम्र में ही हो गया।

गणितज्ञ रामानुजन की पुण्य स्मृति में 29 दिसम्बर 1988 को विज्ञान परिषद् के पुस्तकालय कक्ष में 'रामानुजन : गणित के शिखर' विषय पर एक गोष्ठी आयोजित की गई। प्रमुख वक्ता स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती ने कहा कि रामानुजन ने जिस क्षेत्र में काम किया वह न तो किसी विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में है और न भविष्य में ही जल्दी पाठ्यक्रम में आनेवाला है। रामानुजन ने अपना कोई शिष्य भी नहीं तैयार किया, इसी से लोग उनके कार्यों को जान नहीं पाये।

स्वामी जी ने यह भी बताया कि अंक विद्या भारत की देन है और रामानुजन ने उसी मौलिक क्षेत्र में कार्य किया। वे अंक विद्या के महारथी थे। स्वामी जी ने परिषद् के अधिकारियों से आग्रह किया कि वे 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' का एक अंक रामानुजन के कार्यों पर प्रकाशित करें, जिससे इस क्षेत्र में काम करने वालों को मदद मिल सके।

गोष्ठी में डॉ० ओंकारनाथ श्रीवास्तव, प्रो० शिव गोपाल मिश्र, झाँसी से आये श्री अरविन्द मिश्र, वाराणसी से आये श्री आशीष कुमार, श्री अमिताभ प्रेमचन्द्र, श्री द्वारिका प्रसाद शुक्ल, श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी आदि ने भी श्रीनिवास रामानुजन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला। अंत में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव के निम्नलिखित प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया। संचालन प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने किया और डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्त ने धन्यवाद दिया।

प्रस्ताव

"रामानुजन का कार्य विद्यार्थियों तक पहुँच सके इसके लिए यह प्रस्ताव रखा जाता है कि प्रत्येक स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय में रामानुजन के कार्य को व्याख्यानों एवं गोष्ठियों के माध्यम से निरन्तर बताया जाये ताकि रामानुजन के कार्य के ज्ञान से आने वाली पीढ़ियाँ वंचित न रह जायें।

'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' वर्ष में कम-से-कम एक बार रामानुजन के जन्म दिन पर और दूसरी बार उनकी पुण्यतिथि पर रामानुजन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर किसी विद्वान का व्याख्यान कराये।" □□

[पृष्ठ 37 का शेषांश]

संगोष्ठी परिचय के उपरांत इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि प्रो० वहीदुद्दीन मलिक ने परिषद् की **'अमृत जयंती स्मारिका'** का विमोचन किया तथा उद्घाटन भाषण दिया। इस स्मारिका का संपादन प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने किया है। अपने उद्घाटन भाषण में प्रो० मलिक ने कहा कि भारतीय भाषाओं में लेनेदेन का रिश्ता बहुत जरूरी है। इस रिश्ते के मजबूत होने से हिन्दी को भी लाभ होगा और अन्य भाषा-भाषियों में अलगाव की भावना भी नहीं पनपने पाएगी। भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन को समृद्ध बनाने के लिए लेखकों का यह सामंजस्य बहुत जरूरी है। अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ० रामचरण मेहरोत्रा ने इस बात पर बल दिया कि विदेशी भाषा को सीखने में श्रम बरबाद करने से बेहतर यही है कि उसका इस्तेमाल अपनी भाषाओं के विकास में किया जाय।

अन्त में परिषद् के उपसभापति डॉ० चन्द्रिका प्रसाद ने सभी के प्रति आभार व्यक्त किया। □□

विज्ञान परिषद् में प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस पर गोष्ठी

30 जनवरी 1989 को 'प्रो० सत्येन्द्र नाथ बोस : जीवन और उपलब्धियाँ' विषय पर एक गोष्ठी आयोजित की गई। इस गोष्ठी में मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए **प्रो० शिवगोपाल मिश्र** ने बताया कि प्रो० बोस ने एम० एस-सी० की डिग्री गणित में ली, पर प्रसिद्ध भौतिकीविद् के रूप में हुए। उन्होंने आइंस्टीन के साथ 'आएंस्टीन-बोस सांख्यिकी' सिद्धान्त प्रतिपादित किया। 'बोसॉन' कणों को खोजने के लिए बोस सदैव अमर रहेंगे। पराधीन भारत में जन्मे बोस को अपने शोधकार्य को प्रकाशित करवाने में बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। उन्हें 80 वर्ष की लम्बी आयु मिली थी। अपने जीवन के अंतिम तीस वर्षों में बोस ने 'आइंस्टीन-बोस सांख्यिकी' जैसा कोई चौकाने वाला काम तो नहीं किया पर विज्ञान और साहित्य का गहन अध्ययन किया। संगीत और दर्शनशास्त्र में उनकी रुचि थी। उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता देर से मिली। वे आत्म-प्रचार से दूर सादा जीवन व्यतीत करते थे। प्रो० मिश्र ने इस बात पर ज़ोर दिया कि हमें बोस के जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए।

प्रो० मिश्र के अतिरिक्त इस गोष्ठी में अपने विचार व्यक्त करने वालों में वाराणसी के **श्री आशीष कुमार, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, श्री अनिल कुमार शुक्ल, श्री द्वारिका प्रसाद शुक्ल** प्रमुख थे। इस गोष्ठी में **श्री विजय जी, श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी, श्री चन्द्र प्रकाश** ने भी भाग लिया। अध्यक्षता श्री द्वारिका प्रसाद शुक्ल, संचालन प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव और धन्यवाद ज्ञापन श्री अनिल कुमार शुक्ल ने किया। □

परिषद् का पृष्ठ

वार्षिक रिपोर्ट (1987-88)

वर्ष 1988 परिषद् का अमृत जयंती वर्ष है। इस वर्ष परिषद् ने कुछ उल्लेखनीय कार्य किये। प्रतिवर्ष की तरह 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अवसर पर अनुसंधान गोष्ठी का आयोजन 6 जनवरी 88 को हुआ, जिसका अध्यक्षीय व्याख्यान 'राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला' दिल्ली के निदेशक **डॉ० श्रीकृष्ण जोशी** ने दिया। तदुपरांत दूसरा महत्वपूर्ण आयोजन 10 मार्च को '**डॉ० आत्माराम-स्मृति व्याख्यान**' रहा। यह व्याख्यान राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नयी दिल्ली के सभागार में **स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती** ने दिया। स्वर्गीय **डॉ० आत्माराम की पत्नी श्रीमती सीता देवी** द्वारा दानस्वरूप प्राप्त बीस हज़ार रुपयों की राशि के ब्याज से यह व्याख्यान प्रतिवर्ष हुआ करेगा। परिषद् के संस्थापकों में से एक **स्वर्गीय सालिगराम भार्गव** की स्मृति में उनके शिष्यों **डॉ० तोशनीवाल बन्धुओं** ने भी बीस हज़ार रुपये की दानराशि कृपापूर्वक प्रदान की है, परंतु अनेक अपरिहार्य बाधाओं के कारण व्याख्यान अभी तक आयोजित नहीं हो सका है। प्रयास है कि इसे अमृत जयंती वर्ष में ही आयोजित कर लिया जाय।

14 मार्च, 1988 को परिषद् से जुड़े महत्वपूर्ण व्यक्तियों एवं भूतपूर्व पदाधिकारियों का एक विशेष अधिवेशन आयोजित किया गया। इसमें अमृत जयंती कार्यक्रमों के लिए विस्तृत रूपरेखा तैयार की गयी तथा आयोजन संबंधी विभिन्न समितियों का गठन किया गया। लेकिन खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि वे इन समितियों के सदस्यों से अपेक्षित सक्रियता का अभास नहीं मिल पाया। इस बैठक में भारत के विभिन्न शहरों में परिषद् की शाखाएँ स्थापित करने का निश्चय किया गया। हमें खुशी है कि रोहतक (हरियाणा) में **डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल** ने एक शाखा स्थापित कर ली है जिसमें 31 आजीवन सभ्य तथा

12 साधारण सभ्य हैं। वे कुरुक्षेत्र में भी शाखा स्थापित करने के लिए प्रयासरत हैं। अतीत में भी डॉ० अग्रवाल ने परिषद् के कार्यों में विशेष सक्रियता दिखाई है, हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं तथा अन्य सदस्यों से भी आग्रह करते है कि वे डॉ० अग्रवाल की ही तरह सक्रिय होकर परिषद् की गतिविधियों को गति प्रदान करें। दिल्ली में **श्री डी० एन० भटनागर** व उनके सहयोगी शाखा के लिए प्रयासरत हैं, पर प्रगति धीमी है। वाराणसी और फैज़ाबाद में भी शाखा शीघ्र ही स्थापित हो जाने के आसार हैं। हमारा विभिन्न शहरों के सभी सभ्यों से आग्रह है कि वे अपने यहाँ परिषद् की शाखा स्थापित करने में हमारा सहयोग करें।

इस बैठक में दो पुस्तकें प्रकाशित करने का भी प्रस्ताव था। एक पुस्तक 'विज्ञान' में अब तक प्रकाशित लेखों में से चयन करके **डॉ० ओमप्रभात अग्रवाल** को संपादित करनी थी। दूसरी पुस्तक हिन्दी के प्रतिनिधि विज्ञान लेखकों के उत्कृष्ट लेखों के संकलन के रूप में **श्री रमेश दत्त शर्मा** द्वारा संपादित होनी थी। परन्तु धनाभाव के कारण इनके कार्य में प्रगति न हो सकी।

अन्य लघु कार्यक्रमों के अलावा 5 जून, 14 सितंबर, एवं 7 अक्टूबर को स्थानीय स्तर पर 'पर्यावरण दिवस', 'हिन्दी दिवस' व 'वन्य जीव सप्ताह' के अवसर पर गोष्ठियाँ आयोजित की गईं तथा उनकी रिपोर्ट विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजी गई। परिषद् की गतिविधियों से लोगों को परिचित कराने के उद्देश्य से एक लेख परिषद् के संयुक्तमंत्री श्री अनिल कुमार शुक्ल ने पी० टी० आई० फीचर्स के लिए लिखा था जो मई माह में विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ। इस लेख तथा गोष्ठियों की रिपोर्ट पढ़कर अनेक पाठकों के पत्र मिले। उनमें से अनेक ने परिषद् की सदस्यता भी ग्रहण की।

इस प्रकार इस वर्ष कुल मिलाकर 84 नये आजीवन सभ्य बने। परन्तु इस वर्ष 2000 आजीवन सभ्य बनाने के हमारे लक्ष्य को देखते हुए यह संख्या असंतोषजनक है। हमें और प्रयास करना है। यदि 1990 में 'विज्ञान' पत्रिका के 75 वर्ष पूरे होने से पूर्व भी हम यह लक्ष्य प्राप्त कर सकें तो एक उपलब्धि होगी।

पिछली वार्षिक बैठक के उपरात दिसम्बर माह की 14 तारीख को उ० प्र० की विज्ञान एवं प्रौद्योगिक समिति (C S T) के सहयोग से **'विज्ञान तकनीकी, पर्यावरण 2001'** विषय पर एक अखिल भारतीय गोष्ठी भी आयोजित हुई, जिसके आलेख 'विज्ञान' के नवम्बर-दिसम्बर 87 अंक के रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित हैं।

आलोच्य वर्ष में 'विज्ञान' पत्रिका का प्रकाशन तो नियमित रूप से होता रहा है, परन्तु 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' मुद्रण संबंधी कठिनाइयों के कारण बहुत पिछड़ गई है। अनुसंधान पत्रिका का अभी तक केवल अप्रैल 1987 अंक ही प्रकाशित हो सका है। अनुसंधान पत्रिका के प्रकाशन में विलंब के पीछे मुद्रण हेतु कम राशि की उपलब्धता विशेष ध्यातव्य है। अतः धन संग्रह की तरफ या अनुदान राशि बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास अपेक्षित है।

आलोच्य वर्ष में पुस्तकालय की व्यवस्था तो ठीक रही, परन्तु धनाभाव के कारण जर्नलों की बाइंडिग न हो सकी।

व्याख्यानशाला के लिए कोई विशेष दान तो नहीं मिला, पर व्याख्यानशाला से सम्बद्ध महिला एवं पुरुष शौचालयों तथा सज्जाकक्ष में कार्य पूरा करा लिया गया है, उनमें खिड़की, दरवाज़े व ग्रिल भी लग चुके हैं।

परिषद् के अतिथि भवन के निमित्त स्वामी सत्यप्रकाश जी के शिष्यों द्वारा दिये गये दान से दो कमरों, एक गैलरी, रसोई तथा स्नानगृह का निर्माण पूरा कर लिया गया है। इस अतिथिगृह का प्रयोग स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती द्वारा अपने इलाहाबाद प्रवास के समय किया जाएगा तथा आवश्यकतानुसार परिषद् के मान्य अतिथि भी उसमें ठहरेंगे।

अमृत जयंती वर्ष का सर्वाधिक उल्लेखनीय आयोजन 11-13 दिसम्बर 1988 को 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' विषयक गोष्ठी होगी, जिसके लिए

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार हेतु राष्ट्रीय परिषद् (N C S T C) से अस्सी हज़ार रुपये की सहायता राशि का आश्वासन मिला है। इसके लिए हम एन० सी एस टी सी के चेयरमैन **डॉ० नरेन्द्र कुमार सहगल** के विशेष आभारी हैं। एन सी एस टी सी के पास रोज़गारपरक पुस्तक-माला सम्बन्धी एक अन्य प्रस्ताव भी विचाराधीन है। भाषानिधि (उ० प्र०) में भी एक ऐसा ही प्रस्ताव भेजा गया है। इलेक्ट्रॉनिकी विभाग को हिन्दी में एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका का प्रस्ताव भेजा गया है। स्वामी सत्य-प्रकाश सरस्वती के प्रयास से 'सुबोध पाकेट बुक्स', दिल्ली ने बच्चों के लिए विज्ञान विषयक 100 पुस्तकें परिषद् के तत्वावधान में छापने का निश्चय किया है। इस योजना की चार पुस्तकें मुद्रणाधीन हैं।

इस प्रकार परिषद् की अंतरंग सभा के समस्त पदाधिकारी अपने कार्यों को सुचारू रूप से करते रहे। आशा है, आगे भी उनका सहयोग मिलता रहेगा।

डॉ० रामदास तिवारी सभापति

डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्त प्रधानमंत्री

दिनांक 15-1-88

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है, यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिये नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिये। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं:

भीतरी पूरा पृष्ठ 100.00 रु०; आधा पृष्ठ 50.00 रु०; चौथाई पृष्ठ 25.00 रु०; आवरण द्वितीय, तृतीत तथा चतुर्थ 200·00 रु०।

इलाहाबाद में एक नयी पर्यावरण संस्था का उदय

नेहरू इको फ्रन्ट

प्रकृति और प्राणियों का अनादिकाल से साथ रहा है। प्रकृति की गोद में ही मानव-सभ्यता फली-फूली और विकसित हुयी है। सभ्यता की अंधी दौड़ में हमने प्रकृति का अंधाधुंध दोहन शुरू किया और अपने ही हाथों से अपनी जीवनदायिनी प्रकृति में आग लगा बैठे। क्रुद्ध पर्यावरण की विनाश-लीला अब बाढ़, सूखा, विकिरण इत्यादि रूपों में, मानव-सभ्यता को ग्रस लेने को आतुर दिखाई पड़ रही है। इन सबके पीछे मूल कारण पर्यावरण-ज्ञान की शून्यता और उपेक्षा ही है। पर्यावरण के प्रति जन-जागरण हेतु इलाहाबाद से एक युवा-शक्ति-आंदोलन का उदय 'नेहरू इको फ्रन्ट' के रूप में हुआ है। इस फ्रन्ट की स्थापना नेहरू जन्मशती वर्ष 1988 में महामानव नेहरू के जन्मदिन 14 नवंबर को की गयी। यह फ्रन्ट प्रेम सागर त्रिपाठी (अध्यक्ष), कमलेश कुमार ओझा (उपाध्यक्ष), अमरेश कुमार श्रीवास्तव (संयोजक), विजय प्रकाश शुक्ल (महामंत्री), आदि पदाधिकारियों एवं शताधिक सदस्यों के सहयोग से अपने पथ पर अग्रसर है। फ्रन्ट के मुख्य उद्देश्य निम्नवत् हैं—

(i) जन मानस में पारिस्थितिकी चेतना का प्रसार, (ii) वातावरण को प्रदूषण-मुक्त करना, (iii) वन्य-जन्तु संरक्षण, (iv) वृक्षारोपण, (v) पर्यावरण के प्रति जन जागरण और प्रकृति-संरक्षण हेतु जनांदोलन, (vi) नागरिकों में वैज्ञानिक मनोवृत्ति (Scientific temper) पैदा करना, (vii) दूरस्थ गाँवों में जाकर स्थानीय व्यक्तियों को वृक्षों के सिर्फ आर्थिक ही नहीं वरन् पर्यावरणीय महत्व को समझाना, (viii) गंदे प्रदूषित जल के उपयोग से होने वाली बीमारियों के प्रति उन्हें सचेत करना और (ix) पर्यावरण संबंधी लेखन, व्याख्यान-माला, संगोष्ठी इत्यादि का आयोजन।

सम्पर्क-सूत्र—99 बी / 7 पूरा दलेल, अल्लापुर, इलाहाबाद।

प्रस्तुति—**प्रेमसागर त्रिपाठी**

विज्ञान परिषद्, प्रयाग की रोहतक शाखा का उद्घाटन

'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' पिछले 75 वर्षों से हिन्दी माध्यम से जनसाधारण में विज्ञान के प्रचार और प्रसार तथा उच्च स्तर के वैज्ञानिक साहित्य के सृजन के लिये प्रयत्नशील रही है। पिछले वर्ष 15 दिसंबर 1988 को इसकी रोहतक शाखा का उद्घाटन महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय **ले० जनरल श्री जी० सी० अग्रवाल** द्वारा विश्वविद्यालय के सीनियर कॉमन रूम में सम्पन्न किया गया। इस अवसर पर परिषद् के केन्द्र, इलाहाबाद से विशेष रूप से निमंत्रित इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा संचालित 'शीला धर मृदा शोध संस्थान' के निदेशक तथा 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' के प्रबंध सम्पादक **प्रो० शिवगोपाल मिश्र** ने परिषद् के इतिहास एवं उसकी भावी योजनाओं पर प्रकाश डालते हुए स्थानीय सदस्यों का मार्ग-दर्शन किया। समारोह में कैंसर रोग पर **पद्म श्री डॉ० नन्द किशोर वर्मा** की एक वार्ता हुई। अंत में शाखा के अध्यक्ष **प्रो० सर्वजीत सिंह** ने उपस्थित व्यक्तियों को धन्यवाद दिया। चायपान के साथ समारोह समाप्त हुआ।

प्रस्तुति—**डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल**

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रसायन विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक-124001

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठको !

वर्ष 1988 समाप्त हो गया। वर्ष 1989 का स्वागत है। 'विज्ञान' के लेखकों और पाठकों के लिए नया वर्ष नई खुशियाँ लाये। नया वर्ष आप सबके लिए शुभ हो।

पिछला वर्ष परिषद् का 'अमृत जयंती वर्ष' था। अमृत जयंती वर्ष के लिए हमारी अनेक योजनाएँ थीं। कुछ हम पूरा कर सके, कुछ अधूरी रह गयीं। पर हम जो कुछ भी कर सके उसका श्रेय आप सब लेखकों और पाठकों को ही है। इस संयुक्तांक में **'परिषद् का पृष्ठ'** शीर्षक के अन्तर्गत आपको पिछले वर्ष की गतिविधियों की एक छोटी झलक अवश्य मिलेगी।

'विज्ञान' के सितम्बर 1988 अंक के बाद काफी अंतराल के बाद यह अंक आपके सामने प्रस्तुत हो पाया है। 'विज्ञान' के नियमित अक्टूबर, नवम्बर व दिसम्बर अंक हम नहीं निकाल पाये हैं, इसके लिए हम खेद सहित पाठकों से क्षमा याचना करते हैं। पर इस बीच 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन'—विषय पर गोष्ठी के लिए प्राप्त आलेखों की संक्षिप्तियों का एक संकलन और 'अमृत जयंती स्मारिका' आपको भेजी जा चुकी है। गोष्ठी में प्रस्तुत आलेखों का संकलन पुस्तकाकार अलग से प्रकाशित किया जा रहा है। सामग्री प्रेस में है। इस गोष्ठी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि देश भर की वैज्ञानिक समितियों/संस्थाओं की एक महापरिषद् —**'भारतीय विज्ञान साहित्य महापरिषद्'** के गठन का निर्णय लिया गया। यह महापरिषद् हिन्दी एवं अन्य सभी भारतीय भाषाओं के माध्यम से विज्ञान के प्रचार-प्रसार में लगीं संस्थाओं के मुख्य संगठन के रूप में कार्य करेगी।

दिसम्बर 1988 और जनवरी 1989 में क्रमश: **रामन, रामानुजन और सत्येन्द्रनाथ बोस** पर तीन गोष्ठियों का आयोजन किया गया। इन तीनों गोष्ठियों में प्रस्तुत विचारों की छोटी रिपोर्ट इस अंक में दी जा रही है। इन तीनों व्यक्तियों के व्यक्तित्व और कृतित्व संबंधी जो आलेख हमें प्राप्त हुये हैं, उन्हें एक साथ मार्च 1989 अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

इस अंक में आपको 3 विज्ञान कथाएँ भी दी जा रही हैं, इस आशय के साथ कि भविष्य में लेखक हमें उच्चस्तरीय विज्ञान कथायें भेजेंगे। विज्ञान के प्रचार-प्रसार में विज्ञान कथाओं की अहम भूमिका अब स्वीकार की जा चुकी है।

6 जनवरी को मदुराई में 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' की पूर्व संध्या पर 'प्रोजक्ट टाइगर', नई दिल्ली के निदेशक **श्री राम लखन सिंह** ने "जैविक विविधता का संरक्षण: भारतीय संदर्भ में" विषय पर अपना विद्वतापूर्ण अध्यक्षीय भाषण दिया। श्री सिंह का यह भाषण 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' में प्रकाशित किया जायेगा। इस भाषण की पुनर्मुद्रित प्रतियाँ वितरित की गईं। इस वर्ष 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' की केमिस्ट्री सेक्शन के अध्यक्ष परिषद् के प्रधान मंत्री **प्रो० पूर्णचन्द्र गुप्त** थे और इस वर्ष साइंस कांग्रेस के अध्यक्ष सी० एस० आई० आर० दिल्ली के महानिदेशक डॉ० ए० पी० मित्र।

आपके लिए एक और शुभ समाचार। **अप्रैल 1989 से 'विज्ञान' पत्रिका का 'अमृत जयंती वर्ष'** प्रारम्भ हो जायेगा। मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि हमें लेखकों द्वारा और भी अच्छी रचनाएँ प्राप्त होंगी, विज्ञान के सामयिक और चर्चित विषयों पर।

शुभ कामनाओं सहित

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठको !

मैं अपने वादे के अनुसार मार्च 1989 अंक में **रामन, रामानुजन और एस० एन० बोस** —एक साथ तीन चोटी के विश्वविख्यात भारतीय वैज्ञानिकों के व्यक्तित्व और कृतित्व संबंधी साहित्य लेकर आ गया। ये तीनों ही महान वैज्ञानिक गणित और भौतिकी के क्षेत्रों में अपनी-अपनी विशिष्ट खोजों के लिए सदैव ही याद किए जाते रहेंगे। इनकी खोजों ने इन्हें अमर कर दिया है। अपनी ईमानदारी, साहस और विज्ञान के सत्य को उद्घाटित करने की प्रबल इच्छाशक्ति और तपस्या के कारण इनका जीवन आने वाली पीढ़ियों को अनुप्राणित करता रहेगा। इन्होंने भारत को जो मान-सम्मान दिलवाला है, उसके लिए यह ऋणी राष्ट्र, इन्हें सदा याद करेगा। भारत को अपने इन सपूतों पर गर्व है।

वह देश भाग्यशाली है जहाँ की सरकार देश को प्रगति पथ पर ले जाने को कटिबद्ध हो। हम भी भाग्यशाली हैं। देश के प्रधानमन्त्री, श्रीराजीव गाँधी, भारत की प्रगति के लिए विज्ञान को आवश्यक मानते हैं। यह शुभ लक्षण है। किसी भी राष्ट्र की सम्पन्नता का मापदण्ड उस राष्ट्र की वैज्ञानिक प्रगति है। भारतीय जनमानस में जितना ही अधिक वैज्ञानिक मनोवृत्ति या 'साइंटिफिक टेम्पर' का विकास होगा उतना ही हम आगे जायेंगे।

मूल रूप से हम भारतीयों की आस्था 'धर्म' में है। हमारे प्राचीन मनीषियों ने मानवजीवन का अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' माना है। इस मोक्ष की सीढ़ी है धर्म। धर्म 'सत्य' को पाना चाहता है। और सच पूछिए तो विज्ञान भी सत्य की ही खोज में लगा हुआ है। विज्ञान और धर्म एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। धर्म ही विज्ञान है और विज्ञान ही धर्म है।

पिछले दिनों 'केन्द्रीय हिन्दी संस्थान' (आगरा) के 'रजत जयंती समारोह' का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री ने हिन्दी के क्षेत्र में कार्य करने वाले 24 साहित्यकारों, कवियों, लेखकों, पत्रकारों और विज्ञान लेखकों को उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिए 'शाल' और 'ताम्रपत्र' देकर सम्मानित किया। प्रधानमन्त्री के हृदय में राष्ट्र भाषा हिन्दी के लिए निश्चय ही प्रेम है, आदर है।

इस अवसर पर बोलते हुए श्री राजीव गाँधी ने कहा कि आज हिन्दी विश्व के अनेक देशों में बोली जाती है। कई देशों में हिन्दी पढ़ी जाने लगी है। हिन्दी पुस्तकों का अनुवाद हो रहा है और विदेशी हिन्दी विद्वान हिन्दी साहित्य के अनुसंधान में भी रुचि ले रहे हैं। इन देशों में मॉरीशस, गुयाना, फिजी, त्रिनिदाद और सोवियत रूस प्रमुख हैं। दक्षिण भारत के अनेक राज्यों ने हिन्दी को अपना लिया है। प्रधानमन्त्री ने इस बात पर विशेष बल दिया कि हिन्दी का प्रचार-प्रसार इस तरह से होना चाहिए कि लोगों की इसके प्रति आस्था पनपे। भारत का प्रत्येक नागरिक यह समझे कि हिन्दी के द्वारा ही देश प्रगति पथ पर आगे बढ़ सकता है। श्री राजीव गांधी ने इस बात का पुन: स्मरण कराया कि महात्मा गाँधी ने हिन्दी और खादी रूपी दो बिन्दुओं को लेकर ही स्वतंत्रता आन्दोलन की नींव रखी थी। हिन्दी हमारी आशाओं का प्रतीक है, हमारी एकता का प्रतीक है, हमारे आत्मविश्वास का प्रतीक है। देश को सशक्त बनाने में हिन्दी को एक प्रभावी तंत्र के रूप में अपनी भूमिका निभानी होगी। इसके लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी को विश्व की भाषाओं में अहमियत मिले। हिन्दी को समृद्ध करने के लिए उसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के शब्दों का अधिकाधिक समावेश जरूरी है।

इसी समारोह में वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा के लिए **प्रो० राम चरण मेहरोत्रा, डॉ० ब्रजमोहन, डॉ० ओमविकास** और **श्री गुणाकर मुले** को 'आत्माराम पुरस्कार' दिया गया।

हिन्दी के प्रचार में लगे व्यक्तियों को अपनी शुभकामनायें देते हुए प्रधानमन्त्री ने कहा कि हिन्दी साहित्य समुद्र की भाँति है। हमें चाहिए कि हम भविष्य की जरूरतों को समझें और उन जरूरतों पर नजर रखते हुए हिन्दी को फैलायें।

हिन्दी के पक्ष में बोलने के लिए प्रधान मन्त्री को बधाई।

प्रधानमन्त्री की इस बात का हम सब अनुसरण कर सकें, इस आशा और विश्वास के साथ।

आपका;

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

रामन और उनका कार्य

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

आदरणीय अध्यक्षजी, सम्मानित विद्वतजन और मित्रो !

आज हम लोग विज्ञान परिषद् के पुस्कालय कक्ष में 'रामन और उनका कार्य विषय' पर चर्चा के लिए एकत्र हुए हैं। मैं आप सभी का स्वागत करता हूँ। हमें खेद है कि 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' विषय पर (11-13 दिसम्बर 1988) त्रिदिवसीय संगोष्ठी के आयोजन में व्यस्त रहने के कारण आज की गोष्ठी को समय से आयोजित नहीं कर सके। हम इस गोष्ठी को उनकी जन्मशती, 7 नवम्बर के दिन ही आयोजित करना चाहते थे।

आप सभी जानते हैं कि पिछले वर्ष ही भारत सरकार ने 28 फरवरी को 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' मनाये जाने की घोषणा की थी। 28 फरवरी ही वह ऐतिहासिक दिन है, जिस दिन रामन ने अपने युगान्तरकारी खोज की घोषणा की थी। रामन को उनकी इस खोज 'रामन प्रभाव' के लिए 1930 में 'नोबेल पुरस्कार' से अलंकृत किया गया।

मैं यहाँ 'रामन प्रभाव' के विषय में मात्र इतना ही कहना चाहता हूँ कि रामन की खोज पर जितना अनुसंधान हुआ, जितने शोध-पत्र प्रकाशित हुए, उतने शायद ही किसी वैज्ञानिक की खोज पर हुए हों। 1928 से 1987 के अंत तक 47, 000 शोध-पत्र प्रकाशित हो चुके हैं और 'रामन स्पेक्ट्रॉस्कोपी' पर प्रतिवर्ष औसतन 2, 750 शोध-पत्र प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार मेरा अनुमान है कि अब तक प्रकाशित शोध-पत्रों की संख्या निश्चित रूप से 50,000 पहुँच गई होगी। इस खोज के लिए रामन ने जिस वैज्ञानिक उपकरण का इस्तेमाल किया उसमें एक दर्पण, एक लेन्स, दो ग्लासफिल्टर, एक फ्लास्क जिसमें बेंज़ीन था और एक जेबी या पाकेट स्पेक्ट्रॉस्कोप। लागत मात्र 200 रुपये। और ऐसी खोज जिसने सारे संसार में तहलका मचा दिया।

रामन सदैव अपने वरिष्ठ विद्यार्थियों और सहयोगियों को दूसरी प्रयोगशालाओं और संस्थानों में उच्च पदों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते रहते थे, पर विदेशी शोध-पत्रिकाओं में शोध-पत्र छपवाना या विदेश जाकर शोधकार्य करना उन्हें पसन्द नहीं था।

प्रो० रामन की तुलना विश्वविख्यात मात्र दो ही भौतिकीविदों से की जा सकती है, जो उनके समकक्ष हैं। एक केम्ब्रिज के लार्ड रदरफोर्ड और दूसरे कोपेनहागेन के प्रो० नील्स बोह्र।

रामन एक उच्चकोटि के वैज्ञानिक होने के साथ ही चोटी के दार्शनिक और प्रकृतिक प्रेमी थे। फूलों के रंग, खनिजों और बहुमूल्य पत्थरों के जन्म, चिड़ियों के संगीत, तितलियों का रंग-विरंगा होना, आकाश और सागर की नीलिमा और प्रकृति की अनेक गुत्थियों, अनेक रहस्यों के अनवारण में उनकी गहरी रूचि थी। कुल मिलाकर सत्य का उद्घाटन।

महत्वाकांक्षा, साहस और कठिन परिश्रम उनकी सफलता की कुंजी थी।

इस गोष्ठी में आज अनेक वक्ता उपस्थित हैं, जो रामन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालेंगे। इसलिए मैं और कुछ न कहकर अपनी बात समाप्त करते हुए प्रो० सी० वी० रामन को श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ और अध्यक्ष डॉ० जे० पी० श्रीवास्तव जी से निवेदन करता हूँ कि वे आज की इस गोष्ठी के औपचारिक शुरूआत की आज्ञा प्रदान करें। ☐☐

डॉ० चन्द्रशेखर वेंकटरामन हमारी प्रेरणा के स्त्रोत बनें

प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र

अपने विद्यार्थी जीवन में 1947-48 में जब के० पी० कॉलेज का विद्यार्थी था तब मैंने डॉ० **चन्द्रशेखर वेंकटरामन** को देखा था। वे वहाँ भाषण देने आये थे। उनके सिर पर सफेद पगड़ी थी, उनका चेहरा उभरा हुआ, आँखें चमकती-सी। शायद धोती पहने थे। बहुत पहले सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन को देख चुका था। दोनों के चेहरों में अपूर्व साम्य था। अब पूरी-पूरी बातें तो स्मरण नहीं रह गई लेकिन इतना स्पष्ट स्मरण है कि उन्होंने किसी अज्ञात विषय को पढ़ने की अपनी शैली का उल्लेख किया था। उन्होंने बतलाया था कि पुस्तक के पीछे की अनुक्रमणिका से वे वांछित स्थल पढ़ कर विषय से परिचित होते थे। मैंने कई बार अनुकरण किया है, किन्तु बात पल्ले नहीं पड़ी।

तब शायद उनके 'नोबेल पुरस्कार' विजेता होने के असली कारण ज्ञात न थे, या स्पष्ट नहीं थे। बाद में भी वे पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाया—'रामन प्रभाव' का पाठ्यपुस्तक-ज्ञान ही मिल पाया। आगे कार्य करने का अवसर ही नहीं मिला।

मैं डॉ० रामन को भारतीयता की साकार मूर्ति के रूप में मानता आया हूँ। मेरे गुरु डॉ० नीलरत्न धर अभी-कभी उनका उल्लेख करते थे। स्वामी सत्य-प्रकाश सरस्वती को उनका सान्निध्य प्राप्त था। बस एक बात सर्वाधिक प्रेरणा देती रही है कि वे प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने अपनी खोजों को अपने देश के जर्नलों में ही प्रकाशित किया और उन्होंने अपना सारा जीवन अपने द्वारा स्थापित संस्थान के उन्नयन में लगाया। उनका धन, उनका समय, उनका श्रम उसी संस्थान के निमित्त था। वे बाहरी राजनीति से तनिक भी प्रभावित नहीं थे। वे एकान्त योगी की तरह अपने शोधकार्य में लगे रहे। परतन्त्रता के काल में भारत को गरिमा दिलाने वालों में उनका नाम अग्रणी है। उनकी प्रारम्भिक कर्मस्थली बंगाल ही रही—जहाँ से डॉ० जगदीशचन्द्र बोस तथा डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय जैसी प्रतिभाएँ विकसित हुई थीं। बाद में वे बंगलोर में स्थापित हो गये। सारे विश्व के वैज्ञानिकों की आँखें रामन की इस द्वितीय कर्मभूमि में जा टिकीं। उन्हीं की तपस्या का फल है कि आज भी बंगलोर विज्ञान का केन्द्र बना हुआ है।

रामन ने जो खोजें की हैं उनका मूल्यांकन देश के तथा विश्व के भौतिकीविद् करते रहे हैं और उनका इस शताब्दी के अवसर पर पुर्नमूल्यांकन भी हो रहा है। हम सारे भारतीय उनके कृतज्ञ एवं ऋणी हैं कि उन्होंने हमारे लिए वैज्ञानिक क्षेत्र में समानता की भावभूमि प्रदान की है कि हम विश्व स्तर पर हीन भावना से आक्रान्त नहीं हैं। इसी का परिणाम है कि आज देश में स्वस्थ वैज्ञानिक परिवेश दृष्टिगोचर हो रहा है।

महापुरुषों की जयन्तियाँ, शताब्दियाँ नवयुवकों एवं नये कार्यकर्ताओं के लिए सम्बल का काम करती हैं। आत्मालोचन, आत्म-निरीक्षण के लिए अवसर देती हैं। भौतिकी तथा रसायन विज्ञान के क्षेत्रों में भारत की उपलब्धियाँ किसी से कम नहीं है।

कुछ समय पहले मैंने रामन द्वारा लिखित तीन लेखों का अनुवाद अंग्रेजी से हिन्दी में किया। पहली बार मानो मेरे मनोरथ सफल हुए—मैं सोचता रहा हूँ कि हमारे शीर्षस्थ वैज्ञानिक क्यों नहीं जन साधारण की बात करते—क्यों नहीं उनको ऊपर उठाते ? मैंने देखा कि रामन को जनसामान्य की बड़ी चिन्ता थी। उन्होंने देहातों के लिए जिस तरह विज्ञान का लेखन प्रस्तुत किया, उसमें प्रकृति के प्रति उनकी निरीक्षणप्रियता के साथ ही शैली की जीवन्तता दिखती है। उन्हें आकाश का नीलापन, जल की नीलिमा, गुलाब की लालिमा समान रूप से आन्दोलित करती रही।

उनकी प्रकृति निरीक्षण से मैं तो अवाक रह गया जब मैंने देखा कि उन्होंने मिट्टी की भौतिक रचना के विषय में इतनी सारी बातें लिख दी हैं जो एक मृदा-भौतिक-विज्ञानी के क्षेत्र में आती हैं। स्पष्ट है कि उनका निरीक्षण, चिन्तन एवं लेखन जीवन की मूलधारा से जुड़ा था। उन्हें ललक थी ग्रामीणों को भी सद्ज्ञान प्रदान करने की। वे लिखते हैं—

"जल से देहातों की छटा निराली बन जाती है। चाहे पहाड़ी सोता हो या सड़क के किनारे की तलैया। दक्षिण भारत की खेती में इन ताल-तलैयों ने महत्वपूर्ण हाथ बँटाया है। पानी से भरे ताल मानों मनुष्य के मुखमण्डल के नेत्र हों। सूर्य के चमकने पर इनमें भरा पानी चटक रंग का रहता है, किन्तु बादल छाने पर धुँधला पड़ जाता है। जल में सिल्ट या मिट्टी के सूक्ष्म कणों को वहन करने की प्रभूत क्षमता है। ये सूक्ष्मकण इन तालों के जल को विशिष्ट रंग प्रदान करते हैं। जब ये कण समुद्र के नमकीन जल में जा मिलते हैं तो जल का गंदलापन बैठने लगता है। गंदला जल लाल दिखेगा, उसके बाद पीले, हरे रंग दिखेंगे और फिर गम्भीर सागर का नीला रंग।... यद्यपि जल बहुतायत से मिलने वाला द्रव है, किन्तु पशु तथा वनस्पति जीवन का पालक होने से यह असाधारण द्रव है और इसीलिए इसके गुणों के विषय में अधिकाधिक शोध किये जाने की आवश्यकता है।"

इसी प्रकार मौसम के बारे में रामन लिखते हैं, "शहराती व्यक्ति के सामने कहाँ दिखाता है सूर्य के उदय तथा अस्त होने की भव्यता। उसकी आँखों के सामने दिखती हैं ऊँची-ऊँची इमारतें और विस्तीर्ण आकाश के नाम पर थोड़ा-सा आकाशखण्ड। रात्रि के समय तारों के बजाय सिनेमा के पर्दे पर सितारे देखते हैं। सूर्य तथा चन्द्रमा रहें या न रहें, उसकी बला से। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए मौसम विज्ञान पर जितना बल दिया जाये थोड़ा है, किन्तु खेद का विषय है कि किसी विश्वविद्यालय ने इस विषय को पढ़ाने या इस पर खोज करने की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया।" मुझे लगा कि हमारे लोकप्रिय विज्ञान लेखकों को रामन का अनुकरण करना चाहिए। यदि विज्ञान की सभी शाखाओं के विशेषज्ञ अपने अनुभवों को, अपनी शोधों को सरल, साहित्यिक शैली में लिख सकें तो भारतीय भाषाओं की विज्ञान पत्रिकाओं की काया पलट हो जाय।

आइए ! रामन शताब्दी के अवसर पर उस महापुरुष का स्मरण करें और उनसे प्रेरणा प्राप्त करके अपने पावन देश को समृद्ध बनावें। ज्ञान का दान सबसे बड़ा दान है। रामन ने सबों के लिए अपने ज्ञान को सुलभ बनाया। वे वन्दनीय हैं, अविस्मरणीय हैं और ज्योतिपुंज की तरह हमारे लिए मार्गदर्शक हैं। □□

जो जाति अपनी भाषा में नहीं सोचती, अपनी भाषा में अपना साहित्य नहीं लिखती, अपनी भाषा में अपना दैनिक कार्य सम्पादित नहीं करती, वह अपनी परम्परा से छूट जाती है। अपने व्यक्तित्व को खो बैठती है और उसके स्वाभिमान का प्रचण्ड विनाश हो जाता है।

—राष्ट्रकवि दिनकर'

विलक्षण प्रतिभा के धनी चन्द्रशेखर वेंकटरामन

डॉ० अशोक कुमार गुप्ता

चन्द्रशेखर वेंकट रामन एक प्रतिभाशाली एवं विलक्षण बुद्धि के व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतवर्ष में आधुनिक विज्ञान का सूत्रपात किया था और उन्हें, भौतिकी विषय में किये गये अन्वेषणों पर 1930 में 'नोबेल पुरस्कार' मिला था। चन्द्रशेखर वेंकटरामन का जन्म तमिलनाडु के एक गाँव में 7 नवम्बर 1888 को हुआ था। बचपन से ही उन्हें पढ़ाई में बहुत रुचि थी। अपनी आठवीं कक्षा की पढ़ाई के साथ उन्होंने बी० ए० तक की किताबें पढ़ डाली थीं। उसी लगन व प्रतिभा के बल पर 11 वर्ष की आयु में ही उन्होंने मैट्रिक में सर्वप्रथम स्थान पा लिया 14 वर्ष की आयु में मद्रास के प्रेसिडेन्सी कॉलेज में बी० ए० में उन्होंने प्रवेश ले लिया। अपनी कक्षा में सबसे कम उम्र के होते हुए भी वे अपनी कुशाग्र बुद्धि से अध्यापकों को चकित कर देते थे। उन्हें प्रयोगशाला व पुस्तकालय में जाकर उपकरण व पुस्तकों को प्रयोग करने की खुली छूट थी। रामन ने मात्र 16 वर्ष की आयु में अपना पहला सफल प्रयोग किया। स्पेक्ट्रोमीटर से प्रिज्म को नापते हुये उन्होंने देखा कि आपतन (इन्सीडेन्ट) के पृष्ठसर्पी कोण (ग्रेजिंग एंगिल) के निकट कुछ विवर्तन (डिफ्रेक्शन बैण्ड या स्पेक्ट्रम) बनते हैं। इसका क्या कारण हो सकता है? उपलब्ध साहित्य में उन्हें इसका समुचित उत्तर नहीं मिला। पर उन्होंने अपने प्रयोग द्वारा इसका उत्तर ज्ञात कर लिया। उस शोध को उन्होंने शोध-पत्र के रूप लन्दन की 'फिलॉसफिकल मैगज़ीन' में भेजा। शोध-पत्र 'अनसेमेट्रिकल डिफ्रेक्शन बैण्ड्स ड्यु टू ए रेक्टैंगुलर एपरचर' शीर्षक से नवम्बर 1906 के अंक में छप गया। एक विद्यार्थी के नाते यह उपलब्धि उनकी विलक्षण बुद्धि की परिचायक थी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक रैले ने उस शोध-पत्र की प्रशंसा करते हुये उन्हें 'प्रोफेसर' कह कर सम्बोधित किया था। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि वेंकटरामन उस समय मात्र विद्यार्थी ही थे। एम० ए० करने के बाद केवल 18 वर्ष की आयु में ही उन्होंने भारतीय वित्त सेवा की परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया और डिप्टी एकाउन्टेट जनरल के पद पर कार्य करने लगे। नौकरी में भी वह विज्ञान को नहीं भुला सके। प्रयोगशाला से उनका सम्पर्क बना ही रहा। विभिन्न स्थानों पर रहने पर भी वह नौकरी के साथ-साथ प्रयोग करते रहे। परिणामस्वरूप उन्होने तीन शोध-पत्र और प्रकाशित किये। एक शोध-पत्र 'प्रोसीडिंग ऑव रॉयल सोसायटी' लन्दन में भी प्रकाशित हुआ। वह उस समय ध्वनिकी तथा प्रकाशीय विषयों पर शोध कार्य करते थे। 1917 में 25 वर्ष की आयु में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में 'सर तारक नाथ पालित प्रोफेसर' का पद स्वीकार कर लिया। अब वे प्रयोगशालाओं के अभिन्न अंग बन गये। अपने कार्यों से वे जब भी अवसर पाते थे प्रयोगशाला में चले जाते और प्रयोग करते थे। कलकत्ता के इंडियन एसोसियेशन फॉर द कल्टीवेशन ऑव साइंस' से गहरे जुड़े थे। इनके अथक प्रयास से एसोसियेशन की प्रयोगशाला विश्वविख्यात हो गई। रामन के उच्च कोटि के शोध-पत्र विश्व के सर्वश्रेष्ठ शोध जर्नलों में छपने लगे। 1921 में वे अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय कांग्रेस में भारत का प्रतिनिधित्व करने ऑक्सफोर्ड गये। वहाँ उनका परिचय जे० जे० थामसन, रदरफोर्ड, डब्लू० एच० बेग जैसे विश्वविख्यात वैज्ञानिकों से हुआ। लौटते समय महासागर के गहरे नीले रंग ने उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। सागर का रंग नीला क्यों होता है? उन्हें इसका उत्तर जानने की उत्कंठा हुई। कलकत्ता लौटकर उन्होंने अपने प्रयोग इसी प्रश्न पर केन्द्रित किये। उन्होंने पाया कि ठोस, द्रव अथवा गैस पर जब आर्क लैम्प द्वारा प्रकाश डाला जाता है तो उसके प्रकीर्ण प्रकाश के स्पेक्ट्रोग्राफ की सहायता से जाँच करने पर उसके वर्णक्रम में कुछ नई रेखायें दिखती हैं, जो मूल रेखाओं से भिन्न होती हैं।

यह 'रामन प्रभाव' के नाम से विख्यात हो गया। 1930 में उन्हें 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। उस समय उनके पास अधिक सुविधायें न होने पर भी उन्होंने पूरे विश्व में अपने कार्य का सिक्का जमा दिया। 1921 से 1927 तक किये गये प्रयोगों ने उन्हें विश्व के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों की कतार में खड़ा कर दिया। इस प्रकार उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में भारत का गौरव बढ़ाया।

रामन ने एक नया सिद्धांत प्रतिपादित किया— "प्रकाश का प्रत्यास्थ प्रकीर्णन सिद्धांत"। उनका कहना था कि पानी का नीला रंग जल-अणुओं द्वारा प्रकाश की किरणों के प्रकीर्णन के कारण होता है। उन्होंने सोचा कि यदि पानी में ऐसा होता है तो अन्य द्रवों व गैसों में भी यह प्रभाव होना चाहिए। 1928 में 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त अमेरिकी वैज्ञानिक एस० सो० काम्पटन ने 'काम्पटन प्रभाव' प्रतिपादित किया था। उनके अनुसार किसी पदार्थ से टकराने पर एक्स-किरण के प्रकीर्णित किरण की आवृत्त आपतन किरण से कम होती है। 'रामन प्रभाव' को 'काम्पटन-प्रभाव' से दिशा और गति मिली थी।

क्षीण आवृत्ति के कारण प्रकाश के प्रकीर्णन से प्राप्त आवृत्ति में होने वाले परिवर्तनों को प्रायोगिक तौर पर मापे जा सकने की सम्भवनायें बहुत कम थीं, पर 1960 में लेसर के आविष्कार से 'रामन स्पेट्रोस्कॉपी' में नई जान आ गई। अनुसंधानकर्ता लेसर-रामन स्पेट्रोस्कॉपी का उपयोग कर पदार्थों की आण्विक संरचना तथा अन्य गुणों पर अध्ययन करने लगे।

लेसर-रामन स्पेट्रोस्कॉपी अब बहुत उपयोगी हो चुका है। इससे अणुओं की संरचना ज्ञात करना अत्यन्त सरल हो गया है। एक अणु में परमाणुओं के मध्य लगने वाले बल को ज्ञात करने के लिए 'रामन-प्रभाव' बहुत उपयोगी है। अतः इस कार्य हेतु 'हाई रेजुलेशन रामन स्पेक्ट्रोस्कॉपी' का विकास हो गया जो बहुत सरल एवं उपयोगी है। प्रोटीन के बृहदअणुओं की संरचना 'रामन प्रभाव' द्वारा संभव ही नहीं, सरल भी हो गयी है, क्योंकि इससे बहुत कम आवृत्तियों वाले आण्विक कम्पनों को पहचाना जा सकता है। 'रामन प्रभाव' से वायरसों की संरचना, 'हाई रेजोनेन्स (अनुनादी) रामन स्पेट्रोस्कॉपी' और 'सतह अनुनादी रामन स्पेट्रोस्कॉपी' द्वारा ठीक से मालूम किया जा सका है।

असाध्य रोगों को जानने तथा उनके लिये औषधि ढूंढ़ने के लिये रामन स्पेट्रोस्कॉपी बहुत उपयोगी है। यही नहीं, मानव कोशिकाओं में विभिन्न ओषधियों के प्रभाव को भी इस स्पेट्रोस्कॉपी विधि द्वारा जाना जा सकता है। □□

[पृष्ठ 8 का शेषांश]

महत्व नहीं रखते। उनके लिए ईश्वर वह है जो पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उसे वहीं खोजना उचित होगा। उनका विश्वास था कि भौतिकी के क्षेत्र में होने वाली महत्वपूर्ण खोजें ब्रह्माण्ड में छिपे उस अप्रत्यक्ष की ओर ले जा रही हैं। वही अप्रत्यक्ष, निहित सत्य ही ईश्वर है। अतः नास्तिकता का तो प्रश्न ही नहीं। वे यह भी मानते थे कि धार्मिक एकता, जैसी आज हम सोचते हैं, वह संभव नहीं। एकता संभव हो सकती है केवल विज्ञान के मंच से। विज्ञान ही संपूर्ण सहमति का आधार प्रदान कर सकता है। □□

डॉ० रामन का मानवीय पक्ष

श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी

यहाँ मैं डॉ० रामन के व्यक्तित्व के उस पक्ष की चन्द बातें कहने का प्रयास करूँगी जो उन्हें एक सम्पूर्ण मानव बनाती हैं। कहा जाता है कि डॉ० रामन के लिए विज्ञान उनके जीवन का अविभाज्य अंग था। वैसा ही अविभाज्य जैसा उनकी नाड़ियों में बहने वाला रक्त। पर विज्ञान के प्रति इस अदम्य निष्ठा की प्रेरणा उन्हें मिलती थी अपने चारों ओर की प्रकृति से। वस्तुत: उनके सभी बड़े आविष्कारों का जन्म ही प्रकृति के प्रति उनकी अदम्य और गहरी उत्सुक्ता से हुआ। प्रकृति से उन्हें बेहद प्यार था। उसमें छिपा सौन्दर्य उन्हें उतनी ही तीव्रता से आकर्षित करता था जितना विज्ञान के अनसुलझे रहस्य। उगते और डूबते सूरज का सौन्दर्य, पुष्पों की कोमल पंखुड़ियों की चमक और पत्थर के अनगढ़ टुकडों में छिपे आकार—सबके प्रति उनके मन में एक गहरी संवेदना थी और वे इन अत्यन्त साधारण रोज़मर्रा के दृश्यों का भी रसास्वादन पूरे मनोयोग से कर सकते थे। साधारण के प्रति यह निष्ठा ही उन्हें असाधारण बनाती थी। उनके एक शिष्य डॉ० जयरामन ने अपने संस्मरण में एक स्थान पर लिखा है कि वे और उनके साथी सभी के मन में रामन के प्रति इतनी सम्मान की भावना थी कि सामान्यतया जैसा होता है कि अपने पूज्यजनों के समक्ष भावना का प्रदर्शन करना बहुत अच्छा नहीं समझा जाता अत: वे लोग चाहते हुये भी कभी डॉ० रामन को उनके जन्मदिन पर बधाई नहीं दे पाते थे। एक बार बड़ी हिम्मत करके सबने संस्थान के माली से ही फूलों का गुच्छा बनवाकर डॉ० रामन को उनके जन्म-दिन पर शुभकामनाओं के साथ भेंट कर दिया। रामन अपने शिष्यों के इस अनपेक्षित भाव-प्रदर्शन से प्रसन्न हुये पर उन्होंने पूछ ही लिया, "यह बधाई वाला गुलदस्ता कहीं मेरे संस्थान के बगीचे से ही तो नहीं तैयार किया गया है ?" सच्चाई यही थी। बहरहाल उन्होंने धन्यवाद तो दिया पर इतना कहते हुये कि "ये फूल इस गुलदस्ते से अधिक पौधों पर ही शोभा पाते।"

गुलाब के फूल उन्हें बेहद प्रिय थे। वे कहते थे, "मैं गुलाब के फूल तोड़ता नहीं। मैं सुबह-सुबह उन्हें प्रणाम करके कहता हूँ कि हे गुलाब मुझे भी अपनी तरह दिन भर हँसता-मुस्कुराता रखो।" उनका फूलों के प्रति यह अदम्य प्यार ही उन्हें प्रेरणा देता था, फूलों के बदलते रंगों के रहस्य की खोज करने की। प्रकृति ही नहीं, संगीत भी उन्हें बहुत प्रिय था। शास्त्रीय संगीत सुनना और वायलिन बजाना उनका मधुर शौक था और यही थे विश्राम के वे कुछ दुर्लभ क्षण, जो उन्हें अपने वैज्ञानिक कार्य-कलापों की व्यस्तता के बीच मिलते थे।

उनके व्यक्तित्व का सबसे प्रमुख आकर्षण था, उनकी सरलता। उस अतिमानवीय मस्तिष्क के साथ एक अत्यन्त सहज, शिशुओं जैसा निश्छल हृदय जुड़ा था। अपनी ख्याति के चरम पर पहुँच कर विदेशों की अनेक यात्राओं के बाद भी उनका प्रिय भोजन था—दही और चावल। उनकी दृष्टि में एक दक्षिण भारतीय के लिए इससे स्वादिष्ट और कोई भोजन हो ही नहीं सकता था। विदेश की बड़ी-बड़ी सभाओं और सम्मेलनों में वे अक्सर अकेले ऐसे व्यक्ति होते थे जो शराब को छूते भी नहीं थे। इस सिलसिले में एक घटना का उल्लेख किया जाता है। जब रामन 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त करने स्टॉकहोम गये तो उन्हें शराब का प्याला देते हुये किसी साथी वैज्ञानिक ने उन पर हल्का व्यंग्य किया कि सुबह आपने एल्कोहॉल पर रामन प्रभाव के बारे में सुना अब रामन पर एल्कोहॉल का प्रभाव देखिये। पर रामन तो विराट् व्यक्तित्व थे, जो दूसरों पर अपना प्रभाव डालते थे। अत: उन्होंने उस मदिरा को सधन्यवाद वापस कर दिया।

व्यक्तित्व का एक और प्रभावी पक्ष था—उनकी हास्यप्रियता। वे अत्यन्त गंभीर तथ्यों को भी बड़े हल्के

ढँग से श्रोता तक पहुँचा देने की क्षमता रखते थे। आज हम 'जेनेरेशन गैप' या पीढ़ियों के बीच अंतराल की बात करते हैं, पर रामन की तरह सरल ढँग से शायद ही अन्य कोई वैज्ञानिक-विषयों को स्कूली बच्चों को भी सहजता से समझा देने की क्षमता रखता हो।

मेरी समझ में रामन की सबसे बड़ी विशेषता थी उनका स्वदेश-प्रेम। वे चाहते थे कि आयातित विज्ञान अथवा वैज्ञानिक साधनों पर निर्भर न होकर हमें अपनी आवश्यकता के अनुरूप सब कुछ भारत में ही बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने बहुत ही साधारण उपकरणों से कार्य किया और असाधारण बने। कहते हैं एक बार कोई छात्र प्रयोगशाला में कुछ उदास दिखा। उन्होंने उससे उदासी का कारण पूछा। छात्र ने बताया कि वह जिस समस्या पर एक किलोवाट की ट्यूब से काम कर रहा उसी समस्या पर विदेश की किसी प्रयोगशाला में पाँच किलोवाट की ट्यूब से काम किया जा रहा है। उसे डर था कि अच्छी सुविधा न मिलने से उसके कार्य का स्तर गिर जायेगा। रामन ने तुरंत समाधान सुझाते हुए कहा, "तुम उसके लिए पाँच किलोवाट की ट्यूब की जगह अपना दस किलोवाट का दिमाग लगा दो।" तो यह था उनका स्वदेशी के प्रति और उससे भी बढ़कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति निष्ठा। छोटी या बड़ी बाधायें कहीं भी उनका मार्ग नहीं रोक पाती थीं।

भाषाई एकता के सम्बन्ध में रामन के विचार आज की परिस्थिति में भी महत्वपूर्ण हैं। उनका मत था कि अगर किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष से आत्मीयता स्थापित करनी है तो सबसे अच्छा तरीका है उसी की भाषा में बोलना। अपने एक भाषण के दौरान उन्होंने हँसते हुए यह भी बताया कि यही कारण है कि उनकी अर्धांगिनी लेडी रामन उनकी अपेक्षा बंगलोर के समाज में अधिक लोकप्रिय थीं क्योंकि वे अनेक भाषायें बोल लेती थीं। अपनी बातों को किसी तक प्रभावपूर्ण तरीके से पहुँचाने के लिए सुनने वाले की भाषा का प्रयोग ही श्रेयस्कर रहता है। उनके समकालीनों ने लिखा है कि उनकी वक्तता को सुनना अपने आप में एक बड़ा आनन्द था। वे अपने भाषणों में पूरी तरह उपयुक्त और समर्थ व्यंजनाओं का उपयोग करते थे। ऐसे शब्दचित्र प्रस्तुत करते थे वे जो कोई भी पाठ्य-पुस्तक नहीं दे सकती थी। वैज्ञानिक मुहावरे सीखने के लिए तो रामन के भाषण एक खज़ाना होते थे। अक्सर वे विदेशी नामों के सही उच्चारण भी बताते थे। और सबसे बड़ी बात यह कि श्रोता को या प्रश्नकर्ता को कभी यह आभास नहीं होने देते थे कि वह स्वयं अज्ञानी है और उनकी विद्वता के बोझ से दबाया जा रहा है।

निःसंदेह रामन वैज्ञानिक के रूप में महान थे। उनकी बौद्धिक क्षमता भी अपूर्व थी और उस सबके विषय में कुछ कहना तो सूरज को चिराग दिखाने जैसा होगा। किन्तु उतना ही निर्विवाद है यह तथ्य कि वे एक उच्च कोटि के मानव भी थे क्योंकि वे विज्ञान के साथ-साथ मानव को भी प्यार करते थे। इस संदर्भ में एक पढ़ी हुई घटना याद आती है। उनकी संस्थान ने किसी प्रशिक्षार्थी को बुलाया था। साक्षात्कार के बाद वह उपयुक्त नहीं पाया गया। कार्यालय को उसे यात्रा भत्ता देकर विदा कर देने का आदेश दे दिया गया। संयोग से आवेदक को जब पैसे मिले तो उसने पाया कि वे उचित देय से कुछ अधिक हैं। वह उसे कार्यालय में लौटाने गया तो रामन मिल गये। रामन ने उसे पुनः देखा तो कुछ तीखे स्वर में बोल उठे, "मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि तुम्हें नहीं लिया जा सकता। फिर क्यों खड़े हो?" आवेदक ने निवेदन किया कि वह तो कार्यालय द्वारा ग़लती से ज्यादा दिया गया पैसा लौटाने आया है। कहते हैं रामन ने उसे तुरन्त वापस बुला लिया—"आओ, तुम्हें चुन लिया गया। तुम्हारा भौतिकी का ज्ञान भले ही कम है पर कोई बात नहीं, वह तो मैं तुम्हें सिखा लूँगा। तुम आदमी चरित्रवान हो, इतना काफी है।"

और अंत में रामन का धार्मिक पक्ष। उन पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे नास्तिक हैं, पर गाँधी से अपनी एक भेंट में रामन ने स्पष्ट कर दिया था कि धर्म और ईश्वर उनके लिए प्रचलित अर्थों में कोई

[शेष पृष्ठ 6 पर]

रामानुजन : गणित के शिखर

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

श्रद्धेय स्वामी जी, उपस्थित विद्वतजन एवं मित्रों !

आज हम यहाँ विज्ञान परिषद् भवन के पुस्तकालय कक्ष में इस सदी के महानतम भारतीय गणितज्ञ स्वर्गीय रामानुजन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर चर्चा करने के उद्देश्य से एकत्र हुए हैं। मैं प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव परिषद् द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'विज्ञान' का वर्तमान संपादक आप सबका इस विचार गोष्ठी में स्वागत करता हूँ।

रामानुजन का जन्म 22 दिसम्बर 1887 को हुआ था। इस प्रकार उनके जन्म के 100 वर्ष पूरे हो चुके हैं। देश-विदेश में रामानुजन के शोधकार्यों का पुनर्मूल्यांकन हो रहा है। उन्होंने संख्याओं के सिद्धान्त पर काम किया। अंकों के साथ ही अंकों से सम्बन्धित एक कहानी याद आ गई।

आज से लगभग 1200 वर्ष पहले सिंध में एक राजा था श्री राम। उसके एक मंत्री अरब देश के रहने वाले थे ईसा-बिन-दाहिर। संस्कृत और यूनानी भाषाओं का प्रकाण्ड पण्डित, गणित का विद्वान। राजा तो युद्धों में व्यस्त रहता और राजकार्य मंत्री संपादित करता। पर वर्षाकाल में जब मन मार कर राजा को महल में रहना पड़ता, तो राग-रंग की सारी व्यवस्था के बावजूद राजा सदा रहता उदास-परेशान। बिना युद्ध के उसका मन किसी काम में न लगता।

ईसा-बिन-दाहिर ने एक तरकीब लड़ाई। वह एक चौसठ खाने वाली 'बिसात' और सोलह-सोलह सफेद और काली मोहरें (गोटें) लेकर राजा के पास आया। और मोहरें कैसी, ? कोई राजा, कोई मंत्री, कोई हाथी, कोई घोड़ा और कोई पैदल। मंत्री ने राजा को यह खेल वाली लड़ाई—शतरंज—समझानी शुरू की। राजा तो आदी था खुले मैदान की लड़ाई का। प्रारम्भ में उसका मन बिल्कुल न लगा। पर धीरे-धीरे जब खेल राजा की समझ में आ गया तो मारे खुशी के उछल पड़ा। और अब जब वह मंत्री के पास खेलने बैठता तो कई-कई घंटे खेलता ही रहता। अब राजा राजकाज पर भी ध्यान देने लगा। सभी प्रसन्न। राजा ने प्रसन्न होकर मंत्री से इनाम माँगने को कहा। पहले तो मंत्री ने सादर मना कर दिया, पर राजा के बार-बार बल देने पर मंत्री ने कहा—"राजन यदि आप देना ही चाहते हैं तो सेवक को गेहूँ के दाने दीजिए। इसी शतरंज की बिसात को गेहूँ के दानों से भरवा दीजिए। पहले खाने पर गेहूँ का एक दाना, दूसरे पर दो, तीसरे पर चार चौथे पर आठ, यानी हर खाने पर पिछले खाने के दुगने।"

राजा मुस्कराया और बोला, "बस। इतना ही। अरे ! माँग ही रहे हो तो हीरे, मोती, सोना, चाँदी माँगो।"

मंत्री बोला, "नहीं अन्नदाता ! मेरे लिए ये अन्न के दाने ही बहुत हैं।"

बिसात पर गेहूँ के दाने रखे जाने लगे। बाइसवें-तेइसवें खाने पर तो गाड़ी में लादकर गेहूँ आने लगा। गेहूँ का भण्डार खाली होने लगा। राजा घबराया, राजा को क्या मालूम गणित का चमत्कार ! हिसाब लगाया जाने लगा और पता चला कि ईसा-बिन-दाहिर को इनाम देने के लिए दुनिया में पैदा होने वाले गेहूँ की दो हजार वर्ष की फ़सल उसके नाम करनी पड़ती।

ऐसे ही एक दूसरे गणित के जादूगर भारत में उस समय पैदा हुए जब भारत में अंग्रेजों का राज्य था और अंकों के इस महान खिलाड़ी का नाम था श्री निवास रामानुजन।

मैं यहाँ उन कठिनाइयों की चर्चा नहीं कर रहा हूँ। जिनका सामना रामानुजन को अपने बचपन से ही करना पड़ा। मैं उनके द्वारा लिखे गए तीन प्रसिद्ध नोट बुकों की भी चर्चा नहीं कर रहा हूँ। मैंने इण्टर में एक महीने गणित पढ़ा, समझ पाने में असमर्थ रहा और गणित छोड़कर जीवविज्ञान का विद्यार्थी बन गया। किन्तु ऐसा सुनने में आता है कि गणित में जो काम रामानुजन कर चुके हैं उसे समझने में प्रथम

[शेष पृष्ठ 11 पर]

स्वामी जी के भाषण से—

गणित के महारथी रामानुजन

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

आज रामानुजन हमारे सामने नहीं हैं। उनके जन्म के सौ वर्ष से अधिक हो चुके हैं। इस देश में प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों का इतिहास में प्रभाव नहीं है। लंबी आयु वाले और छोटी आयु वाले प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों का अपने देश में कभी अभाव नहीं रहा। स्वामी शंकराचार्य अल्पायु और रामानुजन भी केवल 32 वर्ष की अल्पायु में पराकाष्ठा पर पहुँच गये। विवेकानंद भी छोटी उम्र में चले गये। रामानुजन का पक्ष गणित का पक्ष था।

आजकल के विज्ञान में यदि शिष्य परंपरा रहती है तो समझने वाले बहुत रहते हैं। रामानुजन के साथ एक त्रासदी यह है कि उनका कार्य अभी भी पाठ्यक्रम का अंग नहीं है, संभवतः आगे भी न हो। उन्होंने कोई शिष्य-परंपरा नहीं छोड़ी। यही कारण है कि रामानुजन के कार्यों का समावेश पाठ्यपुस्तकों में नहीं हो सका। रामन को हम ज़्यादा समझते हैं, क्योंकि उनके प्रतिभाशाली शिष्य हैं, जो उनके कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं।

रामानुजन ने गणित की अनेक पुस्तकें पढ़ी थीं। फ़िज़ियोलॉजी भी पढ़ी, पर यह उनके पल्ले न पड़ी। उनकी रुचि तो संख्या सिद्धांत में थी। और संख्याओं का खेल वे बड़े मज़े से खेलते थे।

संख्याओं की खोज अपने ही देश में हुई थी। रामानुजन ने भी संख्याओं के ही क्षेत्र में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की। वे अंकविद्या के महारथी थे। उन्होंने विभिन्न अंकों के व्यवहार एवं गुणों के बारे में काफ़ी जानकारी अपने नोटबुक के रूप में रख छोड़ी है। उनकी नोटबुक में लगभग 2000 सूत्र हैं। उनमें से अनेक न तो सही सिद्ध हो सके हैं और न ही गलत। लेकिन उनकी नोटबुक में यह सारा ज्ञान सूत्रों एवं अस्पष्ट संक्षिप्त कथनों के रूप में है। उन असंबद्ध सूत्रों एवं कथनों की व्याख्या एक दुरूह कार्य है। सारे विश्व के गणितज्ञ लगे हुए हैं। जब यह काम पूरा होगा, तभी उनकी प्रतिभा को अच्छी तरह से समझ कर मूल्यांकित किया जा सकेगा।

मैं तो स्वयं गणितज्ञ भी नहीं हूँ। रामानुजन को समझने के लिए सुरेश राम भाई की पुस्तक अच्छी है। रामानुजन बहुत भाग्यशाली थे कि उन्हे हार्डी जैसा गुरु मिला। हार्डी ने रामानुजन की प्रतिभा को पहचाना, प्रोत्साहित किया और इसी के फलस्वरूप रामानुजन को 'रॉयल सोसायटी' में प्रवेश मिल गया।

रामानुजन के वर्गों से संबंधित एक उदाहरण देना चाहूँगा। माना कोई संख्या 65 है। अब यदि इसका वर्ग बनावें तो हर ओर से छोटी संख्याओं का जोड़ 65 ही आता है।

17	24	1	8	15
23	5	7	14	16
4	6	13	20	22
10	12	19	21	3
11	18	25	2	9

इस गोष्ठी के माध्यम से मैं 'विज्ञान परिषद्' के पदाधिकारियों को एक सुझाव देना चाहूँगा। परिषद् अपनी त्रैमासिक 'अनुसंधान पत्रिका' का एक अंक रामानुजन पर निकाले। उसमें शोध स्तर की सामग्री हो, हल्की-फुल्की सामग्री नहीं। मैं इस संबंध में परिषद् की पूरी सहायता करूँगा।

इन्हीं शब्दों के साथ मैं उस महान व्यक्ति को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। □□

रामानुजन को श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ

प्रो० शिवगोपाल मिश्र

क्रिया सिद्धिः सत्ये भवति, महतां नोपकरणे ।

यह उक्ति उन महान विभूतियों पर लागू होती है जो कुछ ही काल में विलक्षण से विलक्षण काम कर दिखाते हैं । श्री रामानुजन ऐसे ही विलक्षण प्रतिभाशाली नवयुवक थे । उन्होंने अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए अपने प्रिय विषय गणित का चिन्तन-मनन जारी रखा । संयोग ही था कि उनकी विलक्षण प्रतिभा से दूर देश का एक अन्य मनीषी प्रभावित हुआ और उसने इनके विकास के लिए वह उर्वर-भूमि प्रदान की जिससे सारे लोग आज भी चमत्कृत हैं ।

ऐसा लगता है कि दक्षिण भारत प्राचीन काल से ऐसी विभूतियों को जन्म देता रहा है । उत्तर-दक्षिणी के पचड़े में न पड़कर मुझे इतना ही कहना है कि हमें अपनी विलक्षण प्रतिभाओं की खोज करते रहना चाहिए । जिससे वे "शीर्षते वन एव वा"—निर्जन में हीन रही आवें अपितु "मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य"—विश्व-विश्रुत बने ।

विज्ञान परिषद् जिस प्रकार लेखकों की खोज करती है उसी प्रकार विज्ञान के विविध क्षेत्रों के उदीयमान नवयुवकों को प्रोत्साहन देने की योजना बनावे । जिस तरह 'रॉयल सोसायटी' अपना कर्तव्य निबाहती थी और प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने का अभूतपूर्व कार्य किया, वैसा ही कार्य यह परिषद् करे । इस अमृत वर्ष में यही संकल्प लिया जाय ।

मैं उस विलक्षण प्रतिभावाले नवयुवक की शताब्दी-पूर्ति पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ । मुझमें वह सामर्थ्य नहीं कि उनके कृतित्व के विषय में कुछ अधिकारपूर्वक कह सकूँ । □□

[पृष्ठ 9 का शेष]

श्रेणी के गणितज्ञों को भी कठिनाई होती है । संभवतः यही कारण है कि रामानुजन का गणित स्कूल की कक्षाओं तक अभी भी नहीं पहुँच सका है । शायद उन्हें समझने और सरलीकृत करने में एक सदी लग जाये । पर प्रसन्नता है कि शोध प्रारम्भ हो गया है । गणित में नित्य नये अनुसंधान हो रहे हैं । अभी दो वर्ष पहले की बात है कि एक कम्प्यूटर विज्ञानी ने पाई (π) का मान 22/7 दशमलव के 17 मिलियन स्थान तक निकाला है ।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में रामानुजन सदा अस्वस्थ रहे पर गणित में उनकी रुचि पूर्ववत् बनी रही । 26 अप्रैल, 1920 को शून्य पर कार्य करने वाला यह महान वैज्ञानिक महाशून्य में विलीन हो गया । सारा विश्व स्तब्ध रह गया ।

अब मैं अधिक कुछ न कहकर स्वामी जी से निवेदन करूँगा कि वे इस विचार-गोष्ठी के शुभारम्भ की अनुमति प्रदान करें । □□

रामानुजन का अधूरा कार्य पूरा किया जा रहा है

मंजुलिका लक्ष्मी

राजानुजन के व्यक्तित्व के विषय में उनके मित्र **श्री ई० एच० नेविल** ने कहा था—

श्रीरामानुजन कद में मध्यम से कुछ कम लंबाई के ही रहे होंगे। देखने में स्वस्थ्य लगते थे। अन्तिम वर्षों में भले ही रोग ने उनकी काया को क्षीण कर दिया था। उनका सिर बड़ा था और ऊँचे माथे के दोनों ओर उनके लंबे बाल चिपका कर बनाये हुए थे। उनकी हल्की साँवली त्वचा इंग्लैंड प्रवास में कुछ पीली हो चली थी। उनके छोटे कान थे, चौड़ी नाक और हमेशा दमकती रहने वाली आँखें उनके चेहरे की आकर्षक विशेषतायें थी। वे कुछ सीधे होकर चलते थे और चलते समय सिर आगे को बढ़ा रहता था। जब वे चलते-चलते बातें नहीं करते होते थे, तब उनकी बाहें शरीर से कुछ दूर सीधी लटकी रहती थीं और उनकी हथेलियाँ खुली रहती थीं। पर यदि वे चलते हुए, लेटे या बैठे हुए बातें करते रहते थे, तो उनकी उँगलियाँ हिलती-डुलती जागृत रहती थीं; जैसा कि उनका चेहरा जीवंत दिखता था। उनके पास कहानियों का खजाना था। और वे उन्हें इतने रोचक ढँग से सुनाते थे कि अक्सर कहानियों का चरम अंत उनके ठहाकों में ही खो जाता था। उन्हें गणित के बाहर भी कुछ गहरे शौक थे और वे सदा धर्म या राजनीति पर चर्चा करने को तैयार रहते थे। उनके आचार-विचार रोजमर्रा की जिन्दगी में लगभग पूर्णता को छूते थे। इसी कारण वे सदैव एक अच्छे साथी या मेहमान बनते थे। ख्याति और सफलता ने उनकी स्वाभाविक सरलता को प्रदूषित नहीं किया था। अपने मित्रों के प्रति असीम श्रद्धा रखते थे और अद्भुत् तरीकों से अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त करते रहते थे। वह आश्चर्यजनक गणितज्ञ निश्चय ही एक प्यार करने योग्य व्यक्ति भी थे।

सुदूर दक्षिण में बंगाल की खाड़ी और पूर्वी घाट की पहाड़ियों के बीच एक सुन्दर प्रदेश है—"तमिल-नाडु" और इसी प्रदेश की कावेरी नदी के किनारे बसा है—**'तंजावूर नगर'**। ईरोड इसी नगर का छोटा सा हरियाली भरा गाँव है। इस गाँव में एक गरीब ब्राह्मण रहते थे, जिनका नाम था—**श्रीनिवास आयंगर।**

श्रीनिवास आयंगर कुंभकोणम् में मुनीम का काम करते थे। इन्हीं बही खाता पढ़ने वाले मुनीम के घर 22 दिसम्बर सन् 1887 को एक पुत्र ने जन्म लिया, नाम रखा गया—**श्रीनिवास रामानुजन** आयंगर।

प्रारंभिक काल में उस गाँव के परिवेश में बालक की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। यह बालक बचपन से ही ऐसे खेल में आनन्द लेने लगा था जिसमें गणित का उपयोग होता था। उदाहरण के लिए पेड़ों की लम्बाई के बारे में अनुमान लगाना या फिर भागती हुयी भेड़ों को गिनना। पढ़ाई के नाम पर तमिल की वर्णमाला और पहाड़ा, जोड़, गुणा, भाग आदि प्रारंभिक चीजें ही उन्होंने सीखीं। थोड़ा आगे बढ़े तो पिता के साथ बैठकर हिसाब-किताब की बातें सुनीं।

सात वर्ष की उम्र में रामानुजन ने स्कूल जाना शुरू किया। स्कूल था—कुंभकोणम हाई स्कूल। शुरू से ही बालक रामानुजन को केवल गणित के घंटे में ही रुचि रही।

पाँचवीं कक्षा में पढ़ते समय मास्टर साहब ने बताया कि किसी संख्या को यदि उसी संख्या से भाग दिया जाए तो भागफल एक (1) होता है। तभी रामानुजन बोल उठे—"परन्तु मास्टर साहब यदि शून्य को शून्य से भाग दें तो भागफल कुछ नहीं होगा", जबकि मास्टर साहब का जवाब था कि भागफल एक आयेगा। बेचारे मास्टर साहब के लिए भी वह बात एक अचंभा थी, क्योंकि यह बात तो केवल गणित के बड़े-बड़े विद्वान ही समझ पाते हैं।

$$\left(1\tfrac{2}{0} \times \tfrac{0}{0} = \tfrac{0}{0} \rightarrow 1 = 2,\ 2 = 3\right)$$

गणित के अलावा अन्य विषयों में तो अध्यापक उन्हें पिछड़ा हुआ विद्यार्थी समझते थे।

रामानुजन ने 13 वर्ष की आयु में स्वयं ही त्रिकोणमिति पढ़नी शुरू कर दी। (इसमें त्रिभुज के कोणों और भजाओं के मापों से विभिन्न गणनाएँ की जाती हैं—उदाहरणार्थ—पेड़ की ऊँचाई आदि ज्ञात की जा सकती है।) और स्वयं ही विभिन्न सूत्रों की खोज करते गये। बाद में उन्हें मद्रास आने पर मालूम हुआ कि वे सूत्र तो पहले ही खोजे जा चुके थे। 1903 में रामानुजन ने हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की और गणित में शत प्रतिशत अंकों के साथ प्रथम श्रेणी प्राप्त की। कॉलेज के एक मित्र ने उन्हें शूब्रिज कार की पुस्तक 'शास्त्रीय एवं प्रायोगिक गणितसूत्र संग्रह' लाकर दी। इस पुस्तक ने रामानुजन की गणितीय प्रतिभा को जागृत कर दिया।

गणित में मन लगाने के कारण रामानुजन एफ० ए० परीक्षा में गणित के अतिरिक्त अन्य विषयों में फेल हो गये और साथ ही कॉलेज के लिए मिलने वाला 'सुब्रमण्यम वजीफा' भी बन्द हो गया। 1907 में पिता ने उन्हें रास्ते पर लाने के लिए उनका व्याह आठ वर्षीया जानकी से कर दिया।

रामानुजन अब गृहस्थी का खर्च चलाने के लिए नौकरी खोजने लगे।

रामानुजन अपना गणितीय कार्य कागजों पर लिखते जाते थे। उन्हीं कागजों को दिखाकर नौकरी के लिए प्रयत्न करने लगे। मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के निदेशक फ्रांसिस स्प्रिंग ने कागजों से प्रभावित होकर 25 रुपये माहवार पर लिपिक की नौकरी दे दी। 1913 में मद्रास विश्वविद्यालय ने उन्हें किसी मानक उपाधि की अनुपस्थिति में भी उनके कार्यों के कारण 75 रुपये की एक शिक्षा-वृत्ति दी।

इसी बीच रामानुजन ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गणितज्ञ प्रो० जी० एच० हार्डी के पास अपने हल किये हुये 120 सूत्र और प्रमेय भेजे।

इन्हें प्रो० हार्डी और प्रो० लिटिल वुड ने पढ़ा और रामानुजन को कैम्ब्रिज बुला भेजा।

रामानुजन शाकाहारी और कट्टर ब्राह्मण थे। अतः वे स्वयं अपना भोजन बनाते थे। अनेक कष्टों के बीच वे छह वर्षों तक कैम्ब्रिज में रहे।

रामानुजन की स्कूली शिक्षा न होने के कारण उनका कार्य अत्यन्त अव्यवस्थित रहता था। वे बहुत सी गणनाएँ मस्तिष्क में ही कर लेते थे और केवल अन्तिम परिणाम ही लिखते थे।

उनका कार्य हमें उनकी कुछ नोट बुकों और कागजों में मिलता है।

फरवरी 1918 में वे दूसरे भारतीय थे, जो 'रॉयल सोसायटी' के फेलो चुने गये और अक्टूबर में वे ट्रिनिटी कॉलेज, कैम्ब्रिज के फेलो चुने जाने वाले वे सर्वप्रथमी भारतीय थे।

इंग्लैण्ड में कष्टमय जीवन व्यतीत करने के कारण उन्हें क्षय रोग हो गया। सन् 1919 में वापस मद्रास आ गये जहाँ 26 अप्रैल 1920 को मात्र 33 वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हो गया। अन्तिम वर्ष में रामानुजन ने जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किये।

रामानुजन ने गणित के क्षेत्र में जो कार्य किये उनमें प्रमुख हैं—

1. Magic squares (मैजिक स्क्वायर्स)
2. Continued fraction (कन्टीन्यूड फ्रैक्शन)
3. Hyper Geometric Series (हाइपरजियोमेट्रिक सिरीज)
4. Properties of Prime & Composite Numbers (प्रापरटीज ऑव प्राइम ऐण्ड कम्पोजिट नम्बर्स)
5. Elliptical Integrals (एलिप्टिकल इंटेग्रल्स)
6. Partition of numbers (पार्टिशन ऑव नम्बर्स)

और इनके सम्बन्ध में प्रस्तुत की गयी युगान्तरकारी स्थापनाएँ। उनके द्वारा दिए गये सिद्धान्तों को अब लोग समझने की कोशिश कर रहे हैं और उच्च शिक्षा और तकनीकी के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग किए जा रहे हैं।

रामानुजन के समस्त लेख 'कलेक्टेड पेपर्स ऑव श्री निवास' के नाम से इंग्लैण्ड में मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए।

1957 में उनकी नोटबुक भी छपी। उनकी स्मृति में 1950 में मद्रास में 'रामानुजन इंस्टीट्यूट आफ मैथमेटिक्स' की स्थापना हुई। यहाँ रामानुजन के कार्यों पर शोध हो रहा है। इसके अतिरिक्त बम्बई के 'टाटा मौलिक शोध संस्थान' तथा विश्व के कई अन्य देशों में भी रामानुजन के अधूरे कार्यों को पूरा करने और उनका विश्लेषण करने की दिशा में कार्य हो रहे हैं। उनके इस जन्मशती वर्ष में हम सब उस महान गणितज्ञ के प्रति नमन करते हैं। ☐☐

रामानुजन | अमिताभ प्रेमचन्द्र

गणितज्ञ रामानुजन का महत्व केवल इसलिए नहीं है कि वे गणित के क्षेत्र की एक महान विभूति थे, उनका महत्त्व सबसे अधिक इसलिए है कि उनका जीवन और उनकी अद्वितीय उपलब्धियाँ यह सिद्ध कर देती हैं कि मानवीय मस्तिष्क की क्षमता असीम है।

उपरोक्त शब्द रामानुजन के विषय में उनके कार्यों के समीक्षक रिचर्ड ऐस्के ने व्यक्त किए हैं। हम जब रामानुजन की आयु की लघुता पर दृष्टि डालते हैं तो इस कथन की सार्थकता और स्पष्ट हो जाती है।

पन्द्रह वर्ष की आयु में किसी मित्र से उधार ली गई पुस्तक 'सिनॉप्सिस ऑव एलिमेण्ट्री रेजल्ट्स इन प्योर एण्ड अप्लाएड मैथमेटिक्स' ने रामानुजन के व्यक्तित्व में निहित प्रतिभा को गणित के प्रति कमज़ोरी की हद तक उनके प्यार को तो पहले पहचाना जा चुका था पर उस क्षण से उनका प्यार शोध की दिशा में मुड़ चला। यह एक दुर्लभ चमत्कार का श्रीगणेश था। ऐसा शायद ही पहले कभी हुआ हो कि गणित की किसी विशेष औपचारिक शिक्षा के बिना ही कोई विश्वस्तर का प्रथम श्रेणी का गणितज्ञ बन सका हो। रामानुजन के योगदान ने संभावनाओं के ऐसे नये आयामों की सृष्टि की, जिनकी गहराई तक भेदन कर सकना आज सात दशकों बाद भी पूरी तरह संभव नहीं हो सका है। इसी कारण रामानुजन की उपस्थिति एक संयोग ही नहीं था, यह इस सदी की महानतम घटनाओं में एक था।

रामानुजन जैसी विलक्षण प्रतिभा का मूल्यांकन पारम्परिक आधार पर नहीं किया जा सकता। उनका मस्तिष्क किसी भी यांत्रिक नीरसता से भागता था। अतः वे कॉलेज की औपचारिक शिक्षा के लिए अनुपयुक्त सिद्ध हुए। फिर भी गणितीय समस्याओं पर वे जिस एकांतिक लगन से कार्य करते थे और वह भी बिना किसी बाह्य प्रेरणा, प्रोत्साहन या परिवेश के, वह बेमिसाल थी। केवल यही नहीं, उनके इस अविराम परिश्रम का कोई प्रत्यक्ष लक्ष्य भी स्पष्ट नहीं दिखता था। तथापि कोई गहरी अदम्य इच्छा उन्हें इस उच्चतम बौद्धिक और मौलिक अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करती थी।

आगे चलकर उनके कार्य के समीक्षकों ने यह पाया कि औपचारिक शिक्षा के अभाव ने रामानुजन की कार्य शैली में एक बड़ी दरार छोड़ी। रामानुजन ने अपने व्यक्त किए परिणामों की पुष्टि के लिए आवश्यक साक्ष्य जुटाने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। जहाँ उनके पास पूरे साक्ष्य थे भी वहाँ भी उन्होंने उसे कागज पर उतारने की ओर लापरवाही दिखाई। अधिकांशतः वे समस्याओं को पूरी तरह स्लेट पर सुलझाया करते थे ओर उन्हें मिटाकर केवल परिणामों को ही अपनी नोटबुक में अंकित करते थे। आगे चलकर कैम्ब्रिज के अपने गुरु और सहयोगी डॉ० हार्डी के संपर्क में आने के बाद भी रामानुजन की कार्यशैली में गणितज्ञों वाली व्यवस्था नहीं आ सकी।

किन्तु यह अनौपचारिक तरीके से किया गया रामानुजन का लगभग 20 वर्षों का कार्य ही गणितज्ञों को 200 वर्षों तक व्यस्त रखने के लिए पर्याप्त है।

कहा गया है कि रामानुजन उस कोटि के विशुद्ध गणितविज्ञानी थे जिनके लिए गणित भी एक खेल था। फिर भी रामानुजन की इस विशुद्ध गणितीय क्रीड़ा की गणित के अतिरिक्त अन्यान्य क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक डॉ० जगजीत सिंह ने लिखा है, "इस विशुद्ध गणित या रामानुजन के खेल से, इंग्लैंड और यूरोप के बौद्धिक क्षेत्रों में भारत के लिए उस समय सम्मान बढ़ा, जब भारतीय राजनीति के तूफ़ानी नेता तिलक ने 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का नारा नहीं लगाया था। गाँधी और नेहरू द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अंग्रेज़ों के विरुद्ध आंदोलन चलाये जाने से बहुत पहले ही रामानुजन ने अपनी गणित प्रतिभा और शक्ति से

इंग्लैंड के बौद्धिक गढ़ 'रॉयल सोसाइटी' पर कब्ज़ा कर लिया था।"

डॉ० जगजीत सिंह का यह भी मत है कि रामानुजन की यह इच्छा कि उनके गणित को तकनीकी प्रयोगों से अलग रखा जाये, पूरी न हो सकी। 'पायरोमीटरी सिद्धांत' यानी अच्छी धमन भट्टियों के लिए भट्टियों के तापमान की जाँच के कार्य में रामानुजन के कार्य की पूरी सहायता ली गई है। इस तरह परमाणु शक्ति की विस्फोटक विध्वंसक क्षमता के साथ अप्रत्यक्ष रूप से रामानुजन का कार्य भी जुड़ गया है। यह अवश्य संतोषप्रद बात है कि वह परमाणु शक्ति बिजली पहुँचाने या अन्य सामाजिक लाभों के हेतु भी प्रयुक्त हो रही है। सम्भवत: रामानुजन ने अपने कार्यों के सामाजिक प्रभावों के विषय में कोई विचार ही नहीं किया था, क्योंकि उस युग तक ऐसे प्रश्न सर्वसाधारण क्या वैज्ञानिकों को भी नहीं उद्वेलित करते थे।

गणित के क्षेत्र में रामानुजन का सही और ठोस प्रभाव क्या था इसके उत्तर अभी भी धीरे-धीरे आकार ले रहे हैं। उनकी संख्याओं के रहस्यमय संसार की गुत्थियाँ अभी भी सुलझनी बाकी हैं। यह रहस्यमयता और मूल्यांकन में कई दर्शकों की इस देरी का कारण यही है कि रामानुजन अपने समय से बहुत आगे थे। आज यह अन्दाज़ा लगाना भी कठिन है कि यदि रामानुजन को पूरा औपचारिक प्रशिक्षण मिला होता तो उससे क्या अन्तर पड़ता?

पर रामानुजन की गणित के प्रति गहरी भक्ति ने उनके व्यक्तित्व के अन्य सभी पक्षों को आवृत्त कर लिया। सम्भवत: इसी से उनके व्यक्तित्व के धार्मिक पक्ष पर बड़े विरोधपूर्ण विचार व्यक्त किये गये हैं। तथापि इतना तो स्पष्ट है कि धार्मिक आचार-विचारों के प्रति उनकी आसक्ति ने उनके स्वास्थ्य पर चाहे जितना बुरा प्रभाव डाला हो, उनकी गणित के प्रति 'चातक' जैसी अनन्य पिपासा को नहीं प्रभावित किया।

यह सभी बातें एक ही ओर संकेत करती हैं कि भले ही रामानुजन को औपचारिक प्रशिक्षण न मिला हो, भले ही वह एक लंबी आयु भोगने से वंचित रहे हों, भले ही समकालीन विद्वतसमाज द्वारा उनकी महानता की ओर उदासीनता का रुख अपनाया गया हो, पर इन समस्त बाधाओं को जीतकर भी वे अपनी स्वर्अजित प्रतिभा की अमिट छाप छोड़ने में सफल रहे। इसीलिए प्रो० हार्डी ने कहा है कि रामानुजन एक दुर्बोध और अपराजेय मौलिक प्रतिभा वाले व्यक्ति थे जिनके साथ बराबरी के दर्जे पर कार्य करना हार्डी के लिए भी एक सौभाग्य था।

उस विलक्षण प्रतिभा के धनी के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि। □□

[पृष्ठ 17 का शेष]

बड़ी-बड़ी आँखें, चौड़ा माथा, बड़ा सिर और प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे बोस। पर रहन-सहन सादा और बनावट से दूर।

कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ टैगोर की भाँति ही उनका भी यह विश्वास था कि जनमानस में वैज्ञानिक मनोवृत्ति, वैज्ञानिक चेतना, जिसे अंग्रेज़ी में 'सायन्टिफिक टेम्पर' कहते हैं, के प्रादुर्भाव के लिए यह आवश्यक है कि विज्ञान की मूलभूत बातों और नई खोजों को जनसाधारण तक उनकी मातृभाषा में ले जाया जाय। इसके लिए 1948 में बोस ने अपने मित्रों के सहयोग से कलकत्ता में 'बंगीय विज्ञान परिषद्' नामक एक संस्था की स्थापना की। 'विज्ञान परिचय' नामक बंगला भाषा में विज्ञान की एक पत्रिका का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया। बोस को बंगला साहित्य की सेवा के लिए 'जगतारिणी मेडल' भी मिला था। इस पत्रिका का उद्देश्य जनसाधारण में विज्ञान का प्रसार करना था। बोस के 95वें जन्म दिन पर इस गोष्ठी के माध्यम से मेरा विशेष अनुरोध है कि चोटी के वैज्ञानिक अपनी मातृभाषा और विशेष रूप से राष्ट्रभाषा हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान की सर्जना अवश्य करें। तभी सच्चे अर्थों में प्रो० बोस का जन्म दिन मनाने का हमारा उद्देश्य सार्थक होगा।

4 फरवरी 1974 को प्रो० बोस का जीवन दीप बुझ गया। किन्तु जब तक यह सूरज रहेगा, सूरज की रोशनी रहेगी, तब तक 'बोसॉन' सर्वत्र रहेंगे और इन बोसॉनों के साथ बोस का नाम भी रहेगा। इस महामानव को मैं नमन करता हूँ।

प्रो० सत्येन्द्र नाथ बोस : जीवन और उपलब्धियाँ

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

सम्मानित विद्वज्जन !

आज हम लोग यहाँ विश्वविख्यात विज्ञान पुरुष स्वर्गीय प्रोफेसर सत्येन्द्र नाथ बोस के जीवन एवं उपलब्धियों की चर्चा के लिए एकत्र हुए हैं। किसी भी महान व्यक्ति की चर्चा का मूल उद्देश्य यही होता है कि हम उनसे प्रेरणा लें। ऐसे लोग अधिक नहीं होते, जिन्हें अपने जीवनकाल में ही अनुश्रुति या दन्तकथा बन जाने का सौभाग्य मिलता हो। किन्तु प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस ऐसे ही विलक्षण व्यक्ति थे, जो अपने जीवनकाल में ही एक इतिहास पुरुष बन गए थे।

विद्यार्थी सत्येन्द्र जब स्कूल में थे तो उनके गणित के अध्यापक श्री उपेन्द्र बख्शी ने उन्हें 100 में 110 अंक प्रदान किए थे। अध्यापकगण बोस के जटिल प्रश्नों से भयभीत भी रहते थे। कहते हैं "होनहार बिरवान होत चीकने पात"। यह कहावत बोस के साथ पूरी तरह चरितार्थ होती है। क्योंकि आगे चलकर बोस इस शती के महानतम भौतिकीविदों में से एक सिद्ध हुये।

उत्तरी कलकत्ता के 22 ईश्वर मिल लेन में 1 जनवरी 1894 में जन्मे बोस की शिक्षा हिन्दू स्कूल और प्रेसिडेंसी कॉलेज में हुई। 1915 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से गणित में एम० एस-सी० की डिग्री ली। जब प्रसिद्ध शिक्षाविद् आशुतोष मुकर्जी ने ने कलकत्ता में 'यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑव साइन्स' की स्थापना की तो उस समय भौतिकी विभाग में जो दो प्रवक्ता उन्होंने सबसे पहले नियुक्त किए उनमें एक थे सत्येन्द्र नाथ बोस और दूसरे मेघानाद साहा। यह 1916 की बात है। उस समय वहाँ एक अच्छा पुस्तकालय भी नहीं था। पर बाहर की दुनिया में भौतिकी में एक क्रान्ति हो रही थी। जर्मन भौतिकी विद् मैक्स प्लांक 'क्वाटम थियरी' और एलबर्ट-आइंस्टीन 'सापेक्षवाद सिद्धांत' प्रस्तुत कर चुके थे। इसके अतिरिक्त लोगों ने परमाणु के भीतर भी झाँकना शुरू कर दिया था। उस समय भारत में अधिकांश भौतिकीविद् भौतिकविज्ञान की पुरानी पद्धति पर चल रहे थे, पर बोस और साहा दोनों ही उससे असन्तुष्ट थे। वे चाहते थे कि भारत में भी आधुनिक भौतिकविज्ञान का ज्ञान विद्यार्थियों को अवश्य ही मिलना चाहिये।

पर ज्ञान मिले तो कैसे मिले ? विश्व कठिन दौर से गुजर रहा था। 'प्रथम विश्व युद्ध' छिड़ा हुआ था। परिणामस्वरूप भारत में नई पुस्तकें और अनुसंधान पत्रिकायें पहुँच नहीं रही थीं। बोस नई पुस्तकों और शोध-पत्रिकाओं की खोज में जुट गए। सौभाग्य से उस समय एक जर्मन वैज्ञानिक पी० जे० ब्रूहल भारत में ही रह रहे थे। उनके पास से कुछ नई किताबें और शोध-पत्र बोस को मिल गए। पर यह साहित्य जर्मन भाषा में था। साहा और बोस ने जर्मन भाषा सीखी, आधुनिक भौतिकी पर नवोपलब्ध इस साहित्य का अनुवाद अंग्रेजी में किया। यही नहीं, उन्होंने आइंस्टीन के 'सापेक्षवाद सिद्धान्त' (थियरी ऑव रिलेटिविटी) का अनुवाद भी जर्मन से अंग्रेजी में किया। कुछ समय तक साहा और बोस साथ काम करते रहे। पर बाद में साहा विदेश और बोस ढाका विश्वविद्यालय चले गए।

बोस के जीवन में यहीं एक बड़ा मोड़ आया। बोस के एक मित्र जो विदेश गए थे, जब वापस आये तो उन्होंने बोस को प्रसिद्ध भौतिकीविद् मैक्स प्लांक की पुस्तक 'थर्मोडाइनैमिक्स ऐण्ड हीट' की एक प्रति भेंट की। इस पुस्तक में मैक्स प्लांक के सभी मूल शोध-पत्र सम्मिलित थे। बोस इस पुस्तक के अध्ययन में जुट गए। बोस के जीवन का मूल मंत्र था—"**कभी भी किसी विचार को स्वीकार मत करो, जब तक तुम**

स्वयं न संतुष्ट हो जाओ।" अतएव इस पुस्तक के सूत्रों और समीकरणों की जाँच बोस स्वयं करने लगे। फलस्वरूप बोस ने एक युगान्तरकारी खोज कर डाली। यह खोज थियरटिकल फ़िजिक्स या मैथमेटिकल फ़िजिक्स में 'मील का पत्थर' सिद्ध हुई। इस समय बोस 30 वर्ष के भी न थे।

बोस ने मात्र 4 पृष्ठों का एक शोध-पत्र 'प्लांक्स लॉ ऐन्ड लाइट क्वांटम हाइपोथेसिस' भारतीय और दूसरी अनेक विदेशी पत्रिकाओं में प्रकाशन के लिए भेजा। सभी ने छापने से मना कर दिया। उस समय किसे पता था जि भारत जैसे देश के एक अनजाने से विश्वविद्यालय में शोधरत एक वैज्ञानिक ने एक क्रान्तिकारी खोज कर डाली है ?

निराश होकर बोस ने अपना शोध-पत्र 1924 में आइंस्टीन को अवलोकन के लिए भेजा। आइंस्टीन अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने उसका अनुवाद जर्मन भाषा में किया और भौतिकी की एक जर्मन शोध-पत्रिका में प्रकाशित करवाया। इस शोध-पत्र पर आइंस्टीन की टिप्पणी थी—'**एक अगला कदम**'।

बोस के इस शोध-पत्र ने एक सर्वथा नये प्रकार की सांख्यिकी (स्टैटिसटिक्स) को जन्म दिया। सांख्यिकी, जिसकी मदद से बोस ने विकिरण के स्वभाव की व्याख्या की। यह सांख्यिकी 'बोस सांख्यिकी' के नाम से विख्यात है। वे मूल भूत कण, यथा 'फोटॉन' और 'एल्फा कण', जो 'बोस सांख्यिकी' का अनुशीलन करते हैं, उन्हें 'बोसॉन' कहते हैं। इस प्रकार बोस का नाम विज्ञान का अंग हो गया।

1924 में ही 2 वर्षों के अवकाश पर बोस यूरोप गए। वहाँ उनकी मुलाकात **आइंस्टीन, हीसेनबर्ग, एहरेनफेस्ट** जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिकों से हुई। उन्होंने कुछ समय **मैडम क्यूरी** ओर **मॉरिस डे ब्रोगली** की प्रयोगशालाओं में शोध भी किया।

यहाँ मैं बोस की मैडम क्यूरी से मुलाकात की एक रोचक घटना का जिक्र करना चाहूँगा। जब बोस ने मैडम क्यूरी से उनकी प्रयोगशाला में काम करने का अनुरोध किया तो मैडम क्यूरी ने कहा, "पहले कुछ समय फ्रेंच भाषा का अभ्यास करो।" बोस ने तुरन्त विशुद्ध फ्रेंच में उत्तर दिया, "हाँ, मैडम क्यूरी! मुझे फ्रेंच अच्छी तरह आती है।" बोस फ्रेंच भाषा के भी अच्छे ज्ञाता थे।

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लिए बोस को 34 वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। वे आत्म-प्रचार से बहुत दूर थे। 1958 में उन्हें लंदन की 'रायल सोसायटी' का 'फेलो' चुना गया। इसके पूर्व 1926-45 तक वे ढाका विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे। 1945-56 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'खेरा प्रोफेसर', 1952-58 तक 'राज्य सभा' के सदस्य, 1958 में भौतिकी के 'राष्ट्रीय प्रोफेसर', और 1944 में वे 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' के अध्यक्ष रहे। 1954 में उन्हें 'पद्म विभूषण' अलंकरण प्रदान किया गया। 1956-58 तक वे 'विश्वभारती विश्वविद्यालय', कलकत्ता के उप-कुलपति भी रहे।

बोस ने गणितीय भौतिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अनुसंधान किए हैं। लगभग 30 वर्ष की उम्र में उन्होंने 'सांख्यिकी' में और 50 वर्ष की उम्र में 'एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त' में महान योग दिया। कहते हैं 50 वर्ष की आयु के बाद अपने जीवन के शेष 30 वर्षों में बोस ने कोई महत्वपूर्ण अनुसंधान नहीं किया, किन्तु बोस ने इन तीस वर्षों में अनेक विषयों का अध्ययन किया। इनमें भौतिकी के अलावा रसायन विज्ञान, जीवरसायन, खनिज विज्ञान, मृदाविज्ञान, दर्शनशास्त्र, इतिहास, पुरातत्व, ललित कला, साहित्य और भाषायें हैं। अंग्रेजी भाषा पर उनका अधिकार था, फ्रेंच और जर्मन भाषायें वे अच्छी तरह जानते थे, बंगला भाषा में उन्होंने अनेक वैज्ञानिक लेख लोकरुकि के लिखे हैं। भारतीय और यूरोपीय शास्त्रीय संगीत में उनकी गहरी रुचि थी। वे 'इसराज' नामक तंत्रवाद्य बहुत ही बढ़िया बजाते थे। और कुशल वक्ता तो थे ही। उनकी लिखावट सुन्दर और अक्षर मोती जैसे थे।

उन्होंने एक बड़े ही प्रेरक क्षण में **सल्फोनामाइड** अणु की आंतरिक संरचना से छेड़-छाड़ की और उसे एक औषधीय यौगिक में बदल दिया। इसी से आँखों की ओषधि बनाई जाती है।

[शेष पृष्ठ 15 पर]

डॉ० एस० एन० बोस : जिन्हें मातृभाषा द्वारा विज्ञान की शिक्षा प्रिय थी

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

डॉ० एस० एन० बोस का पूरा नाम सत्येन्द्रनाथ बोस था। इनका जन्म 1 जनवरी 1894 को कलकत्ता में हुआ था। इनकी जन्म भूमि और कर्मभूमि बंगाल बनी। पाँच वर्ष की अल्पायु में पढ़ना शुरू किया, किन्तु आँखें बचपन से कमज़ोर थीं। साहित्य, कहानियाँ, नाटक के प्रति बचपन से ही झुकाव था। टेनीसन और रवीन्द्र उनके प्रिय कवि थे।

इनके बाबा अम्बिका चरण तथा पिता सुरेन्द्रनाथ दोनों सरकारी नौकरी में थे। पिता जब कार्य पर जाते तो घर पर अपने बच्चे सत्येन को गणित के प्रश्न हल करने के लिए दे जाते, जिन्हें बालक सत्येन सीमेंट की फर्श पर हल कर रखता। यह बालक पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य अनेक पुस्तकों से प्रश्न हल करता।

15 वर्ष की आयु में सत्येन ने प्रेसीडेंसी कॉलेज में दाखिला लिया। वे अपने समय के सबसे मेधावी छात्र थे। आयु में मेघनाद साहा उनसे दो वर्ष छोटे थे और नीलरत्न धर दो वर्ष बड़े।

1905 का वर्ष विशेष महत्व का था। उसी वर्ष आइन्स्टीन ने 'सापेक्षवाद सिद्धान्त' प्रस्तुत किया और उसी वर्ष बंगाल का विभाजन हुआ। स्वदेशी की लहर उठी, जिसमें मेघनाथ साहा फँस गये किन्तु सत्येन नहीं फँसे।

स्कूली दिनों में सत्येन बड़े शरारती थे। बी० एस-सी० कक्षा में सत्येन, तथा साहा साथ-साथ हो गये। दोनों ने गणित विषय चुना। 1913 में सत्येन प्रथम आये और साहा द्वितीय। 1915 में एम० एस-सी० में सत्येन प्रथम और साहा द्वितीय आये।

20 वर्ष की अवस्था में ऊषावती से विवाह हो गया—दहेज़ न लेने की शर्त, किन्तु बारात का भव्य स्वागत।

1916 में दोनों मित्र कलकत्ता यूनिवर्सिटी में सम्प्रयुक्त हो गये। उस समय अध्यक्ष थे डॉ० गणेश

प्रसाद। कुछ समय पश्चात् दोनों गणित विभाग छोड़कर भौतिकी पढ़ाने लगे। दोनों ने आधुनिक भौतिकी का अध्ययन शुरू किया। जर्मन भाषा सीखी। 'क्वांटम सिद्धान्त', 'सापेक्षता का सिद्धान्त' इनकी बहार थी। किन्तु पुस्तकें उपलब्ध न थीं। भाग्यवश जर्मन प्रोफेसर पी० जे० ब्रूह्ल वहाँ आये, जिनके पास पुस्तकें थीं, किन्तु जर्मन भाषा में। 1918-20 में कुछ शोध पत्र फिलासफिक मैगज़ीन में छपे। आइन्स्टीन की 'थियरी ऑव रिलेटिविटी' का अनुवाद करके छपाया।

सत्येन का आशुतोष मुकर्जी से मतभेद हो जाने पर उन्हें 1921 में ढाका जाना पड़ा। वहाँ 5 वर्ष रहे। 1924 में बोस ने प्लांक के कार्य के विषय में कुछ संशोधन किये। यह शोधपत्र जर्मन शोध जर्नल में छपने भेजा गया। और उसकी एक प्रति 4 जून

1924 को आइंस्टीन के पास भेजी। तभी वे विदेश गये। फ्रांस गये। जर्मनी भी गये। पेरिस में **मैडम क्यूरी** के साथ कार्य करना चाहा, किन्तु उन्होंने बंदिश लगाई कि पहले फ्रेंच भाषा सीखो। फ्रांस में एक्स-किरण और क्रिस्टल विश्लेषण की ओर ध्यान गया। 1926 में ढाका लौट आये और जुट गये प्रयोगशाला सुधारने में। वे 1945 तक यहाँ रहे—पूरे 24 वर्ष, किन्तु केवल 2 विद्यार्थी डॉक्टररेट ले सके। 1944 में 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' के अध्यक्ष बने। 1945 में पुनः कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'खेरा प्रोफेसर' होकर लौटे और 1956 तक रहे। 1953-55 में उन्होंने 'एकीकृत सिद्धान्त' पर शोधपत्र लिखा। 1945 में 'पद्म विभूषण' पदवी मिली।

1956-58 तक शान्ति निकेतन में कुलपति रहे। 1958 में **रॉयल सोसायटी के फैलो बने**। 1957 में कलकत्ता, आदमपुर तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालयों ने मानद उपाधियाँ दीं। उनके स्वभाव में अनेक विचित्रतायें देखने में आती हैं।

1. भोर में उठकर 2 घण्टा काम करना।

2. लगातार सिगरेट पीना।

3. अपने विचार रद्दी कागज पर लिखना, पर कभी ठीक से नहीं रखना।

4. अच्छा भोजन, अच्छी संगति, अच्छी पुस्तकें उन्हें विशेष प्रिय थीं।

5. इसराज बजाते थे, धोती पायजामा आदि सादे वस्त्र पहनते थे।

6. 1924 में पहला शोधपत्र, 1934 में दूसरा। 1953-54 में पुनः शोधपत्र का प्रकाशन। कुल 25 शोधपत्र। 12 विद्यार्थियों को डी-फिल।

7. कार्बनिक रसायन में रुचि। **आशिमा चटर्जी** ने उन्हीं के साथ कार्य किया।

8. मणिभों के स्वरूप, मृदा के खनिज, मृदाओं के प्रकार आदि पर भी कार्य किया।

9. जिस एक कमरे में रहते वह सबों के लिए खुला रहता था।

मातृभाषा के द्वारा विज्ञान

बोस के अनुसार 'सब कुछ वेदों में है' यह मनोवैज्ञानिक अवरोध है। हमें अपनी दुर्बलताओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करना होगा। हमारी शिक्षा की गति धीमी इसीलिए रही है क्योंकि मातृभाषा में शिक्षा नहीं दे पाये, विदेशी भाषा की तोता रटन्त रही। विश्व में कोई ऐसा अन्य देश नहीं जो अपनी भाषा में शिक्षा न देता हो। तो फिर भारत में क्यों नहीं?

1963 में राँची विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह भाषण में अपनी व्यथा व्यक्त की।

जब जापान गये तो वहाँ यह देखकर दंग थे कि बड़े से बड़े वैज्ञानिक जापानी भाषा में बातें करते थे। पर उन्हें विदेशी पारिभाषिक शब्द ग्रहण करने में कोई हिचक नहीं थी।

ढाका से कलकत्ता लौटने के बाद मातृभाषा पर बल देना प्रारम्भ किया, किन्तु लोग ध्यान नहीं दे पा रहे थे। कलकत्ता में 1876 में ही 'इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टिवेशन ऑव साइन्स' बना था। सर्वप्रथम बोस ने 18 अक्टूबर 1947 को मातृभाषा के माध्यम से विज्ञान को लोकप्रिय बनाने का बीड़ा उठाया और **बंगीय विज्ञान परिषद्** की स्थापना हुई, जिसका 25 जनवरी 1948 को उद्घाटन हुआ।

'ज्ञान ओ विज्ञान' पत्रिका प्रकाशित की। धन एकत्र किया। इमारत बनाई। 1946 से ही एम० एस-सी० कक्षाओं में बंगला भाषा में पढ़ाना प्रारंभ किया। 'साहा मेमोरियल व्याख्यान' भी बंगला में दिया। किन्तु इनकी पहली रचना 1931 में 'क्राइसिस इन साइंस' 'परिचय' नामक त्रैमासिक पत्रिका में छपी। दूसरा लेख आइंस्टीन पर था। जे० सी० बोस, साहा, सत्येन बंगला में लिखने लगे।

सत्येन वैसा ही लिखते—मुहावरेदार, जैसा बोलते। कभी भाषण तैयार करके नहीं बोलते थे, न ही नोट्स रखते थे।

80 वर्ष की परिपक्व अवस्था में 4 फरवरी 1974 को उनका निधन हो गया। □□

प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस के अनुसन्धान

आशीष कुमार

प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस एक ऐसे भौतिकीविद् थे, जिन्होंने भौतिक विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में शोध एवं अध्ययन किया। किन्तु '**क्वांटम सांख्यिकी**' के जन्मदाता के रूप में उन्हें सबसे अधिक ख्याति मिली।

सन् 1924 में प्रो० बोस का 4 पेज का 'प्लांक का नियम तथा प्रकाश क्वांटम प्राक्कल्पन' शीर्षक शोधपत्र प्रकाशित हुआ। इनके आग्रह पर आइंस्टीन ने शीघ्र ही इस शोधपत्र का जर्मन में अनुवाद किया और प्रसिद्ध शोध-पत्रिका *Zeitschrift fur Physik* में प्रकाशित कराया।

वैज्ञानिक आइंस्टीन बोस के कार्य की महानता से बहुत प्रभावित हुये। **मैक्स प्लांक** ने 1900 में '**क्वांटम सिद्धान्त**' की स्थापना की थी। उसमें इन्होंने सिद्ध किया कि ऊर्जा का विसर्जन नियमित न होकर समूहों में होता है। इसके लिये उन्होंने एक सिद्धान्त निश्चित किया। बोस प्लांक के निश्चय से सहमत नहीं हुये। उन्होंने सुझाव दिया कि विकिरण की क्वांटा का बंटन (distribution) निकालते समय उन्हें अभिन्न न माना जाये। तथा किसी अवस्था में कणों की संख्या एक या एक से अधिक कुछ भी हो सकती है। इस विचारधारा से बोस ने विकिरण सूत्र को नये ढंग से स्थापित किया। इस सूत्र से एक नये प्रकार की सांख्यिकी का जन्म हुआ। इस विधि के उपयोग से आइंस्टीन ने उसी वर्ष गैस के लिये 'बंटन फलन' (distribution function) स्थापित किया जो कि चिरसम्मत फलन से एक दम भिन्न था। प्रो० बोस एवं आइंस्टीन की विधियों को सम्मिलित रूप से '**बोस आइंस्टीन सांख्यिकी**' कहते हैं।

इसके दो वर्ष बाद **फर्मी** और **डिराक** ने **पॉली** के सिद्धान्त को मानते हुये, जिसके अनुसार किसी अवस्था में एक से अधिक इलेक्ट्रॉन नहीं रह सकते हैं, इलेक्ट्रॉन के लिये बंटन फलन निकाला। इसे '**फर्मी-डिराक सांख्यिकी**' कहते हैं।

प्रारम्भिक कणों की भीड़ के विश्लेषण के लिये इस समय केवल दो सांख्यिकी विधियाँ हैं, जिन्होंने सारे मूल कणों को दो भागों में बाँट दिया है। बोस-सांख्यिकी का पालन करने वाले कण 'बोसॉन' एवं 'फर्मी-डिराक सांख्यिकी' का पालन करने वाले कण 'फर्मिऑन' के नाम से जाने जाते हैं। अभी तक 70 से अधिक 'बोसॉन' कण खोजे जा चुके हैं।

इस कार्य के तीस वर्ष बाद बोस ने 'क्षेत्र सिद्धान्त' (**Unified Field Theory**) पर भी क्रांतिकारी कार्य किया। बोस उच्चकोटि के गणितज्ञ थे और संभवतः इस सिद्धांत के गणित के कारण ही वह उसकी ओर आकर्षित हुये थे।

यद्यपि आइंस्टीन को भी इस सिद्धान्त के समीकरणों को हल करने में अधिक सफलता नहीं मिली थी। बोस ने उनका हल करना आरंभ किया और सिद्धान्त के प्रथम भाग सम्बन्धी समीकरण को हल किया। उन्होंने 1953-55 में बड़े प्रतिभाशाली शोधपत्र लिखे जो गणित में चरम सीमा के पत्र थे। परन्तु संसार में इनसे इतनी सनसनी नहीं मची, जितनी 1924 में उनकी सांख्यिकी से मची थी।

इसके अलावा बोस ने पेरिस में कुछ समय तक कार्य किया। वहाँ उन्होंने पीजोलेक्ट्रिक इफेक्ट' पर ऐसी कठिन नाप-जोख की कि सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। इस गुण का प्रदर्शन 'क्वार्ट्ज़ क्रिस्टल' ए० सी० के प्रभाव में करते हैं। इसकी उपयोगिता क्वार्ट्ज़ घड़ियों को बनाने में है।

विज्ञान के क्षेत्रों में आने वाली अनेक समस्याओं का हल उन्होंने निकाला। खनिज विज्ञान, जीव विज्ञान, मिट्टी सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधानों में उन्होंने योगदान दिया। इस प्रकार बोस ने अपना नाम एक बहुमुखी वैज्ञानिक के रूप में सदा के लिये स्थापित कर दिया। □□

प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस की उपलब्धियाँ

अनिल कुमार शुक्ल

पंचानबे साल पूर्व कलकत्ता के एक संभ्रांत परिवार में जन्मे **सत्येन्द्र बोस,** बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि थे। अपने अध्ययन काल में भी परिश्रम और कुशाग्रता के कारण उन्हें अध्यापकों एवं सहपाठियों का विशेष स्नेह प्राप्त था। उनकी इस विलक्षण प्रतिभा को पहचानकर ही **सर आशुतोष मुखर्जी** ने उन्हें कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज में भौतिकी विभाग खुलने पर अध्यापक नियुक्त किया। यहाँ विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि श्री सत्येन्द्र बोस ने एम० एस-सी० की उपाधि भौतिकी में नहीं बल्कि गणित में प्राप्त की थी। लेकिन **डॉ० मेघनाद साहा** की तरह श्री बोस ने भी भौतिकी विषय में न केवल महारत हासिल की, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय ख्याति भी प्राप्त की।

केवल तीस वर्ष की अल्पायु में, सन् 1924 में 'प्लांक का नियम तथा प्रकाश क्वांटम प्राक्कलन' शीर्षक शोधपत्र लिखकर, भारत के इस अनाम वैज्ञानिक ने भौतिकी विज्ञान की एक नई शाखा 'क्वांटम सांख्यिकी' का सूत्रपात किया था। प्रो० बोस का यह शोधपत्र अपने अनेक समकालीन भौतिकशास्त्रियों की समझ के परे था। विश्व की अधिसंख्य शोधपत्रिकाओं के विद्वान संपादक भौतिक विज्ञान की समस्या सुलझाने में सांख्यिकी की उपयुक्तता के प्रति शंकालु थे, शायद इसीलिए वे इस शोधपत्र को छापने में संकोच कर रहे थे। बोस का यह शोध-पत्र, शायद कभी न छपता, यदि उन्होंने उसे आइंस्टीन के पास न भेजा होता।

बोस, आइंस्टीन को अपना गुरु मानते थे—ठीक उसी तरह जैसे कि एकलव्य, द्रोणाचार्य को अपना गुरु मानता था। अपने शोधपत्र को आइंस्टीन के पास भेजते हुए, पत्र में उन्होंने लिखा था, "यदि आप इस शोधपत्र को प्रकाशन योग्य समझें तो इसे **Zeitschrift fur Physik'** में प्रकाशित कराने की व्यवस्था करा दें। यह अनुरोध करते हुए मुझे कोई संकोच नहीं है, क्योंकि हम सभी आपके शिष्य हैं।" पत्र के अंत में अपना परिचय देते हुए उन्होंने लिखा था "···मैं वह व्यक्ति हूँ जिसने आपके 'सामान्यीकृत सापेक्षता सिद्धान्त' वाले शोधपत्र का [जर्मन से अंग्रेजी में] अनुवाद किया था"। यहाँ उल्लेखनीय है कि बोस ने यह अनुवाद तब किया था, जबकि आइंस्टीन के 'सापेक्षता सिद्धान्त' को समझने वालों की संख्या पूरे संसार में उँगलियों पर गिनी जा सकती थी। स्पष्टतः आइंस्टीन के उस शोधपत्र का अनुवाद, बोस की विलक्षण प्रतिभा का पर्याप्त प्रमाण था।

बोस की विलक्षणता का दूसरा प्रमाण, आइंस्टीन को, बोस के इस शोधपत्र में मिला। इस शोधपत्र की महत्ता को आँककर, आइंस्टीन ने स्वयं उसका जर्मन भाषा में अनुवाद किया और उसे प्रकाशनार्थ भेजते हुए, अपने पत्र में लिखा, "मेरी दृष्टि में, प्लांक के सूत्र की बोस द्वारा दी गयी व्युत्पत्ति (**proof**) एक अग्रगामी उपलब्धि है। इसमें प्रयुक्त विधि 'अदर्शनीय गैसों का क्वांटम सिद्धान्त' भी देती है, जिसे मैं अन्यत्र सिद्ध करूँगा।"

आइंस्टीन की इस प्रशंसात्मक उक्ति के बाद जब यह शोधपत्र प्रकाशित हुआ तो सत्येन्द्रनाथ बोस सारे संसार में प्रसिद्ध हो गये। उनकी गिनती बीसवीं सदी के सर्वाधिक प्रसिद्ध भौतिकशास्त्रियों में से एक के रूप में होने लगी। उनके इस युगप्रवर्तक योगदान को यादगार बनाने के लिए, विश्व ने उन सभी मूलभूत प्राकृतिक कणों को **'बोसॉन'** नाम रख दिया, जो **'बोस सांख्यिकी'** का पालन करते थे, बोस द्वारा की गई व्याख्या पर खरे उतरते थे।

इस प्रकार प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस का नाम, भौतिक विज्ञान का अभिन्न अंग बन गया। भारतमाता के इस सपूत ने सारे विज्ञान जगत् में भारत का नाम भी अमर कर दिया।

यह अविस्मरणीय उपलब्धि कैसे मिली और यह उपलब्धि इतनी महत्वपूर्ण क्यों है? दर असल बोस ने **'प्लांक के विकिरण नियम'** का सूत्र सैद्धान्तिक दृष्टि से सत्यापित कर दिखाया था। इस विकिरण नियम के साथ ही विचित्रताओं की परम्परा जुड़ी है। प्लांक का यह नियम 'कृष्णपिंडीय विकिरण' (**Black Body Radiation**) से संबंधित है। इन विकिरणों के बारे में सन् 1895 से 1900 के बीच अनेक वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए थे। लेकिन उनके प्रयोगफलों एवं उस समय के सैद्धान्तिक निष्कर्षों में विरोधाभास स्पष्ट था। सैद्धांतिक आधार पर निर्मित प्राक्कलनों (भविष्यवाणियों) की पुष्टि प्रयोगों द्वारा नहीं हो पा रही थी। दूसरी ओर प्रयोगों के द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को किसी भी ज्ञात सिद्धान्त के द्वारा सिद्ध करना भी सम्भव नहीं हो पा रहा था।

इस विसंगति को दूर करने के अनेक प्रयास असफल हो चुके थे। इस कठिन चुनौती को सत्येन्द्र बोस ने स्वीकार किया। लेकिन वे समझ नहीं पा रहे थे कि हल कैसे निकले। डॉ० मेघनाद साहा के साथ एक अनौपचारिक बातचीत में, उन्हें सांख्यिकी के प्रयोग की बात कौंधी। और वे जुट गए।

बोस इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि पुरानी मान्यताओं को छोड़े बिना, विज्ञान के नये क्षितिज स्थापित करना असंभव है। उन्होंने महसूस किया कि 'प्लांक का नियम' तभी सिद्ध हो सकता है, यदि हम गैसों को 'कण' के रूप में अलग कर सकने की पुरानी अवधारणा को ग़लत मान लें और विद्युत्-चुम्बकीय विकिरणों को फोटॉनों से निर्मित मानें। इस निश्चय के साथ ही उनके शोध की दिशा स्पष्ट हो गयी और **'प्लांक के विकिरण नियम'** की सैद्धान्तिक व्युत्पत्ति दी जा सकी।

सत्येन्द्र बोस के इस व्याख्यान ने 'क्वांटम सिद्धान्त' को सांख्यिकीय विधियों का एक नया आधार सौंपा। यही कारण है कि आइंस्टीन इस शोधपत्र से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने समझ लिया कि यह युगांतरकारी खोज उनकी (आइंस्टीन की) फोटॉन अवधारणा की पुष्टि तो करती है, साथ ही द्रव के तरंगीय गुणों को पुष्ट करने वाले वैज्ञानिक **'डी ब्राग्ली'** के विचारों को विश्लेषित करने में भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। कालांतर में, आइंस्टीन ने बोस की सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग कर डी ब्राग्ली के विचारों को पुष्ट भी किया।

आइंस्टीन द्वारा की गई इस पुष्टि ने **श्रोडिंगर** को अपना प्रसिद्ध समीकरण स्थापित करने को प्रेरित किया। यहाँ, यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं है कि **श्रोडिंगर के समीकरणों** का क्वांटम यांत्रिकी में वही महत्व है, जो पुरानी भौतिकी में 'न्यूटन के द्वितीय नियम' का।

उपर्युक्त विवेचन का आशय इस तथ्य को रेखांकित करना है कि प्रो० सत्येन्द्र बोस ने भौतिक विज्ञान में अग्रदूत की भूमिका निभाई है। उनकी प्रतिभा मौलिक थी। उन्होंने ऐसी उपलब्धि हासिल की थी, जिसने तत्कालीन विश्व के प्रसिद्ध भौतिकीविदों के मार्ग को प्रशास्त किया, उन्हें प्रेरणा दी।

इसके अलावा 'एकीकृत क्षेत्र सिद्धांत' में भी जब उन्होंने काम शुरू किया तो वहाँ भी अपनी अमिट छाप छोड़ी। विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया तो 1948 में बंगीय विज्ञान परिषद् की स्थापना करके अपनी सकारात्मक भूमिका और निष्ठा का प्रमाण दिया।

प्रोफेसर सत्येन्द्र नाथ बोस को अपनी उपलब्धियों का पूरा भरोसा था। यह भरोसा अकारण भी न था। उन्होंने अपने बारे में बड़े विश्वास के साथ कहा था— "मैं एक ऐसे धूमकेतु की तरह हूँ जो कभी लौट कर नहीं गया।"

सचमुच, उनकी उपलब्धियाँ अविस्मरणीय हैं। उन्हें मिटाया नहीं जा सकता। वे हमारी प्रेरणा के स्रोत हैं। हम उनके कृतज्ञ हैं। ☐☐

विज्ञान परिषद् से सम्पर्क

वीरेन्द्र नारायण सिंह

सन् 1936 की बात है। मैं बी० एस-सी० का छात्र था। डॉ० सत्यप्रकाश रसायन विज्ञान के प्रवक्ता थे। डॉ० गोरख प्रसाद गणित विभाग के रीडर थे। दोनों ही विद्वान हिन्दी को विशेष महत्व देते थे और उन्होंने विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में अनेक पुस्तकें लिखीं। हिन्दी में रुचि होने के कारण मैं भी उनके निकट संपर्क में आया। इससे मुझको हिन्दी में लेख लिखने का प्रोत्साहन मिला। मेरे कुछ लेख 'विज्ञान' में प्रकाशित हुए। इस बीच मैंने 1940 में एम० एस-सी० उत्तीर्ण करके रसायन विज्ञान में शोध छात्र के रूप में विश्वविद्यालय से स्कालरशिप प्राप्त की। एक दिन प्रयोगशाला में डॉ० सत्यप्रकाश जी ने मुझे बताया कि मैं डॉ० गोरख प्रसाद जी से मिल लूँ। वे मुझे 'विज्ञान' के सम्पादन का भार देना चाहते थे। मैं उनसे मिला। उन दिनों वे 'विज्ञान' के प्रधान संपादक थे। उन्होंने कहा कि 'विज्ञान' के लिये लेखन सामग्री उचित रूप से उपलब्ध नहीं हो रही है। मुझको उसके लिये प्रयत्न करना होगा। विज्ञान परिषद् में धनाभाव के कारण वेतन देना सम्भव नहीं है। किन्तु परिषद् द्वारा स्वीकृत धनराशि पारिश्रमिक के रूप में मुझको दी जावेगी। मैंने स्वीकार कर लिया। उन्होंने लेख लिखने, सामग्री एकत्रित करने आदि का मार्ग दर्शन किया।

मैं शोधपत्र प्रस्तुत करने के साथ ही 'विज्ञान' के प्रकाशन हेतु लेख आदि लिखकर प्रति माह डॉ० गोरख प्रसाद जी को दे देता था। इस बीच 1942 में मुझे उत्तर प्रदेश के 'फल संरक्षण विभाग' में लखनऊ में नियुक्ति मिली। मैंने इस विषय पर विशेष रूप से अध्ययन किया था। और एम० एस-सी० के लिये शोधपत्र भी प्रस्तुत किया था। डॉ० गोरख प्रसाद ने एक अमेरिकी पुस्तक के आधार पर 'फल संरक्षण' पुस्तक लिखी थी। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि उस पुस्तक को मैं अपने निजी प्रयोगों एवं अनुभवों के आधार पर पुनः लिखूं। उसका प्रथम संस्करण समाप्त हो चुका था। मैंने पुस्तक को पुनः लिखा और विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित हुई। 'फल संरक्षण' के तीन संस्करण निकले। 'उपयोगी नुसखे' और कुछ दूसरी विशेष पुस्तकों के प्रकाशन में भी सहयोग दिया। सरकारी पद पर कार्य करते हुए भी कई मास तक 'विज्ञान' के लिये लेखन सामग्री भेजता रहा। विज्ञान परिषद् का आजीवन सदस्य होने के कारण आज भी 'विज्ञान' मेरे पास आता है और मैं उसे रुचि से पढ़ता हूँ। □□

पूर्व डिप्टी कमिश्नर, (बिक्रीकर) 27 केसरगंज रोड, मेरठ

फार्म/4 (नियम 8 देखिये)

1. प्रकाशन स्थान	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद 211002
2. प्रकाशन अवधि	मासिक, प्रत्येक मास का 15 दिनांक
3. मुद्रक का नाम	श्री सरयू प्रसाद पाण्डेय
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हाँ
पता	नागरी प्रेस, 186 अलोपी बाग, इलाहाबाद
4. प्रकाशक का नाम	डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्त
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हाँ
पता	अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
5. सम्पादक का नाम	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हाँ
पता	वनस्पति विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद 211002

मैं, पूर्णचन्द्र गुप्त एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 1-3-89

पूर्णचन्द्र गुप्त
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

फफूँद : कितनी हितकर कितनी अहितकर

सी० एस० पाण्डेय

बरसात के मौसम में जब कई दिनों तक धूप नहीं निकलती और लगातार बारिश के कारण वातावरण में अत्यधिक नमी हो जाती है, तो प्रायः सभी ने देखा होगा कि प्रयोग में न आ रही चमड़े की वस्तुओं, जूतों इत्यादि में एक भूरा-सफेद पदार्थ जमा हो जाता है। कभी-कभी यह पदार्थ कपड़ों से भी उत्पन्न हो जाता है। जेली, जैम तथा कई पके हुए खाद्य पदार्थों के ऊपर भी, यदि वह बहुत समय तक अप्रयुक्त रखे रहें, यह भूरा-सफेद पदार्थ उग आता है। यही फफूंद अथवा कवक (fungus) है।

जीवविज्ञान के अनुसार फफूंद एक प्रकार के छोटे जाति के पौधे हैं। इनमें तथा सामान्य हरे पेड़-पौधों में कई स्पष्ट असमानताएँ हैं। पहली तो यह है कि फफूंद में फूल नहीं लगते, दूसरा यह कि फफूंद में हरितलवक (chlorophyll) नामक पदार्थ नहीं होता, जिससे कि यह अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकती। अपने भोजन के लिये यह जीवित अथवा मृत पेड़-पौधों या जानवरों पर निर्भर रहती है और उन्हीं से अपना भोजन प्राप्त करती हैं।

अब तक फफूंद की एक लाख से भी अधिक स्पीशीज (species) का पता लगाया जा चुका है। फफूंद अत्यन्त छोटी आकार की हो सकती है और विशालकाय भी। जायन्ट पफ बाल (Giant puff ball) फफूंद का व्यास एक मीटर से भी अधिक होता है। जीवाणु या बैक्टीरिया और फफूंद मिलजुल कर पृथ्वी पर पैदा होने वाले सभी कार्बनिक पदार्थों को सड़ाने और नष्ट करने की प्रक्रिया के लिये उत्तरदायी हैं।

फफूंद को अपनी वृद्धि के लिये ऑक्सीजन (oxygen), पर्याप्त जल तथा कार्बोहाइड्रेट या अन्य कार्बनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है। इसीलिये बरसात में अधिक नमी और उचित ताप होने पर फफूंद दिखाई पड़ती है। यह साधारणतः खाद्य-पदार्थों की खुली सतह पर ही फलती-फूलती है क्योंकि इसे पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। जैम व जेली में यदि परिरक्षक न मिले हों तो उनकी ऊपरी सतह पर फफूंद उत्पन्न हो जाती है। प्रायः इनकी बोतलों में मोम पिघलाकर डाल दी जाती है, इससे खाद्यपदार्थों का ऑक्सीजन से सम्पर्क भंग हो जाता है और फफूंद नहीं पैदा हो सकती। ग्लूकोस और फ्रक्टोस (फलों की शर्करा) फफूंद के लिये मुख्य खाद्य-पदार्थ हैं। कुछ फफूंदें हवा से सीधे नाइट्रोजन ले सकती हैं, परन्तु पेड़-पौधों की तरह अधिकतर फफूंद नाइट्रोजन के लिये नाईट्रेट, अमोनिया तथा अन्य पदार्थों पर निर्भर रहती हैं। फफूंद के जीवन में एंज़ाइम नामक पदार्थों का विशिष्ट स्थान है। फफूंद अनेक प्रकार के एंज़ाइम पैदा करते हैं, और यह उन पदार्थों जिन पर फफूंद लगती है, की खाद्यसामग्री को विभाजित कर उन्हें छोटे रासायनिक पदार्थों में बदल देते हैं। तब ये पदार्थ फफूंद द्वारा सीधे आत्मसात कर लिये जाते हैं। फफूंद अपने अन्दर कार्बोहाइड्रेट को जमा भी करती है; मुख्यतः यह ग्लूकोजेन के रूप में जमा की जाती है। कुछ फफूंदें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन और वसा भी उत्पन्न करती है।

फफूंद की एक विशेषता यह है कि अपने जीवन वृत्त में यह एक समय स्पोर पैदा करती है। स्पोर को फफूंद के बीज के रूप में माना जा सकता है क्योंकि इसी से नई फफूंद पैदा होती है। स्पोर प्रायः गहरे भूरे रंग के अत्यन्त महीन चूर्ण के रूप में होता है। इसमें जल की मात्रा थोड़ी रहती है। अपने हलकेपन के कारण यह हवा द्वारा आसानी से दूर-दूर तक फैल जाता है। कुछ फफूंद एक बहुत बड़ी मात्रा में स्पोर उत्पन्न करतेहैं। सामान्य खुम्बी (mushroom), जो एक प्रकार की फफूंद है, लाखों की संख्या में स्पोर कण बनाती हैं। फफूंदों के स्पोर कण हजारों किलोमीटर तक हवा में उड़ सकते हैं, तब भी उनकी प्रजनन शक्ति

बनी रहती है। हाँ, केवल स्पोरों की एक सीमित संख्या ही ऐसे स्थानों पर गिरती है जहाँ वह उग सकते हैं। कुछ फफूँदें एक गन्धयुक्त पदार्थ का निर्माण करती हैं। यह गन्ध अनेक कीड़ों को आकर्षित करती है और ये कीड़े स्पोर को वितरित करने में सहायक होते हैं।

वह बात नहीं कि फफूँद केवल परजीवी (Parasite) ही हों। कई बार यह शैवाल (Algae) के साथ मिलकर एक ऐसी मिली-जुली रचना करते हैं कि ये दोनों एक दूसरे के जीवनयापन के लिये आवश्यक अंग बन जाते हैं। ऐसी संरचना को शैवाक या लाइकेन (Lichen) के नाम से जाना जाता है। शैवाल अपने तथा फफूँद के लिये भोजन निर्माण करती है। फफूँद का काम पानी और लवण प्राप्त कराना और शैवाल की रक्षा करना है। प्रकृति में सहजीविता (Symbiosis) का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है। कुछ फफूँदें कई पौदों की जड़ों में रहती हैं। ये उन जड़ों से अपना भोजन प्राप्त करती हैं। परन्तु यह देखा गया है कि ये फफूँदें उन जड़ों के क्रमिक विकास के लिये भी आवश्यक हैं। फफूँदों की इस श्रेणी में कई प्रकार की खुम्बियाँ आती हैं।

कई प्रकार की फफूँदें पेड़-पौदों में अनेक रोग पैदा करती हैं। गेहूँ, मक्का और इसी प्रकार के अन्य पौदों में तने का काला मोर्चा (Black stem rust) नामक बीमारी फफूँद से पैदा होती है। इसमें पौदे और अनाज की बालें एक गहरे भूरे रंग के पदार्थ से से ढँक जाती हैं और फसल नष्ट हो जाती है। आलू के पाउडरी स्कब (Powdery scub), वार्ट (Wart) और ब्लाइट (Blight) रोगों तथा सेब के स्कब से प्रायः सभी परिचित होंगे, इन रोगों का कारण फफूँद की विशेष जातियाँ हैं। सन् अठारह सौ पैंतालिस में आयरलैण्ड में भयंकर रूप से आलू के ब्लाइट का रोग फैला। क्योंकि आलू ही वहाँ के निवासियों का मुख्य भोजन था, सारा देश अकाल की चपेट में आ गया। अनुमानतः 5 लाख लोग मृत्यु को प्राप्त हुए और भूख से बचने के लिये लगभग 20 लाख लोग स्वदेश छोड़कर उत्तरी अमेरिका जा बसे। बीस वर्ष बाद एक अन्य फफूँद जनित रोग ने फ्रांस की अंगूर की फसल को इतनी हानि पहुँचाई कि फ्रांस का शराब उद्योग नष्टप्राय हो गया। इसी समय एक वैज्ञानिक संयोगवश यह पाया कि नीला थोता और चूने के मिश्रण से फफूँद पर विजय पाई जा सकती है। इसे बोर्डिक्स मिक्शचर (Bordeaux Mixture) का नाम दिया गया जो आज भी एक प्रमुख फफूँदनाशक दवा के रूप में प्रयोग की जाती है।

जमा किये गये खाद्यपदार्थों को फफूँद से सबसे अधिक भय होता है क्योंकि उपयुक्त दशाओं में फफूँद के लिये यह सबसे सुलभ भोज्य है। पका हुआ भोजन, फलों से निर्मित पदार्थ, डबलरोटी इत्यादि में फफूँद लगना एक साधारण बात है। राई के पौदों में एरगट (ergot) नामक फफूँद उत्पन्न हो जाती है, जो न केवल इसके बीजों को नष्ट करती है, वरन् अनेक अत्यंत विषैले पदार्थों का निर्माण भी करती है। ऐसे अनाज का उपयोग घातक हो सकता है। इस फफूँद से युक्त राई से एल० एस० डी० (L S D) नामक रसायन निकाला जाता है। एल० एस० डी० (L S D) एक मतिभ्रमकारक (hallucinogenic) पदार्थ है। अधिक मात्रा में इसका प्रयोग मस्तिष्क में स्थायी विकार पैदा कर देता है।

फफूँद से पैदा होने वाली बीमारियाँ प्रायः मनुष्य के बाहरी अंगों जैसे त्वचा, बाल व नाखूनों को प्रभावित करती हैं। रिंगवर्म (Ringworm) और एथलीट्स फूट (Athelete's Foot) ऐसे ही रोग हैं। कुछ ऐसे भी फफूँद हैं जो शरीर के आंतरिक अंगों पर आक्रमण कर देते हैं। ये फफूँद हवा में उड़ते हुए अपने स्पोरों के द्वारा फेफड़े, नाक और मुँह की श्लेष्म झिल्लियों में चले जाते हैं और उन्हें रोगी बना देते हैं। यह पाया गया है कि जिन लोगों में किसी कारणवश प्रतिरक्षात्मक संस्थान कमजोर पड़ जाता है, इन फफूँदों का आक्रमण अत्यधिक प्रभावशाली होता है। सैप्रोलेग्निया (*Saprolegnia*) नामक फफूँद जीवित मछलियों पर भी आक्रमण कर देती है। नगरों के गंदे जल की नालियों में एस्पर्जिलस (*Aspergillus*) और ग्लियोट्रीकम (*Geotrichum*) फफूँद पाई

जाती है जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं।

कई प्रकार की फफूंद कटी हुई इमारती लकड़ी को नष्ट कर देती हैं। कुछ ऐसी स्पीशीज़ भी हैं जो जीवित पेड़ों को भी क्षति पहुँचाती हैं।

परन्तु फफूंद केवल अहितकर ही नहीं है, हमारे जीवन के लिये अनेक उपयोगी पदार्थ फफूंद की देन हैं। सर्वाधिक चर्चित औषधि पेनिसिलिन (Penicillin) जिसकी खोज के लिये तत्संबंधित वैज्ञानिक को 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया, एक फफूंद **पेनिसिलियम** (*Penicillium*) से उत्पन्न की जाती है। फफूंदों से प्राप्त की गई कई अन्य औषधियाँ आज अनेक रोगों के उपचार के लिये उपलब्ध हैं।

औद्योगिक रूप में कई रसायन केवल फफूंद के ही माध्यम से तैयार किये जाते हैं। **एस्परजिलस** (*Aspergillus*) नामक फफूंद कुछ ऐसे एन्ज़ाइम पैदा करते हैं जिनसे एल्कोहॉल का निर्माण होता है। गुड़, शीरा तथा ऐसे ही अन्य पदार्थ **सकैरोमाइसीज** (*Saccharomyces*) नामक फफूंद द्वारा एल्कोहॉल में परिवर्तित हो जाते हैं। **ईस्ट** (*Yeast*) या **खमीर** नामक फफूंद को आटे या मैदे में मिलाकर रखने से यह कार्बन डाइऑक्साइड बनाती है। इसके प्रभाव से डबलरोटी या अन्य भोज्यपदार्थ हलके व छिद्रयुक्त बन जाते हैं। ईस्ट में ज़ाइमेज नामक एन्ज़ाइम होते हैं और यह एल्कोहॉल बनाने में भी काम आती है। **एस्परजिलस नाइगर** (*Aspergillus niger*) नामक फफूंद सिट्रिक अम्ल बनाने में प्रयुक्त होती है। दूध से पनीर बनने में भी कई प्रकार के फफूंदों का प्रयोग होता है। फफूंदों के यह उपयोग मनुष्य दीर्घकाल से करता आया है।

मिट्टी में पाये जाने वाले अनेक फफूंद सड़ते हुए पेड़-पौधों के सेल्यूलोज (Cellulose) और प्रोटीन (Protein को विच्छेदित करके ह्यूमस (Humus) में बदल देते हैं। ह्यूमस पृथ्वी की उर्वराशक्ति और गुणों में वृद्धि करता है। मिट्टी में अन्य प्रकार के फफूंद सूक्ष्म जीवधारियों जैसे अमीबा, नेमैटोड इत्यादि को बाँध लेते हैं और उन्हें नष्ट कर डालते हैं। इस प्रकार इन हानि पहुँचाने वाले सूक्ष्म जीवधारियों से मनुष्य और पौदों की रक्षा करते हैं। फफूंद अनेक कीड़े-मकोड़े और जानवरों का प्रिय आहार है। अम्ब्रोसिया बीटल (Ambrosia beetle) तथा कुछ प्रकार की दीमकें इतनी चतुर होती हैं कि वह इन फफूंदों की बाकायदा खेती करती हैं। **एस्परजिलस टेरियस** (*Aspergillus terreus*) नामक फफूंद कुछ ऐसे रसायन बनाने के काम आते हैं, जिनका प्लास्टिक उद्योगों में उपयोग होता है। **जिबरेला** (*Gibberella*), जो धान की खेती में रोग पैदा करती है, जिबरेलिक अम्ल (Gibberellic acid) बनाने के काम आती है। यह पौदों के विकास के लिये एक सक्षम हारमोन (hormone) है। **ब्रीवर्स ईस्ट** (Brewer's yeast) की सहायता से एरगास्टेरोल (Ergosterol) बनाया जाता है जो विटामिन डी (Vitamin D) बनाने में काम आता है। **एस्परजिलस फ्लैबस** (*Aspergillus flavus*) कुछ ऐसे एन्ज़ाइम पैदा करता है जो विशेष प्रकार के गोंद बनाने में प्रयोग होते हैं।

मशरूम, गुच्छी या खुम्बी भी एक प्रकार की फफूंद है। कुछ मशरूम खाये जाते हैं पर कुछ अत्यंत विषैले होते हैं। प्रायः जंगलों और सड़ती हुई लकड़ी आदि वस्तुओं पर मशरूम पैदा होती है। अधिकतर मशरूम उचित दशाओं में बहुत वेग से वृद्धि करती है और उतने ही वेग से समाप्त हो जाती है। इसलिये **'मश्रूम ग्रोथ'** एक मुहावरा बन गया है। उगते समय इसमें इतना बल होता है कि वह कड़ी धरती और अन्य वस्तुओं को तोड़कर निकल सकती है।

स्वतः उगी हुई मशरूम खाने के लिये प्रयोग की जा सकती है, परन्तु इसमें बहुत सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि कुछ विषैली मशरूम को पहचानना काफी कठिन है। हमारे देश में पहाड़ों में रहने वाले कई ग्रामीण खाने योग्य मशरूम को पहचानने में निपुण होते हैं। योरोप में मशरूम रोमन साम्राज्य के समय में भी प्रिय खाद्यवस्तु थी। कहा

कृत्रिम वर्षा : सिंचाई का आपातकालीन साधन

अशोक कुमार

प्यासी धरती, सूखे कुएँ, लम्बी दूरियाँ तय करके पानी लाती महिलाएँ, भूखे-प्यासे मवेशी—इन सबका जन्मदाता है सूखा। वर्ष 87 का सूखा इस शताब्दी का सबसे भयंकर सूखा माना गया। ऐसे समय में जहाँ सरकार का कर्त्तव्य है कि सूखा-पीड़ित लोगों की सहायता करे, वहीं पर कृषि वैज्ञानिकों का उत्तरदायित्व भी बन जाता है कि इस संकट के कारण और समाधान का पता लगाएँ। बहुत सी प्राकृतिक आपदाएँ मानव-निर्मित होती हैं, लेकिन इस समस्या से तो मानव का सीधा सम्बन्ध है।

इस आपदा के कारण जानने से पहले, आइए देखें कि आखिर यह वर्षा होती कैसे है ?

वातावरण में थोड़ी-बहुत आर्द्रता सदैव विद्यमान् रहती है, जिसमें पानी के कण वाष्प के रूप में उपस्थित रहते हैं। अधिक आर्द्रता वाली वायु जब एक जगह इकट्ठा हो जाती है तो इसे हम मेघ या बादल कहते हैं। सीधे शब्दों में मेघ का अर्थ है हवा में उपस्थित आर्द्रता का एक जगह जमाव। मेघ में वायुमण्डल का वाष्प संघनित हो जाता है और छोटी-छोटी बूंदों के रूप में हवा में लटका रहता है। प्रत्येक बूंद धूलकण के चारों ओर जल अणुओं का गुच्छा है। जब मेघ ठंडा हो जाता है तब ये गुच्छे मन्द गति से चलते हैं और आपस में मिलकर बड़े गुच्छे बना लेते हैं। कुछ समय पश्चात् ये गुच्छे इतने भारी हो जाते हैं कि वायु में समा न पाने के कारण पृथ्वी पर गिरने लगते हैं और वर्षा करते हैं।

उत्तरी भाग में अप्रैल से सितम्बर तक सूर्य की किरणें लम्बवत् पड़ती हैं। इस प्रकार मैदानों की वायु गर्म होकर ऊपर उठती है। इसके ठीक विपरीत बंगाल की खाड़ी और अरब सागर पर दबाव कुछ अधिक होता है। इस अन्तर को समाप्त करने के लिए हिन्द महासागर से वाष्प से भरी पवनें उत्तरी मैदानों की ओर चलती हैं और पर्वतों से टकराकर भारी वर्षा करती हैं। इन्हें हम उत्तरी-पश्चिमी मानसून कहते हैं। इस प्रकार हरियाणा और पंजाब मानसून के बनने में एक अहम् भूमिका निभाते हैं। लेकिन कई बार मानसून पूरी तरह से झाँसा दे जाता है। पर्यावरण वैज्ञानिकों का मानना है कि मानसून की अनिश्चितता का कारण पिछले वर्षों में वातावरण में हुए परिवर्तन हैं। इसके अनेक कारण हैं।

निर्वनीकरण

वन अपने आस-पास की वायु को ठंडा रखते हैं, जिससे संघनन होता है और वर्षा होती है। परन्तु वनों की अंधाधुंध कटाई के कारण गत वर्ष तापमान शायद कम नहीं हो सका और मानसून बन नहीं सका।

फसलों की बुवाई में परिवर्तन

कुछ वर्षों से पंजाब और हरियाणा के मैदानी भागों में धान की खेती बहुत अधिक की जाती है, जिसके लिए—मई से ही भूमि के काफ़ी बड़े भाग को पानी से भर दिया जाता है और बाकी जो थोड़ा सा हिस्सा बचता है, उसमें गन्ना, कपास आदि की बुवाई कर दी जाती है।

पानी का तापमान 1°c बढ़ाने के लिए, हमें सूखी भूमि का तापमान 1°c बढ़ाने के लिए आवश्यक ताप से लगभग पाँच गुणा अधिक ताप की आवश्यकता होती है। इसका अर्थ हुआ कि पानी से ढकी भूमि का ताप इतना अधिक नहीं हो पाता जितना कि सूखी भूमि का। इस प्रकार कम दबाव का क्षेत्र नहीं बन पाता और मानसून को आगे बढ़ने में कठिनाई होती है।

रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

सफेदा या यूकेलिप्टस के पौधों की अधिक रोपाई

सफेदा एक जैविक पंप की तरह से कार्य करता है। एक पूर्णतया विकसित सफेदे का वृक्ष एक दिन में लगभग 15 लीटर पानी वायुमण्डल में छोड़ता है। इस प्रकार आर्द्रता बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप छोटे-छोटे धूल के बगूले, जो एक थोड़े से क्षेत्र में कम दवाव का क्षेत्र होने के कारण बनते हैं, अब बहुत ही कम दिखाई देते हैं। इस प्रकार बिना सोचे-समझे अपनाया गया कृषि कार्यक्रम अत्यधिक हानिकारक सिद्ध हो रहा है।

ऐसी परिस्थिति में नज़र टिक जाती है कृत्रिम वर्षा पर।

कृत्रिम वर्षा

प्रारम्भ में इस कार्य के लिए हाईड्रोजन गैस से भरे गुब्बारे छोड़े जाते हैं, जो एक निश्चित ऊँचाई पर जाकर फट जाते हैं। इस प्रकार गुब्बारे के साथ पहुँचाया गया रासायनिक पदार्थ इन बादलों को पानी में बदलने में सहायता करता है। इसे 'कृत्रिम मेघ बीजारोपण' कहते हैं। इसके साथ हाईड्रोजन गैस के गुब्बारे को बाँस की पट्टियों के साँचे में इस प्रकार लगाया जाता है कि वह सम्पूर्ण साँचे को एक साथ लेकर उड़ सके। साँचों के बाईं ओर एक ऐल्यूमिनियम के डिब्बे में शुष्क बर्फ भरी रहती है और दायीं ओर एक दूसरे एल्यूमिनियम के डिब्बे में **गन पाउडर तथा सिलवरआयोडाइड** का मिश्रण भरा रहता है। इन दोनों डिब्बों के बीच एक काँच की नली होती है। ये तीनों उपकरण एक तार से जुड़े रहते हैं, जो एक निश्चित समय पश्चात् एक निश्चित ऊँचाई पर स्वतः टूट जाते हैं। इससे गन पाऊडर बिखर जाता है और सिल्वरआयोडाइड के साथ मिलकर धुआँ उत्पन्न करता है। यह धुआँ बादलों में समाकर जल के अणुओं को बड़े-बड़े गुच्छों में बदल देता है और इस प्रकार वर्षा होती है।

लेकिन अब गुब्बारों का प्रयोग समाप्त हो चुका है, क्योंकि यह विधि काफ़ी खर्चीली है और कई बार असफल भी हो जाती है। आजकल कृत्रिम वर्षा के लिए हवाई जहाज़ से रसायनिक पदार्थ ऊपर पहुँचाया जाता है।

भारत में कृत्रिम वर्षा

कृत्रिम वर्षा कराने के क्षेत्र में भारतीय वैज्ञानिकों ने काफी रुचि दिखाई है। भारत में कृत्रिम वर्षा कराने से सम्बन्धित प्रयोगों की शुरुआत सन् 1952 में मौसम विभाग के सेवानिवृत महानिदेशक **डॉ० एस० के० बनर्जी** ने की थी। सन् 1953 में 'वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद्' ने 'वर्षा इकाई' गठित करके कृत्रिम वर्षा कराने का प्रयोग आरम्भ किया तथा 1955 से 1966 के बीच जयपुर और आगरा में लगभग 19 प्रयोग किये और दावा किया कि इस प्रयास में वे 18 से 59% तक सफल रहे। कृत्रिम वर्षा के प्रयोग पुणे के 'अखिल भारतीय मौसम संस्थान' द्वारा प्रति वर्ष जुलाई, अगस्त और सितम्बर के महीनों में किए जाते हैं। सन् 1978 में मथुरा में 'वृष्टि विज्ञान मण्डल' की स्थापना हुई। तब से आज तक इसके तत्वावधान में 15 प्रयोग किए गए—11 वर्षा कराने के लिए और 4 वर्षा रोकने के लिए। वर्षाकारक 11 प्रयोगों में से 8 प्रयोगों में बूंदाबांदी से लेकर घनघोर वर्षा तक हुई। शेष तीन प्रयोगों में वर्षा तो नहीं हुई लेकिन प्रत्येक में बादल आए और घन्टों तक घिरे रहे। वर्षा निरोधक सभी प्रयोग सफल रहे।

कृत्रिम वर्षा से हानि

कृत्रिम उपायों द्वारा अतिशीतल जल या बर्फ से वर्षा तो कराई जा सकती है, पर इससे पर्यावरण पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है। जिस स्थान पर कृत्रिम वर्षा कराई जा रही हो, अगर वहाँ पर आर्द्रता कम हो तो स्वाभाविक है कि उसके आसपास के क्षेत्रों में वर्षा की कमी हो जाए। इसलिए ये प्रयोग अधिक आवश्यक होने पर ही किए जाने चाहिए।

वैज्ञानिकों के अनवरत प्रयोगों एवं प्रयासों के फलस्वरूप आज अनेक देशों को कृत्रिम वर्षा कराने में काफी सफलता मिली है, परन्तु इस सफलता को पूर्ण सफलता नहीं कहा जा सकता। फिर भी वर्षा विज्ञानियों के अथक प्रयासों से ऐसा प्रतीत होता है, कि वे निकट भविष्य में बादलों का इच्छानुसार उपयोग करने में सफल हो जाएँगे। □□

बड़े-बड़े गुण हैं स्टेरॉयड में

राजेन्द्र कुमार राय

में औषधीय पदार्थों में आज स्टेरॉयड बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनका उपयोग कैंसर रोधी औषधि, शारीरिक वृद्धिकारक और गर्भनिरोधक गोलियाँ बनाने में किया जाता है। आज औषधि उद्योग में स्टेरॉयड का महत्व एन्टीबायोटिक के बराबर ही हो रहा है।

एक महत्वपूर्ण स्टेरॉयड का नाम है—"डायसजेनीन"। इसका उपयोग गर्भनिरोधक गोलियाँ बनाने और रुधिर में "कोलेस्टेरॉल" की मात्रा को कम करने में किया जाता है। डायसजेनीन को संश्लेषित कर "इस्टेरोजेन" नामक पदार्थ प्राप्त किया जाता है। इस्टेरोजेन का उपयोग महिलाओं के वक्ष कैंसर के उपचार हेतु किया जाता है।

वास्तव में स्टेरॉयड पौधों तथा जन्तुओं में पाया जाने वाला एक कार्बनिक यौगिक है। इस कार्बनिक यौगिक समूह में एक विशिष्ट रासायनिक संचरना होती है। स्टेरॉयड में कार्बन के 17 और हाइड्रोजन के 28 परमाणु होते हैं। इनसे बने विशिष्ट संरचना वाले यौगिक को 'गोनेन' (परहाइड्रो साइक्लोपेन्टानाप्येननयेरीन) कहते हैं। प्रत्येक स्टेरॉयड यौगिक में गोगेन संरचना अवश्य होती है।

स्टेरॉयड के व्यापक उपयोग को देखते हुए इसका आज बहुत बड़े पैमाने पर संश्लेषण किया जा रहा है। स्टेरॉयड के आंशिक संश्लेषण हेतु प्रारम्भिक प्राकृतिक रसायन की आवश्यकता होती है। अभी तक इसके लिए डायसजेनीन नामक रसायन का उपयोग किया जाता है। यह डायस्कोरिया (*Dioscoria*) नामक पौधे से मिलता है। आज विश्व बाज़ार में स्टेरॉयडों की बढ़ती हुई माँग को देख कर ऐसे पौधों की खोज की जा रही है, जिससे कि स्टेरॉयड बनाने हेतु प्रारम्भिक प्राकृतिक रसायन प्राप्त किया जा सके।

डायस्कोरिया के अतिरिक्त जिन पौधों से प्रारम्भिक प्राकृतिक रसायन प्राप्त किया जा सकता है, उनमें एक पौधा है—अगेव सिसेलाना (*Agave sisilana*)। यह अगेवेसी (*Agavaceae*) कुल का पौधा है। इसका तना काफी पुष्ट होता है और लगभग एक मीटर मोटा होता है। इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं। इसके पत्ते लम्बे और गूदेदार होते हैं। इससे प्राप्त प्रारम्भिक प्राकृतिक रसायन का उपयोग "कार्टीसोल स्टेरॉयड" में किया जा सकता है। कार्टीसोल से रक्त कैंसर का प्रभाव कुछ समय तक रोका जा सकता है। इस रसायन का उपयोग जोड़ के रोगों तथा सूजन की कमी और कृत्रिम अंग प्रत्यारोपण में भी किया जाता है। स्क्रोफुलैरिएसी (*Scrophulariaceae*) कुल में डिजिटेलिस (*Digitalis*) नामक एक पौधा पाया जाता है। डिजिटेलिस का ऊपरी भाग फूलों से लदा होता है और पत्ते गोल-गोल होते हैं। इसके फूल घंटी जैसे दिखाई देते हैं।

डिजिटेलिस से डिजिटॉक्सीन, डिजॉक्सीन तथा जिटॉक्सीन नामक प्रारम्भिक प्राकृतिक रसायन प्राप्त होते हैं। इसके संश्लेषण से प्राप्त स्टेरॉयड का उपयोग हृदय रोग में किया जाता है। इसके प्रयोग से पेशियाँ काफी मजबूत हो जाती हैं।

मोरेसी (*Moraceae*) कुल में आर्टोकार्पस (*Artocarpus*) नामक एक पौधा है। इस पौधे से "साइक्सोआर्टेनाल" नामक स्टेरॉयड प्राप्त होता है। इस स्टेरॉयड का उपयोग विभिन्न प्रकार की औषधियों के निर्माण में किया जाता है।

हारमोन संश्लेषण हेतु ग्लायसिन मैक्स (*Gleocin max*) तथा सोलेनम मीरियाकैन्थम (*Solanum meriacanthum*) नामक शाकीय पौधों से प्राप्त स्टेरॉयड का प्रयोग किया जाता है। ग्लायसिन मैक्स से "स्टीगमेस्टेरॉल" और सोलेनम मीरियाकैन्थम से "सॉलसोडीन" नामक स्टेरॉयड प्राप्त होता है।

प्रतिभा प्रकाशन, वैशाली होटल के नीचे, बलिया—277001 उ० प्र०

[शेष पृष्ठ 4 पर]

विश्व की वनस्पति संपदा खतरे के कगार पर

सतीश कुमार शर्मा

हमारी पृथ्वी पर मनुष्य वनस्पति तथा वन्य-प्राणियों के साथ एवं वनस्पति तथा वन्यप्राणी मनुष्य के साथ जी रहे हैं। धरती पर पहले कौन आया? इस प्रश्न का उत्तर काफी स्पष्ट हो चुका है—आदमी बहुत बाद में आया है! बाद में आकर भी मनुष्य ने पहले आने वालों को सम्मान देने की कोई खास जरूरत नहीं समझी। नतीजा सामने है—आज अनेक किस्मों की वनस्पति तथा वन्यप्राणी प्रजातियाँ या तो भूमंडल से हमेशा के लिये समाप्त हो चुकी हैं या उनकी संख्या इतनी कम हो चुकी है कि निकट भविष्य में उनका अन्त हो सकता है।

यह तो सर्व विदित है कि अनेक वन्यप्राणियों का अन्धाधुँध शिकार होने से वे हमेशा के लिये धरती से अलविदा हो गये लेकिन यही कटु-सच्चाई अनेक पेड़ पौधों से भी जुड़ी हुई है। आज संसार के अनेक भागों में मनुष्य की स्वार्थपरक ज्यादतियों से अनेक किस्मों की वनस्पति या तो विलुप्त हो चुकी है या विलुप्तीकरण के कगार पर जा पहुँची हैं। संसार के कुछ अभागे पौधों का विवरण नीचे दिया जा रहा है जिन्हें मनुष्य ने विलुप्तीकरण की तरफ ढकेल दिया है।

जरा गौर कीजिये अभागे पौधों की इस सूची में दर्ज संख्या पर जो इतनी विशाल धरती पर आज जीवित बची है। किसी जमाने में ये पौधे असंख्य गिनती में हमारी धरती पर थे लेकिन इक्कीसवीं सदी में जाने वाले मनुष्य के विवेक का एक रूप विलुप्तीकरण के कगार पर खड़े ये पौधे सामने पेश कर रहे हैं।

जो पौधे विलुप्त हुये वे एक दिन में नहीं हुये। जो संख्या घट कर मुट्ठी भर रह गई वह भी एक दिन में नहीं हुई लम्बे समय तक की गई छोटी-छोटी गलतियों एवं थोड़े समय तक की गई बड़ी गलतियों के सामूहिक जोड़ से यह स्थिति आई है। एक समय था जब भारत के कर्नाटक प्रदेश में गरसोप्पा जल प्रपात के बहाव के नीचले नम क्षेत्रों में **ह्यूबॉडिया** नामक घास काफी तादाद में उगती थी। समय की आवश्यकतानुसार जल-विद्युत परियोजना हेतु इस प्रपात के बहाव का पानी दूसरी तरफ मोड़ दिया गया जिससे मूल तराई वाला क्षेत्र सूख गया और आवास में आये इस परिवर्तन से **ह्यूबॉडिया** घास सारे क्षेत्र से स्वतः ही विलुप्त हो गई। स्मरण रहे यह अकेली प्रजाति ही हुबॉडिई ट्राइब (Tribe Hubbardieae) से ज्ञात थी। यह एक ऐसा विलुप्तीकरण है जो मनुष्य की अपूर्ण पारिस्थिकीय जानकारियों से हुये आवासीय सूक्ष्म परिवर्तन की वजह से हुआ। हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं कि हमारा ज्ञान आज भी कितना अपूर्ण है तथा उसके परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तन प्राकृतिक आवासों को तहस-नहस करके रख देते हैं।

विलुप्तीकरण के उदाहरण संसार के हर कोने में पाये जा रहे हैं। हवाई द्वीप में 1930 का साल **हिबिसकेडेल्फस इफारडियेनम** नामक पौधे के लिये दुर्भाग्यशाली सिद्ध हुआ जब इस साल यह पौधा इसके जंगली आवास से हमेशा के लिये विलुप्त हो गया। इसी तरह जॉन फर्नान्डीज द्वीप से 1916 में चन्दन की एक प्रजाति **सैन्टेलम फर्नेन्डिसियानस** विलुप्त हो गई। कोलम्बिया में चाय कुल के **फ्रीजीरा फौरीरोरम** प्रजाति के अन्तिम अवशेष तीन पौधे भी आज दुर्भाग्य का सामना कर रहे हैं। ये तीनों वृक्ष धीरे-धीरे मर रहे हैं। कहा जाता है यहाँ सब ठीक-ठाक लगता है फिर भी ये पौधे स्वतः मर रहे हैं। यह एक ऐसा विलुप्तीकरण है जिसमें आदमी का प्रत्यक्ष कोई हाथ नहीं है।

पौधों तथा वृक्षों पर कई महत्त्वपूर्ण उद्योग-धंधे भी आधारित हैं। कई तरह के कच्चे माल हेतु वनों

आर्बोरीकल्चरिस्ट, विश्व वानिकी वृक्ष उद्यान, झालाना डूंगरी, जयपुर (राजस्थान)—302004

वनस्पति का नाम	संवर्ग	वितरण स्थल	वर्तमान स्थिति	वर्तमान में जीवित पौधों की संख्या
1. क्यूप्रेसस डुप्रेजाइना	अनावृत बीजी	अलजीरिया	विलुप्तीकरण के समीप	153
2. माइक्रोसाइकस कैलोकोमा	अनावृत बीजी	क्यूबा	विलुप्तीकरण के समीप	600
3. एकाइरैन्थीज मैंगेरिविका	अमरेन्थेसी कुल	गैंबियर द्वीप	विलुप्त या संभवत. विलुप्तीकरण के बहुत समीप	—
4. क्राइनम मॉरीशियेनम	एमरिलिडेसी कुल	मॉरीशस	विलुप्तीकरण के समीप	100
5. व्हीटेस्लोनिया क्रासा	एस्कलपियेडेसी कुल	सोमालिया	विलुप्त या संभवतः विलुप्तीकरण के बहुत समीप	—
6. टैकोमैन्थी स्पीशियोसा	बिगनोनियेसी कुल	न्युजीलैण्ड	विलुप्तीकरण के बहुत समीप	1
7. मिओसोटिस रूसिनोनेर्सिस	बोरेजिनेसी कुल	फ्रान्स	विलुप्त	—
8. थिसमिया अमेरिकाना	बर्मेनियेसी कुल	स० रा० अमेरिका	विलुप्त	—
9. डिरेक्मा सोकोट्राना	डिरेक्मेसी कुल	यमन	विलुप्तीकरण के समीप	30
10. ऐरिका जैसमिनिफ्लोरा	ऐरिकेसी कुल	द० अफ्रीका	,,	150
11. ड्राइपेटीज कौस्टिका	यूफोरबियेसी कुल	मॉरीशस	विलुप्तीकरण के बहुत समीप	2
12. यूफोबिया वैकफील्डाई	,,	केनिया	विलुप्त	—
13. ब्रोमस इन्टरूपटस्	ग्रेमिनी कुल	यू० के०	विलुप्त	—
14. ह्युबॉडिया हैप्टोन्यूरॉन	,,	भारत	संभवत विलुप्त	—
15. ग्लेडियोलस ऑरियस	इरीडेसी कुल	द० अफ्रीका	विलुप्तीकरण के बहुत समीप	1
16. लोटस बर्थेलोटाई	लैग्यूमिनोसी कुल	कैनेरी द्वीप	विलुप्त	—
17. टेट्राटैक्सिस सैलिसिफोलिया	लिद्रेसी कुल	मॉरीशस	विलुप्तीकरण के बहुत समीप	7
18. बैडूला क्रासा	मिर्सिनेसी कुल	रयूनियन (हिन्द महासागर)	,,	3
19. यूकेलिप्टस स्टीडमेनाई	मिर्टेसी कुल	आस्ट्रेलिया	विलुप्त	—
20. पैफिओपैडिलम ड्राई	ऑर्किडेसी कुल	भारत	विलुप्त	—
21. प्यूनिका प्रोटोप्यूनिका	प्यूनिकेसी कुल	यमन	विलुप्तीकरण के बहुत समीप	4
22. प्रूनस ग्रेवेसाई	रोजेसी कुल	स० रा० अमेरिका	,,	1
23. जैन्थोजाइलम पैनिकुलेटम	रुटेसी कुल	रोडरिगस (हिन्द महासागर)	,,	2
24. सैन्टेलम फर्नेन्डिजियानम	सैन्टेलेसी कुल	जॉन फर्नान्डीज द्वीप	विलुप्त	—
25. ट्रोकेशिया यरीथोमाइलोन	स्टरकुलियेसी कुल	सैन्ट हैलेना	विलुप्तीकरण के बहुत समीप	1
26. फींजीरा फोरीरोरम	थियेसी कुल	कोलम्बिया	,,	3
27. हिबिसकेडेल्फस ईफारडियेनम	मालवेसी कुल	हवाई द्वीप		
28. आदि-आदि			विलुप्त	—

[पृष्ठ 12 का शेषांश]

के उत्पादन पर रोक लगाने की माँग की गयी। प्रस्ताव के अनुसार 1994 तक विकसित देश सी० एफ० सी० के उत्पादन में 20 प्रतिशत की कमी करेंगे और सन् 2000 तक 30 प्रतिशत की और कमी करेंगे। माने 2000 तक उसके उत्पादन में आधी कमी का प्रस्ताव है। वर्तमान समय में अमेरिका 30 प्रतिशत, यूरोप के देश 48 प्रतिशत, जापान और रूस दस-दस और सारे विकासशील देश 2 प्रतिशत सी० एफ० सी० का उत्पादन करते हैं। विकासशील देशों को भी अगले दशक से इनका उत्पादन घटाना होगा।

ओजोन परत का दिन प्रतिदिन घटते जाना आज विश्वव्यापी चिंता का विषय है। सम्पूर्ण विश्व को इस संकट से बचाने के लिये भविष्य में न केवल परमाणु परिक्षेपों पर रोक लगानी होगी बल्कि सी० एफ० सी० जैसे रसायनों का उत्पादन भी बंद करना होगा। उसके लिये विकसित राष्ट्रों को ही सबसे आगे आना होगा क्योंकि इसके उत्पादन में वे ही सबसे आगे हैं। यदि इस दिशा में उचित कदम न उठाये गये तो समस्त मानव जाति का विनाश निश्चित है। □□

का दोहन बड़े पैमाने पर किया जाता है। अतिदोहन का ही नतीजा है आज देश में चन्दन, गूगल, काली-शीशम, रैड सैन्डर, कई तरह के ऑर्किड आदि धीरे-धीरे विलुप्तीकरण की तरफ बढ़ रहे हैं। यह एक ऐसा विलुप्तीकरण है जिसमें प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य ज़िम्मेदार हैं। मनुष्य की भौतिक सभ्यता तथा बढ़ता औद्योगिकीकरण ज़िम्मेदार है।

विलुप्तीकरण के कई कारण हैं जिनके मूल में मनुष्य का स्वार्थ तथा उसका अधकचरा ज्ञान है। बढ़ती जनसंख्या व पशु संख्या, औद्योगिकीकरण, सुदूर क्षेत्रों में बढ़ते यातायात के सुगम साधन, भौतिकवादी सभ्यता, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूमिक्षरण, वनों का सामूहिक कटान, आग, प्रदूषण, वन क्षेत्रों में बनते बड़े-बड़े बाँध, अतिक्रमण, आदिवासियों तथा वनवासियों की बढ़ती संख्या, बेरोजगारी, युद्ध, जनचेतना की कमी, धार्मिक मूल्यों का ह्रास, वन कर्मियों की अपर्याप्त संख्या, कानून शिथिलता, राजनैतिक दखलन्दाजी आदि-आदि अनेक ऐसे कारण हैं जिनसे जगह-जगह भयंकर वन-विनाश हुआ है एवं वातावरण में सूक्ष्म स्तर तक परिवर्तन होने लगे हैं। इन परिवर्तनों से भिन्न क्षेत्रों का पारिस्थितिकी संतुलन ही गड़बड़ा उठा है, जिससे प्रत्येक वनस्पति को उसकी जैविक आवश्यकतायें पूर्ण करने वाले सूक्ष्म पर्यावरण युक्त आवास उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं। इसका फल यह हो रहा है कि वनस्पतियाँ अपने मूल आवास से पलायन कर रही हैं। अन्यत्र तुल्य पर्यावरणीय आवास (**Iso-climatic habitat**) उपलब्ध नहीं हो पाने से प्रजाति विशेष का प्राकृतिक रूप से वितरण क्षेत्र भी नहीं बढ़ पा रहा है। यह एक चिन्ता की बात है जिसे हमें समझना चाहिये।

मानवीय हस्तक्षेपों से लगातार पर्यावरण में तबदीलियाँ आ रही हैं जिससे प्राकृतिक आवासों में परिवर्तन होते जा रहे हैं। यदि वनों के साथ हमने अपना व्यवहार नहीं बदला तो स्थिति शीघ्र ही उस बिन्दु तक पहुँच सकती है जहाँ से लौटना सम्भव नहीं होगा। अभी भी समय है। जब तक विश्व स्तर पर वनारोपण एवं वन सुरक्षा तथा पर्याणरण सुधार को सच्चे मन से स्वीकार नहीं किया जायेगा तब तक हम वन सम्पदा की विविधता एवं विपुलता को भावी पीढ़ियों हेतु सुरक्षित नहीं रख पायेंगे। □□

प्रो० यू० एन० सिंह का निधन

इलाहाबाद बिश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति का गत 9 अप्रैल को दिल्ली में देहांत हो गया। प्रो० सिंह इस विश्वविद्यालय में भूतपूर्व छात्र तथा अध्यापक भी थे। उन्होंने 1949 में इ० वि० से डी० फिल और 1954 में पेरिस युनिवर्सिटी से डी० एस-सी० की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। वे मई 1980 से 1983 तक कुलपति रहे। इसके पूर्व बड़ौदा तथा दिल्ली विश्वविद्यालयों में गणित के प्रोफेसर रह चुके थे। परिषद् की गतिविधियों में उनकी रुचि थी। परिषद् द्वारा आयोजित गोष्ठियों को उन्होंने सम्बोधित भी किया था। उनके निधन से देश ने उच्चकोटि का गणितज्ञ, शिक्षाविद् और कुशलवक्ता खो दिया है। दिवंगत आत्मा को विज्ञान परिषद् परिवार की श्रद्धांजलि।

ओज़ोन रक्षा कवच के लिए विश्वव्यापी चिन्ता

विजय जी

पिछले दिनों ब्रिटेन की राजधानी लंदन में 'ओज़ोन कवच अनुरक्षण' विषय पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में दुनिया भर के 120 देशों के राजनेता और वैज्ञानिक शामिल हुए। सम्मेलन में औद्योगिक प्रदूषणों के कारण धरती की ओज़ोन रक्षा कवच के लगातार नष्ट होते जाने पर गहरी चिन्ता व्यक्त की गयी तथा दुनिया के सभी राष्ट्रों से ऐसे उत्पादनों को रोकने की अपील की गयी।

हमारा वायुमण्डल

धरती के चारों ओर वायुमण्डल की मोटाई लगभग 1600 (सोलह सौ) किमी० है। लेकिन सबसे घना वायुमण्डल धरती की सतह के पास ही है। धरती की सतह से जितना ही ऊपर चलते जायें वायु की सघनता घटती जाती है। पूरे वायुमण्डल को चार परतों में बाँटा जा सकता है।

(1) क्षोम मण्डल—12 किमी० की ऊँचाई तक

(2) समताप मण्डल—16 किमी० से 32 किमी० ऊँचाई तक

(3) ओज़ोन मण्डल—32 किमी० से 48 किमी० तक

(4) आयन मण्डल—ओज़ोन मण्डल के ऊपर

क्षोम मण्डल अत्यन्त हलचल वाली परत है। आँधी, पानी, बादल, बिजली आदि की सारी क्रियाएँ इसी परत में संपादित होती हैं। समताप मण्डल में हवा गतिशील होने के कारण सभी जगह ताप लगभग एक समान होता है। इसीलिये इसे समताप मण्डल कहते हैं।

ओज़ोन मण्डल या ओज़ोन छतरी

32 किमी० से 48 किमी० तक की ऊँचाई पर ओज़ोन गैस की परत पाई जाती है। यह 'ओज़ोन मण्डल' कहलाती है। धरती पर जन्तुओं और वनस्पतियों के जीवित रहने के लिये 'ओज़ोन मण्डल' का सुरक्षित रहना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि यह ओज़ोन मण्डल ही सूर्य की ख़तरनाक पराबैंगनी किरणों को धरती पर आने से रोकती है। यह ओज़ोन मण्डल इसीलिये 'ओज़ोन छतरी' भी कहलाती है।

यह ओज़ोन छतरी धरती को दो तरह से सुरक्षा प्रदान करती है। एक तो यह सूर्य और अन्य ग्रहों से आने वाली ख़तरनाक पराबैंगनी किरणों को सोख लेती है, दूसरे यह धरती से आकाश की ओर जाने वाली अवस्थ किरणों को वापस लौटा देती है, जिससे धरती की सतह की गरमी बरकरार रहती है। यदि पराबैंगनी किरणें सीधी धरती तक आ जायें तो त्वचा कैंसर जैसे रोगों की बाढ़ आ जायेगी। इसके अलावा पराबैंगनी किरणों से फसलों का विनाश, ऑक्सीजन-चक्र में फेरबदल तथा मौसम में भयंकर परिवर्तन हो सकता है। मौसम के इस परिवर्तन में वायुमण्डल का ताप बढ़ सकता है, जिससे जलीय प्रदेश सूख सकते हैं, ध्रुवों पर जमी बरफ पिघल सकती है। ध्रुवों की बरफ पिघलने पर समुद्र का जल स्तर कई मीटर ऊँचा उठ सकता है, जिससे अनेक समुद्रतटीय नगर एवं क्षेत्र जलमग्न हो सकते हैं। जलवायु के उलट फेर से मिट्टी, पानी और वनों का विनाश निश्चित है। इससे रेगिस्तानों का विस्तार हो सकता है, जहाँ सूखा प्रदेश था वहाँ वर्षा हो सकती है तथा जहाँ वर्षा का क्षेत्र था वहाँ सूखा पड़ सकता है।

ओज़ोन छतरी में छेद

1982 की बात है, अंटार्कटिका (दक्षिणी ध्रुव) पर शोध कार्य कर रहे ब्रिटिश वैज्ञानिकों को लगा कि वहाँ के ओज़ोन मण्डल में ओज़ोन की अचानक कमी आ गयी है। उन्हें इस बात का विश्वास नहीं हो रहा था। वैज्ञानिकों को शंका हुई कि उनका स्पेक्ट्रोफोटोमीटर पुराना होने के कारण ग़लत निष्कर्ष दे रहा है। उन लोगों ने नया स्पेक्ट्रोफोटोमीटर मंगवाया और उससे नये सिरे से जाँच-पड़ताल शुरू की। वैज्ञानिकों

जवाहर इण्टर कॉलेज, जारी, इलाहाबाद

को तब और आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा 1983 और 1984 में भी इस क्षेत्र में उसी तरह ओज़ोन की कमी पायी गयी। इस तरह 1985 में जब ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने यह घोषणा की कि अंटार्कटिका के वायुमण्डल की ओज़ोन छतरी में छेद हो रहा है तो सारी दुनिया में तहलका मच गया। अपने शोध के आधार पर इन वैज्ञानिकों ने बताया कि प्रत्येक वर्ष अक्टूबर के आस-पास यहाँ के वायुमण्डल का ओज़ोन कवच काफी कमज़ोर पड़ जाता है। या यों कहा जाय कि यहाँ के ओज़ोन कवच में छेद हो जाता है। ओज़ोन कवच के कमज़ोर पड़ने पर पराबैंगनी किरणों का धरती पर बेरोक टोक आना ही वैज्ञानिकों की चिन्ता का कारण है। ज्ञातव्य हो कि ओज़ोन की एक प्रतिशत कमी से पृथ्वी पर पड़ने वाले पराबैंगनी किरणों में तीन प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है।

इस घटना की जानकारी के बाद ओज़ोन परत का ह्रास विश्वव्यापी चिन्ता का कारण बन गया है। दक्षिणी ध्रुव ही नहीं, दुनिया के सभी स्थानों पर ओज़ोन सम्बन्धी शोध कार्यों में बढ़ोतरी हुई। कुछ खोजी यान सीधे ओज़ोन छिद्र में ही भेजे गये। 'नेशनल एरोनाटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन' (नासा) ने अपने उपग्रह निम्बस—7 की सूचना के आधार पर ओज़ोन छिद्र की पुष्टि की। उपग्रह की सूचना के अनुसार यह छिद्र संयुक्त राज्य अमेरिका के बराबर व्यास में इतना गहरा है कि उसमें पूरा माउंट एवरेस्ट पहाड़ ही समा जाय। 1986 और 1987 में अंटार्कटिका के वायुमण्डल का गहन अध्ययन किया गया। गुब्बारे छोड़े गये और ज़मीन के यंत्रों और वायुयान द्वारा जो अध्ययन किया गया। उससे यह साफ ज़ाहिर हो गया कि ओज़ोन को नष्ट करने का काम क्लोरीन और क्लोरीन मोनोऑक्साइड कर रहे थे। ये पदार्थ क्लोरोफ्लोरोकार्बन नामक यौगिकों के अपघटन के परिणाम थे।

क्लोरोफ्लोरोकार्बन और ओज़ोन ह्रास

क्लोरोफ्लोरोकार्बन वास्तव में कोई एक यौगिक नहीं है वरन् यह अनेक यौगिकों का व्यावसायिक नाम है। इन यौगिकों में कार्बन और हाइड्रोजन के परमाणुओं के अतिरिक्त क्लोरीन के परमाणु भी होते हैं। औद्योगिक रूप से ये यौगिक बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रशीतकों एवं एयरोसॉल प्रयोदकों के अतिरिक्त इन यौगिकों का उपयोग कीटनाशक और पेंट बनाने में भी किया जाता है। ये यौगिक दुर्गंधनाशक, प्रसाधक, एयरोस्पेस, इलेक्ट्रॉनिक, ऑप्टिकल और प्लास्टिक उद्योग में भी उपयोग किये जाते हैं।

तीव्र औद्योगीकरण के फलस्वरूप वायुमण्डल की विभिन्न परतों में क्लोरोफ्लोरोकार्बन की काफी मात्रा फैल चुकी है। निचले वायुमण्डल में ये यौगिक अविघटित रहते हैं, लेकिन ऊपरी परतों में पहुँचने के बाद पराबैंगनी किरणों की प्रबलता के कारण इनका विघटन शुरू हो जाता है। परिणामस्वरूप इनका मुख्य अवयव क्लोरीन, जटिल रासायनिक क्रियाओं द्वारा ओज़ोन को नष्ट करने लगता है।

नासा के नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों के एक दल ने 1969 से अब तक ओज़ोन सम्बन्धी जो शोध किये हैं वे चौंकाने वाले हैं। वास्तव में ये ख़तरे की घण्टी हैं। अध्ययन में बताया गया है कि दुनिया में लगभग हर जगह ओज़ोन परत कमज़ोर हो रही है। अमेरिका के सभी राज्यों, कनाडा, पश्चिमी योरप, रूस, चीन, तथा जापान के ऊपर यह ओज़ोन कवच लगभग 3 प्रतिशत कमज़ोर हुयी है। अलास्का तथा स्कैण्डनेविया पर यह लगभग 6 प्रतिशत कमज़ोर हुयी है। वास्तव में ओज़ोन कवच के एक प्रतिशत कमज़ोर होने पर त्वचा कैंसर में 5 प्रतिशत तथा आँख के ट्यूमर वाले केसों में 2 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हो जाती है। आजकल इन रोगों से प्रतिवर्ष लगभग 500 अमेरिकनों की मौत होती है।

ओज़ोन छतरी पर बढ़ रहे ख़तरे को देखते हुये 24 देशों के प्रतिनिधि कनाडा के मांट्रियाल शहर में 1987 में एकत्र हुये। यहाँ पारित एक प्रस्ताव में दुनिया के राष्ट्रों से यह अपील की गयी की ऐसा क़दम नहीं उठाया जाना चाहिये जिससे ओज़ोन कवच की सुरक्षा को ख़तरा हो। इसके लिए 1986 के स्तर के आगे क्लोरोफ्लरोकार्बन (सी० एफ० सी०)

[शेष पृष्ठ 9 पर]

विज्ञान समाचार | उदय नारायण सिंह

हृदय-रोगों की शल्य-चिकित्सा

हृदय-रोगों की शल्य-चिकित्सा एक अत्यन्त जटिल और सावधानी का काम है। इस दिशा में विगत दो दशकों से विश्व-स्तर पर अनेक अध्ययन-अनुसंधान हो रहे हैं। भारत में भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य हो रहा है। सोवियत संघ के चिकित्साकर्मियों ने सबसे पूर्व फरवरी, 1985 में, जब बम्बई में "ओपन हार्ट सर्जरी" पर विश्व सम्मेलन में भाग लिया था, उस समय उन्होंने हृदय-रोगों की शल्य-चिकित्सा के भारतीय स्कूल का अध्ययन पहली बार किया था। उसी समय यह विचार सामने आया कि चिकित्सा के इस क्षेत्र में दोनों देशों को सहयोग करना चाहिये। इस सम्बन्ध में 1986 में एक सहयोग-समझौता हस्ताक्षरित किया गया और साल भर बाद मास्को में इस विषय पर पहली सोवियत-भारतीय विचार-गोष्ठी आयोजित की गई जिसमें "ओपन हार्ट सर्जरी", की सामयिक समस्याओं पर विचार-विमर्श किया गया।

भारतीय और सोवियत डॉक्टरों ने कृत्रिम वाल्व लगाकर गठिया से उत्पन्न हृदय-रोगों को ठीक करने में विशेष रुचि दिखलायी। 'अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान' द्वारा किये गये आकलनों के मुताबिक सन् 2000 तक भारत में इस रोग से पीड़ित लोगों की संख्या तीस लाख हो जायेगी और कॉरोनरी आर्टरियों से सम्बद्ध भारतीय रोगियों की संख्या एक करोड़ से ज्यादा होगी।

जन्मजात हृदय-रोगों वाले बच्चों के शल्य-चिकित्सा से इलाज की समस्या सोवियत संघ और भारत दोनों ही देशों में बहुत गम्भीर है। सोवियत संघ और भारत में प्रतिवर्ष लगभग हृदय-रोगों के जन्मजात रोगियों की संख्या क्रमशः 40,000 और 1,00,000 हैं। सर्वाधिक डरावना तथ्य यह है कि जन्मजात हृदय-रोग से पीड़ित शिशुओं की आधी संख्या का ऑपरेशन नहीं हो पाता है और वे दो साल की आयु के पहले ही मर जाते हैं।

'सोवियत चिकित्सा विज्ञान अकादमी' के हृदय-रोगों की शल्य-चिकित्सा के 'ए० एन० बाकुलेव इंस्टीट्यूट' में चिकित्सकों ने बच्चों के हृदय-रोगों की शल्य-चिकित्सा से इलाज का अध्ययन सफलता से किया है। वहाँ किये ऑपरेशनों से हजारों बच्चों की जान बचायी जा चुकी है। सोवियत संघ के इस अनुभव से भारतीय डॉक्टर लाभान्वित हो सकते हैं। हालांकि भारतीय डॉक्टरों को इस तरह के बच्चों के, जब वे बड़े हो जाते हैं, ऑपरेशन का पर्याप्त अनुभव है, लेकिन नवजात शिशुओं और साल भर से कम उम्र के ऐसे बच्चों के ऑपरेशन की, जिनकी दशा खराब हो गई है, विधियाँ पूर्ण नहीं हैं।

सोवियत और भारतीय डॉक्टरों के बीच सहयोग के इस कार्यक्रम में हृदय की धमनी में रक्त-परिभ्रमण की गड़बड़ियों के तीव्र और जीर्ण रोगियों का ऑपरेशन द्वारा इलाज भी शामिल है।

पर्यावरण के क्षेत्र में सोवियत-अमेरिकी सहयोग

सोवियत संघ और अमेरिका ने पर्यावरण के क्षेत्र में, आने वाले वर्षों में आपसी सहयोग के लिए, यहाँ एक करार पर हस्ताक्षर किए। करार के अन्तगत दोनों देश शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए बाह्य अंतरिक्ष का विभिन्न प्रकार से इस्तेमाल करेंगे। संयुक्त प्रयोग करने के साथ ही, वे अंतरिक्ष और अंतरिक्ष से सम्बद्ध भूमि पर किए गए प्रयोगों से प्राप्त आँकड़ों का भी आदान-प्रदान करेंगे।

दोनों पक्षों ने बाह्य अंतरिक्ष से पृथ्वी के अनुसंधान में उपग्रहों के अधिक कारगर इस्तेमाल पर भी विचार किया। इस उद्देश्य से उपग्रहों द्वारा ले जाए जाने वाले उपकरणों का स्तर ऊँचा करने पर भी विचार

ए—5/146-सी, जनता फ्लैट, पश्चिम विहार, नई दिल्ली

किया गया। संयुक्त अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रमों, जीवमण्डल और जलवायु में होने वाले विश्वव्यापी परिवर्तनों के अध्ययन, ओज़ोन में कमी और पृथ्वी पर हरियाली को प्रभावित करने वाले जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों पर भी दोनों पक्ष कार्य करने को सहमत हुए।

परिवहन में पहियों की बजाय चुम्बक का उपयोग

सोवियत इंजीनियरों और विशेषज्ञों को आशा है कि सन् 1992 तक मास्को की भूमिगत रेलों में पहियों की जगह चुम्बक का उपयोग करके उनकी गति को दो गुना बढ़ाया जा सकेगा।

हाल में ही सिगार के आकार के एक बिना पहिये वाले डिब्बे को चुम्बक की शक्ति से लटकी हुई हालत में 120 किमी० प्रति घण्टा की गति से सफलतापूर्वक चलाया गया। 'गिद्रोतुबोप्रोवोद अनुसंधान संस्थान' के डिज़ाइनर **यूरी सोकोलोव** ने इस नई प्रणाली पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि यह विधि भूमिगत रेलों के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। यह विधि सस्ती तो है ही, इसमें पूंजीगत लागत भी कम आती है और पर्यावरण के प्रदूषण की भी संभावना नहीं रहती है। इस प्रकार रेल के संचालन में शोर भी नहीं होगा। योजना के अनुसार इस तरह की पहली रेलगाड़ी 1992 तक 60 किमी० की लाइन पर चलने लगेगी। सबसे पहले इन्हें साइबेरिया में कोयले का चूरा ढोने लिए चलाया जाएगा।

अति विशाल नवतारा का अध्ययन

स्तेर्नबेर्ग खगोलविज्ञान संस्थान के वरिष्ठ शोध-कर्मी **येव्गेनी शेफर** ने बताया है कि ब्रह्माण्ड स्थित विशाल मेगलानिक मेघ में 23-24 फरवरी 1987 की रात जो अति विशाल नवतारा नज़र आया था उसकी चमक में काफ़ी कमी आ गई है।

जनवरी 1988 में अपने चरण बिन्दु पर पहुँचने के बाद इसके विकिरण में पाँच-गुना कमी आ गई है। इसका कारण यह है कि अब इसमें कोबॉल्ट की मात्रा कम होती जा रही है। जब इस नवतारा में विस्फोट हुआ था तब इसके ऊपरी भाग पर कोबॉल्ट की परत जमी थी, जो अब भी पारदर्शी नहीं हो सकी है। इसलिए यह कहना कठिन है कि यह एक 'न्यूट्रॉन तारा' बनेगा या एक 'अंध विवर' बन कर रह जाएगा। अभी इस प्रक्रिया में डेढ़ से दो वर्ष की देरी होने की सम्भावना है।

कक्षा में स्थित सोवियत अंतरिक्षयान समुच्चय "मीर" के एक विशेष अंग "क्वात" के माध्यम से इस नवतारा का अध्ययन किया जा रहा है। सोवियत कास्मोनॉट **ए० वोलकोव, एस० क्रिकालेव** और **वी० पोल्याकोव** इस यान-समुच्चय का संचालन कर रहे हैं।

कूबड़ के इलाज की नई सोवियत विधि

सोवियत जनतंत्र उक्राइन के दक्षिण-पूर्वी भाग में स्थित दोनेत्स्क नगर के डॉक्टरों ने पार्श्ववक्रता या रीढ़ की टेढ़ी हड्डी का इलाज करने की एक नई विधि का विकास किया है। हाल में ही उन्होंने 12 वर्ष की एक लड़की की टेढ़ी रीढ़ को दो सप्ताह में ठीक करने में सफलता प्राप्त की है। इस लड़की की कूबड़ को ठीक करने के लिए एक विशेष ऑपरेशन करना पड़ा था।

इस नई विधि का आविष्कार प्रो० **लाज़ार रोद्यास्की** तथा साइबेरिया के एक इंजीनियर **विक्तर गुपालोव** ने मिल कर किया है। डॉक्टर **विलमोवित्स्की**, जिन्होंने दोनेत्स्क की लड़की की कूबड़ का इलाज किया, अब तक ऐसे पचास ऑपरेशन कर चुके हैं। बाल चिकित्सालयों में इस विधि के उपयोग की सिफारिश की गई है।

सजीव कोशिका के अध्ययन की नई विधि

सोवियत विज्ञान अकादमी के रसायनिक-भौतिकी संस्थान की जीवभौतिकी इंजीनियर प्रयोगशाला के प्रधान **अनातोली कुज्नेत्सोव** के नेतृत्व में सोवियत वैज्ञानिकों के एक दल ने जीवित कोशिका की संरचना के संचालन की प्रक्रिया के अध्ययन की एक नई विधि का विकास किया है।

इस प्रक्रिया में कोशिका के चुम्बकीय गुणों का अध्ययन किया जाता है। इस विधि से रक्त कोशिकाओं के अध्ययन का भी प्रयास किया जा रहा है। जीवित कोशिकाओं के चुम्बकीय क्षेत्र को बाहरी चुम्वकों से प्रभावित किया जाता है, जिससे कोशिका की सक्रियता बढ़ जाती है। अब तक चुम्बक प्रभावित कोशिका की गति एक माइक्रोन प्रति सेकण्ड नापी जा चुकी है।

ज्वार-भाटा से विद्युत्-शक्ति उत्पादन

गिद्रोप्रोएक्त संस्थान के सुविख्यात विशेषज्ञ **लेव बेर्नश्टेइन** का मत है कि यदि संसार में ज्वार-भाटा से उत्पन्न ऊर्जा का ठीक से उपयोग किया जाए तो प्रति वर्ष 20 खरब किलोवाट घण्टे अतिरिक्त बिजली प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए संसार के विभिन्न क्षेत्रों में 200 ज्वारीय बिजलघरों की स्थापना आवश्यक होगी।

लेव बेर्नश्टेइन ने बताया है कि ज्वारीय बिजली-घरों को विभिन्न समुद्री क्षेत्रों और खाड़ियों में स्थापित किया जा सकता है। इसके लिए पहले तट पर इमारती खण्डों को तैयार करना होगा और फिर उन्हें बड़ी-बड़ी नावों से खींचकर गहरे पानी में स्थापित करना होगा।

ज्वारीय बिजलीघर उन देशों द्वारा आसानी से स्थापित किये जा सकते हैं जिन्होंने अपने यहाँ जहाज-निर्माण और मशीन-निर्माण उद्योग का अच्छा विकास किया है।

खनिज द्रव्य ताप-स्रोत के रूप में

वैज्ञानिक **वासिली ग्नातोव** ने इस तथ्य के रहस्य का पता लगा लिया है कि विभिन्न खनिज द्रव्य ताप-स्रोत का काम करते हैं। यही कारण है कि उत्तरी ध्रुव प्रदेश के कुछ बर्फीले क्षेत्रों में भी हरे-भरे वृक्षों वाले इलाके पाये जाते हैं। ग्नातोव का कहना है कि साइबेरिया के उत्तरी क्षेत्रों और ताइगा प्रदेश के किनारे सैकड़ों किलोमीटर तक हरे-भरे वृक्षों की पट्टियाँ उन स्थानों पर स्थित हैं, जहाँ विभिन्न प्रकार के खनिज द्रव्य भूगर्भ में पाये जाते हैं। इनमें जियोलाइट और इसी प्रकार के ताप-संग्राहक खनिज उल्लेखनीय हैं।

अपनी इस स्थापना के प्रमाण के रूप में ग्नातोव ने अपने खेत के एक हिस्से में मिट्टी में जियोलाइट मिला कर टमाटर के पौधे उगाये जो कड़ाके के पाले में भी लाल-लाल टमाटर पैदा करते हैं। इस विधि से भूमि का तापमान एक से तीन सेंटीग्रेट तक बढ़ जाता है।

फ़ियोक्तिस्तोव रिएक्टर

पूर्णतः निरापद नाभिकीय रिएक्टर सम्भव है, ऐसा सोवियत भौतिक विज्ञानी **लव फियोक्तिस्तोव**, सोवियत विज्ञान अकादमी के संवादी सदस्य ने कहा। फियोक्ति-स्तोव ने ऐसा रिएक्टर विकसित करने का सुझाव दिया, जिसे हरेक परिस्थिति में कोई अनाड़ी भी चला सके। नया रिएक्टर यूरेनियम-238 और प्लुटोनियम-239 पर चलाया जा सकता है।

वैज्ञानिक के मुताबिक, एक टन यूरेनियम-238 और 40-45 किलो ग्राम प्लुटोनियम रिएक्टर के सक्रिय हिस्से में रखे जाने से नाभिकीय प्रतिक्रिया उन्तान्न हो सकती है। प्लुटोनियम के विखण्डन के फलस्वरूप मुक्त न्यूट्रॉन-238 के परमाणुओं द्वारा अव-शोषित कर लिये जायेंगे। नया न्यूट्रॉन प्राप्त करने पर यूरेनियम-238 आइसोटोप-यूरेनियम-2:9 में और फलतः प्लुटोनियम 239 में बीटा-डिकेज के जरिये बदल जायेगा। इसका अर्थ यह है कि रिएक्टर अपना ईंधन स्वयं तैयार करेगा।

फियोक्तिस्तोव रिएक्टर का एक और लाभ है। विद्यमान तापीय और तेज न्यूट्रॉन रिएक्टर सिर्फ तीन प्रतिशत नाभिकीय ईंधन सक्रिय हिस्से में जलाता है, जबकि नया रिएक्टर 50-70 प्रतिशत। यह महत्त्व-पूर्ण है कि ईंधन सस्ता यूरेनियम-238 है, जिसके भण्डार यूरेनियम-235, जिनका उपयोग पारम्परिक रिएक्टरों में होता है, के भण्डारों की तुलना में ज्यादा है।

यह संरक्षा समस्या को हल करने का भी रास्ता बताता है। यूरेनियम 238 को प्लुटोनियम में परिवर्तित करने की प्रक्रिया के नियमों के कारण रिएक्टर संकट बिन्दु से आगे नहीं जा सकता है और फट नहीं सकता है।

लेकिन अगर रिएक्टर संकट बिन्दु पार भी कर जाता है तो अतिरिक्त प्लुटोनियम को जलाने में कई माइक्रो सेकेण्ड लग जायेंगे, जिससे यह प्रक्रिया स्थिर अवस्था में वापस आ जायेगी।

संकट बिन्दु को बनाये रखने की स्वचालित विधि और अधिक अनोखी परियोजनायें सामने लाती है। उदाहरणार्थ, एक ऐसा रिएक्टर भी बनाया जा सकता है जिसका विशिष्ट वज़न पृथ्वी के सरफेस रॉक से ज्यादा होगा। यदि इसकी बाहरी दीवाल लगभग 1,500 डिग्री तापमान तक गर्म हो जाती है, तो वह इस क्षेत्र में पृथ्वी को दबाती हुई फँसना शुरू कर देगी। ताप को भू-तापीय स्टेशन से "खींचा" जा सकता है। यह महत्त्वपूर्ण है कि "अर्थ-रॉक" को रिएक्टर के न्यूट्रॉनों के द्वारा सिर्फ थोड़ा सक्रिय बनाया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पन्न आइसोटोपों का छोटा आधा-जीवन होता है, जो कुछ दिनों तक चलता है।

यह बिलकुल सम्भव है कि रेडियोधर्मी अपशिष्ट को फेंकने की समस्या इस ढंग से हल की जा सकती है।

"मीर" स्टेशन के लिये टेक्नोलॉजिकल मॉड्यूल

सोवियत संघ अंतरिक्ष में नया 'मॉड्यूल" स्थापित करेगा, जो इस साल की दूसरी छमाही में "मीर" अंतरिक्ष स्टेशन के साथ जुड़ने के लिये वैज्ञानिक उपकरण ले जायेगा। इसके बाद एक और "मॉड्यूल" भेजा जायेगा—**टेक्नोलॉजिक मॉड्यूल**। यह छोटी-मोटी फैक्ट्री के समान होगा, जो भारहीनता की स्थितियों में रवे बनायेगा।

ये रवे इलेक्ट्रॉनिक और लेसर बनाने के उद्यमों के काम आयेगा। अंतरिक्ष में बनाये गये रवे से नये सुपरस्पीड इंटेग्रेटेड सर्किट का निर्माण सम्भव होगा।

टेक्नोलॉजिकल मॉड्यूल में बायोटेक्नोलॉजी में काम के लिये विशेष यूनिट ले जायेगा। यह मॉड्यूल परिस्थिति वैज्ञानिक नियंत्रण उपकरण भी ले जायेगा जिसे अभी विकसित किया जा रहा है। यह 1990 के अंत में या 1991 के शुरू में कक्षा में काम करना शुरू करेगा। टेक्नोलॉजिकल मॉड्यूल, जो लगभग 100 किलोग्राम विशेष रवे तैयार करेगा, एक अरब रुबल मूल्य का मुनाफ़ा देगा।

नये मॉड्यूल "मीर" समुच्चय के निर्माण पर हुए खर्च को तो पूरा करेगा ही, साथ-साथ अरबों रुबल का मुनाफ़ा भी देगा।

खान के लिये नया संरक्षा उपकरण

सोवियत खनिकर्म शोध संस्थान के विशेषज्ञों ने एक उपकरण तैयार किया है जो पोटेशियम और मैग्नेशियम के गड्ढ़ों में विस्फोटों के पूर्व चेतावनी देता है।

जजग, पश्चिम जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, कनाडा तथा स्पेन के खनिकर्म विशेषज्ञों ने भी इस नये उपकरण में दिलचस्पी दिखायी है। □□

आसमानी आइने में पृथ्वी की झलकें

डॉ० रविशंकर द्विवेदी

हम सभी ने दूरबीन व अन्य दूरदर्शी यंत्रों द्वारा सौरमण्डल के अध्ययन की बहुत सी चर्चायें वैज्ञानिक लेखों में पढ़ी हैं। आइये हम इस लेख द्वारा यह देखें कि आसमान प्लेटफार्म से विभिन्न संवेदक यंत्रों द्वारा पृथ्वी की सम्पदा के बारे में क्या-क्या अध्ययन सम्भव हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य-समस्या, उपलब्ध भूमि, जल–सतही और भूमिगत, वन, खनिज एवं तेल तथा गैस आदि संसाधनों के समुचित प्रयोग से सुलझ सकती है। इसके लिये हमें यह जानना आवश्यक है कि उपलब्ध प्राकृतिक साधनों की स्थिति क्या है तथा समयानुसार उनमें क्या परिवर्तन हो रहे हैं। यह सूचना हमें वैज्ञानिक ढँग से सर्वेक्षण से ही प्राप्त हो सकती है। दो दशक पहले तक सर्वेक्षण लौकिक रीति से भूमानचित्रों (टोपोमैप) को आधार मानकर जिस क्षेत्र का सर्वेक्षण करना है वहाँ जाकर विभिन्न संसाधनों की स्थिति का मानचित्रण किया जाता था। 1960-70 के दशक के मध्य से इस कार्य के लिये वायुवीय छाया चित्र (एरियल फोटोग्राफ) का प्रयोग शुरू हुआ जिसमें वायुयान से फोटोग्राफी कैमरा द्वारा पृथ्वी के चित्र लिये जाते थे और इन चित्रों का प्रयोगशाला में विश्लेषण कर फिर उसे पृथ्वी के उस भूभाग, जिसका फोटोग्राफ है, पर ले जाकर विश्लेषण की पुष्टि की जाती है। इस प्रकार विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों का मानचित्रण किया जाता है। 1970-80 के दशक में संवेदक यंत्रों (सेंसर) के विकास में काफी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये जिसके फलस्वरूप वायुयान की बजाय उन्हें कृत्रिम उपग्रहों (सैटेलाइट) में माउन्ट कर पृथ्वी की सतह के चित्र लेना सम्भव हो गया।

इन उपग्रहों की सहायता से पृथ्वी के काफी बड़े भूभाग का छायाचित्र विद्युत्-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम के उस भाग में भी लेना सम्भव है जिसमें आँखों द्वारा तथा कैमरे की सहायता से संवेदन असम्भव है। बाद में इन प्रतिबिम्ब चित्रों (इमैजरीज) का विश्लेषण तथा उस भूभाग पर जाकर सत्यापित कर प्राकृतिक संसाधनों के मानचित्र तैयार किये जाते हैं। चूंकि ये उपग्रह नियमित रूप से पृथ्वी की परिक्रमा करते रहते हैं, समयानुसार उनमें क्या परिवर्तन हो रहे हैं इसकी भी जानकारी सम्भव है। इस तकनीक द्वारा अपेक्षतया कम समय और खर्च में काफी बड़े भूभाग के संसाधनों का अध्ययन किया जा सकता है। लौकिक विधि के अतिरिक्त जो दो अन्य विधियाँ उपर्लिखित खण्डों में वर्णित की गई है उन्हें सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिग) कहते हैं।

सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिग)—शाब्दिक अर्थ में किसी भी वस्तु, आकृति या प्रकरण की जानकारी उसके बिना भौतिक सम्पर्क में आये हुये करना ही सुदूर संवेदन है। व्यावहारिक रूप में इसका आशय सुदूर प्लेटफार्म-वायुमण्डल में या अंतरिक्ष में स्थित किसी भी वस्तु/आकृति/प्रकरण के आकार, प्रकार, प्रकृति और गुण सम्बन्धी सूचना संवेदक यंत्रों द्वारा जो वस्तु द्वारा परावर्तित व उत्सर्जित विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा को मापते हैं, प्राप्त करना है। अपनी आँखों द्वारा किसी भी वस्तु को देखना भी सुदूर संवेदन है। सुदूर संवेदन के तीन प्रमुख अंग हैं जैसा कि हमने अभी देखा—(i) वस्तु/आकृति/प्रकरण, (ii) विद्युत्-चुम्बकीय किरणों का स्रोत और (iii) संवेदक यंत्र। आगे हम इनका विस्तृत वर्णन करेंगे।

वस्तु, आकृति, प्रकरण—इसका आशय उस वस्तु से है जिसकी हमें जानकारी करना है। उदाहरणार्थ, पृथ्वी की सतह पर उपस्थित जल, वन, मृदा (मिट्टी) फसलें, खनिज, बर्फ इत्यादि। विभिन्न सुदूर संवेदन तकनीकों द्वारा हम इन्हीं का अध्ययन करते हैं।

नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी, बाला नगर, हैदराबाद
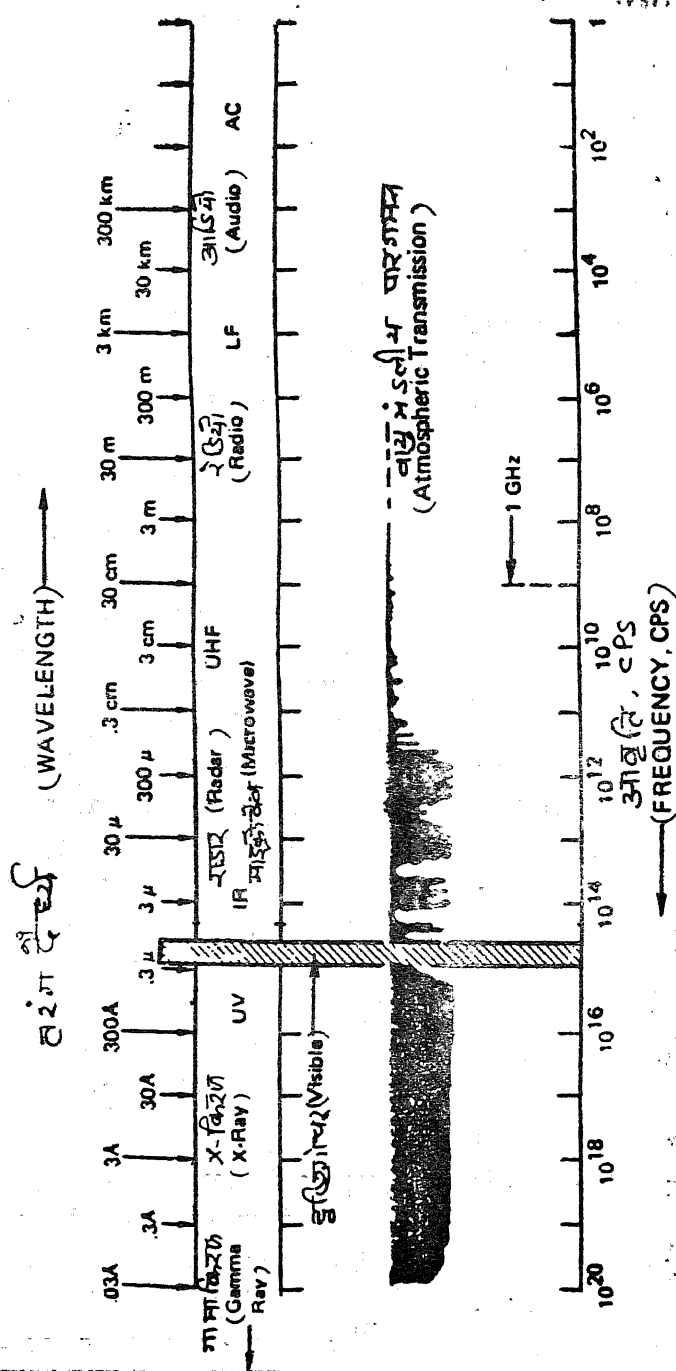
चित्र-1 विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम (Electromagnetic Spectrum) और वायुमंडलीय पारगमन (Atmospheric Transmission)

विद्युत्-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम—यह कॉस्मिक किरणों से लेकर दृष्टिविषयक (जिस भाग में अपनी आँखें वस्तुओं को देखती हैं), अवरक्त (इन्फ्रारेड) और श्रव्य (आडियो वेव) तक फैला हुआ है। यह वही माध्यम है जिसके द्वारा वस्तु के विभिन्न गुणों सम्बन्धी सूचना वस्तु से संवेदक यंत्र तक पहुँचाई जाती है। प्रयोगशालाओं में इन सभी भागों का प्रयोग सुदूर संवेदन के लिये किया जाता है। लेकिन जब संवेदक यंत्र वायुयान तथा उपग्रह में स्थापित (माउन्ट) किये जाते हैं जैसा कि प्रायः प्राकृतिक संसाधनों के सर्वेक्षण में किया जाता है, बायुमण्डल कुछ विद्युत्-चुम्बकीय किरणों को संवेदक यंत्र तक पहुँचने में रुकावट करता है। या तो किरणें वायुमण्डल द्वारा अवशोषित हो जाती हैं या परावर्तित हो जाती हैं। इस प्रकार इन किरणों द्वारा वस्तु विशेष की सूचना संवेदक यंत्र तक पूर्णतया नहीं पहुँच पातीं। कॉस्मिक, गामा, एक्स व पराबैंगनी किरणें जो अपनी आँखों से नहीं देखी जा सकतीं, वायुमण्डल में उपस्थित सूक्ष्म कणों और गैसों द्वारा या तो अवशोषित हो जाती हैं या विकीर्णित (Scattered) हो जाती हैं। इस प्रकार उपर्लिखित किरणों के लिये वायुमण्डल लगभग पारभासक माध्यम है। इसके विपरीत श्रव्य, रेडियो, माइक्रोवेव, अवरक्त, दृष्टिगोचर व परार्बैंगनी किरणों के कुछ भाग वायुमण्डल में उपस्थित गैसों व अन्य किरणों से केवल आंशिक रूप से प्रभावित होते हैं तथा इस प्रकार इन्हें उपयुक्त संवेदक यंत्र का प्रयोग कर वायुमान या उपग्रह प्लेटफार्म से अंकित किया जा सकता है। विद्युत् चुम्बकीय किरणों के इन भागों को वायुमण्डलीय गवाक्ष (Atmospheric windows) कहते हैं। प्राकृतिक संसाधनों के लिये निम्नलिखित वायुमण्डलीय गवाक्ष उपलब्ध हैं,

1. पराबैंगनी और दृष्टिगोचर—0.3-0.75μ, 0.77-0.91μ
2. निकट अवरक्त—1.0-1.12μ, 1.19-1.34μ
3. मध्य अवरक्त (Middle infrared)— 3.5-4.16μ, 4.5-9.0μ
4. ऊष्मीय अवरक्त (Thermal infrared)— 8.0-9.2μ; 10.2-12.4μ 17.0-22.0μ
5. माइक्रोवेव—2.06-2.22, 3.0-3.75 7.5-11.5 व 20.0 cm

पदार्थ-ऊर्जा अनोन्यक्रिया (Matter-Energy interaction)—जैसा कि पिछले अनुभागों में चर्चा की जा चुकी है संवेदक यंत्र द्वारा अंकित विकीर्णी ऊर्जा (Radiant energy) वस्तु/आकृति/प्रकरण के सम्पर्क में आकर प्रकृति और उसकी रासायनिक संरचना (Chemical composition) पर निर्भर करती है। जैसा कि चित्र—2 से स्पष्ट है आपती विकीर्णी ऊर्जा का कुछ भाग वस्तु द्वारा अवशोषित हो जाता है, कुछ भाग उसके अन्द्रोणी सतहों (Inner layers) से प्रेषित (transmit) हो जाता है। शेष भाग वायुमण्डल की ओर परावर्तित (Reflected) या विकीर्णित (Scattered) हो जाता है। ऊष्मीय ऊर्जा जो ऊष्मीय अवरक्त संवेदक यंत्रों (Thermal infrared sensors) तथा अक्रिय माइक्रोवेव (Passive microwave) द्वारा अंकित की जाती है वह वस्तु या आकृति द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा (Emitted energy) होती है (चित्र—2)। इस प्रकार प्रायः सभी संवेदक यंत्र तो परावर्तित, विकीर्णित या उत्सर्जित ऊर्जा अंकित करते हैं।

संवेदक यंत्र (Sensors)—ये ऐसी युक्तियाँ हैं जो वस्तु/आकृति/प्रकरण द्वारा परावर्तित, विकीर्णित तथा उत्सर्जित विकीर्णी ऊर्जा को अंकित करती हैं। फोटोग्राफी कैमरा, विडिकान कैमरा, क्रमवीक्षक (Scanners), राडार (radar) तथा प्रकीर्ण मापी (Scatterometer) आदि इसके उदाहरण हैं। संवेदक यंत्रों की कार्य प्रणाली के अनुसार इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(i) एक तो वे संवेदक यंत्र जो वस्तु/आकृति को प्रकाशित करने के लिए दूसरे ऊर्जा स्रोत (Energy source) पर आश्रित रहते हैं। इन्हें अक्रिय (Passive) संवेदक यंत्र कहते हैं। विभिन्न प्रकार के कैमरे, क्रमवीक्षक, रेडियोमीटर, ऊष्मीय अवरक्त क्रमवीक्षक (Thermal Scanner) आदि इसके
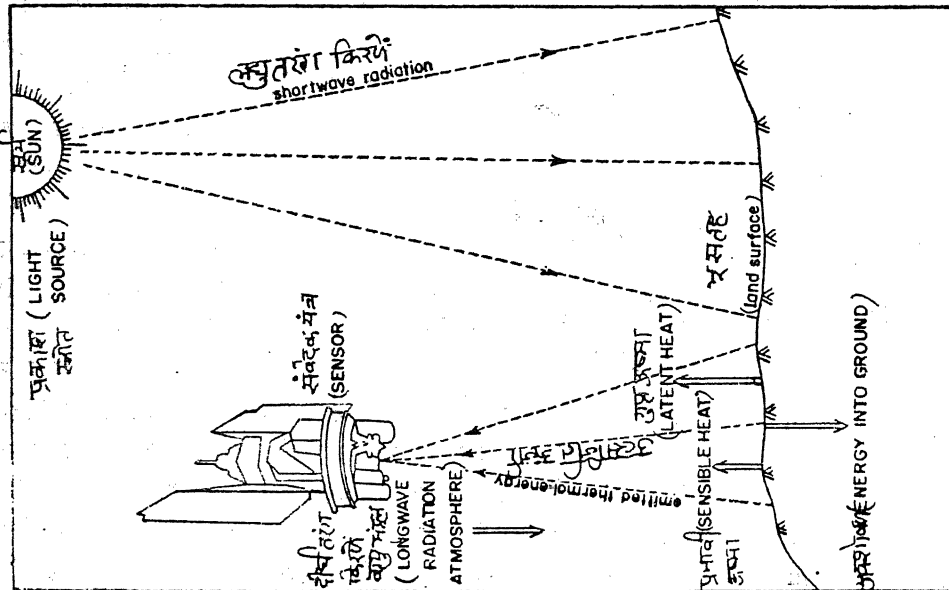
A तापीय अवरक्त किरणें (Thermal Infrared Radiations)

B दृष्टिगोचर और निकट अवरक्त किरणें (Visible and Near Infra-red Radiations)

चित्र-2 ऊर्जा-पदार्थ अन्योन्यक्रिया (Energy-Matter Interaction)

उदाहरण हैं। (ii) ऐसे संवेदक यंत्र जो वस्तु/आकृति को स्वयं प्रकाशित (illuminate) करते हैं तथा इसके द्वारा विकीर्णित ऊर्जा को अंकित करते हैं। इन्हें सक्रिय संवेदक यंत्र (Active sensors) कहते हैं। स्कैटेरोमीटर, राडार तथा राडार अल्टीमीटर (Rcdar altimeter) इस श्रेणी के उदाहरण हैं।

उपग्रह सुदूर संवेदन (Satellite Ramote-Sensing)—संवेदक यंत्रों को या तो हाथों द्वारा पकड़कर किसी भी वस्तु द्वारा परावर्तित/विकीर्णित/उत्सर्जित ऊर्जा को अंकित कर सकते हैं अथवा इन्हें वायुयान या उपग्रह पर स्थापित कर प्रेक्षण ले सकते हैं। हम पृथ्वी सतह से ज्यों-ज्यों अंतरिक्ष की ओर बढ़ते जाते हैं उपर्लिखित संवेदक यंत्रों द्वारा भूसतह का व्याप्ति क्षेत्र (Coverage) बढ़ता जाता है। इसके परिणामस्वरूप एक समय विशेष पर पृथ्वी के काफी बड़े भूभाग का अध्ययन सम्भव हो पाता है। इस प्रकार जो प्रकरण व आकृतिक क्षेत्रीय स्तर पर किसी भी भूभाग में उपस्थित रहते हैं उनका अध्ययन किया जा सकता है, जो कि वायु तथा भूसतह प्लेटफार्म से सम्भव नहीं है।

उपग्रह सुदूर संवेदन के तीन प्रमुख अंग है। (i) संवेदक यंत्र, (ii) उपग्रह और (iii) उपग्रह को उसके निर्धारित कक्ष में अंतःक्षेप (inject) करने के लिये प्रमोचन यान (Launcher)।

विकास (Development)—उपग्रह सुदूर संवेदन का विकास उसके प्रमुख अंगों—राकेटों, संवेदक यंत्र तथा उपग्रह के विकास के साथ प्रारम्भ हुआ। अमेरिका द्वारा अप्रैल, 1961 में Vostok—1 की मानव अंतरिक्ष उड़ान (Manned Space Flight) वास्तव में इस दिशा में एक ठोस कदम माना जाता है। इसके पश्चात GEMINI, APOLLO और SOYUZ मिशन रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा भेजे गये। ये उड़ानें अंतरिक्ष उड़ान सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं तथा प्रमोचन यान सुधार की आवश्यकता, संवेदक यंत्रों के विकास सम्बन्धी विषयों पर विशेष जानकारी प्राप्त करने में काफी सहायक हुईं। इन अभियानों की अवधि 1 घंटे 48 मिनट से लेकर लगभग 18 दिन (SOYUZ-9) तक थी। इन अनुभवों के आधार पर अमेरिका (USA) ने 22 जुलाई, 1972 को एक भूप्रेक्षण उपग्रह (Earth Resources Technology Satellite - ERTS-1) अंतरिक्ष में प्रेक्षित किया जो बाद में; LANDSAT के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस श्रृंखला में कई उपग्रह छोड़े गये—LANDSAT-2 जनवरी, 1975 में, LANDSAT-3 मार्च, 1978 में, LANDSAT-4 जुलाई, 1982 में; LANDSAT-5 मार्च, 1984 में। इसी अवधि में रूस द्वारा स्थायी SALYUT स्टेशन के अलावा COSMOS श्रृंखला के कई उपग्रह छोड़े गये। अमेरिका द्वारा भी LANDSAT के अलावा SEASAT, NOAA श्रृंखला के उपग्रह छोड़े गये तथा SHUTTLE IMAGING RADAR (SIR) अभियान के साथ-साथ LARGE FORMAT CAMERA (LFC) फोटोग्राफी अभियान अंतरिक्ष शटल (Space shuttle) पर प्रयोग किये गये। हाल ही में (फरवरी, 1986) फ्रान्स ने अपना उपग्रह SPOT (Systeme Pourde Observation de la Terre), जो उच्च विभेदन दृष्टिगोचर कैमरा (High Resolution Visible-HRV Camera) से युक्त है, छोड़ा।

उपग्रहों के मुख्य संवेदक यंत्र—LANDSAT श्रृंखला के उपग्रहों में तीन संवेदक यंत्र—प्रतिगमन किरणपुंज विडिकान (Return Beam Vidicon-RBV) कैमरा, बहुस्पेक्ट्रमी क्रमवीक्षक (Multispectral Scanner-MSS) और वस्तुविषयक मानचित्रक (Thematic Mapper-TM)। LANDSAT-1, 2 और 3 में RBV और MSS थे तथा LANDSAT-4 और 5 MSS और TM से युक्त है। केवल LANDSAT-5 का ही TM कार्यरत है।

बहुस्पेक्ट्रमी क्रमवीक्षक (Multispectral Scanner)—इसमें निम्नलिखित चार स्पेक्ट्रमी बैण्ड हैं :

बैण्ड	उपयोगिता
1. 0.5—0.6 μ (हरा)	सर्वाधिक जलभेदन (Water
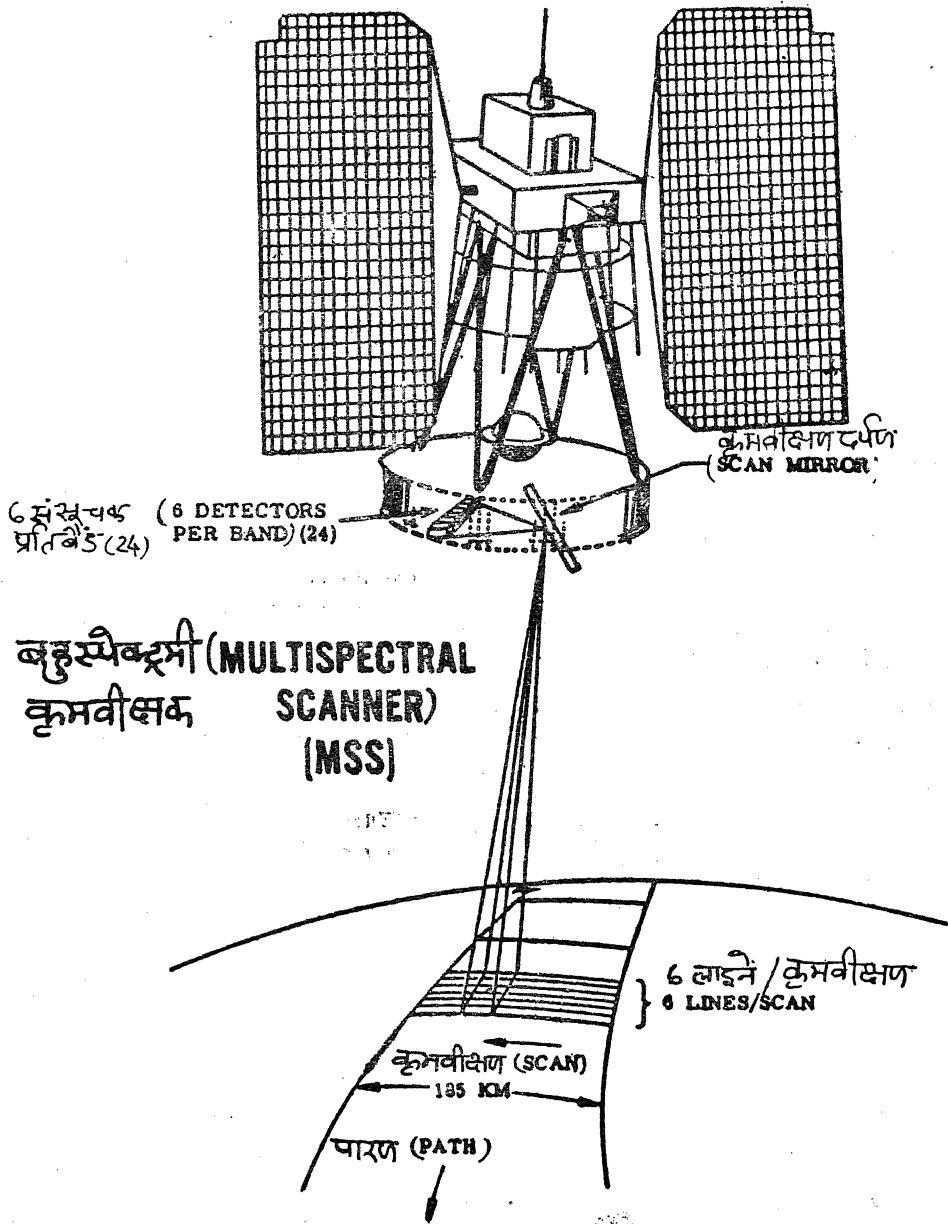
चित्र-3 बहुस्पेक्ट्रमी क्रमवीक्षक प्रणाली प्रतिरूप स्रोत : NASA/GSFC

	penetration) क्षमता; पानी के गंदलेपन (turbidity) का अध्ययन, हरी वनस्पतियों के निरूपण (delineation) में सहायक।
2. 0.6-0.7 μ (लाल)	उत्कर्ष (Cultural) तथा टोपोग्रैफिक (Topographic) आकृतियों (Features) का अध्ययन तथा विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के वर्गीकरण में सहायक।
3. 0.7-0.8 μ (निकट अवरक्त)	भूमि उपयोग (Land use) के परिवर्तन और हरित बायोमॉस (Green biomass) का अध्ययन।
4. 0.8-1.1μ (निकट अवरक्त)	जल, भूभागों, मृदा (Soils) तथा फसलों (Crops) के निरूपण में सहायक।

प्रतिमान किरण पुंजगामी विडिकान (Return Beam Vidicon)—इसके द्वारा भी भूसतह द्वारा परावर्तित किरणें दृष्टिगोचर और निकट अवरक्त भागों में हों, MSS की तरह उपयोगी है। यह कैमरा जैसा कार्य करता है। इसके विभिन्न बैण्ड इस प्रकार हैं (चित्र—4)—

बैण्ड 1—0.46—0.60 (हरा)

बैण्ड 2—0.57—0.68 (लाल)

बैण्ड 3—0.66—0.82 (निकट अवरक्त)

विषय वस्तु मानचित्रक (Thematic mapper)—इसमें 7 स्पेक्ट्रमी बैण्ड हैं—0.45—0.52μ, 0.52—0.60μ, 0.63—0.69μ, 0.76—0.90μ, 1.55—1.70μ, 2.08—2.35μ और 10.4—12.5μ। बैण्ड 2, 3 और 4 MSS के ही लगभग समान हैं। बैण्ड—1 समुद्रतटीय जल के अध्ययन के लिये, बैण्ड-5 बादल आच्छादित क्षेत्रों को बर्फाच्छादित (Snow covered) क्षेत्रों के निरूपण में सहायक है। इस प्रकार की चट्टानों तथा ऊष्मजलीय प्रकरणों (thermal phenomenon) के लिये उपयोगी है जबकि बैण्ड-6 ऊष्मीय परिवर्तन (thermal variation), बनस्पति प्रतिबल (Vegetation stress) तथा मृदा आर्द्रता (Soil moisture) की स्थिति का सूचक है।

SPOT-उच्च विभेदक दृष्टिगोचर कैमरा (High Resolution Visible Camera—HLV)—इसमें केवल 3 बैण्ड हैं—0.50—0.59μ, 0.61—1.69μ और 0.79—0.89μ। इन बैण्डों की उपयोगिता MSS ही जैसी है परन्तु इसकी त्रिविध व्यापी व्याप्ति (Stereocoverage) क्षमता तथा उच्च स्पैशियल रिसोलूशन (Spatial resolution) की व्यवस्था इसे बहुत ही उपयोगी बना देती है। HRV के अभिलक्षण दर्पण (Pointing mirror) की दिशा में परिवर्तन कर त्रिविध चित्र (Stercolmages) लिये जा सकते हैं (चित्र—5)। इस प्रकार के प्रतिबिम्ब चित्र (images) पृथ्वी सतह के विभिन्न आकृतियों जैसे पहाड़, घाटी, विभिन्न प्रकार के मैदानों के मानचित्रण में काफी सहायक हैं।

अन्य उपग्रहों तथा अभियानों (Missions) और उनके संवेदक यंत्रों का विवरण तथा उनकी उपयोगिता का विस्तृत वर्णन इस लेख के क्षेत्र की सीमा से परे है अत: SEASAT, NOAA—7 व 8, COSMOS, LFC और SIR—A व B अभियानों का वर्णन हम नहीं कर रहे हैं।

उपग्रहों द्वारा लिये गये चित्रों/आँकड़ों से प्राकृतिक संसाधनों का अध्ययन—

जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है, किसी वस्तु/प्राकृतिक संसाधन की स्पेक्ट्रमी अनुक्रिया (Spectral response) संवेदक यंत्रों द्वारा विद्युत् चुम्बकीय स्पेक्ट्रम के विभिन्न भागों में अंकित की जाती है जिसकी व्याख्या/विश्लेषण (interpretation/analysis) कर वस्तु विशेष या प्राकृतिक संसाधन की जानकारी प्राप्त की जाती है। इसकी दो विधियाँ—दृष्टि विषयक व्याख्या (Visual interpretation)
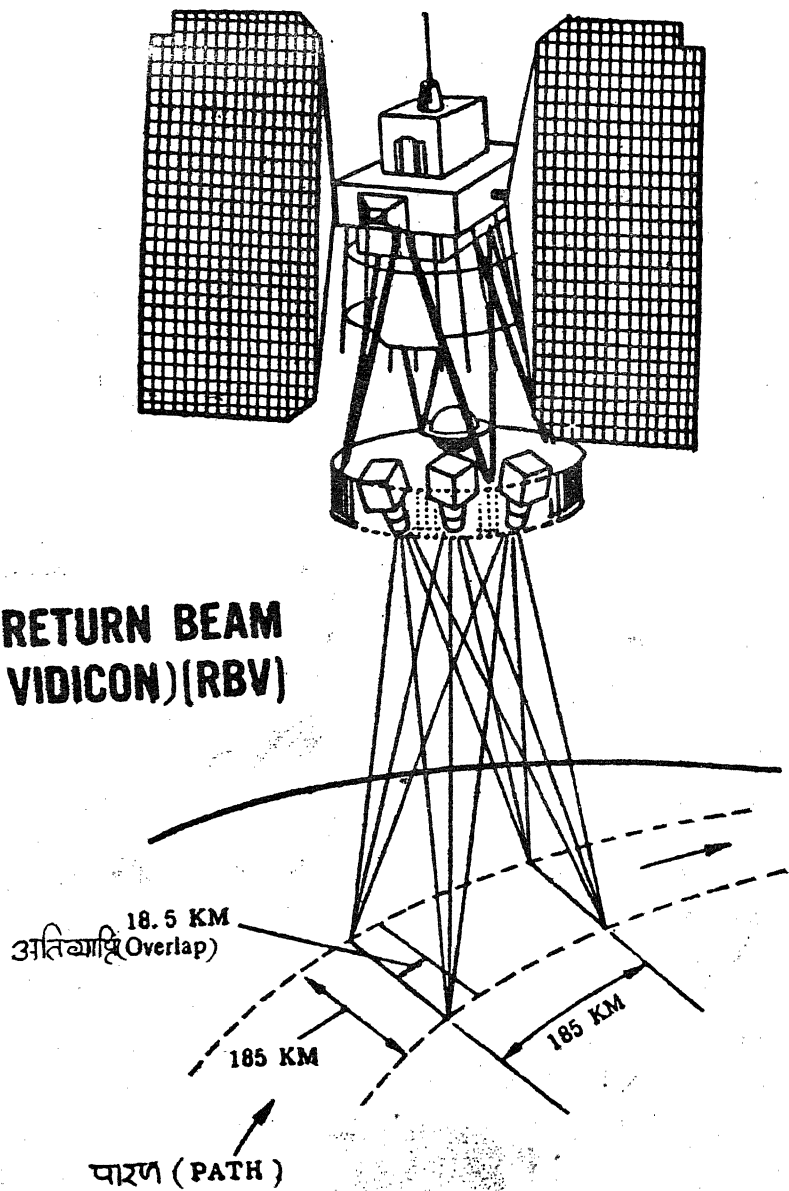
चित्र-4 प्रतिगमन किरण पुंज विडिकान क्रमवीक्षण प्रतिरूप स्रोत : NASA/GSFC

और कम्प्यूटर की सहायता से अंकीय विश्लेषण (digital analysis) हैं।

दृष्टि विषयक व्याख्या (Visual Interpretation)- इस विधि में प्रतिबिम्ब चित्रों के अवयवों (elements) जैसे वर्ण (Colour), टोन (Tone), संरचना, प्रतिरूप (pattern), आकार, परिमाप व परछाईं के आधार पर सहायक आँकड़ों (ancillary data) - भौगोलिक मानचित्र (toposheet), प्रकाशित मानचित्र व प्रतिवेदन इत्यादि की सहायता से व्याख्या कर उस भूभाग में जाकर, जहाँ का प्रतिबिम्ब चित्र है, सत्यापित कर विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों का मानचित्रण करते हैं।

कम्प्यूटर की सहायता से अंकीय विश्लेषण—इस विधि में कम्प्यूटर सुसंगत टेप (Computer Compatible Tape CCT), जिनमें संवेदक यंत्रों द्वारा अंकित किये हुये प्राकृतिक संसाधनों के आँकड़े (data) रहते हैं, प्रयोग किये जाते हैं। यह तकनीक इस सिद्धान्त पर आधारित है कि सभी वस्तुओं/आकृतियों/प्रकरणों की अपनी अनूठी स्पेक्ट्रमी अनुक्रिया होती है जिसके द्वारा उन्हें/उसे अन्य से अलग पहचाना जाता है। CCT को कम्प्यूटर पर उपयुक्त वर्गीकरण एल्गारिथ्म (Classification algorithm) की सहायता से वर्ण कोडित (Colour-Coded) कर मानचित्र तैयार किये जाते हैं, जो कि प्राकृतिक साधनों के क्षेत्रीय स्तर पर उपयोग सम्बन्धी परियोजनायें तैयार करने में सहायक होते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों के सर्वेक्षण में सुदूर संवेदन का उपयोग

इस तकनीक की सहायता से प्राकृतिक संसाधन के निम्नलिखित पहलुओं का अध्ययन संभव है—

1. प्रायोगिक स्तर पर विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र की जानकारी।
2. रोग/बीमारी-ग्रस्त फसलों का निरूपण।
3. जल द्वारा क्षरित (Eroded), बीहड़ (ravines) तथा ऊसर व जलप्रभावित (Waterlogged) भूमि का मानचित्रण तथा उनकी समयानुसार मॉनीटरिंग (monitoring)।
4. भूमिगत जल के संभावित स्रोतों (Potential areas) की जानकारी।
5. खनिज, तेल, कोयला और गैसों के संभावित भण्डारों (Probable deposits) का पता लगाना।
6. सतही जल का अध्ययन तथा वनों का वर्गीकरण व सर्वेक्षण।
7. बर्फ के पिघलने से उत्पन्न संभावित जल, जो जलाशयों में एकत्र होता है, का अध्ययन।
8. किसी समय विशेष पर किसी क्षेत्र के भूमि उपयोग की जानकारी और मॉनीटरिंग।
9. छोटे व बड़े महानगरों के क्षेत्रफल में समयानुसार बढ़ाव का अध्ययन।
10. अनुपयोगी भूमि (Wasteland) का सर्वेक्षण व मानचित्रण।
11. बाढ़ और सूखे के प्रभावों का अध्ययन।

उपर्लिखित सूचनायें हमारे उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार उपयोग करने में अत्ययन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी सहायता से सरकार उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की कारगर योजनायें तैयार कर सकती है जो देश को समृद्धिशाली बनाने में बहुत बड़ा योगदान दे सकती हैं।

उपसंहार

उपग्रह सुदूर संवेदन प्राकृतिक संसाधनों के सर्वेक्षण व मानचित्रण तथा कुछ स्थितियों में उनके मॉनीटरिंग के लिये अत्यंत उपयोगी साधन है जिसकी सहायता से अपेक्षाकृत कम समय में काफी बड़े भूभाग के प्राकृतिक संसाधनों का सर्वेक्षण व मानचित्रण तथा मानचित्रण कम लागत में करना सम्भव है। यह तकनीक हमारे लौकिक विधि का विकल्प नहीं है किन्तु सर्वेक्षण क्षमता बढ़ाने का बहुत ही शक्तिशाली साधन (tool) है। सुदूर संवेदन से प्राकृतिक संसाधनों की जानकारी की सर्वश्रेष्ठ विधि तीनों प्लेटफार्मों—भूसतह, वायु तथा अंतरिक्ष से प्राप्त आँकड़ों का समन्वय करना है जिससे
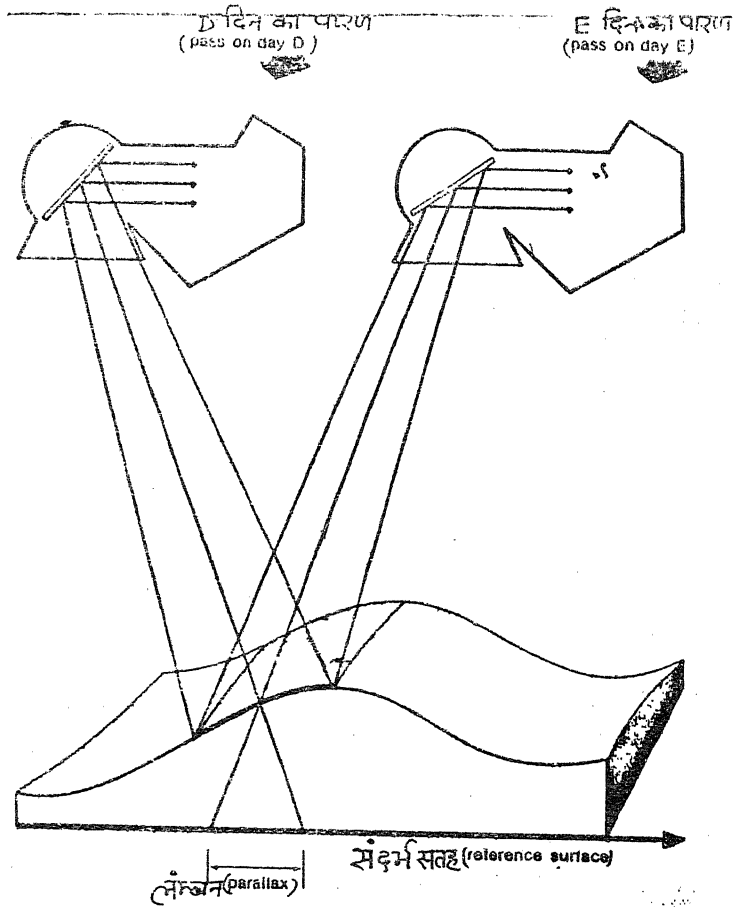
चित्र 5 SPOT-HRV द्वारा त्रिविम व्याप्ति (Stereoscopic Coverage)

जानकारी प्राप्त करने की क्षमता सर्वाधिक रहती है।

बाढ़, सूखा, तथा बर्फ पिघलने जैसी प्रक्रियायें एक समय विशेष पर होती हैं जिनका अध्ययन उसी समय पर लिये गये प्रेक्षण से करना संभव है। वर्तमान समय के उपग्रहों की रिविजिट (**revisit**) क्षमता इस प्रकार के अध्ययन के लिये अपर्याप्त प्रतीत होती है। बाढ़ प्राय: ऐसे समय आती है जब वायुमण्डल बादलों से आच्छादित रहता है। वर्तमान संवेदक यंत्रों द्वारा इस स्थिति में प्रतिबिम्ब चित्र लेना सम्भव नहीं है क्योंकि बाढ़ग्रस्त क्षेत्र द्वारा परावर्तित किरणें बादलों के कारण संवेदक यंत्र तक नहीं पहुँच पाती हैं। भविष्य में छोड़े जाने वाले उपग्रह जैसे **ERS-1, RADARSAT, LOS-1, MOS-1** आदि माइक्रोवेव संवेदक यंत्रों से युक्त होंगे जो बादलों का भेदनकर बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के चित्र लेने में सफल रहेंगे। फलत: एक समय विशेष पर बाढ़ द्वारा प्रभावित क्षेत्र की जानकारी तथा उससे नुकसान (**damage**) की वास्तविक स्थिति जानी जा सकेगी, जो सरकार द्वारा राहत कार्य (**relief**) में सहायक होगी और बाढ़-अनुदान की उचित धनराशि प्रदान करने का आधार बनेगी। □□

परिषद् का पृष्ठ

1. विज्ञान परिषद् में 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' समारोह

28 फरवरी 1927 को **डॉ० सी० वी० रामन** द्वारा 'रामन प्रभाव' के महत्वपूर्ण आविष्कार की याद में मनाये जाने वाले 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' पर 28 फरवरी को विज्ञान परिषद् प्रयाग में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर गोष्ठी की अध्यक्षता इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के अवकाश प्राप्त अध्यक्ष **प्रो० वाचस्पति** ने, गोष्ठी का संचालन परिषद् की पत्रिका 'विज्ञान' के संपादक **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** ने तथा धन्यवाद ज्ञापन परिषद् के प्रधानमंत्री **प्रो० पूर्ण चन्द्र गुप्ता** ने किया। गोष्ठी में अन्य गण्यमान्य नागरिकों के साथ इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति **श्रीराम सहाय** भी उपस्थित थे।

भारत में विज्ञान की वर्तमान स्थिति पर अपने विचार प्रकट करते हुए सर्व प्रथम वक्ता **डॉ० वी० पी० वर्मा** ने कहा कि भारतीय विज्ञान को सामान्य जन के लिए होना चाहिए और इसके लिए आज के वैज्ञानिक शोध की दिशा बदलकर उसे ग्रामोपयोगी करना होगा। यह भी कि शोध हेतु छात्रवृत्तियाँ लेकर विद्यार्थी शोध नहीं करते वरन् प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारियाँ करते हैं, इस प्रथा पर अविलंब रोक लगानी चाहिए। एप्लाइड फिजिक्स विभाग के अध्यक्ष **डॉ० बिष्ट** ने कहा कि विज्ञान सार्वभौम है पर आज का हमारा विज्ञान पश्चिम से आयातित होने के कारण सर्वसाधारण से नहीं जुड़ पा रहा है। इसके लिए हमें हिन्दी माध्यम से विज्ञान को जनसामान्य तक ले जाने का संकल्प लेना चाहिए। गाँव का प्रतिनिधित्व करने वाले वक्ता **श्री गुलाब ग्रामीण** ने ग्रामोपयोगी तकनीकी के अभाव के महत्वपूर्ण बुनियादी प्रश्नों को उठाया। उनके अनन्तर **डॉ० प्रदीप कुमार** ने विज्ञान के प्रसार प्रचार के लिए यह अनुरोध किया कि परिषद् इस दिशा में कार्य करने वाले निष्ठावान वैज्ञानिकों को सम्मानित करके प्रोत्साहन दे। दूसरे वक्ता **डॉ० एस० के० घोष** ने वैज्ञानिक उच्चता को प्राप्त करने के लिए निष्ठा और त्याग इन दो गुणों को सबसे आवश्यक बताया क्योंकि स्वयं **डॉ० सी० वी० रामन** ने, जिनकी युगांतरकारी खोज की याद में यह दिवस मनाया जाता है, एक अत्यन्त साधारण उपकरण से ही अपना नोबेल पुरस्कार वाला आविष्कार किया था। ग्रामीण अंचल के एक अन्य प्रतिनिधि **श्री विजय जी** ने गरीबी और बेरोजगारी जैसी देश की मूलभूत समस्याओं पर विजय पाने के लिए विज्ञान के सार्थक उपयोग पर बल दिया। उन्होंने विज्ञान की शैक्षणिक समस्याओं की ओर सरकार की उदासीनता पर भी क्षोभ प्रकट किया।

भूतपूर्व कुलपति **श्री राम सहाय जी** ने वैज्ञानिक प्रगति के लाभ को गाँवों तक पहुँचाने के लिए सहकारी आन्दोलन को सार्थक माध्यम बताया। उन्होंने कहा कि हमें विज्ञान की नवीनतम प्रगति के साथ-साथ अपनी संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के समन्वयन पर भी बल देना चाहिए। अध्यक्ष पद से **प्रो० वाचस्पति** ने कहा कि हमें आणविक और आनुवंशिक अभियांत्रिकी सम्बन्धी शोध के खतरों के प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है। उन्होंने यह भी कहा कि शोध कार्य बजाय रिसर्च इंस्टीट्यूटों के केवल विश्वविद्यालयों में होने चाहिए। इससे शोध के स्तर में गिरावट से बचा जा सकेगा। अंत में धन्यवाद देते हुए **प्रो० पी० सी० गुप्ता** ने कहा कि विज्ञान की वर्तमान स्थिति संतोषजनक तो नहीं पर निराशाजनक भी नहीं है। और स्थिति में अपेक्षित सुधार के लिए विज्ञान को राजनीतिक हस्तक्षेप से अलग रखने को आवश्यक बताया। परिषद् के प्रधानमंत्री के रूप में उन्होंने परिषद् की ओर से वैज्ञानिकों को सम्मानित करने के सुझाव का स्वागत किया और इसे कार्यान्वित करने का आश्वासन दिया।

इस गोष्ठी के अवसर पर **डॉ० राम दास तिवारी, डॉ० अशोक महान, डॉ० हरिहर मिश्र, डॉ० जे० एस० चौहान, श्री द्वारिका प्रसाद, श्री रमाकान्त उपाध्याय, डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता, श्री अमिताभ व प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी** भी उपस्थित थे।

2. 'वैज्ञानिक समितियों एवं परिषदों की भूमिका' पर संगोष्ठी

'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' के संस्थापना दिवस के अवसर पर 10 मार्च 1989 को 'वैज्ञानिक समितियों एवं परिषदों की भूमिका' विषय पर एक विचार गोष्ठी आयोजित की गई। गोष्ठी की अध्यक्षता **प्रो० वाचस्पति** ने की और संचालन प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने किया।

'शीलाधर मृदा अनुसंधान संस्थान' के निदेशक **प्रो० शिवगोपाल मिश्र** ने विषय प्रवर्तन करते हुए विज्ञान परिषद् की स्थापना, इसके उद्देश्य और विगत 75 वर्षों की सक्रिय सेवा पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि विज्ञान परिषद् ने जन-जन तक विज्ञान को पहुँचाने के लिए आम जनता की भाषा हिन्दी को अपना माध्यम बनाकर इस दिशा में मील के पत्थर जैसी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' निकाल कर हिन्दी में वैज्ञानिक जर्नल निकालने में भी परिषद् अग्रणी रही है।

वर्तमान काल में परिषद् की भूमिका को प्रासंगिक बनाने के लिए रुड़की के अवकाश प्राप्त **प्रो० चन्द्रिका प्रसाद** ने सुझाव दिया कि परिषद् को वर्तमान महत्व के विषयों की स्तरीय पुस्तकें प्रकाशित करने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए और इस कार्य के लिए धन की व्यवस्था उद्योगपतियों की सहायता से करनी चाहिए तथा पुस्तकों के लिए उनके उचित विज्ञापन और प्रचार की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

विज्ञान के एक पुराने लेखक **श्री० बी० एन० सिंह** ने सुझाव दिया कि परिषद् की आर्थिक समस्या से जूझने के लिए वैज्ञानिक उपकरण व रसायनादि बनाने वाले उद्योगपतियों से सहायता ली जानी चाहिए। एक अन्य उपाय स्मारिका या विशेषांक निकाल कर उसमें विज्ञापनों को छापना है।

श्री अग्निहोत्री ने परिषद् के कार्य कलापों को विस्तार देते हुए प्रौढ़ शिक्षा सम्बंधी पाकेट बुक जैसा साहित्य निकालने का सुझाव दिया।

परिषद् की भूमिका पर कुछ विस्तार से चर्चा करते हुए **डॉ० बी० पी० वर्मा** ने परिषद् को सरकारी नारे के अनुरूप विज्ञान को गाँवों तक ले जाने की प्रमुख भूमिका निबाहने की बात कही। इस दिशा में ठोस कार्य के लिए परिषद् द्वारा विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के प्रशिक्षण की एक मासिक या पाक्षिक कार्य-शाला आयोजित करनी चाहिए। उन्होंने विज्ञान के प्रचार-प्रसार के कार्यक्रमों में आज के उत्साही युवा विद्यार्थी वर्ग को भी शामिल करने पर बल दिया।

अंतिम वक्ता **डॉ० सुप्रभात मुकर्जी** ने परिषद् के सुचारु रूप से कार्य करने के लिए अर्थ की व्यवस्था, कार्य के प्रति गम्भीर, लक्ष्यनिष्ठ और त्यागशील कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता पर अधिक बल दिया। उन्होंने कहा कि विज्ञान परिषद् की यह भूमिका भी होनी चाहिए कि वह विज्ञान के उपाधि प्राप्त लोगों में वैज्ञानिक अभिरुचि का आकलन करे और लोगों में इस अभिरुचि के विकास का प्रयत्न करे।

गोष्ठी के अध्यक्ष **प्रो० वाचस्पति** ने विज्ञान परिषद् के कार्यकर्ताओं के एक सक्रिय दल के गठन को आवश्यक बतलाया। उन्होंने सुझाव दिया कि परिषद् योजनाओं का प्रारूप बनाकर सरकार को भेजे और उसके कार्यान्वियन के लिए सरकारी सहायता प्राप्त करे। 'विज्ञान' के संपादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और 'विज्ञान' के लिए लेख लिखने का निवेदन किया।

विचार गोष्ठी में **डॉ० रामसुरंजन धर दुबे, डॉ० अशोक महान, श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी, सर्वश्री प्रमोद कुमार शुक्ल, विजय कुमार, सच्चिद्रानन्द पाण्डेय, दिलीप कुमार सिंह, हरिहर मिश्र,** और **मोहन पाण्डेय** ने भी भाग लिया।

3. संस्कृत साहित्य की प्राचीन और मध्यकालीन प्रवृत्तियाँ

शुक्रवार दिनाङ्क 31 मार्च को विज्ञान परिषद् में आयोजित एक विचार गोष्ठी में वेदों के सुप्रसिद्ध विद्वान्, आर्यसमाज के मूर्धन्य नेता और प्रसिद्ध वैज्ञानिक **स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती** ने 'प्राचीन और मध्यकालीन संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियों, पर एक सारगर्भित और सूचनाप्रद व्याख्यान दिया।

विषय को प्रारम्भ करते हुए उन्होंने प्राचीनकालीन संस्कृत भाषा के रचनाकारों **यास्क, पाणिनि** और **पातंजलि** कृत **निरुक्त, व्याकरण,** और **महाभाष्य** की प्रकृति पर प्रकाश डाला। इस क्रम में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि संस्कृत वर्णमाला और अँग्रेज़ी तथा अन्य यूरोपियन भाषाओं की वर्णमालाओं में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि संस्कृत में वर्ण कण्ठ से लेकर ओष्ठ तक से निकलने वाली ध्वनियों के उच्चारण के आधार पर निश्चित किए गए हैं, जबकि यूरोपियन और अँग्रेज़ी भाषाओं की वर्णमालायें ऐसी नहीं है। उदाहरणार्थ अँग्रेज़ी का 'ए' कण्ठ से फिर '**बी**' ओष्ठ्य और '**सी**' पुनः दन्त्य ध्वनियों पर आधारित हैं। अतः उनकी वर्णमालाओं में ध्वनियों का कोई वैज्ञानिक क्रमिक आधार नहीं है। संस्कृत का प्रणवाक्षर 'ॐ' भी मानवीय वाक्‌तंत्र की इसी विशेषता पर आधारित है। '**अ**' जो कण्ठ से निस्तृत प्रथम वर्ण है, '**उ**' जो अंतिम शुद्ध स्वर है और '**म्**' जो हमारे वाक्‌तंत्र की अंतिम सीमा है। '**ओउम्**' ('ॐ') इन्हीं तीनों से मिलकर बनता है। **पाणिनि** ने इन माहेश्वर सूत्रों को मिलाकर अद्भुत व्याकरण लिखी और उस व्याकरण पर लिखा गया 'पातंजलि महाभाष्य' आज बनाई जाने वाली सभी शब्दावलियों के सिद्धांतों का अभिप्रेरक है।

मूलरूप से संस्कृत साहित्य का प्राचीन काल मौलिक ग्रन्थकार ऋषियों का काल तथा मध्यकाल भाष्यकारों तथा आचार्यों का काल था। मध्यकाल में हर आचार्य अनिवार्य रूप से **प्रस्थानत्रयी** पर भाष्य लिखता था।

अंत में यह बताते हुए कि सोलहवीं-सत्रहवीं सदी के बाद इस दिशा में हम जड़ हो गए और प्राचीन साहित्य को आधार न बनाने की एक नई प्रवृत्ति ने जन्म लिया, स्वामी जी ने अपने भाषण का समापन किया।

इस विचार गोष्ठी में प्रो० पूर्णचन्द्र गुप्ता, प्रो० रामदास तिवारी, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, प्रो० शिवगोपाल मिश्र, श्री द्वारिका प्रसाद, प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी, डॉ० जगदीश सिंह चौहान, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता, मंजुलिका लक्ष्मी के अतिरिक्त आर्य समाज के और संस्कृत भाषा के अनेक विद्वान उपस्थित थे। □□

—प्रस्तुति : मंजुलिका लक्ष्मी
5 ई/4 स्टाफ क्वार्टर्स
लिडिल रोड, जार्जटाउन
इलाहाबाद—211002

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठको !

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अप्रैल 1989 से 'विज्ञान' पत्रिका का 75 वाँ वर्ष प्रारम्भ हो गया है। इसी अप्रैल माह में 1915 में 'विज्ञान' पत्रिका का पहला अंक प्रकाशित हुआ था, 'प्रयाग की विज्ञान परिषद् का मुखपत्र' के रूप में। इसके सम्पादक थे लाला सीताराम, बी० ए०, एफ़० ए० यू० और पंडित श्रीधर पाठक। प्रकाशक थे लाला कर्मचन्द्र भल्ला,, विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग। इस समय पत्रिका का वार्षिक मूल्य मात्र तीन रुपया और एक प्रति का मूल्य चार आना था। यह प्रथम अंक 48 पृष्ठों का था और प्रारम्भ 'मंगलाचरण' से हुआ था—

सूर्य, अग्नि, जल, व्योम, वायु में जिसका बल है
संचालक सबका परन्तु जो स्वयम् अचल है
उस अटल तत्व के ज्ञान से माया-पटल विनाश हो
जो सर्वत्र सुविधाओं का जिज्ञासा-स्थल है
जगत दृश्य जिसकी केवल माया का छल है
उस ब्रह्म-बीज विज्ञान का सब थल सुखद प्रकाश हो

—श्रीधर पाठक

आगे के पृष्ठों पर अपनी चर्चा, विज्ञान शिक्षा की आवश्यकता, विज्ञान का विस्तार, कोयले की आत्म कहानी, डांड़ी के अद्भुत खेल और उसका सिद्धान्त, बिजली के ज्ञान का विकास और उन्नति का इतिहास, खेती का प्राण और उसकी रक्षा, गेहूँ की बीमारी और उसका इलाज, नहर की सिंचाई, शिल्प की लीला, दाग-धब्बे छुड़ाना, जल के अनेक रूप, पनडुब्बी नाव, और वैज्ञानिकीय शीर्षकों के अन्तर्गत सरल हिन्दी में रोचक और ज्ञानवर्धक सामग्री प्रकाशित हुई थी।

इस प्रथम अंक के लेखकों में थे पंडित रघुनाथ चिन्तामणि चतुर्वेदी, अध्यापक गोपाल स्वरूप भार्गव, अध्यापक महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, अध्यापक प्रेम बल्लभ जोशी, 'संकर्षण', अध्यापक दक्षिणारंजन भट्टाचार्य्य, 'विश्वकर्मा', लाला पार्वतीनन्दन, श्रीयुत मोहन लाल जौहरी, अध्यापक गोमती प्रसाद अग्निहोत्री, रा० गौ०। प्रथम अंक की सामग्री देखकर ऐसा लगता है कि इतना वैज्ञानिक साहित्य एकत्र करने के लिए निश्चय ही संपादक द्वय को अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा होगा, जो संपादकों और लेखकों की निःस्वार्थ भावना, विज्ञान के प्रति लगन और निष्ठा का सूचक है।

'विज्ञान' पत्रिका ने एक लम्बी यात्रा तय की है। इस बीच विज्ञान की अनेक पत्रिकायें प्रकाशित हुईं और काल कवलित हो गईं। पर विज्ञान अभी भी प्रकाशित हो रही है तो इसकी पृष्ठभूमि में कुछ बात अवश्य है। और जो सबके बड़ी बात है, वह यह कि इसमें लिखने वालों ने निःस्वार्थ सेवा भाव से, विज्ञान के प्रचार-प्रसार को अपने जीवन का लक्ष्य मानकर लेख लिखे हैं। इसी कारण 'विज्ञान, आज भी जीवित है।

मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ कि इसके 75 वें वर्ष में प्रवेश के समय इसके संपादन का भार मुझ पर है। पर मैं अपने को आगे भी तभी भाग्यशाली समझ सकूँगा, जब 'विज्ञान' युवा पाठकों और नये लेखकों को कुछ दे सके।

इस पावन अवसर पर मैं पुराने सभी संपादकों और लेखकों को प्रणाम करते हुए आप सभी को 'विज्ञान' में लिखने का आमंत्रण देता हूँ।

विज्ञान के सामने सदैव आर्थिक कठिनाई रही है। आज भी है। इसके मुद्रण का स्तर चाहते हुए भी अर्थाभाव के कारण हम सुधार नहीं पाते हैं। पर एक काम तो हम कर ही सकते हैं—अच्छे लेखों का प्रकाशन। आइए पत्रिका के 75 वर्ष पर हम इस बात का संकल्प लें कि 'विज्ञान' को हमें और ऊँचा उठाना है ताकि यह चिरायु हो सके।

आपका
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1989

"हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्" तथा "राजभाषा कार्यान्वियन समिति" (भा० प० अ० केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियाँ आमंत्रित हैं।

विषय

विज्ञान के किसी भी विषय जैसे न्यूक्लीय विज्ञान, भौतिकी, रसायनिकी, जीवविज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, मौसम विज्ञान, इंजीनियरी, चिकित्सा आदि पर लेख भेजे जा सकते हैं। **शब्द संख्या :** लगभग 3000 शब्द लेख की दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियाँ भेजें। लेखों में विज्ञान से संबंधित आधुनिक जानकारी होनी चाहिए।

चित्र

विषय-वस्तु को समझाने के लिए आवश्यक चित्रों को सफेद कागज़ पर काली रोशनाई से ही बनायें और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

पुरस्कार

प्रथम—रु० 750/-। द्वितीय—रु० 500/-। तृतीय—रु० 250/-

इसके अतिरिक्त पाँच प्रोत्साहन पुरस्कार और अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार प्रत्येक रु० 150/- के दिए जाएँगे। ऐसे प्रतियोगी अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि : 30 जून, 1989

लेख भेजने का पता : संपादक "वैज्ञानिक"
हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कांप्लेक्स
भा० प० अ० केंद्र, बंबई 400085

विशेष : सभी पुरस्कृत, रचनाओं को हिं० वि० सा० परिषद् द्वारा प्रकाशित अखिल भारतीय विज्ञान पत्रिका "वैज्ञानिक" में प्रकाशित किया जाएगा। प्रतियोगिता में "हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्" की कार्यकारिणी समिति एवं "वैज्ञानिक" के व्यवस्थापन मंडल के सदस्य भाग नहीं ले सकेंगे।

"वैज्ञानिक" हेतु अन्य रचनाएँ भी आमंत्रित हैं। सभी प्रकाशित रचनाओं पर पारिश्रमिक दिया जाता है।

पत्रिका सम्बन्धी पाठकों के विचार

पाठकों से निवेदन है कि इसे भरकर शीघ्र संपादक, 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद—211002, को भेजने की कृपा करें। आपके सुझाव निश्चित रूप से हमें पत्रिका के स्तर को सुधारने में सहायक होंगे।

हमारे साधन सीमित हैं, फिर भी हम अपनी तरफ से, सीमित साधन में ही, पत्रिका के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए कृत संकल्प हैं। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आपका सहयोग हमें अवश्य मिलेगा।

1. 'विज्ञान' से आपका प्रथम परिचय कब और कैसे हुआ ?.........................

....

2. 'विज्ञान' आपको पढ़ने के लिए कैसे मिलती है ?.........................

....

3. 'विज्ञान' में आपको कौन सी सामग्री अच्छी लगती है और क्यों ?.........................

....

4. पत्रिका के स्तर को सुधारने के लिए आपके सुझाव.........................

....

....

5. नाम और पता.........................

....

हस्ताक्षर

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठको !

मैं अपने वादे के अनुसार मार्च 1989 अंक में **रामन, रामानुजन और एस० एन० बोस** – एक साथ तीन चोटी के विश्वविख्यात भारतीय वैज्ञानिकों के व्यक्तित्व और कृतित्व संबंधी साहित्य लेकर आ गया। ये तीनों ही महान वैज्ञानिक गणित और भौतिकी के क्षेत्रों में अपनी-अपनी विशिष्ट खोजों के लिए सदैव ही याद किए जाते रहेंगे। इनकी खोजों ने इन्हें अमर कर दिया है। अपनी ईमानदारी, साहस और विज्ञान के सत्य को उद्‌घाटित करने की प्रबल इच्छाशक्ति और तपस्या के कारण इनका जीवन आने वाली पीढ़ियों को अनुप्राणित करता रहेगा। इन्होंने भारत को जो मान-सम्मान दिलवाला है, उसके लिए यह ऋणी राष्ट्र, इन्हें सदा याद करेगा। भारत को अपने इन सपूतों पर गर्व है।

वह देश भाग्यशाली है जहाँ की सरकार देश को प्रगति पथ पर ले जाने को कटिबद्ध हो। हम भी भाग्यशाली हैं। देश के प्रधानमन्त्री, श्रीराजीव गाँधी, भारत की प्रगति के लिए विज्ञान को आवश्यक मानते हैं। यह शुभ लक्षण है। किसी भी राष्ट्र की सम्पन्नता का मापदण्ड उस राष्ट्र की वैज्ञानिक प्रगति है। भारतीय जनमानस में जितना ही अधिक वैज्ञानिक मनोवृत्ति या 'साइंटिफिक टेम्पर' का विकास होगा उतना ही हम आगे जायेंगे।

मूल रूप से हम भारतीयों की आस्था 'धर्म' में है। हमारे प्राचीन मनीषियों ने मानवजीवन का अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' माना है। इस मोक्ष की सीढ़ी है धर्म। धर्म 'सत्य' को पाना चाहता है। और सच पूछिए तो विज्ञान भी सत्य की ही खोज में लगा हुआ है। विज्ञान और धर्म एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। धर्म ही विज्ञान है और विज्ञान ही धर्म है।

पिछले दिनों 'केन्द्रीय हिन्दी संस्थान' (आगरा) के 'रजत जयंती समारोह' का उद्‌घाटन करते हुए प्रधानमंत्री ने हिन्दी के क्षेत्र में कार्य करने वाले 24 साहित्यकारों, कवियों, लेखकों, पत्रकारों और विज्ञान लेखकों को उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिए 'शाल' और 'ताम्रपत्र' देकर सम्मानित किया। प्रधानमन्त्री के हृदय में राष्ट्र भाषा हिन्दी के लिए निश्चय ही प्रेम है, आदर है।

इस अवसर पर बोलते हुए श्री राजीव गाँधी ने कहा कि आज हिन्दी विश्व के अनेक देशों में बोली जाती है। कई देशों में हिन्दी पढ़ी जाने लगी है। हिन्दी पुस्तकों का अनुवाद हो रहा है और विदेशी हिन्दी विद्वान हिन्दी साहित्य के अनुसंधान में भी रुचि ले रहे हैं। इन देशों में मॉरीशस, गुयाना, फिजी, त्रिनिदाद और सोवियत रूस प्रमुख हैं। दक्षिण भारत के अनेक राज्यों ने हिन्दी को अपना लिया है। प्रधानमन्त्री ने इस बात पर विशेष बल दिया कि हिन्दी का प्रचार-प्रसार इस तरह से होना चाहिए कि लोगों की इसके प्रति आस्था पनपे। भारत का प्रत्येक नागरिक यह समझे कि हिन्दी के द्वारा ही देश प्रगति पथ पर आगे बढ़ सकता है। श्री राजीव गांधी ने इस बात का पुनः स्मरण कराया कि महात्मा गाँधी ने हिन्दी और खादी रूपी दो बिन्दुओं को लेकर ही स्वतंत्रता आन्दोलन की नींव रखी थी। हिन्दी हमारी आशाओं का प्रतीक है, हमारी एकता का प्रतीक है, हमारे आत्मविश्वास का प्रतीक है। देश को सशक्त बनाने में हिन्दी को एक प्रभावी तंत्र के रूप में अपनी भूमिका निभानी होगी। इसके लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी को विश्व की भाषाओं में अहमियत मिले। हिन्दी को समृद्ध करने के लिए उसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के शब्दों का अधिकाधिक समावेश जरूरी है।

इसी समारोह में वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा के लिए **प्रो० राम चरण मेहरोत्रा, डॉ० ब्रजमोहन, डॉ० ओमविकास** और श्री **गुणाकर मुले** को 'आत्माराम पुरस्कार' दिया गया।

हिन्दी के प्रचार में लगे व्यक्तियों को अपनी शुभकामनायें देते हुए प्रधानमन्त्री ने कहा कि हिन्दी साहित्य समुद्र की भाँति है। हमें चाहिए कि हम भविष्य की जरूरतों को समझें और उन जरूरतों पर नजर रखते हुए हिन्दी को फैलायें।

हिन्दी के पक्ष में बोलने के लिए प्रधान मन्त्री को बधाई।

प्रधानमन्त्री की इस बात का हम सब अनुसरण कर सकें, इस आशा और विश्वास के साथ।

आपका;

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

रामन और उनका कार्य

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

आदरणीय अध्यक्षजी, सम्मानित विद्वतजन और मित्रो !

आज हम लोग विज्ञान परिषद् के पुस्कालय कक्ष में 'रामन और उनका कार्य विषय' पर चर्चा के लिए एकत्र हुए हैं। मैं आप सभी का स्वागत करता हूँ। हमें खेद है कि 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' विषय पर (11–13 दिसम्बर 1988) त्रिदिवसीय संगोष्ठी के आयोजन में व्यस्त रहने के कारण आज की गोष्ठी को समय से आयोजित नहीं कर सके। हम इस गोष्ठी को उनकी जन्मशती, 7 नवम्बर के दिन ही आयोजित करना चाहते थे।

आप सभी जानते हैं कि पिछले वर्ष ही भारत सरकार ने 28 फरवरी को 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' मनाये जाने की घोषणा की थी। 28 फरवरी ही वह ऐतिहासिक दिन है, जिस दिन रामन ने अपने युगान्तरकारी खोज की घोषणा की थी। रामन को उनकी इस खोज 'रामन प्रभाव' के लिए 1930 में 'नोबेल पुरस्कार' से अलंकृत किया गया।

मैं यहाँ 'रामन प्रभाव' के विषय में मात्र इतना ही कहना चाहता हूँ कि रामन की खोज पर जितना अनुसंधान हुआ, जितने शोध-पत्र प्रकाशित हुए, उतने शायद ही किसी वैज्ञानिक की खोज पर हुए हों। 1928 से 1987 के अंत तक 47, 000 शोध-पत्र प्रकाशित हो चुके हैं और 'रामन स्पेक्ट्रॉस्कोपी' पर प्रतिवर्ष औसतन 2, 750 शोध-पत्र प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार मेरा अनुमान है कि अब तक प्रकाशित शोध-पत्रों की संख्या निश्चित रूप से 50,000 पहुँच गई होगी। इस खोज के लिए रामन ने जिस वैज्ञानिक उपकरण का इस्तेमाल किया उसमें एक दर्पण, एक लेन्स, दो ग्लासफिल्टर, एक फ्लास्क जिसमें बेंज़ीन था और एक जेबी या पाकेट स्पेक्ट्रॉस्कोप। लागत मात्र 200 रुपये। और ऐसी खोज जिसने सारे संसार में तहलका मचा दिया।

रामन सदैव अपने वरिष्ठ विद्यार्थियों और सहयोगियों को दूसरी प्रयोगशालाओं और संस्थानों में उच्च पदों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते रहते थे, पर विदेशी शोध-पत्रिकाओं में शोध-पत्र छपवाना या विदेश जाकर शोधकार्य करना उन्हें पसन्द नहीं था।

प्रो० रामन की तुलना विश्वविख्यात मात्र दो ही भौतिकीविदों से की जा सकती है, जो उनके समकक्ष हैं। एक केम्ब्रिज के लार्ड रदरफोर्ड और दूसरे कोपेनहागेन के प्रो० नील्स बोह्र।

रामन एक उच्चकोटि के वैज्ञानिक होने के साथ ही चोटी के दार्शनिक और प्रकृतिक प्रेमी थे। फूलों के रंग, खनिजों और बहुमूल्य पत्थरों के जन्म, चिड़ियों के संगीत, तितलियों का रंग-विरंगा होना, आकाश और सागर की नीलिमा और प्रकृति की अनेक गुत्थियों, अनेक रहस्यों के अनवारण में उनकी गहरी रूचि थी। कुल मिलाकर सत्य का उद्घाटन।

महत्वाकांक्षा, साहस और कठिन परिश्रम उनकी सफलता की कुंजी थी।

इस गोष्ठी में आज अनेक वक्ता उपस्थित हैं, जो रामन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालेंगे। इसलिए मैं और कुछ न कहकर अपनी बात समाप्त करते हुए प्रो० सी० वी० रामन को श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ और अध्यक्ष डॉ० जे० पी० श्रीवास्तव जी से निवेदन करता हूँ कि वे आज की इस गोष्ठी के औपचारिक शुरूआत की आज्ञा प्रदान करें। ☐☐

डॉ० चन्द्रशेखर वेंकटरामन हमारी प्रेरणा के स्रोत बनें

प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र

अपने विद्यार्थी जीवन में 1947-48 में जब के० पी० कॉलेज का विद्यार्थी था तब मैंने डॉ० चन्द्रशेखर वेंकटरामन को देखा था। वे वहाँ भाषण देने आये थे। उनके सिर पर सफेद पगड़ी थी, उनका चेहरा उभरा हुआ, आँखें चमकती-सी। शायद धोती पहने थे। बहुत पहले सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन को देख चुका था। दोनों के चेहरों में अपूर्व साम्य था। अब पूरी-पूरी बातें तो स्मरण नहीं रह गई लेकिन इतना स्पष्ट स्मरण है कि उन्होंने किसी अज्ञात विषय को पढ़ने की अपनी शैली का उल्लेख किया था। उन्होंने बतलाया था कि पुस्तक के पीछे की अनुक्रमणिका से वे वांछित स्थल पढ़ कर विषय से परिचित होते थे। मैंने कई बार अनुकरण किया है, किन्तु बात पल्ले नहीं पड़ी।

तब शायद उनके 'नोबेल पुरस्कार' विजेता होने के असली कारण ज्ञात न थे, या स्पष्ट नहीं थे। बाद में भी वे पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाया—'रामन प्रभाव' का पाठ्यपुस्तक-ज्ञान ही मिल पाया। आगे कार्य करने का अवसर ही नहीं मिला।

मैं डॉ० रामन को भारतीयता की साकार मूर्ति के रूप में मानता आया हूँ। मेरे गुरु डॉ० नीलरत्न धर अभी-कभी उनका उल्लेख करते थे। स्वामी सत्य-प्रकाश सरस्वती को उनका सान्निध्य प्राप्त था। बस एक बात सर्वाधिक प्रेरणा देती रही है कि वे प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने अपनी खोजों को अपने देश के जर्नलों में ही प्रकाशित किया और उन्होंने अपना सारा जीवन अपने द्वारा स्थापित संस्थान के उन्नयन में लगाया। उनका धन, उनका समय, उनका श्रम उसी संस्थान के निमित्त था। वे बाहरी राजनीति से तनिक भी प्रभावित नहीं थे। वे एकान्त योगी की तरह अपने शोधकार्य में लगे रहे। परतन्त्रता के काल में भारत को गरिमा दिलाने वालों में उनका नाम अग्रणी है। उनकी प्रारम्भिक कर्मस्थली बंगाल ही रही—जहाँ से डॉ० जगदीशचन्द्र बोस तथा डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय जैसी प्रतिभाएँ विकसित हुई थीं। बाद में वे बंगलोर में स्थापित हो गये। सारे विश्व के वैज्ञानिकों की आँखें रामन की इस द्वितीय कर्मभूमि में जा टिकीं। उन्हीं की तपस्या का फल है कि आज भी बंगलोर विज्ञान का केन्द्र बना हुआ है।

रामन ने जो खोजें की हैं उनका मूल्यांकन देश के तथा विश्व के भौतिकीविद् करते रहे हैं और उनका इस शताब्दी के अवसर पर पुनर्मूल्यांकन भी हो रहा है। हम सारे भारतीय उनके कृतज्ञ एवं ऋणी हैं कि उन्होंने हमारे लिए वैज्ञानिक क्षेत्र में समानता की भावभूमि प्रदान की है कि हम विश्व स्तर पर हीन भावना से आक्रान्त नहीं हैं। इसी का परिणाम है कि आज देश में स्वस्थ वैज्ञानिक परिवेश दृष्टिगोचर हो रहा है।

महापुरुषों की जयन्तियाँ, शताब्दियाँ नवयुवकों एवं नये कार्यकर्ताओं के लिए सम्बल का काम करती हैं। आत्मालोचन, आत्म-निरीक्षण के लिए अवसर देती हैं। भौतिकी तथा रसायन विज्ञान के क्षेत्रों में भारत की उपलब्धियाँ किसी से कम नहीं है।

कुछ समय पहले मैंने रामन द्वारा लिखित तीन लेखों का अनुवाद अंग्रेजी से हिन्दी में किया। पहली बार मानो मेरे मनोरथ सफल हुए—मैं सोचता रहा हूँ कि हमारे शीर्षस्थ वैज्ञानिक क्यों नहीं जन साधारण की बात करते—क्यों नहीं उनको ऊपर उठाते? मैंने देखा कि रामन को जनसामान्य की बड़ी चिन्ता थी। उन्होंने देहातों के लिए जिस तरह विज्ञान का लेखन प्रस्तुत किया, उसमें प्रकृति के प्रति उनकी निरीक्षणप्रियता के साथ ही शैली की जीवन्तता दिखती है। उन्हें आकाश का नीलापन, जल की नीलिमा, गुलाब की लालिमा समान रूप से आन्दोलित करती रही।

उनकी प्रकृति निरीक्षण से मैं तो अवाक रह गया जब मैंने देखा कि उन्होंने मिट्टी की भौतिक रचना के विषय में इतनी सारी बातें लिख दी हैं जो एक मृदा-भौतिक-विज्ञानी के क्षेत्र में आती हैं। स्पष्ट है कि उनका निरीक्षण, चिन्तन एवं लेखन जीवन की मूलधारा से जुड़ा था। उन्हें ललक थी ग्रामीणों को भी सद्ज्ञान प्रदान करने की। वे लिखते हैं—

"जल से देहातों की छटा निराली बन जाती है। चाहे पहाड़ी सोता हो या सड़क के किनारे की तलैया। दक्षिण भारत की खेती में इन ताल-तलैयों ने महत्वपूर्ण हाथ बँटाया है। पानी से भरे ताल मानों मनुष्य के मुखमण्डल के नेत्र हों। सूर्य के चमकने पर इनमें भरा पानी चटक रंग का रहता है, किन्तु बादल छाने पर धुँधला पड़ जाता है। जल में सिल्ट या मिट्टी के सूक्ष्म कणों को वहन करने की प्रभूत क्षमता है। ये सूक्ष्मकण इन तालों के जल को विशिष्ट रंग प्रदान करते हैं। जब ये कण समुद्र के नमकीन जल में जा मिलते हैं तो जल का गंदलापन बैठने लगता है। गंदला जल लाल दिखेगा, उसके बाद पीले, हरे रंग दिखेंगे और फिर गम्भीर सागर का नीला रंग।··· यद्यपि जल बहुतायत से मिलने वाला द्रव है, किन्तु पशु तथा वनस्पति जीवन का पालक होने से यह असाधारण द्रव है और इसीलिए इसके गुणों के विषय में अधिकाधिक शोध किये जाने की आवश्यकता है।"

इसी प्रकार मौसम के बारे में रामन लिखते हैं, "शहराती व्यक्ति के सामने कहाँ दिखाता है सूर्य के उदय तथा अस्त होने की भव्यता। उसकी आँखों के सामने दिखती हैं ऊँची-ऊँची इमारतें और विस्तीर्ण आकाश के नाम पर थोड़ा-सा आकाशखण्ड। रात्रि के समय तारों के बजाय सिनेमा के पर्दे पर सितारे देखते हैं। सूर्य तथा चन्द्रमा रहें या न रहें, उसकी बला से। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए मौसम विज्ञान पर जितना बल दिया जाये थोड़ा है, किन्तु खेद का विषय है कि किसी विश्वविद्यालय ने इस विषय को पढ़ाने या इस पर खोज करने की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया।" मुझे लगा कि हमारे लोकप्रिय विज्ञान लेखकों को रामन का अनुकरण करना चाहिए। यदि विज्ञान की सभी शाखाओं के विशेषज्ञ अपने अनुभवों को, अपनी शोधों को सरल, साहित्यिक शैली में लिख सकें तो भारतीय भाषाओं की विज्ञान पत्रिकाओं की काया पलट हो जाय।

आइए! रामन शताब्दी के अवसर पर उस महापुरुष का स्मरण करें और उनसे प्रेरणा प्राप्त करके अपने पावन देश को समृद्ध बनावें। ज्ञान का दान सबसे बड़ा दान है। रामन ने सबों के लिए अपने ज्ञान को सुलभ बनाया। वे वन्दनीय हैं, अविस्मरणीय हैं और ज्योतिपुंज की तरह हमारे लिए मार्गदर्शक हैं। □□

जो जाति अपनी भाषा में नहीं सोचती, अपनी भाषा में अपना साहित्य नहीं लिखती, अपनी भाषा में अपना दैनिक कार्य सम्पादित नहीं करती, वह अपनी परम्परा से छूट जाती है। अपने व्यक्तित्व को खो बैठती है और उसके स्वाभिमान का प्रचण्ड विनाश हो जाता है।

—राष्ट्रकवि दिनकर'

विलक्षण प्रतिभा के धनी चन्द्रशेखर वेंकटरामन

डॉ० अशोक कुमार गुप्ता

चन्द्रशेखर वेंकट रामन एक प्रतिभाशाली एवं विलक्षण बुद्धि के व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतवर्ष में आधुनिक विज्ञान का सूत्रपात किया था और उन्हें, भौतिकी विषय में किये गये अन्वेषणों पर 1930 में 'नोबेल पुरस्कार' मिला था। चन्द्रशेखर वेंकटरामन का जन्म तमिलनाडु के एक गाँव में 7 नवम्बर 1888 को हुआ था। बचपन से ही उन्हें पढ़ाई में बहुत रुचि थी। अपनी आठवीं कक्षा की पढ़ाई के साथ उन्होंने बी० ए० तक की किताबें पढ़ डाली थीं। उसी लगन व प्रतिभा के बल पर 11 वर्ष की आयु में ही उन्होंने मैट्रिक में सर्वप्रथम स्थान पा लिया 14 वर्ष की आयु में मद्रास के प्रेसिडेन्सी कॉलेज में बी० ए० में उन्होंने प्रवेश ले लिया। अपनी कक्षा में सबसे कम उम्र के होते हुए भी वे अपनी कुशाग्र बुद्धि से अध्यापकों को चकित कर देते थे। उन्हें प्रयोगशाला व पुस्तकालय में जाकर उपकरण व पुस्तकों को प्रयोग करने की खुली छूट थी। रामन ने मात्र 16 वर्ष की आयु में अपना पहला सफल प्रयोग किया। स्पेक्ट्रोमीटर से प्रिज्म को नापते हुये उन्होंने देखा कि आपतन (इन्सीडेन्ट) के पृष्ठसर्पी कोण (ग्रेजिंग एंगिल) के निकट कुछ विर्वतन (डिफ्रेक्शन बैण्ड या स्पेक्ट्रम) बनते हैं। इसका क्या कारण हो सकता है ? उपलब्ध साहित्य में उन्हें इसका समुचित उत्तर नहीं मिला। पर उन्होंने अपने प्रयोग द्वारा इसका उत्तर ज्ञात कर लिया। उस शोध को उन्होंने शोध-पत्र के रूप लन्दन की 'फिलॉसफिकल मैगज़ीन' में भेजा। शोध-पत्र 'अनसेमेट्रिकल डिफ्रेक्शन बैण्ड्स ड्यु टू ए रेक्टैंगुलर एपरचर' शीर्षक से नवम्बर 1906 के अंक में छप गया। एक विद्यार्थी के नाते यह उपलब्धि उनकी विलक्षण बुद्धि की परिचायक थी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक रैले ने उस शोध-पत्र की प्रशंसा करते हुये उन्हें 'प्रोफेसर' कह कर सम्बोधित किया था। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि वेंकटरामन उस समय मात्र विद्यार्थी ही थे। एम० ए० करने के बाद केवल 18 वर्ष की आयु में ही उन्होंने भारतीय वित्त सेवा की परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया और डिप्टी एकाउन्टेट जनरल के पद पर कार्य करने लगे। नौकरी में भी वह विज्ञान को नहीं भुला सके। प्रयोगशाला से उनका सम्पर्क बना ही रहा। विभिन्न स्थानों पर रहने पर भी वह नौकरी के साथ-साथ प्रयोग करते रहे। परिणामस्वरूप उन्होने तीन शोध-पत्र और प्रकाशित किये। एक शोध-पत्र 'प्रोसीडिंग ऑव रॉयल सोसायटी' लन्दन में भी प्रकाशित हुआ। वह उस समय ध्वनिकी तथा प्रकाशीय विषयों पर शोध कार्य करते थे। 1917 में 25 वर्ष की आयु में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में 'सर तारक नाथ पालित प्रोफेसर' का पद स्वीकार कर लिया। अब वे प्रयोगशालाओं के अभिन्न अंग बन गये। अपने कार्यों से वे जब भी अवसर पाते थे प्रयोगशाला में चले जाते और प्रयोग करते थे। कलकत्ता के इंडियन एसोसियेशन फॉर द कल्टीवेशन ऑव साइंस' से गहरे जुड़े थे। इनके अथक प्रयास से एसोसियेशन की प्रयोगशाला विश्वविख्यात हो गई। रामन के उच्च कोटि के शोध-पत्र विश्व के सर्वश्रेष्ठ शोध जर्नलों में छपने लगे। 1921 में वे अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय कांग्रेस में भारत का प्रतिनिधित्व करने ऑक्सफोर्ड गये। वहाँ उनका परिचय जे० जे० थामसन, रदरफोर्ड, डब्लू० एच० बेग जैसे विश्वविख्यात वैज्ञानिकों से हुआ। लौटते समय महासागर के गहरे नीले रंग ने उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। सागर का रंग नीला क्यों होता है ? उन्हें इसका उत्तर जानने की उत्कंठा हुई। कलकत्ता लौटकर उन्होंने अपने प्रयोग इसी प्रश्न पर केन्द्रित किये। उन्होंने पाया कि ठोस, द्रव अथवा गैस पर जब आर्क लैम्प द्वारा प्रकाश डाला जाता है तो उसके प्रकीर्ण प्रकाश के स्पेक्ट्रोग्राफ की सहायता से जाँच करने पर उसके वर्णक्रम में कुछ नई रेखाये दिखती हैं, जो मूल रेखाओं से भिन्न होती हैं।

यह 'रामन प्रभाव' के नाम से विख्यात हो गया। 1930 में उन्हें 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। उस समय उनके पास अधिक सुविधायें न होने पर भी उन्होंने पूरे विश्व में अपने कार्य का सिक्का जमा दिया। 1921 से 1927 तक किये गये प्रयोगों ने उन्हें विश्व के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों की कतार में खड़ा कर दिया। इस प्रकार उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में भारत का गौरव बढ़ाया।

रामन ने एक नया सिद्धांत प्रतिपादित किया— ''प्रकाश का प्रत्यास्थ प्रकीर्णन सिद्धांत''। उनका कहना था कि पानी का नीला रंग जल-अणुओं द्वारा प्रकाश की किरणों के प्रकीर्णन के कारण होता है। उन्होंने सोचा कि यदि पानी में ऐसा होता है तो अन्य द्रवों व गैसों में भी यह प्रभाव होना चाहिए। 1928 में 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त अमेरिकी वैज्ञानिक **एस० सो० काम्पटन** ने 'काम्पटन प्रभाव' प्रतिपादित किया था। उनके अनुसार किसी पदार्थ से टकराने पर एक्स-किरण के प्रकीर्णित किरण की आवृत्त आपतन किरण से कम होती है। 'रामन प्रभाव' को 'काम्पटन-प्रभाव' से दिशा और गति मिली थी।

क्षीण आवृत्ति के कारण प्रकाश के प्रकीर्णन से प्राप्त आवृत्ति में होने वाले परिवर्तनों को प्रायोगिक तौर पर मापे जा सकने की सम्भवनायें बहुत कम थीं, पर 1960 में लेसर के आविष्कार से 'रामन स्पेट्रोस-कॉपी' में नई जान आ गई। अनुसंधानकर्ता लेसर-रामन स्पेट्रोस्कॉपी का उपयोग कर पदार्थों की अण्विक संरचना तथा अन्य गुणों पर अध्ययन करने लगे।

लेसर-रामन स्पेट्रोस्कॉपी अब बहुत उपयोगी हो चुका है। इससे अणुओं की संरचना ज्ञात करना अत्यन्त सरल हो गया है। एक अणु में परमाणुओं के मध्य लगने वाले बल को ज्ञात करने के लिए 'रामन-प्रभाव' बहुत उपयोगी है। अतः इस कार्य हेतु 'हाई रेजुलेशन रामन स्पेक्ट्रोस्कॉपी' का विकास हो गया जो बहुत सरल एवं उपयोगी है। प्रोटीन के बृहद्अ-णुओं की संरचना 'रामन प्रभाव' द्वारा संभव ही नहीं, सरल भी हो गयी है, क्योंकि इससे बहुत कम आवृत्तियों वाले आण्विक कम्पनों को पहचाना जा सकता है। 'रामन प्रभाव' से वायरसों की संरचना, 'हाई रेजोनेन्स (अनुनादी) रामन स्पेट्रोस्कॉपी' और 'सतह अनुनादी रामन स्पेट्रोस्कॉपी' द्वारा ठीक से मालूम किया जा सका है।

असाध्य रोगों को जानने तथा उनके लिये औषधि ढूंढ़ने के लिये रामन स्पेट्रोस्कॉपी बहुत उपयोगी है। यही नहीं, मानव कोशिकाओं में विभिन्न ओषधियों के प्रभाव को भी इस स्पेट्रोस्कॉपी विधि द्वारा जाना जा सकता है। ☐☐

[पृष्ठ 8 का शेषांश]

महत्व नहीं रखते। उनके लिए ईश्वर वह है जो पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उसे वहीं खोजना उचित होगा। उनका विश्वास था कि भौतिकी के क्षेत्र में होने वाली महत्वपूर्ण खोजें ब्रह्माण्ड में छिपे उस अप्रत्यक्ष की ओर ले जा रही हैं। वही अप्रत्यक्ष, निहित सत्य ही ईश्वर है। अतः नास्तिकता का तो प्रश्न ही नहीं। वे यह भी मानते थे कि धार्मिक एकता, जैसी आज हम सोचते हैं, वह संभव नहीं। एकता संभव हो सकती है केवल विज्ञान के मंच से। विज्ञान ही संपूर्ण सहमति का आधार प्रदान कर सकता है। ☐☐

डॉ० रामन का मानवीय पक्ष

श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी

यहाँ मैं डॉ० रामन के व्यक्तित्व के उस पक्ष की चन्द बातें कहने का प्रयास करूँगी जो उन्हें एक सम्पूर्ण मानव बनाती हैं। कहा जाता है कि डॉ० रामन के लिए विज्ञान उनके जीवन का अविभाज्य अंग था। वैसा ही अविभाज्य जैसा उनकी नाड़ियों में बहने वाला रक्त। पर विज्ञान के प्रति इस अदम्य निष्ठा की प्रेरणा उन्हें मिलती थी अपने चारों ओर की प्रकृति से। वस्तुत: उनके सभी बड़े आविष्कारों का जन्म ही प्रकृति के प्रति उनकी अदम्य और गहरी उत्सुक्ता से हुआ। प्रकृति से उन्हें बेहद प्यार था। उसमें छिपा सौन्दर्य उन्हें उतनी ही तीव्रता से आकर्षित करता था जितना विज्ञान के अनसुलझे रहस्य। उगते और डूबते सूरज का सौन्दर्य, पुष्पों की कोमल पंखुड़ियों की चमक और पत्थर के अनगढ़ टुकडों में छिपे आकार—सबके प्रति उनके मन में एक गहरी संवेदना थी और वे इन अत्यन्त साधारण रोजमर्रा के दृश्यों का भी रसास्वादन पूरे मनोयोग से कर सकते थे। साधारण के प्रति यह निष्ठा ही उन्हें असाधारण बनाती थी। उनके एक शिष्य डॉ० जयरामन ने अपने संस्मरण में एक स्थान पर लिखा है कि वे और उनके साथी सभी के मन में रामन के प्रति इतनी सम्मान की भावना थी कि सामान्यतया जैसा होता है कि अपने पूज्यजनों के समक्ष भावना का प्रदर्शन करना बहुत अच्छा नहीं समझा जाता अत: वे लोग चाहते हुये भी कभी डॉ० रामन को उनके जन्मदिन पर बधाई नहीं दे पाते थे। एक बार बड़ी हिम्मत करके सबने संस्थान के माली से ही फूलों का गुच्छा बनवाकर डॉ० रामन को उनके जन्म-दिन पर शुभकामनाओं के साथ भेंट कर दिया। रामन अपने शिष्यों के इस अनपेक्षित भाव-प्रदर्शन से प्रसन्न हुये पर उन्होंने पूछ ही लिया, "यह बधाई वाला गुलदस्ता कहीं मेरे संस्थान के बगीचे से ही तो नहीं तैयार किया गया है ?" सच्चाई यही थी। बहरहाल उन्होंने धन्यवाद तो दिया पर इतना कहते हुये कि "ये फूल इस गुलदस्ते से अधिक पौधों पर ही शोभा पाते।"

गुलाब के फूल उन्हें बेहद प्रिय थे। वे कहते थे, "मैं गुलाब के फूल तोड़ता नहीं। मैं सुबह-सुबह उन्हें प्रणाम करके कहता हूँ कि हे गुलाब मुझे भी अपनी तरह दिन भर हँसता-मुस्कुराता रखो।" उनका फूलों के प्रति यह अदम्य प्यार ही उन्हें प्रेरणा देता था, फूलों के बदलते रंगों के रहस्य की खोज करने की। प्रकृति ही नहीं, संगीत भी उन्हें बहुत प्रिय था। शास्त्रीय संगीत सुनना और वायलिन बजाना उनका मधुर शौक था और यही थे विश्राम के वे कुछ दुर्लभ क्षण, जो उन्हें अपने वैज्ञानिक कार्य-कलापों की व्यस्तता के बीच मिलते थे।

उनके व्यक्तित्व का सबसे प्रमुख आकर्षण था, उनकी सरलता। उस अतिमानवीय मस्तिष्क के साथ एक अत्यन्त सहज, शिशुओं जैसा निश्छल हृदय जुड़ा था। अपनी ख्याति के चरम पर पहुँच कर विदेशों की अनेक यात्राओं के बाद भी उनका प्रिय भोजन था—दही और चावल। उनकी दृष्टि में एक दक्षिण भारतीय के लिए इससे स्वादिष्ट और कोई भोजन हो ही नहीं सकता था। विदेश की बड़ी-बड़ी सभाओं और सम्मेलनों में वे अक्सर अकेले ऐसे व्यक्ति होते थे जो शराब को छूते भी नहीं थे। इस सिलसिले में एक घटना का उल्लेख किया जाता है। जब रामन 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त करने स्टॉकहोम गये तो उन्हें शराब का प्याला देते हुये किसी साथी वैज्ञानिक ने उन पर हल्का व्यंग्य किया कि सुबह आपने एल्कोहॉल पर रामन प्रभाव के बारे में सुना अब रामन पर एल्कोहॉल का प्रभाव देखिये। पर रामन तो विराट् व्यक्तित्व थे, जो दूसरों पर अपना प्रभाव डालते थे। अत: उन्होंने उस मदिरा को सधन्यवाद वापस कर दिया।

व्यक्तित्व का एक और प्रभावी पक्ष था—उनकी हास्यप्रियता। वे अत्यन्त गंभीर तथ्यों को भी बड़े हल्के

ढँग से श्रोता तक पहुँचा देने की क्षमता रखते थे। आज हम 'जेनेरेशन गैप' या पीढ़ियों के बीच अंतराल की बात करते हैं, पर रामन की तरह सरल ढँग से शायद ही अन्य कोई वैज्ञानिक-विषयों को स्कूली बच्चों को भी सहजता से समझा देने की क्षमता रखता हो।

मेरी समझ में रामन की सबसे बड़ी विशेषता थी उनका स्वदेश-प्रेम। वे चाहते थे कि आयातित विज्ञान अथवा वैज्ञानिक साधनों पर निर्भर न होकर हमें अपनी आवश्यकता के अनुरूप सब कुछ भारत में ही बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने बहुत ही साधारण उपकरणों से कार्य किया और असाधारण बने। कहते हैं एक बार कोई छात्र प्रयोगशाला में कुछ उदास दिखा। उन्होंने उससे उदासी का कारण पूछा। छात्र ने बताया कि वह जिस समस्या पर एक किलोवाट की ट्यूब से काम कर रहा उसी समस्या पर विदेश की किसी प्रयोगशाला में पाँच किलोवाट की ट्यूब से काम किया जा रहा है। उसे डर था कि अच्छी सुविधा न मिलने से उसके कार्य का स्तर गिर जायेगा। रामन ने तुरंत समाधान सुझाते हुए कहा, "तुम उसके लिए पाँच किलोवाट की ट्यूब की जगह अपना दस किलोवाट का दिमाग लगा दो।" तो यह था उनका स्वदेशी के प्रति और उससे भी बढ़कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति निष्ठा। छोटी या बड़ी बाधायें कहीं भी उनका मार्ग नहीं रोक पाती थीं।

भाषाई एकता के सम्बन्ध में रामन के विचार आज की परिस्थिति में भी महत्वपूर्ण हैं। उनका मत था कि अगर किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष से आत्मीयता स्थापित करनी है तो सबसे अच्छा तरीका है उसी की भाषा में बोलना। अपने एक भाषण के दौरान उन्होंने हँसते हुए यह भी बताया कि यही कारण है कि उनकी अर्धांगिनी लेडी रामन उनकी अपेक्षा बंगलोर के समाज में अधिक लोकप्रिय थीं क्योंकि वे अनेक भाषायें बोल लेती थीं। अपनी बातों को किसी तक प्रभावपूर्ण तरीके से पहुँचाने के लिए सुनने वाले की भाषा का प्रयोग ही श्रेयस्कर रहता है। उनके समकालीनों ने लिखा है कि उनकी वक्तता को सुनना अपने आप में एक बड़ा आनन्द था। वे अपने भाषणों में पूरी तरह उपयुक्त और समर्थ व्यंजनाओं का उपयोग करते थे। ऐसे शब्दचित्र प्रस्तुत करते थे वे जो कोई भी पाठ्य-पुस्तक नहीं दे सकती थी। वैज्ञानिक मुहावरे सीखने के लिए तो रामन के भाषण एक खज़ाना होते थे। अक्सर वे विदेशी नामों के सही उच्चारण भी बताते थे। और सबसे बड़ी बात यह कि श्रोता को या प्रश्नकर्ता को कभी यह आभास नहीं होने देते थे कि वह स्वयं अज्ञानी है और उनकी विद्वता के बोझ से दबाया जा रहा है।

निःसंदेह रामन वैज्ञानिक के रूप में महान थे। उनकी बौद्धिक क्षमता भी अपूर्व थी और उस सबके विषय में कुछ कहना तो सूरज को चिराग दिखाने जैसा होगा। किन्तु उतना ही निर्विवाद है यह तथ्य कि वे एक उच्च कोटि के मानव भी थे क्योंकि वे विज्ञान के साथ-साथ मानव को भी प्यार करते थे। इस संदर्भ में एक पढ़ी हुई घटना याद आती है। उनकी संस्थान ने किसी प्रशिक्षार्थी को बुलाया था। साक्षात्कार के बाद वह उपयुक्त नहीं पाया गया। कार्यालय को उसे यात्रा भत्ता देकर विदा कर देने का आदेश दे दिया गया। संयोग से आवेदक को जब पैसे मिले तो उसने पाया कि वे उचित देय से कुछ अधिक हैं। वह उसे कार्यालय में लौटाने गया तो रामन मिल गये। रामन ने उसे पुनः देखा तो कुछ तीखे स्वर में बोल उठे, "मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि तुम्हें नहीं लिया जा सकता। फिर क्यों खड़े हो?" आवेदक ने निवेदन किया कि वह तो कार्यालय द्वारा ग़लती से ज्यादा दिया गया पैसा लौटाने आया है। कहते हैं रामन ने उसे तुरन्त वापस बुला लिया—"आओ, तुम्हें चुन लिया गया। तुम्हारा भौतिकी का ज्ञान भले ही कम है पर कोई बात नहीं, वह तो मैं तुम्हें सिखा लूँगा। तुम आदमी चरित्रवान हो, इतना काफी है।"

और अंत में रामन का धार्मिक पक्ष। उन पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे नास्तिक हैं, पर गाँधी से अपनी एक भेंट में रामन ने स्पष्ट कर दिया था कि धर्म और ईश्वर उनके लिए प्रचलित अर्थों में कोई

[शेष पृष्ठ 6 पर]

रामानुजन : गणित के शिखर | प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

श्रद्धेय स्वामी जी, उपस्थित विद्वतजन एवं मित्रों !

आज हम यहाँ विज्ञान परिषद् भवन के पुस्तकालय कक्ष में इस सदी के महानतम भारतीय गणितज्ञ स्वर्गीय रामानुजन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर चर्चा करने के उद्देश्य से एकत्र हुए हैं। मैं प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव परिषद् द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'विज्ञान' का वर्तमान संपादक आप सबका इस विचार गोष्ठी में स्वागत करता हूँ।

रामानुजन का जन्म 22 दिसम्बर 1887 को हुआ था। इस प्रकार उनके जन्म के 100 वर्ष पूरे हो चुके हैं। देश-विदेश में रामानुजन के शोधकार्यों का पुनर्मूल्यांकन हो रहा है। उन्होंने संख्याओं के सिद्धान्त पर काम किया। अंकों के साथ ही अंकों से सम्बन्धित एक कहानी याद आ गई।

आज से लगभग 1200 वर्ष पहले सिंध में एक राजा था श्री राम। उसके एक मंत्री अरब देश के रहने वाले थे ईसा-बिन-दाहिर। संस्कृत और यूनानी भाषाओं का प्रकाण्ड पण्डित, गणित का विद्वान। राजा तो युद्धों में व्यस्त रहता और राजकार्य मंत्री संपादित करता। पर वर्षाकाल में जब मन मार कर राजा को महल में रहना पड़ता, तो राग-रंग की सारी व्यवस्था के बावजूद राजा सदा रहता उदास-परेशान। बिना युद्ध के उसका मन किसी काम में न लगता।

ईसा-बिन-दाहिर ने एक तरकीब लड़ाई। वह एक चौसठ खाने वाली 'बिसात' और सोलह-सोलह सफेद और काली मोहरें (गोटें) लेकर राजा के पास आया। और मोहरें कैसी, ? कोई राजा, कोई मंत्री, कोई हाथी, कोई घोड़ा और कोई पैदल। मंत्री ने राजा को यह खेल वाली लड़ाई—शतरंज —समझानी शुरू की। राजा तो आदी था खुले मैदान की लड़ाई का। प्रारम्भ में उसका मन बिल्कुल न लगा। पर धीरे-धीरे जब खेल राजा की समझ में आ गया तो मारे खुशी के उछल पड़ा। और अब जब वह मंत्री के पास खेलने बैठता तो कई-कई घंटे खेलता ही रहता। अब राजा राजकाज पर भी ध्यान देने लगा। सभी प्रसन्न। राजा ने प्रसन्न होकर मंत्री से इनाम माँगने को कहा। पहले तो मंत्री ने सादर मना कर दिया, पर राजा के बार-बार बल देने पर मंत्री ने कहा—"राजन यदि आप देना ही चाहते हैं तो सेवक को गेहूँ के दाने दीजिए। इसी शतरंज की बिसात को गेहूँ के दानों से भरवा दीजिए। पहले खाने पर गेहूँ का एक दाना, दूसरे पर दो, तीसरे पर चार चौथे पर आठ, यानी हर खाने पर पिछले खाने के दुगने।"

राजा मुस्कराया और बोला, "बस। इतना ही। अरे ! माँग ही रहे हो तो हीरे, मोती, सोना, चाँदी माँगो।"

मंत्री बोला, "नहीं अन्नदाता ! मेरे लिए ये अन्न के दाने ही बहुत हैं।"

बिसात पर गेहूँ के दाने रखे जाने लगे। बाइसवें-तेइसवें खाने पर तो गाड़ी में लादकर गेहूँ आने लगा। गेहूँ का भण्डार खाली होने लगा। राजा घबराया, राजा को क्या मालूम गणित का चमत्कार ! हिसाब लगाया जाने लगा और पता चला कि ईसा-बिन-दाहिर को इनाम देने के लिए दुनिया में पैदा होने वाले गेहूँ की दो हज़ार वर्ष की फ़सल उसके नाम करनी पड़ती।

ऐसे ही एक दूसरे गणित के जादूगर भारत में उस समय पैदा हुए जब भारत में अंग्रेजों का राज्य था और अंकों के इस महान खिलाड़ी का नाम था श्री निवास रामानुजन।

मैं यहाँ उन कठिनाइयों की चर्चा नहीं कर रहा हूँ। जिनका सामना रामानुजन को अपने बचपन से ही करना पड़ा। मैं उनके द्वारा लिखे गए तीन प्रसिद्ध नोट बुकों की भी चर्चा नहीं कर रहा हूँ। मैंने इण्टर में एक महीने गणित पढ़ा, समझ पाने में असमर्थ रहा और गणित छोड़कर जीवविज्ञान का विद्यार्थी बन गया। किन्तु ऐसा सुनने में आता है कि गणित में जो काम रामानुजन कर चुके हैं उसे समझने में प्रथम

[शेष पृष्ठ 11 पर]

स्वामी जी के भाषण से—

गणित के महारथी रामानुजन

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

आज रामानुजन हमारे सामने नहीं हैं। उनके जन्म के सौ वर्ष से अधिक हो चुके हैं। इस देश में प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों का इतिहास में प्रभाव नहीं है। लंबी आयु वाले और छोटी आयु वाले प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों का अपने देश में कभी अभाव नहीं रहा। स्वामी शंकराचार्य अल्पायु और रामानुजन भी केवल 32 वर्ष की अल्पायु में पराकाष्ठा पर पहुँच गये। विवेकानंद भी छोटी उम्र में चले गये। रामानुजन का पक्ष गणित का पक्ष था।

आजकल के विज्ञान में यदि शिष्य परंपरा रहती है तो समझने वाले बहुत रहते हैं। रामानुजन के साथ एक त्रासदी यह है कि उनका कार्य अभी भी पाठ्यक्रम का अंग नहीं है, संभवत: आगे भी न हो। उन्होंने कोई शिष्य-परंपरा नहीं छोड़ी। यही कारण है कि रामानुजन के कार्यों का समावेश पाठ्यपुस्तकों में नहीं हो सका। रामन को हम ज्यादा समझते हैं, क्योंकि उनके प्रतिभाशाली शिष्य हैं, जो उनके कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं।

रामानुजन ने गणित की अनेक पुस्तकें पढ़ी थीं। फ़िज़ियोलॉजी भी पढ़ी, पर यह उनके पल्ले न पड़ी। उनकी रुचि तो संख्या सिद्धांत में थी। और संख्याओं का खेल वे बड़े मज़े से खेलते थे।

संख्याओं की खोज अपने ही देश में हुई थी। रामानुजन ने भी संख्याओं के ही क्षेत्र में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की। वे अंकविद्या के महारथी थे। उन्होंने विभिन्न अंकों के व्यवहार एवं गुणों के बारे में काफ़ी जानकारी अपने नोटबुक के रूप में रख छोड़ी है। उनकी नोटबुक में लगभग 2000 सूत्र हैं। उनमें से अनेक न तो सही सिद्ध हो सके हैं और न ही गलत। लेकिन उनकी नोटबुक में यह सारा ज्ञान सूत्रों एवं अस्पष्ट संक्षिप्त कथनों के रूप में है। उन असंबद्ध सूत्रों एवं कथनों की व्याख्या एक दुरूह कार्य है। सारे विश्व के गणितज्ञ लगे हुए हैं। जब यह काम पूरा होगा, तभी उनकी प्रतिभा को अच्छी तरह से समझ कर मूल्यांकित किया जा सकेगा।

मैं तो स्वयं गणितज्ञ भी नहीं हूँ। रामानुजन को समझने के लिए सुरेश राम भाई की पुस्तक अच्छी है। रामानुजन बहुत भाग्यशाली थे कि उन्हे हार्डी जैसा गुरु मिला। हार्डी ने रामानुजन की प्रतिभा को पहचाना, प्रोत्साहित किया और इसी के फलस्वरूप रामानुजन को 'रॉयल सोसायटी' में प्रवेश मिल गया।

रामानुजन के वर्गों से संबंधित एक उदाहरण देना चाहूँगा। माना कोई संख्या 65 है। अब यदि इसका वर्ग बनावें तो हर ओर से छोटी संख्याओं का जोड़ 65 ही आता है।

17	24	1	8	15
23	5	7	14	16
4	6	13	20	22
10	12	19	21	3
11	18	25	2	9

इस गोष्ठी के माध्यम से मैं 'विज्ञान परिषद्' के पदाधिकारियों को एक सुझाव देना चाहूँगा। परिषद् अपनी त्रैमासिक 'अनुसंधान पत्रिका' का एक अंक रामानुजन पर निकाले। उसमें शोध स्तर की सामग्री हो, हल्की-फुल्की सामग्री नहीं। मैं इस संबंध में परिषद् की पूरी सहायता करूँगा।

इन्हीं शब्दों के साथ मैं उस महान व्यक्ति को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। □□

रामानुजन को श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ

प्रो० शिवगोपाल मिश्र

क्रिया सिद्धिः सत्ये भवति, महतां नोपकरणे ।

यह उक्ति उन महान विभूतियों पर लागू होती है जो कुछ ही काल में विलक्षण से विलक्षण काम कर दिखाते हैं । श्री रामानुजन ऐसे ही विलक्षण प्रतिभाशाली नवयुवक थे । उन्होंने अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए अपने प्रिय विषय गणित का चिन्तन-मनन जारी रखा । संयोग ही था कि उनकी विलक्षण प्रतिभा से दूर देश का एक अन्य मनीषी प्रभावित हुआ और उसने इनके विकास के लिए वह उर्वर-भूमि प्रदान की जिससे सारे लोग आज भी चमत्कृत हैं ।

ऐसा लगता है कि दक्षिण भारत प्राचीन काल से ऐसी विभूतियों को जन्म देता रहा है । उत्तर-दक्षिणी के पचड़े में न पड़कर मुझे इतना ही कहना है कि हमें अपनी विलक्षण प्रतिभाओं की खोज करते रहना चाहिए । जिससे वे "शीर्षते वन एव वा"—निर्जन में हीन रही आवें अपितु "मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य"—विश्व-विश्रुत बने ।

विज्ञान परिषद् जिस प्रकार लेखकों की खोज करती है उसी प्रकार विज्ञान के विविध क्षेत्रों के उदीयमान नवयुवकों को प्रोत्साहन देने की योजना

बनावे । जिस तरह 'रॉयल सोसायटी' अपना कर्तव्य निबाहती थी और प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने का अभूतपूर्व कार्य किया, वैसा ही कार्य यह परिषद् करे । इस अमृत वर्ष में यही संकल्प लिया जाय ।

मैं उस विलक्षण प्रतिभावाले नवयुवक की शताब्दी-पूर्ति पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ । मुझमें वह सामर्थ्य नहीं कि उनके कृतित्व के विषय में कुछ अधिकारपूर्वक कह सकूँ । □□

[पृष्ठ 9 का शेष]

श्रेणी के गणितज्ञों को भी कठिनाई होती है । संभवतः यही कारण है कि रामानुजन का गणित स्कूल की कक्षाओं तक अभी भी नहीं पहुँच सका है । शायद उन्हें समझने और सरलीकृत करने में एक सदी लग जाये । पर प्रसन्नता है कि शोध प्रारम्भ हो गया है । गणित में नित्य नये अनुसंधान हो रहे हैं । अभी दो वर्ष पहले की बात है कि एक कम्प्यूटर विज्ञानी ने पाई (π) का मान 22/7 दशमलव के 17 मिलियन स्थान तक निकाला है ।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में रामानुजन सदा अस्वस्थ रहे पर गणित में उनकी रुचि पूर्ववत् बनी रही । 26 अप्रैल, 1920 को शून्य पर कार्य करने वाला यह महान वैज्ञानिक महाशून्य में विलीन हो गया । सारा विश्व स्तब्ध रह गया ।

अब मैं अधिक कुछ न कहकर स्वामी जी से निवेदन करूँगा कि वे इस विचार-गोष्ठी के शुभारम्भ की अनुमति प्रदान करें । □□

रामानुजन का अधूरा कार्य पूरा किया जा रहा है

मंजुलिका लक्ष्मी

रांजानुजन के व्यक्तित्व के विषय में उनके मित्र श्री ई० एच० नेविल ने कहा था—

श्रीरामानुजन कद में मध्यम से कुछ कम लंबाई के ही रहे होंगे। देखने में स्वस्थ्य लगते थे। अन्तिम वर्षों में भले ही रोग ने उनकी काया को क्षीण कर दिया था। उनका सिर बड़ा था और ऊँचे माथे के दोनों ओर उनके लंबे बाल चिपका कर बनाये हुए थे। उनकी हल्की साँवली त्वचा इंग्लैंड प्रवास में कुछ पीली हो चली थी। उनके छोटे कान थे, चौड़ी नाक और हमेशा दमकती रहने वाली आँखें उनके चेहरे की आकर्षक विशेषतायें थी। वे कुछ सीधे होकर चलते थे और चलते समय सिर आगे को बढ़ा रहता था। जब वे चलते-चलते बातें नहीं करते होते थे, तब उनकी बाहें शरीर से कुछ दूर सीधी लटकी रहती थीं और उनकी हथेलियाँ खुली रहती थीं। पर यदि वे चलते हुए, लेटे या बैठे हुए बातें करते रहते थे, तो उनकी उँगलियाँ हिलती-डुलती जागृत रहती थीं; जैसा कि उनका चेहरा जीवंत दिखता था। उनके पास कहानियों का खजाना था। और वे उन्हें इतने रोचक ढँग से सुनाते थे कि अक्सर कहानियों का चरम अंत उनके ठहाकों में ही खो जाता था। उन्हें गणित के बाहर भी कुछ गहरे शौक थे और वे सदा धर्म या राजनीति पर चर्चा करने को तैयार रहते थे। उनके आचार-विचार रोजमर्रा की जिन्दगी में लगभग पूर्णता को छूते थे। इसी कारण वे सदैव एक अच्छे साथी या मेहमान बनते थे। ख्याति और सफलता ने उनकी स्वाभाविक सरलता को प्रदूषित नहीं किया था। अपने मित्रों के प्रति असीम श्रद्धा रखते थे और अद्भुत् तरीकों से अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त करते रहते थे। वह आश्चर्यजनक गणितज्ञ निश्चय ही एक प्यार करने योग्य व्यक्ति भी थे।

सुदूर दक्षिण में बंगाल की खाड़ी और पूर्वी घाट की पहाड़ियों के बीच एक सुन्दर प्रदेश है—"तमिलनाडु" और इसी प्रदेश की कावेरी नदी के किनारे बसा है—'**तंजावूर नगर**'। ईरोड इसी नगर का छोटा सा हरियाली भरा गाँव है। इस गाँव में एक गरीब ब्राह्मण रहते थे, जिनका नाम था—श्रीनिवास आयंगर।

श्रीनिवास आयंगर कुंभकोणम् में मुनीम का काम करते थे। इन्हीं बही खाता पढ़ने वाले मुनीम के घर 22 दिसम्बर सन् 1887 को एक पुत्र ने जन्म लिया, नाम रखा गया—**श्रीनिवास रामानुजन** आयंगर।

प्रारंभिक काल में उस गाँव के परिवेश में बालक की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। यह बालक बचपन से ही ऐसे खेल में आनन्द लेने लगा था जिसमें गणित का उपयोग होता था। उदाहरण के लिए पेड़ों की लम्बाई के बारे में अनुमान लगाना या फिर भागती हुयी भेड़ों को गिनना। पढ़ाई के नाम पर तमिल की वर्णमाला और पहाड़ा, जोड़, गुणा, भाग आदि प्रारंभिक चीजे ही उन्होंने सीखीं। थोड़ा आगे बढ़े तो पिता के साथ बैठकर हिसाब-किताब की बातें सुनीं।

सात वर्ष की उम्र में रामानुजन ने स्कूल जाना शुरू किया। स्कूल था—कुंभकोणम हाई स्कूल। शुरू से ही बालक रामानुजन को केवल गणित के घंटे में ही रुचि रही।

पाँचवीं कक्षा में पढ़ते समय मास्टर साहब ने बताया कि किसी संख्या को यदि उसी संख्या से भाग दिया जाए तो भागफल एक (1) होता है। तभी रामानुजन बोल उठे—"परन्तु मास्टर साहब यदि शून्य को शून्य से भाग दें तो भागफल कुछ नहीं होगा", जबकि मास्टर साहब का जवाब था कि भागफल एक आयेगा। बेचारे मास्टर साहब के लिए भी वह बात एक अचंभा थी, क्योंकि यह बात तो केवल गणित के बड़े-बड़े विद्वान ही समझ पाते हैं।

$$\left(\frac{12}{6} \times \frac{0}{0} = \frac{0}{0} \Rightarrow 1 = 2,\ 2 = 3\right)$$

गणित के अलावा अन्य विषयों में तो अध्यापक उन्हें पिछड़ा हुआ विद्यार्थी समझते थे।

रामानुजन ने 13 वर्ष की आयु में स्वयं ही त्रिकोणमिति पढ़नी शुरू कर दी। (इसमें त्रिभुज के कोणों और भुजाओं के मापों से विभिन्न गणनाएँ की जाती हैं—उदाहरणार्थ—पेड़ की ऊँचाई आदि ज्ञात की जा सकती है।) और स्वयं ही विभिन्न सूत्रों की खोज करते गये। बाद में उन्हें मद्रास आने पर मालूम हुआ कि वे सूत्र तो पहले ही खोजे जा चुके थे। 1903 में रामानुजन ने हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की और गणित में शत प्रतिशत अंकों के साथ प्रथम श्रेणी प्राप्त की। कॉलेज के एक मित्र ने उन्हें शूब्रिज कार की पुस्तक 'शास्त्रीय एवं प्रायोगिक गणितसूत्र संग्रह' लाकर दी। इस पुस्तक ने रामानुजन की गणितीय प्रतिभा को जागृत कर दिया।

गणित में मन लगाने के कारण रामानुजन एफ० ए० परीक्षा में गणित के अतिरिक्त अन्य विषयों में फेल हो गये और साथ ही कॉलेज के लिए मिलने वाला 'सुब्रमण्यम वजीफा' भी बन्द हो गया। 1907 में पिता ने उन्हें रास्ते पर लाने के लिए उनका ब्याह आठ वर्षीया जानकी से कर दिया।

रामानुजन अब गृहस्थी का खर्च चलाने के लिए नौकरी खोजने लगे।

रामानुजन अपना गणितीय कार्य कागजों पर लिखते जाते थे। उन्हीं कागज़ों को दिखाकर नौकरी के लिए प्रयत्न करने लगे। मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के निदेशक फ्रांसिस स्प्रिंग ने कागजों से प्रभावित होकर 25 रुपये माहवार पर लिपिक की नौकरी दे दी। 1913 में मद्रास विश्वविद्यालय ने उन्हें किसी मानक उपाधि की अनुपस्थिति में भी उनके कार्यों के कारण 75 रुपये की एक शिक्षा-वृत्ति दी।

इसी बीच रामानुजन ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गणितज्ञ प्रो० जी० एच० हार्डी के पास अपने हल किये हुये 120 सूत्र और प्रमेय भेजे।

इन्हें प्रो० हार्डी और प्रो० लिटिल वुड ने पढ़ा और रामानुजन को कैम्ब्रिज बुला भेजा।

रामानुजन शाकाहारी और कट्टर ब्राह्मण थे। अतः वे स्वयं अपना भोजन बनाते थे। अनेक कष्टों के बीच वे छह वर्षों तक कैम्ब्रिज में रहे।

रामानुजन की स्कूली शिक्षा न होने के कारण उनका कार्य अत्यन्त अव्यवस्थित रहता था। वे बहुत सी गणनाएँ मस्तिष्क में ही कर लेते थे और केवल अन्तिम परिणाम ही लिखते थे।

उनका कार्य हमें उनकी कुछ नोट बुकों और कागज़ों में मिलता है।

फरवरी 1918 में वे दूसरे भारतीय थे, जो 'रॉयल सोसायटी' के फेलो चुने गये और अक्टूबर में वे ट्रिनिटी कॉलेज, कैम्ब्रिज के फेलो चुने जाने वाले वे सर्वप्रथमी भारतीय थे।

इंग्लैण्ड में कष्टमय जीवन व्यतीत करने के कारण उन्हें क्षय रोग हो गया। सन् 1919 में वापस मद्रास आ गये जहाँ 26 अप्रैल 1920 को मात्र 33 वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हो गया। अन्तिम वर्ष में रामानुजन ने जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किये।

रामानुजन ने गणित के क्षेत्र में जो कार्य किये उनमें प्रमुख हैं—

1. Magic squares (मैजिक स्क्वायर्स)
2. Continued fraction (कन्टीन्यूड फ्रैक्शन)
3. Hyper Geometric Series (हाइपरजियोमैट्रिक सिरीज़)
4. Properties of Prime & Composite Numbers (प्रापरटीज़ ऑव प्राइम ऐण्ड कम्पोज़िट नम्बर्स)
5. Elliptical Integrals (एलिप्टिकल इंटेग्रल्स)
6. Partition of numbers (पार्टिशन ऑव नम्बर्स)

और इनके सम्बन्ध में प्रस्तुत की गयी युगान्तरकारी स्थापनाएँ। उनके द्वारा दिए गये सिद्धान्तों को अब लोग समझने की कोशिश कर रहे हैं और उच्च शिक्षा और तकनीकी के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग किए जा रहे हैं।

रामानुजन के समस्त लेख 'कलेक्टेड पेपर्स ऑव श्री निवास' के नाम से इंग्लैण्ड में मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए।

1957 में उनकी नोटबुक भी छपी। उनकी स्मृति में 1950 में मद्रास में **'रामानुजन इंस्टीट्यूट आफ मैथमेटिक्स'** की स्थापना हुई। यहाँ रामानुजन के कार्यों पर शोध हो रहा है। इसके अतिरिक्त बम्बई के 'टाटा मौलिक शोध संस्थान' तथा विश्व के कई अन्य देशों में भी रामानुजन के अधूरे कार्यों को पूरा करने और उनका विश्लेषण करने की दिशा में कार्य हो रहे हैं। उनके इस जन्मशती वर्ष में हम सब उस महान गणितज्ञ के प्रति नमन करते हैं। □□

रामानुजन

अमिताभ प्रेमचन्द्र

गणितज्ञ रामानुजन का महत्व केवल इसलिए नहीं है कि वे गणित के क्षेत्र की एक महान विभूति थे, उनका महत्त्व सबसे अधिक इसलिए है कि उनका जीवन और उनकी अद्वितीय उपलब्धियाँ यह सिद्ध कर देती हैं कि मानवीय मस्तिष्क की क्षमता असीम है।

उपरोक्त शब्द रामानुजन के विषय में उनके कार्यों के समीक्षक **रिचर्ड ऐस्के** ने व्यक्त किए हैं। हम जब रामानुजन की आयु की लघुता पर दृष्टि डालते हैं तो इस कथन की सार्थकता और स्पष्ट हो जाती है।

पन्द्रह वर्ष की आयु में किसी मित्र से उधार ली गई पुस्तक 'सिनॉप्सिस ऑव एलिमेण्ट्री रेजल्ट्स इन प्योर एण्ड अप्लाएड मैथमेटिक्स' ने रामानुजन के व्यक्तित्व में निहित प्रतिभा को गणित के प्रति कमज़ोरी की हद तक उनके प्यार को तो पहले पहचाना जा चुका था पर उस क्षण से उनका प्यार शोध की दिशा में मुड़ चला। यह एक दुर्लभ चमत्कार का श्रीगणेश था। ऐसा शायद ही पहले कभी हुआ हो कि गणित की किसी विशेष औपचारिक शिक्षा के बिना ही कोई विश्वस्तर का प्रथम श्रेणी का गणितज्ञ बन सका हो। रामानुजन के योगदान ने संभावनाओं के ऐसे नये आयामों की सृष्टि की, जिनकी गहराई तक भेदन कर सकना आज सात दशकों बाद भी पूरी तरह संभव नहीं हो सका है। इसी कारण रामानुजन की उपस्थिति एक संयोग ही नहीं था, यह इस सदी की महानतम घटनाओं में एक था।

रामानुजन जैसी विलक्षण प्रतिभा का मूल्यांकन पारम्परिक आधार पर नहीं किया जा सकता। उनका मस्तिष्क किसी भी यांत्रिक नीरसता से भागता था। अत: वे कॉलेज की औपचारिक शिक्षा के लिए अनुपयुक्त सिद्ध हुए। फिर भी गणितीय समस्याओं पर वे जिस एकांतिक लगन से कार्य करते थे और वह भी बिना किसी बाह्य प्रेरणा, प्रोत्साहन या परिवेश के, वह बेमिसाल थी। केवल यही नहीं, उनके इस अविराम परिश्रम का कोई प्रत्यक्ष लक्ष्य भी स्पष्ट नहीं दिखता था। तथापि कोई गहरी अदम्य इच्छा उन्हें इस उच्चतम बौद्धिक और मौलिक अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करती थी।

आगे चलकर उनके कार्य के समीक्षकों ने यह पाया कि औपचारिक शिक्षा के अभाव ने रामानुजन की कार्य शैली में एक बड़ी दरार छोड़ी। रामानुजन ने अपने व्यक्त किए परिणामों की पुष्टि के लिए आवश्यक साक्ष्य जुटाने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। जहाँ उनके पास पूरे साक्ष्य थे भी वहाँ भी उन्होंने उसे कागज़ पर उतारने की ओर लापरवाही दिखाई। अधिकांशत: वे समस्याओं को पूरी तरह स्लेट पर सुलझाया करते थे और उन्हें मिटाकर केवल परिणामों को ही अपनी नोटबुक में अंकित करते थे। आगे चलकर कैम्ब्रिज के अपने गुरु और सहयोगी डॉ० हार्डी के संपर्क में आने के बाद भी रामानुजन की कार्यशैली में गणितज्ञों वाली व्यवस्था नहीं आ सकी।

क़िन्तु यह अनौपचारिक तरीके से किया गया रामानुजन का लगभग 20 वर्षों का कार्य ही गणितज्ञों को 200 वर्षों तक व्यस्त रखने के लिए पर्याप्त है।

कहा गया है कि रामानुजन उस कोटि के विशुद्ध गणितविज्ञानी थे जिनके लिए गणित भी एक खेल था। फिर भी रामानुजन की इस विशुद्ध गणितीय क्रीड़ा की गणित के अतिरिक्त अन्यान्य क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक डॉ० **जगजीत सिंह** ने लिखा है, "इस विशुद्ध गणित या रामानुजन के खेल से, इंग्लैंड और यूरोप के बौद्धिक क्षेत्रों में भारत के लिए उस समय सम्मान बढ़ा, जब भारतीय राजनीति के तूफ़ानी नेता **तिलक** ने 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का नारा नहीं लगाया था। गाँधी और नेहरू द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अंग्रेज़ों के विरुद्ध आंदोलन चलाये जाने से बहुत पहले ही रामानुजन ने अपनी गणित प्रतिभा और शक्ति से

इंग्लैंड के बौद्धिक गढ़ 'रॉयल सोसाइटी' पर कब्ज़ा कर लिया था।"

डॉ० जगजीत सिंह का यह भी मत है कि रामानुजन की यह इच्छा कि उनके गणित को तकनीकी प्रयोगों से अलग रखा जाये, पूरी न हो सकी। 'पायरोमीटरी सिद्धांत' यानी अच्छी धमन भट्टियों के लिए भट्टियों के तापमान की जाँच के कार्य में रामानुजन के कार्य की पूरी सहायता ली गई है। इस तरह परमाणु शक्ति की विस्फोटक विध्वंसक क्षमता के साथ अप्रत्यक्ष रूप से रामानुजन का कार्य भी जुड़ गया है। यह अवश्य संतोषप्रद बात है कि वह परमाणु शक्ति बिजली पहुँचाने या अन्य सामाजिक लाभों के हेतु भी प्रयुक्त हो रही है। सम्भवतः रामानुजन ने अपने कार्यों के सामाजिक प्रभावों के विषय में कोई विचार ही नहीं किया था, क्योंकि उस युग तक ऐसे प्रश्न सर्वसाधारण क्या वैज्ञानिकों को भी नहीं उद्वेलित करते थे।

गणित के क्षेत्र में रामानुजन का सही और ठोस प्रभाव क्या था इसके उत्तर अभी भी धीरे-धीरे आकार ले रहे हैं। उनकी संख्याओं के रहस्यमय संसार की गुत्थियाँ अभी भी सुलझनी बाकी हैं। यह रहस्यमयता और मूल्यांकन में कई दर्शकों की इस देरी का कारण यही है कि रामानुजन अपने समय से बहुत आगे थे। आज यह अन्दाज़ा लगाना भी कठिन है कि यदि रामानुजन को पूरा औपचारिक प्रशिक्षण मिला होता तो उससे क्या अन्तर पड़ता?

पर रामानुजन की गणित के प्रति गहरी भक्ति ने उनके व्यक्तित्व के अन्य सभी पक्षों को आवृत्त कर लिया। सम्भवतः इसी से उनके व्यक्तित्व के धार्मिक पक्ष पर बड़े विरोधपूर्ण विचार व्यक्त किये गये हैं। तथापि इतना तो स्पष्ट है कि धार्मिक आचार-विचारों के प्रति उनकी आसक्ति ने उनके स्वास्थ्य पर चाहे जितना बुरा प्रभाव डाला हो, उनकी गणित के प्रति 'चातक' जैसी अनन्य पिपासा को नहीं प्रभावित किया।

यह सभी बातें एक ही ओर संकेत करती हैं कि भले ही रामानुजन को औपचारिक प्रशिक्षण न मिला हो, भले ही वह एक लंबी आयु भोगने से वंचित रहे हों, भले ही समकालीन विद्वतसमाज द्वारा उनकी महानता की ओर उदासीनता का रुख अपनाया गया हो, पर इन समस्त बाधाओं को जीतकर भी वे अपनी स्वअर्जित प्रतिभा की अमिट छाप छोड़ने में सफल रहे। इसीलिए प्रो० हार्डी ने कहा है कि रामानुजन एक दुर्बोध और अपराजेय मौलिक प्रतिभा वाले व्यक्ति थे जिनके साथ बराबरी के दर्जे पर कार्य करना हार्डी के लिए भी एक सौभाग्य था।

उस विलक्षण प्रतिभा के धनी के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि। □□

[पृष्ठ 17 का शेष]

बड़ी-बड़ी आँखें, चौड़ा माथा, बड़ा सिर और प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे बोस। पर रहन-सहन सादा और बनावट से दूर।

कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ टैगोर की भाँति ही उनका भी यह विश्वास था कि जनमानस में वैज्ञानिक मनोवृत्ति, वैज्ञानिक चेतना, जिसे अंग्रेज़ी में 'सायन्टिफिक टेम्पर' कहते हैं, के प्रादुर्भाव के लिए यह आवश्यक है कि विज्ञान की मूलभूत बातों और नई खोजों को जनसाधारण तक उनकी मातृभाषा में ले जाया जाय। इसके लिए 1948 में बोस ने अपने मित्रों के सहयोग से कलकत्ता में 'बंगीय विज्ञान परिषद्' नामक एक संस्था की स्थापना की। 'विज्ञान परिचय' नामक बंगला भाषा में विज्ञान की एक पत्रिका का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया। बोस को बंगला साहित्य की सेवा के लिए 'जगतारिणी मेडल' भी मिला था। इस पत्रिका का उद्देश्य जनसाधारण में विज्ञान का प्रसार करना था। बोस के 95वें जन्म दिन पर इस गोष्ठी के माध्यम से मेरा विशेष अनुरोध है कि चोटी के वैज्ञानिक अपनी मातृभाषा और विशेष रूप से राष्ट्रभाषा हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान की सर्जना अवश्य करें। तभी सच्चे अर्थों में प्रो० बोस का जन्म दिन मनाने का हमारा उद्देश्य सार्थक होगा।

4 फरवरी 1974 को प्रो० बोस का जीवन दीप बुझ गया। किन्तु जब तक यह सूरज रहेगा, सूरज की रोशनी रहेगी, तब तक 'बोसॉन' सर्वत्र रहेंगे और इन बोसॉनों के साथ बोस का नाम भी रहेगा। इस महामानव को मैं नमन करता हूँ।

प्रो० सत्येन्द्र नाथ बोस : जीवन और उपलब्धियाँ

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

सम्मानित विद्वज्जन !

आज हम लोग यहाँ विश्वविख्यात विज्ञान पुरुष स्वर्गीय प्रोफ़ेसर सत्येन्द्र नाथ बोस के जीवन एवं उपलब्धियों की चर्चा के लिए एकत्र हुए हैं। किसी भी महान व्यक्ति की चर्चा का मूल उद्देश्य यही होता है कि हम उनसे प्रेरणा लें। ऐसे लोग अधिक नहीं होते, जिन्हें अपने जीवनकाल में ही अनुश्रुति या दन्तकथा बन जाने का सौभाग्य मिलता हो। किन्तु प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस ऐसे ही विलक्षण व्यक्ति थे, जो अपने जीवनकाल में ही एक इतिहास पुरुष बन गए थे।

विद्यार्थी सत्येन्द्र जब स्कूल में थे तो उनके गणित के अध्यापक श्री उपेन्द्र बख्शी ने उन्हें 100 में 110 अंक प्रदान किए थे। अध्यापकगण बोस के जटिल प्रश्नों से भयभीत भी रहते थे। कहते हैं "होनहार बिरवान होत चीकने पात"। यह कहावत बोस के साथ पूरी तरह चरितार्थ होती है। क्योंकि आगे चलकर बोस इस शती के महानतम भौतिकीविदों में से एक सिद्ध हुये।

उत्तरी कलकत्ता के 22 ईश्वर मिल लेन में 1 जनवरी 1894 में जन्मे बोस की शिक्षा हिन्दू स्कूल और प्रेसिडेंसी कॉलेज में हुई। 1915 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से गणित में एम० एस-सी० की डिग्री ली। जब प्रसिद्ध शिक्षाविद् आशुतोष मुकर्जी ने ने कलकत्ता में 'यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑव साइन्स' की स्थापना की तो उस समय भौतिकी विभाग में जो दो प्रवक्ता उन्होंने सबसे पहले नियुक्त किए उनमें एक थे सत्येन्द्र नाथ बोस और दूसरे मेघानाद साहा। यह 1916 की बात है। उस समय वहाँ एक अच्छा पुस्तकालय भी नहीं था। पर बाहर की दुनिया में भौतिकी में एक क्रान्ति हो रही थी। जर्मन भौतिकीविद् मैक्स प्लांक 'क्वाटम थियरी' और एल्बर्ट-आइंस्टीन 'सापेक्षवाद सिद्धांत' प्रस्तुत कर चुके थे। इसके अतिरिक्त लोगों ने परमाणु के भीतर भी झाँकना शुरू कर दिया था। उस समय भारत में अधिकांश भौतिकीविद् भौतिकविज्ञान की पुरानी पद्धति पर चल रहे थे, पर बोस और साहा दोनों ही उससे असन्तुष्ट थे। वे चाहते थे कि भारत में भी आधुनिक भौतिकविज्ञान का ज्ञान विद्यार्थियों को अवश्य ही मिलना चाहिये।

पर ज्ञान मिले तो कैसे मिले ? विश्व कठिन दौर से गुजर रहा था। 'प्रथम विश्व युद्ध' छिड़ा हुआ था। परिणामस्वरूप भारत में नई पुस्तकें और अनुसंधान पत्रिकायें पहुँच नहीं रही थीं। बोस नई पुस्तकों और शोध-पत्रिकाओं की खोज में जुट गए। सौभाग्य से उस समय एक जर्मन वैज्ञानिक पी० जे० ब्रुहल भारत में ही रह रहे थे। उनके पास से कुछ नई किताबें और शोध-पत्र बोस को मिल गए। पर यह साहित्य जर्मन भाषा में था। साहा और बोस ने जर्मन भाषा सीखी, आधुनिक भौतिकी पर नवोपलब्ध इस साहित्य का अनुवाद अंग्रेजी में किया। यही नहीं, उन्होंने आइंस्टीन के 'सापेक्षवाद सिद्धान्त' (थियरी ऑव रिलेटिविटी) का अनुवाद भी जर्मन से अंग्रेजी में किया। कुछ समय तक साहा और बोस साथ काम करते रहे। पर बाद में साहा विदेश और बोस ढाका विश्वविद्यालय चले गए।

बोस के जीवन में यहीं एक बड़ा मोड़ आया। बोस के एक मित्र जो विदेश गए थे, जब वापस आये तो उन्होंने बोस को प्रसिद्ध भौतिकीविद् मैक्स प्लांक की पुस्तक 'थर्मोडाइनैमिक्स ऐण्ड हीट' की एक प्रति भेंट की। इस पुस्तक में मैक्स प्लांक के सभी मूल शोध-पत्र सम्मिलित थे। बोस इस पुस्तक के अध्ययन में जुट गए। बोस के जीवन का मूल मंत्र था—"कभी भी किसी विचार को स्वीकार मत करो, जब तक तुम

स्वयं न संतुष्ट हो जाओ।" अतएव इस पुस्तक के सूत्रों और समीकरणों की जाँच बोस स्वयं करने लगे। फलस्वरूप बोस ने एक युगान्तरकारी खोज कर डाली। यह खोज थियरटिकल फ़िजिक्स या मैथमेटिकल फ़िजिक्स में 'मील का पत्थर' सिद्ध हुई। इस समय बोस 30 वर्ष के भी न थे।

बोस ने मात्र 4 पृष्ठों का एक शोध-पत्र 'प्लांक्स लॉ ऐन्ड लाइट क्वांटम हाइपोथेसिस' भारतीय और दूसरी अनेक विदेशी पत्रिकाओं में प्रकाशन के लिए भेजा। सभी ने छापने से मना कर दिया। उस समय किसे पता था जि भारत जैसे देश के एक अनजाने से विश्वविद्यालय में शोधरत एक वैज्ञानिक ने एक क्रान्तिकारी खोज कर डाली है?

निराश होकर बोस ने अपना शोध-पत्र 1924 में आइंस्टीन को अवलोकन के लिए भेजा। आइंस्टीन अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने उसका अनुवाद जर्मन भाषा में किया और भौतिकी की एक जर्मन शोध-पत्रिका में प्रकाशित करवाया। इस शोध-पत्र पर आइंस्टीन की टिप्पणी थी—**'एक अगला कदम'**।

बोस के इस शोध-पत्र ने एक सर्वथा नये प्रकार की सांख्यिकी (स्टैटिसटिक्स) को जन्म दिया। सांख्यिकी, जिसकी मदद से बोस ने विकिरण के स्वभाव की व्याख्या की। यह सांख्यिकी 'बोस सांख्यिकी' के नाम से विख्यात है। वे मूल भूत कण, यथा 'फ़ोटॉन' और 'एल्फा कण', जो 'बोस सांख्यिकी' का अनुशीलन करते हैं, उन्हें 'बोसॉन' कहते हैं। इस प्रकार बोस का नाम विज्ञान का अंग हो गया।

1924 में ही 2 वर्षों के अवकाश पर बोस यूरोप गए। वहाँ उनकी मुलाकात आइंस्टीन, हीसेनबर्ग, एह्रेनफेस्ट जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिकों से हुई। उन्होंने कुछ समय मैडम क्यूरी ओर मॉरिस डे ब्रोगली की प्रयोगशालाओं में शोध भी किया।

यहाँ मैं बोस की मैडम क्यूरी से मुलाकात की एक रोचक घटना का जिक्र करना चाहूँगा। जब बोस ने मैडम क्यूरी से उनकी प्रयोगशाला में काम करने का अनुरोध किया तो मैडम क्यूरी ने कहा, "पहले कुछ समय फ्रेंच भाषा का अभ्यास करो।" बोस ने तुरन्त विशुद्ध फ्रेंच में उत्तर दिया, "हाँ, मैडम क्यूरी! मुझे फ्रेंच अच्छी तरह आती है।" बोस फ्रेंच भाषा के भी अच्छे ज्ञाता थे।

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लिए बोस को 34 वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। वे आत्म-प्रचार से बहुत दूर थे। 1958 में उन्हें लंदन की 'रायल सोसायटी' का 'फेलो' चुना गया। इसके पूर्व 1926-45 तक वे ढाका विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे। 1945-56 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'खेरा प्रोफेसर', 1952-58 तक 'राज्य सभा' के सदस्य, 1958 में भौतिकी के 'राष्ट्रीय प्रोफेसर', और 1944 में वे 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' के अध्यक्ष रहे। 1954 में उन्हें 'पद्म विभूषण' अलंकरण प्रदान किवा गया। 1956-58 तक वे 'विश्वभारती विश्वविद्यालय', कलकत्ता के उप-कुलपति भी रहे।

बोस ने गणितीय भौतिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अनुसंधान किए हैं। लगभग 30 वर्ष की उम्र में उन्होंने 'सांख्यिकी' में और 50 वर्ष की उम्र में 'एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त' में महान योग दिया। कहते हैं 50 वर्ष की आयु के बाद अपने जीवन के शेष 30 वर्षों में बोस ने कोई महत्वपूर्ण अनुसंधान नहीं किया, किन्तु बोस ने इन तीस वर्षों में अनेक विषयों का अध्ययन किया। इनमें भौतिकी के अलावा रसायन विज्ञान, जीवरसायन, खनिज विज्ञान, मृदाविज्ञान, दर्शनशास्त्र, इतिहास, पुरातत्व, ललित कला, साहित्य और भाषायें हैं। अंग्रेजी भाषा पर उनका अधिकार था, फ्रेंच और जर्मन भाषायें वे अच्छी तरह जानते थे, बंगला भाषा में उन्होंने अनेक वैज्ञानिक लेख लोकरुकि के लिखे हैं। भारतीय और यूरोपीय शास्त्रीय संगीत में उनकी गहरी रुचि थी। वे 'इसराज' नामक तंत्रवाद्य बहुत ही बढ़िया बजाते थे। और कुशल वक्ता तो थे ही। उनकी लिखावट सुन्दर और अक्षर मोती जैसे थे।

उन्होंने एक बड़े ही प्रेरक क्षण में सल्फोनामाइड अणु की आंतरिक संरचना से छेड़-छाड़ की और उसे एक औषधीय यौगिक में बदल दिया। इसी से आँखों की ओषधि बनाई जाती है।

[शेष पृष्ठ 15 पर]

डॉ० एस० एन० बोस : जिन्हें मातृभाषा द्वारा विज्ञान की शिक्षा प्रिय थी

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

डॉ० एस० एन० बोस का पूरा नाम सत्येन्द्रनाथ बोस था। इनका जन्म 1 जनवरी 1894 को कलकत्ता में हुआ था। इनकी जन्म भूमि और कर्मभूमि बंगाल बनी। पाँच वर्ष की अल्पायु में पढ़ना शुरू किया, किन्तु आँखें बचपन से कमजोर थीं। साहित्य, कहानियाँ, नाटक के प्रति बचपन से ही झुकाव था। टेनीसन और रवीन्द्र उनके प्रिय कवि थे।

इनके बाबा अम्बिका चरण तथा पिता सुरेन्द्रनाथ दोनों सरकारी नौकरी में थे। पिता जब कार्य पर जाते तो घर पर अपने बच्चे सत्येन को गणित के प्रश्न हल करने के लिए दे जाते, जिन्हें बालक सत्येन सीमेंट की फर्श पर हल कर रखता। यह बालक पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य अनेक पुस्तकों से प्रश्न हल करता।

15 वर्ष की आयु में सत्येन ने प्रेसीडेंसी कॉलेज में दाखिला लिया। वे अपने समय के सबसे मेधावी छात्र थे। आयु में मेघनाद साहा उनसे दो वर्ष छोटे थे और नीलरत्न धर दो वर्ष बड़े।

1905 का वर्ष विशेष महत्व का था। उसी वर्ष आइन्स्टीन ने 'सापेक्षवाद सिद्धान्त' प्रस्तुत किया और उसी वर्ष बंगाल का विभाजन हुआ। स्वदेशी की लहर उठी, जिसमें मेघनाथ साहा फँस गये किन्तु सत्येन नहीं फँसे।

स्कूली दिनों में सत्येन बड़े शरारती थे। बी० एस-सी० कक्षा में सत्येन, तथा साहा साथ-साथ हो गये। दोनों ने गणित विषय चुना। 1913 में सत्येन प्रथम आये और साहा द्वितीय। 1915 में एम० एस-सी० में सत्येन प्रथम और साहा द्वितीय आये।

20 वर्ष की अवस्था में ऊषावती से विवाह हो गया—दहेज न लेने की शर्त, किन्तु बारात का भव्य स्वागत।

1916 में दोनों मित्र कलकत्ता यूनिवर्सिटी में सम्प्रयुक्त हो गये। उस समय अध्यक्ष थे डॉ० गणेश

प्रसाद। कुछ समय पश्चात् दोनों गणित विभाग छोड़-कर भौतिकी पढ़ाने लगे। दोनों ने आधुनिक भौतिकी का अध्ययन शुरू किया। जर्मन भाषा सीखी। 'क्वांटम सिद्धान्त', 'सापेक्षता का सिद्धान्त' इनकी बहार थी। किन्तु पुस्तकें उपलब्ध न थीं। भाग्यवश जर्मन प्रोफेसर पी० जे० ब्रुह्ल वहाँ आये, जिनके पास पुस्तकें थीं, किन्तु जर्मन भाषा में। 1918-20 में कुछ शोध पत्र फिलासफिक मैगजीन में छपे। आइन्स्टीन की 'थियरी ऑव रिलेटिविटी' का अनुवाद करके छपाया।

सत्येन का आशुतोष मुकर्जी से मतभेद हो जाने पर उन्हें 1921 में ढाका जाना पड़ा। वहाँ 5 वर्ष रहे। 1924 में बोस ने प्लांक के कार्य के विषय में कुछ संशोधन किये। यह शोधपत्र जर्मन शोध जर्नल में छपने भेजा गया। और उसकी एक प्रति 4 जून

1924 को आइंस्टीन के पास भेजी। तभी वे विदेश गये। फ्रांस गये। जर्मनी भी गये। पेरिस में **मैडम क्यूरी** के साथ कार्य करना चाहा, किन्तु उन्होंने बंदिश लगाई कि पहले फ्रेंच भाषा सीखो। फ्रांस में एक्स-किरण और क्रिस्टल विश्लेषण की ओर ध्यान गया। 1926 में ढाका लौट आये और जुट गये प्रयोगशाला सुधारने में। वे 1945 तक यहाँ रहे—पूरे 24 वर्ष, किन्तु केवल 2 विद्यार्थी डॉक्टररेट ले सके। 1944 में 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' के अध्यक्ष बने। 1945 में पुनः कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'खेरा प्रोफेसर' होकर लौटे और 1956 तक रहे। 1953-55 में उन्होंने 'एकीकृत सिद्धान्त' पर शोधपत्र लिखा। 1945 में 'पद्म विभूषण' पदवी मिली।

1956-58 तक शान्ति निकेतन में कुलपति रहे। 1958 में **रॉयल सोसायटी के फेलो** बने। 1957 में कलकत्ता, आदमपुर तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालयों ने मानद उपाधियाँ दीं। उनके स्वभाव में अनेक विचित्रतायें देखने में आती हैं।

1. भोर में उठकर 2 घण्टा काम करना।
2. लगातार सिगरेट पीना।
3. अपने विचार रद्दी कागज़ पर लिखना, पर कभी ठीक से नहीं रखना।
4. अच्छा भोजन, अच्छी संगति, अच्छी पुस्तकें उन्हें विशेष प्रिय थीं।
5. इसराज बजाते थे, धोती पायजामा आदि सादे वस्त्र पहनते थे।
6. 1924 में पहला शोधपत्र, 1934 में दूसरा। 1953-54 में पुनः शोधपत्र का प्रकाशन। कुल 25 शोधपत्र। 12 विद्यार्थियों को डी-फिल।
7. कार्बनिक रसायन में रुचि। आशिमा चटर्जी ने उन्हीं के साथ कार्य किया।
8. मणिभों के स्वरूप, मृदा के खनिज, मृदाओं के प्रकार आदि पर भी कार्य किया।
9. जिस एक कमरे में रहते वह सबों के लिए खुला रहता था।

मातृभाषा के द्वारा विज्ञान

बोस के अनुसार 'सब कुछ वेदों में है' यह मनोवैज्ञानिक अवरोध है। हमें अपनी दुर्बलताओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करना होगा। हमारी शिक्षा की गति धीमी इसीलिए रही है क्योंकि मातृभाषा में शिक्षा नहीं दे पाये, विदेशी भाषा की तोता रटन्त रही। विश्व में कोई ऐसा अन्य देश नहीं जो अपनी भाषा में शिक्षा न देता हो। तो फिर भारत में क्यों नहीं?

1963 में राँची विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह भाषण में अपनी व्यथा व्यक्त की।

जब जापान गये तो वहाँ यह देखकर दंग थे कि बड़े से बड़े वैज्ञानिक जापानी भाषा में बातें करते थे। पर उन्हें विदेशी पारिभाषिक शब्द ग्रहण करने में कोई हिचक नहीं थी।

ढाका से कलकत्ता लौटने के बाद मातृभाषा पर बल देना प्रारम्भ किया, किन्तु लोग ध्यान नहीं दे पा रहे थे। कलकत्ता में 1876 में ही 'इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टिवेशन ऑव साइन्स' बना था। सर्वप्रथम बोस ने 18 अक्टूबर 1947 को मातृभाषा के माध्यम से विज्ञान को लोकप्रिय बनाने का बीड़ा उठाया और बंगीय विज्ञान परिषद् की स्थापना हुई, जिसका 25 जनवरी 1948 को उद्घाटन हुआ।

'ज्ञान ओ विज्ञान' पत्रिका प्रकाशित की। धन एकत्र किया। इमारत बनाई। 1946 से ही एम० एस-सी० कक्षाओं में बंगला भाषा में पढ़ाना प्रारंभ किया। 'साहा मेमोरियल व्याख्यान' भी बंगला में दिया। किन्तु इनकी पहली रचना 1931 में 'क्राइसिस इन साइंस' '**परिचय**' नामक त्रैमासिक पत्रिका में छपी। दूसरा लेख आइंस्टीन पर था। जे० सी० बोस, साहा, सत्येन बंगला में लिखने लगे।

सत्येन वैसा ही लिखते—मुहावरेदार, जैसा बोलते। कभी भाषण तैयार करके नहीं बोलते थे, न ही नोट्स रखते थे।

80 वर्ष की परिपक्व अवस्था में 4 फरवरी 1974 को उनका निधन हो गया। ☐☐

प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस के अनुसन्धान

आशीष कुमार

प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस एक ऐसे भौतिकीविद् थे, जिन्होंने भौतिक विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में शोध एवं अध्ययन किया। किन्तु **'क्वांटम सांख्यिकी'** के जन्मदाता के रूप में उन्हें सबसे अधिक ख्याति मिली।

सन् 1924 में प्रो० बोस का 4 पेज का 'प्लांक का नियम तथा प्रकाश क्वांटम प्राक्कल्पन' शीर्षक शोधपत्र प्रकाशित हुआ। इनके आग्रह पर **आइंस्टीन** ने शीघ्र ही इस शोधपत्र का जर्मन मे अनुवाद किया और प्रसिद्ध शोध-पत्रिका *Zeitschrift fur Physik* में प्रकाशित कराया।

वैज्ञानिक आइंस्टीन बोस के कार्य की महानता से बहुत प्रभावित हुये। **मैक्स प्लांक** ने 1900 में **'क्वांटम सिद्धान्त'** की स्थापना की थी। उसमें इन्होंने सिद्ध किया कि ऊर्जा का विसर्जन नियमित न होकर समूहों में होता है। इसके लिये उन्होंने एक सिद्धान्त निश्चित किया। बोस प्लांक के निश्चय से सहमत नहीं हुये। उन्होंने सुझाव दिया कि विकिरण की क्वांटा का बंटन (distribution) निकालते समय उन्हें अभिन्न न माना जाये। तथा किसी अवस्था में कणों की संख्या एक या एक से अधिक कुछ भी हो सकती है। इस विचारधारा से बोस ने विकिरण सूत्र को नये ढंग से स्थापित किया। इस सूत्र से एक नये प्रकार की सांख्यिकी का जन्म हुआ। इस विधि के उपयोग से आइंस्टीन ने उसी वर्ष गैस के लिये 'बंटन फलन' (distribution function) स्थापित किया जो कि चिरसम्मत फलन से एक दम भिन्न था। प्रो० बोस एवं आइंस्टीन की विधियों को सम्मिलित रूप से **'बोस आइंस्टीन सांख्यिकी'** कहते हैं।

इसके दो वर्ष बाद **फर्मी** और **डिराक** ने **पॉली** के सिद्धान्त को मानते हुये, जिसके अनुसार किसी अवस्था में एक से अधिक इलेक्ट्रॉन नहीं रह सकते हैं, इलेक्ट्रॉन के लिये बंटन फलन निकाला। इसे **'फर्मी-डिराक सांख्यिकी'** कहते हैं।

प्रारम्भिक कणों की भीड़ के विश्लेषण के लिये इस समय केवल दो सांख्यिकी विधियाँ हैं, जिन्होंने सारे मूल कणों को दो भागों में बाँट दिया है। बोस-सांख्यिकी का पालन करने वाले कण 'बोसॉन' एवं 'फर्मी-डिराक सांख्यिकी' का पालन करने वाले कण 'फर्मिऑन' के नाम से जाने जाते हैं। अभी तक 70 से अधिक 'बोसॉन' कण खोजे जा चुके हैं।

इस कार्य के तीस वर्ष बाद बोस ने 'क्षेत्र सिद्धान्त' (**Unified Field Theory**) पर भी क्रांतिकारी कार्य किया। बोस उच्चकोटि के गणितज्ञ थे और संभवतः इस सिद्धांत के गणित के कारण ही वह उसकी ओर आकर्षित हुये थे।

यद्यपि आइंस्टीन को भी इस सिद्धान्त के समीकरणों को हल करने में अधिक सफलता नहीं मिली थी। बोस ने उनका हल करना आरंभ किया और सिद्धान्त के प्रथम भाग सम्बन्धी समीकरण को हल किया। उन्होंने 1953-55 में बड़े प्रतिभाशाली शोध-पत्र लिखे जो गणित में चरम सीमा के पत्र थे। परन्तु संसार में इनसे इतनी सनसनी नहीं मची, जितनी 1924 में उनकी सांख्यिकी से मची थी।

इसके अलावा बोस ने पेरिस में कुछ समय तक कार्य किया। वहाँ उन्होंने पीजोलेक्ट्रिक इफेक्ट' पर ऐसी कठिन नाप-जोख की कि सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। इस गुण का प्रदर्शन 'क्वार्ट्ज क्रिस्टल' ए० सी० के प्रभाव में करते हैं। इसकी उपयोगिता क्वार्ट्ज घड़ियों को बनाने में है।

विज्ञान के क्षेत्रों में आने वाली अनेक समस्याओं का हल उन्होंने निकाला। खनिज विज्ञान, जीव विज्ञान, मिट्टी सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधानों में उन्होंने योगदान दिया। इस प्रकार बोस ने अपना नाम एक बहुमुखी वैज्ञानिक के रूप में सदा के लिये स्थापित कर दिया। □□

प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस की उपलब्धियाँ

अनिल कुमार शुक्ल

पंचानबे साल पूर्व कलकत्ता के एक संभ्रांत परिवार में जन्मे सत्येन्द्र बोस, बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि थे। अपने अध्ययन काल में भी परिश्रम और कुशाग्रता के कारण उन्हें अध्यापकों एवं सहपाठियों का विशेष स्नेह प्राप्त था। उनकी इस विलक्षण प्रतिभा को पहचानकर ही सर आशुतोष मुखर्जी ने उन्हें कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज में भौतिकी विभाग खुलने पर अध्यापक नियुक्त किया। यहाँ विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि श्री सत्येन्द्र बोस ने एम० एस-सी० की उपाधि भौतिकी में नहीं बल्कि गणित में प्राप्त की थी। लेकिन डॉ० मेघनाद साहा की तरह श्री बोस ने भी भौतिकी विषय में न केवल महारत हासिल की, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय ख्याति भी प्राप्त की।

केवल तीस वर्ष की अल्पायु में, सन् 1924 में 'प्लांक का नियम तथा प्रकाश क्वांटम प्राक्कलन' शीर्षक शोधपत्र लिखकर, भारत के इस अनाम वैज्ञानिक ने भौतिकी विज्ञान की एक नई शाखा 'क्वांटम सांख्यिकी' का सूत्रपात किया था। प्रो० बोस का यह शोधपत्र अपने अनेक समकालीन भौतिकशास्त्रियों की समझ के परे था। विश्व की अधिसंख्य शोधपत्रिकाओं के विद्वान संपादक भौतिक विज्ञान की समस्या सुलझाने में सांख्यिकी की उपयुक्तता के प्रति शंकालु थे, शायद इसीलिए वे इस शोधपत्र को छापने में संकोच कर रहे थे। बोस का यह शोध-पत्र, शायद कभी न छपता, यदि उन्होंने उसे आइंस्टीन के पास न भेजा होता।

बोस, आइंस्टीन को अपना गुरु मानते थे—ठीक उसी तरह जैसे कि एकलव्य, द्रोणाचार्य को अपना गुरु मानता था। अपने शोधपत्र को आइंस्टीन के पास भेजते हुए, पत्र में उन्होंने लिखा था, "यदि आप इस शोधपत्र को प्रकाशन योग्य समझें तो इसे Zeitschrift fur Physik' में प्रकाशित कराने की व्यवस्था करा दें। यह अनुरोध करते हुए मुझे कोई संकोच नहीं है, क्योंकि हम सभी आपके शिष्य हैं।" पत्र के अंत में अपना परिचय देते हुए उन्होंने लिखा था "...मैं वह व्यक्ति हूँ जिसने आपके 'सामान्यीकृत सापेक्षता सिद्धान्त' वाले शोधपत्र का [जर्मन से अंग्रेजी में] अनुवाद किया था"। यहाँ उल्लेखनीय है कि बोस ने यह अनुवाद तब किया था, जबकि आइंस्टीन के 'सापेक्षता सिद्धान्त' को समझने वालों की संख्या पूरे संसार में उँगलियों पर गिनी जा सकती थी। स्पष्टतः आइंस्टीन के उस शोधपत्र का अनुवाद, बोस की विलक्षण प्रतिभा का पर्याप्त प्रमाण था।

बोस की विलक्षणता का दूसरा प्रमाण, आइंस्टीन को, बोस के इस शोधपत्र में मिला। इस शोधपत्र की महत्ता को आँककर, आइंस्टीन ने स्वयं उसका जर्मन भाषा में अनुवाद किया और उसे प्रकाशनार्थ भेजते हुए, अपने पत्र में लिखा, "मेरी दृष्टि में, प्लांक के सूत्र की बोस द्वारा दी गयी व्युत्पत्ति (proof) एक अग्रगामी उपलब्धि है। इसमें प्रयुक्त विधि 'अदर्शनीय गैसों का क्वांटम सिद्धान्त' भी देती है, जिसे मैं अन्यत्र सिद्ध करूँगा।"

आइंस्टीन की इस प्रशंसात्मक उक्ति के बाद जब यह शोधपत्र प्रकाशित हुआ तो सत्येन्द्रनाथ बोस सारे संसार में प्रसिद्ध हो गये। उनकी गिनती बीसवीं सदी के सर्वाधिक प्रसिद्ध भौतिकशास्त्रियों में से एक के रूप में होने लगी। उनके इस युगप्रवर्तक योगदान को यादगार बनाने के लिए, विश्व ने उन सभी मूलभूत प्राकृतिक कणों को 'बोसॉन' नाम रख दिया, जो 'बोस सांख्यिकी' का पालन करते थे, बोस द्वारा की गई व्याख्या पर खरे उतरते थे।

इस प्रकार प्रो० सत्येन्द्रनाथ बोस का नाम, भौतिक विज्ञान का अभिन्न अंग बन गया। भारतमाता के इस सपूत ने सारे विज्ञान जगत् में भारत का नाम भी अमर कर दिया।

यह अविस्मरणीय उपलब्धि कैसे मिली और यह उपलब्धि इतनी महत्वपूर्ण क्यों है? दर असल बोस ने **'प्लांक के विकिरण नियम'** का सूत्र सैद्धान्तिक दृष्टि से सत्यापित कर दिखाया था। इस विकिरण नियम के साथ ही विचित्रताओं की परम्परा जुड़ी है। प्लांक का यह नियम 'कृष्णपिंडीय विकिरण' (Black Body Radiation) से संबंधित है। इन विकिरणों के बारे में सन् 1895 से 1900 के बीच अनेक वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए थे। लेकिन उनके प्रयोगफलों एवं उस समय के सैद्धान्तिक निष्कर्षों में विरोधाभास स्पष्ट था। सैद्धांतिक आधार पर निर्मित प्राक्कलनों (भविष्यवाणियों) की पुष्टि प्रयोगों द्वारा नहीं हो पा रही थी। दूसरी ओर प्रयोगों के द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को किसी भी ज्ञात सिद्धान्त के द्वारा सिद्ध करना भी सम्भव नहीं हो पा रहा था।

इस विसंगति को दूर करने के अनेक प्रयास असफल हो चुके थे। इस कठिन चुनौती को सत्येन्द्र बोस ने स्वीकार किया। लेकिन वे समझ नहीं पा रहे थे कि हल कैसे निकले। डॉ॰ मेघनाद साहा के साथ एक अनौपचारिक बातचीत में, उन्हें सांख्यिकी के प्रयोग की बात कौंधी। और वे जुट गए।

बोस इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि पुरानी मान्यताओं को छोड़े बिना, विज्ञान के नये क्षितिज स्थापित करना असंभव है। उन्होंने महसूस किया कि **'प्लांक का नियम'** तभी सिद्ध हो सकता है, यदि हम गैसों को 'कण' के रूप में अलग कर सकने की पुरानी अवधारणा को ग़लत मान लें और विद्युत्-चुम्बकीय विकिरणों को फोटॉनों से निर्मित मानें। इस निश्चय के साथ ही उनके शोध की दिशा स्पष्ट हो गयी और **'प्लांक के विकिरण नियम'** की सैद्धान्तिक व्युत्पत्ति दी जा सकी।

सत्येन्द्र बोस के इस व्याख्यान ने 'क्वांटम सिद्धान्त' को सांख्यिकीय विधियों का एक नया आधार सौंपा। यही कारण है कि आइंस्टीन इस शोधपत्र से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने समझ लिया कि यह युगांतरकारी खोज उनकी (आइंस्टीन की) फोटॉन अवधारणा की पुष्टि तो करती है, साथ ही द्रव के तरंगीय गुणों को पुष्ट करने वाले वैज्ञानिक **'डी ब्राग्ली'** के विचारों को विश्लेषित करने में भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। कालांतर में, आइंस्टीन ने बोस की सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग कर डी ब्राग्ली के विचारों को पुष्ट भी किया।

आइंस्टीन द्वारा की गई इस पुष्टि ने श्रोडिंगर को अपना प्रसिद्ध समीकरण स्थापित करने को प्रेरित किया। यहाँ, यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं है कि **श्रोडिंगर के समीकरणों** का क्वांटम यांत्रिकी में वही महत्व है, जो पुरानी भौतिकी में 'न्यूटन के द्वितीय नियम' का।

उपर्युक्त विवेचन का आशय इस तथ्य को रेखांकित करना है कि प्रो॰ सत्येन्द्र बोस ने भौतिक विज्ञान में अग्रदूत की भूमिका निभाई है। उनकी प्रतिभा मौलिक थी। उन्होंने ऐसी उपलब्धि हासिल की थी, जिसने तत्कालीन विश्व के प्रसिद्ध भौतिकीविदों के मार्ग को प्रशस्त किया, उन्हें प्रेरणा दी।

इसके अलावा 'एकीकृत क्षेत्र सिद्धांत' में भी जब उन्होंने काम शुरू किया तो वहाँ भी अपनी अमिट छाप छोड़ी। विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया तो 1948 में बंगीय विज्ञान परिषद् की स्थापना करके अपनी सकारात्मक भूमिका और निष्ठा का प्रमाण दिया।

प्रोफेसर सत्येन्द्र नाथ बोस को अपनी उपलब्धियों का पूरा भरोसा था। यह भरोसा अकारण भी न था। उन्होंने अपने बारे में बड़े विश्वास के साथ कहा था— "मैं एक ऐसे धूमकेतु की तरह हूँ जो कभी लौट कर नहीं गया।"

सचमुच, उनकी उपलब्धियाँ अविस्मरणीय हैं। उन्हें मिटाया नहीं जा सकता। वे हमारी प्रेरणा के स्रोत हैं। हम उनके कृतज्ञ हैं। □□

विज्ञान परिषद् से सम्पर्क

वीरेन्द्र नारायण सिंह

सन् 1936 की बात है। मैं बी० एस-सी० का छात्र था। डॉ० सत्यप्रकाश रसायन विज्ञान के प्रवक्ता थे। डॉ० गोरख प्रसाद गणित विभाग के रीडर थे। दोनों ही विद्वान हिन्दी को विशेष महत्व देते थे और उन्होंने विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में अनेक पुस्तकें लिखीं। हिन्दी में रुचि होने के कारण मैं भी उनके निकट संपर्क में आया। इससे मुझको हिन्दी में लेख लिखने का प्रोत्साहन मिला। मेरे कुछ लेख 'विज्ञान' में प्रकाशित हुए। इस बीच मैंने 1940 में एम० एस-सी० उत्तीर्ण करके रसायन विज्ञान में शोध छात्र के रूप में विश्वविद्यालय से स्कालरशिप प्राप्त की। एक दिन प्रयोगशाला में डॉ० सत्यप्रकाश जी ने मुझे बताया कि मैं डॉ० गोरख प्रसाद जी से मिल लूँ। वे मुझे 'विज्ञान' के सम्पादन का भार देना चाहते थे। मैं उनसे मिला। उन दिनों वे 'विज्ञान' के प्रधान संपादक थे। उन्होंने कहा कि 'विज्ञान' के लिये लेखन सामग्री उचित रूप से उपलब्ध नहीं हो रही है। मुझको उसके लिये प्रयत्न करना होगा। विज्ञान परिषद् में धनाभाव के कारण वेतन देना सम्भव नहीं है। किन्तु परिषद् द्वारा स्वीकृत धनराशि पारिश्रमिक के रूप में मुझको दी जावेगी। मैंने स्वीकार कर लिया। उन्होंने लेख लिखने, सामग्री एकत्रित करने आदि का मार्ग दर्शन किया।

मैं शोधपत्र प्रस्तुत करने के साथ ही 'विज्ञान' के प्रकाशन हेतु लेख आदि लिखकर प्रति माह डॉ० गोरख प्रसाद जी को दे देता था। इस बीच 1942 में मुझे उत्तर प्रदेश के 'फल संरक्षण विभाग' में लखनऊ में नियुक्ति मिली। मैंने इस विषय पर विशेष रूप से अध्ययन किया था। और एम० एस-सी० के लिये शोधपत्र भी प्रस्तुत किया था। डॉ० गोरख प्रसाद ने एक अमेरिकी पुस्तक के आधार पर 'फल संरक्षण' पुस्तक लिखी थी। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि उस पुस्तक को मैं अपने निजी प्रयोगों एवं अनुभवों के आधार पर पुनः लिखूँ। उसका प्रथम संस्करण समाप्त हो चुका था। मैंने पुस्तक को पुनः लिखा और विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित हुई। 'फल संरक्षण' के तीन संस्करण निकले। 'उपयोगी नुसखे' और कुछ दूसरी विशेष पुस्तकों के प्रकाशन में भी सहयोग दिया। सरकारी पद पर कार्य करते हुए भी कई मास तक 'विज्ञान' के लिये लेखन सामग्री भेजता रहा। विज्ञान परिषद् का आजीवन सदस्य होने के कारण आज भी 'विज्ञान' मेरे पास आता है और मैं उसे रुचि से पढ़ता हूँ। □□

पूर्व डिप्टी कमिश्नर, (बिक्रीकर) 27 केसरगंज रोड, मेरठ

फार्म/4 (नियम 8 देखिये)

1. प्रकाशन स्थान	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद 211002
2. प्रकाशन अवधि	मासिक, प्रत्येक मास का 15 दिनांक
3. मुद्रक का नाम	श्री सरयू प्रसाद पाण्डेय
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हाँ
पता	नागरी प्रेस, 186 अलोपी बाग, इलाहाबाद
4. प्रकाशक का नाम	डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्त
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हाँ
पता	अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
5. सम्पादक का नाम	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हाँ
पता	वनस्पति विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद 211002

मैं, पूर्णचन्द्र गुप्त एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 1-3-89

पूर्णचन्द्र गुप्त
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

भारत तिगुना-चौगुना अनाज पैदा कर सकता है

डॉ० ई० बोजायस्की

भूटान और भारत में विश्व खाद्य और कृषि संगठन (एफ० ए० ओ०) के प्रतिनिधि डॉ० बोजायस्की लगभग साढ़े चार साल का कार्यकाल पूरा करके इस महीने से अवकाश ग्रहण कर रहे हैं। डॉ० बोजायस्की ने 1968 से शुरू करके लगभग 20 वर्ष तक संसार के अनेक देशों में एफ० ए० ओ० के कृषि कार्यक्रम चलाये हैं, लेकिन भारत में बिताये वर्षों को भी वे अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि मानते हैं। बेलग्रेड विश्वविद्यालय से कृषि अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट से सम्मानित डॉ० बोजायस्की वापिस अपने देश यूगोस्लाविया जा रहे हैं। भारतीय कृषि के बारे में उनका चिन्तन बहुतों की आँखें खोलेगा। प्रस्तुत है "खेती" मासिक पत्रिका के प्रधान संपादक श्री रमेश दत्त शर्मा से उनकी भेंट वार्ता।

—संपादक

प्रश्न—डॉ० बोजायस्की! भारत में अपने कार्यकाल में एफ० ए० ओ० के सहयोग से चलायी जा रही किस योजना से आपको सबसे ज्यादा संतोष मिला?

उत्तर—देखिये, यह बताना तो आसान नहीं है कि एफ० ए० ओ० की किस योजना से ज़्यादा संतोष मिला। क्योंकि अनेक क्षेत्रों में काम चल रहा है और तुलना केवल वहीं की जा सकती है, जहाँ एक ही विषय में कोई दो योजनाएँ चल रही हों। फिर भी मुझे लगता है कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के सहयोग से स्नातकोत्तर प्रशिक्षण का एक कार्यक्रम सभी कृषि विश्वविद्यालयों में चलाया गया था। इसके पहले चरण में 12 कृषि विश्वविद्यालयों ने भाग लिया और उसकी सफलता से प्रभावित होकर दूसरे चरण में फिर से 12 कृषि विश्वविद्यालय शामिल किये गये। इस कार्यक्रम में 80 भारतीय वैज्ञानिक अपने-अपने विषयों में उच्च अध्ययन के लिए विदेशों में भेजे गये और बाहर से 270 सलाहकार बुलाये गये। इस कार्यक्रम का सबसे उज्जवल पक्ष यह था कि इसे बड़े ही सुचारु रूप से चलाया गया। चाहे उच्च शिक्षा के लिए भारतीय वैज्ञानिकों का चुनाव हो या बाहर से सलाहकार बुलाने का, हमेशा, सही आदमी चुने गये। जिन-जिन विषयों में देश में उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों का अभाव था और देश की समस्याओं के अनुसार जिन विषयों में ज्ञान का स्तर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक ले जाना जरूरी था, उन्हीं में यह योजना चलायी गयी। न कहीं कोई सिफारिश चली न कोई हेराफेरी। लाल फीताशाही ने भी इसमें कहीं कोई दखल नहीं दिया। योजना लागू करने के लिए जो सचिवालय बनाया गया, उसमें एफ० ए० ओ० के भी लोग थे और परिषद् के भी। इस तरह हर समस्या का तुरन्त निदान किया गया और जो फैसला हुआ, उसे तुरन्त लागू किया गया। यही वजह है कि आज लगभग ग्यारह विषयों में पूरे देश में उच्च शिक्षा के स्तरीय केन्द्र चल रहे हैं।

प्रश्न—आपके समय में मछली-पालन के क्षेत्र में विशेष कदम उठाये गये। उनमें से किस को आप उल्लेखनीय समझते हैं?

उत्तर—मछली पालन की दिशा में समुद्र से मछली पकड़ने के लिए फेरो-सीमेन्ट से बनी नौकाओं का प्रचलन मेरी समझ से बहुत ही उपयोगी नई बात शुरू की गयी। कोचीन में इस तरह के तीन जहाज़ बनाये गये हैं। इनमें लकड़ी का इस्तेमाल बिल्कुल नहीं किया गया और लोहे तथा सीमेन्ट से ही पूरा ढाँचा तैयार किया गया। एक जहाज़ बनाने पर करीब 80 लाख रुपये की लागत आयी है। इन तीनों जहाज़ों

को बनाने में प्रशिक्षण देने के बाद यहीं के मिस्त्री और इंजीनियर लगाये गये। इस तरह से 80 लोग प्रशिक्षित किये गये। इस प्रकार की मछलीमार नौकाओं का प्रचलन पहले-पहल कनाडा में हुआ था और विकासशील देशों में भारत इस तकनीक को अपनाने वाला अग्रणी देश बन गया है। 14 मीटर लम्बे इस मछलीमार जहाज़ में रेडार सहित रेडियो और अन्य आधुनिकतम उपकरण लगाये गये हैं। 14 आदमी दो-तीन हफ्ते तक दूर समुद्र में जाकर मछलियाँ पकड़ सकते हैं और मछलियों का सर्वेक्षण तथा अन्य पक्षों पर अनुसंधान भी कर सकते हैं। इस तरह की एक नौका गुजरात, एक तमिलनाडु और एक केरल में कार्यरत है और आगे इस तरह की और भी नौकाएँ बनायी जाएँगी।

प्रश्न—आपने भारत में कृषि अनुसंधान के ढाँचे को नज़दीक से देखा है। इसकी क्या खूबियाँ और क्या कमियाँ आपको दिखायी दीं?

उत्तर—आप तो जानते ही हैं कि हम जहाँ भी जाते हैं हमारे सामने उज्जवल पक्ष ही रखा जाता है। इसलिए हमें दूसरा पहलू समझने के लिए तीसरी आँख खुली रखनी पड़ती है। जहाँ तक बुनियादी ढाँचे का सवाल है, भारत के पास सभी फसलों पर, पशुपालन और मछलीपालन पर ऐसा कोई भी विषय नहीं है, जिस पर कहीं न कहीं, कोई न कोई अनुसंधान संस्थान न हो। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् और कृषि विश्वविद्यालयों के बीच बहुत-अच्छा ताल-मेल है। वैज्ञानिकों में काम करने की लगन है, सूझ-बूझ है और बहुत से वैज्ञानिक बड़ी निष्ठा से काम कर रहे हैं। लेकिन एक बात मुझे हमेशा खटकती रही कि उनकी मेहनत का फल जिन किसानों तक पहुँचना चाहिए, उन्हें या तो बड़ी देर से पहुँचता है या बिलकुल नहीं पहुँचता। मुझे यह देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि वैज्ञानिकों का काम कई तकनीक को खोजने के बाद समाप्त हो जाता है और उसके आधार पर पैदावार बढ़ाने या नये उद्योग खड़े करने या नई चीजें बनाने का काम किसी दूसरे विभाग की जिम्मेदारी बनायी गयी है। मैं तो यह समझता हूँ कि करनाल में डेरी का इतना अच्छा संस्थान काम कर रहा है तो उसकी खोजों का फायदा डेरी व्यवसाय में तो लगता दिखना चाहिए। बल्कि खुद यही संस्थान इतनी ज़्यादा तादाद में संकर नस्ल के पशु तैयार करें, घी-मक्खन और पनीर तैयार करें तथा दूसरे डेरी उत्पाद बनायें, कि उनकी बिक्री से धीरे-धीरे करके पूरे संस्थान का खर्चा निकलने लगे और सरकारी अनुदान पर आश्रित रहना बन्द हो जाय। कृषि विश्वविद्यालय तो इसी आधार पर बनाये ही गये थे कि उनको जितनी ज़मीन दी गयी है, उससे वे इतनी पैदावार कर लिया करेंगे कि उन्हें अनुदान की कोई जरूरत न पड़े। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, इसकी कोई परवाह नहीं की जाती। इस ढाँचे में यह सबसे बड़ी कमी है। जहाँ इस कमी को दूर किया गया है, वहाँ फायदा हुआ है।

प्रश्न—आपको क्या कहीं ऐसा लगा कि अनुसंधान और विकास के बीच की दीवार किसी संस्थान ने गिरायी है और इस क्षेत्र में भी कोई सफलता प्राप्त की है?

उत्तर—कई जगहों पर मैंने यह देखा कि वैज्ञानिक इस जिम्मेदारी को मंत्रालय या किसी विभाग पर टालने की बजाय खुद निभा रहे हैं और बड़ी अच्छी तरह निभा रहे हैं। उदाहरण के लिए कोचीन में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के केन्द्रीय समुद्री मछली अनुसंधान संस्थान में झींगा का बीज तैयार करने और उसको पालने की तकनीक विकसित की गयी। हर पहलू से तकनीक को जाँचने के बाद उन्होंने सोचा कि क्यों न इसका फायदा मछुआरों को पहुँचाया जाय। कोचीन में सामने ही एक टापू है जहाँ पर 16 हज़ार मछुआरे संस्थान की इस तकनीक का फायदा उठाकर झींगा पाल रहे हैं और हर परिवार के सारे लोग स्त्री, पुरुष और बच्चे इस धन्धे में लगे हुए हैं, क्योंकि एक किलो झींगा करीब 80 रुपये का बिकता है। झींगा निर्यात करने वाली संस्थाओं का सारा माल खरीदती है और उस झींगे को साफ करके, मसाला लगाकर, डिब्बा बन्द करके यूरोप के देशों

को 80 डालर प्रति किलो में बेचती है। यह एक ऐसा उदाहरण है जहाँ विकसित की गयी तकनीक को फौरन लागू करके समाज को आर्थिक समृद्धि में बदला गया। अगर ऐसा सभी नई तकनीकों को लेकर किया जा सके तो फिर कहीं न गरीबी रहे और न गरीबी की रेखा।

प्रश्न—भारत अपनी पैदवार कहाँ तक बढ़ा सकता है? इस बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तर—इस बारे में मैंने एक बार पहले भी एक विचारगोष्ठी में यह कहा था कि भारत के पास कुदरती नियामतों का बहुत बड़ा खज़ाना है। भरपूर धूप खिलती है, जिसकी ऊर्जा को पीकर ही तमाम तरह के खाद्य पदार्थ हमें उपलब्ध होते हैं। सन् 1978 के सूखे को भुला दें तो पानी भी भरपूर है, उपजाऊ मिट्टी की भी कमी नहीं है। इन तीनों अपादानों का सही ढँग से इस्तेमाल किया जाय तो इसी सदी के मोड़ पर आपके विशेषज्ञ 22-23 करोड़ टन अनाज की बात करते हैं, लेकिन मेरा कहना है कि भारत 45 करोड़ टन तक अनाज पैदा कर सकता है। 60 प्रतिशत खेती वाली ज़मीन ऐसी है जिसमें खाद्यान्न वाली दो फसलें तो जोत ली ही जा सकती हैं और सब्ज़ियों की तो चार तक फसलें ली जा सकती हैं। जहाँ एक हेक्टेयर में अनाज तीन-चार टन ही पैदा किया जा सकता है, वहीं सब्ज़ियाँ 40 से 60 टन तक प्रतिहेक्टेयर पैदा की जा सकती हैं। सब्ज़ियों को आधुनिक तरीकों से संसाधित करके और डिब्बा बन्द करके निर्यात किया जाय तो हर साल करोड़ों डालर कमाये जा सकते हैं। मुझे बड़ी खुशी है कि खाद्य संसाधन का मंत्रालय अलग से बन गया है। फिलहाल बड़े शहरों के आस-पास के किसान ही सब्ज़ियाँ उगाकर पैसा कमा रहे हैं। जब दूर-जराज़ के इलाकों में सब्ज़ियों की डिब्बा बंदी की की फैक्ट्ररियाँ खुल जाएँगी तो किसान के खेत से ही सब्ज़ियाँ उठाकर वहीं हाथों-हाथ उसको पूरा पैसा देंगी, हर जगह सब्ज़ियों की भी सहकारी सीमिगियाँ बन गईं तो पूरे साल भूमिहीनों को भी रोज़गार मिलता रहेगा और खेती पर आमदनी कम होने का जो इल्जाम लगाया जा रहा है, वह भी मिट जायेगा। रूस जैसे देश हर साल दो करोड़ टन तक डिब्बा बंद सब्ज़ियाँ और खाद्य पदार्थ खरीदने के लिए तैयार हैं। यूगोस्लाविया और बल्गारिया में तो 8-8, 10-10 किस्म की सब्ज़ियाँ डिब्बा बंद मिलती हैं कि बस गरम करो और खा लो। न सब्ज़ीमण्डी दौड़ने का झंझट और न काटने और पकाने की मुसीबत। दुनिया की इन बदलती हुई ज़रूरतों के हिसाब से भारतीय कृषि को नई दिशा देनी होगी।

प्रश्न—डॉक्टर साहब! अब आप अवकाश ग्रहण कर रहे हैं तो अपना समय बिताने के लिए आपने क्या सोचा है?

उत्तर—मैंने अपने अवकाश के समय को आर्थिक दृष्टि से और अपने देश के विकास की दृष्टि से उपयोगी कार्य में लगाने की योजना बना ली है। बल्कि यहाँ से आते ही मैं इसे लागू करना शुरू कर दूँगा। समुद्र के पास मैंने सोचा है कि झींगा पालने के पक्के हौज़ बनाऊँगा। ऐसे चार हौज़ बनाये जाएँगे। समुद्र में से पाइप के जरिये पम्प लगाकर इन हौज़ों में पानी भरा जायेगा और उसमें झींगे पालूँगा। मेरे देश यूगोस्लाविया में पिछले साल 260 लाख पर्यटक आये थे। आपके यहाँ तो 10 लाख पर ही बड़ा शोर मच जाता है। मेरी समझ में भारत में हर साल कम से कम 20 करोड़ पर्यटक आने चाहिए। खैर, तो इन पर्यटकों के लिए अपने देश में जो करीब 75 होटल खुले हुए हैं, उनको झींगा पालना सिखाऊँगा। अक्टूबर में ये होटल करीब-करीब बंद हो जाते हैं, क्योंकि ठंड शुरू हो जाती है। उन दिनों यहाँ के नवयुवक कार्यकर्ताओं को अपने सेंटर पर बुलाकर झींगा पालने की तकनीक सिखाऊँगा, जिसमें झींगे का बीज तैयार करने से लेकर उसको बड़ा करने तक की सारी बातें शामिल होंगी। सच पूछिए तो इसकी प्रेरणा मुझे कोचीन में आपके संस्थान को देखकर ही मिली है। अगले दो साल में ही मेरा विचार है कि यूगोस्लाविया का हर होटल इस तकनीक में प्रवीणता हासिल करके अपने यहाँ ठहरने वाले पर्यटकों को एक नया आकर्षण प्रदान कर सकेगा कि अपना झींगा हौज़ में से ताज़ा पकड़िये, भूनिये और खाइए। ☐☐

प्रस्तुति : **रमेशदत्त शर्मा**
(इस्वा फीचर्स)

क्वांटम यांत्रिकी तथा समन्वयी आबन्ध

डॉ० महेन्द्र सिंह वर्मा

[गतांक से आगे]

आण्विक कक्षक सिद्धान्त

'1935 में मैंने एक पत्र लिखा था जिसमें बतलाया था कि कैसे क्रिस्टलीय प्रभाव थ्यौरी, मुलीकन की विधि का उपयोग कर सिद्धान्त रूप में उस थ्यौरी में ले जाई जा सकती है जिसे आज हम 'लिगैण्ड क्षेत्र थ्यौरी' कहते हैं, जिसमें इलेक्ट्रॉन अनुचुम्बकीय कैटायन से ऋणायन पर घूमने के लिए स्वतन्त्र होते हैं और इसका उल्टा भी होता है ताकि आरम्भिक सहसंयोजकता हो।'

फॉन फ्लेक के ये शब्द क्रिस्टल क्षेत्र प्रारूप के आण्विक कक्षक सिद्धान्त में विलय की तरफ इशारा करते हैं। इस थ्यौरी में धातु और लिगैण्डों के समान सममित के तरंग फलनों को मिलाया जाता है। जैसे अष्टफलकीय संकुल बनाने के लिए छः लिगैण्डों के σ—आबन्ध बनाने के लिए धातु के 4 s, 4 p और $3dz^2$ तथा $3dx^2y^2$ कक्षकों का उपयोग किया जाता है। इनके संयोजन से a_1g,eg तथा t_1u आबन्धन कक्षक बनते हैं, t_2g धातु अनाबन्धी कक्षक होते हैं क्योंकि इनकी सममिति और प्रकृति σ-आबन्ध बनाने के लिए उपयुक्त नहीं होती। हाँ, π—आबन्ध बनाने में ये अवश्य भाग लेते हैं। इसके अतिरिक्त eg*, a_1g^* तथा t_1^*u प्रति-आबन्धन कक्षक बनते हैं। लिगैण्डों के 12 σ—इलेक्ट्रॉन a_1g, eg तथा t_1u आबन्धन कक्षकों में रहते हैं। धातु के इलेक्ट्रॉनों को t_2g और अनाबंधी प्रतिआबन्धन कक्षक e*g में रखा जा सकता है। $a_1{}^*g$ तथा t_1^*u उच्चतर ऊर्जा के होते हैं और इसीलिए रिक्त होते हैं। eg* और t_2g के मध्य का अन्तर प्राचल 10 dq के बराबर होता है जो यह निर्णय करने में मदद करता है कि 4 या उससे अधिक इलेक्ट्रॉन होने पर संकुल 'उच्च चक्रण' का होगा या 'निम्न चक्रण' का। उच्च चक्रण के केस में कक्षकीय ऊर्जा नष्ट होती है, परन्तु 'विनिमय ऊर्जा' प्राप्त होती है क्योंकि इलेक्ट्रॉनों के चक्रण समान्तर होते हैं। निम्न चक्रण के केस में कक्षकीय ऊर्जा का लाभ होता है। परन्तु 'विनियम ऊर्जा' की हानि होती है क्योंकि इलेक्ट्रॉनों को युग्मन के लिए मजबूर किया जाता है। इसलिए अयुग्मित चक्रणों की संख्या को तय करने वाला भिन्न-भिन्न ऊर्जाओं का सन्तुलन होता है न कि सहसंयोजी या आयनीय आबन्धन। वास्तव में हम क्रिस्टल क्षेत्र मॉडल से पूर्णतः सह संयोजी आबन्धन में जा सकते हैं, यदि हम α, β तथा γ का मान, जो क्रिस्टल क्षेत्र थ्यौरी में शून्य होता है, को $\sqrt{1/2}$ मान लें। फॉन फ्लेक निष्कर्ष निकालते हैं कि क्रिस्टल क्षेत्र मॉडल में निकाली गई चुम्बकीय सुग्राहिता

'प्रयोगात्मक रूप से उतनी ही सार्थक आण्विक कक्षक विधि में होती है जितनी क्रिस्टल क्षेत्र मॉडल में इसके अतिरिक्त कि क्रिस्टलीय विभव की मात्रा को सीधे-सीधे न लिया जाय। कुछ वोल्टों का विपाटन हुण्ड के अनुनाद पूर्णांक की वजह से हो सकता है, क्रिस्टलीय विभव की वजह से नहीं, किन्तु यह रसेल-सौण्डर्स की संरचना के तुलनीय होता है, इसको फिर तर्कसंगत बनाते हुए कि कभी निम्न चक्रण व्यवहार होगा तथा कभी उच्च चक्रण।'

इस शोधपत्र की सुन्दरता की प्रशंसा के अतिरिक्त एक और चीज है जो पाठक को आश्चर्य में डाल देती है। फॉन फ्लेक का पत्र 'जर्नल ऑव केमिकल फिज़िक्स' को 7 अक्टूबर 1935 को प्राप्त हुआ था। यह 1935 के दिसम्बर के अंक में प्रकाशित कर दिया गया।□□

[अगले अंक में जारी]

रीडर, रसायन अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

बकरा : पर्यावरण की बलि-वेदी पर

सुधीरेन्द्र शर्मा

पर्यावरणशास्त्री यदि किसी एक जानवर के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं तो वह है बेचारा बकरा। हालांकि बकरे के विरुद्ध कोई भारी भरकम आन्दोलन तो फिलहाल नहीं छिड़ा है, मगर लगातार सूखा इसी तरह पड़ता रहा तो आखिर बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी। यदि ऐसा हुआ तो गाँधी जी की बकरी की शामत आयी ही समझिए।

किन्तु, क्या हम पूरे दावे के साथ यह कह सकते हैं कि बकरा ही हमारी वानस्पतिक सम्पदा को आहार बनाकर हरी-भरी धरती को बंजर कर रहा है?

घरेलू पशुओं में कुत्ते के बाद शायद बकरे की प्रजाति ही ऐसी है जिसे पालतू बनाया जा सकता है। बकरे की बलि का जिक्र 'बाइबल' में भी आया है। लगभग दस हजार वर्ष पूर्व अरब देश के पाषाण युगीन इलाकों में भी बकरों के अवशेष निरंतर प्राप्त होते रहे हैं। भारतीय उप-महाद्वीप में भी होशंगाबाद ज़िले के आदमाढ़ क्षेत्र के पत्थर युग के खण्डहर भी बकरे तथा अन्य पालतू पशुओं का इतिहास बताते हैं। बाद आदम के उस ज़माने से आज तक बकरे मियाँ मशहूर हैं और आबाद हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संस्थान के सन् 1983 के आँकड़े दर्शाते हैं कि इस समय 47 करोड़ 7 लाख बकरे विश्व भर में व्याप्त हैं, सात करोड़ अस्सी लाख बकरे तो अकेले भारत में ही पाए जाते हैं यानि कि विश्व की बकरा आबादी का 16.4 प्रतिशत।

यद्यपि बकरे को अधिकांशतः उसके स्वादिष्ट मांस के लिए रखते हैं। लेकिन ऊन प्राप्ति हेतु भी इसे पाला जाता है। दोनों ही मामलों में बकरा लाभकारी सिद्ध हुआ है। असल में, ज़्यादातर विकासशील देशों के गरीब किसान बकरी-पालन पर इसीलिए ज़ोर देते हैं ताकि उनकी सन्तानों को बेचकर वे आड़े वक्त में दो रोटी जुटा सकें। मुद्दे की बात तो यह है कि बकरे का लालन-पालन अत्यन्त सरल है क्योंकि यह किसी भी तरह की घास-पात खाकर जीवन निर्वाह कर लेता है।

बकरा, खानाबदोशों व घुमक्कड़ चरवाहों का चहेता इसलिए बना क्योंकि उसमें नाना प्रकार के आहार ग्रहण करने की क्षमता रही। विषम परि-स्थितियों में जीवनयापन के कारण ही शायद उसमें यह क्षमता उत्पन्न हुई। बकरे की प्रजनन की बढ़ी हुई दर भी कठिन इलाकों में बीतने वाली उसकी जिन्दगी से एक समझौता है। नवजात शावकों के मरने के डर से ही वे ज़्यादा से ज़्यादा बच्चे पैदा करते हैं।

दुनिया की एक-तिहाई ज़मीन या तो पूरी तरह सूखी या अर्धसूखी। आप ही सोचिए कि ऐसी शुष्क भूमि पर सिवाए बकरे के और कौन ज़िन्दा रह सकता है।

भारत के 3 लाख 20 हज़ार वर्ग मील लम्बे-चौड़े गर्म रेगिस्तानी इलाके का 62 प्रतिशत राजस्थान, 19 प्रतिशत गुजरात, 10 प्रतिशत आन्ध्र-प्रदेश व कर्नाटक तथा 9 प्रतिशत भाग पंजाब व हरियाण में फैला हुआ है। इसके अलावा जम्मू-कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में 70,300 वर्ग मील का सर्दीला रेगिस्तान है। इन सभी बंजर इलाकों का मुख्य पशु है बकरा।

भारतीय रेगिस्तान की लघु उत्पादकता के बावजूद यहाँ जानवरों की काफी घनी आबादी है जिसमें खास-कर बकरे हैं। बकरों के आर्थिक लाभ से तो सभी अवगत हैं। लेकिन सन् 1930 से यह सदैव चर्चा का विषय रहा है कि हरे-भरे चरागाहों को रेगिस्तान बनाने में बकरे जी का कितना बड़ा हाथ है।

बकरे के विपक्षियों का मत है कि बकरा जो भी सामने देखता है उसे चर जाता है और उपजाऊ धरती को बंजर बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ता। पक्ष के लोगों की दलील यह है कि अपने मांस के कारण बकरा अत्यन्त लाभदायक प्राणी है। इन्हीं दलीलों के आधार पर सरकारों ने बकरी-पालन के सम्बन्ध में नीतियाँ निर्धारित की हैं। कुछ सरकारें पक्ष में हैं तो कुछ विपक्ष में। भारतीय सरकार ने तो राष्ट्रीय कृषि आयोग की विपक्षी दलील के आधार पर बकरे की बलि चढ़ाने का फैसला कर लिया है।

परन्तु, रेगिस्तानी इलाकों के योजनाकारों ने बकरी-पालन का ही पक्ष लिया है तथा रेगिस्तानीकरण के अंतिम चरण की प्रक्रिया में बकरे की भूमिका का दोबारा अध्ययन करना चाहा है, उनका मानना है कि बकरा बेकार नहीं है और पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में बकरे का अस्तित्व कुछ न कुछ अहमियत अवश्य रखता है। रेगिस्तान बनाने के लिए बकरा इसलिए बदनाम हुआ क्योंकि रेगिस्तानीकरण के अंतिम चरण में वह वहीं विद्यमान था। यही नहीं, जब रेगिस्तान विशेषज्ञ वहाँ पहुँचे तो उन्हें बकरे मियां ज़ोर-शोर से बची पत्तियाँ चबाते दिखे। इसी कारण उनके सामने बकरे को गुनहगार ठहराने के सिवाय कोई चारा नहीं बचा।

समस्या की गहराई में जाने से पता चलता है कि इसकी जड़ तो पशुओं का बिना किसी नियंत्रण के चरना तथा "बंजारी" खेती है। बंजारी खेती में न तो फसल को बार-बार बदला जाता है और न ही सैन्द्रीय खाद द्वारा भूमि की उत्पादन-शक्ति को बढ़ाया जाता है। नतीजा यह होता है कि भूमि की ऊपरी वानस्पतिक परत उखड़ती जाती है जिससे पहले भू-स्खलन और अन्त में रेगिस्तान का जन्म होता है। हर तरह के वातावरण के आदी होने के कारण बकरे ऐसे इलाकों में भी लम्बे अरसे तक टिके रह पाते हैं। अतः सारा दोष बकरे के सिर मढ़ना एक "भ्रान्तिमूलक" धारणा के अलावा कुछ नहीं है। प्राचीन नाविकों के लिए तो बकरे बहुत लाभप्रद सिद्ध हुए। विश्व के निरंतर बढ़ते जल मार्ग में आने वाले मानव-रहित द्वीपों पर ये नाविक बकरे छोड़ जाते थे। हवाई द्वीप के निवासी बकरों की खाल का निर्यात इसलिए कर सके क्योंकि कप्तान कुक सन् 1778 में वहाँ एक बकरा व एक बकरी छोड़ गए थे।

इसी तरह सन् 1513 के लगभग पुर्तगालियों ने संत हेलेना द्वीप पर बकरियों का एक छोटा परिवार छोड़ा, जो थोड़े ही समय में द्वीप की हरियाली चट कर गये। इस विवाद में बकरे का पूर्णतया हाथ लगता है।

परन्तु तह तक जाने के लिए बकरे की आदतों से परिचय आवश्यक है। यह माना गया है कि यदि बकरियों, भेड़ों व मवेशियों को साथ-साथ चराया जाए तो सर्वोत्तम नतीजे प्राप्त होंगे। यह इसलिए क्योंकि बकरियाँ पत्ते खाना पसन्द करती हैं, भेड़ों को जड़ी-बूटियों से प्रेम है और मवेशियों को घास भाती है। इस पद्धति से धरती की उपजाऊ शक्ति कायम रहती है।

आस्ट्रलिया में लोगों का मानना है कि बकरे हानिकारक खर-पतवार चर जाते हैं ताकि हरी घास उग सके। इसके अलावा बकरे किसी एक प्रकार की वनस्पति का हनन नहीं करते हैं क्योंकि वे हर प्रकार की वनस्पति खा जाते हैं। देखा जाए तो बकरा अन्य पशुओं की अपेक्षा पर्यावरण का संरक्षण करता है। यदि कमी है तो केवल सही व्यवस्था तथा बकरी पालन की उचित पद्धतियों के विकास की। □□

(इस्वा फीचर्स)

स्वैच्छिक संस्थाएँ वैज्ञानिक मनोवृत्ति का प्रसार कर रही हैं

रमेश दत्त शर्मा

आज यह सोचकर आश्चर्य होता है कि हिन्दी में विज्ञान साहित्य की श्रीवृद्धि और वैज्ञानिक मनोवृत्ति के प्रसार के लिए आज़ादी मिलने से पहले कुल चार लोगों ने मिलकर एक संस्था खड़ी करने में पहल की थी। सन् 1913 में 10 मार्च को इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कालेज के अध्यापक महामहोपाध्याय **पं० गंगानाथ झा, प्रो० हमीदउद्दीन, बाबू राम दास गौड़ और पं० सालिगराम भार्गव,** इन चार जनों ने ही विज्ञान परिषद् की नींव रखी थी। पहले इसका नाम "वर्नाक्यूलर साइंटीफिक लिटरेचर सोसायटी" रखा गया था। बाद में बहस हुई कि काम तो देशी भाषा में करना चाहते हैं और नाम हमने अंग्रेज़ी में रखा है। पं० गंगानाथ झा ने "विज्ञान परिषद्" और हमीद-उद्दीन साहब ने "अंजुमन सलाउ व फनून" नाम सुझाया। बाद में उन्होंने भी "विज्ञान परिषद्" नाम स्वीकार कर लिया।

उस समय परिषद् के दो उद्देश्य रखे गये थे— भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की रचना और प्रकाशन और दूसरा उद्देश्य था देश में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रसार। अप्रैल 1915 में इस संस्थान ने 'विज्ञान' नाम से मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसके संपादकों में हिन्दी के मूर्धन्य कवि श्रीधर पाठक जैसे साहित्यकार भी थे और डॉ० गोरख प्रसाद और डॉ० सत्य प्रकाश जैसे वैज्ञानिक भी।

इस पत्रिका ने बहुत-से विज्ञान लेखक तैयार किये। सन् 1938 में जब विज्ञान परिषद् की रजत जयंती मनाई गई तो 40 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं और अब तक लगभग 70 पुस्तकें परिषद् ने छापी हैं। इन पुस्तकों में "मनोरंजन रसायन", "सूर्य सिद्धान्त", "प्रकाश रसायन", "रसायन इतिहास", "मिट्टी के बर्तन", "उपयोगी नुस्खे", "वायुमंडल", "कलम पैबन्द", "जिल्द साजी", "फोटोग्राफी", "मधुमक्खी पालन", "शिशु पालन", "साँपों की दुनियाँ", "घरेलू डॉक्टर", "सरल विज्ञान सागर", "भारतीय कृषि का विकास", "रेल इंजन परिचय तथा संचालन" वगैरह विविध विषय शामिल किये गये।

प्रोफेसर सत्यप्रकाश जी विज्ञान परिषद् के प्राण रहे हैं। उनके प्रयासों से "अनुसंधान पत्रिका" का प्रकाशन हुआ। यह पत्रिका न होती तो हम हिन्दी के विज्ञान लेखक इस शर्म से कैसे बचते कि हिन्दी में कोई साइण्टीफिक जर्नल नहीं है।

विज्ञान परिषद् ने हिन्दी में विज्ञान लेखकों की कई पीढ़ियाँ तैयार कीं। हालांकि यह सच है कि इसकी गतिविधियाँ प्रयाग तक सीमित रहीं और अधिकतर लेखक इलाहाबाद-बनारस में ही पनपे। लेकिन **डॉ रामेश बेदी** जैसे दूरस्थ लोग भी विज्ञान परिषद् से प्रेरित होते रहे। इन पंक्तियों के लेखक ने जब कोई 25 वर्ष पहले विज्ञान लेखन के क्षेत्र में पदार्पण किया तो सितम्बर 1962 के "विज्ञान" में "पादप रोग विज्ञान का इतिहास" और जुलाई 1963 के अंक में "जहाँ जीवन अमोनिया पर आधारित है" रचनाएँ प्रकाशित हुईं। इन रचनाओं के प्रकाशन के साथ ही **डॉ० सत्यप्रकाश जी और डॉ० शियगोपाल मिश्र जी** का आशीर्वाद और स्नेह मिला, जो बराबर मेरे विज्ञान लेखन को सींचता रहा। सन् 1980 में "प्रकृति से छेड़छाड़ क्यों" रचना के लिए मुझे विज्ञान परिषद् ने 'डॉ० गोरखप्रसाद पुरस्कार' से सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त विज्ञान लेखकों के अभिनंदन-क्रम में सन् 1983 में मुझे भी यह गौरव प्रदान

प्रधान सम्पादक, "खेती", "फलफूल", "कृषि चयनिका", भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, कृषि अनुसंधान भवन, पूसा, नई दिल्ली–12

किया। स्पष्ट है कि जब आपके काम के लिए कोई पीठ ठोंकता रहे, तो काम करने का उत्साह बना रहता है। दीदावर के इंतजार में हज़ारों वर्ष गुजारने पड़ें तो चमन उजड़ेगा ही। विज्ञान परिषद् ने इन 75 वर्षों में हिन्दी में विज्ञान लेखन के चमन को उजड़ने नहीं दिया, नहीं तो जाने क्या कुछ उजड़ चुका है इस देश में।

यह हमारा सौभाग्य है कि देश के विभिन्न भागों में इस प्रकार की कई संस्थाएँ विभिन्न भाषाओं में विज्ञान के प्रचार-प्रसार का कार्य कर रही हैं। मराठी विज्ञान परिषद्, केरल शास्त्र साहित्य परिषद् और कर्नाटक विज्ञान साहित्य परिषद् जैसी संस्थाओं के अतिरिक्त कलकत्ता में बंगीय विज्ञान परिषद् शायद प्रयाग की विज्ञान परिषद् जितनी ही पुरानी संस्था है। प्रो० प्रफुल्ल चन्द्र राय के ज़माने से ही यह बांग्ला में विज्ञान साहित्य के सृजन में लगी है और "ज्ञान-ओ-विज्ञान" पत्रिका प्रकाशित कर रही है।

हिन्दी भाषी क्षेत्र में से मध्यप्रदेश में डॉ० अनिल सद्गोपाल और उनकी पत्नी श्रीमती मीरा सद्गोपाल तथा हृदयकांत आदि अनेक जीवनदानी साथियों के प्रयासों से भोपाल के पास होशंगाबाद में "किशोर भारती" स्कूली बच्चों में विज्ञान शिक्षा के सुधार के लिये जो कुछ कर रही है; वह किसी से छुपा नहीं हैं। गाँव-देहात के साधनविहीन स्कूलों में उपलब्ध घरेलू चीजों से ही विज्ञान की बुनियादी बातें सिखाने के प्रयोगों के अलावा इस संस्था ने सरल भाषा में छठी से दसवीं तक की विज्ञान सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकें तैयार की हैं। पता नहीं क्यों ये किताबें पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र में और अन्य भाषाओं में भी क्यों नहीं अपनाई गईं, यह संस्था "होशंगाबाद विज्ञान" नाम से मासिक पत्रिका भी प्रकाशित करती है। सीधे बच्चों को संबोधित यह पत्रिका विज्ञान-शिक्षण की होशंगाबाद प्रणाली अपनाने वाले स्कूलों से निरंतर संवाद बनाये रखती है। इसी की एक शाखा "एकलव्य" ने भोपाल से बच्चों की बड़ी ही रोचक और ज्ञानवर्द्धक पत्रिका "चकमक" छापना शुरू किया है। इस पत्रिका का भी राष्ट्रीय स्तर पर प्रसार होना चाहिए।

इन तमाम संस्थाओं को बराबर आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। इनको राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिले और आर्थिक अनुदान मिले यह बड़ा ज़रूरी है। बड़े दिनों से मन में यह इच्छा थी कि केन्द्र में कोई ऐसी संस्था होती जो पूरे देश में विज्ञान के प्रचार-प्रसार के काम में तालमेल बनाये रखे और उसे हर तरह से समर्थन देती रहे।

सी० एस० आई० आर० में स्व० डॉ० आत्माराम के प्रयासों से 'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' बनी थी। डॉ० शिवगोपाल मिश्र तथा इन पंक्तियों का लेखक इस समिति के सचिव रह चुके हैं। केरल शास्त्र साहित्य परिषद् और विज्ञान परिषद् सहित अनेक संस्थाओं को इस समिति की सिफारिश पर विज्ञान पत्रिकाओं के लिए प्रति वर्ष दस हजार रुपये तक की आर्थिक सहायता मिलती रही।

लेकिन अब विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग में 'नेशनल कौंसिल फॉर साइंस एण्ड टैक्नोलॉजी कम्यूनीकेशन' यानी 'राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद्' बन गई है। इसके निदेशक डॉ० नरेन्द्र सहगल बड़ी तत्परता से विज्ञान संचार का कार्य आगे बढ़ाने में लगे हैं। पिछले साल 1987 में इस परिषद् ने पूरे देश में जन-विज्ञान अभियानों से जुड़ी 26 संस्थाओं और समूहों को प्रेरित करके "भारत जन-विज्ञान जत्था" आयोजित किया। इस जत्थे ने पूरे देश में लगभग 25 हज़ार किलोमीटर की दूरी तय की। ये लोग इस "विज्ञान यात्रा" में 500 जगह रुके। यात्रा के दौरान जगह-जगह समाज में फैली कुरीतियों, अंध-विश्वास, जादू-टोने, तंत्र-मंत्र, वगैरह के विरुद्ध वैज्ञानिक मनोवृत्ति, वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास के लिये कार्यक्रम किये गये। इन कार्यक्रमों में स्लाइडों, चलचित्रों, पोस्टरों, प्रदर्शनियों, वैज्ञानिक मॉडलों व नुक्कड़ नाटकों का उपयोग किया गया।

इसी परिषद् की पहल पर ही सन् 1987 से हर साल 28 फरवरी को डॉ० सी० वी० रामन की खोज

के दिन से विज्ञान दिवस मनाया जा रहा है। विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, बच्चों में विज्ञान-प्रचार तथा वैज्ञानिक किट वगैरह के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारों का भी प्रति वर्ष आयोजन किया जा रहा है। अनेक संस्थाओं को हर साल आर्थिक सहायता भी दी जा रही है। हाल में ही इस विज्ञान संचार परिषद् ने रेडियो पर 8-14 वर्ष के बच्चों के लिए मानव-विकास के विविध पक्षों पर एक रोचक और ज्ञानवर्द्धक धारावाहिक शुरू कराने की योजना बनाई है। इसमें अनेक वरिष्ठ वैज्ञानिक भाग ले रहे हैं और पूरे देश में आकाशवाणी केन्द्रों के विज्ञान एकांशों को शामिल किया जा रहा है। जल्दी ही यह परिषद् विज्ञान-फिल्में, विज्ञान-कैसेट आदि बनाने के क्षेत्र में देश को आगे बढ़ाने के कार्यक्रम चलायेगी। टी० वी० पर तो विज्ञान-फिल्मों का प्रदर्शन प्रारंभ भी हो चुका है।

नई दिल्ली की "इंडियन नेशनल साइंस एकेडेमी" ने भी श्रीमती इंदिरा गांधी की स्मृति में विज्ञान के प्रचार-प्रसार में लगे लोगों को पुरस्कृत करना शुरू किया है। हिन्दी में तो अब लगभग सभी विषयों में विज्ञान-लेखन पर पुरस्कार दिये जा रहे हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, अंतरिक्ष विभाग, परमाणु विभाग, पर्यावरण विभाग तथा इलेक्ट्रॉनिक विभाग ने हिन्दी में विज्ञान पुस्तकों के लिए हर साल पुरस्कार देना शुरू किया है। सबसे पहले भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने कृषि साहित्य पर 'डॉ० राजेन्द्र प्रसाद पुरस्कारों' की घोषणा की थी। उसी के आधार पर हिन्दी सलाहकार समितियों की सिफारिशों से सभी विभागों ने पुरस्कार घोषित किये हैं। अनेक वैज्ञानिक संस्थानों ने ऐसे सम्मेलन आयोजित किए हैं जिनमें गहन-गंभीर विषयों की वैज्ञानिक विवेचना हिन्दी में की गई है। प्रो० गिरराज किशोर ने आई० आई० टी० कानपुर में और डॉ० नटवर देव ने केन्द्रीय भवन निर्माण संस्थान, रुड़की में इस दिशा में बड़ा ही सराहनीय कार्य करके दिखा दिया है कि अब हिन्दी को वैज्ञानिक शिक्षण ही नहीं अनुसंधान के स्तर पर भी भली-भाँति अपनाया जा सकता है।

इस प्रकार इस समय देश में विज्ञान के प्रचार-प्रसार का बहुत अच्छा वातावरण बन गया है। हम सबको चाहिए कि पूरी लगने से विज्ञान साहित्य लिखें और छपवायें। इस वातावरण को तैयार करने में विज्ञान परिषद् जैसी संस्थाओं की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। असल में विज्ञान संचार की राष्ट्रीय परिषद् बनाने की पहल डॉ० एम० एस० स्वामिनाथन और डॉ० एम० जी० के० मेनन के सुझाव पर की गयी थी। छठीं योजना के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के कार्यकारी दल ने यह सुझाव दिया था कि वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास के लिये अलग से एक संस्था बनाई जाय। पहले विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग में एक "सेल" बनाया गया, जो अब बढ़कर संचार परिषद् का रूप ले चुका है। कर्नाटक राज्य विज्ञान परिषद् ने इसमें काफी बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया था। इसके एम० ए० सेतुराव ने एक योजना बनाई थी, जो विभिन्न मंत्रालयों की समन्वय समिति में रखी गयी। 'भारतीय जन संचार संस्थान' (इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑव मॉस कम्यूनीकेशन), नई दिल्ली के श्री श्रीनिवासन ने सभी सुझावों के आधार पर एक रूपरेखा बनाई और उनके बाद केन्द्र में विज्ञान प्रचार के समन्वय का काम सुचारु रूप से चलाने की बुनियाद पड़ी।□□

भारत में होगी अम्ल वर्षा

वर्ल्ड वाइड लाइफ फंड की रिपोर्ट के अनुसार केरल और कर्नाटक में ऐसी बारिश होने की संभावना है। रिपोर्ट के अनुसार वाहनों एवं उद्योगों के कारण बढ़ते वायुप्रदूषण की वजह से इस बारिश की संभावना बनती है। इस बारिश से भारत के अलावा वेनेजुएला, नाइजीरिया, ब्राजील और चीन को अधिक नुकसान होगा।

कक्ष ताप संलयन के दावे

डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल

मार्च 89 में दो वैज्ञानिक समूहों ने यह दावा पेश कर कि उन्होंने संलयन जैसी जटिल प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल से वैद्युत् अपघटन सेल में संपादित कर ली है, विज्ञान जगत् में एक धमाका कर दिया। 23 मार्च को साउदेम्पटन विश्वविद्यालय, ब्रिटेन के **मार्टिन फ्लीशमैन** तथा उठाह विश्वविद्यालय, अमेरिका के **स्टैनली पोन्स** ने एक प्रेस कान्फरेन्स में यह दावा पेश किया तथा उसी दिन **स्टीव जोन्स** के नेतृत्व में काम करते हुये अमेरिका के **ब्रीघम यंग** तथा एरीज़ोना विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों ने भी यही दावा एक शोध पत्रक के रूप में विश्वविख्यात जर्नल 'नेचर' के सामने किया। फ्लीशमैन-पोन्स का पत्रक 10 अप्रैल के "जर्नल ऑव इलेक्ट्रोएनेलिटिकल केमिस्ट्री एंड इन्टरफेशियल केमिस्ट्री" में छपा तथा 'नेचर' वाला शोध पत्रक उसके 27 अप्रैल के अंक में।

यह धमाका इतना बड़ा था कि समाचार मिलते ही भारत सहित अनेक देशों की प्रयोगशालाओं में फ्लीशमैन्स-पोन्स के प्रयोगों को दोहराया गया। डलास, अमेरिका में जब इस पर विचार करने के लिये अमेरिकन केमिकल सोसाइटी ने एक बास्केटबाल के स्टेडियम में वैज्ञानिकों एवं पत्रकारों का अधिवेशन बुलाया तो 10,000 व्यक्तियों के बैठने वाला स्टेडियम समय से पहले ही खचाखच भर गया। यही हाल एरिस, सिसली (इटली) की कान्फरेन्स का हुआ। चारों ओर से इस बात की तो लगभग पुष्टि हुई कि अपघटन सेल में अभिक्रिया प्रारंभ कराने के लिये जितनी ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है, उससे कहीं अधिक ऊर्जा अभिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुई, परन्तु संलयन हुआ या नहीं--यह विवादास्पद बना रहा। स्मरणीय है कि हाइड्रोजन संलयन को विश्व की ऊर्जा समस्या का अंतिम और लगभग प्रदूषण-रहित हल समझा जाता है और इसीलिये विश्व के भौतिकीविद् बरसों से ड्यूटीरियम—ट्राइटियम संलयन का प्रयत्न करते रहे हैं। इस संलयन के लिये दस करोड़ सेलिसयस ताप की आवश्यकता पड़ती है और इसी ताप को सुरक्षित रूप से पैदा करने के लिये उन्नत देशों (भारत में भी) की न्यूक्लीय प्रयोगशालाओं में पैसा पानी की तरह बहाया जाता रहा है। 6 करोड़ डिग्री का ताप उत्पादित करने में सफलता भी मिली है और इस ताप पर भी उपरोक्त संलयन हो जाता है—परन्तु व्यापारिक दृष्टि से संलयन को सफल बनाने के लिये दस करोड़ डिग्री का ताप आवश्यक समझा जाता है।

ड्यूटीरियम—ट्राइटियम संलयन के अतिरिक्त ड्यूटीरियम-ड्यूटीरियम संलयन भी सम्भव है, यद्यपि उसके लिये पाँच गुना अधिक ताप आवश्यक होगा। यह संलयन निम्नलिखित दो समीकरणों के संगत से सम्भावित हैं—

$$D + D \rightarrow {}^{3}_{2}He + {}^{1}_{0}n \quad\ldots\ldots\ldots (1)$$

$$D + D \rightarrow {}^{3}_{1}T + {}^{1}_{1}P \quad\ldots\ldots\ldots (2)$$
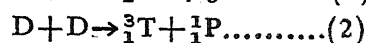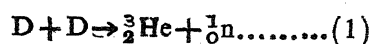
इसमें (1) मुख्य अभिक्रिया है। ऊपर बताये गये दोनों वैज्ञानिक समूहों ने इसी ड्यूटीरियम-ड्यूटोरियम संलयन को वैद्युत् अपघटन सेलों में कक्ष ताप पर ही संपादित किया। चूंकि उनके प्रयोगों में करोड़ों डिग्री ताप की आवश्यकता नहीं पड़ी, अतः उन्होंने इस संलयन को "कोल्ड फ्यूज़न" कहा। परन्तु मेरे विचार में हिन्दी में इसे "शीत संलयन" की अपेक्षा "कक्ष ताप संलयन" कहना अधिक उपयुक्त रहेगा।

फ्लीशमैन-पोन्स का प्रयोग कुछ इस प्रकार था। सेल में एक अत्यंत छोटे आकार का पैलेडियम कैथोड था। एनोड स्वर्ण का था। विद्युत् अपघट्य के रूप में 0.1M LiOD का गुरु जल विलयन लिया गया। गुरु जल (D_2O) इसलिये ताकि वह ड्यूटीरियम-स्रोत के रूप में कार्य कर सके। सेल को वाटर बाथ में रखा गया था। निश्चित मात्रा में विद्युत्धारा

प्रोफेसर, रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक—124001

प्रवाहित होने पर गुरु जल का अपघटन प्रारम्भ हुआ, कैथोड पर ड्यूटीरियम परमाणु निर्मुक्त हुये और उसी में अवशोषित हो गये। ज्ञातव्य है कि यह अवशोषण पैलेडियम की विशिष्टता है। दावेदार वैज्ञानिकों के अनुसार, अवशोषित ड्यूटीरियम की मात्रा धीरे-धीरे इतनी बढ़ी कि दबाव अकल्पनीय रूप से बढ़ गया, जिसके फलस्वरूप अंशतः संलयन हो गया। अभिक्रिया (1) में जो न्यूट्रॉन निर्मुक्त होता है, उसमें 2.45 MeV की ऊर्जा होती है। यदि यह न्यूट्रॉन किसी प्रोटॉन से अभिक्रिया करे तो 2.22 MeV की गामा किरण उत्पादित होगी—

$$^{1}_{1}p + ^{1}_{0}n \rightarrow ^{2}_{1}D + \gamma \; (2.24 \text{ MeV}) \ldots\ldots (3)$$
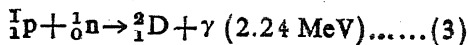
फ्लीशमैन—पोन्स के अनुसार उनके संलयन में निकले न्यूट्रॉनों ने वाटर बाथ के प्रोटॉनों से अभिक्रिया की और अभिक्रिया (3) के अनुसार गामा किरणें निकलीं; जिन्हें उन्होंने NaT सिंटिलेशन डिटेक्टर की सहायता से प्रेक्षित किया।

जोन्स एवं सहयोगियों का प्रयोग भी लगभग ऐसा ही था। केवल उनका विद्युत् अपघट्य कुछ भिन्न था—यद्यपि वह भी था गुरु जल विलयन ही। उन्होंने निर्मुक्त न्यूट्रॉनों की सीधे पहचान की और पाया कि उनकी ऊर्जा 2.45 MeV ही थी।

दावेदार वैज्ञानिकों के संलयन सम्बन्धी निष्कर्षों पर कई आपत्तियाँ उठाई गई हैं। सबसे पहली तो यह है कि ये ही प्रयोग गुरु जल के बाद सामान्य जल के माध्यम से भी क्यों नहीं किये गये। सामान्य जल में संलयन का प्रश्न ही नहीं उठता और इसलिये इस तुलनात्मक प्रयोग से उपयोगी जानकारी मिल सकती थी। यदि ऊर्जा तथा न्यूट्रॉनों का उत्पादन सामान्य जल में भी होता है तो स्पष्ट है कि मूल प्रक्रिया संलयन नहीं, कुछ और ही है। इस आपत्ति को सबसे अधिक मुखर किया प्रिन्सटन युनीवर्सिटी प्लाज़्मा फिजिक्स लेबोरेटरी के निदेशक हैरोल्ड फर्थ ने। दूसरी आपत्ति यह है कि जो संलयन दर फ्लीशमैन-पोन्स आदि ने परिकलित की ($10^{9}S^{-1}$) वह सैद्धांतिक परिकलनों के अनुकूल नहीं है। परंतु इस संबंध में तो वैज्ञानिक कूनिन ने इटली की कान्फरेन्स में सिद्ध कर दिया है कि पुराने सैद्धांतिक परिकलनों में कुछ दोष था। और उन्हें हटा देने पर फ्लीशमैन-पोन्स की दर ठीक बैठती है। तीसरी आपत्ति यह है कि न्यूट्रॉनों का उत्सर्जन बहुत कम मात्रा में हुआ। न्यूट्रॉन काउंट (जैसा कि रिपोर्ट किया गया) 10^{9} संलयन अभिक्रियाओं के लिये केवल एक बैठता है। ऐसा क्यों? यह सबसे पेचीदा सवाल है। यों तो पिछले 60 वर्षों में कई लोगों ने दावे किये थे कि पैलेडियम संलयन के लिये प्रेरक का कार्य करता है, परंतु न्यूट्रॉनों का उत्सर्जन सिद्ध न हो पाने के कारण वे सभी अमान्य कर दिये गये थे। इस बार न्यूट्रॉन उत्सर्जन तो सिद्ध हुआ, पर इतना कम उत्सर्जन क्यों? वैसे खबर है कि **M I T** के प्रोफेसर **हैगेलस्टीन** ने चार शोधपत्र प्रकाशन के लिये दे दिये हैं, जिनमें नये परिकलनों के आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि संलयन में काफी कम मात्रा में न्यूट्रॉनों की निर्मुक्ति संभव है। **M I T** ने इनके सारांश प्रकाशित भी कर दिये हैं। **M I T** के ही एक अन्य प्रोफेसर, **कीथ जोन्स** पुराने सिद्धान्तों के ही आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि कम न्यूट्रॉन उत्सर्जन संभव है। परन्तु 20 अप्रैल 1989 के "नेचर" में प्रकाशित अपने लेख में कोलम्बिया विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्री **रिचर्ड एल० गार्विन** ने विचार प्रकट किया है कि हो सकता है कि इतने थोड़े से न्यूट्रॉन, विद्युत् सेल में 'Arcs and Sparks' प्रक्रिया के कारण निकलते हों। उन्होंने यह भी कहा कि ऊर्जा का उत्पादन भी कुछ उन्हीं कारणों से हो सकता है, जिन कारणों से ग्रैफाइट पर न्यूट्रॉनों की बमबारी से ऐसा होता है (विग्नर ऊर्जा)।

संलयन हुआ या नहीं—यह तो समय ही बता पायेगा। हाँ इतना अवश्य है कि प्रयोगों पर भौतिकीविदों की आपत्तियों का तीखापन कुछ इसलिये भी है कि उन्हें विद्युत् रसायनज्ञों से एक ऐसे क्षेत्र में नीचा देखना पड़ रहा है जिसे वे पूर्णरूप से अपना अधिकार क्षेत्र समझते रहे हैं। □□

राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी संकुल रसायन–विभिन्न आयाम

डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल

[हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के तत्वावधान में 7-8 अप्रैल 1989 को आयोजित राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी के उद्‌घाटन के अवसर पर 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' में दिया गया वक्तव्य ।

—संपादक]

संयोजक होने के नाते मेरा कर्तव्य है कि मैं इस गोण्ठी की पृष्टभूमि से आपको परिचित करा दूँ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में 44वें अधिवेशन के अवसर पर इलाहाबाद में 3 मई 1988 को सम्मेलन की विज्ञान परिषद् के तत्वावधान में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था, जिसका विचारणीय विषय था "विज्ञान की उच्च शिक्षा का माध्यम अविलंब हिन्दी और प्रादेशिक भाषायें हो जानी चाहिए।" इस गोष्ठी की अध्यक्षता लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी-प्रेमी वैज्ञानिक, प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र ने की थी। गोष्ठी की एक संस्तुति यह थी कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक शोध परिषद् द्वारा प्रतिवर्ष ऐसी संगोष्ठियों का आयोजन किया जाना चाहिये जिनमें मौलिक शोध को केवल हिन्दी अथवा प्रादेशिक भाषाओं में प्रस्तुत करने की शर्त हो। इन संस्थाओं ने तो इस सम्बन्ध में, कदाचित भारतीय भाषाओं के प्रति हीन भावना के कारण अब तक कुछ भी नहीं किया, परन्तु अपने प्रधानमंत्री, श्री श्रीधर शास्त्री की प्रेरणा से सम्मेलन ने स्वयं इस दिशा में पहल करने का निर्णय किया। वस्तुत: देश में हिन्दी को अपने उचित स्थान पर प्रतिष्ठित कराने के लिये राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के समय से ही सम्मेलन ने जो जो कार्य किये हैं, उन्हें देखते हुये विज्ञान के क्षेत्र में सम्मेलन का यह निर्णय बहुत आश्चर्यजनक नहीं था। सच पूछा जाय तो सम्मेलन से यह अपेक्षित ही था। इसीलिये माननीय शास्त्री जी की आज्ञा शिरोधार्य कर हमने "संकुल रसायन—विभिन्न आयाम" विषय पर शोध गोष्ठी के आयोजन का बीड़ा उठाया। हमें प्रसन्नता है कि देश के कोने-कोने से रसायनज्ञों ने इस चुनौती को स्वीकार कर अपना सहयोग हमें दिया और अंग्रेज़ीपरस्त विद्वानों की इस भावना के आगे एक प्रश्नचिन्ह लगा दिया कि विज्ञान के लिये हिन्दी समर्थ माध्यम बन ही नहीं सकती। मुझे याद है कि 3 मई 1988 की गोष्ठी में प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र ने कहा था कि विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी को प्रतिष्ठित कराने के लिए हमारे वरिष्ठ वैज्ञानिकों को अंग्रेज़ी के उच्च प्रासादों से उतर कर हिन्दी की कुटिया में आना होगा। मुझे लगता है कि वह प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। इस गोष्ठी के लिये भारत के आठ राज्यों, जम्मू एवं काश्मीर, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र के संकुल रसायनज्ञों ने अपना योगदान किया है और उनमें से कई ऐसे वरिष्ठ एवं ख्यातनामा रसायनज्ञ हैं, जिन्होंने इसके पहले कभी कोई शोध पत्र हिन्दी में नहीं लिखा। यह निश्चित ही एक शुभ लक्षण है।

भारत के वैज्ञानिक जगत् में अब हिन्दी के लिये स्पष्ट सुगबुगाहट है। ऐसा लगता है कि धीरे-धीरे यह धारणा जड़ पकड़ रही है कि मौलिक चिंतन केवल स्वभाषा में संभव है—अंग्रेज़ी में नहीं और इसीलिये अंग्रेज़ी का व्यामोह तोड़ना आवश्यक है। यह भी अब समझ में आने लग गया है कि न केवल चिंतन बल्कि सम्प्रेषण भी स्वभाषा में ही अधिक सशक्त बन सकता है। यह सब मैं इच्छाजनित अभिलाषा के वशीभूत होकर नहीं कह रहा हूँ। इसके स्पष्ट संकेत हैं। यद्यपि मौलिक शोधपत्रों को आधार मानकर आयोजित होने वाली यह प्रथम गोष्ठी है, परन्तु पिछली थोड़ी सी

प्रोफेसर, रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

अवधि में ही उच्चस्तरीय विज्ञान को हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत करने वाली दो और गोष्ठियाँ आयोजित हो चुकी हैं। पहली गोष्ठी "रसायन विज्ञान—उभरते चित्र" शीर्षक से 28 सितम्बर 1988 को भाभा परमाणु शोध केन्द्र, बम्बई में सम्पन्न हुई और दूसरी "विज्ञान की नई दिशायें" शीर्षक से 3-4 मार्च 1989 को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में। विज्ञान परिषद् तो, जिसके भवन में हम इस समय बैठे हैं, विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर गोष्ठियाँ आयोजित करती ही रहती है। यहाँ एक और सूचना देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि अभी कुछ ही समय से देश में एक नये शोध जर्नल "एशियन जर्नल ऑव केमिस्ट्री" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है। यह जर्नल द्विभाषिक है। इसमें अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी शोधपत्रों के प्रकाशन की व्यवस्था है। प्रसन्नता की बात है कि इसके प्रधान संपादक **डॉ० आर० के० अग्रवाल** यहाँ गोष्ठी में उपस्थित हैं।

यह तो सत्य ही है कि वैज्ञानिक विषयों के सम्प्रेषण के लिये मानक हिन्दी का विकास अभी पूरी तरह से नहीं हो सकता है। कारण स्पष्ट है कि भाषा व्यवहार से बनती है और उच्चस्तरीय विज्ञान में हिन्दी का व्यवहार अभी तक बहुत कम होता रहा है। ऐसी गोष्ठियाँ, जिनकी चर्चा मैंने अभी की, इस कार्य के लिये भाषा के परिमार्जन एवं अनुकूल हिन्दी के विकास में भी सहायक होंगीं—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' ने अपनी अनुसन्धान पत्रिका के एक विशेष अंक में गोष्ठी के लिये स्वीकृत सभी शोधपत्रों को प्रकाशित कर हमारी सफलता का मार्ग प्रशस्त किया है। उनके इस एक कदम से गोष्ठी में सम्मिलित शोधपत्र, हिन्दी में होने के बावजूद "केमिकल एब्स्ट्रैक्ट" के माध्यम से समस्त विश्व के रसायनज्ञों के सामने आ सकेंगे। मैं समझता हूँ कि वैज्ञानिकों में हिन्दी के प्रति आस्था जगाने में इस एक बात ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और मैं इसके लिये 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मैं देश के अनन्य संकुल रसायनज्ञ, **प्रोफेसर हीरा लाल निगम** का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के 'कीनोट एड्रेस' देने की हमारी प्रार्थना को स्वीकार किया।

मैं देश के एक अन्य, चोटी के रसायनज्ञ, **प्रोफेसर वहीदउद्दीन मलिक**, जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति भी हैं, के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने ने इस गोष्ठी को उद्घाटित करने की हमारी प्रार्थना स्वीकार कर गोष्ठी के महत्व को और अधिक बढ़ाया है। □□

विज्ञान समाचार

आर्कटिक पर ओज़ोन-परत पतली हो रही है

न सिर्फ अंटार्कटिका के ऊपर बल्कि आर्कटिक क्षेत्रों के ऊपर भी ओज़ोन-परत की स्थिति पूरी दुनियाँ में वैज्ञानिकों की चिन्ता का कारण बनी हुई है। उत्तरी गोलार्द्ध के ऊपर, खास तौर से, स्कैंडनेविया के ऊपर, ओज़ोन-परत में बड़ी-बड़ी सूराखें हो गई हैं, ऐसा **इगोर कारोल**, डॉक्टर ऑव साइंस, लेनिनग्राद में भूभौतिकीय वेधशाला के स्टाफ सदस्य ने "त्रुदोक" समाचार-पत्र में लिखा है।

उन्होंने बताया है कि ओज़ोन-परत सलाना 105 प्रतिशत पतली होती जा रही है। एक पीढ़ी के जीवन-काल में यह आँकड़ा 20 प्रतिशत तक पहुँच जायेगा, जिसके फलस्वरूप पूरे जैवमंडल के लिये गंभीर ख़तरा पैदा हो जायेगा।

कारोल ने बताया है कि मौसम-परिवर्तनों, वायुमण्डल-परिभ्रमण का दोसाला चक्र, सौर गतिविधि में परिवर्तनों तथा वायुमण्डलीय प्रक्रियाओं का असर वायुमण्डल में ओज़ोन के संकेन्द्रण पर पड़ता है। क्लोराइडयुक्त हाईड्रोकार्बन, खास तौर से फ्रियन और अन्य केमिकल, जो वायुमण्डल को दूषित करते हैं, भी नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है।

वैज्ञानिकों का ध्यान अब तक अज्ञात प्राकृतिक तत्व पर केन्द्रित है। यह बात सामने आयी कि तथाकथित ध्रुवीय समतापमण्डलीय बादल जाड़े में 16-20 कि० मी० की ऊँचाई पर ध्रुव प्रदेशों की रातों के दौरान घने पाल की स्थितियों में बनते हैं जिनसे ओज़ोन का विनाश होता हैं। इस प्रक्रिया में जटिल प्रतिक्रियायें घटित होती है, जिनका अध्ययन वैज्ञानिकों द्वारा किया जाना है।

राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी संकुल रसायन : विभिन्न आयाम

डॉ० ब्रज भूषण

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के तत्वावधान में 7-8 अप्रैल, 1989 के 'संकुल रसायन : विभिन्न आयाम' विषय पर एक द्विदिवसीय राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी विज्ञान परिषद् सभा भवन, (इलाहाबाद) में आयोजित की गई। गोष्ठी के संयोजक—डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक तथा सहसंयोजक डॉ० ब्रज भूषण, रीडर, रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक थे। गोष्ठी में देश के भिन्न-भिन्न भागों से प्राप्त 32 शोधपत्रों में से 28 को प्रस्तुतिकरण के लिये स्वीकृत किया गया। लगभग सभी शोधपत्रों के लेखक गोष्ठी में उपस्थित हुये। गोष्ठी में शोधपत्र प्रस्तुत करने वाले विद्वत-जन थे :—

(1) डॉ० एन० कुमार, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रसायन विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

(2) डॉ० जे० पी० शुक्ल, वरिष्ठ वैज्ञानिक, भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र, बम्बई

(3) डॉ० के० एन० मुंशी, प्रोफेसर, रसायन विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

(4) डॉ० एस० पी० संगल, प्रोफेसर, रसायन, लक्ष्मीनरायण तन्त्र विज्ञान संस्थान, नागपुर

(5) डॉ० एन० के० कौशिक, रीडर, रसायन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

(6) डॉ० ए० आई० पी० सिन्हा, प्रोफेसर रसायन, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राजस्थान)

(7) डॉ० दुर्गा दत्त ओझा, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

(8) डॉ० के० एस० पित्रे, रीडर रसायन, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)

(9) डॉ० के० के० चतुर्वेदी, प्रोफेसर रसायन, होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म० प्र०)

(10) डॉ० एम० एस० वर्मा, रीडर, रसायन विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म० प्र०)

(11) डॉ० रामकुमार अग्रवाल, मुख्य सम्पादक 'एशियन जर्नल ऑव केमिस्ट्री,' साहिबाबाद (गाज़ियाबाद)

(12) डॉ० मनहरन नाथ श्रीवास्तव, रीडर-रसायन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

(13) डॉ० के० के० वर्मा, प्रवक्ता, रसायन, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

(14) डॉ० ब्रज भूषण, रीडर-रसायन, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

(15) डॉ० बी० एम० एल० तिवारी, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, रीवाँ (म० प्र०)

(16) डॉ० पुरुषोत्तम बी० चक्रवर्ती, शासकीय मोतीलाल विज्ञान आदर्श महाविद्यालय, भोपाल

(17) कु० मंजु अग्रवाल, शासकीय मोतीलाल विज्ञान आदर्श महाविद्यालय, भोपाल

(18) डॉ० अशोक कुमार मैनी, शासकीय मोतीलाल विज्ञान आदर्श महाविद्यालय, भोपाल

(19) डॉ० सुरेन्द्र नाथ दुबे, रीडर-रसायन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

(20) डॉ० ईश्वर सिंह, रीडर-रसायन, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

(21) डॉ० एस० के० मिश्र, रसायन विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा

(22) श्री लक्ष्मण सिंह, एस०एस० बी० कॉलेज, हापुड़ (गाज़ियाबाद)

(23) डॉ० शशि प्रभा तिवारी, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली

(24) कु० नम्रता, रसायन विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

(25) श्री के० के० दहिया, रसायन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

उद्घाटन एवं समापन सत्र को मिलाकर गोष्ठी

में कुल पाँच सत्र आयोजित किये गये। इस गोष्ठी में सम्मिलित किये गये सभी शोधपत्र "विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका" में प्रकाशित किये गये।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी ने की तथा उद्घाटन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति एवं प्रसिद्ध रसायनज्ञ प्रो० वहीदुद्दीन मलिक ने किया। उद्घाटन सत्र का शुभारंभ श्री श्रीधर शास्त्री, प्रधान मंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के स्वागत भाषण से हुआ। इसके पश्चात् गोष्ठी के संयोजक डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल ने गोष्ठी की पृष्ठभूमि पर अपना वक्तव्य दिया। उन्होंने बताया कि "देश में हिन्दी के प्रति स्पष्ट सुगबुगाहट है। इस गोष्ठी से पहले भी हिन्दी में इसी वर्ष दो और उच्चस्तरीय वैज्ञानिक गोष्ठियाँ, एक भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र द्वारा "रसायन शास्त्र में उभरते चित्र" तथा दूसरी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में 'विज्ञान की नई दिशायें' आयोजित हो चुकी हैं। परन्तु वर्तमान गोष्ठी देश में होने वाली सर्वप्रथम शोध गोष्ठी है जिसमें मौलिक शोधपत्रों की प्रस्तुति का माध्यम हिन्दी भाषा रही। 'हिन्दी के माध्यम से विज्ञान की पूर्ण अभिव्यक्ति संभव है'—इस धारणा की संपुष्टि ही गोष्ठी का मुख्य उद्देश्य है। प्रो० वहीदुद्दीन मलिक ने अपने उद्घाटन भाषण में यह स्पष्ट किया कि विषय की पूर्ण जानकारी तभी सम्भव है जब विषय को अभिव्यक्त करने वाली भाषा पर सशक्त पकड़ हो। इसलिये विज्ञान का माध्यम हिन्दी करने से निश्चय ही देश में मौलिक चिन्तन का विकास होगा। अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी के भी यही विचार थे। उनका कहना था कि देश में विज्ञान और इसका महत्त्व तभी अधिक उभर कर आ सकता है जब इसका प्रचार जन-जन की भाषा में हो। प्रत्येक के जीवन में विज्ञान मौजूद है। इसलिये समय की माँग के अनुसार देश के वैज्ञानिक हिन्दी में विचार और प्रचार करें। उद्घाटन सत्र में ही संकुल विज्ञान के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान प्रो० हीरा लाल निगम (पूर्व कुलपति, रीवां विश्वविद्यालय) ने अपने 'कीनोट एड्रेस' के प्रारम्भ में विचार व्यक्त किया कि गहन से गहन विषय को भी हिन्दी में अभिव्यक्त किया जा सकता है। उन्होंने बड़े ही रोचक ढंग से संकुल रसायन के 1904 से 1986 तक के इतिहास की समीक्षा की, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में संकुलों के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला। उद्घाटन सत्र श्री श्रीधर शास्त्री द्वारा, आमंत्रित विद्वतजनों के प्रति धन्यवाद प्रस्ताव से समाप्त हुआ।

7 अप्रैल को अपराह्न 3 बजे प्रथम शोध-सत्र प्रारम्भ हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता नागपुर विश्वविद्यालय के प्रो० के० एन० मुंशी ने की। इस सत्र में डॉ० एम० एस० वर्मा, डॉ० शशि प्रभा तिवारी, डॉ० के० के० वर्मा, डॉ० के० एस० पित्रे, डॉ० ब्रज भूषण, डॉ० बी० एम० एल० तिवारी, डॉ० एस० पी० संगल, डॉ० एस० एन० दुबे, डॉ० ईश्वर सिंह तथा डॉ० अशोक कुमार मैनी ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किये। शोधपत्र प्रस्तुत करने के पश्चात् लगभग प्रत्येक शोधपत्र पर हुई परिचर्चा गोष्ठी में सम्मिलित प्रतिनिधियों के उत्साह की द्योतक थी। इस सत्र में प्रस्तुत अधिकतर शोधपत्र जैव क्रियाओं में संकुलों के महत्त्व से सम्बन्धित थे। डॉ० ब्रज भूषण द्वारा आयन विनिमायक पर प्रस्तुत शोधपत्र ने अकार्बनिक आयन विनिमायकों का न्यूक्लिय अपशिष्ट पृथक्कीकरण, विलवणीकरण आदि में उपयोग की सम्भावना को इंगित किया। डॉ० के० एस० पित्रे द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार उनके द्वारा संश्लेषित कोबाल्ट (II) धातु के संकुलों में एन्टीहिस्टामिनिक प्रवृत्ति शुद्ध औषधि से भी अधिक है। डॉ० बी० एम० एल० तिवारी ने जिस संकुल का संश्लेषण एवं अभिलक्षणन किया था उसके द्वारा सफलतापूर्वक चर्म-शोधन किया जा सकता है।

दूसरा शोध-सत्र 8 अप्रैल प्रातः 9 बजे प्रारम्भ हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता का भार डॉ० एन० कुमार, अध्यक्ष, रसायन विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय ने वहन किया। सर्वप्रथम भोपाल के डॉ० पुरुषोत्तम बी० चक्रवर्ती ने "कैंसर की उत्पत्ति तथा उपचार में कीलेट संकल्पना" पर एक शोध समीक्षा प्रस्तुत की।

समीक्षा में पहले उन्होंने कैंसर की उत्पत्ति के संभावित कारणों का उल्लेख किया और तत्पश्चात् बताया कि कारणों को दृष्टिगत रखते हुये इस बीमारी का उपचार संकुलों द्वारा ही संभव हो पायेगा। उन्होंने स्मरण दिलाया कि इस बीमारी के लिये अभी तक उपलब्ध औषधियों में सबसे अधिक कारगार औषधि सिसप्लाटिन-एक संकुल ही है। इसके अतिरिक्त इस सत्र में कु० नम्रता, कु० मंजु अग्रवाल, डॉ० दुर्गा दत्त ओझा, श्री० के० के० दहिया, प्रो० के० एन० मुंशी, डॉ० मनहरन श्रीवास्तव, श्री लक्ष्मण सिंह ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किये।

तृतीय और अंतिम शोध-सत्र अपराह्न 3 बजे डॉ० ए० आइ० वी० सिन्हा, अध्यक्ष, रसायन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ की अध्यक्षता में हुआ। प्रारम्भ में भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ० जे० पी० शुक्ल ने "बृहत चक्रीय क्राउनईथरों के संकुल रसायन के कुछ पहलू" पर प्रकाश डाला। इसके बाद दो शोधपत्र डॉ० रामकुमार अग्रवाल तथा डॉ० के० के० चतुर्वेदी ने प्रस्तुत किये। अस्वस्थता के कारण उदयपुर के डॉ० सुरेश अमेटा अपना शोधपत्र प्रस्तुत करने इलाहाबाद में उपस्थित नहीं हो सके। उनका शोधपत्र संकुलों की सौर-ऊर्जा के विद्युत् ऊर्जा में परिवर्तन में भूमिका को इंगित करता है।

समापन सत्र की अध्यक्षता सम्मेलन के कार्यवाहक अध्यक्ष श्री ज्ञान चन्द्र द्विवेदी, एडवोकेट, एम० एल० सी० ने की। समापन भाषण में संयोजक डॉ० अग्रवाल ने कहा कि पिछले दो दिनों में इतिहास बनाया गया है। गोष्ठी के सफल आयोजन से यह सिद्ध हो गया है कि भाषा नहीं, विषय महत्वपूर्ण होता है और इसलिये हिन्दी की असमर्थता सम्बन्धी बातें भ्रामक और निरर्थक हैं। उन्होंने इस बात के लिये प्रतिनिधियों को बधाई दी कि उन्होंने गोष्ठी के माध्यम से गरीब भारत की धरती पर बने अंग्रेज़ी के महल पर सार्थक चोट की है और साथ ही उनसे इस प्रयास को आगे बढ़ाते रहने का अनुरोध भी किया। इसी सत्र में श्रीधर शास्त्री, प्रधान मंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने गोष्ठी के प्रति देश के वैज्ञानिकों का उत्साह देखते हुये यह घोषणा की कि सम्मेलन 1990 में इससे कहीं बड़े स्तर पर एक विज्ञान गोष्ठी का आयोजन करेगा। अध्यक्ष श्री द्विवेदी जी ने आये हुये सभी वैज्ञानिकों के प्रति आभार प्रकट किया और विज्ञान परिषद् और इसके पदाधिकारियों, जिनके सहयोग से गोष्ठी का आयोजन किया गया, को धन्यवाद दिया। □□

सोवियत वैज्ञानिकों ने एड्स-विरोधी टीके का फार्मूला तैयार किया

दो सोवियत वैज्ञानिकों लाजार मेकलर और रोजालिया इदलिस ने कहा है कि उन्होंने एक ऐसा सिद्धान्त विकसित किया है जिससे एक वर्ष के अन्दर एड्स का टीका बनाया जा सकता है।

सोवियत वैज्ञानिकों ने कहा है कि उस सिद्धान्त के आधार पर जिसे उन्होंने विकसित किया है, खास किस्म के प्रोटीन के संश्लेषण से टीका बनाया जा सकता है। वह सभी जीवित अवयवों के ढांचे, विकास एवं परिवर्तनों को नियमित करता है।

प्रोफेसर मेकलर ने कहा कि उनके सिद्धान्त ने पहले ही एड्स के वाइरस के समान वाइरस की संभावना की भविष्यवाणी की थी। उस सिद्धान्त में परिवर्तित होने की वाइरस की क्षमता के बारे में बताया गया है और उसका मुकाबला करने के उपाय बताये गये हैं। मेकलर ने 1953 में इस सिद्धान्त पर कार्य शुरू किया था।

प्रो० मेकलर ने कहा कि इस सिद्धान्त का सार तत्व यह है कि जीवित अवयवों, प्रोटीन एवं न्यूक्लिक एसिड को शासित करने वाली सामान्य नियमितता खोज ली गयी है। उसकी शक्ति के आधार पर अवयवों के विकास एवं उसमें चल रही नियन्त्रण की प्रक्रियाओं की भविष्यवाणी की जा सकती है।

सोवियत संघ के आण्विक आनुवंशिकी संस्थान तथा जैवरसायन, बायोआर्गेनिक रसायन संस्थानों में किये गये अनेक प्रयोगों ने उसकी वैधता की पुष्टि कर दी है।

उन्होंने कहा कि रोजालिया इदलिस के साथ उन्होंने एड्स-विरोधी टीके का फार्मूला तैयार कर लिया है। इसके लिए एक प्रयोगशाला एवं उपकरणों की ज़रूरत है जिन पर अनुमानतः 20 लाख डालर खर्च होंगे।

मानव और पर्यावरण : जीवन दृष्टि के परिवर्तन की समस्या

राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप

पर्यावरण और पारिस्थितिकी के प्रति सजगता आज बौद्धिक समाज का फैशन बन रही है। 'प्रदूषण' शब्द का उपयोग अब सामान्य हो गया है—नदियों को स्वच्छ रखते वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड का संतुलन बनाने, शहरों में ध्वनि का स्तर कम करने, सी० एफ० सी० से वायुमण्डलीय ओजोन की पर्त में विरलता आने, गैसों का रिसाव, नाभिकीय संयंत्रों को बन्द करने जैसे विषय आज किसी भी चर्चा के सामान्य विषय बन गये हैं। सच्चाई यह है कि यह समस्याएँ हमें हमारे भविष्य के प्रति आशंकित कर देती हैं इसलिये हम इन समस्याओं का समाधान खोजना चाहते हैं—प्रकृति से हमारा कोई आत्मीय सम्बन्ध नहीं है—चूँकि हमारा अपना भविष्य ख़तरे में पड़ गया दिखता है, इसलिये हम प्रकृति के सम्बन्ध में चिंतित हो उठे हैं।

प्रकृति से हमारे सम्बन्ध का आधार अभी भी वन्य-प्राणियों से स्नेह या वातावरण से जुड़ने की भावना नहीं है—पेड़ इसलिये महत्वपूर्ण है क्योंकि औसत रूप से एक पेड़ हमें अपने जीवन-काल में पन्द्रह लाख रुपये की ऑक्सीजन देता है, पेड़ों से भूमि क्षरण रुकता है, वर्षा समय से होती है और इस प्रकार के अनेक तर्क जिनसे यह सिद्ध होता है कि हमारे जीवन के अस्तित्व के लिये पेड़ उपयोगी हैं इसलिये उनकी रक्षा की जानी चाहिये या पेड़ लगाये जाने चाहिये। यद्यपि हम भली प्रकार जानते हैं कि पेड़ों में भी एक प्रकार का जीवन है—परन्तु मात्र यह तर्क हमें उनके संरक्षण के लिये प्रेरित करने का कार्य नहीं कर पाता।

यही व्यक्तिगत लाभकेन्द्रित या मानव-लाभ-केन्द्रित जीवन दृष्टि अचानक हमारे पर्यावरणीय सोच को जाग्रत कर रही है। हमें लगने लगा है कि प्रकृति को बिना कुछ दिये उसका अंधाधुन्ध दोहन हमारे लिये हमारे भविष्य के लिये ख़तरनाक है—इसलिये हमारा प्रकृति-प्रेम उमड़ पड़ा है। यह कुछ-कुछ वैसा ही लगता है जैसे शहर में काम करने वाले पति-पत्नी, गाँव में रहने वाली अपनी बूढ़ी माँ को यह सोच कर अपने पास ले आएँ कि उस पर होने वाले व्यय की तुलना में नौकरानी रखने पर होने वाला व्यय अपेक्षाकृत अधिक होगा।

परन्तु हमारे चिंतन का यह आधार ही अमानवीय है—क्रूरतापूर्ण है—उसमें मानवीय सहृदयता का अभाव है। और हो भी कैसे न? जिन्हें पंजाब में चल रही गोलियों की आवाज़ें सुनाई नहीं पड़तीं, जिन्हें श्रीलंका, लेबनान, इजरायल, जार्जिया, आर्मीनिया, भोपाल, चेर्नोबिल, अफगानिस्तान की घटनाओं से कुछ लेना-देना नहीं अथवा परिस्थिति का अपने पक्ष में उपयोग करना ही जिनका लक्ष्य है, जिन्हें सड़क के भिखारी और होटलों में काम से पीसे जाते और गाड़ियों में लोगों द्वारा छोड़ा गया खाना खाते, स्कूल जाने की उम्र में सड़क की पाठशाला में जवान होते बच्चे नहीं दिखते, जिन्हें परिवार में किसी वृद्ध व्यक्ति की उपस्थिति कठिन लगती है—ऐसे लोगों से यह अपेक्षा करना कि वे एक नन्हें अंकुर को, एक जल-धारा को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देख सकते हैं—उससे संलग्नता का अनुभव कर सकते हैं—बुद्धिमानी तो नहीं ही कही जायगी।

जीवन कोरी रासायनिक या जीव-रासायनिक प्रक्रिया नहीं है। जीवन का सम्बन्ध उन अनन्त छोटे-छोटे बन्धनों से है जो जीवन को संभव ही नहीं बनाते उसके बनाए रखने, उसे गतिशील रखने की प्रक्रिया में

शिक्षा शास्त्र विभाग, ए० पी० एन० डिग्री कॉलेज, बस्ती–272001

भी सहायक होते हैं। हमारा अस्तित्व केवल ऑक्सीजन ग्रहण करने और कार्बन डाइऑक्साइड निकालने, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज, विटामिन शरीर में ग्रहण करने और मल पदार्थों को उत्सर्जित करने के कारण सम्भव नहीं है। वहाँ भावनाओं का उद्वेलन, स्पर्श की अनुभूति, बच्चों की किलकारी सुन कर होने वाली प्रसन्नता, उगते सूर्य को देखकर अनुभव होने वाला आनन्द, प्रिय के सान्निध्य का अनभिव्यक्त अनुभव—सभी कुछ मिला-जुला है। मानवीय-जीवन प्रवाह का यही आधार है।

वास्तविकता तो यह है कि हमारे अतिरिक्त जो कुछ भी अन्य है, दूसरा है—वह केवल हमारे उपभोग या उपयोग के लिये नहीं है। यह भी एक सच्चाई है कि हमारा होना सिद्ध करने के लिये, हमारे अस्तित्व को सम्भव बनाने की बात यदि छोड़ भी दी जाये, दूसरे की आवश्यकता है। दूसरे हैं इसलिए हम हैं—ऐसे अकेले मानव की जो बिलकुल अकेला—सृष्टि के एकमात्र अस्तित्व के रूप में—हो, या ऐसी मानव जाति की जिसके अतिरिक्त और कुछ भी—जड़, चेतन, वनस्पति, प्राणी—न हो, कल्पना नहीं की जा सकती। हम जीवन के प्रवाह की अनेक धाराओं में से एक धारा का वर्तमान बिंदु या बिंदु समूह मात्र हैं। तब अपने अस्तित्व के लिये अपने आधार का विनाश क्या वृक्ष की उसी शाखा को जिस पर हम बैठे है, काटने जैसा नहीं हैं ?

प्रसिद्ध चिंतक ज्यां जैक्स रूसो के शब्दों में कहें तो हमने अपने नगरों को मानवता का श्मशान बना डाला है। हमारी सांस दूसरे व्यक्ति के लिये प्राणघातक हो गयी है और प्रकृति ने जिस निर्दोष और शुद्ध रूप में हमारा सृजन किया था उसके स्थान पर हम बन गए हैं—एक अशुद्ध अपवित्र रचना। और इसके मूल में है प्रकृति का अंधाधुन्ध दोहन करके अपने उपयोग में लाने की हमारी सभ्यता केन्द्रित विचारधारा।

प्राचीन भारतीय जीवन दृष्टि से देखें या रूसो की दृष्टि से, इस विकृति से मुक्ति पाने का एक ही उपाय है—प्रकृति की ओर लौटना अर्थात् अपनी सहज प्रकृति, जो हमारे पर्यावरण पर ऊपर से थोपी गयी आर्नामेंटल पैबंद नहीं है, की पहचान और उसकी ओर लौटना। पर्यावरण को अस्तित्व का और अपने को पर्यावरण का अविच्छेद्य भाग स्वीकार करना। इस तथ्य को हृदयंगम करना कि हम प्राकृतिक सृष्टि से अलग-थलग विकसित हुए कोई श्रेष्ठतर भाग नहीं है जिसे अपने अस्तित्व के लिये अन्य भागों का शोषण करने का, उन्हें नष्ट करने का कोई अधिकार प्राप्त है—वरन् हम इस पूरी रचना के एक अंश हैं, वैसे ही जैसे हमारे शरीर का कोई अंग हमारे पूरे अस्तित्व का अंश होता है—अंग के रूप में उसे अलग कर दिया जाये तो उसका रूप—प्रकार्यात्मक रूप—नष्ट हो जाता है।

ऋग्वेद में वायु को संबोधित करते हुए कहा गया है—

आ वात वाहि भेषजं विवातराहियद्रपः।
त्वं हि विश्व-भेषज देवानां दूतईयसे॥

अर्थात् "हे वायु! औषधि यहाँ तक लाओ। रोग को उत्पन्न करने वाले जो दोष हैं उन्हें दूर करो! हे संपूर्ण रोगों की औषधि! आप देवताओं का दूत बन कर बहते हैं।"

ऋग्वेद में ही जल की प्रार्थना निम्न मंत्रों द्वारा की गयी है—

आयोहिष्टा मयोभुवस्ता न अर्जेदधातन।
महेरणाय चक्षसे॥
यो वः शिवरसस्तस्य भाजयतेहनः।
उशतीरिवमातरः॥
तस्माद रंग माम वो यस्य क्षयाय।
जिन्वथ आपो जनयथाचनः॥
ईश्वानां वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्।
अपो या चामि भेषजम्॥

"जल हमें सुख दे, सुखोपभोग के लिये पुष्ट करे, बड़ा करे और दृढ़ करे। जिस प्रकार माताएँ अपने दुधमुहें बच्चों को दूध पिलाती हैं, हे जल! उसी प्रकार तुम हमें अपना मंगलमय रस पान कराओ। तुम हमारे विकारों का नाश करो और योग्य संतान प्राप्त करने में

सहायक हो। हे परमेश्वर! हम तुमसे अन्नादिक वरणीय पदार्थों के स्वामी, मनुष्य का रक्षक और रोग मात्र की औषधि जल की याचना करते हैं।"

यजुर्वेद में पृथ्वी को मातृरूप में प्रणाम करने का संकल्प प्रस्तुत किया गया है—नमो मात्रे पृथिव्ये।

अथर्ववेद में भी यह भावना दूसरे शब्दों के आश्रय से अभिव्यक्त की गयी है--माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्या।

अपनी विश्वजनीन दृष्टि से भारतीय और लगभग सभी प्राचीन सभ्यताओं ने प्रकृति के घटकों को देव-रूप में देखने का प्रयास किया। परन्तु यहाँ एक अंतर अत्यन्त स्पष्ट है। प्राकृतिक शक्तियों के पाश्चात्य देव-रूप अधिकतर आपत्ति और कठिनाइयाँ उत्पन्न करते हैं जबकि भारतीय दृष्टि इन्हें मानव-कल्याण का कारण मानती है। सूर्य को तो 'आदित्यो ब्रह्मे' कहकर ब्रह्मा के समकक्ष स्वीकार कर लिया गया। चंद्रमा को भी ईश्वर की आँख माना गया है।

अहिंसा का आदर्श भारतीय समाज द्वारा इसीलिये स्वीकृत हो सका क्योंकि इससे मानव का अन्य प्राणियों से सम्पर्क और संलग्नता स्वीकार करने में सहायता मिलती है। इस भावना की चरम परिणति पितरों के श्राद्ध के समय गोग्रास देते हुए इस मंत्र के उच्चारण में होती है—

सौरभेय्य सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।

प्रतिगृह्णन्तु में ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः॥

यहाँ गाय को त्रैलोक्य की माता स्वीकार किया गया है।

आज अचानक नदियों के प्रदूषण का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो उठा है और नदियों को शुद्ध रखने की आवश्यकता पर बल दिया जाने लगा है। परन्तु **पद्म-पुराण** की यह वर्जना क्या आज और अधिक समीचीन नहीं है?

न दन्तधावनं कुर्यात् गंगा गर्भे विचक्षिणः।

परिधयाम्बराम्बूनि गंगा स्त्रोतसि न त्यजेत्॥

अर्थात् "गंगा में दातौन न करें। स्नान के पश्चात् भीगी धोती गंगा में न बदलें, न निचोड़ें।"

भारतीय जीवन पद्धति में प्रकृति का गुंफन अविभाज्य रूप में किया गया था। वहाँ 'प्रकृति' और 'मनुष्य' परस्पर विरोधी स्थितियाँ नहीं थीं—मनुष्य का पूरा जीवन ही प्रकृति पर आधारित और उसी से आवेष्टित था।

विष्णु के चौबीस अवतारों में मत्स्य, कूर्म, कछुआ, वाराह, हयग्रीव और नरसिंह की कल्पना है जिनमें पशु जगत् को मानवीय श्रद्धा का आधार बनाया गया है। गजवदन गणेश और उनका वाहन मूषक तो पूज्य हैं ही। सरस्वती के वाहन हंस को भी नीर-क्षीर विवेक का प्रतीक स्वीकार किया गया है। दुर्गा का वाहन सिंह है, तो विष्णु का गरुण, शिव का वाहन नंदी है, तो भैरव का वाहन कुत्ता और शीतला का वाहन गधा। कार्तिकेय का वाहन है मयूर, इंद्र का वाहन है ऐरावत हाथी और लक्ष्मी का वाहन है उल्लू। हनुमान और जाम्ववंत के कारण वानर-भालू भी श्रद्धास्पद होने से परे नहीं रह गये।

नदियाँ तो पूज्य हैं ही, हिमालय शिव के श्वसुर होने के कारण पूज्य हैं। शायद ही कोई ऐसा पर्वत हो इस देश में जिस पर किसी देवता का वास न माना गया हो। कराची से भी पन्द्रह दिन की पैदल यात्रा के बाद, लास-बेला होते हुए यात्रा की जाती थी, तप्त कीचड़-कुंड-चंद्रकूप से होते मरुतीर्थ हिंगलाज की (अब यह स्थान पाकिस्तान में है)। कहा जाता है **राम** ने ब्रह्महत्या के प्रायश्चित स्वरूप यहाँ तप किया था। जहाँ से नदियाँ निकलती हैं उन्हें भी तीर्थ की गरिमा प्रदान की गयी थी। नदियों के संगम पवित्र थे और उनके तट पर बसे नगर भी। पूरे देश का प्रत्येक स्थान पवित्रता के गौरव से मण्डित किया गया था।

सामान्य जीवन में वृक्ष कितने महत्वपूर्ण थे इसका अनुमान भारतीय साहित्य और कला में उनकी उपस्थिति देती है। सीता हरण के पश्चात् **राम** की स्थिति का वर्णन **तुलसी** ने 'पूछत चले लता तरु पाती, लिखाकर किया है। विजयादशमी के दिन शमी वृक्ष की पूजा का विधान है। बट-सावित्री व्रत के दिन

महिलाएँ बट वृक्ष या उसकी शाखा का पूजन करती है। कुश और दूब का प्रयोग अभी भी पूजा-क्रम का अनिवार्य अंग है।

भगवद्गीता में कृष्ण का कथन है—
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥

अर्थात "वृक्षों में मैं पीपल हूँ—....।" पीपल वृक्ष की महिमा स्कन्दपुराण में भी वर्णित है—

मूले विष्णुः स्थितो नित्यं स्कन्धे केशव एव च।
नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान हरिः॥
फलेअच्यूतो न संदेहः सर्बदेवैः समन्वितः॥

"पीपल की जड़ में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में हरि और फल में देवताओं से युक्त अच्युत सदैव निवास करते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।"

अधिक समय व्यतीत नहीं हुआ है जब वास्तव में कोई गृहस्थ व्यक्ति किसी फलदार या हरे वृक्ष को कटाने में पाप का अनुभव करता था। तब शायद हम यह नहीं जानते थे कि वृक्ष से मिलने वाली ऑक्सीजन का संभावित मूल्य क्या होता था। शाम के बाद पौधों की पत्तियाँ तोड़ना वर्जित था, वृक्षों को छूना भी मना किया जाता था—लोगों को जगदीश चन्द्र बोस या अन्य वैज्ञानिकों के प्रयोगों के निष्कर्ष भी अज्ञात ही थे। लेकिन आयुर्वेद के ग्रंथों में वर्णन है कि वैद्य को औषधि रूप में व्यवहार करने के लिये जिस पौधे के अंगों, उपांगों की आवश्यकता हो उसे एक सायंकाल जल से स्नान करा करा कर यह प्रार्थना करे कि "उसे औषधि कार्य के लिये उसकी आवश्यकता है और वह पुनः इस कार्य हेतु उपस्थित होगा" तत्पश्चात् दूसरे दिन जा कर वह आवश्यक छाल-मूल या फल ले आए।

कादम्बिनी पत्रिका के एक पुराने अंक में श्री शिवहरित ने एक पुस्तक का सार-संक्षेप किया था। इस में एक प्रयोग की चर्चा थी कि एक व्यक्ति जो पौधों की पत्तियां तोड़ देता था, उन्हें उखाड़ देता था उसके उस स्थान में प्रवेश करने पर पौधे एक उद्वेलन का प्रदर्शन करने लगते थे।

मेरे उपरोक्त लेख का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि हमारा अपने चारों ओर की प्रकृति से 'जीवन का जीवन के प्रति' स्नेह और कृतज्ञता का भाव होना चाहिये। कृतज्ञता का यह भाव, संलग्नता की यह प्रतीति जितनी गहरी होगी उतना ही प्रकृति की आवश्यकता पूर्ति पर—प्रकृति के कम से कम शोषण पर आधारित होगा। तब स्वाद के लिये प्राणियों की हत्या नहीं होगी। फैशन की, सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री की माँग पूरी करने के लिये पृथ्वी से प्राणियों का सफाया नहीं किया जायेगा। अंधाधुंधा वन नहीं काटे जाएंगे। नदियों के पानी में मल पदार्थों को बहने से रोका जा सकेगा। मानव जाति और प्रकृति एक दूसरे के सहयोगी होंगे और यह दुनिया एक बार फिर रहने लायक हो सकेगी। ◻◻

नेत्र चिकित्सा का अनूठा केंद्र

विख्यात सोवियत नेत्र-चिकित्सक स्व्यातोस्लाव फ्योदोरोव ने यहाँ नेत्र-चिकित्सा के एक नये केन्द्र की स्थापना की है। इससे नेत्र के सूक्ष्म शल्यकम का लाभ अधिक लोगों को प्राप्त हो सकेगा।

इस केन्द्र में बड़े पैमाने पर आँख के ऑपरेशन की एक नई विधि का भी विकास किया गया है जिसमें एक-साथ कई ऑपरेशन टेबुलों को फूल की पंखुरियों की भाँति एक-दूसरे के पास स्थापित किया गया है। ये सभी टेबुलें एक वृत्त में धीरे-धीरे घूमती हैं और पाँच विशेषज्ञ डॉक्टर बारी-बारी से अपना काम करते जाते हैं। इसके साथ ही रोगियों को एक स्वचालित प्रणाली के जरिये एक उपकरण से दूसरे तक पहुँचाने की भी व्यवस्था की गई है, जिससे 40 मिनट में ही रोगी की पूरी परीक्षा भी हो जाती है।

वह सोवियत संघ में डॉ० फ्योदोरोव के निर्देशन में संचालित संसार के सबसे बड़े नेत्र चिकित्सा और अनुसंधान केन्द्र का चौथा विभाग है। यहाँ निकट-दृष्टि और दूर-दृष्टि के रोग की चिकित्सा फ्योदोरोव द्वारा विकसित प्रणाली से ऑपरेशन के जरिये की जाती है।

एक साल के भीतर ही ऐसे चार अन्य केन्द्र विभिन्न सोवियत नगरों में कायम किये जाएंगे और इस प्रकार प्रति दिन होने वाले आँख के ऑपरेशनों की संख्या एक हजार तक पहुँच जाएगी।

वैज्ञानिक चिन्तन

डॉ० देवेन्द्र नाथ सिन्हा

विज्ञान आज मानव जीवन से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है। विज्ञान समाज की मूखभूत आशाओं आकांक्षाओं को पूरा करना चाहता है, लेकिन दोनों दौड़ में एक दूसरे के साथ रहकर भी समन्वय स्थापित नहीं कर पातीं। जनसंख्या वृद्धि चरम सीमा पर है। मानव परिवेश बदलते जा रहे हैं।

विज्ञान से हम आशा रखते हैं की वह मानव भावना को अच्छी तरह से समझे। लेकिन भावनाओं में विज्ञान से अधिक आगे बढ़ने की शक्ति है। जनसंख्या निरन्तर बढ़ रही है और धीरे-धीरे जरूरत की चीजें घटती जा रही हैं। विज्ञान का प्रयत्न रहता है की एक सुखी समाज की संरचना करे, लेकिन चिन्तन का बहाव किसी और ही ओर है। पर्यावरण पर बढ़ता बोझ आज पिछले कुछ वर्षों से अधिक दिखाई पड़ने लगा है। और साथ ही लोगों की चिन्ता इस इस तरफ अधिक केन्द्रित होने लगी है।

पर्यावरण को प्रदूषित करने का कार्य मुख्यत: मानव द्वारा होता रहा है। प्रकृति हमेशा से ही इस धरती पर रहने वालों को सभी कुछ उपलब्ध करती रही है। पर हमने अपनी जरूरतों को अत्यधिक बढ़ाया है और फिर भी प्रकृति से सन्तुलन बनाये रखना चाहा है। और यही हमारी सबसे बड़ी भूल है। फिर भी यह मानना पड़ेगा की प्रकृति में अदम्य शक्ति है, जो विपरीत अवस्थाओं में रहकर भी सामंजस्य स्थापित करती है ताकि सभी प्राणी ठीक से रह सकें।

विज्ञान को व्यापक रूप से देखना होगा। विज्ञान की उपलब्धियों को मानव कल्याण से जोड़ना होगा। अगर यह सही अर्थों में मानव हित से जुड़ी रहें तो प्रकृति अवश्य ही साथ देगी।

प्रकाश प्रकृति की एक अद्भुत देन है। चाहे रात हो या दिन, चन्द्र एवं सूर्य हमेशा से ही मानव को अपने शक्ति का परिचय कराते हैं। यह मानव की स्वयं की शक्ति पर निर्भर करता है कि वह चन्द्रमा एवं सूर्य के योगदान को कहाँ तक समझ सका है। पर्यावरण एवं प्रकृति का सहयोग चन्द्रमा एवं सूर्य के द्वारा प्राप्त होता है। यह शोध का विषय है कि इनकी उपयोगिता को हम कितना समझ पाते हैं। जीवों की गतिविधियाँ, क्रियायें, वृद्धि एवं विकास का संचालन चन्द्रमा एवं सूर्य के द्वारा होता है। सूर्य एवं चन्द्र के होते हुये हमने अपने पर्यावरण में कृतिमता का समावेश बिना सोचे समझे आवश्यकता से अधिक कर डाला है। कृत्रिम प्रकाश का उपयोग एक सीमा तक ही होना चाहिये था। बिना बिचारे हमने आधुनिकता की डाल पकड़ कर पेड़ की पुलंगी पर चढ़ना चाहा है। इसका परिणाम ही आज की चिंता है। अत: यह आवश्यक है कि पर्यावरण को अगर प्रदूषण से बचाना है तो प्राकृतिक साधनों पर ही निर्भरता अधिक रखनी पड़ेगी।

इस बात का सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि अगर जमीन के अन्दर से सभी जल, गैस, तेल इत्यादि निकल जाये तो शायद धरती धँस सकती है या पहाड़ की सभी बर्फ पिघल जाये तो नदियाँ फिर कहाँ से निकलेंगी ? यह प्रकृति का कार्य है और वह अपने इन स्रोतों का परिचालन स्वयं ही करती रहती है। किन्तु मानव का धर्म यह है कि वह प्राकृतिक उपलब्धियों का उपयोग कल्यण के कार्यों में लगाये। इसका सदुपयोग करे, जो सबके लिये हो। प्रकृति किसी एक की धरोहर नहीं है।

आधुनिकता एवं बढ़ती हुई जनसंख्या की बाढ़ से जगह की कमी होने पर जंगल काटे गये, शहर बने, नदियों की गहराई में कमी आयी, वृक्षों के द्वारा पानी का रोकना कम हुआ और धीरे-धीरे पर्यावरण पर निरन्तर भार बढ़ा। बाढ़ की विभिषिका ने अपना खुला नृत्य किया। वर्षा के समय अधिक वर्षा हुई,

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, एनाटॉमी, म० ल० बा मेडिकल कॉलेज, झांसी—284128

बाढ़ आयी। या सूखा ही पड़ गया, गर्मी के दिन में अत्यधिक सूखा। यह अब धीरे-धीरे ऐसा क्यों होने लगा है? हम सोचें एवं जागृत हों। कृत्रिमता से बचें अन्यथा दुर्घटनायें निरन्तर घटती ही रहेंगी। आज नदियों में मानव द्वारा की हुई गंदगियों और महानगरों से गुजरी हुई नदियों को देखें तो लगता है धीरे-धीरे इन नदियों का नाम ही मिट जायेगा। पुरातन से संजोयी हुई इनके प्रति आस्था एवं विश्वास लुप्त हो रहा है। यह एक विशेष चिन्ता का विषल है। हम नदियों की सफाई की परियोजना तो बनाते हैं, लेकिन परिणाम क्या होता है, यह सर्वविदित है। मैं फिर कहना चाहूँगा कि प्रकृति से बिना मेल-जोल वाली परियोजनायें इच्छित परिणाम नहीं दे सकतीं। प्रकृति को छेड़ना वैसा ही होता है जैसे स्वयं को अँधेरे में डालना। इस कार्य में मानव को अधिक प्रयास करना होगा, क्योंकि मानव द्वारा ही पर्यावरण का प्रदूषण हुआ है।

जल की अवस्था तो सोचनीय है ही, वायुमण्डल भी कम प्रदूषित नहीं। आज महानगरों की परिभाषा एवं उसका महत्व उद्योगों से नापा जाता है। उन मलिन बस्तियों से नहीं जो महानगरों से लगी रहती हैं और जिनमें मनुष्य भेड़-बकरियों की तरह ठुसे रहते हैं।

परमाणु युद्ध से अब सभी डरने लगे हैं। जिनके पास परमाणु हथियार हैं वे और जो अब बनाना चाहते हैं। वे भी हिरोशिमा एवं नागासाकी पर बमबारी के परिणाम मिलते हैं। विश्व की यह अत्यधिक चिन्ता है। आशा है वैज्ञानिक इस ओर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे तथा विज्ञान जगत् को कलंक से बचायेंगे। अब वह दिन लद गए जब विनाश करने वाली वस्तुओं की खोज पर 'नोबेल पुरस्कार' मिलते थे; वैज्ञानिकों को परमाणु युद्ध के खतरे को समाप्त करने के लिये विश्व में एक नई चेतना जागृत करनी होगी। वैज्ञानिकों की चिन्ता इस तरफ अधिक होनी चाहिये।

आज भी विश्व में गरीबी का बोलवाला है। रोटी, कपड़ा और मकान, जो बुनियादी जरूरतें हैं— का समाधान वैज्ञानिकों के लिये चुनौती है।

इस धरती को अभी हमने ठीक से संवारा ही नहीं, गन्दा करके हम जीवन का नया आयाम ढूढ़ने के लिये आकाश की तरफ बढ़ने लगे। देखिये, कहीं वहाँ का पर्यावरण भी दूषित न हो जाये। शोध इस पर भी होनी चाहिये की क्या इन वैज्ञानिक उपलब्धियों का प्रभाव अहितकर तो नहीं होगा। विज्ञान के शोधों में लगाम की आवश्यकता है।

परमाणु रियेक्टर बने लेकिन क्या कोई रियेक्टर यह गारण्टी दे सकता है कि इससे भविष्य में विकिरण की दुर्घटना नहीं होगी? चेरनोबिल दुर्घटना इस शताब्दी की विभीषिका का ज्वलन्त उदाहरण है। रियेक्टर बनाये गए लेकिन भविष्य में होने वाले बुरे परिणामों को ध्यान में रखकर नहीं।

वैकल्पिक ऊर्जा की खोज में आज निरन्तर प्रगति हो रही है। यह सही अर्थों में मानव के लिए कल्याणकारी होगा। मानव ने सूर्य के प्रभाव को समझा। सूर्य के प्रकाश की रोशनी से खाना पकाया, रात्रि में बिजली जलाई। यह कोई नई बात नहीं है। इस सृष्टि की रचना से ही प्रकाश, पेड़-पौधों को भोजन बनाने में ऊर्जा का कार्य करता रहा है। पेड़-पौधों पर आज भी हम निर्भर हैं। क्या यह सूर्य के प्रकाश के बिना सम्भव हो सकेगा? यह प्रक्रिया अनन्त है, क्योंकि मानव रहे या न रहे, सूर्य एवं चन्द्र रहेंगे। ऊर्जा सृष्टि के रचना के साथ ही संलग्न है। हमें इसके अन्य रूपों को ढूँढ़ना है। मानव के कल्याण के लिए उनका भरपूर उपयोग करना है।

मस्तिष्क का उपयोग अब कम्प्यूटरों के माध्यम से होने लगा है। यह मानव निर्मित है और अवश्य ही इसका प्रयोग वैज्ञानिक गतिविधियों में होनी चाहिये। कहीं ऐसा न हो जाये की कम्प्यूटर मानव पर हावी होकर मानव मस्तिष्क को निर्जीव कर दें। यह कैसी विडम्बना है कि कम्प्यूटरों पर विश्वास अधिक होने लगा है। मानव मस्तिष्क की उन सूक्ष्म कोशिकाओं का क्या होगा जिनके कारण आज मानव अपने को विश्व में अन्य जीवों से श्रेष्ठ समझता है? मानव मस्तिष्क की कोशिकाओं का प्रयोग तो निरन्तर,

निर्बाध गति से होनी चाहिये। मानव सभ्यता एवं संस्कृति का अवलोकन करें। प्राकृतिक आपदायें जैसे तूफान, भूकम्प, वर्षा न होना, सूखा पड़ना इत्यादि क्यों होता है, इनका कारण ज्ञात करना आवश्यक है। कहीं ऐसा तो नहीं कि ये सब पर्यावरण असन्तुलन के कारण ही हैं ? क्या इसके कारण प्रकृति अपना खोया हुआ सन्तुलन ठीक तो नहीं करती है ? यह कैसी पहेली है कि पर्वतों को डाइनामाइट से हम तोड़ देते हैं लेकिन अगर भूकम्प आ जाये तो प्राकृतिक विपदा की संज्ञा देते हैं। शायद प्रकृति को हम निर्जीव समझते हैं और अपने आधीन रखना चाहते हैं। शोध आवश्यक है कि हम किस सीमा तक प्राकृतिक गतिविधियों के विपरीत कार्य कर सकते हैं।

जनसंख्या वृद्धि के साथ ही कुपोषण की समस्या जुड़ी हुई है। रोग तरह-तरह के रूपों में मानव को कमजोर करते जा रहे हैं। कुछ रोग अभी भी लाइलाज हैं। शोधों से भी कुछ उपाय नहीं निकला। ज्ञान बढ़े, पुस्तकें लिखी गयीं, विचारों की एक श्रृंखला का अभ्युदय हुआ। पर स्थिति आज भी वैसी ही है। कैंसर रोग आज भी प्राणघातक है।

मानव शरीर की रचना कुछ रसायनिक तत्वों से हुयी है। वही तत्व कोशिकाओं के केन्द्रक में रहकर वृद्धि एवं विकास की गति पर नियन्त्रण रखते हैं। कुछ शोध कार्य इन्हीं के आस-पास हो तो कुछ रोगों के कारणों पर प्रकाश डाला जा सकता है एवं उनसे बचाव के उपायों की जानकारी भी मिल सकती है। मानव शरीर में रोगों से लड़ने के लिये कोशिकाओं की विशाल सेना है जो कवच के रूप में शरीर के अंगों एवं भागों में निवास करती हैं। इनकी कार्य पद्धति पर निगरानी एवं खोज आवश्यक है। मृत्यु सत्य है। यह प्रकृति का नियम है। कारण जो भी हो, लेकिन समय से पहले न हो, इसकी खोज तो आवश्यक है ही। हम अपनी आनुवंशिकता को जीवित रख सकते हैं।

अन्त में विज्ञान की वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर चिन्तन आवश्यक है। आज पढ़ाई पुस्तकों का रूप लेकर बोझ बनती जा रही है। प्रयोगशाला का रूप सिकुड़ता जा रहा है। विज्ञान के सभी सिद्धान्तों का वर्णन पुस्तकों में मिलता है लेकिन प्रयोगात्मक रूप में उसको छात्रों तक हम कम पहुँचा पाते हैं। यह तो अनुभव की बात है। विज्ञान की शिक्षा का निर्धारण कुछ समझकर करना होगा। इसका दायित्व सभी का है। पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले तथा नीति निर्धारण करने वाले। इस क्षेत्र में कार्य करने वालों को स्वयं उदाहरण बनकर आदर्श रखना होगा। अगर हमारे पास प्रयोगशाला बनाने के लिये धन नहीं है तो कुछ वैज्ञानिक गतिविधियों का अवलोकन प्रकृति के अन्य रूपों को देखकर किया जा सकता है। उनको पुस्तकों एवं प्रयोगशालाओं में न देखकर प्रकृति में देखें तो सही रूप में ज्ञान अर्जित किया जा सकता है क्योंकि ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन तो प्रकृति ही है।

प्रकृति के प्रति सच्ची साधना ही वैज्ञानिक खोज की मूल अवधारणा होनी चाहिये। इस तरह मनुष्य प्रकृतिक को अपनी आशाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप ढाल सकता है। यदि वैज्ञानिक चिन्तन इस ओर केन्द्रित रहेगा, तो निश्चय ही मानव का भविष्य सुनहरा होगा। □□

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठको

लगभग एक माह के अंतराल के बाद पत्रिका के माध्यम से आप सबसे पुनः बात कर रहा हूँ। इस बार आपको सुनाने के लिये बहुत से शुभ समाचार हैं पर एकपृष्ठीय विज्ञान वक्तव्य में समझ में नहीं आ रहा है बात कहाँ से शुरू करूँ। आइए 'अग्नि' के सफल प्रक्षेपण से बात की जाए।

22 मई को प्रक्षेपास्त्र 'अग्नि' के सफल परीक्षण के साथ ही भारतीय वैज्ञानिकों ने एक नया इतिहास रचा है। उड़ीसा के चाँदीपुर नामक स्थान से 7 बज कर 17 मिनट पर 'अग्नि' को छोड़ा गया। बंगाल की खाड़ी में भारतीय नौसेना के जहाज और हेलीकॉप्टर इसके पृथ्वी की कक्षा में प्रवेश को देख रहे थे। 2,500 किलोमीटर की दूरी तक जा सकने वाले सतह से सतह (सर्फेस टू सर्फेस) इस प्रक्षेपास्त्र के प्रक्षेपण से भारत अब संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस, फ्रांस और चीन की श्रेणी में आ गया है।

'अग्नि' पूर्णरूपेण भारतीय तकनीकी का कमाल है। इसे बनाने में 400 वैज्ञानिक एवं रक्षा विभाग के विशेषज्ञ, 20 रक्षा अनुसंधानशालायें, 60 अन्य संस्थायें और विश्वविद्यालयों ने भाग लिया। इसकी 'ऐकुरेसी' बहुत अच्छी है। इसमें कम्प्यूटरों का अधिक इस्तेमाल हुआ है। प्रयुक्त सामान नये किस्म के हैं यथा रोबोटिक्स आदि। आज सारी दुनिया की निगाहें भारत की ओर है क्योंकि वे भलीभाँति समझने लगे हैं कि इस तकनीकी को और अधिक विकसित करने में भारत पूरी तरह से सक्षम है।

(2)

आप सबको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' परिवार बढ़ रहा है। दिल्ली से 'खेती' पत्रिका के प्रधान संपादक श्री **रमेश दत्त शर्मा** और 'आविष्कार' पत्रिका के वरिष्ठ सम्पादक **श्री डी० एन० भटनागर** ने हमें सूचित किया है कि दिल्ली में 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की शाखा खुल गई है। दिल्ली शाखा की प्रथम सभा सम्पन्न हो गई है और इस शाखा के निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये हैं—

अध्यक्ष—डॉ० हरि सरन सिंह विश्नोई, उपाध्यक्ष—श्री रमेश दत्त शर्मा, मंत्री—श्री डी० एन० भटनागर, संयुक्त मंत्री—श्री कुलदीप शर्मा, कोषाध्यक्ष—श्री विजय कुमार श्रीवास्तव, सदस्य—डॉ जगदीप सक्सेना, श्री राजेन्द्र कुमार राय, श्री तुरशन पाल पाठक, श्री श्याम सुन्दर शर्मा, श्री प्रेमानन्द चंदोला, श्री सुभाष लखेड़ा, श्री हरीश अग्रवाल। इस दिल्ली शाखा में 51 सदस्य हो गए हैं तथा और अधिक सदस्य बनाने का कार्यक्रम जारी है।

(3)

विज्ञान परिषद् में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' के तत्वावधान में 7-8 अप्रैल 1989 को द्विदिवसीय शोध संगोष्ठी सम्पन्न हुई। उस अवसर पर प्रस्तुत शोध-पत्रों को 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' के खण्ड 32, अंक 2, अप्रैल 1989 विशेषांक 'संकुल रसायन—विभिन्न आयाम' के रूप में प्रकाशित किया गया है। इसके 192 पृष्ठों में कुल 27 शोधपत्र संकलित हैं। प्रसन्नता की बात है कि 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' के प्रधानमंत्री श्री श्रीधर शास्त्री जी ने इस विशेषांक में सम्मिलित दो सर्वश्रेष्ठ शोधपत्रों पर दो पुरस्कार 1001 रुपये के (कुल 2002 रुपये) प्रदान करने की घोषणा की है। तीन सदस्यों की एक समिति शीघ्र ही पुरस्कार का निर्णय करेगी।

(4)

7 जून को विज्ञान परिषद् प्रयाग में 'पर्यावरण और हमारा दायित्व' विषय पर संगोष्ठी हुई। इसमें 30 लोगों ने भाग लिया। एक दर्जन से अधिक वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किए। लगभग एक दर्जन आलेख हमें प्राप्त हुये हैं। इस संगोष्ठी की रिपोर्ट और प्रस्तुत आलेख 'विज्ञान' के जुलाई 1989 अंक में विशेषांक के रूप में प्रकाशित होंगे।

(5)

'विज्ञान' पत्रिका के कलेवर में हम शीघ्र ही परिवर्तन कर रहे हैं। यह परिवर्तन निश्चय ही सुधार की दिशा में होगा। इसके पृष्ठों की संख्या बढ़ाने का भी हमारा विचार है। स्तर भी सुधारना चाहते हैं। लेखों का स्तर सुधारना तो प्रबुद्ध लेखकों का कार्य है। हमें आशा ही नहीं विश्वास भी है कि हम पाठकों को आगे और भी अच्छी सामग्री दे सकेंगे।

शुभकामनाओं सहित

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण,

यह कितना सुखद संयोग है कि जिस वर्ष देश के प्रथम प्रधान मन्त्री और बच्चों के प्यारे 'चाचा नेहरू' की जन्मशती देश-विदेश में बड़े धूम-धाम से मनाई जा रही है, वही वर्ष 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' द्वारा विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए अप्रैल 1915 से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'विज्ञान' का अमृत वर्ष (पचहत्तरवाँ वर्ष) है।

पाठकों को यह बात जानकर प्रसन्नता होगी कि विज्ञान परिषद् भवन का शिलान्यास 4 अप्रैल सन् 1956 को पं० जवाहरलाल नेहरू के कर-कमलों द्वारा ही सम्पन्न हुआ था। भवन का निर्माण नेहरू जी के आशीर्वाद से हुआ था। संभवतः यही कारण है कि आज विज्ञान परिषद् का अपना विशाल भवन है। इस भवन में 'हिन्दी संस्थान' (लखनऊ) की एक शाखा है, परिषद् की अपनी लायब्रेरी है। लगभग 500 व्यक्तियों के बैठने का एक विशाल सभागार है, एक तहखाना और ऊपरी मंजिल पर एक कमरे में 'डॉ० रत्न कुमारी स्वाध्याय संस्थान' है तथा अब अलग से स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती के निवास के लिए उनके शिष्यों द्वारा बनवायी गई 'ऋतम्भरा' नामक 'कुटी' भी है।

परिषद् ने स्वर्गीय पं० जवाहर लाल नेहरू के उपकारों को सदैव याद रखा है। नेहरू जी के इस जन्मशती वर्ष में 'भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर' के आर्थिक सहयोग और संयुक्त तत्वाधान में परिषद् ने हिन्दी-उर्दू में बाल विज्ञान साहित्य लेखन पर सितम्बर माह में एक 6 दिवसीय कार्यशाला का भी आयोजन किया था। इसकी एक संक्षिप्त रिपोर्ट अलग से इसी अंक में आपको पढ़ने को मिलेगी।

यह अंक नेहरू जी को समर्पित है। इसमें आपको नेहरू जी के जीवन और उनके द्वारा विज्ञान के प्रसार-प्रचार तथा देश में 'साइंसी मिजाज' या 'साइन्टिफिक टेम्पर' पैदा करने संबंधी प्रयासों की एक झलक अवश्य मिलेगी। इस अंक में हमने 'विज्ञान' के शिलान्यास अंक से पंडित जी का वह भाषण भी उद्धृत किया है, जिसे पंडित जी ने भवन के शिलान्यास के अवसर पर दिया था। इसके अतिरिक्त 'पिता के पत्र पुत्री के के नाम' नेहरू जी की पुस्तक से भी कुछ सामग्री प्रस्तुत की गई है।

कार्यशाला (11–16 सितम्बर) के अवसर पर परिषद् में आये विद्वानों ने आलेखों के माध्यम से बाल विज्ञान संबंधी साहित्य के रचने में जो कठिनाइयाँ जो समस्यायें आती हैं और जो संभावित समाधान हैं, पर अपने विचार प्रकट किए हैं। उन विचारों से आपका साक्षात्कार भी इस अंक में होगा। यही नहीं, कार्यशाला में तैयार किए गए कुछ आलेख भी आपके समक्ष प्रस्तुत हैं।

जब यह अंक मुद्रण के लिए प्रेस में था उसी बीच प्रयाग की अंतर्राष्ट्रीय स्तर की एक उच्चस्तरीय शोध संस्था—'नेशनल एकेडमी ऑव साइन्सेज इण्डिया' ने 5 नवम्बर से 12 नवम्बर तक एक कार्यक्रम का आयोजन किया। विज्ञान को लोकप्रिय बनाने, विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से ही 'नेशनल एकडेमी' ने विशाल स्तर पर इसे आयोजित किया। नेशनल एकेडमी इस बात के लिए विशेष रूप से साधुवाद की पात्र है कि यह सारा आयोजन राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से हो रहा है। इसमें इण्टर स्तर तक के विद्यार्थी और शिक्षकों की भूमिका अहम होगी। क्या ही अच्छा हो यदि नेशनल एकेडमी का अनुकरण अन्य अंग्रेजी भाषा-भाषी संस्थाएँ करें। भारत की विभिन्न वैज्ञानिक अकादमियाँ जब अंग्रेजी के ऊँचे परकोटों का मोह त्याग कर हिन्दी की कुटियो में आयेंगी, तभी विज्ञान जन-जन तक पहुँचेगा, तभी पं० नेहरू के सपनों का भारत प्रगति पथ पर आगे बढ़ेगा क्योंकि तभी जन मानस में 'साइंटिफिक टेम्पर' पैदा हो सकेगा। नेशनल एकेडमी को बहुत-बहुत बधाई।

हाँ एकेडमी के लोकप्रिय विज्ञान संबंधी सत्र, जिसका शुभारंभ 6 नवम्बर को हुआ, उसके प्रारंभ में ही नेशनल एकेडमी के अध्यक्ष डॉ० एम० एस०

स्वामीनाथन ने प्रो० उमाशंकर जी से निवेदन किया कि वे जनभाषा (हिन्दी) में ही बोलें। यह बात दूसरी थी कि अपने विचारों को अच्छी तरह सम्प्रेषित करने के लिए डॉ० स्वामीनाथन ने व्यक्तिगत कठिनाइयों के कारण अपना भाषण अंग्रेज़ी में ही दिया। फिर भी अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से अनुसंधानकर्त्ताओं को उच्चस्तरीय शोध सामग्री उपलब्ध कराने वाली संस्था का यह कार्य निश्चय ही प्रशंसनीय है, अनुकरणीय है, वंदनीय है।

एक बात और। विज्ञान परिषद् के प्राण स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती जी पिछले दिनों विदेश में थे। यहीं वे अस्वस्थ हुए। उन्हें भारत लाया गया और बम्बई के प्रसिद्ध हिन्दुजा अस्पाल में उनका प्रॉस्टेट ग्लैण्ड का सफल ऑपरेशन हुआ। स्वामी जी अभी वहीं स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं और 15 नवम्बर तक इलाहाबाद पहुँच रहे हैं।

वैसे प्रेस की कठिनाईयों के कारण जुलाई अंक के प्रकाशन के बाद पाठकों से सम्पर्क टूट-सा गया था, पर आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अब सब कुछ ठीक हो गया है और 'विज्ञान' आपको नियमित पढ़ने को मिलेगी।

आशा है आपका स्नेह, आपका आशीर्वाद, आपका सहयोग यथावत् मिलता रहेगा।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

स्वतन्त्र भारत में विज्ञान की नींव रखने वाले
पं० जवाहर लाल नेहरू

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

जवाहर लाल नेहरू का जन्म 14 नवम्बर 1889 को इलाहाबाद में हुआ था। वे पं० मोतीलाल नेहरू की एकमात्र संतान थे। मोतीलाल जी अपने समय के चोटी के वकील थे। नेहरू परिवार मूलरूप से कश्मीर का था।

सन् 1900 में बालक जवाहर के लिए एफ. टी. ब्रूक्स नाम के एक अंग्रेज ट्यूटर रखे गए। जवाहर को पढ़ाने के लिए ब्रूक्स महोदय की संस्तुति श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने की थी। ब्रूक्स महोदय ने जवाहर लाल को केवल तीन वर्ष पढ़ाया, किन्तु इतने थोड़े समय में ही बालक के मन-मस्तिष्क में अध्ययन और विज्ञान के प्रति प्रेम की एक ऐसी लौ जला गए जो उनके जीवन के अन्त तक तेज़, और तेज़ होती गई।

1905 में उन्हें लन्दन के हारो स्कूल में दाखिल करा दिया गया। वहाँ की शिक्षा पूरी करने के बाद कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज से उन्होंने 'ट्रिपास इन साइन्स' उत्तीर्ण किया। बाद में बार-एट-ला की उपाधि लेकर 1912 में भारत वापस आ गए और अगले ही वर्ष इलाहाबाद उच्च न्यायालय में वकील हो गए। किन्तु उनका मन वकालत में नहीं लगा। महात्मा गाँधी का स्वाधीनता आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। युवा नेहरू सब कुछ छोड़कर स्वाधीनता आन्दोलन से सक्रिय रूप से जुड़ गए। वे जन-जन के आँखों के तारे और आन्दोलन के अग्रणी नेता के रूप में उभर कर सामने आये। जेल-यात्राओं का सिलसिला जो शुरू हुआ तो 1946 तक चलता ही रहा। इस दौरान वे विज्ञान से गहरे जुड़े रहे। निर्धन और पिछड़े भारत की प्रगति का आधार वे विज्ञान को मानते थे। लोगों के पिछड़ेपन और अंधविश्वास को दूर करने के लिए वे 'साइंसी मिजाज' पैदा करने पर ज़ोर देते थे।

वे 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस एसोसिएशन' के प्रति प्रारम्भ से ही आकृष्ट थे। 1938 में 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस एसोसिएशन' की 'रजत जयंती' के अवसर पर नेहरू ने एक पत्र में एसोसिएशन से आग्रह किया था कि देश के विकास के लिए विज्ञान कांग्रेस एक ऐसी योजना तैयार करे जिसमें सामाजिक और आर्थिक प्रगति अंतर्निहित हो, अन्यथा देश पतन के गर्त में चला जायेगा।

1942-43 के लिए भारतीय विज्ञान कांग्रेस एसोसिएशन के अध्यक्ष (जेनरल प्रेसीडेन्ट) भी निर्वा-

चित हुए थे, पर जेल में रहने के कारण 1943 के अधिवेशन की अध्यक्षता न कर सके।

1947 में नेहरू पुन: भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और 1947 के अधिवेशन की अध्यक्षता की। फिर तो इसके बाद शायद ही कोई ऐसा वर्ष रहा हो जब वे भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन में न गए हों। उन्होंने इन अधिवेशनों में वैज्ञानिकों को नीति निर्धारण की नई दिशायें भी दीं।

देश की स्वतन्त्रता के बाद के प्रारम्भिक वर्षों में पं० जवाहरलाल नेहरू ने विज्ञान और तकनीकी को ग्रामीण क्षेत्रों और ग्रामवासियों तक पहुँचाने की ओर हमारे नीति निर्धारकों का ध्यान आकर्षित किया था। तब से लेकर आज तक इस विषय से सम्बद्ध नीतियों और परिप्रेक्ष्य में अनेकानेक परिवर्तन होते रहे हैं। नेहरू जी के मित्र एवं सलाहकार डॉ० एस० एस० भटनागर, होमी भाभा तथा कुछ अन्य लोगों ने मिलकर विज्ञान और तकनीकी पर आधारित उन्नत भारत को निश्चित आकार और रूपरेखा प्रदान करने का प्रयत्न किया था। सन् 1958 में संसद में एक विज्ञान नीति (Science Policy) विषयक प्रस्ताव के माध्यम से वैज्ञानिक प्रगति के सम्बन्ध में अपनी निश्चित नीतियों की उद्घोषणा करने वाला सम्भवतः सर्वप्रथम देश भारत था।

"अद्वितीय विद्वत्ता, मौलिक चिंतन और अक्षय सांस्कृतिक धरोहरों की लम्बी परम्परा के परिप्रेक्ष्य में भारत जैसे महान देश का यह एक स्वाभाविक दायित्व बन जाता है कि आज की मानवता के महानतम उद्यम 'विज्ञान' की प्रगति की राह पर वह भी कदम से कदम मिला कर चले।"

अपने सार्वजनिक वक्तव्यों के द्वारा भी पं० नेहरू सदैव जनसाधारण के सामान्य व्यवहार में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Temper) अथवा साइंसी मिज़ाज विकसित करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। उनका कहना था, "सभी देश न्यूनाधिक रूढ़िवादी होते हैं, पर हमारा देश कुछ ज़्यादा ही रूढ़िवादी है। यहाँ के लोगों के विचारों में मैं एक विचित्र रिक्तता का अनुभव करता हूँ और यह रिक्तता मुझे उन वैज्ञानिकों के विचारों में भी मिलती है जो विभिन्न अनुसंधानशालाओं में वैज्ञानिक शोधों में रत हैं किन्तु जो जीवन के अन्य क्षेत्रों में वैज्ञानिक तौर-तरीकों, वैज्ञानिक आचार-विचारों और समस्याओं के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने से कोसों दूर हैं।" ऐसी अवस्था में जबकि भारत की 65% जनता अपढ़ और अशिक्षित है, जनसाधारण के मध्य ज्ञान के प्रसार की नितान्त आवश्यकता है।

भारत जैसे जनतांत्रिक देश में तो यह आवश्यक है कि हमारी वैज्ञानिक शिक्षा हमारी आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर होनी चाहिए। ऐसी परिस्थितियों में आज के वैज्ञानिकों का दायित्व कई गुना बढ़ जाता है। आज वैज्ञानिकों के समक्ष जो तीन महत्त्वपूर्ण दायित्व हैं उनमें सर्वोपरि है उनके शोधों का उच्च स्तरीय होना, फिर उनका लाभप्रद होना तथा अन्ततः वैज्ञानिकों द्वारा स्वयं को अपने कार्य से भावनात्मक स्तर तक जुड़ा हुआ अनुभव करना। यह कार्य कठिन और चुनौतीपूर्ण होते हुए भी फलप्रद है। एक सुलझे वैज्ञानिक के लिए इन सभी पक्षों में सन्तुलन बनाये रखते हुए इन्हें सम्पन्न करना कठिन हो, ऐसी बात नहीं।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में प्रारम्भ में विज्ञान और तकनीकी के विकास की गति धीमी रही। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (C. S. I. R.) के तत्वावधान में अनेक वैज्ञानिक और तकनीकी प्रयोगशालाओं की स्थापना की गई। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् (I. C. A. R.), भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (I. A. R. I.) तथा भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् (I. C. M. R.) सरीखी कुछ अन्य संस्थाएँ भी अस्तित्व में आईं। कुछ पूर्णतया नवीन विषयों को भी हाथ में लिया गया और उन पर गम्भीरता से कार्य शुरू किया गया, यथा—आणविक ऊर्जा, अंतरिक्ष विज्ञान तथा प्रतिरक्षा विज्ञान। इनके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों में प्राणिविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, धातु विज्ञान तथा खनिज सर्वेक्षण जैसे विषयों में शोध के लिए अनेक नये अवसर और सुविधाएँ प्रदान की गईं। नेहरू जी की जीवन लीला की समाप्ति तक उपरोक्त अधिकांश संस्थाओं के गठन का कार्य पूर्ण हो चुका था। ☐

जानवर कब पैदा हुए | पं० जवाहर लाल नेहरू

हम बतला चुके हैं कि शुरू में छोटे-छोटे समुद्री जानवर और पानी में होने वाले पौधे दुनिया की जानदार चीजों में थे। वे सिर्फ पानी में ही रह सकते थे और अगर किसी वजह से बाहर निकल आते और उन्हें पानी न मिलता तो जरूर मर जाते होंगे। जैसे आज भी मछलियाँ सूखे में आने से मर जाती हैं। लेकिन उस ज़माने में आजकल से कहीं ज्यादा समुद्र और दलदल रहे होंगे। वे मछलियाँ और दूसरे पानी के जानवर जिनकी खाल जरा चिमड़ी थी, सूखी ज़मीन पर दूसरों से कुछ ज्यादा देर तक जी सकते होंगे। क्योंकि उन्हें सूखने में देर लगती थी, इसलिए नर्म मछलियाँ और उन्हीं की तरह के दूसरे जानवर धीरे-धीरे कम होते गए क्योंकि सूखी ज़मीन पर ज़िन्दा रहना उनके लिए मुश्किल था और जिनकी खाल ज्यादा सख्त थी वे बढ़ते गए। सोचो कितनी अजीब बात है। इसका यह मतलब है कि जानवर धीरे-धीरे अपने को आस-पास की चीजों के अनुकूल बना लेते हैं। तुमने लन्दन के अजायबघर में देखा था कि जाड़ों में और ठण्डे देशों में जहाँ कसरत से बर्फ गिरती है, चिड़ियाँ और जानवर बर्फ की तरह सफेद हो जाते हैं। गरम देशों में जहाँ हरियाली और दरख्त बहुत होते हैं वे हरे या किसी दूसरे चमकदार रंग के हो जाते हैं। इसका यह मतलब है कि वे अपने को उसी तरह का बना लेते हैं जैसे उनके आस-पास की चीजें हों। उनका रंग इसलिए बदल जाता है कि वे अपने को दुश्मनों से बचा सकें, क्योंकि अगर उनका रंग आस-पास की चीजों से मिल जाय तो वे आसानी से दिखाई न देंगे। सर्द मुल्कों में उनकी खाल पर बाल निकल आते हैं जिससे वे गर्म रह सकें। इसीलिए चीते का रंग पीला और धारीदार होता है, उस धूप की तरह, जो दरख्तों से होकर जंगल में आती है। वह घने जंगल में मुश्किल से दिखाई देता है।

इस अजीब बात का जानना बहुत ज़रूरी है कि जानवर अपने रंग-ढंग को आसपास की चीजों से मिला देते हैं। यह बात नहीं है कि जानवर अपने को बदलने की कोशिश करते हों, लेकिन जो अपने को बदलकर आसपास की चीजों से मिला देते हैं उनका ज़िन्दा रहना ज्यादा आसान हो जाता है। उनकी तादाद बढ़ने लगती है, दूसरों की नहीं बढ़ती। इससे बहुत-सी बातें समझ में आ जाती हैं। इससे यह मालूम हो जाता है कि नीचे दरजे के जानवर धीरे-धीरे ऊँचे दरजों में पहुँचते हैं और मुमकिन है कि लाखों बरसों के बाद आदमी हो जाते हैं। हम ये तब्दीलियाँ, जो हमारे चारों तरफ होती रहती है, देख नहीं सकते, क्योंकि वे बहुत धीरे-धीरे होती हैं और हमारी ज़िंदगी कम होती है। लेकिन प्रकृति अपना काम करती रहती है और चीजों को बदलती और सुधारती रहती है। वह न तो कभी रुकती है और न आराम करती है।

तुम्हें याद है कि दुनिया धीरे-धीरे ठंडी हो रही थी और इसका पानी सूखता जाता था जब ज्यादा ठंडी हो गयी तो जलवायु बदल गया और उसके साथ ही बहुत-सी बातें बदल गई। ज्यों-ज्यों दुनिया बदलती गई जानवर भी बदलते गए और नए-नए किस्म के जानवर पैदा होते गए। पहले नीचे दरजे के दरियाई जानवर पैदा हुए, फिर ज्यादे ऊँचे दरजे के। इसके बाद जब सूखी ज़मीन ज्यादा हो गई तो ऐसे जानवर पैदा हुए जो पानी और ज़मीन दोनों ही पर रह सकते हैं, जैसे—मगर या मेंढक। इसके बाद वे जानवर पैदा हुए जो सिर्फ ज़मीन पर रह सकते हैं, और तब हवा में उड़ने वाली चिड़ियाँ आईं।

मैंने मेढक का जिक्र किया है। इस अजीब जानवर की ज़िन्दगी से बड़ी मजे की बातें मालूम होती है। साफ समझ में आ जाता है कि दरियाई जानवर बदलते-बदलते क्यों कर ज़मीन के जानवर बन गए। मेढक पहले मछली होता है लेकिन बाद में वह खुश्की का जानवर हो जाता है और दूसरे खुश्की के जानवरों की तरह से साँस लेता है। उस पुराने ज़माने में जब खुश्की के जानवर पैदा हुए बड़े-बड़े जंगल थे। ज़मीन सारी की सारी झावर रही होगी, उस पर घने जंगल रहे होंगे। आगे चलकर ये चट्टान और मिट्टी

के बोझ से ऐसे दब गए कि वे धीरे-धीरे कोयला बन गए। तुम्हें मालूम है कोयला गहरी खानों से निकलता है, ये खानें असल में पुराने ज़माने के जंगल हैं।

शुरू में ज़मीन के जानवरों में बड़े-बड़े साँप, छिपकलियाँ और घड़ियाल थे। इनमें से बाज 100 फीट लम्बे थे। 100 फीट लम्बे साँप या छिपकली का जरा ध्यान तो करो। तुम्हे याद होगा कि तुमने इन जानवरों की हड्डियाँ लन्दन के अजायबघर में देखी थीं।

इसके बाद वे जानवर पैदा हुए जो कुछ-कुछ हाल जानवरों से मिलते थे। ये अपने बच्चों को दूध पिलाते थे। पहले वे भी आजकल के जानवरों से बहुत बड़े होते थे। जो जानवर आदमी से बहुत मिलता-जुलता है वह बन्दर या बनमानुस है। इससे लोग ख्याल करते हैं कि आदमी बनमानुस की नस्ल है। इसका मतलब है कि जैसे और जानवरों ने अपने को आस-की चीजों के अनुकूल बना लिया और तरक्की करते गए इसी तरह आदमी भी पहले एक ऊँचे किस्म का बनमानुस था। यह सच है कि वह तरक्की करता गया या यों कहो कि प्रकृति उसे सुधारती रही। पर आज उसके घमण्ड का ठिकाना नहीं। यह ख्याल करता है कि और जानवरों से उसका मुकाबिला ही क्या। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि हम बन्दरों और बनमानुसों के भाई बन्द हैं और आज भी शायद हम में से बहुतेरों का स्वभाव बन्दरों ही जैसा है। ☐☐

('पिता के पत्र पुत्री के नाम' से साभार)

विज्ञान परिषद् भवन के शिलान्यास के अवसर पर
पंडित जवाहर लाल नेहरू के भाषण का सारांश

भारत के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने प्रयाग विश्वविद्यालय प्रांगण में नवनिर्मित जे० के० इंस्टीट्यूट भवन का उद्घाटन एवं 'विज्ञान परिषद्' का शिलान्यास करते हुए निम्न विचार प्रकट किये—

मुझे विज्ञान परिषद् से दिलचस्पी है जैसा कि मैंने आचार्य नरेन्द्रदेव से कहा था, मैं उसके शिलान्यास के लिये आज यहाँ आया हूँ। इस सम्बन्ध में मैंने श्री हीरालाल खन्ना से वचन दिया था कि आगामी बार मैं इलाहाबाद आऊँगा, उसका पत्थर ठोक करूँगा। आज मैं यहाँ आया हूँ और यह चाहता हूँ कि विज्ञान परिषद् ऊपर हो और अपने उन उद्देश्यों को पूरा करे।

जब मैं कुछ दिन पहले दो एक बार यहाँ आया था तो इस इन्स्टीट्यूट में न फर्नीचर था और न उसमें पढ़ने या पढ़ाने वाले ही थे। बड़ी खुशी की बात है कि अब उसमें कुछ फर्नीचर हो गया है और उस पर कुछ लोग बैठने भी लगे हैं।

आज का ज़माना बहुत तेज़ी से आगे बढ़ने का है। जब कहीं हम किसी बात में ढिलाई करेंगे तो काम न तेजी से होगा और न मजबूती से। हमें समझना है कि ज़माना क्या है, किस दुनिया से हम गुजर रहे हैं। दुनिया की खबरें आप अखबारों में पढ़ते हैं। उसमें एटमबम का नाम सुना है। वह ऐटम बम दुनिया के बदलने की एक निशानी है। यह छिपी हुई ताकत दुनिया के हाथों में आ गयी है, इससे इन्सान के रहन-सहन पर गहरा असर पड़ा है।

आप सब कुछ पाठ्यपुस्तकों एवं अन्य पुस्तकों में पढ़ते हैं, वह सब इस काल की वस्तु नहीं है। यह सब पुरानी बातें हैं। सारी चीजें बदल गयी हैं' अब एक नये ढङ्ग से सोचना और समझना है।

यह एक ऐसा ज़माना है जिसमें राजनीति एवं आर्थिक बातों पर बड़ा असर पड़ा है। हमें समय के अनुसार बहुत सी बातें बदलनी पड़ेंगी। पिछले सौ-सवा सौ वर्षों में बहुत सी बातों की चर्चा हुई है, उसमें कम्युनिज्म, सोशलिज्म, गाँधीज्म—कई इज्म (वाद) आये और कुछ इधर झुके कुछ उधर झुके। लोगों ने विभिन्न रास्ते अपनाए।

पुराने ज़माने के साथ-साथ नये ज़माने को समझें तभी हम उचित ढङ्ग से कार्य कर सकेंगे। कल की

बहुत-सी बातें आज की दुनिया में में बदली हैं, पिछले सौ दो सौ वर्षों में विज्ञान और टेक्नोलॉजी ने बड़ी उन्नति की है। औद्योगिक क्रान्ति हुई है, जिससे दुनिया का सब नक्शा बदल गया।

हमारे भारत का इतिहास हज़ारों वर्ष पुराना है। इससे बहुत ऊँच-नीच देखें हैं, किन्तु पिछले डेढ़ सौ वर्षों से बुनियादी परिवर्तन हुआ है। इन्सान की जिंदगी काफी बदल गयी है और अभी काफी बदलेगी। आज ऐटम और उद्जन जैसी भयानक शक्ति की उत्पत्ति हुई है। जिसमें दुनिया के खत्म कर देने की क्षमता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने दिमाग़ से तेज़ी से समझें कि यह कौन सी ताक़त है जो तेज़ी से परिवर्तन लाती जा रही है।

आज सबसे बडा सवाल यह है कि दुनिया में इन्सान मालिक है या मशीन? आज मशीन इन्सान पर हावी होती जा रही है, जितने 'वाद' (इज्म) हैं वे पुराने पड़ते जा रहे हैं। उन वादों में कुछ नई ऐसी बात नहीं। किन्तु उन्हें हमें नये ढङ्ग से सोचना होगा।

पंच वर्षीय योजना के संबंध में हम दुनिया के विभिन्न विचारों एवं दृष्टिकोणों के लोगों से मिले। उनके अनुभवों को जाना और समझा। जितने लोगों से मिले उससे यही पता चला कि दूसरों की नकल करके हम आगे नहीं बढ़ सकते। भारत को अपने आर्थिक ढाँचे को बनाना है।

प्राचीन काल में विचार शक्ति पर्याप्त थी। किन्तु अब सृजनात्मक विचारों की बड़ी कमी हो गयी है। किसी राष्ट्र की ताकत उसकी सृजनात्मक शक्ति एवं विचारों से जानी जा सकती है। उसकी उन्नति अवनति उसके इतिहास एवं प्राचीन संस्कृत से जान सकते हैं। वेदों के तीन-चार शब्दों के लिये मोटी पोथी लिखनी पड़ती है। कालिदास आदि अनेक संस्कृत के विद्वानों की कृतियों को देखने से पता चलता है कि प्राचीन-काल में भारत में सृजनात्मक शक्ति कितनी प्रबल थी। आजकल वह शक्ति ढीली पड़ गयी है।

आपने कहा कि युग केवल विज्ञान और टेक्नालॉजी का ही नहीं वरन चरित्र एवं क्षमता का भी युग है। यदि हममें चरित्रबल नहीं है और हम मूलभूत बातों पर नहीं चलते तो अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते और न जाने कहाँ बह जायँ?

पुराना सबक याद करने से हम उन्नति नहीं कर सकते। किसी की नकल करके हम शक्तिशाली नहीं हो सकते। अखबारों द्वारा मालूम ही हुआ है कि रूस ने एक नया करवट लिया है, उसने अपने सारे ढङ्गों को बदल दिया है, वह एक जानदार मुल्क है। किन्तु जो सदा उसकी नकल करते रहे, उसके इस करवट से उनके पैर के नीचे से जमीन खिसक गयी है।

विज्ञान को आम जनता को समझाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि उसे अपनी भाषा में समझाया जाय, तथा इस दिशा में अपनी भाषा का प्रयोग किया जाय। हम किसी दूसरे की बुद्धि के बल पर आगे नहीं बढ़ सकते।

भारत को अपने ढङ्ग के आर्थिक ढाँचे का निर्माण करना होगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम बदलते हुए नये जमाने को समझें और अपनी बुद्धि को तलवार की धार के समान तेज़ बनायें जिससे कठिन से कठिन सवालों की गाँठ को सरलता पूर्वक काट सकें। ☐☐ ('विज्ञान' शिलान्यास अंक से)

हिन्दी-उर्दू बालविज्ञान साहित्य लेखन कार्यशाला : संक्षिप्त रिपोर्ट

6 वर्ष से 16 वर्ष के जिज्ञासु बालकों के मस्तिष्क में विज्ञान की बातें रुचिकर और ज्ञानवर्धक लेखों के माध्यम से आसानी से पहुँच जाय इसके लिए 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' और 'भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर' के संयुक्त तत्वावधान में 11-16 सितम्बर तक एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। 6 दिनों तक चलने वाली इस कार्यशाला में 6-11 और 11-16 वर्ष के बालकों के लिए अलग-अलग लगभग 50 मानक लेख तैयार किए गए।

11 सितम्बर को विज्ञान परिषद् के सभागार में कार्यशाला का शुभारंभ करते हुए इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति और प्रसिद्ध रसायनज्ञ प्रो० वहीदुद्दीन मलिक ने कहा कि भारतीय भाषाओं में आपसी तालमेल के बिना लोकप्रिय विज्ञान साहित्य रचना सम्भव नहीं है। अब तक इस क्षेत्र में जो भी काम हो चुका है उसे आगे बढ़ाने की जरूरत है। अक्सर यह होता है कि ऐसे साहित्य के प्रकाशन की व्यवस्था नहीं हो पाती। उन्होंने बताया कि काफी पहले उन्होंने स्वयं एक पुस्तक लिखी, जिसका प्रकाशन आज तक नहीं हो सका। उन्होंने यह भी कहा कि विज्ञान परिषद् जैसी संस्थाओं को इसमें आगे आना चाहिए। उन्होंने विज्ञान लेखकों को ऐसे रुचिकर एवं ज्ञानवर्धक साहित्य लिखने का आग्रह किया जिसे अन्य विषयों के लोग भी रुचिपूर्वक पढ़ें।

भाषाविद डॉ० हरदेव बाहरी ने विज्ञान लेखकों से कहा कि उन्हें लेखन की शैली पर विशेष ध्यान देना होगा। साथ ही भाषा के स्तर पर भी एक मापदण्ड निर्धारित करना होगा। भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के डॉ० ए० के० बसु ने इस विषय पर विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुई कार्यशालाओं का विवरण प्रस्तुत किया और बताया कि अक्टूबर में कोयम्बटूर में दक्षिण भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन पर कार्यशाला आयोजित की गयी है।

रसायन शास्त्री प्रो० आर० सी० मेहरोत्रा ने इस अवसर पर बाल विज्ञान पर लिखित चार पुस्तकों और विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' पुस्तक का विमोचन किया। कार्यशाला के संयोजक डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने उनके उद्देश्यों और योजना पर प्रकाश डाला। समारोह का संचालन श्री अनिल शुक्ल ने किया। आगतों को प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने माल्यार्पण किया। अपरान्ह सत्र ने कार्यशाला के उद्देश्यों की दिशा में सार्थक शुरुआत की। इससे आचार्य गिरिराज किशोर, श्री गुणाकर मुले और श्री विश्वम्भर 'गुप्त बन्धु' ने कार्यशाला के विषयों का प्रतिपादन किया और इसके साथ ही चर्चा का शुभारम्भ भी हुआ।

आचार्य गिरिराज किशोर ने कहा कि प्रो० सी० वी० रामन कहा करते थे कि बच्चों में विज्ञान के प्रति रुचि जागृत करने के लिए आवश्यक है कि उन्हें वैज्ञानिकों के बारे में जानकारी दी जाय। साथ ही बच्चों को वैज्ञानिक उपकरणों के सम्बन्ध में जानकारी मिलनी चाहिए। उन्होंने कहा कि हमारे देश में उधार का विज्ञान पढ़ाया जाता है, वह भी विदेशी भाषा में। जरूरत इस बात की है कि हम बच्चों को अपनी भाषा में अपना विज्ञान पढ़ायें। उन्होंने कहा कि हमारे पौराणिक ग्रन्थों में अनेक कथाएँ हैं जो वैज्ञानिक तथ्यों को उजागर करती हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने अगस्त और विंध्य पर्वत, सम्पाती और जटायू की कथाओं का उदाहरण दिया और कहा कि संपाती के रूप में हम एक वैज्ञानिक के निजी अनुभव प्राप्त करने का प्रयास पाते हैं। ऐसी कथाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करके प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

उनके इस वक्तव्य पर व्यापक प्रतिक्रिया हुई और प्रतिभागियों ने ऐसी कथाओं में अवैज्ञानिकता के बाहुल्य की बात कही। कुछ प्रतिभागियों ने ठोस तार्किक ढंग से कहा कि सभी कथाओं में अवैज्ञानिकता नहीं है, जिनमें है, उन्हें छोड़ देना चाहिए और जिनमें कुछ भी वैज्ञानिकता दिखे उनका आधुनिक वैज्ञानिक विश्लेषण करके प्रस्तुत किया जाना चाहिए। जयपुर के प्रो० आर० सी० मेहरोत्रा का कहना था कि पुरा कथाओं को हम गल्प कह कर नकार नहीं सकते। उसमें जो विज्ञान है उसे ग्रहण कर शेष को त्यागना ही बुद्धिमानी है। चर्चा में कु० दीप शिखा, श्री अरविन्द मिश्र, श्री ए० के० सेन, श्री प्रेमानन्द चंदोला, श्री गुणाकर मुले आदि ने भाग लिया। श्री गुणाकर मुले ने कहा कि विज्ञान साहित्य में भारतीय सन्दर्भ होने से बात आसानी से ग्रहण हो जाती है और वह मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव डालती है।

इस कार्यशाला में 5 दिनों तक लेखकों ने अलग-अलग विषय-समूहों में आपस में विचार-विनिमय किया। लेख तैयार किए। तैयार लेखों पर पुनः विचार-विमर्श हुए। एक समूह या ग्रुप के सभी लेखकों ने एक-दूसरे के आलेख पढ़े और अपने सुझाव भी दिए। इस प्रकार निश्चय ही लेखों को जो वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ उसमें दूसरे लोगों की भी भागीदारी रही।

15 सितम्बर को हिन्दी-उर्दू बाल विज्ञान लेखन कार्यशाला के समापन की पूर्व संध्या पर विज्ञान के प्रसार और बाल विज्ञान लेखन के मानक स्वरूप निर्धारण पर वरिष्ठ लेखकों और वैज्ञानिकों द्वारा समीक्षात्मक वक्ताएँ हुईं।

कार्यशाला में उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त पं० बंगाल महाराष्ट्र, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश व नई दिल्ली के 35 और 33 स्थानीय प्रतिभागियों ने भाग लिया। इस कार्यावधि में उनके द्वारा 6 से 11 वर्ष और 11 से 16 वर्ष तक के दो आयु वर्गों के लिये सुग्राह्य भाषा और शैली में विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने के लिये विज्ञान के विविध विषयों पर लगभग 50 मानक आलेख बनाये व प्रस्तुत किये गये। आलेखों के लिये बनाये गये विभिन्न विषय वर्गों में से 4 स्वास्थ्य वर्ग में, 2 प्रदूषण वर्ग में, 2 कहानी वर्ग में, 2 भौतिकी वर्ग में, 6 पोषण वर्ग में, 6 कृषि वर्ग में, 5 वैज्ञानिक मानसिकता वर्ग में, 6 वन वर्ग में, 4 अंतरिक्ष वर्ग में और पर्यावरण वर्ग में 13, कुल 50 (पचास) आलेख प्राप्त हुये।

इस सबसे सभी प्रतिभागियों विद्वान आलोचकों, विषय के जानकर वैज्ञानिक, लेखन के प्रतिष्ठित हस्ताक्षरों के सम्मुख कुछ आलेख पढ़े गये। इनमें कु० विनीता शुक्ला ने स्वास्थ्य, सर्वश्री जगदीप सक्सेना, सुभाष लखेडा और विजय कुमार ने पोषण, श्री अरविन्द मिश्र ने कहानी, डॉ० प्रभाकर द्विवेदी ने कृषि, श्री प्रेमानन्द चंदोला ने वन, श्री राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप ने अंतरिक्ष और डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल तथा श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी ने पर्यावरण विषयों पर आलेख पढ़े। इन पर आलोचनाएँ प्रत्यालोचनाएँ भी हुईं।

इस अवसर पर बाल लेखन के स्वरूप पर बोलते हुये विज्ञान शिक्षा केन्द्र, बांदा के निदेशक डॉ० भारतेन्दु प्रकाश ने विज्ञान के व्यापारीकरण का विरोध करते हुये कहा कि हमें गाँवों और आदिवासियों के मध्य बिखरे दैनंदिन जीवन के प्रयोग सिद्ध विज्ञान को नकारना नहीं चाहिए। उनके पश्चात् इन्स्टीट्यूशन ऑव इंजीनियर्स (इंडिया) के जर्नल (हिन्दी) के संपादक श्री विश्वम्भर प्रसाद गुप्त-बन्धु' ने यह सुझाया कि 6 से 11 वर्ष की आयु वालों के लिये विज्ञान अथवा अन्य ढेर सारे विषयो की पुस्तको का अतिरिक्त बोझ नहीं होना चाहिए। उनके मत में भाषा की पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित पाठों में ही विज्ञान की सामग्री घुली मिली होनी चाहिए।

अंतिम वक्ता उर्दू पत्रिका 'साइंस की दुनिया' के संपादक श्री मोहम्मद खलील ने बालकों को विज्ञान का ज्ञान देने के लिए उसमें बहुत रोचकता के समावेश को जरूरी बताया। अंत में मुख्य अतिथि डॉ० हरदेव बाहरी ने विज्ञान को सरल और रुचिकर बनाने के लिये कठिन शब्दावली को कम उपयोग करने व कहानी कविता नाटिका जैसी विधाओं में विज्ञान सिखाने का मार्ग बताया।

इस कार्यशाला में उर्दू लेखन का प्रतिनिधित्व करने के लिये श्री मोहम्मद खलील श्री फातही, डॉ० कलीम और मोहम्मद नासिर ने भी भाग लिया। कार्यशाला में कुछ अच्छी प्रस्तुतियाँ कविता, कहानी व नाटिकाओं के स्वरूप में भी आईं जिन्हें इस कार्यशाला की उपलब्धि कहा जा सकता हैं। ▫▫

बाल विज्ञान लेखन : एक प्रतिवेदन

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

76 वर्ष पूर्व जब विज्ञान परिषद् की स्थापना हुई थी तो इसके संस्थापकों के समक्ष भारतीय भाषाओं के माध्यम से विज्ञान का प्रचार-प्रसार सर्वोपरि था। 'विज्ञान' नामक मासिक पत्रिका के कुछ अंक हिन्दी तथा उर्दू दोनों में ही प्रकाशित हुए थे। एक पुस्तक भी दोनों ही भाषाओं में छपी थी। हिन्दी उर्दू के साहित्यकार तथा विज्ञानवेत्ता परस्पर विचार विमर्श द्वारा नव साक्षरों, साक्षरों तथा विद्यार्थियों के लिए वैज्ञानिक साहित्य का सृजन करने के उपाय सोचते थे। तब शायद उनके मस्तिष्कों को आज के बालकों कि समस्या ने उतना द्रवित न किया हो। किन्तु अब जब कि 14 नवम्बर को प्रतिवर्ष बाल दिवस मनाया जाता है और इस वर्ष जब कि बच्चों के 'चाचा नेहरू' की जन्मशती धूमधाम से देश-विदेश में मनाई जा रही है यह स्वाभाविक हो जाता है कि विज्ञाव परिषद् के कर्णधारों का ध्यान बालकों के लिए विज्ञान लेखन की ओर जाता।

संयोग से इस विचार का परिणाम शुभ निकला है। पिछले वर्ष नवम्बर मास में ही मैं शिमला की एक कार्यशाला में आमन्त्रित था। उस कार्यशाला की विविधता एवं कार्यप्रणाली से मैं प्रभावित हुआ। मैंने भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के रीडर एवं अधिकारी डॉ० ए० के० बसु से अपनी इच्छा प्रकट की कि क्या इलाहाबाद में बच्चों के लिए विज्ञान लेखन पर ऐसी कार्यशाला आयोजित नहीं हो सकती। उनका उत्तर था "क्यों नहीं?" और सचमुच ही वह विचार साकार हो गया। हमने जब कार्यशाल की रूप-रेखा तथा प्रतिभागियों की सूची भेजी तो डॉ० बसु तथा उनके संस्थान के निदेशक ने उसे ज्यों का त्यों स्वीकार करके 11 से 16 सितम्बर 1989 की तिथि भी निश्चित कर दी।

एक तरह से अभी हम पूर्वाभ्यास ही कर रहे थे कि तिथियाँ निश्चित हो गई। अब तो कार्यशाला की तैयारी करनी ही थी।

वास्तव में विज्ञान परिषद् की 75वीं वर्षगाँठ के अवसर पर कई गोष्ठियों का आयोजन हो चुका था इसलिए हमें उन प्रतिभागियों के नाम खोजने में अधिक समय नहीं लगा जिनकी रुचि बाल विज्ञान लेखन की ओर है।

किन्तु क्या सारे विज्ञान लेखक बाल लेखक कहे जा सकते हैं? क्या उन्होंने इसलिए लिखा कि उन्हें अन्तः प्रेरणा हुई या कि प्रकाशकों ने बाल पुस्तकें लिखाई? या कि बच्चों के स्तर एवं उनकी मनोवृत्तियों या आकांक्षाओं को ध्यान में रखकर ये सारी पुस्तकें लिखी गई?

सम्प्रति जितनी बाल विज्ञान पुस्तकें उपलब्ध हैं उनकी सूची प्रस्तुत करना महत्त्वपूर्ण होता किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है। 1936 से लेकर आज तक अनेकानेक प्रकाशकों ने छोटी बड़ी तथा सचित्र पुस्तकें छापी हैं। किन्तु शायद ही इन पुस्तकों का मूल्यांकन भाषा तथा सामग्री (विषय वस्तु) की दृष्टि के हुआ हो। ये पुस्तकें थोक-खरीद के लिए लिखी-छापी गई प्रतीत होती हैं। और इसमें भी सन्देह है कि इनको उन बच्चों ने देखा-पढ़ा भी है या नही, जिनके लिए ये लिखी गई थीं अथवा हैं।

भाषा के विषय में लोकोपयोगी लेखन के क्षेत्र में लगे लेखकों की अपनी-अपनी रायें हैं। पारिभाषिक शब्दावली को वे बालक की कक्षा के भीतर ही तक सीमित रखना चाहते हैं। उसके बाहर—ये पुस्तकें इसी क्षेत्र से सम्बद्ध हैं—वे नहीं चाहते कि बच्चे रटी रटाई लीक पर चलें।

शैली के क्षेत्र में बच्चों के साथ तादात्म्य पर ध्यान रखा गया है। कुछेक लेखकों ने कविता के माध्यम से विज्ञान विषयों को लिखा है। लेकिन शायद ही कोई

प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद—211002

ऐसी कविता हो जो हमें अथवा बच्चों को कण्ठस्थ हो। यदि ऐसा नहीं हुआ तो शायद यह विधा प्रयोज्य नहीं मानी जा सकती।

कुछेक नाटक भी लिखे गये हैं। शायद इनमें भी वह प्रेरक शक्ति नहीं दिखती जो कथ्य का आस्वादन कराती रह पाये। मूलभाव को कितनों ने समझा ?

कहानी शैली शायद अधिक पसन्द की जाती है, बच्चों द्वारा। किन्तु जब हम 11-16 वर्षों की आयु वाले बच्चों के लिए शैली के चुनाव की बात करते हैं तो कहानी शैली अधिक प्रभावोत्पादक नहीं लगती। मान लीजिए ऐल्यूमीनियम या कोयले का वृत्तान्त कहानी रूप में कहा जा रहा है। चूंकि अधिक आयु के बच्चे को कुछ न कुछ वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी हुई रहती है, अतः उसे लगता रहता है कि लेखक जान बूझकर तथ्यों को कहानी का रूप दे रहा है। वह तो वैज्ञानिक तथ्यों को मूल रूप में ग्रहण करने में समर्थ है तो फिर घूम फिर का बातों का बतंगड़ क्यों ? अतः कहानी शैली प्रथम आयुवर्ग के बालकों के लिए ही उपयुक्त होगी। बड़ों पर उसे आजमाना व्यर्थ लगता है।

तो अब बची निबन्ध शैली। यह तो बड़ी नीरस शैली है। इसमें मैं, तुम, के लिए स्थान नहीं। सदैव दृष्टि रहती है तथ्यों पर—उन्हें सही रूप में व्यक्त करने पर—कम से कम प्रयास से अधिकाधिक तथ्य। यहीं पर पारिभाषिक शब्दों का प्रवेश होता है—कम से कम शब्दों में, बिना किसी साहित्यिक अलंकरण के बात को स्पष्ट अंकित करने के लिए विज्ञान की भाषा सचमुच शिष्टों और सभ्यों के लिए है (रसिकों या सहृदयों के लिए)। उसमें संकेत, सूत्र, चिन्ह तो रहते ही हैं—जिनमें किसी प्रकार के परिवर्तन की—किसी स्वच्छन्दता की गुंजाइश नहीं रहती। साहित्य में पर्यायवाची शब्दों से मन की थकान दूर की जाती है, किन्तु विज्ञान में इन शब्दों को कोई स्थान नहीं है—एक बार प्रयुक्त होगा—लाजमी है ऐसा। इसे आप शैली दोष—पुनरुक्ति दोष कह लीजिए किन्तु विज्ञान की भाषा के शब्द, वाक्य का गठन—सभी रुखे लगने वाले होते हैं। यद्यपि जिस तथ्य को कहा जाना है वह व्यावहारिकता से पूर्ण है—अधिक साभिप्राय किन्तु मानव मन को स्वच्छन्दता इतनी प्रिय है शब्दों का माधुर्य ऐसा लुभावना लगता है उसे कि उसके मन में विज्ञान की भाषा, भाषा ही क्यों विज्ञान विषय के प्रति उदासीनता छाई रहती है। बालक चाहे कक्षा में हो, या किसी विद्वान के भाषण के समय—उसके मस्तिष्क में बोझ रखा रहता है। इसी को वह 'रटन्त विद्या' कहता है—उसको स्वच्छन्दता नहीं रहती खेलवाड़ की।

इसीलिए मनोविज्ञान के पारखियों ने बच्चों के लिए 'खेल खेल में विज्ञान' जैसी पुस्तकें लिखी हैं। सचमुच यह बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर किया गया शैली का विकास है। ऐसी पुस्तकें लोकप्रिय भी हुई हैं।

बात यह है कि बालक कुछ करके ही सीखना चाहता है—सीखने के साथ कुछ मनोरंजन चाहता है। ऐसा लेखन सचमुच बड़े ही कौशल का कार्य है। सौभाग्यवश कई स्वयंसेवी संस्थाएँ इस दिशा में कार्यरत हैं। वस्तुतः ऐसी शैली—जो कार्यशैली है—लेखन शैली नहीं—अधिक लाभप्रद सिद्ध हो रही है।

किन्तु आज कम आयु के बालकों के मनों पर कामिक्स का 'भूत' सवार है। चिकनी चुपड़ी शैली में काल्पनिक पात्रों की सृष्टि करके कल्पना जगत् में विचरण कराने वाले सिद्धहस्त लेखकों की कमी नहीं। जिसे फैंटसी या फिक्शन कहते हैं—अब जिसे हम विज्ञान कथा के नाम से जानते हैं वस्तुतः कामिक्स के रूप में ही बच्चों के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

कम आयु के बालकों के कच्चे मनों पर इन कथाओं के नायकों का जो प्रभाव पड़ता है वह तो एक ओर, सबसे बड़ी बात यह है कि यदि विज्ञान कथा सधी हुई नहीं है तो बच्चे को विकृत वैज्ञानिक तथ्य ही हाथ लगते हैं। शायद परीं कथाओं वाले लोक में एक बार उन्हें फिर लेकर पटक दिया जाता है।

सौभाग्य से अच्छी विज्ञान कथाएँ लिखने की ओर नार्लिकर जैसे वैज्ञानिकों का ध्यान गया है।

उनकी शैली अनुकरणीय है। साथियों! इस सर्वेक्षण से इतना ही स्पष्ट हुआ कि आज बाल जगत् के सम्मुख किस तरह का वैज्ञानिक साहित्य है। हिन्दी, उर्दू या अन्य भारतीय भाषाओं में ऐसा साहित्य लिखा जा रहा है किन्तु समय आ गया है कि इस साहित्य का पुनरीक्षण हो और जो उत्तम कृतियाँ हैं उनकी ही संस्तुति बालकों के लिये की जाय।

प्रश्न है कि यह कार्य कौन करे? वस्तुतः ऐसी कार्यशालाओं में इस दिशा में कार्य किया जा सकता है। एन० सी० ई० आर० टी० की अनेक कार्यशालाओं में पुस्तक लेखन की 'अग्नि परीक्षा' से कई बार गुजरने का अवसर मुझे मिला है। मैंने अनुभव किया है कि ऐसा पूर्वाभ्यास आवश्यक है—अच्छे बाल विज्ञान साहित्य सृजन के लिए। वैसे 'नेशनल बुक ट्रस्ट' प्रसिद्ध है बच्चों के लिए उपयोगी साहित्य का सृजन कराने और उसे प्रकाशित करने के लिए किन्तु उससे जो पुस्तकें छपी हैं वे एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा लिखाई गई पुस्तकों से घटकर ही हैं। यही नहीं, इस बुक ट्रस्ट को बच्चों के लिए जो करना था, उससे जो अपेक्षा थी उसकी उपेक्षा हुई है। भला प्राइवेट पब्लिशरों से इतने धैर्य की आशा कैसे की जा सकती है कि किसी पुस्तक को वे कई विद्वानों को दिखावें, या बच्चों के सामने पढ़वा कर परीक्षण करावें? यह तो भाग्य की बात है कि कभी-कभी सिद्धहस्त लेखक उसके चंगुल में फँस जाता है या फिर वह उसको आश्रय बना कर अपने कृतित्व को उजागर करने का दुस्साहस करता है। यह बहुत अच्छी स्थिति नहीं है। एक लेखक नौ सौ निन्यानबे विषयों का पारंगत कैसे बन सकता है? न ही सत्साहित्य सृजन का यह अर्थ है कि एक लेखक गजराज बन कर सारे लेखकों से गुर्राता रहे। हमें तो अपने उद्यान में तरह-तरह की कृतियों एवं कृतिकारों को फूलते-फलते देखने की लालसा है। हमारे नन्हें मुन्नों को एक नहीं तमाम ऐसे लेखकों की आवश्यकता है जो अपनी रचनाओं के दुलार से उन्हें प्रोत्साहित करके उन्हें भी अगले 20 वर्षों में ऐसे ही लेखन की पराकाष्ठा तक पहुँचा सकें।

आज इस कार्यशाला में भाग लेने के लिए सिद्धहस्त लेखक, अनुभवी सम्पादक, शिक्षक तथा वरिष्ठ पत्रकार आये हैं। मैं जानता हूँ कि इस कार्यशाला में जिस तरह के कार्य—लेखन कार्य की उनसे आशा की जा रही हैं, उसके लिए वे तैयार होकर नहीं आये या वह कार्य उनके लिए निम्न स्तरीय लग सकता है कि भाषण के द्वारा वे कुछ अधिक लाभप्रद बातें बतला सकते हैं, किन्तु नहीं। इस कार्यशाला के माध्यम से वे देखेंगे कि नन्हें-मुन्नों के लिए विज्ञान लेखन के पूर्व कितनी सावधानी बरतनी चाहिए—उनका पग-पग पर ध्यान रखना चाहिए। इस कार्यशाला में "स्वान्तः सुखाय" के लिए कुछ भी नहीं लिखा जावेगा, इसमें "परार्थ" पर बल होगा। भाषा तथा शैली के निखार के लिए, उसके लिए नये-नये प्रयोग करने का सुअवसर मिलेगा। टोली में, टोली के सदस्यों के साथ विचार-विमर्श का, विचारों के आदान-प्रदान का अभूतपूर्व सुयोग प्राप्त होगा। अपनी बात अपने मन में रखने का नहीं अपितु दूसरे पर प्रकट करने का अवसर मिलेगा।

'विज्ञान परिषद्' पर्यावरण के क्षेत्र में विशेष कार्य करता रहा है। कुछ मास पूर्व "पर्यावरण प्रहरी" नामक एक अनुभाग की स्थापना भी की जा चुकी है। विज्ञान परिषद् अंतरिक्ष संबंधी विषयों के क्षेत्र में भी रुचि लेता रहा है। डॉ० गोरख प्रसाद, श्री महावीर प्रसाद जैसे वरिष्ठ लेखक ज्योतिर्विज्ञान के विविध पक्षों को उजागर कर गये हैं। वैज्ञानिक मनोवृत्ति को लेकर गोष्ठियाँ की जा चुकी हैं। स्वास्थ्य तथा पोषण पर भी हमारी रुचि रही है। "घरेलू डाक्टर" पुस्तक इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

अतः यदि सारे प्रतिभागी टोलियों में उपर्युक्त विषयों को आधार बना कर विचार विमर्श करके पाठावलियाँ तैयार करेंगे तो 6 दिन की कार्यशाला में बाहर से आये प्रतिभागियों तथा स्थानीय प्रतिभागियों के परस्पर विचार-विनिमय से 50 से अधिक प्रामाणिक पाठावलियाँ तैयार हो सकेंगी और मुझे विश्वास है कि कार्यशाला की अवधि में इन पाठावलियों को जो

अन्तिम रूप मिलेगा, उसे प्रकाशित करने पर बालकों के लिए आदर्श विज्ञान साहित्य प्राप्त होगा।

भारतीय भाषा संस्थान के मार्गदर्शन से हमारे प्रतिभागी अवश्य ही लाभान्वित होंगे। बड़े छोटे का भेदभाव भूलकर विज्ञान जगत् के इतने सारे लेखक, सम्पादक, विचारक जब विचार मंथन के लिए आ जुटे हैं तो अवश्य ही रत्न निकलेंगे—जिनसे भावी पीढ़ी के नन्हें मुन्ने, कल के नागरिक मार्ग दर्शन प्राप्त कर सकेंगे।

देश को ऊपर उठाने में जिन नन्हें मुन्नों का हाथ होगा उनके हाथों में पुष्ट वैज्ञानिक कृतियाँ देकर ही इक्कीसवीं सदी में हम शान्ति का अनुभव प्राप्त कर सकेंगे।

□□

बच्चों के लिये विज्ञान-लेखन कैसा हो ?

तुरशन पाल पाठक एवं
श्याम सुन्दर शर्मा

विज्ञान और विज्ञान लेखन अपने आप में दुरुह और नीरस कार्य माने जाते हैं। और यदि वही विज्ञान बच्चों के लिये लिखना पड़े तो वह अपने आप में और भी कठीन कार्य हो जाता है।

आप जानते ही है कि बच्चे जहाँ एक ओर भोले-भाले और प्यारे होते हैं, वहाँ दूसरी ओर उनमें तर्क-विद्वता भी पर्याप्त मात्रा में समावेशित होती है। उनकी जिज्ञासा इतनी प्रबल और व्यापक होती है कि वे हर उस वस्तु को, जो उनके आस-पास होती है, अथवा उन्हे दृष्टिगोचर होती है, तुरंत ही जानने का प्रयास करते हैं और अनायास ही वे अपने माता-पिता अथवा इष्ट-मित्रों से, जो उनके सबसे निकट होते हैं, अपनी जिज्ञासा का समाधान खोजने के लिए प्राय: प्रश्न पूछ बैठते हैं, वह क्या है ? ऐसा क्यों है ? और वह कैसे होता है ? बच्चों का प्रश्न पूछने का यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक उन्हें अपनी जिज्ञासा का कोई समुचित समाधान नहीं मिल जाता। विज्ञान और वैज्ञानिक घटनाओं के बारे में भी बच्चों की प्रतिक्रिया ऐसे ही प्रश्नों के दायरे में निरंतर होती रहती है। शायद ही कोई बालक ऐसा होगा जिसने कोई चीज पहली बार देखी हो और उसके बारे में जानने की उसने जिज्ञासा न की हो। इससे इस बात का पता चलता है कि बच्चों को, चाहे वे छोटे हों या बड़े, अपने आस-पास की घटनाओं को जानने की कितनी प्रबल इच्छा होती है।

यहाँ यह बात भी विचारणीय है कि देश के सभी बच्चों का आयु वर्ग तो एक हो सकता है लेकिन वे जिस आर्थिक तथा सामाजिक परिवेश के दायरे में रहते हैं, उनके ज्ञान-विज्ञान की जिज्ञासा का विकास भी उसी परिवेश के दायरे के अनुसार होता है। फिर भी बच्चों के लिये विज्ञान लेखन के लिए सामग्री का चयन करते समय उसे बच्चो के आर्थिक और सामाजिक परिवेश के अनुसार पृथक करना तो उचित नहीं होगा बल्कि सभी बच्चों के लिये एक जैसी मानक विषय-वस्तु-तालिका का चयन करना होगा जो वर्तमान अथवा भविष्य दोनों ही स्थितियों में आज या कल के बच्चों की जिज्ञासा पूरी करने के लिये और उन्हें नये ज्ञान की ओर प्रेरित करने में सहायक हो, जिससे उनका भरपूर मानसिक विकास हो सके।

जब बच्चे घर से बाहर निकलते हैं तो परिवार के परिवेश के अतिरिक्त बहुत-सी नई-नई चीजें देखते हैं, जो उनके घर परिवार में नहीं होतीं। ऐसी सभी वस्तुओं, घटनाओं अथवा क्रियाओं के बारे में बच्चों का जिज्ञासु होना भी स्वाभाविक है। बच्चों को माँ-

तुरशन पाल पाठक, वैज्ञानिक ई-1 एवं सम्पादक 'भारत की सम्पदा-वैज्ञानिक विश्वकोष'; श्याम सुन्दर शर्मा, सम्पादक 'विज्ञान-प्रगति', प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिल साइड रोड, नई दिल्ली–110012

बाप से अपने प्रश्नों के जो उत्तर मिलते हैं उनसे अनेक बार उनकी जिज्ञासा शांत नहीं हो पाती। इस स्थिति में वे अपने निकट संबंन्धियों, परिचितों अथवा जहाँ से उन्हें सही उत्तर की आशा होती है, अपने ज्ञान की प्यास बुझाने का प्रयास अवश्य करते हैं। यदि यहाँ भी उन्हें समाधान नहीं मिलता तो बच्चे घर और बाहरी वातावरण के बाद स्कूल में अपने अ-उत्तरित प्रश्नों का उत्तर खोजते हैं। थोड़ा पढ़ना-लिखना आने पर वे ऐसी पुस्तकें अथवा पत्रिकायें पढ़ना चाहते हैं जिससे उन्हें आनन्द मिले और साथ ही जिनसे उन्हें नई जानकारी भी हो सके।

यहीं से प्रारम्भ होता है लिखित सामग्री के माध्यम से बच्चों में ज्ञान-विज्ञान का समावेश करना। जैसे-जैसे उनकी कक्षायें उच्च से उच्चतर होती जाती हैं वैसे-वैसे उनके पठन-पाठन का दायरा भी बढ़ता जाता है। और छः वर्ष से सोलह वर्ष की आयु के बालक ज्ञान-विज्ञान में निरन्तर सबसे आगे निकलने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। अतः इन वैज्ञानिक बातों के अतिरिक्त जो उनकी पाठ्यपुस्तकों में लिखी होती हैं, वे बहुत कुछ जानना चाहते हैं। हाँ यह बात अलग है कि आज के पाठ्यक्रमों के कारण बच्चों की उम्र और उनके शारीरिक गठन की तुलना में बस्ते का बोझ कहीं अधिक भारी है। फिर भी सरल, सुबोध और रोचक वैज्ञानिक साहित्य मिले तो प्रत्येक बालक उसे खुशी-खुशी पढ़ना चाहता है। यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी उचित होगा कि माँ-बाप के मना करने पर भी प्रायः बच्चे लुक-छिक कर ऐसे उपन्यास, कहानियाँ तथा परी-कक्षायें आदि पढ़ते पाये जाते हैं जिनका स्तर घटिया होता है, क्योंकि उन्हें उससे परोक्ष रूप से आनन्द की अनुभूति होती है। ऐसी स्थिति में बच्चों के लिये विज्ञान लेखन का कार्य सरल अथवा आसान नहीं है। विज्ञान लेखक को विषय का स्तर बनाये रखते हुये उसे इस तरह लिखना और प्रस्तुत करना आवश्यक है कि वह ऊपर चर्चित उपन्यास, कहानियों तथा परीकक्षाओं आदि का भी स्थान ले सकें।

बच्चों के लिए छः से सोलह वर्ष के आयु वर्ग के विज्ञान-साहित्य को लिखने अथवा उसे प्रकाशित करते समय, यह भी देखना होगा कि छः वर्ष से ग्यारह वर्ष तक के लिये जो विज्ञान साहित्य लिखा जाये उसमें वैज्ञानिक कथावस्तु को समझाने के लिये लिखा तो कम जाये लेकिन उसे चित्रों, आरेखों आदि के माध्यम से दर्शा कर समझाया अधिक जाये। जबकि ग्यारह से चौदह वर्ष के बच्चों के लिये लिखित अंश की कुछ अधिकता हो सकती है। ठीक इसी तरह, यदि चौदह से सोलह वर्ष के बच्चों का भी एक उप-आयु वर्ग मानें तो उसके लिये भी चित्र तो आवश्यक होंगे ही लेकिन उनकी संख्या तथा आकार-प्रकार में छोटे बच्चों के वैज्ञानिक लेखन की तुलना में पर्याप्त कमी की जा सकती है।

लेखन केवल प्रकाशित सामग्री के लिए ही नहीं होता बल्कि आज के वैज्ञानिक युग में विज्ञान लेखन रेडियो, टेलीविज़न जैसे दूरसंचार माध्यम के लिये भी होता है। रेडियो के माध्यम से विज्ञान-वार्तायें या अन्य वैज्ञानिक सामग्री बच्चे केवल सुनकर समझना चाहते हैं। अतः वे रेडियो के माध्यम से ऐसी विज्ञान सामग्री सुनना पसंद करते हैं जिसमें उनकी गतिविधियों से मिलता जुलता संगीत आदि अधिक हो और विविध प्रकार के खेलों अथवा पशु-पक्षियों की आवाज़ों या जादूगर डुबडुगी वाला आदि के खेल-तमाशों का समावेश हो तथा बीच-बीच में वैज्ञानिक बात समझा दी जाये। यहाँ पांडित्य भरी वैज्ञानिक बातें बिल्कुल नहीं चलेंगी क्योंकि बच्चे सरल सुबोध भाषा और कानों को अच्छा लगने वाला मधुर संगीत अथवा खेल-तमाशा ही सुनना चाहते हैं। इसलिये रेडियो के माध्यम के लिए बच्चों के लिये विज्ञान लिखते समय उपरोक्त परिवेश में ही लेखन को बांधना, सजाना और संवारना होगा।

रेडियो वार्ता के श्रोताओं की संख्या बहुत अधिक होती है और वे "अदृश्य" होते हैं। बच्चों के लिये रेडियो के लिए विज्ञान विषयक वार्ता तैयार करते समय उपरोक्त बात को ध्यान में रखना बहुत जरूरी होता है। इतना ही नहीं, ये श्रोता अनेक प्रकार की आवाजों और शोर-शराबे से घिरे हो सकते हैं। इसलिये यदि

विज्ञान लेखक की सामग्री अन्य सामान्य आवाजों अथवा ध्वनियों की तुलना में उत्तम न हुई और उसमें रोचकता का अभाव रहा तो कोई बालक उस कार्यक्रम को नहीं सुनेगा। अतः विज्ञान लेखक को ऐसे लिखना होता है मानो वह अपने श्रोताओं के लिए लिख नहीं रहा बल्कि आमने-सामने बैठकर उनसे बातचीत कर रहा हो। और विषय का प्रत्येक पहलू एक के बाद एक क्रमबद्ध तरीके से समझा रहा हो। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यदि विज्ञान लेखक को अपनी ही लिखी वैज्ञानिक कृति भी रेडियो पर प्रस्तुत करनी पड़े तो उसे भी स्वयं उसे पढ़ने के अंदाज को छोड़कर बोलने के अंदाज में ही प्रस्तुत करना चाहिये और बाल विज्ञान लेखन भी इस बात को ध्यान में रखकर करना चाहिये।

बच्चे क्योंकि अधिक देर तक लगातार सुन और पढ़ नहीं सकते, अतः विज्ञान लेखन में बच्चों के लिये वाक्य छोटे-छोटे होने चाहिये। भारी भरकम शब्द और लम्बे-लम्बे वाक्य तथा वाक्यों में संयुक्ताक्षर बच्चों के विज्ञान लेखन में इस्तेमाल नहीं करने चाहिये। अधिक आँकड़ेबाज़ी भी बच्चों को पसंद नहीं होती। अतः इससे बचना चाहिये।

हाँ, विज्ञान लेखन में चाहे वह संचार माध्यमों के लिये हो, अथवा पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं के लिये हो, इस बात का खास ध्यान रखना चाहिये कि उससे किसी भी अंधविश्वास या पूर्वाग्रह का समर्थन न हो पावे। आप जानते ही हैं कि अंधविश्वासों का प्रायः कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता है। यह भी सच है है कि अंधविश्वास और अंधविश्वास से पनपी कुरीतियों से समाज इतना जकड़ गया है कि समुचित विकास के द्वार पर उसे लाना आसान ही नहीं बल्कि एक दूभर कार्य है। अब आप सोच रहे होंगे कि आखिर इस विकट सामाजिक समस्या का हल क्या है? समाज में गहरी जड़ें जमाये बैठी इस परम्परागत समस्या से स्टीक, सरल और सुबोध वैज्ञानिक लेखन ही धीरे-धीरे मुक्ति दिला सकता है। आप जानते ही हैं कि अनेक ऐसे वैज्ञानिक आविष्कारों, जिनसे हमारा जीवन सरल सुलभ हो गया है, के पीछे प्रायः बड़ी रोचक कहानियाँ हैं। अच्छा हो बच्चों के लिये वैज्ञानिक लेखन करते समय विज्ञान लेखन में रोचकता लाने और बच्चों में भविष्य के वैज्ञानिक बनाने का आत्मविश्वास भरने के लिये इनका भी समावेश किया जाये।

जहाँ तक टी० वी० कार्यक्रमों के लिये विज्ञान लेखन का प्रश्न है बच्चों के लिये विज्ञान के विषय तो लगभग वे ही होते हैं जो पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और रेडियों आदि के होते हैं। लेकिन इस विधा के लिये बाल-विज्ञान लेखन में इस बात का ध्यान रखना होता है कि बोलने का पक्ष कहीं बहुत अधिक न हो जाये। क्योंकि यह माध्यम देखने और सुनने, दोनों तरीकों से ज्ञान-विज्ञान पहुँचाने का कार्य करता है। अतः टी० वी० के लिये विज्ञान लेखन में लेखक को दिखाई जाने वाली दृश्य सामग्री को भी ध्यान में रखना होगा। कहीं ऐसा न हो जाये कि जो लिखा जाये उसे टी० वी० के पर्दे पर दिखाया ही न जा सके। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस माध्यम से जो भी तस्वीर पर्दे पर उभरे वह बच्चों को अन्य माध्यमों की तुलना में अधिक पसंद आये। यदि बच्चों से पूछा जाये कि आप विज्ञान की पुस्तक पढ़ना चाहेंगे, या रेडियो कार्यक्रम सुनना चाहेंगे या उस विषय पर टी० वी० कार्यक्रम देखना चाहेंगे तो अधिकतर बच्चे अपना मत टी० वी० के पक्ष में ही देंगे। हालाँकि टी० वी० के माध्यम का असर बहुत थोड़े समय का होता है, लेकिन यदि बात समझ में आ जाये तो फिर बार-बार पढ़ने और सुनने की आवश्यकता ही कहाँ रहती है।

विज्ञान लेखन में लेखक पक्ष की कठिनाइयाँ सर्वविदित हैं। लेकिन यहाँ इस बात का उल्लेख करना उचित होगा कि बच्चों के लिये अंतरिक्ष विज्ञान, सागर विज्ञान, खगोल विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान आदि विषय महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। फिर भी ये अपनी उम्र के अनुसार प्रायः पशु-पक्षियों, चिड़ियाघर, शेर-चीते की जिंदगी, रीछ-भालू का तमाशा, बन्दर की घुड़की, कार्टून फिल्म तथा अन्य ऐसी ही चीजें अधिक पसंद करते हैं। अतः

इन्हीं और ऐसे ही माध्यमों से बच्चों के आसपास के जीव-जगत, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों तथा घरेलू उपकरणों से लेकर कल-कारखानों, पर्यावरण और पौष्टिक आहार, कम्प्यूटर, रोगों और बीमारियों से बचाव, खेती-बाड़ी, ट्रैक्टर हल-बैल, साफ पानी, हवा, टेलीफोन, रसोई के उपकरण आदि सैकड़ों विषय हैं जिनके बीच बच्चे रहते हैं, के बारे में विज्ञान लेखन के द्वारा बच्चों का ज्ञान-वर्द्धन करना चाहिये।

बच्चों के लिये विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में अनेक सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं ने सराहनीय कार्य किया है। उन्होंने विविध विज्ञान-विषयों पर अनेक सरल, सुबोध, सुन्दर और सस्ती पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इन पुस्तकों को देखते ही बच्चों का इन्हें एकदम उठाकर पढ़ने का मन करने लगता है। सरकारी संस्थाओं में नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग और एन० सी० ई० आर० टी० प्रमुख हैं। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद ने जल, बिजली, हवा, चुम्बक, टेलीफोन आदि पर सरल कविताओं के रूप में सचित्र पुस्तिकायें प्रकाशित की थीं। समाज के गरीब से गरीब वर्ग को ध्यान में रखकर इनका मूल्य मात्र 1.50 रु० रखा गया। चार रंगों में आफसैट विधि से मुद्रित इन पुस्तकों का इतना कम मूल्य रखना इसलिये संभव हो सका था कि ये पुस्तिकायें एक साथ आठ-नौ भारतीय भाषाओं में प्रकाशित की गई थीं।

बच्चों की विशेष आवश्यकता को ध्यान में रखकर वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की ही लोक वैज्ञानिक मासिक "विज्ञान-प्रगति" का नवम्बर अंक हर वर्ष "बाल विशेषांक" के रूप में प्रकाशित किया जाता है। उसमें बच्चों के लिये, बच्चों की दृष्टि से सामग्री दी जाती है। परिषद् उर्दू में 'साइंस की दुनिया' और अंग्रेजी में 'साइंस रिपोर्टर' नामक लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाओं के माध्यम से उर्दू और अंग्रेजी में भी बच्चों को वैज्ञानिक साहित्य सुलभ कराती है।

गैर सरकारी संस्थाओं और प्रकाशनों का अपना निजी व्यवसायिक ध्येय होता है अतः वे भी अपने लाभ को ध्यान में रखकर बच्चों के लिये यदाकदा छुटपुट पुस्तिकायें निकालते रहते हैं। नितांत बच्चों के वैज्ञानिक हित अथवा दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर बाल विज्ञान साहित्य की रचना नहीं की गई है, जिसकी बहुत आवश्यकता है।

बच्चों के लिये विज्ञान-लेखन की सीमायें अनंत हैं। इन सबका अल्प समय और संक्षिप्त लेख में वर्णन कर पाना संभव नहीं है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि आप कलम उठाइये और बच्चों के लिये छोटे-छोटे वाक्यों और सरल सुबोध शैली में लिखना प्रारम्भ करिये। विज्ञान के अनंत क्षेत्र धीरे-धीरे आपकी झोली में होंगे और बच्चे आपके वैज्ञानिक लेखन को दादी माँ की कहानी या दादा जी की आत्मकथा या नाना जी के कथा साहित्य या नानी जी के रसभरे गीतों, चुटकलों तथा क्षणिकाओं या मामा जी के लेख, पुस्तकें, पत्र-पत्रिकायें या मामी जी के नाटक आदि समझ कर लुक-छिपकर पढ़ने वाले अश्लील साहित्य के स्थान पर अंधविश्वास और अंधेरे को दूर भगाकर बच्चों के वर्तमान और भविष्य को उज्जवल बनाने वाला आपका वैज्ञानिक बाल साहित्य बच्चे रुचिपूर्वक, मन लगाकर अवश्य पढ़ेंगे। निश्चय ही ऐसे विज्ञान साहित्य से समाज और देश का 'ग्रास-रूट' स्तर पर अर्थात् भारत के भावी नागरिक बच्चों से विकास प्रारंभ हो सकेगा। □ □

बाल विज्ञान साहित्य का स्वरूप

विश्वंभर प्रसाद 'गुप्त बन्धु'

बाल विज्ञान-साहित्य के स्वरूप पर विचार करने के पहले हमें बालकों की सहज प्रवृत्तियों और उनकी आवश्यकताओं का अध्ययन कर लेना चाहिए ताकि जिस साहित्य की हम उनके लिए सिफारिश करें वह उनकी सहज जिज्ञासा को शान्त करने के साथ-साथ उनकी रुचि को भी उपयुक्त दिशा

में मोड़ सके और उनकी ज्ञान-पिपासा बढ़ाते हुए विज्ञान की पढ़ाई के प्रति उनमें उत्कंठा जाग्रत कर सके।

बाल-मानस की आवश्यकताएँ

हमारा जीवन आज-कल ऐसे साँचे में ढल गया है कि सवेरे उठने से लेकर रात में सोने तक हमें बहुत सी अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी करनी पड़ती हैं। नहाने-धोने के लिए तेल, साबुन, कंघा, शीशा आदि, खाने-पीने के लिए दाल, रोटी, सब्जी, मिठाई, घी, नमक, मसाले और फिर ठण्डी आलमारी (फ्रिज) आदि, चलने-फिरने के लिए सड़क, साइकिल, स्कूटर, मोटर, रेल जहाज आदि, पढ़ने-लिखने के लिए पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें, कागज, कलम, स्याही आदि, रहने पहिनने के लिए घर-द्वार, कपड़े, हीटर, शीतलक आदि, सोने के लिए पलंग, पंखा, मसहरी आदि, प्रकाश के लिए दीपक, लालटेन, बिजली की बत्ती आदि; गरज की जितनी भी चीजें हम इस्तेमाल करते हैं, उन सब में, उनके पैदा करने, गढ़ने, बनाने में, किसी न किसी रूप में विज्ञान की आवश्यकता अवश्य होती है। बालक भी कोई अपवाद नहीं। जन्म से ही उसका भी इन सबसे वास्ता पड़ता है, और होश सँभालते ही उसे इन सबके विषय में जिज्ञासा भी होने लगती है। वह आश्चर्यचकित होता हुआ चीजों को छेड़ता है, खिलौनों को तोड़ता-मरोड़ता है। उनकी कार्य-प्रणाली ध्यानपूर्वक देखता है और कोशिश करता है कि किसी प्रकार वह अपनी जिज्ञासा शान्त कर सके। इसलिए अक्षर-ज्ञान होते ही बालक को दिन-प्रतिदिन उसके सामान्य प्रयोग में आनेवाली वस्तुओं के बारे में कुछ जानकारी मिलनी चाहिए। 10-11 वर्ष तक की आयु के बच्चों को यह जानकारी उनकी भाषा की पाठ्य-पुस्तकों में ही मिलनी चाहिए, अलग से विज्ञान-साहित्य या विज्ञान का विषय पढ़ाकर उनके मस्तिष्क पर एक अतिरिक्त विषय का भार डालने की आवश्यकता नहीं है। उनकी भाषा की पुस्तक में ही कुछ पाठ अन्वेषकों, खोजियों की जीवनियों के और कुछ दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं के बारे में होने चाहिए। कथा-कहानियाँ भी विज्ञान सम्बन्धी हों। तात्पर्य यह है कि उन्हें सामान्य ज्ञान या प्रारम्भिक-पुस्तक-ज्ञान के रूप में ही विज्ञान की जानकारी देकर विज्ञान के प्रति उनकी रुचि बढ़ाई जानी चाहिए।

किशोर-मानस के लिए विज्ञान साहित्य

किशोरों को विज्ञान एक अलग विषय के रूप में पढ़ाया जा सकता है। उनके लिए विज्ञान-साहित्य या विज्ञान की पुस्तकें अलग से होनी चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त सहायक पुस्तकें, विज्ञान-कथाएँ आदि भी होनी चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों में विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त, सामान्य तथ्य, और क्रियात्मक प्रयोग आदि आकर्षक शैली में दिए जाएँ। तथ्यों का सम्बन्ध यथा सम्भव व्यावहारिक जीवन से जोड़ देने से वर्णन अधिक आकर्षक हो जाता है। इस प्रकार प्रायः आधी जानकारी कथा, संवाद और कविता के रूप में हो सकती है। सहायक पुस्तकों में ऐसे संवाद गद्य या पद्य में दिए जा सकते हैं जिनका अभिनय आसानी से कर सकें, जैसे लेन्स और दर्पण का संवाद या विभिन्न धातुओं की खोज और प्राप्ति का वर्णन। वैज्ञानिक खिलौने, जैसे दूरबीन, केलिडास्कोप, एपिडास्कोप, वसुदेव-प्याला (टेण्टलस-कप), इन्द्र धनुष आदि बनाने की विधियाँ सहायक पुस्तकों में दी जाएँ और छात्रों को प्रयोगशाला या कार्यशाला में ऐसे खिलौने बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

उद्देश्यों की तिपाई

विज्ञान प्रायः एक जटिल विषय समझा जाता है, और रूखा भी। किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। विज्ञान तो शाश्वत सत्य की खोज है और बाल-मानस तो इतना सीधा-सच्चा, सरल-स्वभाव होता है वह किसी अवैज्ञानिक और अतर्कसंगत बात की अपेक्षा एक वैज्ञानिक और तर्कसंगत बात आसानी से समझ लेता है। शर्त केवल एक है, कि हम उसे ऐसी भाषा में समझाएँ जो रोचक होने के साथ-साथ वह आसानी से समझ ले। दूसरे शब्दों में विज्ञान-साहित्य

बी—154 लोकविहार, दिल्ली—34

की भाषा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारी भाषा ही जटिल और रूखी होगी तो विषय जटिल और रूखा लगेगा ही। हमारे बाल-साहित्य की रचना चाहे वह पुस्तक के रूप में हो, या मात्र किसी लेख या पाठ के रूप में, निम्नलिखित तीन उद्देश्यों की तिपाई पर खड़ी होनी चाहिए।

1. वाक्य छोटे हों, सरल हों और अप्रचलित असामान्य शब्द कम से कम हों। पारिभाषिक शब्दों का जहाँ प्रयोग हो, उनकी व्याख्या या परिभाषा वहीं पर या कहीं आस-पास ही उपलब्ध हो।
2. शैली रोचक हो ताकि पाठक का मन न ऊबे, किन्तु शब्दाडम्बर में मूल तात्पर्य छिप न जाए। और
3. नई-नई शोधों और गवेषणाओं की तर्कसंगत कल्पना करके उनके लिए मार्ग सुझाए जाएँ और भावी संभावनाओं की ओर इंगित किया जाए, ताकि बालकों में धैर्य-पूर्वक काम में लगे रहने और परिश्रम करने की प्रवृत्ति बढ़े।

लेखन की अग्नि परीक्षा

विज्ञान-लेखन सामान्य कथा-कहानी या उपन्यास लेखन जैसा नहीं होता। सामान्य रचनाएँ प्राय: मनोरंजन की दृष्टि से लिखी जाती है। उनमें व्यक्ति, काल, स्थान, आदि काल्पनिक हुआ करते हैं। किन्तु विज्ञान-लेखक तो सत्य का अनन्य पुजारी होता है। उसे तो तथ्यों की तलवार की धार पर ही चलना होता है, कहीं भी रंच मात्र भी हेर-फेर की गुंजाइश नहीं रहती। यदि कोई लेखक भूल से, अज्ञान से या जल्दबाजी में ही सही, गति सम्बन्धी सिद्धान्तों के प्रणेता के नाम न्यूटन के बजाय डाल्टन या मिल्टन या कुछ और ही लिख जाए तो उसकी सारी रचना तो रद्दी की टोकरी में जाने योग्य होगी ही, वह स्वयं भी अपराधी की कोटि में आ सकता है। इसलिए जिसको विज्ञान के छोटे-बड़े सभी सम्बन्धित तथ्यों की पूरी-पूरी और सही जानकारी होगी, वही विज्ञान-साहित्य लिखने का साहस कर सकता है और इस अग्नि-परीक्षा में खरा उतर सकता है। अधकचरे ज्ञान से यहाँ काम नहीं चलता। बाल विज्ञान-साहित्य को प्राय: उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना आवश्यक है। विज्ञान के अच्छे विद्वान बालकों के लिए उपयुक्त साहित्य-रचना में प्रवृत्त नहीं होते, शायद इसलिए कि यह कार्य उनको अपने लिए विशेष लाभकारी और प्रतिष्ठाजनक नहीं प्रतीत होता। किन्तु उन्हें आवश्यक समाज-सेवा, बल्कि देश-सेवा समझकर इस काम में मिशनरी भावना से लगना चाहिए। बच्चों की शिक्षा का दायित्व ग्रहण करने वाली संस्था/सरकार को भी यह सावधानी रखनी चाहिए कि बाल विज्ञान-साहित्य के निर्माण के लिए अच्छे से अच्छे अधिकारी विद्वानों की सेवाएँ ही प्राप्त की जाएँ, अधकचरे या अवांछनीय प्रवृत्तिवाले लेखकों की नहीं। बच्चों पर ही देश का भविष्य निर्भर होता है, इसलिए उन्हें अच्छे से अच्छा साहित्य और अच्छे से अच्छे विद्वानों का मार्ग-दर्शन प्राप्त होना ही चाहिए। □□

उर्दू में बच्चों के लिए विज्ञान कैसा लिखें

मुहम्मद खलील

(उर्दू से अनुवाद)

भारतीय भाषाओं में खास तौर पर उर्दू भाषा में लोकप्रिय विज्ञान (पापुलर साइन्स) के लिखने में अभी तक पूरी तरह से ध्यान नहीं दिया गया है। भारतीय भाषाओं के लेखन में अगर हम विज्ञान के शोधपत्रों को देखें तो उनके मुकाबले में तो लोकप्रिय विज्ञान लेखन को बढ़ावा मिला है, परन्तु बच्चों के लोकप्रिय विज्ञान के लेखन में पहली समस्या विषय को

सम्पादक, 'साइन्स की दुनिया', पी० आर० डी०, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली

तै करने की है, जबकि लेखक के सामने पढ़ने वालों को पहुँचाने के लिए एक बड़ा खजाना मौजूद है। लेकिन समस्या इस लिए उत्पन्न होती है कि लेखक को अपने पढ़ने वालों के विचार और पाठक की रुचि को सामने रखना होता है। और विशेषकर जब बच्चों के लिए लोकप्रिय विज्ञान लिखा जा रहा हो, क्योंकि जब बच्चे 10 वर्ष से बड़े होते हैं तो उनके विचार करने के अन्दाज़ में एक नया मोड़ पैदा होता है। वे जानकारी के लिए अध्ययन की ओर बढ़ते हैं। विज्ञान की ठोस सच्चाइयों और विचित्र आविष्कारों में उनकी रुचि बढ़ने लगती है। इसलिए विषय को तै करना अत्यधिक आवश्यक है। इसलिए बच्चों की रुचि को सामने रखकर यह तै किया जाय कि किस आयु के बच्चों के लिए विज्ञान का कौन सा विषय अधिक उचित होगा। ताकी बच्चे उसे पढ़ने के लिए रुचि ले सकें। बच्चों का विषय ऐसा हो जो उनकी रुचि को बनाये रक्खे। भाषा सरल हो, वाक्य छोटे हों और कठिन व घुमावदार (जटिल) वाक्यों से लेखक को बचना चाहिए। परन्तु सरल टेक्निकल शब्दों को मेरे विचार में बच्चों के लेख में प्रयोग करना चाहिए। लेकिन कुछ लोग इसके विरुद्ध हैं क्योंकि इससे बच्चे की रुचि के कम होने का भय होता है। लेकिन अगर बच्चे विशेषकर 11 वर्ष की आयु से 16 वर्ष की आयु में ऐसे हलके-फुलके विज्ञान के टेक्निकल शब्दों को न पढ़ेंगे तो विज्ञान के तकनीकी शब्द किस प्रकार उनके लिए लोकप्रिय विज्ञान लेखन में प्रयोग किये जाएँगे? जैसे "प्रोटीन" शब्द को लीजिए, जिसका उर्दू में टेक्निकल शब्द "लहमिया" है और "सेल" शब्द का "खलया" है। ये शब्द साधारण और जाने माने हैं। ऐसे टेक्निकल शब्दों को प्रयोग में लाया जा सकता है। इससे आगे चलकर बच्चे विज्ञान के टेक्निकल शब्दों से उलझन न महसूस करेंगे। इस प्रकार लेखक अपनी कोशिश से इस समस्या को हल कर सकता है जो लेखक के लेखन कला के गुणों की ओर इशारा करता है।

लेखक को इस बात का भी ध्यान रखना होता है कि किस प्रकार लेखक विषय को उन बच्चों तक पहुँचाता है। इसमें से सब से लोकप्रिय तरीका समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का है जिनमें दिन-प्रतिदिन अधिकता हो रही है। इससे इनकी लोकप्रियता का अन्दाजा किया जा सकता है। लेकिन इस सच्चाई से अब भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनमें लोकप्रिय साइन्स के लेख अब भी कम प्रकाशित होते हैं—विशेष कर बच्चों के लिए। समाचार-पत्र और पत्रिकाओं में बच्चों के लिए लेखक को इस प्रकार लिखना चाहिए कि पढ़ने वाले की रुचि कम न हो और रुचि लेख के अन्त तक बनी रहे। क्योंकि बिना रुचि वाले लेख भला बच्चे क्यों पढ़ेंगे। इस प्रकार लेखक को लेख में रुचि पैदा करना आवश्यक है। जैसे फिक्शन, जो विज्ञान पर आधारित होते हैं, उन्हें पढ़कर ऐसा लगता है कि पहले पैराग्राफ में लेखक कोई कहानी सुना रहा है। और यह रोचकता उत्पन्न करने में सहायक होता है। लेकिन उर्दू भाषा में ऐसे विज्ञान फिक्शन लिखे ही नहीं गये हैं, जो बच्चों के लिए हों और अगर हैं भी तो नहीं के बराबर हैं। एक दूसरा तरीका लेख में बच्चों के लिए किसी विशेष रुचि वाली घटना का वर्णन करना है। कभी-कभी लेख के किसी विशेष बिन्दु को फैला कर सरल रूप से बताने से भी बच्चों में विज्ञान के लेखों को पढ़ने के लिए रुचि अधिक हो जाती है। बच्चे भी भूत काल और अपने पूर्वजों की परम्परा से लगाव रखते हैं। इसके अतिरिक्त उनके लिए विज्ञान साहित्य विज्ञान-कथा के रूप में लिखी जा सकती है जो उनके लिए रुचि पैदा करने में सहायक सिद्ध होगी। वैसे सच पूछिये "तो लिखना लिखते-लिखते ही आता है।"

इस प्रकार अगर बच्चों के लिए वार्ता रेडियो से प्रसारित हो रही है तो लेखक के रुचिकर लेखन की पहली शर्त यह है कि आप के और रेडियो सुनने वाले बच्चे के बीच कोई दीवार न रहे अर्थात् आप दोनों में सीधा सम्बन्ध पैदा हो जाय और लेखक की बात सुनने वाले के हृदय में उतर जाय और यह तभी होगा जब लेखक की विज्ञान सम्बन्धी बातें बच्चों के लिए लाभकारी हों, उनकी जानकारी को बढ़ाने वाली हों।

सुनने वाला आपके सामने नहीं है। आप की सिर्फ आवाज सुनने वाले तक पहुँच रही है। लेखन इतना रुचिकर होना चाहिए कि वह सुनता रहे।

इसके लिए आवश्यक है कि लेखक की भाषा बहुत सरल और साधारण बोल-चाल की हो और ऐसा लगे कि सीधे बात चीत हो रही है। बातचीत का एक अपना ही ढंग होता है। यह विज्ञान को और रुचि वाला बना देगा। बच्चों के लिए बड़े वाक्य का प्रयोग न करें। शब्द सरल हों, कठिन शब्दों से बचें। "भाई आज हम बात कर रहे हैं विज्ञान में प्रगति की" जैसे साधारण वाक्य प्रयोग में लाये जा सकते हैं। इससे लेखक सुनने वाले बच्चों के समीप पहुँच जाता है।

विज्ञान पर लेख लिखते समय लेखक को विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखता होगा कि उसके लेखों से "अन्धविश्वास" को बल न मिले। क्योंकि अगर बच्चों के मस्तिष्कों में एक बार इस प्रकार की कोई गलत बात बैठ गई तो उसे निकालने में समय लगेगा। इस प्रकार लेखक का एक खास मकसद बच्चों में अपने लेखन के जरिये वैज्ञानिक विचारधारा को पैदा करना है। लेखक के लिए बुनियादी तौर पर यह जरूरी है कि वह उन्हीं विषयों को चुने जिस पर उसे महारत हो। अगर लेखक कृषि से संबंधित है तो भौतिकशास्त्र या अन्तरिक्ष के विषयों को अपने लेखन का विषय नहीं बनाना चाहिए। इसी प्रकार टी० वी० के लिए जब लेखक अपना लेखन आरम्भ करे तो चित्र के रूप में बहुत कुछ देखने वाले को दे सके क्योंकि सुनने का काम कम और देखने का अधिक है। इस प्रकार यही प्रभाव लेखन पर भी होना चाहिए और फिर जब बच्चों के लिए टी० वी० प्रोग्राम हो तो इसे चित्रों और रुचि वाली सूचनाओं से सजाना होगा। यहाँ लेखन से अधिक चित्रों का ध्यान रखना होगा। लोकप्रिय विज्ञान (पापुलर साइन्स) की अहमियत को देखते हुए 'काउन्सिल ऑफ साइन्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च' के प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय ने हिन्दी में मासिक "विज्ञान प्रगति" (जिसका हर नवम्बर का अंक बच्चों का विशेषांक होता है), देश की अकेली उर्दू की त्रैमासिक पत्रिका "साइन्स की दुनिया" (जिसके हर अंक में बच्चों का भी कालम होता है) और अंग्रेजी की मासिक पत्रिका "साइन्स रिपोर्टर" प्रकाशित करती है, जिससे बच्चे लाभ उठा सकें। इसके अतिरिक्त दूसरी संस्थाओं ने जैसे नेशनल बुक ट्रस्ट, एन० सी० ई० आर० टी०, चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट, पब्लिकेशन डिवीजन, भारत सरकार ने भी बच्चों के लिए उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इनका मूल्य भी बहुत कम है। कुछ गैर सरकारी संस्थाओं ने भी बच्चों के लिए लोकप्रिय विज्ञान पर पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

इस प्रकार एक लेखक को अपने विज्ञान लेखन में विभिन्न मीडिया को सामने रख कर लेखन करना होता है ताकि लेखन प्रभावशाली रहे और बच्चों पर पूरा प्रभाव डाल सके। अब उर्दू भाषा में भी बच्चों के लिए लोकप्रिय विज्ञान लेखन की जरूरत को समझा जा रहा है और यही कारण है कि बच्चों के लिए लोकप्रिय विज्ञान लेखन के रोशन इमकानात नजर आते हैं। □□

हिन्दी बाल विज्ञान लेखन : समस्याएँ और सुझाव

राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप

लक्ष्य समूह की मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ

6-16 वय वर्ग के बालकों के लिये विज्ञान लेखन की समस्याओं पर विचार करने के पूर्व हम इस वय-वर्ग की, जिसमें उत्तर बाल्यकाल, वय-संधि और प्रारम्भिक किशोरावस्था की अवस्थाएँ सम्मिलित हैं, विशेषताओं पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे।

शिक्षाशास्त्र विभाग, ए० पी० एन० डिग्री कॉलेज, बस्ती (उ० प्र०)

उत्तर बाल्य काल—6 वर्ष से प्रारंभ होने वाली यह अवस्था 'प्रारम्भिक विद्यालयी अवस्था' या 'स्मार्ट एज' या 'बिग इंजन एज' जैसे नामों से पुकारी जाती है। मनोवैज्ञानिक इसे 'गैंग एज' नाम से पुकारना पसंद करते हैं।

मानसिक विकास की दृष्टि से इस अवस्था की विशेषताएँ हैं—स्थायित्व, जिज्ञासा, अनुकरण, रचनात्मकता, संचय की प्रवृत्ति, परिपक्वता, बहिर्मुखता, खेल में रुचि, सुप्त काम प्रवृत्ति, प्रशंसा और निंदा का भाव तथा कठोर अनुशासन के प्रति विद्रोह।

डेवलेपमेंटल साइकालोजी (टाटा मैग्राहिल, नई दिल्ली) की लेखिका एलिजाबेथ बी० हर्लाक के अनुसार इस अवस्था में सामान्य रुचि का संबंध धर्म, मानव शरीर, अपनी बाह्य प्रस्तुति, यौनभावना, विद्यालय और स्वतंत्रता से होता है। यदि डार्विन, और मिलर, मैकार्थी और बोलमैन तथा बार्कर के शोध परिणामों को आधार माना जाय तो पहली कक्षा के बालक का शब्द भंडार 20,000 शब्दों से अधिक होना चाहिये।

वयः सन्धि या प्यूबर्टी को 'तीव्र परिवर्तनों की अवस्था', 'निषेधात्मक अवस्था' जैसे नाम दिये गये हैं। इस काल के मानसिक विकास के लक्षण हैं—मस्तिष्क की तीव्र विकास गति, मानसिक योग्यताओं और क्षमताओं का सर्वाधिक विकास, विशेष रुचियों का प्रारम्भ, तीव्र संवेगात्मकता, स्थायित्व और संयोजन का अभाव, कल्पना का बाहुल्य, यौन विकास की तीव्र गति। इसके साथ-साथ अकेले रहने की प्रवृत्ति, असमायोजनशीलता, बोरियत, बेचैनी, विपरीत लिंगियों का विरोध, आत्मविश्वास का अभाव, यौन विषयों में तीव्र रुचि, दिवास्वप्न और अत्यधिक विनयशीलता भी दिखाई देती है।

इस अवस्था की रुचियाँ सामान्यतया अपनी शारीरिक और यौनिक विकास से सम्बन्धित होती हैं।

प्रारंभिक किशोरावस्था—(इस अवस्था को 'तीव्र संवेगात्मकता की अवस्था' 'अस्थिरता की अवस्था' और 'तूफान तथा दबाव' की अवस्था जैसे नाम दिए गये हैं। इस अवस्था में अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त प्रत्ययों के आधार पर अमूर्त चिंतन की क्षमता, तर्क तथा निर्णय करने की क्षमता, ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता, स्मृति विस्तार की क्षमता तथा रचनात्मक कल्पना की क्षमता विकसित होजाती है।

मानसिक विकास के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य करने वाले ज्याँ पियाजे ने मानसिक विकास की चार अवस्थाएँ[x2] स्वीकार की हैं—

1. संवेदन गति अवस्था (सेंसरी मोटर स्टेज)—जन्म से 18 मास तक चलने वाली इस अवस्था में शिशु की जन्मजात प्रक्रिया शनैः शनैः जटिल व्यवहार प्रतिमानों से संशोधित होती है।

2. पूर्व क्रिया अवस्था (प्रीऑपरेशन स्टेज)—18 मास से 6 वर्ष की अवस्था तक चलती है। इस अवस्था का सम्बन्ध प्रतीकों के उपयोग से है, जो व्यक्तिगत प्रतीकों से प्रारम्भ करके मान्यताप्राप्त प्रतीकों तक पहुँचने की प्रक्रिया है। बालक की चिंतन प्रक्रिया के क्षणिक प्रत्यक्षीकरण पर आधारित होने के कारण कार्य-कारण तार्किक सम्बन्धों के स्थान पर वह वस्तुओं का सह-सम्बन्ध उनकी पारस्परिक निकटता में जोड़ता है तथा पूर्ण और अंश के मध्य अस्पष्ट सम्बन्ध ही ग्रहण कर पाता है।

3. मूर्त क्रिया अवस्था (कांक्रीट ऑपरेशन स्टेज)—6-7 वर्षों से 11 वर्ष की अवस्था तक चलने वाली मानसिक विकास की यह अवस्था मानसिक क्रियाओं की जटिल संरचना के संगठित रूप से निर्माण से सम्बन्धित होती है। इसे मूर्त इसलिये कहा जाता है क्योंकि इनका प्रारम्भ सदैव किसी वास्तविक वस्तु प्रणाली और उसके अंतर्गत सम्बन्धों के प्रत्यक्षीकरण से होता है।

4. औपचारिक क्रिया अवस्था (फॉर्मल ऑपरेशन) स्टेज—इस अवस्था में बालक 11-12 वर्ष की अवस्था में प्रवेश करता है। यह वयस्क तर्क की अवस्था है जिसमें बालक किसी खोज से सम्बन्धित कारकों को

x2—मानसिक विकास और शिक्षण कला-राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप, मनीषा, खण्ड—4 अंक 1.1975-76

पहचान सकता है, उनके सम्भव संयोग बना सकता है, निष्कर्ष प्राप्त कर सकता है और उन्हें वास्तविकता पर परीक्षित कर सकता है।

यह भी ध्यान रखना चाहिये कि आयवृद्धि के साथ-साथ चिंतन एक स्थिर, लघु परासीय, स्वकेन्द्रित दृष्टिकोण प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया में अपरिवर्तन के प्रत्यय का विकास भी निहित है।

प्रो० ए० एन० व्हाइटहेड ने 'एम्स ऑव एजूकेशन' में 2-3 वर्ष से 7-8 वर्ष की अवस्था को 'एज ऑव रोमांस' (भावुकता का काल), 7-8 वर्ष से 12-13 वर्ष की अवस्था को 'एज ऑव प्रिसीजन' (परिशुद्धता का काल) और 12-13 वर्ष से 18-19 वर्ष की अवस्था को 'एज ऑव जनरलाइजेशन' (सामान्यीकारण का काल) पुकारा है। इन शब्दों में भी इन आयु वर्गों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को समाहित करने का प्रयास किया गया है।

यहाँ मैं ए० एफ० वाट्स[x3] द्वारा किये एक अनुसंधान का उल्लेख करना चाहूँगा जिसमें दो हज़ार बालकों की पुस्तक-रुचि का अध्ययन किया गया था। इनमें से 80.6% ने सरल काल्पनिक साहित्य (इजी फिक्शन) जिसमें परीकथायें, विद्यालय की कहानियाँ, साहसिक कथाएँ और रोमांचक कहानियाँ सम्मिलित थीं, के प्रति रुचि प्रदर्शित की थी। शेष 19.4% ने इतिहास, आत्मकथा, यात्रा विवरण, कला, विज्ञान, प्राकृतिक अध्ययन, कविता और नाटकों में रुचि प्रदर्शित की थी। इसी प्रकार के परिणाम ए० जे० जैनकिसन ने भी प्राप्त किये थे।

वैज्ञानिक लेखन

विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट, क्रमबद्ध ज्ञान अर्थात् वैज्ञानिक लेखन से हमारा तात्पर्य ऐसे लेखन से है जो हमारे स्वयं अथवा हमारे चतुर्दिक सृष्टि के किसी पक्ष या अंश के संबंध में विशिष्ट, क्रमबद्ध जानकारी प्रदान कर सके। इसके अन्तर्गत उच्च शोध साहित्य, लोकप्रिय साहित्य, कल्पनापूर्ण साहित्य तथा वैज्ञानिकों के जीवन और कार्य का परिचय देने वाली रचनाएँ स्वीकार की जाती हैं। परन्तु वैज्ञानिक लेखन के मूल में सदैव ही एक वैज्ञानिक दृष्टि होनी चाहिये, जिसके अन्तर्गत हम किसी भी सिद्धान्त को परीक्षणों की कसौटी पर कसे बिना स्वीकार नहीं करते। साथ-साथ यह भी मानते हैं कि नवीन ज्ञान की खोज के साथ प्राचीन स्वीकृत मान्यताओं और सिद्धान्तों की व्याख्या में भी परिवर्तन होता रहता है। अर्थात् विज्ञान अभी उस स्थिति तक नहीं पहुँचा है जहाँ किसी व्याख्या अथवा नियम को 'अन्तिम' (अल्टीमेट) स्वीकार किया जा सके।

स्वाभाविक है कि चिरंतन सत्यों की खोज को अभिव्यक्ति देने का कार्य वैज्ञानिक साहित्य का है और यह कार्य तब अत्यधिक कठिन हो जाता है जब यह साहित्य वे लोग लिखते हैं जिनकी मातृभाषा कुछ और होती है और उसे पढ़ने वाले भी वे होते हैं, जिनकी मातृभाषा में वह साहित्य नहीं होता। इसलिए प्रत्ययों की सही समझ के लिए मातृभाषा में वैज्ञानिक साहित्य की आवश्यकता और महत्व स्वतः स्थापित हो जाता है।

बाल वैज्ञानिक साहित्य की दृष्टि से मातृभाषा का यह प्रश्न और अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अस्पष्ट प्रतीकों की बैसाखी से वास्तविक और शुद्ध प्रत्ययों की समझ और आत्मीकरण संभव नहीं है।

हिन्दी बाल-वैज्ञानिक साहित्य की समस्याएँ

हिन्दी में बाल वैज्ञानिक साहित्य की समस्याओं पर विचार करते समय यह ध्यान रखना होगा कि सभी समस्याएँ एक दूसरे से पूरी तरह अलग नहीं हैं। वे एक दूसरे को आच्छादित करती हैं—एक दूसरे से प्रभावित भी होती हैं।

1. पर्याप्त वैज्ञानिक पत्रिकाओं का अभाव

हिन्दी में विज्ञान पत्रिकाएँ गिनी चुनी ही हैं। उनमें बाल विज्ञान पत्रिकाएँ जिनका सम्बन्ध केवल बाल पाठकों से हो, वे तो हैं ही नहीं, 6-16 वय वर्ग के लिए वैसे भी कोई एक पत्रिका पर्याप्त नहीं हो सकती, परन्तु ऐसी कोई पत्रिका जो इस वय वर्ग के लिये वैज्ञानिक ज्ञान उपलब्ध कराए, उपलब्ध नहीं है।

x3—ए० एफ० वाट्स, द लैंग्वेज एज मेंटल ऑव चिल्ड्रेन, 1984, जार्ज हारप, लण्डन।

हाँ, हिन्दी की विज्ञान पत्रिकाएं माध्यमिक स्तर तक के विद्यार्थियों को वैज्ञानिक सामग्री उपलब्ध कराने का प्रयास करती हैं। 'विज्ञान प्रगति' इस दृष्टि से पर्याप्त सफल पत्रिका कही जा सकती है।

2. पाठकों का अभाव

विद्यालयी अवस्था के सभी बालक बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं प्राप्त कर पाते, यह तो एक कड़वा सच है ही। वैज्ञानिक साहित्य में रुचि रखने वाले बाल-पाठकों का भी अभाव हिन्दी में अत्यधिक है जिसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अभी हमारी जीवन-दृष्टि परीक्षणमूलक होने के स्थान पर आस्थामूलक है। विज्ञान विषय के रूप में पढ़ा-पढ़ाया जाता है परन्तु पारिवारिक वातावरण में उसकी पहुँच सुविधाओं और मनोरंजन के साधन जुटाने के रूप में है—चिन्तन प्रक्रिया को जाग्रत करने वाले कारक के रूप में नहीं। इस कारण हमारे बालक बालिकाओं की रुचि विज्ञान में उत्पन्न नहीं होती।

जीवन और ज्ञान का अंतर्द्वन्द्व बाल पाठकों के अभाव का एक महत्वपूर्ण कारण है।

3. अनुपयुक्त भाषा की समस्या

हिन्दी का संपूर्ण विज्ञान लेखन और इसी रूप में बाल विज्ञान लेखन अभी भी मौलिक रचनाओं के स्थान पर अनुवाद पर अत्यधिक अवलंबित है। इस इस कारण अंग्रेजी मुहावरों के शब्दश: अनुवाद भाषा को बोझिल और अबोधगम्य बना देते हैं। पारिभाषिक शब्दाबली के नाम पर जो संस्कृतनिष्ठ शब्दावली विकसित की गयी है उसके प्रयोग के कारण भी विषय बोधगम्य नहीं हो पाते।

यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि 8-9 वर्ष के लिए लिखे गये लेख या कहानी की भाषा 13-14 वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिये प्रस्तुत सामाग्री की भाषा से शब्द-प्रयोग और वाक्य-विन्यास की दृष्टि से भिन्न प्रकार की होनी चाहिए, परंतु एक लेख को सभी वय वर्गों के बालकों के लिए पाठ्य बनाने के लिये इस पर ध्यान नहीं दिया जाता।

4. अनुपयुक्त विषयों की समस्या

उत्तर बाल्यावस्था और वय-संधि में जटिल विषयों, जिनमें अमूर्त प्रत्ययों के प्रयोग की आवश्यकता होती है, को समझना कठिन होता है, जबकि किशोरावस्था में वस्तुओं को उनकी गहराई और पूरी वास्तविकता में जानने की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कठिन विषयों को समझने में सहायता करती है जो बाल्यावस्था में संभव नहीं है।

कठिन और जटिल विषयों की नीरस शैली में प्रस्तुति इसी कोटि की एक और समस्या कही जा सकती है।

5. तथ्यपरकता का अभाव

अनेक बार कठिन सिद्धांतों की सरल अभिव्यक्ति करने की ललक में विज्ञान लेखक तथ्यपरकता का ध्यान रखना भूल जाते हैं। परिणाम एक ऐसी सूचना होती है जो मनोरंजक तो होती परंतु वैज्ञानिक दृष्टि से विश्वसनीय और तथ्यात्मक नहीं होती। कभी-कभी तकनीकी शब्दों के अनुवाद और तथ्य के आधारभूत प्रयोग और विवरणों और प्रदर्शनों का अभाव या त्रिआयामीय वस्तुओं का द्विआयामीय प्रदर्शन भी तथ्यात्मक त्रुटि उत्पन्न करता है

6. दक्ष विज्ञान लेखकों का अभाव

हिन्दी जिनकी मातृभाषा हो और जो अपना रचनाकर्म हिन्दी में ही करते हों ऐसे दक्ष वैज्ञानिकों की संख्या भी बहुत कम है। मराठी, बंगला और कन्नड़ में वैज्ञानिक विषयों पर लेखनरत वैज्ञानिकों की संख्या पर्याप्त है परन्तु इस दिशा में प्रोत्साहन के अभाव के कारण अभी हिन्दी में वैज्ञानिक पत्रिकाओं की कमी कुछ वर्षों तक बनी रहेगी।

हिन्दी पत्रिकाओं द्वारा लेखकों को प्रदान की जाने वाली पारिश्रमिक राशि भी अंग्रेजी विज्ञान पत्रिकाओं की तुलना में इतनी कम है कि अधिकांश लोग हिन्दी में लिखने के प्रति प्रेरित नहीं हो पाते। केवल वे ही व्यक्ति जो हिन्दी के प्रति हार्दिक लगाव अनुभव करते हैं, लेखन को कर्तव्य मानते हैं, हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन का कार्य करते रहते हैं।

7. विज्ञान-कथा लेखन की विशिष्ट समस्याएँ

परियों और राक्षसों के स्थान पर रोबोटों और सत्ता के लिये पागल वैज्ञानिकों, जादुई कालीनों और उड़ने वाले पंखों के स्थान पर विचित्र अंतरिक्ष यानों, मानवीय संवेदनाओं के स्थान पर मशीनी प्रतिक्रियाओं, का उपयोग करने से कोई काल्पनिक परीकथा क्या विज्ञान कथा हो जाती है ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। मैन्ड्रेक, बेताल, स्पाइडरमैन के कामिक्स किस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में सहायक हो सकते हैं, यह भी एक विचारणीय विषय है। सिद्धान्त यही है कि रचना की काल्पनिकता और कल्पनाशीलता तथ्य-संचयन, नियमों के निर्माण और परीक्षण में सहायता करे। यदि कोई कल्पनापूर्ण रचना केवल काल्पनिक वातावरण की सृष्टि करती है और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के निर्माण में सहायता नहीं करती तो उसे वैज्ञानिक रचना स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये।

ऐसी रचना प्रस्तुत करना किसी भी स्थिति में सरल कार्य नहीं है।

बाल विज्ञान लेखन की समस्याओं के सम्बन्ध में कतिपय सुझाव

1. बाल-विज्ञान अकादमियों तथा विज्ञान क्लबों की स्थापना

हिन्दी में बाल वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित करने और वैज्ञानिक रुचि उत्पन्न करने के लिए बाल विज्ञान अकादमियों और प्रत्येक नगर और विद्यालयों में उनकी शाखाओं तथा विज्ञान क्लबों की स्थापना की जानी चाहिये। इनमें विज्ञान अध्यापकों और प्रयोगशालाओं की भी व्यवस्था होनी चाहिये जहाँ वैज्ञानिक विषयों पर साहित्य के साथ फिल्में भी उपलब्ध हों।

नियमित बहु-प्रचारित व्याख्यानों, जिनमें स्लाइडों, फिल्मों या वीडियो कैसेटों का उपयोग किया जाए, द्वारा बालक बालिकाओं को इस दिशा में आकर्षित किया जा सकता है।

बालिकाओं के विद्यालयों में ऐसी व्यवस्थाएँ और अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

2. सर्वेक्षणों की व्यवस्था

बालकों की रुचि, उनकी भाषा क्षमता, और उनके शब्द भन्डार के आकलन के लिये ग्रामोण और नगरीय सभी क्षेत्रों में सर्वेक्षणों की व्यवस्था की जानी चाहिये। इनके परिणामों से निम्न निष्कर्ष प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

(1) विभिन्न वय वर्गों में बालक बालिकाओं का शब्द भंडार,

(2) बालकों द्वारा समझी और प्रयोग की जाने वाली भाषा के विभिन्न स्तर और स्वरूप,

(3) बालकों और बालिकाओं (नगरीय/ग्रामीण, उच्च/मध्य वर्गीय निम्नवर्गीय सामाजिक बौद्धिक स्तर) की पठन रुचि।

3. कार्यशालाओं की व्यवस्था

विभिन्न वय-वर्गों के द्वारा प्रयुक्त बालक-बालिकाओं के शब्द भन्डार, वाक्य विन्यास और पठन रुचि के आधार पर विज्ञान लेखन की कार्यशालाएँ आयोजित की जाएँ जिनमें भाषा वैज्ञानिक और विभिन्न क्षेत्रों के वैज्ञानिक विज्ञान लेखकों के लिये 'रिसोर्स पर्सन' के रूप में कार्य करते हुए उन्हें वास्तविक कार्य का प्रशिक्षण और अनुभव प्रदान करें।

4. विज्ञान-प्रतियोगिताएँ

वैज्ञानिक विषयों को समझ को प्रोत्साहित करने के लिये राष्ट्रीय स्तर से जनपद और विद्यालयी स्तर पर प्रत्येक वयवर्ग के लिये प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाएँ तथा आकर्षक पुरस्कार प्रदान किये जाएँ। इन प्रतियोगिताओं का आयोजन उच्च स्तर पर सभी विज्ञान शाखाओं में और निम्न स्तर पर सामान्य रूप में होना चाहिये।

भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार किसी भाषा और बोली में जो अन्तर होता है वह दो भाषाओं के अन्तर से कम नहीं है—बालक-बालिकाओं के लिये भी पारिवारिक बोली और विद्यालय में प्रयोग की जाने वाली भाषा संप्रेषण में अन्तराल उत्पन्न करती है। अत: यदि संभव हो तो बालक को समझाने की प्रक्रिया उसकी बोली में होनी चाहिये।

5. विज्ञान लेखन प्रतियोगिताएँ

प्रत्येक वय वर्ग के लिये विज्ञान लेखकों की प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की जानी चाहिए। इससे विशिष्ट विषयों में विशेष वय वर्ग के लिये लेखक लेखिकाएँ प्राप्त हो सकेंगे।

6. सस्ते वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन

वैज्ञानिक-प्रवृत्ति को विकसित करने के लिये सस्ते परन्तु तथ्यपरक उत्कृष्ट वैज्ञानिक साहित्य का होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। इस हेतु अंग्रेजी में उपलब्ध 'वर्ल्ड ऑव साइंस' (24 खन्ड), 'यंग चिल्ड्रेन इन्साइक्लोपीडिया' (16 खन्ड) जैसे वैज्ञानिक विश्वकोशों की रचना की तत्काल आवश्यकता है।

वैज्ञानिकों की जीवन गाथाएँ और उनके अनुसंधान परिणाम, वैज्ञानिक विषयों की हैन्डबुक्स आदि कम से कम मूल्य में प्राप्त होने की स्थिति में ही बालक बालिकाओं में विज्ञान के प्रति रुचि जाग्रत होने और विकसित होने की आशा की जा सकती है।

इस कार्य में प्रकाशकों, विज्ञान लेखकों, विद्वानों और सरकार को मिल जुल कर कार्य करना अपेक्षित होगा। □□

बुनियादी हिन्दी बनाम अनुवादी हिन्दी

डॉ० रणजीत

इस ग्रीष्मावकाश में मुझे नवोदय विद्यालयों की छठी कक्षा में चलने वाली और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा तैयार की गई कुछ पाठ्य पुस्तकें देखने का अवसर मिला। इनमें से जिन पुस्तकों की नकली और अनुवादी हिन्दी ने मुझे विशेष रूप से चिन्तित किया, उनकी चर्चा यहाँ करना चाहता हूँ। पहली पुस्तक है "आओ विज्ञान सीखें" भाग 1। पुस्तक के प्रारम्भिक पृष्ठों में दी गई सूचनाओं से ज्ञात होता है कि पुस्तक कई विशेषज्ञों के सहयोग से मूलतः अंग्रेज़ी भाषा में लिखी गई और उसका हिन्दी अनुवाद श्री जे० पी० अग्रवाल, एस० पी० सक्सेना और आर० डी० सक्सेना ने किया है।

मुझे यह स्थिति आश्चर्यजनक लगती है कि देश में इतने सारे हिन्दी भाषी वैज्ञानिकों और विज्ञान शिक्षकों के होते हुए क्या छठी कक्षा की विज्ञान की पुस्तक भी सीधे हिन्दी में लिखी या लिखवाई नहीं जा सकती? कौन-सी ऐसी विवशताएँ हैं, जिनके रहते भारत की राष्ट्रीय शैक्षणिक परिषद् को भी हिन्दी माध्यम से अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए अंग्रेज़ी की पाठ्य पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करवाना पड़ता है?

क्योंकि पुस्तक सीधे हिन्दी में नहीं लिखी गई है इसलिए इसकी भाषा सामान्य बुनियादी हिन्दी नहीं, एक नकली और अनुवादी हिन्दी है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) पृष्ठ आठ पर प्रश्न है : 1-ऐसी युक्ति का नाम बताओ, जिसके द्वारा तुम निम्नलिखित वस्तुएँ देख सकते हो—(I) बहुत छोटी, (II) बहुत दूर की।

यहाँ "युक्ति" शब्द केवल अप्रचलित ही नहीं, अनुपयुक्त भी है। बुनियादी हिन्दी में यह शब्द ऐसे वाक्यों में आता है–खरगोश ने शेर से अपनी जान बचाने के लिए एक युक्ति सोची (यानी तरीका)। इस प्रश्न में "युक्ति" के स्थान पर वस्तु, साधन मशीन या उपकरण शब्द होना चाहिए। क्योंकि खुर्दबीन या दूरबीन वैज्ञानिक उपकरण हैं, युक्तियाँ नहीं।

(2) पृष्ठ 16 पर एक वाक्य है : ठोस को गर्म करके द्रव में परिवर्तित करने के प्रक्रम को गलन कहते हैं।

नेहरू महाविद्यालय, बाँदा (उ० प्र०) के हिन्दी विभाग में रीडर एवं अध्यक्ष

यहाँ "प्रक्रम" जैसा अप्रचलित शब्द हिन्दी भाषा के सामान्य स्वभाव के अनुकूल नहीं है। जब क्रिया या प्रक्रिया जैसे शब्द इस काम के लिए खूब प्रचलित हैं, तब प्रक्रम जैसा नया शब्द लाने की कौन-सी जरूरत है ? क्रिया या प्रक्रिया शब्द क्यों नहीं प्रयोग किया गया ?

(3) पृष्ठ 32 पर छानने जैसी सामान्य क्रिया के लिए "चालन" जैसा अनेकार्थी और अप्रचलित शब्द प्रयोग किया गया है, जो भाषा को जबरदस्ती लद्धड़ बनाता है।

(4) पृष्ठ 33 पर प्रयुक्त शब्द अवसाद और अवसादन भी क्लिष्ट एवं नकली हैं। अवसाद शब्द तो एक बिल्कुल अलग अर्थ "खेद" के लिए बहु-प्रचलित भी है। ऐसे शब्द का निथारने की प्रक्रिया के लिए प्रयोग अनुचित है।

(5) विघटन जैसे प्रचलित शब्द की जगह "अपघटन" (पृष्ठ 160) जैसा नया शब्द भी अनावश्यक और अनुचित है, खास तौर से इसलिए कि "अप" उपसर्ग "बुरे" का भाव रखता है—अपघटन का अर्थ होगा किसी वस्तु का "बुरी" वस्तुओं में विभाजित होना। जबकि विज्ञान में वस्तुओं को अच्छी और "बुरी" नहीं माना जाता है।

(6) पृष्ठ 149 पर एक प्रश्न दिया गया है : 2- जल की निरर्थकता किस प्रकार कम की जा सकती है।

इस प्रश्न को पढ़कर मैं बड़ी देर सोचता रहा। आखिर इस पुस्तक के लेखक कहना क्या चाहते हैं ? प्रश्न का शाब्दिक अर्थ तो यही बनता है कि लेखकों ने यह मान लिया कि पानी एक निरर्थक वस्तु है और तब उसकी "निरर्थकता" को कम करने के कुछ उपाय सुझाए हैं। पर वास्तव में यह अनुवादी हिन्दी का ही चमत्कार है। पृष्ठ 148 के अनुच्छेद 107 से से स्पष्ट है कि "निरर्थकता" से लेखकों का अभिप्राय बरबादी से है, फिजूलखर्ची से है। पर उन्हें हिन्दी के ये बुनियादी शब्द नहीं सूझे और पानी की बर्बादी को उन्होंने एक नितान्त नकली हिन्दी में "जल की निरर्थकता" कहा।

(7) अनुवादी हिन्दी का सबसे हास्यास्पद उदाहरण इस पुस्तक में वहाँ दिखाई पड़ता है, जहाँ तारामण्डलों में से एक "सप्तर्षि" को "वृहत-सप्तर्षि" कहा गया है। ध्रुव तारे के आस-पास चक्कर लगाने वाले इन सात तारों को क्योंकि अंग्रेजी में "अर्सा मेजर" कहते हैं, इसलिए इसके प्रचलित हिन्दी नाम सप्तर्षि के साथ भी अनुवादकों ने "वृहत" विशेषण लगा दिया। हिन्दी भाषी जनता के जीवन और शब्दों से अपरिचय ही इस हास्यास्पद त्रुटि का कारण है। इस व्यर्थ के विशेषण से यह भ्रम उत्पन्न होता है कि जैसे कोई छोटा सप्तर्षि मण्डल भी आकाश में मौजूद है।

अब कक्षा छह की ही गणित की पुस्तक "गणित भाग-1" पर विचार किया जाए। यह पुस्तक भी हिन्दी भाषी क्षेत्रों में बहुप्रचलित गणितीय शब्दों की नितान्त उपेक्षा करते हुए नए, कठिन और अप्रचलित "अनुवादी" शब्दों का प्रयोग करती है। जोड़ना यहाँ जोड़ना नहीं कहा जाता। घटाना यहाँ घटाना नहीं, "व्यवकलन" कहा जाता है। पटरी और प्रकार इस पुस्तक में "रेखक" और "विभाजक" कहे गए हैं। एक दूसरे को काटने वाली रेखाओं को काटने वाली नहीं, प्रतिच्छेदी रेखाएँ। इस पुस्तक में प्रयुक्त नकली अनुवादी भाषा का एक उदाहरण बड़ा "व्यंजक" है। पृष्ठ 92 पर दूसरे नंबर का प्रश्न है : 2. समूहन संकेतों का प्रयोग करके नीचे दिए प्रत्येक कथन का गणितीय व्यंजक लिखो।

(1) दो और तीन के योग से पाँच का गुणन।
(2) सात और दो के अन्तर से बीस का विभाजन आदि।

"समूहन संकेत" "गणितीय व्यंजक" जैसे भारी भरकम शब्दों से लेखक या अनुवादक जो कहना चाहते हैं वह इतना ही कि जोड़-बाकी आदि गणित के चिन्हों का प्रयोग करते हुए गणित की भाषा में या अंकों में इस वाक्य को लिखो।

इस सारी चर्चा के माध्यम से मैं कहना चाहता हूँ कि यदि उच्च शिक्षा में काम आने वाली विज्ञान

और गणित की किताबे सीधे हिन्दी में लिखना या लिखाना फिलहाल संभव नहीं हो, वहाँ स्तरीय पाठ्य-पुस्तकों के अनुवाद करने की विवशता हो, तो वह समझ में आती है, पर प्रारंभिक कक्षाओं की पुस्तकें भी सीधे हिन्दी भाषी अध्यापकों और वैज्ञानिकों से हिन्दी में क्यों नहीं लिखवाई जा सकतीं, ऐसा करने से शिक्षा का स्तर गिरेगा, यदि कोई ऐसा मानता हो तो मैं उसे एक अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा अशिक्षित आदमी ही समझूंगा। ◻◻

कितना बड़ा है ब्रह्मांड

गुणाकर मुले

रात के समय जब हम आकाश की ओर देखते हैं तो दिमाग में अनेक प्रकार के सवाल उठते हैं। हम जानना चाहते हैं कि कितने तारे हैं आकाश में। कितनी दूर हैं तारे ? कितने दूर हैं ग्रह ? कहाँ तक है ब्रह्माण्ड का विस्तार ? ऐसे सवाल सभी के दिमाग में उठते हैं, बच्चों के दिमाग में भी।

बहुत प्राचीन काल से मनुष्य इन सवालों के बारे में सोचता आया है, इनके बारे में तरह-तरह की कल्पनाएँ करता आया है। पुराने जमाने के कुछ ज्योतिषियों ने चन्द्र तथा सूर्य की दूरियाँ मालूम करने के कुछ प्रयास भी किये। मगर सच्चाई यही है कि प्राचीनकाल में चन्द्र, सूर्य, ग्रहों तथा तारों की सही दूरियाँ जानने का कोई साधन उपलब्ध नहीं था। आकाश के पिंडों की दूरियाँ आधुनिक काल में ही जानी गई हैं। आओ, देख ही लेते हैं कि विश्व के कौन से पिंड हमसे कितनी दूर हैं।

ग्रह और तारे हमसे इतने अधिक दूर हैं कि किलोमीटरों में इनकी दूरियाँ बताने में बड़ी कठिनाई होती है। इसलिए खगोलविदों ने विश्व के पिंडों की दूरियाँ मापने के लिए एक नया तरीका खोजा है।

खगोल विज्ञान में तारों की दूरियाँ प्रकाश के वेग में मापी जाती हैं। प्रकाश किरणों का वेग है लगभग 3,00,000 किलोमीटर प्रति सेकण्ड। अन्य शब्दों में, एक सेकण्ड में प्रकाश तीन लाख किलोमीटर की यात्रा तय करता है। इसलिए तीन लाख किलोमीटर की दूरी को हम एक प्रकाश सेकण्ड दूरी कहेंगे।

इसी तरह एक वर्ष में (तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड के वेग से) प्रकाश जितनी दूरी तय करता है उसे एक प्रकाश वर्ष दूरी कहते हैं। एक प्रकाश वर्ष दूरी का अर्थ है 94,63,00,00,00,000 किलोमीटर दूरी।

आइए, अब हम प्रकाश के वेग के इस पैमाने से विश्व के विस्तार को जानने का प्रयास करें।

सूर्य हमसे करीब 15 करोड़ किलोमीटर दूर है। सूर्य का प्रकाश इतनी दूरी तय करके करीब 8 मिनट बाद धरती पर पहुँचता है। इसलिए हम कहते हैं कि सूर्य हमसे 8 प्रकाश मिनट दूर है।

सौर मण्डल का सबसे दूर का ग्रह है प्लूटो। सूर्य का प्रकाश करीब साढ़े पाँच घन्टे बाद प्लूटो तक पहुँचता है। सौर मण्डल एक तश्तरी के आकार का है। इस आकार प्रकार के सौर मण्डल का व्यास है करीब 11 प्रकाश घंटे। अन्य शब्दों में, सौर मण्डल इतना बड़ा है कि इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रकाश को पहुँचने में करीब 11 घन्टे लगते हैं।

सौर मण्डल एक तारे का परिवार है, हमारे सूर्य का परिवार है। मगर आकाश में करोड़ों अरबों तारे हैं। आकाश में हम जितने भी तारे देखते हैं वे सब एक योजना के तारे हैं। तारों की इस योजना को हम आकाशगंगा कहते हैं। आकाशगंगा एक विशाल पहिए के आकार की योजना है।

आकाश गंगा इतनी बड़ी है कि इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रकाश को पहुँचने में करीब एक लाख साल लगते हैं। इसलिए खगोल विज्ञान की भाषा में हम कहते हैं कि आकाशगंगा का व्यास एक लाख प्रकाश वर्ष है।

पटपड़गंज, नई दिल्ली

केन्द्र भाग में आकाश गंगा की मोटाई करीब 20 प्रकाश वर्ष है। मगर हमारा सूर्य (और उसके साथ हम भी) आकाशगंगा के केन्द्र भाग में नहीं है। हमारा सूर्य आकाश गंगा के केन्द्र भाग से करीब 30 प्रकाश वर्ष दूर है और आकाश गंगा की एक परिक्रमा पूरी करने में इसे करीब 25 करोड़ साल लगते हैं।

आकाश का सब से नज़दीक का (प्रोक्सिमा सेंटोरी) तारा हमसे करीब 4 प्रकाश वर्ष दूर हैं। दूसरे तारे सैकड़ों हज़ारों प्रकाश वर्ष दूर हैं।

आकाश करीब 100 अरब तारों की एक विशाल योजना है। तारों की ऐसी विशाल योजनाओं को मंन्दाकिनी कहते हैं। आकाश गंगा एक मन्दाकिनी है। यह हमारी अपनी मन्दाकिनी है।

विशाल विश्व में ऐसी और इससे भी बड़ी लाखों करोड़ों मन्दाकिनियों को खोजा गया है। आकाश गंगा के परे इसी प्रकार की सबसे नज़दीक की मन्दाकिनी का नाम है—देवरानी मन्दाकिनी। इसे देवरानी तारा-मण्डल में एक धुंधले तारा पुन्ज के रूप में कोरी आँखों से भी देखा जा सकता है।

देवरानी मन्दाकिनी हमसे करीब 20 लाख प्रकाश वर्ष दूर है। इसके मतलब यह है देवरानी के जिस प्रकाश को आज हम धरती पर ग्रहण कर रहे हैं वह अपने स्रोत स्थान से 20 लाख प्रकाश वर्ष पहले चला था। तब धरती पर मानव का उदय भी नहीं हुआ था।

मगर देवरानी सबसे नज़दीक की बड़ी मंदाकिनी है। दूरबीनों से और अन्य साधनों से खगोलविदों ने करीब 15 अरब प्रकाश वर्ष दूर की मन्दाकिनियों का पता लगाया है।

यदि कोई मन्दाकिनी 15 अरब प्रकाश वर्ष दूर है तो उसका मतलब है 15 अरब वर्ष पहले की मन्दाकिनी। इससे नतीजा निकलता है कि हमारा यह विश्व कम से कम 15 अरब साल पुराना तो है ही।

इधर के वर्षों में ख़गोलविदों ने करीब 18 अरब प्रकाश वर्ष दूर के पिंडों का पता लगाया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्मांड की सीमाएँ कम से कम 18 अरब प्रकाश वर्ष दूर हैं और यह ब्रह्माण्ड कम से कम 18-20 अरब साल पुराना है।

□□

वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास कैसे करें

डी० एन० भटनागर

तर्क की कसौटी पर कसने के बाद ही किसी विचार को स्वीकार करने की मानसिकता को ही हम वैज्ञानिक मनोवृत्ति कहते हैं। परम्परा और रूढ़िवादी संस्कारों से पोषित हमारे समाज में वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास कैसे किया जाए यह एक विचारणीय प्रश्न है, विशेषकर बच्चों के संदर्भ में।

बच्चे स्वभाव से जिज्ञासु होते हैं। जब भी वे किसी घटना को या किसी वस्तु को देखते हैं, वे उसके विषय में जानना चाहते हैं। उनके प्रश्नों की कोई सीमा नहीं। अनेक बार हम उनकी जिज्ञासा शान्त करने में अपने को असमर्थ पाते हैं और फिर सहारा लेते हैं कुतर्क का। कह देते हैं यह तो ऐसे ही होता है या डांट कर भगा देते हैं। किन्तु यदि हम ऐसा न करके उनकी बातों को तर्क के सहारे समझें और उन्हें समझायें तो वे घटनाओं का विश्लेषण करके उन्हें स्वयं समझने का प्रयत्न करना प्रारंभ कर देंगे। धीरे-धीरे विश्लेषण के सहारे घटनाओं की तह तक पहुँचना और उनका समाधान ढूँढना उनकी आदत बन जाएगा। यही हम चाहते भी हैं।

उनकी इस प्रवृत्ति को पुष्ट करने के लिए हम उन्हें छोटे-छोटे प्रयोग करने की ओर भी प्रेरित कर सकते हैं। धीरे-धीरे वे जांच परख, प्रयोग और अपने

वरिष्ठ संपादक 'आविष्कार' और 'ग्राम शिल्प', एन० आर० डी० सी०, नई दिल्ली

आप घटनाओं का अवलोकन तथा विश्लेषण कर अपनी जिज्ञासा को शांत करना सीख जाएँगे और इस प्रकार विकसित वैज्ञानिक मनोवृत्ति की कसौटी पर कसने के बाद ही किसी धारणा को स्वीकार करने लगेंगे।

संस्कारजन्य पारम्परिक मान्यताओं में आस्था हम न जाने कब और कैसे पैदा कर लेते हैं। अनेक बार इन मान्यताओं के प्रति पूर्वाग्रह के कारण हम अपने विवेक, वस्तुनिष्ठता का उतना सही उपयोग नहीं कर पाते जितना कि हमें करना चाहिये। कभी-कभी ऐसा होने से हम सही निर्णय भी नहीं ले पाते। इससे हमारा जीवन भी प्रभावित होता है। हमें इन मान्यताओं को भी वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर जाँच परख लेना चाहिए और इन्हें स्वीकारते समय अपने विवेक का सहारा लेना चाहिए। ऐसा करके ही हम अपने बच्चों में वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं।

बच्चों में वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास के लिए हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली को भी संशोधित किये जाने की आवश्यकता है। आज प्रचलित हमारी शिक्षा प्रणाली हमारे बच्चों की जिज्ञासा पूरी तरह शांत नहीं कर पा रही है और न ही उनमें नैतिक और मानवीय मूल्यों की स्थापना में कोई योगदान दे रही है। वह केवल बड़ी नौकरी पाने का एक जरिया मात्र बनती जा रही है। बच्चों में मौलिक विचार शक्ति, तर्कपरक विश्लेषण और निष्कर्ष तक पहुँचने की मानसिकता का विकास शिक्षा का एक उद्देश्य होना चाहिए, तभी उनमें वैज्ञानिक मनोवृत्ति पनप सकती है।

वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि देश में विज्ञान की औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही तरह की शिक्षा प्रणालियों का और भी विस्तार हो। इसके लिए हमें अपने जन, संचार साधनों की ओर ध्यान देना होगा। दूरदर्शन से विज्ञान के छोटे-छोटे रुचिकर कार्यक्रमों का प्रसारण, रेडियो से विज्ञान वार्ताएँ और विज्ञान की सुन्दर सुरुचिपूर्ण पत्रिकाओं का प्रकाशन और कम मूल्य पर पाठकों को उनकी उपलब्धि इसके लिए अत्यन्त आवश्यक है। आज इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है। जन-संचार के संसाधन मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह गए हैं और मनोरंजन भी घटिया स्तर का। दूरदर्शन जनसंचार का अत्यन्त सशक्त साधन है अतः उसे और उपयोगी बनाने की ओर तुरंत ध्यान दिया जाना चाहिए। ☐☐

6-10 वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए

क्या है पर्यावरण

मंजुलिका लक्ष्मी

प्यारे नन्हें-मुन्नो! तुम अपने चारों तरफ दिखने वाले अपने घर, स्कूल, बगीचे और उसमें उगने वाले पेड़-पौधों को अच्छी तरह पहचानते हो न? और वह पानी जो तुम पीते हो या सुबह-सुबह नहाकर स्कूल जाते हो, या वह ठन्डी हवा जो गर्मी के दिनों में तुम्हें आराम पहुँचाती है—उन्हें भी पहचानते ही होगे। यही नहीं, तुम्हारे दोस्त के घर पला हुआ प्यारा सा झबरा कुत्ता या चिड़ियाघर में देखे गये हिरण-शेर-बन्दर जैसे जानवरों से भी तुम्हारी थोड़ी सी जान-पहचान जरूर होगी। तो बस समझ लो कि पर्यावरण जैसे भारी भरकम शब्द का मतलब तो तुम एक तरह से जानते ही हो।

क्या हुआ? बात शायद ठीक-ठीक समझ में नहीं आई। पर बात है यही—ये हवा, ये पानी, ये जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, नदी-पहाड़, झरने और मिट्टी, मतलब यह कि हमारे चारों ओर जो कुछ भी है उस सब को मिलाकर जब हम एक नाम देते हैं तो उसे कहते हैं पर्यावरण।

5-ई/4, लिडिल रोड, जार्ज टाउन, इलाहाबाद—211002

हमारे इस पर्यावरण में दो तरह की चीजें हैं—कुछ सजीव और कुछ निर्जीव। सजीव यानी जिन्दा चीजें—जैसे तुम्हारे साथ उछल-कूद कर खेलने वाला तुम्हारा पालतू कुत्ता, आसमान में उड़ने वाली चिड़िया या कुछ इतने नन्हें जीव जिन्हें हम अपनी आँखों से देख भी नहीं सकते। इन छोटे जीवों को बड़े लोग बैक्टीरिया-वाइरस जैसे नामों से जानते हैं। यह सभी सजीव चीजे हैं। इनसे बिल्कुल अलग कुछ निर्जीव चीजें भी हैं। जैसे तुम्हारे घर की दीवारें, हवा, पानी, धूप, रोशनी आदि। ध्वनि यानी वह आवाज जो हम सुनते हैं, मौसम की गर्मी, ठन्ड या दूसरी बहुत सारी बातें भी इसी पर्यावरण में समाई हैं।

इसे और अच्छी तरह समझने के लिए हम इसे तीन भागों में बाँट सकते हैं। इसके एक भाग को हम कहते हैं **थलमण्डल**। थल का मतलब है जमीन, इसलिए चट्टानें, बालू, मिट्टी जैसी सब चीजें इसमें आ जाती हैं। दूसरे भाग को हम नाम देते हैं **जलमण्डल**। इसमें आता है धरती का वह तीन चौथाई भाग जहाँ जल के बड़े बड़े समुद्र पाये जाते हैं। हमारे पर्यावरण का तीसरा भाग हैं **वातावरण या वायुमण्डल**। समुद्र और ज़मीन की सतह से 200 मील की ऊँचाई तक जो हवा और गैसें फैली हैं उन्हीं से भरा है हमारे पर्यावरण का यह तीसरा भाग। इन गैसों में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, और कार्बन डाइ ऑक्साइड खास हैं।

अब पर्यावरण के इन तीनों ही भागों में कुछ मिली जुली एक और चीज है जिसे हम कहते हैं **जीवमण्डल**। हमने अभी पर्यावरण में सजीव और कुछ निर्जीव चीजों की बात की थी न? इस धरती पर पाये जाने वाले सभी जीव-जन्तु, पेड़-पौधे और हम-तुम इस जीवमण्डल के अंग हैं।

हमारे इस पर्यावरण की सबसे अनोखी बात यह है कि पर्यावरण की यह सभी चीजें आपस में किसी न किसी तरह एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। जुड़ी भी इस तरह से हैं कि अगर इनमें से एक को भी हटा दिया जाये तो बाकी सब भी डगमगा जायेंगी। तुम बच्चों ने शादी-ब्याह के समय पंडाल यानी कपड़े की खूब बड़ी सी छत बनी देखी होगी जिसे बहुत से लकड़ी के खम्भों के ऊपर तान कर बनाते हैं। अब इनमें से दो चार लकड़ी के खम्भे भी अगर हटा दिए जायें तो वह कपड़े की छत या तो ढीली होकर लटकने लगेगी या भरभरा कर गिर पड़ेगी। कुछ ऐसा ही मामला हमारे पर्यावरण का भी है।

पर्यावरण के यह सभी अंग एक दूसरे के लिए कितने जरूरी हैं इस बात को हम बरसात और पेड़ों की बात से, भी अच्छी तरह जान सकते हैं। पेड़ बरसात से, सिंचाई से या मिट्टी में छिपी नमी से पानी लेते हैं। अब पेड़ों का वही पानी उनकी पत्तियों में छिपे छोटे-छोटे छेदों से निकल कर फिर हवा में मिल जाता है। यही नमी बादलों से पानी बन कर बरसती है। पेड़, बादल, पानी इसी तरह एक दूसरे से जुड़े हैं।

पेड़ों के हरे-भरे रहने में मिट्टी का भी बड़ा हाथ है। जब पेड़ मिट्टी में लगे रहते हैं तो उन्हें ताकत देने वाली फायदे की बहुत सी चीजें इसी मिट्टी से मिलती हैं। इन ताकत की चीजों को हम खनिज पदार्थ कहते हैं। पेड़ों की जड़ें मिट्टी की नमी के साथ इसे भी अपने में सोख लेती हैं।

इस तरह यह पर्यावरण मानो एक बहुत बड़ा गोला-चक्कर है जो चलता ही जाता है। इसके बीच पेड़-पौधे हमारे लिए बहुत खास हैं। तुम जानना चाहोगे कि ऐसा क्यों है? इसलिए क्योंकि पेड़-पौधों में ही वह ताकत है कि वह सूर्य की गर्मी और अपनी पत्तियों में छिपे हरे पदार्थ को मिलाकर अपने शरीर के अन्दर ही अन्दर अपने लिए भोजन बना लेते हैं। साथ ही पेड़ पौधे ही किसी न किसी रूप में सारी धरती के सभी जीव जन्तुओं को उनका भोजन देते हैं। गेहूँ, दाल, चावल जैसे अनाज, खाना पकाने का तेल, चीनी आदि सभी कुछ हमें पेड़ों से ही तो मिलता है। तुम्हें शायद कुछ ऐसी चीजें याद आ रही होंगी जिनका पेड़ों से कोई मतलब नहीं दिखता, जैसे—चॉकलेट या आइसक्रीम। ये तो सचमुच पेड़ों पर नहीं

लगते। पर यह चॉकलेट या आइसक्रीम जिस दूध से बनती हैं वह दूध देने वाली गाय तो इन पौधों और हरी घास पर ही पलती है न। इस तरह घास-पौधे गाय और हम लोग एक दूसरे से जुड़ गये।

तुम जानते हो ? हम जो साफ हवा साँस में लेते हैं वह भी हमें पेड़ों से ही मिलती है। बात यह है कि हमारे और जीव जन्तुओं के लिए ऑक्सीजन नाम की गैस का होना बहुत जरूरी है। यह ऑक्सीजन हवा में पेड़ों से ही निकल कर आती है। हम लोग हवा के साथ ऑक्सीजन अपने अन्दर लेकर कार्बनडाइ ऑक्साइड छोड़ते हैं और पेड़ कार्बन डाइ ऑक्साइड लेकर ऑक्सीजन छोड़ते हैं। इस तरह हमारा काम एक दूसरे से चलता रहता है।

इस तरह पर्यावरण में सभी चीजों की अपनी-अपनी खास जगह है। इनमें से एक के भी हटने पर दूसरे पर प्रभाव पड़ेगा।

बच्चो ! तुमने इन बातों को पढ़कर यह तो जान ही लिया कि ये हवा, मिट्टी, पेड़-पौधे, नदी, पहाड़ और जीव-जन्तु हमारे कितने काम के हैं। इनसे बना यह पूरा पर्यावरण न होता तो हम मानव भी न होते। इसलिए अब जब कभी किसी नये जीव या पौधे को देखो तो उसके और पास जाओ, उसे छूकर देखो और किताबों, माता-पिता और अध्यापक से उसके विषय में और पूछो। तभी तुम अपने पर्यावरण को अच्छी तरह समझ सकते हो। तो पर्यावरण को जानना है न मजेदार बात। □

डॉक्टर लंगूर की समझदारी

डॉ० विजयकुमार श्रीवास्तव

बात बहुत पहले की है। एक जंगल में बहुत से पशु-पक्षी एक साथ रहते थे। एक विशालकाय तोता इन सबका नेता था। जंगल में मिलने वाले विभिन्न प्रकार के फल-फूल और सब्जियों को खाने के कारण वह बहुत ही स्वस्थ था। कच्चे और पके हुए फलों तथा सब्जियों को खाने से उसे सभी प्रकार के पोषक पदार्थ (प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट), विटामिन और खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते थे। पके आम, पपीता और गाजर खाने से उसके शरीर में विटामिन ए की कोई कमी नहीं थी। इस कारण उसकी आँखें स्वस्थ और नीरोग थी तथा उसकी दृष्टि काफी तेज़ थी। उसे सन्तरा, हरी मिर्च, हरी सब्जियाँ और पीले गूदे वाले फल खाने से विटामिन बी०, सी० और डी० भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते थे। इन सबके फलस्वरूप उसकी मांसपेशियाँ, चोंच तथा पंजे काफी मज़बूत थे।

दृष्टि तेज होने से वह शत्रुओं को बहुत दूर से ही देख लेता था। शत्रुओं के पास आने पर अपने शक्तिशाली पंजों और चोंच की मार से उन्हें दूर खदेड़ देता था।

जंगल में रहने वाला एक दुष्ट अजगर हमेशा पशु-पक्षियों के अण्डों और बच्चों को खाने की ताक में रहता था। परन्तु तोते की तेज़ आँखों से बचकर वह कभी भी अपने इस प्रयास में सफल नहीं हो पाता था।

अजगर की एक मित्र लोमड़ी भी तोते से बहुत चिढ़ती थी। इस चिढ़ की वजह थी उसकी नेता बनने की इच्छा। जो तोते के स्वस्थ रहते कभी भी पूरी नहीं हो सकती थी।

थोड़े दिन पश्चात लोमड़ी और अजगर ने अपनी-अपनी इच्छा पूरी करने के लिए आपस में सलाह मशविरा किया। अन्त में वे इस परिणाम पर पहुँचें कि यदि किसी प्रकार तोता काफी कमजोर हो जाय तो वह पशु-पक्षियों के अण्डों और बच्चों की रक्षा नहीं कर पाएगा और उस समय उसे नेता के पद से हटाकर लोमड़ी को नेता बनाना आसान हो जाएगा। उस स्थिति में अजगर के लिए रोज अलग-अलग प्रकार के पशु-पक्षियों के अण्डे-बच्चों का आहार प्राप्त करना आसान हो जाएगा।

डी 27, सेक्टर 20, नोयेडा, गाजियाबाद

लोमड़ी को पता था कि तोते के अच्छे स्वास्थ्य का कारण है, उसका आहार; वे विभिन्न प्रकार के फल-फूल और कन्द-मूल जिनसे उसे अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक सारे पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। और उसका स्वास्थ्य बिगाड़ने का सबसे सरल उपाय था कि वह पोषक खाद्य पदार्थों का सेवन न करे।

इस तरह से सोच विचार करके वह अपनी दुष्ट योजना को पूरा करने में जुट गयी। उसने तोते के पास जाकर उसे फुसलाना शुरू किया। उसने तोते से कहा कि आप तो नेता हैं और नेता को सस्ते-सस्ते फल-फूल, कन्द-मूल खाना शोभा नहीं देता है। आपको तो अच्छे-अच्छे और मँहगे पदार्थ जैसे चाकलेट, डिब्बा-बन्द खाद्य पदार्थ, आइस्क्रीम, टाफियाँ खाने चाहिए। और दुर्भाग्य की बात यह हुई कि तोता उसके बहकावे में आ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक पोषक तत्व मिलने तो बन्द हो ही गये साथ ही इन नये और मँहगे खाद्यों के साथ स्वास्थ्य का नाश करने वाले अनेक पदार्थ शरीर में जाने लगे। धीरे-धीरे उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। कुछ ही दिनों में वह इतना कमजोर हो गया कि न तो वह उड़ पाता था और न तो उसकी चोंच और पंजे में इतनी ताकत रही कि वह शत्रुओं को मार कर खदेड़ सके। उसकी आँखे भी इतनी कमजोर हो गयी कि उसे थोड़ी दूर पर बैठा हुआ शत्रु दिखाई नहीं देता था। रात में तो वह बिलकुल ही नहीं देख पाता था।

अब तो अजगर की बन आयी। उसकी जब भी इच्छा होती मनचाहे पशु-पक्षियों के अण्डे बच्चे खा जाता था। लोमड़ी ने भी पशु-पक्षियों से कहना प्रारंभ कर दिया कि तुम्हारा नेता अब किसी काम का नहीं रहा। जब यह किसी की रक्षा ही नहीं कर पाता है तब इसको नेता बने रहने का कोई अधिकार नहीं है। अत: इसे हटाकर आप लोग मुझे नेता मान लें।

यह बात पशु-पक्षियों को रास न आयी। परन्तु वे अपने नेता की अस्वस्थता से चिन्तित अवश्य थे। उन सब ने मिलकर नेता के स्वस्थ होने के लिए हर सम्भव प्रयास किये। उसे अच्छे से अच्छे डॉक्टरों को दिखाया। मँहगी-मँहगी दवाइयाँ और टॉनिक दिए। परन्तु तोते के स्वास्थ्य में सुधार न हुआ। अन्त में वे सब निराश होकर उसे बुजुर्ग और अनुभवी डॉक्टर लंगूर के पास ले गये। उसने सबकी बातें ध्यान से सुनी। उसने तोते से उसके आहार के बारे में भी पूछा।

अब सारी बातें और तोते की अस्वस्थता का कारण उसकी समझ में आ गया। उसने तोते का इलाज प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले उसने तोते को दी जाने वाली सारी दवाइयाँ बन्द कर दीं। उसको आइसक्रीम, चाकलेट आदि खिलाना भी बन्द कर दिया। इन सबके स्थान पर उसने तोते को अच्छे पके हुए फल, ताजी सब्जियाँ और कन्द मूल खिलाना प्रारम्भ किया। उसकी बुद्धिमानी और मेहनत रंग लायी। ताजे फलों, कन्दमूलों, हरी सब्जियों में भरे हुए पोषक तत्वों ने अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ किया। कुछ ही दिनों में तोता फिर स्वस्थ हो गया। उसकी दृष्टि फिर तेज हो गयी। वह फिर से इतना समर्थ हो गया कि शत्रु को दूर से ही देख लेता था और उसे अपने ताकतवर पंजों व चोंच की मार से दूर भगा देता था। □□

11-16 वर्ष के बच्चों के लिये

लोहे का चना

डॉ० जगदीप सक्सेना

प्रिय राजू,

आशा है स्वस्थ और प्रसन्न होगे। तुम्हारा पत्र आज ही मिला। तुम्हारे सवालों का जवाब देने में मुझे बेहद खुशी होती है। इस बार तुम्हारा एक सवाल पढ़ कर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। तुमने पूछा है, "लोहे के चने कहाँ मिलते हैं?" लोहे के चने तो

क्यू० यू० 220-ए, विशाखा एनक्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली—34

होते नहीं। शायद यह सवाल 'लोहे के चने चबाना' मुहावरे से तुम्हारे दिमाग में कौंधा है। तुम्हारे मास्टर जी ने तुम्हें बताया होगा कि इस मुहावरे का मतलब है बेहद कठिन काम करना। लोहा खाने या चबाने से इसका कोई मतलब नहीं है। न लोहा इस तरह खाया ही जा सकता है। कहीं तुम लोहा खाकर 'लौह-पुरुष' बनने की बात तो नहीं सोच रहे हो ?

वैसे लोहा हमारे शरीर के लिए जरूरी है और हम उसे खाते भी हैं। लेकिन लोहे के चने के रूप में नहीं। लोहा खाने के बारे में जानने से पहले तुम यह समझ लो कि यह शरीर के लिए क्यों जरूरी है। शायद तुम्हें मालूम होगा कि खून का लाल रंग इसमें मौजूद 'हीमोग्लोबिन' नामक कणों के कारण होता है। 'हीमोग्लोबिन' से जुड़ने के बाद ही साँस के साथ आई ऑक्सीजन गैस शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुँचती है। तभी हमारी जिंदगी चलती रहती है। यानी अगर हीमोग्लोबिन नहीं तो हमारी जिंदगी नहीं। इतना जरूरी हीमोग्लोबिन लोहे के कारण ही बन पाता है। अगर शरीर में लोहे की कमी हो जाय तो कई रोग घेर लेते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि हमारे शरीर को हर रोज 20 मिलीग्राम लोहे की जरूरत होती है। यानी लगभग एक चावल के दाने के बराबर। अगर शरीर में लोहे की कमी हो जाय तो 'एनीमिया' नामक रोग हो जाता है। शरीर कमजोर हो जाता है। कोई काम करने में मन नहीं लगता। शायद यही बात तुम्हारे दोस्त राकेश के साथ है। तुमने अपने पत्र में जिक्र किया है कि राकेश की चुस्ती फुर्ती खत्म हो गई है। उसका चेहरा बुझा बुझा रहता है। उसे डाक्टर को दिखा लो। ऐसी दशा में शरीर को लोहा देना बहुत जरूरी हो जाता है। अब तक शायद तुम्हारे मन में यह सवाल पैदा हो गया होगा कि लोहा प्राप्त करने के लिए क्या खाया जाय ?

वैसे तो गेहूँ और दाल में भी लोहा होता है, लेकिन यह लोहा बिना पचे ही शरीर से बाहर निकल जाता है। यानी केवल रोटी-दाल खाने से काम नहीं चलेगा। हाँ, सब्जी खाने से जरूर फायदा होगा। खासतौर से हरे पत्ते वाली सब्जियाँ या साग जैसे मेथी, बथुआ, पालक आदि। टमाटर और प्याज से भी लोहा मिलता है। सागों में सबसे ज्यादा लोहा मेथी से, फिर बथुए से और तीसरे नम्बर पर पालक से मिलता है। तुम्हारी तरह शायद ज्यादातर लोगों को मेथी और बथुए का साग ज्यादा अच्छा नहीं लगता। लेकिन पालक का साग लोकप्रिय है। पालक को ज्यादा भून भान कर सब्जी की तरह पका कर खाने से ज्यादा फायदा नहीं होगा। बेहतर होगा कि पालक का रस निकाला जाय। लगभग एक पाव पालक का रस पीने से शरीर को पर्याप्त मात्रा में लोहा भी मिलता है और पेट भी साफ रहता है।

जैसा मैंने तुमको पहले लिखा था, तुम दूध तो पीते ही होगे। इसमें ताकत देने वाले अनेक तत्वों के अलावा लोहा भी मौजूद होता है। दूध में ज्यादा लोहा नहीं है, लेकिन जो मौजूद है, वह सारा का सारा खून में घुलने लायक होता है।

शायद तुम्हें यह जानकर ताज्जुब हो कि अनाजों के चोकर या भूसी में भी लोहा होता है। ज्यादातर लोग यह बात नहीं जानते। इसलिए चोकर फेंक दी जाती है। तुम अपने होस्टल में महाराज से कहना कि आटे से चोकर अलग न करें। उससे तुम्हारे सभी दोस्तों को लोहा मिलता रहेगा। रोज सुबह दो मुनक्के खाना भी ठीक है। इसके अलावा मटर, गोभी, गाजर, चुकन्दर, आलू में भी लोहा मौजूद है। इनकी सब्जी जरूर खाया करो। इसी तरह फलों में आड़ू, अनार, अमरूद, जामुन और सेब में लोहे की अच्छी मात्रा होती है। केला, आम, अनन्नास आदि में भी कुछ लोहा मौजूद है। तुम्हें तो सेब अच्छा भी लगता हैं। खुद भी नियमित रूप से खाओ और अपने दोस्तों को भी खिलाओ।

लोहे के बारे में इतना सब कुछ बताने का मतलब यह नहीं है कि तुम यही सब खाने में जुट जाओ। बस यह ध्यान रखो कि तुम्हारे भोजन में ये सब चीजें भी शामिल हों। दूध और पालक को देखकर नाक-भौं सिकोड़ने की आदत छोड़ दो।

मुझे उम्मीद है अब तुम 'लोहे के चने चबाने' की बात कभी नहीं सोचोगे। पत्र का उत्तर देना और बताना कि तुम्हारी समझ में बात आई या नहीं। तुम्हारे पत्र का इन्तजार रहेगा।

पुनश्च : अपने मांसाहारी दोस्तों को लोहे की कमी पूरी करने के लिए कलेजी खाने की सलाह दे सकते हो।

आशीर्वाद सहित, तुम्हारा चाचा

रंजन

भारतीय डाक टिकटों में वन्यप्राणी

सतीश कुमार शर्मा*

वन्यप्राणियों के महत्व एवं उनके संरक्षण की भावना को व्यापक रूप से आम जनता में प्रतिष्ठित करने हेतु अनेकानेक प्रयास भारत सरकार द्वारा किये जा रहे हैं। ऐसे ही प्रयासों में एक प्रयास है वन्य-प्राणियों को डाक टिकटों में स्थान देना। वन्यप्राणियों की विभिन्न किस्मों को समय-समय पर डाक टिकटों में स्थान देकर जन-साधारण का ध्यान उनकी तरफ खींचने का प्रयास किया जाता रहा है। वन्य पशु-पक्षियों के अतिरिक्त वन एवं वन्यप्राणियों से जुड़ी संस्थाओं पर भी भारत सरकार द्वारा डाक टिकटें जारी की गई हैं ताकि संरक्षण में लगी संस्थाओं को महत्ता प्रदान की जा सके। भारत सरकार द्वारा वन्य प्राणियों पर जारी किये कुछ प्रमुख टिकटों का विवरण नीचे दिया गया है। (देखिये सारणी नं० 1, 2 एवं 3)—

सारणी 1 :—भारतीय पक्षियों पर जारी डाक टिकटें

क्र० सं०	पक्षी का नाम		टिकट मूल्य	जारी करने का वर्ष	वन्यप्राणी (सुरक्षा) अधिनियम 1972 की किस सूची में दर्ज है।
	हिन्दी	अंग्रेजी			
1.	सोनालु	Western Tragopan	100 पैसे	1975	प्रथम
2.	दहोलिका	Babbler	1 रुपये	—	चतुर्थ
3.	मोनल	Monal Pheasant	200 पैसे	1975	प्रथम
4.	नीलकंठ	Blue Magpie	20 पैसे	—	—
5.	पीलक	Blackheaded Oride	50 पैसे	1975	चतुर्थ
6.	नौरंग	Indian Pitta	25 पैसे	1975	चतुर्थ
7.	शकरखोरा	Sunbird	2 रुपये	—	चतुर्थ
8.	कठफोड़ा	Wood Pecker	50 पैसे	—	चतुर्थ
9.	जर्डन्स् कॉर्सेर	Jerdon's Courser	100 पैसे	1988	प्रथम
10.	हॉर्नबिल	Hornbill	100 पैसे	1983	प्रथम

*आरबोरी कल्चरिस्ट, विश्व वानिकी वृक्ष उद्यान, झालाना डूंगरी, जयपुर–302004

सारणी 2 :—भारतीय स्तनधारियों पर जारी डाक टिकटें

क्र० सं०	प्राणी का नाम		टिकट मूल्य	जारी करने का वर्ष	वन्य प्राणी (सुरक्षा) अधिनियम 1972 की किस सूची में दर्ज है
	हिन्दी	अंग्रेज़ी			
1.	गैंडा	Rhinoceros	15 पैसे	—	प्रथम
2.	कर्दम	Swampdeer	25 पैसे	1976	प्रथम
3.	हाथी	Indian Elephant	30 पैसे	—	प्रथम
4.	सिंह	Lion	50 पैसे	1976	प्रथम
5.	तेंदुआ	Leopard	100 पैसे	1976	प्रथम
6.	बाघ	Tiger	50 पैसे	—	प्रथम
7.	बाघ	Tiger	15 पैसे	—	प्रथम
8.	स्याहगोश	Caracal	200 पैसे	1976	प्रथम

सारणी 3 : संस्थाओं पर जारी टिकटें

क्र.	नाम		टिकट मूल्य	जारी करने का वर्ष
	हिन्दी	अंग्रेज़ी		
1.	अन्तर्राष्ट्रीय संघ प्रकृति और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण	Internation unionatconservation of nature and naturd Resources (IUCN)	20 पैसे	1969
2.	बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी 1883—1983	Bombay Naturd History Society 1883—1983	100 पैसे	1983

जिस वन्य प्राणी पर डाक टिकट जारी हुआ है यदि उसका टिकट मूल्य कम है तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उस प्राणी का महत्व कम है। वस्तुतः डाक टिकट में स्थान प्राप्त करना ही उस प्राणी के महत्व को स्पष्ट कर देता है। टिकट मूल्य की बजाय उस अनुसूची का अधिक महत्व है जिसमें वह प्राणी शामिल किया गया है। प्रथम अनुसूची में शामिल समस्त प्राणियों को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुरक्षा प्रदान करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। जो प्राणी 2 से 4 तक की अनुसूचियों में दर्ज हैं, वे हालांकि विलुप्तीकरण के खतरे से अपेक्षाकृत कुछ दूर हैं, तथापि उनकी सुरक्षा सुनिश्चित किया जाना जरूरी है अन्यथा शीघ्र ही उन्हें भी अनुसूची प्रथम में ले जाना पड़ सकता है।

जिन वन्य प्राणियों पर डाक टिकट जारी किये गये हैं उनमें से अधिकांश 'वन्य प्राणी (सुरक्षा) अधिनियम 1972' की अनुसूची प्रथम में शामिल हैं। प्रथम अनुसूची में शामिल सभी वन्य प्राणी आसन्न विलुप्तीकरण के खतरे से घिरे हुये हैं। डाक टिकटों में चित्रित सभी स्तनधारी अनुसूची प्रथम से लिये गये हैं जिनकी देश में अब बहुत कम संख्यायें हैं। बाघ पर एकाधिक डाक टिकट जारी हुये हैं, जो इस प्राणी के प्रति सरकार की चिंता को उजागर करती हैं। बाघ को बचाने के लिये 'बाघ परियोजना' जैसे कार्यक्रम भी

प्रारम्भ करने पड़े। बाघ परियोजना जंगली जानवरों को बचाने की सर्वाधिक बड़ी परियोजना है। यह योजना बाघ के प्रमुख आवास वाले देशों—भारत, नेपाल, भूटान तथा बांगलादेश में प्रारम्भ की गई हैं। अब तक भारत के 16 बाघ आवासों को बाघ परियोजना में शामिल किया जा चुका है। बाघ की महत्ता को नेपाली जनता को बताने के लिये 1975 में नेपाल सरकार ने भी 2 पैसे का डाक टिकट बाघ पर 'हुलाक टिकट' नाम से जारी किया।

बाघ की तरह ही हाथी को भी डाक टिकट में दर्शा कर जनता का ध्यान इस विशालकाय प्राणी को बचाने की तरफ खींचा गया। हमारे देश में हाथियों की संख्या विशेष कर दंतैल नरों की संख्या तेजी से घट रही है। जंगलों में मादा हाथी तथा मखनों (हाथी दाँत रहित नर) की संख्या बढ़ रही है। दंतैल नरों के अवैध शिकार से दंतैल नर तथा मादा हाथियों का लैंगिक अनुपात गड़बड़ा गया है। भारत में हाथियों की बिगड़ती हालत को आई० यू० सी० एन० द्वारा अशखाबाद (रूस) में 26 सितम्बर 1978 से 5 अक्टूबर 1978 तक आयोजित 14 वें सत्र में भी गंभीरता से लिया गया तथा इस चिन्ता से भारत सरकार को अवगत कराया गया। हाथी को विशेष सुरक्षा देने हेतु सरकार को 'हाथी सुरक्षा अधिनियम' तक लागू करना पड़ा है।

डाक टिकटों में दर्ज सभी स्तनी वन्य-प्राणियों के विनाश की अपनी-अपनी दारुण कहानी है। कर्दम हरिण, गेंडा, स्याहगोश, तेंदुआ, सब पर मनुष्य ने जुल्म किये हैं। अनेक प्राणियों को तो अभी भी टिकटों पर लिया जाना है, जिनका नामों-निशान तक हमने मिटा दिया।

पक्षियों पर भी भारत सरकार द्वारा कई डाक टिकट जारी किये गये हैं। अनुसूची प्रथम से सोनालू, मोनल, जर्डन कॉर्सर, हॉर्नबिल आदि पर डाक टिकट जारी किये गये हैं। सोनालू तथा मोनल मुर्ग कुल (Pheasant Family) के सुन्दर पक्षी हैं, जो हिमालय आवास में पाये जाते हैं। हिमालय क्षेत्र के सभी मुर्ग विलुप्तीकरण के खतरे से घिर चुके हैं। नेपाल सरकार भी इस क्षेत्र के मुर्गों पर डाक टिकट जारी करने में पीछे नहीं रही है। नेपाल सरकार ने 1977 में चीर कालिज (Catreus wellichii) नामक मुर्ग पर 15 पैसे का डाक टिकिट जारी किया है।

डाक टिकटों में चित्रित पक्षियों में जर्डन कॉर्सर संभवतः सबसे महत्वपूर्ण है। इस पक्षी को सन् 1900 से विलुप्त समझा जा रहा था लेकिन 85 साल बाद 1986 के प्रारंभ में इस पक्षी को आन्ध्रप्रदेश के कडप्पा जिले में 'बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी' के प्रकृतिविदों ने पुनः खोज निकाला।

हार्नबिल भी एक विचित्र पक्षी है जो अपने विचित्र प्रजनन-व्यवहार के लिये प्रसिद्ध है। यह पक्षी तेजी से विलुप्त होता जा रहा है। 'बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी' की स्थापना के सौ बर्ष (1883 से 1983) पूरे होने पर 15-9-1983 को एक डाक टिकट जारी किया गया, जिस पर हार्नबिल को दर्शाया गया है। स्मरण रहे इसी पक्षी को सोसाइटी ने अपना 'लोगो' भी स्वीकार किया है।

डाक टिकटों की तरह ही पोस्ट कार्डों पर भी बाघ, हाथी तथा मोर जैसे प्राणियों को चित्रित किया गया है। जैसा पूर्व में बताया गया है, ये प्राणी अनुसूची प्रथम में दर्ज हैं। उपरोक्त में मोर ही ऐसा प्राणी है जो विलुप्तीकरण के खतरे से अभी दूर है, परन्तु भारत का राष्ट्रीय पक्षी होने तथा कतिपय अन्य महत्वों के कारण इस पक्षी को अनुसूची प्रथम में शामिल किया गया है तथा पोस्ट कार्डों एवं अन्तर्देशीय पत्रों पर भी इसे कलात्मक रूप से चित्रित किया गया है।

भारत में वन्यप्राणियों का स्तनी तथा पक्षी वर्ग ही अभी तक डाक टिकटों में प्रमुखता से दर्शाया गया है। अन्य वर्गों के प्राणियों जैसे उभयचरी सरीसृप मछली तथा अपृष्ठवंशियों पर अभी डाक टिकट न के बराबर ही निकले हैं। कुछ मछलियाँ जैसे पामफ्रेट मछली आदि पर ही डाक टिकिट जारी हुये हैं जबकि इन वर्गों से भी कई प्राणी अनुसूची प्रथम में दर्ज हैं।

वन्यप्राणियों के अतिरिक्त कई डाक टिकट वन्यप्राणियों से संबंधित संस्थाओं पर भी निकाले गये हैं। विश्व भर की वन एवं वन्यप्राणी संपदा को संरक्षित करने के उद्देश्य से बनी संस्था 'अन्तर्राष्ट्रीय संघ प्रकृति और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण (IUCN) पर भारत सरकार पे 20 पैसे का टिकट जारी किया है। भारत भी इस संस्था का सदस्य देश है। इसी तरह 1883 से कार्यरत 'बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी' के सौ वर्ष पूरे होने पर 1983 में इस संस्था पर एक टिकट जारी किया गया।

जिस तरह महान् नेताओं, महान् घटनाओं, महान् धरोहरों आदि को डाक टिकटों में स्थान देकर उनकी याद नई पीढ़ी में ताज़ा रखी जाती है, उनका महत्व जन-जन में व्याप्त किया जाता है, उसी तरह वन्यप्राणियों को भी डाक टिकटों में स्थान देकर जन जन का ध्यान इन सुन्दर प्राणियों की तरफ आकृष्ट किया जाना एक अच्छी परंपरा है ताकि हम वन्य प्राणियों के महत्व, सौन्दर्य एवं अनिवार्यता को समझ कर प्राकृतिक संतुलन बनाने के लिये इनका संवर्धन तथा संरक्षण करने में जुटे रहें। □□

माटी मेरे देश की

रमेशदत्त शर्मा

[हर साल 600 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी बाढ़ के पानी के साथ बह जाती है। लाखों हेक्टेयर ज़मीन बंजर पड़ी है। इसे सुधार कर फिर से हरा-भरा करने की तकनीकें उपलब्ध हैं। फिर भी देश की मिट्टी खराब क्यों हो रही है?

—संपादक]

क्या आपने कभी सोचा है कि इलाहाबादी अमरूद, नागपुरी संतरे, मुजफ्फरपुर की लीचियाँ, देहरादून की बासमती, मलीहाबाद के दशहरी आम-आखिर क्यों मशहूर हैं। इसका भेद इन जगहों की मिट्टी में छुपा है। और ये मिट्टी कोई आज या कल में नहीं बनी। लाखों साल में बनी है। ये समझिए कि मिट्टी की एक सेन्टीमीटर मोटी उपजाऊ ऊपरी परत को बनाने में कुदरत को करीब हजार साल लगते हैं। इस मिट्टी की अपनी एक दुनिया है। तमाम किस्म के जीवाणु, फफूंदी और केंचुए जैसे कल्याणकारी कृमि, तमाम तरह के खनिज तत्व, हवा और पानी तथा टूटी-टहनियों, पत्तियों, फल-फूलों के अंश मिलकर कुछ ऐसी कीमियागरी रचते हैं कि हर मिट्टी की अपनी एक अलग ही सोंधी गँध होती है, गुण होते हैं।

यों तो अनादिकाल से ही आदमी धरती को माता मानकर उसकी पूजा करता आया है, पर मिट्टी किस तरह पौधों की बढ़वार में मदद करती है, इसकी वैज्ञानिक खोज का श्रेय जर्मन रसायनवेत्ता लीबिग को दिया जाता है। सन् 1840 में लीबिग की एक किताब छपी थी, जिसमें पहली बार यह बताया गया था कि पौधों के पोषण के लिए कार्बन हवा में मौजूद कार्बन डाइऑक्साइड से आता है और हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन हवा और मिट्टी में मौजूद जल-कणों से मिलते हैं। लीबिग ने ही पहली बार यह बताया था कि नाइट्रोजन फसलों को अमोनिया से मिलती है और उसके साथ ही फॉस्फेट और पोटाश भी पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक है।

लंदन के पास रोदमस्टेड में जे० बी० लाल और जे० एच० गिलबर्ट ने सन् 1843 में विश्व के प्रथम कृषि अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की। बस तभी से बाकायदा यह खोज शुरू हुई कि किस फसल को कितनी भूख-प्यास लगती है और किस तरह पौधे की जड़ों के सबसे आगे के कोमल भाग पर मौजूद रोयें मिट्टी में बने पानी के घोल में से खनिज तत्व खींच कर ऊपर चोटी पर पहुंचाते हैं। फिर साल दर साल प्रयोगों के बाद पता लगाया गया कि अनाज वाली फसलें तो मिट्टी से पोषक तत्व खींच लेती हैं और फली वाली फसलें, जिनसे हमें दालें और खाने के तेल

मिलते हैं, वे मिट्टी से तो पोषण ग्रहण करती ही हैं, हवा से भी नाइट्रोजन खींचती हैं। इनकी जड़ों में गाँठें बनाकर रहने वाले जीवाणु में यह गुण पाया गया कि वे खेत में रासायनिक खाद की एक अच्छी खासी फैक्टरी ही लगा देते हैं। इसीलिए यह तय किया गया कि ऐसा फ ल-क्रम अपनाया जाय, जिसमें फली वाली कोई न कोई फसल जरूर शामिल हो ताकि मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बनी रहे। रासायनिक खादों के आने से पहले हरी खाद, गोबर की खाद और फली वाली फसलें उगाना, यही साधन थे, जिससे कि मिट्टी को उपजाऊ बनाये रखा जा सकता था।

हालाँकि अब तो रासायनिक खाद सभी किसान इस्तेमाल कर रहे हैं, लेकिन एक जमाना था जब भारतीय किसान इन उर्वरकों के नाम से ही नाक-भौं सिकोड़ते थे। उन्हें डर था कि इनसे फसलों के पौधे जल जाएँगे और मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता नष्ट हो जायेगी। यह भ्रम तो अब दूर हो चुका है और किसान भाई आजादी मिलने के समय जहाँ औसतन मुश्किल से आधा किलो प्रति हेक्टेयर उर्वरक इस्तेमाल कर रहे थे, वहीं अब 48 किलो से भी अधिक का औसत पड़ रहा है। यानी पिछले 42 सालों में उर्वरकों के इस्तेमाल में 96 गुनी वृद्धि हुई है।

लेकिन अब भी ज्यादातर किसान रासायनिक खाद डालने से पहले अपने खेतों की मिट्टी की जाँच नहीं कराते। हो सकता है कि मिट्टी की जाँच करा लेने पर आपको कम उर्वरक खरीदनी पड़े। या फिर अपनी मिट्टी में इन छह जरूरी तत्वों में से किसी की कमी हो—लोहा, जस्ता, ताँबा, मैंगनीज, बोरोन और मोलिब्डेनम। जस्ते की कमी हो तो जिंक सल्फेट मिलाना होगा, ताँबे की कमी हो तो कॉपर सल्फेट, लोहे की कमी हो तो फेरस सल्फेट और मैंगनीज की कमी हो तो मैंगनीज सल्फेट देना होगा। बोरोन की कमी दूर करने के लिए सुहागा या बोरेक्स और मोलिब्डेनम के लिए अमोनियम मोलिब्डेट देना होगा। इनकी बहुत थोड़ी मात्रा चाहिए—बस यों समझिए कि ऊँट के मुँह में जीरे के बराबर। पर उसी से फसलों की पैदावार में चमत्कारी असर पड़ता है।

मिट्टी की जाँच कराने के लिए आप अपने खेत में अलग-अलग जगह से 6 से 8 इंच की गहराई तक मिट्टी खोदकर एक थैली में मिला लीजिए और उस पर अपने नाम और पते की चिप्पी नत्थी कर दीजिये। ये नमूना ज्यादातर तो मुफ्त में जाँचे जाते हैं या फिर मामूली फीस लेकर। नाम-पते की एक चिप्पी थैली के अंदर भी डाल दें। ये ध्यान रहे कि मिट्टी के इन नमूनों में खाद, राख या गोबर न मिलने पाये। फसल बोने से डेढ़-दो महीने पहले अपनी मिट्टी की जाँच करा लें। पूरे देश में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के 40 से ज्यादा कृषि अनुसंधान संस्थान और 23 कृषि विश्वविद्यालय तथा राज्यों के कृषि विभाग मिट्टी परीक्षणशालाएँ चलाते हैं। इसके अलावा चलती-फिरती प्रयोगशालाएँ हैं। डाक से हफ्ते भर में और खुद लेकर जाएँ तो तुरंत आपकी मिट्टी की जाँच करके उसकी तमाम खूबियाँ और कमियाँ बता दी जाती हैं। सन् 1967 में साल में 6-7 लाख नमूने जाँचे जाते थे, पर अब तो इन सुविधाओं का कई गुना विस्तार हो गया है। अब तो जगह-जगह मशीनें लग गई हैं। मिट्टी का घोल रखते ही उनकी सुइयाँ बता देती हैं कि मिट्टी में क्या-क्या है।

मिट्टी की खराबी का खुद पता लगायें

ऊसर मिट्टियों की जाँच करके उन्हें भी सुधारा जा सकता है। हमारे देश में कोई 70 हेक्टेयर जमीन रेह वाली या कल्लर बतायी जाती है, जिसमें लवण या क्षार ज्यादा होते हैं। कुछ मिट्टियाँ अधिक अम्लीय होने के कारण बंजर हो गई हैं। इसके नाम को वैज्ञानिक पीएच कहते हैं। साढ़े छह से साढ़े आठ तक पी एच वाली मिट्टियों में फसलें जमकर पैदावार देती हैं। इससे ज्यादा पी एच होने पर मिट्टी खराब होती जाती है। राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ की डॉ० कुसुम भारद्वाज और श्री वीरेन्द्र चन्द्र ने एक आसान तरीका निकाला

है, जिससे आप खुद ही अपनी मिट्टी का पी एच पता कर सकते हैं।

इसके लिए 20 ग्राम पिसी हुई हल्दी लें और उसे 250 मिलीलीटर शुद्ध पानी में (डिस्टिल वाटर हो तो ज्यादा अच्छा) 5 मिनट तक उबालें। फिर नये-निकोर कपड़े का 25 सेन्टीमीटर चौड़ा और इतना ही लम्बा रूमाल जितना टुकड़ा लें और दो दिन यानी 48 घन्टे तक हल्दी के घोल में पड़ा रहने दें। इसके बाद निचोड़ कर सुखा लें। फिर इस कपड़े की ढाई सेन्टीमीटर लम्बी और उतनी ही चौड़ी पट्टियाँ काट लें। ध्यान रहे कि कपड़ा सफेद रंग का हो और उसमें माँड़ न लगा हो। इसकी पट्टियों को पोलीथीन की थैली में भरकर उसका मुँह बंद कर दें, ताकि पट्टियाँ किसी बाहरी चीज के सम्पर्क में न आएँ।

फिर जिस खेत की मिट्टी जाँचनी हो उसमें एक भाग मिट्टी और उससे दूना शुद्ध पानी मिलाकर घोल बना लें। अब हल्दी रंगी कपड़े की पट्टी इस मिट्टी के घोल में दो मिनट तक डुबोयें। इसके बाद इसी पट्टी को साफ पानी में डालकर निकाल लें ताकि मिट्टी के कण हट जाय। अगर पी एच 7 तक होगा तो पट्टी हलका हरापन लिए पीली रहेगी। जैसे-जैसे पी एच बढ़ता जाएगा हरापन कम होता जाएगा और नारंगी रंग गहरा होता जाएगा। 9 से ऊपर पी एच होने पर पट्टी लाल होने लगती है। 10 पी एच पर हलका नीलापन आ जाता है। इन रंगों का चार्ट भी बना-बनाया आता है, जिससे आप तुलना कर सकते हैं।

7 से ऊपर पी एच बताता है कि आपकी मिट्टी क्षारीय है और उसे सुधारने के लिए जिप्सम का इस्तेमाल करें। पंजाब में करीब दो लाख हेक्टेयर ऊसर मिट्टी सुधारी जा चुकी है और हाल में ही ऊसर विकास के लिए अलग से तकनीकी मिशन बनाया गया है, जो बड़े पैमाने पर पेड़ लगाकर और दूसरे तरीके अपनाकर बंजर ज़मीनों में हरियाली लायेगा।

'एग्रोसोक' और 'जलशक्ति'

बिगड़ी मिट्टियों की सबसे बड़ी खराबी यह होती है कि या तो वे सारा पानी सोख जाती हैं या बिलकुल भी नहीं सोखतीं। ब्रिटेन की केमीकल्स डिस्कवरी लिमिटेड नामक कम्पनी ने "एग्रोसोक" नामक मिट्टी सुधारने वाला पोलीमर निकाला है। ये अपने वज़न से 40 गुना और आयतन से 50 गुना पानी सोख सकता है। रेगिस्तान की बालू में 10 सेमी० गहराई पर "एग्रोसोक" के कण मिलाकर पानी सोखने वाली परत बन जाती है। यह परत पानी को तब तक जमाकर के रखेगी जब तक पौधों की जड़ें उन्हें खींच न लें। वैज्ञानिकों ने देखा कि एक घनमीटर बालू में 3 किलोग्राम एग्रोसोक मिलाने से सूरज-मुखी के पौधों में 65 प्रतिशत पानी की बचत हुई। एग्रोसोक पानी सोखते समय उसका खारापन भी अलग कर देता है। इसी कम्पनी ने एक और पोलीमर बनाया है, "एरोसेल"। इसे रेगिस्तान की बालू के ऊपर बिछा दें तो पानी रिसकर नीचे तो जायेगा, मगर भाप बनकर ऊपर नहीं उड़ेगा। हमारे देश के वैज्ञानिकों ने सी० एस० आई० आर० की राष्ट्रीय रसायनशाला, पूना में ऐसे ही पोलीमरों का विकास किया है, जो "जलशक्ति" नाम से उपलब्ध है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के वैज्ञानिकों ने फसलों की छीजन से अधिक नाइट्रोजन वाली खाद बनाने का आसान और सस्ता तरीका खोजा है। घास-फूस, पत्ती, टहनियाँ वगैरह के कूड़े और भूसे में पेनीसिलियम और एस्परजिलस फफूँदी का टीका लगाया जाता है। इससे ऐसी पोषक खाद बनती है, जिसमें नाइट्रोजन का अंश 14 से 17 प्रतिशत तक बढ़ जाता है। गेहूँ, धान, मक्का और ज्वार तथा बाजरा से हर साल लगभग 14 करोड़ 12 लाख टन भूसा मिलता है। इसी तरह दलहनी फसलों से 1 करोड़ मीटरिक टन छीजन निकलता है। इसमें फफूँदी का टीका लगाकर कम्पोस्ट खाद बनायी जाय तो 7 लाख टन नाइट्रोजन, 8 लाख 40 हज़ार टन फॉस्फेट और 21 लाख टन पोटाश की पूर्ति की जा सके। एजोटोबैक्टर क्रोकोकम और ऐस्परजिलस एवामोरी के साथ ही रॉक फॉस्फेट का चूरा मिलाने से और भी पोषक खाद बनाई जा सकती है।

उपजाऊ मिट्टी हमारी सबसे कीमती धरोहर है। इसे हमें हर कीमत पर बचाना होगा। हर साल कोई 600 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी बाढ़ के साथ बहकर समुद्र की भेट हो जाती है। 15 करोड़ हेक्टेयर में मिट्टी का कटाव जारी है। अगर हमने मिट्टी के ऊपर हवा-पानी की मार से बचाने वाली हरियाली की चादर फिर से नहीं डाली तो कहीं ऐसी नौबत न आ जाय कि हमें अपनी फसलों के लिए चन्द्रलोक की मिट्टी लानी पड़े। अमेरिकी कृषि विभाग के दक्षिणी वन प्रयोग केन्द्र के वनस्पतिविज्ञानी डॉ० वाल्किनशो ने देखा कि चन्द्रमा से लाई गई चन्द्र धूल जब तम्बाकू के पौधों पर छिड़की गई तो उनकी बढ़वार अच्छी हुई। हमारे लिये तो यही अच्छा होगा कि चन्द्र धूल की प्रतीक्षा न करके अपने देश की माटी का मोल समझें और देश की मिट्टी और ज्यादा खराब न करें। (इस्वा फीचर्स) □□

मानव शरीर सूक्ष्मजीवों के घेरे में

टी० सी० टाक*

प्रकृति के वायुमण्डल में असंख्य, "सूक्ष्मजीव" हमारे चारों ओर एवं भीतर मौजूद हैं। ये जीव सामान्य ताप, आर्द्रता एवं भोजन जहाँ भी मिले डेरा डाल देते हैं। शरीर के बाहरी भाग जैसे चाम, मुँह, नाक अन्तरीय भोजन नली, पेशाब नली, जनन भाग; आँख तथा वे भाग जहाँ बाहरी शरीर पर पसीना ज्यादा आता है, ये जीव तुरन्त पनपने की कोशिश करते हैं। खून तथा लाईम्फ तंत्र में ये प्रायः मौजूद नहीं रहते हैं। भूमि की सतह पर ये असंख्य रूप में पाये जाते हैं। हवा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा चारों ओर मिट्टी के कणों के साथ वायुमण्डल में फैल जाते हैं। पृथ्वी के सतह पर कम व ज्यादा होना बाहरी वातावरण पर निर्भर करते हैं। जैसे कि धरती पर मिट्टी में सबसे ज्यादा व समुद्र के किनारे ऊपर वायुमण्डल में सबसे कम संख्या में पाये जाते हैं। शहरी वायुमण्डल में असंख्य रूप में पाये जाते हैं। पृथ्वी के ऊपर 2000 मीटर तक ये जीव शून्य हो जाते हैं क्योंकि सीधी सूर्य की गर्मी सहन नहीं कर पाते हैं। गर्मी में ये जीव वायुमण्डल में अत्यधिक तथा सर्दी में कम से कम संख्या में पाये जाते हैं। मिट्टी ही इनका एक ऐसा सहारा है जहाँ इनको भरपूर भोजन, पानी तथा ताप सरलता से मिल जाता है।

स्पोर्स, मोल्ड, ईस्ट, प्रोटोजोआ, सूक्ष्म कीड़े, कोकाई एवं रोड्स बहुतायत में मिट्टी में पाये जाते हैं।

मानव शरीर की चमड़ी पर जहाँ इनको भोजन पसीने से तथा अन्य मैल से मिल जाता है, अपना बसेरा करते हैं। ये जीव स्टेफाइलोकोकस, स्ट्रेप्टोकोकस, मोल्ड, ईस्ट, फंगस, मनुष्य के हथेलियों पर, अंगुलियों के बीच में, काछों में, कंधों के नीचे भाग में, जांघों में तुरन्त अपना घर बना लेते हैं। कहते हैं एक मनुष्य की चमड़ी पर लगभग 85 लाख से 120 लाख जीव पाये जाते हैं।

मनुष्य के मुख में 100 से अधिक किस्म के सूक्ष्मजीव पाये जाते हैं। मुख की लार ही इन जीवों का भोजन है। लार को हम अंग्रेजी में सेलाइवा कहते हैं। इसमें कई प्रकार के पौष्टिक तत्व जैसे सोडियम, पोटैसियम, कैल्सियम, क्लोराइड, बाईकारबोनेट, फॉस्फेट तथा ग्लूकोज होते हैं। इसके अलावा सेलाइवा में नाना प्रकार के एनजाइम्स जैसे लाइसोजाइम तथा लेक्टोपर-आक्सीडेज जो अन्य हानिकारक जीवों को मारने में सक्षम होते हैं, क्षार तथा अम्ल समतुल्य रहता है तथा पीएच 5.7 से 7.0 तक स्थिर रहती हैं। प्रति मि० लीटर लार में करीब 43 मिलियन से लेकर 5.5 बिलियन सूक्ष्मजीव पाये जाते हैं। मुंह में दाँतों के बीच असंख्य मात्रा में ये जीव रहते हैं।

---

*वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी, रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर

कहते हैं ये नवजात शिशु के मुखमें, माँ के कोख में ही पनप जाते हैं। लेक्टोबेसीलस, अनऐरोबिक स्ट्रेप्टोकोकस, तथा कोलाईफोर्म जीव नवजात शिशु के मुख में पाये गये हैं। मुख में दाँत नहीं आने तक केवल दो ही प्रकार के सूक्ष्मजीव अपना दाइत्व रखते हैं। ये हैं स्ट्रेप्टोकोकस एवं लेक्टोबेसीलस। इन दो जीवों की मौजूदगी में मुंह में बिना हवा का वातावरण बन जाता है, जिसके फलस्वरूप लम्बे डोरे के आकार के जीव जिसे लेप्टोट्रीकीया बेसीलस कहते हैं, ढेर सारे दाँतों पर एक मोटी तह बना देते हैं। इसको 'डेन्टल प्लेक' कहते हैं। बिना हवा के इस प्रकार के मुँह के वातावरण को अनऐरोबोइस कहते हैं जो दाँतों के बढ़ने में बड़ा लाभप्रद माना जाता है। भोजन में ज्यादा शक्कर प्रयोग में लाने से दाँतों के लिए हानिकारक हैं क्योंकि इन जीवाणुओं द्वारा शक्कर लेक्टिक एसिड में परिवर्तन होती है और यही एसिड दाँतों को खोखला कर देता है। भोजन के कण दाँतों से न निकाले जायें तो मुँह में रहने वाले जीव जैसे एसिडोफिलिक लेक्टोबेसीलस, स्ट्रेप्टोकोकस, सेलीवोरियस, ट्रीपोनेमा, माइक्रोडेन्टियम, डिप्लोकोकाई, एन्टऐमीबा जीन्जीवेलिस मुँह में सड़ांध पैदा करते हैं फलस्वरूप मुँह से अवांछित बदबू आने लगती है।

भोजन नली जो मुँह से शुरू होती है अंत गुदा तक चली जाती है। यह नली लगभग 8 फीट लम्बी होती है। इस पूर्ण नली में जीवों का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहता है। मुँह में जो जीव रहते हैं भोजन के साथ पेट में जाते हैं जहाँ अम्लता अत्यधिक (पी एच2) होने पर सारे जीव मर जाते हैं, केवल कुछ ही जीवित रहते हैं। पेट से फिर भोजन छोटी आँत में प्रवेश करता है जहाँ अम्लता कुछ कम होने लगती है परन्तु सूक्ष्मजीव ज्यों के त्वों ही मौजूद रहते हैं। इसके पश्चात् भोजन बड़ी आँत में प्रवेश करता है। यहाँ अम्लता शून्य हो जाती है, क्षारीयता बढ़ने लगती है तथा सूक्ष्मजीवों की संख्या भी बढ़ने लगती है। कहते हैं इन जीवाणुओं का भार बड़ी आँत में बचे-खुचे भोजन (मल) के 1/3 भाग के बराबर होता है। एक आदमी रोज अपनी विष्ठा से लगभग 17 मिलियन बिलियन जीवाणुओं को बाहर छोड़ता है। एक ग्राम पुरुष की विष्ठा में करीब 10^6 से 10^8 जीव मौजूद रहते हैं। ई० कोलाई इस भाग में इतने बढ़ जाते हैं कि अपनी बढ़ोतरी में सारी ऑक्सीजन मल से इस्तेमाल कर लेते हैं। फलस्वरूप पूरी बड़ी आँत बिना ऑक्सीजन लिये मल को थामे रखती हैं। इस मौके पर आँत में जो भी जीव बिना ऑक्सीजन के जी सकते हैं, वे जीव प्रबल होने लगते हैं जिसमें क्लोस्ट्रीडियम परफ्रिन्जन्स जीव हैं जो पाचन-क्रिया को मदद करते हैं और विटामीन बी-1, बी-2, बी-12 (B_1, B_2, B_{12}) तथा के (K) बनाकर मनुष्य की पाचन क्रिया को सफल बनाते हैं। दूसरे जीव जैसे एसिडोफिलिक लेक्टोबेसीलस भी किसी से कम नहीं जो हानिकारक जीवों जैसे निकाला, पेचिस, दस्त करने वालों को नष्ट करने में मददगार होते हैं। इस प्रकार जीव एक दूसरे के सहयोगी सिद्ध होते हैं।

साँस द्वारा ये जीव नाक में, साँस नली में तथा अंत में फेंफड़ों तक चले जाते हैं। साँस लेने में तथा निकालने में जो सूक्ष्मजीवों की संख्या है वह करीब 200 से 500 गुणा है याने साँस खींचने में 200 से 500 गुणा साँस निकालने से। कुदरत की बात है ये सारे जीव फेंफड़ों में जाते ही मर जाते हैं। शुरू में ही नाक की नली में म्यूसीन तथा लाइसोजाइम नामक स्रावों में चिपक कर मर जाते हैं। साँस से नाक में जाने वाले जीव मुख्यतः स्टेफाइलोकोकस, स्ट्रेप्टोकोकस, डिफ्थेरिया-बेसीलाई तथा प्रोटियस हैं।

स्त्रियों की पेशाब नली में किसी प्रकार के जीव नहीं रहते हैं लेकिन पुरुष की मूत्र नली में स्टेफाइलोकोकस, क्लेबसीला तथा डिफ्थेरिया पाये गये हैं।

नवजात बालिका के गर्भाशय में किसी प्रकार के जीव नहीं पाये गये हैं। जन्म के 5-6 रोज बाद एक विशेष प्रकार के सूक्ष्मजीव जिसे स्ट्रेप्टोकोकाई कहते हैं, स्थिर रूप से अपना डेरा बना लेते हैं। जब तक मासिकधर्म न आ जाय ये जीव गर्भाशय में स्थिर रहते हैं। ज्योंही मासिक स्राव शुरू हो जाता है, बिना किसी

देर के ये जीव मर जाते हैं और दूसरे जीव जिसे हम **डोडरलीन बेसीलाई** कहते हैं, अपना धरना कर लेते हैं। कहते हैं मासिक-स्राव होता है तो डोडरलीन **बेसीलाई** भी नष्ट हो कर बाहर आ जाते हैं तथा गर्भाशय का स्राव अम्लीयता पर आ जाता है। इसके फलस्वरूप **स्ट्रेप्टोकोकस** फिर अपना आधिपत्य जमा लेते हैं और करीब 15 रोज तक अपना जोर दिखाते हैं। गर्भाशय में जो ग्लाईकोजन होता हैं उसको थोड़े बहुत **डोडरलीन बेसीलस** अपना भोजन लेकर ग्लाईकोजन को लेक्टिक एसिड में परिवर्तन कर देते हैं जो **स्ट्रेप्टोकोकस** को नष्ट कर देते हैं और फिर अपना आधिपत्य जमा लेते हैं। इस प्रकार माहवारी में दो पक्षों में ये जीव अपना-अपना कार्य करते रहते हैं।

नेत्रों में प्राय: **स्टेफाईलोकोकस, कोरिनेबेक्टिरियम जीरोसीस** तथा **माइकोप्लाज्मा** सूक्ष्मजीव पाये जाते हैं। ये सूक्ष्मजीव किसी प्रकार क्षतिग्रस्त होने पर हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। इनसे कनजंक्टीवाइटीस, ब्लीफरीटीस जैसे नेत्र रोग हो जाते हैं।

वर्तमान युग में 'नोटोबाइलोजी' पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। यह विषय उन जानवरों से संबंधित है, जिनमें किसी प्रकार के सूक्ष्मजीव नहीं पाये जाते हैं। अन्टार्कटिका में ऐसे पक्षी पाये गये हैं जिनमें किसी प्रकार के सूक्ष्मजीव नहीं रहते हैं। एक मानव छ: मास तक किसी सेटेलाइट में अपना जीवन व्यतीत करता है तो उसके शरीर पर व अन्दर क्या ये सूक्ष्म जीव जिन्दा रहते हैं या मर जाते हैं यह शोध का विषय है। □□

बुखार का आना क्या है ?

डॉ० अनुराग श्रीवास्तव*

समस्त प्राणियों को दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

1. शीत रक्त प्राणी (Cold blooded animals) : वे प्राणी, जिनके शरीर का तापमान वातावरण के तापमान के साथ घटता बढ़ता रहता है। उदाहरण के लिए—मेढक, मछलियाँ, इत्यादि।

2. उष्ण रक्त प्राणी (Warm blooded animals) वे प्राणी, जिनके शरीर का तापमान वातावरण के तापमान के साथ घटता-बढ़ता नहीं अपितु एक-सा रहता है। इस श्रेणी में समस्त स्तनपायी आते हैं। हम मनुष्य भी उष्ण रक्त प्राणी हैं और इस लेख में हम इस बात की चर्चा करेंगे कि मनुष्य के शरीर का तापमान क्यों बढ़ता है ? बुखार क्यों आता है ?

मनुष्य के शरीर का सामान्य तापमान क्या है ?

यद्यपि सामान्य मनुष्य के शरीर का तापमान 36.1—37.2 डिग्री सेल्सियस (97/99 डिग्री फारेनहाइट) हो सकता है, तथापि अधिकांश व्यक्तियों के शरीर का तापमान 37 डिग्री सेल्सियस अथवा 98.4 डिग्री फारेनहाइट ही होता है। किसी व्यक्ति के शरीर का तापमान स्वस्थ अवस्था में सर्वदा नियत रहता है अर्थात् यदि किसी व्यक्ति के शरीर का तापमान स्वस्थ अवस्था में भी हमेशा 36.7°C (सेल्सियस) या 98°F (फारेनहाइट) रहता है अथवा सर्वदा 37.2°C (या 99°F) रहता है तो यह उन व्यक्तियों के लिए सामान्य तापमान होगा।

मनुष्य के शरीर में लगातार अनेक जैव-रासायनिक (बायोकेमिकल) क्रियाएँ चलती रहती हैं। इन क्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली ऊष्मा का नियंत्रण हमारे शरीर में त्वचा एवं मस्तिष्क के समायोजन से होता है।

बुखार क्या है ?

विशिष्ट जीवाणुओं/विषाणुओं के आक्रमण स्वरूप

*व्यावसायिक स्वास्थ्य सेवायें, चिकित्सा विभाग, भेल, भोपाल—462022 (म०प्र०)

हमारे शरीर में पायरोजन पैदा हो जाते हैं जिससे त्वचा व मस्तिष्क का समायोजन प्रभावित होता है एवं शरीर का तापमान बढ़ने लगता है। इसे ही आम भाषा में बुखार आना कहते हैं। ज्वर या बुखार की अवस्था में हमारे शरीर की विभिन्न जैव-रासायनिक क्रियाएँ बढ़ जाती हैं एवं शरीर इन आक्रमणकारी पायरोजनिक जीवाणुओं/विषाणुओं को समाप्त करने का प्रयास करता है।

बुखार क्यों आता है ?

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, जब किसी संक्रमण द्वारा पायरोजन पैदा करने वाले जीवाणु/विषाणु शरीर में प्रवेश करते हैं तब बुखार आता है। उदाहरण के लिए—बाह्य/आंतरिक घावों में हुआ संक्रमण, मामूली खाँसी, खराश एवं मौसमी परिवर्तनों से लेकर गंभीरतम क्षय रोग, कैंसर तक बुखार आता है। इसलिए बुखार आने पर घबराने की आवश्यकता नहीं, वरन चिकित्सक से संपर्क कर बुखार का कारण पता लगाना चाहिए। टाइफायड होना, मलेरिया, लू लगना, पीलिया होना, गर्दन में स्थित थायरॉयड ग्रंथि (ग्लैंड) का अत्यधिक सक्रिय होना, एपेन्डिसाइटिस का होना, रक्तदान में उपकरणों का स्वच्छ न होना एवं औषधियों की प्रतिक्रिया (reactive allergy) होना इत्यादि कुछ अन्य अवस्थाएँ हैं, जब बुखार आ सकता है।

कुछ सामान्य अवस्थाओं में भी बुखार आता है जैसे—महिलाओं के शारीरिक तापमान में मासिक धर्म प्रारम्भ होने के 14वें दिन लगभग 0.5°c या 1°F की वृद्धि सामान्यतः होती है। अत्यधिक कार्य के परिणामस्वरूप आयी थकावट से भी हल्का बुखार आ सकता है।

बुखार के दुष्परिणाम क्या हैं ?

बुखार का तेज होना एवं लम्बे समय तक बने रहना स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल होता है। बुखार की वजह से खुराक में कमी आती है एवं शरीर में संचित प्रोटीन्स का उपयोग ऊर्जा आवश्यकता की पूर्ति हेतु होने लगता है, जिससे मांसपेशियाँ कमजोर होती हैं एवं व्यक्ति कमजोरी महसूस करता है। तेज बुखार में मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो सकते हैं एवं शारीरिक तापमान में वृद्धि से/निर्जलीकरण (dehydration) की सम्भावना बढ़ जाती है।

बुखार आने पर क्या करें ?

बुखार 38.9°c (102°F) से अधिक होने पर रोगी के माथे पर ठंडे पानी या बर्फ की पट्टी रखकर उतारने का प्रयास तब तक करना चाहिए जब तक कि रोगी के शरीर का तापमान 37.8°c (100°F) तक न आ जाये। टायफायड, लू लगने, मलेरिया एवं पीलिया के तेज बुखार में ऐसा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। बुखार उतरने पर तत्काल चिकित्सक से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। आजकल तो छोटी-छोटी जगहों पर भी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र व चिकित्सालय स्थापित हो चुके हैं।

रात्रि का वक्त होने पर या दूर दराज के इलाके में जब कि चिकित्सक से तत्काल सम्पर्क करना संभव न हो तथा रोगी के तापमान में विशेष गिरावट न आये तब बाजार में उपलब्ध एन्टीपायरेटिक दवाएँ बुखार उतारने के लिए दी जा सकती हैं। ये दवाएँ विभिन्न व्यावसायिक नामों से मिलती हैं जैसे—क्रोसिन, मेटासिन या पैरासिटेमोल इत्यादि।

स्मरण रहे कि बुखार मात्र एक लक्षण है, रोग नहीं, अतः चिकित्सक से संपर्क कर यह पता लगाना नितान्त आवश्यक है कि बुखार का कारण क्या है क्योंकि तभी रोग का समूल नाश संभव है। □□

क्या आप स्वस्थ हैं ?

डॉ० रामचन्द्र कपूर

महात्मा गाँधी के मतानुसार वह व्यक्ति स्वस्थ है जो किसी भी बीमारी से ग्रसित न हो तथा जो अपने दैनिक जीवन की सामान्य क्रियायें बिना किसी प्रकार की थकावट महसूस किये कर सकता हो। उनके मतानुसार ऐसा व्यक्ति प्रतिदिन आसानी से दस-बारह मील टहल सकता है तथा बिना थकावट महसूस किये हुये साधारण शारीरिक परिश्रम कर सकता है।

हम देखते हैं कि कितने ही ऐसे लोग हैं जो प्रतिदिन 10-12 मील तो नहीं टहलते हैं, फिर भी वे स्वस्थ हैं। ऐसे व्यक्ति अधिकतर बस, स्कूटर अथवा मोटर द्वारा अपने कार्यालय (जहाँ वे काम करते हैं) पहुँचते हैं जहाँ वे छः से आठ घण्टे तक अपनी सीट पर बैठकर कार्य करते हैं। कार्यकाल के समाप्त होने पर वे घर वापस आते हैं, रात्रि का भोजन करते हैं तथा सो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों की शारीरिक क्षमता, उनकी उम्र के हिसाब से भिन्न-भिन्न स्तर की होती है। ये ही ऐसे लोग हैं जिन्हें बीमारियाँ अक्सर ग्रसित करती हैं।

शरीरक्रियात्मक विज्ञान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में शरीर रूपी मशीन से शारीरिक परिश्रम द्वारा अधिक से अधिक कार्य करने की क्षमता होती है। अतः जैसे-जैसे कार्य की कठोरता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे एक प्रौढ़ में हृदय की गति 70 प्रति मिनट से बढ़कर लगभग 200 प्रति मिनट, उसके हृदय की रक्त पम्प करने की गति 5 लीटर प्रति मिनट से बढ़कर लगभग 35 लीटर प्रति मिनट, फेफड़ों में हवा आने-जाने की गति 6-7 लीटर प्रति मिनट से बढ़कर लगभग 70-80 लीटर प्रति मिनट, तथा उस व्यक्ति का ऑक्सीजन उपभोग $\frac{1}{4}$ लीटर प्रति मिनट से बढ़कर लगभग $2\frac{1}{2}$ लीटर प्रति मिनट अथवा और अधिक हो सकता है। यदि किसी व्यक्ति में किसी खास कार्य को पूरा करने के लिये अपने हृदय तथा फेफड़ों की क्रियाशीलता को 'मोबिलाइज़' करने की क्षमता है तो कार्य समाप्त होने पर शरीर अपने हृदय की सामान्य गति, व रक्त पम्प करने की सामान्य क्षमता, तथा श्वसन की सामान्य क्षमता फिर से प्राप्त कर लेता है, और इस प्रकार उसका शरीर किसी अन्य कार्य को करने के लिये तैयार हो जाता है।

जब हम कोई खास कार्य नहीं कर रहे होते हैं उदाहरणतः सोने अथवा लेटे रहने पर बहुत ही कम ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है, बहुत ही कम मात्रा में ऑक्सीजन का उपभोग होता है तथा हृदय की गति व रक्त पम्प करने की गति भी बहुत कम रहती है। दूसरी ओर जब हम 7-8 घण्टे प्रति किलोमीटर की रफ्तार से तेज टहल रहे होते हैं, साइकिल चला रहे होते हैं अथवा सीढ़ियाँ चढ़ रहे होते हैं, दौड़ रहे होते हैं अथवा किसी अन्य प्रकार का कठोर शारीरिक परिश्रम कर रहे होते हैं तो हमें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है, अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है तथा रक्त के पम्प करने की गति व फेफड़ों की क्रियाशीलता को बढ़ाना पड़ता है। जितनी ही अधिक 'मस्क्यूलो-स्केलेटल' तंत्र की क्रियाशीलता होती है उतना ही अधिक हृदय तथा फेफड़ों की क्रियाशीलता में 'मोबिलाइजेशन' होता है। स्वस्थ पुरुष में यह 'मोबिलाइजेशन' पूर्ण होता है। अस्वस्थ व्यक्ति में, यहाँ तक कि शौच जाने के लिये भी कॉर्डियो-प्लमोनरी आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है।

शारीरिक रूप से स्वस्थ रहकर हम बहुत से कार्य कर सकते हैं, उदाहरणतः

1. हम लम्बी अवधि तक कठोर तथा तेजी के साथ परिश्रम कर सकते हैं, जिससे कि हमारा प्रतिदिन का कार्य आसान हो सकता है।

2. दैनिक जीवन के जितने भी कार्य हैं उन्हें हम आसानी से कर सकेंगे तथा उसके बाद भी हममें ऊर्जा

प्राध्यापक, रसायन विभाग, क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर—208001.

शेष रहेगी जो कि वक्त ज़रूरत पर कम आ सकेगी।

3. बिना थकावट महसूस किये हम खेल-कूद में भाग ले सकेंगे।

4. हम अपने शरीर के जोड़ों को मोबाइल तथा शरीर को लचीला रख सकेंगे जिससे कि बिना कष्ट के हम अपने शरीर को मोड़ अथवा झुका सकेंगे।

5. हम अपने को अधिक स्वस्थ तथा ज़िंदादिल महसूस कर सकेंगे।

6. हम अपने शरीर को हृदय रोग तथा अन्य बीमारियों से बचा सकेंगे।

7. जीवन हमारा अधिक खुशहाल हो जावेगा।

एक स्वस्थ व्यक्ति का शरीर लचीला तथा मज़बूत होता है तथा उसमें आंतरिक बल अर्थात् 'स्टैमिना' होता है।

हम किस हद तक स्वस्थ हैं ?

अपनी भुजाओं, टाँगों तथा धड़ की कसरतों द्वारा, जिनमें मांसपेशियों का लगातार तालबद्ध संचलन होता है, हम यह जान सकते हैं कि हम किस हद तक स्वस्थ हैं। परन्तु यदि आप बहुत ही अस्वस्थ हैं तो यह तरीका आपके लिये बिलकुल ही बेकार सिद्ध होगा। एक 'रफ गाइड' के रूप में आप निम्न प्रश्नों का उत्तर दें और देखें कि आप कितने स्वस्थ हैं—

1. क्या आप कुछ ही सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद महसूस करते हैं कि आपका हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा है ?

2. क्या आपको थोड़ी ही देर दौड़ने के बाद साँस लेने के लिये हाँफना पड़ता है ?

3. क्या आपको झुक कर जूते के फीतों को बाँधने में काफी तकलीफ होती है ?

4. क्या आप बाज़ार से सामान लाने के दो थैलों को लेकर लगभग 400 मीटर चलने के बाद ही थक जाते हैं।

5. जहाँ तक सम्भव होता है आप शारीरिक परिश्रम से अपने को बचाना चाहते हैं ?

यदि इनमें से किसी भी प्रश्न का उत्तर 'हाँ' है, तथा यदि आप स्त्री हैं तथा गर्भवती नहीं हैं; तथा आपका साधारण स्वास्थ्य अच्छा है तो आपके लिये और अधिक क्रियाशील होना फायदेमंद होगा, तथा आपको प्रतिदिन कुछ कसरत भी करनी चाहिये।

यदि इनमें से अधिकतर प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' है तो सम्भवतः आप काफी हद तक स्वस्थ हैं। यदि आप यह जानना चाहते हैं कि आप पूर्णरूपेण स्वस्थ हैं अथवा नहीं तो आपको और अधिक सही तथा विधिपूर्वक परीक्षण (डॉक्टर की राय के अनुसार) करवाना चाहिये। एक ऐसा ही परीक्षण जो कि बहुत ही साधारण है तथा बिना डॉक्टर की राय के ही किया जा सकता है निम्न है :

शालीनता तथा आराम से लगभग $1\frac{1}{2}$ किलोमीटर (हाथ हिला-हिला कर) टहलिये। पैंतीस से चालीस वर्ष के व्यक्ति को जो नियमानुसार टहलता है, यह दूरी बिना किसी प्रकार की साँस लेने में कठिनाई तथा अन्य किसी प्रकार की तकलीफ के बगैर, दस मिनट में तय कर लेनी चाहिये। परीक्षण के दौरान तथा तुरन्त बाद में उसे साधारण वार्तालाप करने में कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिये। हालाँकि $1\frac{1}{2}$ किलोमीटर की दूरी तय करने का समय आयु व सेक्स के अनुसार बदलता रहता है, उदाहरणत :

आयु (वर्षों में)	पुरुष	स्त्री
45 वर्ष से कम	10 मिनट	12 मिनट
46–50	11 ,,	13 ,,
51–55	12 ,,	14 ,,
56–60	13 ,,	15 ,,

स्वस्थ कैसे रहें ?

(अ) स्वस्थ रहने के लिये नियमानुसार कसरत कीजिये। शरीर में लचीलापन, ताकत तथा आंतरिक बल (स्टैमिना) उत्पन्न करने के लिये विभिन्न प्रकार की कसरतें, आसन तथा यौगिक क्रियायें हैं जिनके करने से मनुष्य लम्बी अवधि तक स्वस्थ रह सकता

है तथा जीवन का आनन्द लूट सकता है। हालांकि, यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इन कसरतों, आसनों तथा यौगिक क्रियाओं को बहुत अधिक नहीं करना चाहिये। यदि आप कभी हृदय रोग अथवा उच्च रक्त दाब से पीड़ित रहे हों, अथवा यदि आप सीने की किसी बीमारी उदाहरणतः 'ब्रॉनकाइटिस' अथवा 'अस्थमा' से पीड़ित हों, आपको बेहोशी अथवा चक्कर आता है, आपको हड्डियों अथवा जोड़ों की कोई बीमारी उदाहरणतः 'आरथ्राइटिस' है, अथवा कुछ दिनों पूर्व ही आपका कोई ऑपरेशन हुआ है, अथवा कुछ दिनों पूर्व ही किसी बीमारी से ग्रसित रहे हैं, तो आपके लिये आवश्यक है कि किसी भी प्रकार का व्यायाम शुरू करने के पूर्व आप अपने डॉक्टर से मिलें तथा अपना पूर्ण परीक्षण करायें।

(ब) धूम्रपान तथा स्वास्थ्य—धूम्रपान स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है क्योंकि यह फेफड़ों, हृदय तथा रक्तनलिकाओं पर बहुत ही हानिकारक प्रभाव डालता है। धूम्रपान से इन अंगों की कार्यक्षमता घट जाती है जिससे कि सर्वप्रथम तो व्यक्ति का स्टैमिना (आंतरिक बल) घट जाता है तथा बाद में ताकत तथा शरीर के लचीलेपन में भी कमी आ जाती है। धूम्रपान ही 'हार्ट अटैक' तथा फेफड़ों के कैंसर का प्रमुख कारण है। अतः यदि आप स्वस्थ रहना चाहते हैं तो आपको धूम्रपान छोड़ना होगा।

(स) मोटापा तथा स्वास्थ्य—ये दोनों कभी साथ-साथ नहीं रहते हैं। अतः यदि आप मोटे हैं तो आपको मोटापा कम करने के लिये कुछ व्यायाम करना चाहिये तथा नियंत्रित भोजन लेना चाहिये।

(द) शराब तथा स्वास्थ्य—शराब अधिक नहीं पीना चाहिये क्योंकि इसके अधिक उपयोग से यकृत की भयानक बीमारी—'लिवर सिरोसिस' तथा अन्य कई बीमारियाँ हो जाती हैं। अच्छा यही है कि इसका उयोग बिलकुल ही न किया जाय।

(य) योग, मांसपेशियों के लिये व्यायाम तथा स्वास्थ्य—योग आसनों उदाहरणतः 'सूर्य नमस्कार' की सामर्थ्यता प्रमाणित है क्योंकि आसन मांसपेशियों को आराम पहुँचाने के साथ ही साथ मस्तिष्क के लिये भी लाभदायक हैं। जीवन विभिन्न प्रकार के तनावों से भरा पड़ा है। योगिक क्रियायें शारीरिक व मानसिक दोनों ही प्रकार के तनावों से छुटकारा दिलाने के लिये सर्वोत्तम हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि विभिन्न प्रकार की बीमारियों—मुख्यतः हृदय रोग, फेफड़ों तथा रक्त-नलिकाओं की बीमारियों से छुटकारा पाने के लिये यह आवश्यक है कि हम स्वस्थ रहें। □□

दही जमता क्यों, भोजन सड़ता क्यों

सी० एस० पाण्डेय

दही जमता क्यों, भोजन सड़ता क्यों, इस विषय को देखकर यह लगता है कि अमीर खुसरो की उक्तियों की तरह ही कई मर्जों की एक दवा ढूंढने का यह एक प्रयास है। बात सही है कुछ अंशों तक क्योंकि गहराई से सोचने पर लगेगा कि इन अलग-अलग लगने वाली क्रियाओं के कारण आपस में सीधे सम्बन्धों से जुड़े हैं।

वास्तव में दही के जमने और भोजन के सड़ने के लिये अत्यन्त सूक्ष्मजीवधारी उत्तरदायी हैं जो सर्वत्र पाये जाते हैं। बस सूक्ष्मजीवधारी अपना उपयुक्त आहार और अनुकूलन वातावरण पाते ही उस

रसायन विभाग, हिमाचल प्रदेश, विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला (हिमाचल प्रदेश)

पर टूट पड़ते हैं और उस वस्तु के रंग-रूप में आमूल परिवर्तन आ जाता है।

दही जमने की मूल क्रिया किण्वन है। किण्वन की क्रिया में बड़े-बड़े कार्बनिक अणु टूट कर छोटे तथा सरल कार्बनिक रसायनों में बदल जाते हैं। इसमें अनेक प्रकार के सूक्ष्मजीवधारी भाग लेते हैं, जैसे यीस्ट या खमीर, जीवाणु (बैक्टीरिया), मोल्ड इत्यादि। इन्हें अपने जीवधारण तथा वृद्धि के लिये आवश्यक ऊर्जा किण्वन की क्रिया से मिलती है, प्रत्येक क्रिया में एक न एक जीवरसायन भाग लेते हैं, जिन्हें एंजाइम कहते हैं। एंजाइम इन सूक्ष्मजीवधारियों के शरीर में ही संश्लेषित होते हैं। इस तरह लैक्टिक किण्वन की क्रिया में दूध की शर्करा (लैक्टोस) लैक्टिक अम्ल में बदल जाती है। परिणामतः दूध खट्टा हो जाता है। एल्कोहॉलिक किण्वन में यीस्ट नामक फफूंद काम आती है। यह शर्करा को एल्कोहॉल तथा कार्बन डाइऑक्साइड गैस में परिवर्तित कर देती है। फलों के रस में यीस्ट द्वारा किण्वन की क्रिया में शराब (वाइन) का निर्माण होता है। जौ के रस में इसी सूक्ष्मजीवधारी की सहायता से बीयर बनती है। बीयर बनाने के लिये और भी अनेक स्टार्चयुक्त पदार्थ काम में लाये जाते हैं, जैसे मक्के का आटा, चावल या और कोई अनाज जो स्थान विशेष में उपलब्ध हों, आवश्यकता है स्टार्च की जिस पर खमीर में उपस्थित जीवरसायनों की क्रिया हो सके। सिरका बनाने की क्रिया में माइकोडर्मा एसिटी (Mycoderma aceti) नामक जीवाणु काम में आते हैं जो हवा में विद्यमान रहते हैं। इनका खाद्य, नाइट्रोजनयुक्त आहार है जिसकी उपस्थिति में यह फलते-फूलते हैं। यदि इनके खाद्य में एल्कोहॉल वर्तमान हो तो वह एसीटिक अम्ल में बदल जाता है, यही सिरका है। माइकोडर्मा एसिटि (Mycoderma aceti) के कारण ही हवा में खुली हुई बीयर तथा वाइन में खट्टापन आ जाता है। किण्वन की एक और क्रिया, ब्यूटाइरिक किण्वन के लिये उत्तरदायी जीवाणु सड़ते हुए पनीर में पाये जाते हैं। यह लैक्टिक अम्ल को ब्यूटाइरिक अम्ल में बदल देते हैं। फलस्वरूप इससे प्रभावित पदार्थों में दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है। एस्परजिलस नाइजर (*Aspergillus niger*) नामक फफूंद से व्यापारिक मात्रा में सिट्रिक अम्ल बनाया जाता है।

किण्वन की कई और क्रियाएँ अनेक प्रकार की औषधियों के निर्माण में काम आती हैं। पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, टेट्रासाइक्लिन इत्यादि औषधियों का निर्माण सूक्ष्मजीवधारियों की सहायता से ही होता है। आज की जीवनरक्षक औषधियों में इनका विशेष स्थान है।

अनेक भोजन पदार्थों के निर्माण और शोधन में सूक्ष्मजीवधारियों का अपना विशेष हाथ है। मक्खन बनाने की क्रिया में दूध की क्रीम में जो परिवर्तन होते हैं, उसी के फलस्वरूप इसमें विशेष प्रकार की गन्ध उत्पन्न होती है। मांस को कुछ समय तक लटका कर रखने से वह नरम हो जाता है क्योंकि हवा में स्थित जीवाणु इसके प्रोटीन को कुछ अंशों तक विभाजित कर देते हैं। पनीर बनाने में भी इसी प्रकार की क्रियाओं द्वारा उसमें विशेष गन्ध और स्वाद उत्पन्न हो जाते हैं।

भोज्यपदार्थों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। शीघ्र नष्ट होने वाले पदार्थ जैसे मांस, मछली, दूध तथा हरी सब्जियाँ। इनमें जल की बहुत अधिक मात्रा होती है। साधारण रूप से नष्ट होने वाले पदार्थ जैसे आलू, प्याज, गाजर, अनेक फल इत्यादि। इन्हें ठंडे वातावरण में कुछ समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। नष्ट न होने वाले पदार्थ जैसे सूखी दाल, अनाज, सूखे फल तथा मेवे जिनमें जल की मात्रा अत्यन्त कम होती है। इन्हे दीर्घकाल तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह पाया गया है कि जल की मात्रा के साथ खाद्य पदार्थों की स्वाभाविक रूप से नष्ट होने की क्रिया का सीधा सम्बन्ध है।

प्रायः सभी खाद्यपदार्थों में अनेक प्रकार के सूक्ष्म-जीवधारी रहते हैं जो प्रायः परजीवी (Parasites) होते हैं। यह ताप तथा जल की उचित मात्रा की उपस्थिति में खाद्यपदार्थों को अपना आहार बना लेते

हैं और शीघ्रता से वृद्धि करते हैं। मोल्ड (Mold) नामक जीवाणु जो वायु में रहते हैं, खाद्यपदार्थों में आकर रुई की तरह दिखाई देने वाले पदार्थ के रूप में वृद्धि करते हैं। अनुकूल वातावरण पाकर (mold) प्राय: हर प्रकार के भोजन जैसे गांरा, पनीर, रोटी, दूध, जेली तथा जैम पर आक्रमण कर देते हैं। इनसे भोजन दूषित हो जाता है या उनमें दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है। खमीर वर्ग के जीवाणु भी हवा से ही भोजन में प्रवेश करते हैं। शर्करा युक्त भोजन में इसके प्रभाव से एल्कोहॉल बनता है। जीवाणु एक सेल वाले जीवाणु हैं जो वायु, जल, मिट्टी, प्राणियों के शरीर तथा पौधों में पाये जाते हैं। इनके प्रभाव से भोजन विषाक्त हो जाता है। अनुकूल परिस्थितियों में जीवाणु अत्यन्त शीघ्रता से वृद्धि करते हैं। अनुमानत: जीवाणु का एक सेल 15 घण्टों में 10 अरब सेलों का निर्माण कर सकता है। जीवाणुओं को दो वर्गों में बांटा जा सकता है—एक वह है जो मृत जीवों या वनस्पति पर बसर करते हैं। इनकी क्रिया के फलस्वरूप पृथ्वी से इन अवांछनीय पदार्थों को हटाने में सहायता मिलती है। इनके सड़ने और नष्ट होने पर इसके मूल अवयव फिर पृथ्वी में मिलकर पेड़-पौधों के लिये भोजन की व्यवस्था करते हैं। यदि यह न होता तो पृथ्वी सदियों से इन पदार्थों से भर गई होती और पौधों के लिये आवश्यक तत्वों का चक्र भी अधूरा रह जाता।

दूसरे वर्ग के बैक्टीरिया वे हैं जो जीवित प्राणियों तथा वनस्पति के शरीर में परजीवी के रूप में रहते हैं। ये अनेक रोगों को जन्म देते हैं। खाद्यपदार्थों में रहकर कुछ जीवाणु उन्हें नष्ट कर देते हैं और विषैले पदार्थ पैदा करते हैं जिससे भोजन विषैला हो जाता है। यदा-कदा ऐसे दूषित भोजन से होने वाली दुर्घटनाएँ प्रकाश में आती हैं। दूषित भोजन खाने के तुरन्त बाद पेट में अत्यन्त तेज पीड़ा, उल्टी या दस्त के लक्षण उत्पन्न होते हैं। यह विष प्राय: साल्मोनेला (Salmonella) वर्ग के बैक्टीरिया के कारण पैदा होते हैं। स्टैफाइलोकोकस (Staphylococcus) वर्ग तथा क्लास्ट्रिडियम (Clostridim) नामक बैक्टीरिया सड़ते हुए भोजन में अत्यन्त तीव्र विष की रचना करते हैं जो मनुष्य के लिये प्राणघातक हो सकता है। मूंगफली तथा कुछ अन्य खाद्यपदार्थों में एस्परजिलस फ्लैवस (*Aspergillus flavus*) नामक फफूंद पैदा हो जाती है। इसके प्रकोप से एफ्लोटॉक्सिन (Aflotoxin) नामक विष पैदा होता है। इस विष के प्रभाव से प्रतिवर्ष बहुत बड़ी संख्या में मछलियों, मुर्गियों तथा अनेक पालतू पशुओं की मृत्यु होती है। एफ्लोटॉक्सिन लिवर में कैंसर उत्पन्न करने वाले पदार्थों में सबसे सशक्त विष है।

भूमि में पाये जाने वाले अनेक बैक्टीरिया ऐसे हैं जो वायुमण्डल से नाइट्रोजन गैस को लेकर उन लवणों में बदल देते हैं, जो पौधों के लिये आवश्यक खाद्य पदार्थ होते हैं। ये बैक्टीरिया प्राय: मटर, दालें तथा इसी वर्ग के अन्य पौधों की जड़ों में रहते हैं। चतुर किसान इस बात को जानता है तथा फसलों के हेरफेर से भूमि की उर्वरा शक्ति को संतुलित रखने का ध्यान रखता है।

कुछ बैक्टीरिया ऐसे होते हैं जो हवा की अनुपस्थिति में फलते-फूलते हैं, इन्हें अवाणुजीवी जीवाणु कहते हैं। काष्ठ तथा मृत पौधों के अन्य अवयव इनके प्रभाव से सड़कर मीथेन गैस बनाते हैं जो ज्वलनशील है। आजकल बायोगैस या गोबर गैस के यंत्रों में इन्हीं बैक्टीरिया की सहायता से अनेक (waste) पदार्थों को सड़ाकर ईथेन गैस का उत्पादन किया जाता है, जिसे भोजन पकाने या अन्य घरेलू कार्यों में प्रयोग किया जाता है। इस विधि से अपशिष्ट पदार्थ खुले में सड़ने, दुर्गन्ध फैलाने और बीमारियों का आह्वान करने के बजाय उपयोगी ज्वलनशील गैस में बदल जाते हैं। इतना ही नहीं, बचा हुआ पदार्थ एक उपयोगी उर्वरक के काम आता है।

बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये कैसे अधिक मात्रा में भोजन उपलब्ध हो, यह आज के युग की एक बड़ी समस्या है। वैज्ञानिकों का ध्यान सदैव इस ओर रहा है कि खेतों में अधिक अन्न का उत्पादन तो हो ही, अन्न को सड़ने से भी बचाया जाय। इसके अतिरिक्त

उन उत्पादों को सड़ने से बचाना आवश्यक है जो आसानी से नष्ट हो जाते हैं। फल, सब्जी इत्यादि ऐसे उत्पादन हैं, जो वर्ष के एक विशेष काल में आवश्यकता से अधिक उत्पन्न होती हैं पर टिकती नहीं। इनके संरक्षण का मूल-मंत्र है उन सूक्ष्म जीवाणुओं तथा एन्ज़ाइमों को नष्ट या निष्क्रिय कर दिया जाय जो भोजन को सड़ाने का कार्य करते हैं।

भोजन को सड़ने से बचाने की अनेक विधियाँ हैं। यदि खाद्यपदार्थों से अधिकांश जल को हटा लिया जाय तो सूक्ष्मजीवाणु और एंज़ाइम निष्क्रिय हो जाते हैं। सबसे पुरानी विधि है धूप में सुखाना। मांस, मछली, फल तथा सब्जियों का संरक्षण इस विधि से आज तक होता आया है। सुखाने के लिये गरम वायु, शून्य (Vaccum) इत्यादि का भी प्रयोग किया जाता है। दूध का चूर्ण इसी प्रकार की विधि द्वारा बनाया जाता है। जल को हटाने पर खाद्यपदार्थों का आयतन बहुत कम हो जाता है अतः इनके भंडारण तथा परिवहन में भी सुविधा होती है।

खाद्यपदार्थों को शीघ्रता से ठंडा करना संरक्षण की प्रमुख विधि है। इससे उनमें उपस्थित जल-जम जाता है। जमा हुआ जल जीवाणुओं तथा एंज़ाइम को निष्क्रिय कर देता है क्योंकि इन्हें कार्य करने के लिये तरल जल के माध्यम की आवश्यकता होती है। अतः भोजन सड़ नहीं सकता। खाद्यपदार्थों का जमा हुआ जल वैकुअम के प्रयोग से हटाया भी जा सकता है। इस क्रिया को फ्रीज ड्राइंग कहते हैं।

खाद्य पदार्थों को सड़ने से बचाने की एक विधि में इसे पहले उच्च ताप पर थोड़ी देर के लिये गरम किया जाता है और फिर तुरन्त ठंडा कर लेते हैं। इस विधि से अधिकांश जीवाणु नष्ट हो जाते हैं और एंज़ाइम निष्क्रिय हो जाते हैं। दूध के पास्चुराइज़ेशन की यही विधि है। फल तथा सब्जियों को टिन-बद्ध करने से पूर्व उन्हें और भी अधिक ताप पर गरम किया जाता है। इससे बैक्टिरिया पूर्णरूप से नष्ट हो जाते हैं।

खाद्यपदार्थों के संरक्षण में अनेक रसायनों का भी प्रयोग किया जाता है। इन रसायनों के प्रयोग से या तो जीवाणु तथा एंजाइम नष्ट हो जाते हैं या निष्क्रिय हो जाते हैं। मांस तथा मछली को नमक मिलाकर रखने से वह सड़ता नहीं। यह विधि सदियों से प्रयोग की जाती रही है। चीनी, सिरके या नींबू के रस में डाल कर रखने से भी खाद्यपदार्थ सड़ने से बचाये जाते हैं। फलों के रम, जैम, जेली इत्यादि में चीनी या कुछ रसायन ही संरक्षण का कार्य करते हैं। अचार को सड़ने से रोकने के लिये खाद्यतेल तथा मिर्च-मसालों का प्रयोग होता है।

भोज्य पदार्थों को वायु से संपर्क हटा कर भी वे सड़ने से सुरक्षित रखे जा सकते हैं। वसा व तेलों को वायुविहीन अवस्था में बन्द रखने से वे सुरक्षित रखे जा सकते हैं क्योंकि इस विधि से जीवाणुओं को वृद्धि करने तथा जीवित रहने के लिये ऑक्सीजन नहीं मिल पाती। अनेक फल व सब्जियों को मोम से ढक कर रखने पर वे पर्याप्त समय तक सड़ने से बचाई जा सकती हैं।

भोजन का संरक्षण उच्च ऊर्जा युक्त विकिरण की सहायता से भी किया जाता है। इस विधि में खाद्य पदार्थों की गामा किरणों या तीव्रगामी इलेक्ट्रॉनों से क्रिया कराई जाती है। इसके प्रभाव से जीवाणु नष्ट हो जाते हैं और भोजन को सड़ने से बचाया जा सकता है।

आम, कटहल और जामुन के मूलवृन्त

दर्शनानन्द

उद्यान विज्ञान सम्बन्धी आधुनिक शोधकार्यों द्वारा अब यह सर्वसिद्ध है कि आम के अतिरिक्त अब कटहल और जामुन के पौधे भी वानस्पतिक प्रसारण द्वारा तैयार किये जा सकते है। आम में भेंट कलम के अलावा अब वेनियर कलम भी की जा सकती है। इस विधि से यह सुविधा हो जाती है कि मूलवृन्त को उठा कर मातृ पौधे के पास नहीं ले जाना पड़ता जैसा कि भेंट कलम में करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त आम में पैबन्द लगा कर चश्मा भी बांधा जा सकता है (पैच बडिंग)। सामान्यतः अब कटहल और जामुन के पौधे भी पैच बडिंग द्वारा सरलता पूर्वक तैयार किये जा सकते हैं। अब कटहल और जामुन उन्नतिशील किस्मों तथा उनके गुणों को वानस्पतिक प्रसारण की इन विधियों द्वारा भलीभांति बढ़ा सकते हैं, जो बीजू पौधों द्वारा सम्भव नहीं था।

उपरोक्त सभी वानस्पतिक विधियों द्वारा प्रसारण करने के लिये मूलवृन्तों की ही आवश्यकता पड़ती है, जो बीजू पौधों द्वारा ही तैयार किये जाते हैं। आम, कटहल व जामुन—इन सभी पौधों की मूसला जड़ें ज़मीन में सीधे नीचे की ओर बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ती हैं। ये मूसला जड़ें शीघ्र ही बढ़कर ज़मीन में काफी गहराई तक नीचे चली जाती हैं। इसके परिणाम स्वरूप जब ये बीजू पौधे ज़मीन से खोदे जाते हैं तो मूसला जड़ें कट जाती हैं और दूसरे स्थान तक पहुँचते पहुँचते पौधे सूखने लगते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अचानक मूसला जड़ें कट जाने से पौधों को ऐसा धक्का लगता है कि सहन नहीं कर पाते क्योंकि मूसला जड़े ही ज़मीन से खूराक खींच कर पौधों को भोजन प्राप्त कराती हैं। फलतः अधिकांश पौधे सूख जाते हैं। यह समस्या इन पौधों के वानस्पतिक प्रसारण में एक बाधा थी। आधुनिक शोधकार्यों द्वारा अब इस समस्या का भी पूर्णतः समाधान हो गया है।

इन नवीन विधियों द्वारा बीजू मूलवृन्त तैयार करने का खर्च उद्यानपति, पौधशाला स्वामी, कृषक तथा औद्योगिक व कृषि संस्थान व विद्यालय सभी पूर्ण सफलता के साथ कर सकते हैं। इन विधियो का वर्णन प्रस्तुत है।

आम—आम की गुठलियाँ मई-जून से जुलाई के बीच एकत्रित कर लें। फिर शीघ्रातिशीघ्र पूर्व तैयार की गई खादयुक्त क्यारियों में इन्हें फैला दें। ये गुठलियाँ एक दूसरे के बगल में लगी रहें पर एक दूसर के ऊपर न रहें इस बात का पूर्ण ध्यान देने की आवश्यकता होती है। गुठलियाँ फैलाने की क्यारियाँ पुरान आम के उद्यान में या अन्य उद्यानों में वृक्षो के नीचे या खुले स्थान में भी तैयार कर सकते हैं। गुठलियाँ फैलान के बाद उन्हें आम की सूखी पत्तियों की मोटी तह से ढँक देना चाहिए।

यदि इसके बाद वर्षा होती है तो ठीक है अन्यथा क्यारी को सिंचाई द्वारा बराबर तर रखना चाहिए। आम की पत्तियों से निम्नलिखित लाभ होते हैं :

(i) पत्तियाँ अपने भीतर काफी समय तक नमी सोखे रहती हैं, जिससे अंकुरण में सहायता मिलती है।

(ii) पत्तियों के कारण बीज से निकलते हुए कोमल अंखुओं को कम से कम और केवल हल्की रुकावट का सामना करना पड़ता है।

(iii) आम की पत्तियों के कारण दीमक का प्रकोप नहीं होने पाता।

इस भाँति पूर्ण ध्यान देते हुए यदि आम की ताज़ी गुठलियाँ बोई जाएँ तो 15 दिन के भीतर अंकुरण हो जाता है। जब आम के पौधे 20-30 सेमी० ऊँचाई के हो जाएँ और ताम्र रंग-युक्त पत्तियाँ हरी होने लगें

अवकाशप्राप्त उपनिदेशक उद्यान, इलाहाबाद मण्डल, सी-67, गुरु तेगबहादुर नगर (करेली हाउसिंग स्कीम) इलाहाबाद–211016.

तब उन्हें भली-भाँति तैयार की हुई अन्य क्यारियों में बदल दें, जिससे वे भविष्य में मूलवृन्त के लिये प्रयोग किये जा सकें।

आम के इन छोटे पौधों (अमोलों) को बदलने के लिये चौड़े फार वाली खुर्पियों का प्रयोग करें। खुर्पी को अमोले लगी हुई क्यारियों में मिट्टी के भीतर तिरछी दशा में रखते हुए आगे की ओर इस प्रकार हल्का झटका दें कि अमोलों की मूसला जड़ें कट कर केवल 3-4 सेमी० लम्बाई की शेष रह जाएँ। इसी के साथ इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि गुठलियाँ पौधों के साथ लगी रहें क्योंकि इनके भीतर एकत्रित भोज्यपदार्थों द्वारा ही इन कोमल पौधों का आरम्भ में पालन-पोषण होता है।

अतः इस भाँति खुर्पी का प्रयोग करने पर एक बार में 20-25 पौधे बड़ी आसानी के साथ भूमि से मुक्त हो जाते हैं। इन पौधों को दूसरी क्यारियों में 15 सेमी० की दूरी पर लगा दें। धीरे-धीरे इन पौधों में झकड़ा जड़ें निकलने लगेंगी। भविष्य में ये पौधे इन्हीं झकड़ा जड़ों से भूमि से भोजन खींचते हैं। इन पौधों के बदलने पर सूखने की सम्भावना नहीं रहती और शत प्रतिशत पौधे जीवित रहते हैं।

अमोलों को उपरोक्त ढंग से बदल कर रोपाई करने के निम्नलिखित लाभ हैं।

(i) एक ही बार में और बहुत थोड़े समय में ही बहुत अधिक पौधे निकाले जा सकते हैं।

(ii) भविष्य में रोपण हेतु आम के कलमी या बीजू पौधे भूमि से मिट्टी की छोटी पिण्डी के साथ निकाले जा सकते हैं, जिससे दूसरे स्थानों पर भेजने में सुविधा होती है।

(iii) एक टोकरी में अपेक्षाकृत अधिक पौधे बाँधे जा सकते हैं।

(iv) कलमी या बीजू पौधों को उद्यान में रोपण करने के लिये भूमि से निकालने पर सूखने की सम्भावना कम रहती है।

उपरोक्त वर्णित ढंग से अमोले जब क्यारियों में बदल दिये जाएं, उसके पश्चात् उनमें सामान्य रूप से निराई-गुड़ाई और सिंचाई करते रहें। भविष्य में आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग करें।

कटहल—कटहल के पौधों में भी मूसला जड़ों के कारण बदलने के पश्चात् सूखने की समस्या बड़ी गम्भीर रहती है। इस गम्भीर समस्या के निवारणार्थ औद्यानिक प्रयोग एवं प्रशिक्षण केन्द्र, बस्ती पर वर्ष 1976 में परीक्षण किये गये। फलस्वरूप इस गम्भीर समस्या का भी अब पूर्णतः निवारण हो गया है। कटहल का बीज बोने के पूर्व उपयुक्त माप की खाद-युक्त क्यारियाँ तैयार कर लें।

क्यारियाँ भूमि धरातल से लगभग 15-20 सेमी० ऊँची बनाएँ, जिससे क्यारियों में पानी न लगने पाए। साथ ही साथ पानी के बहने का भी पूर्ण प्रबन्ध रक्खें। इन क्यारियों की चौड़ाई में 15 सेमी० की दूरी पर लगभग 4 सेमी० गहरी पंक्तियाँ बनाएँ। जून-जुलाई में इन पंक्तियों में कटहल के ताजे बीजों को लिटा कर पास-पास बोना चाहिए। इस बात का ध्यान देना आवश्यक है कि बीज एक दूसरे के ऊपर न रक्खे जाएँ। बोने के पश्चात् बीज को पत्ती की खाद (लीफ मोल्ड) से ढँक दें। तत्पश्चात् थापी से थपथपा कर भूमि धरातल को समतल कर लें। यदि क्यारी में पंक्तियाँ न बनाई जायें और एक ओर से कटहल की गुठलियाँ आम की भाँति फैला दी जाएँ, तो पंक्तियों में बोने की अपेक्षा बहुत अधिक संख्या में पौधे तैयार हो सकते हैं। फिर भी प्रत्येक दशा में बीज को खाद से ढँकने और थपथपाने के बाद फूस की टट्टी से ढँक दें।

कटहल के बीज का अंकुरण 10–12 दिन में ही जाता हैं। अंकुरण के 10 दिन पर कटहल के पौधे लगभग 11 सेमी० के हो जाते हैं। इस समय इनकी मूसला जड़ें पौधे की ऊँचाई से 1 या 2 सेमी० अधिक गहराई तक भूमि के नीचे चली जाती हैं। इससे इस बात का भली भाँति अनुमान लगाय जा सकता है कि एक या डेढ़ वर्ष के पौधों को उद्यान में रोपण करने के लिये बदलते समय मूसला जड़ों की क्या दशा रहती होगी तथा किस प्रकार भूमि से निकालने पर वे पौधे सूखते हैं।

आधुनिक तकनीक के अनुसार अंकुरण के 10 दिन पश्चात् से लेकर 6 सप्ताह तक कटहल के पौधे दूसरी क्यारियों में बदले जा सकते हैं। इसके लिए चौड़े फार वाले पैने खुर्पे क्यारी की भूमि के भीतर तिरछी दशा में रखते हुए आगे की ओर लटका दें। इस भाँति एक बार में 20–25 निकल आते हैं। खुर्पी भूमि में इस प्रकार रक्खें की मूसला जड़ें कट कर पौधों के साथ लगभग 2.0 सेमी० लम्बाई में शेष रह जाएँ।

पौधे के साथ गुठली का लगा रहना भी आवश्यक होता है। क्यारी की मिट्टी से इस तरह मुक्त किए गए पौधों की मिट्टी झाड़ देनी चाहिए जिससे पौधे बहुत हल्के हो जाते हैं। इस प्रकार एक टोकरी में 250 पौधे आसानी के साथ दूसरी क्यारी में रोपण के लिये भेजे जा सकते हैं। दूसरी क्यारी में ये पौधे 25×15 सेमी० पर लगाना चाहिए। इस प्रकार से दूसरी क्यारी में बदले हुए कटहल के पौधे शत प्रतिशत जिवित रहते हैं। मूसला जड़े कट जाने के पश्चात् जड़ों के शेष भाग से झकड़ा जड़ें निकल कर चारों ओर फैल जाती हैं। इस प्रकार आगामी ऋतु में कटहल के बीजू या कलमी (पैच बाडिंग किए हुए) पौधे छोटी पिंडियों के साथ सुविधा पूर्वक निकालने व भेजे तथा उद्यान में लगाये जा सकते हैं, जिनके सूखने की सम्भावना कम रहती है।

जामुन—जामुन के ताजे बीज जुलाई-अगस्त में एकत्रित कर के खाद युक्त क्यारियों में बो दें। बीज एक दूसरे के ऊपर न रहें। बीज 3–4 सेमी० की गहराई में बोएँ। लगभग 10 दिन में बीज जमते हैं। अंकुरण के एक मास बाद जामुन के पौधे 9–10 सेमी० के हो जाते हैं। इस समय तक इनकी मूसला जड़ें 12–13 सेमी० गहराई तक भूमि के नीचे वृद्धि कर लेती हैं। इस कारण मूसला जड़ें इसी भाँति बनी रहने पर भविष्य में बदलने पर इन जड़ों के कट जाने से जामुन के पौधे भी अधिकतर सूख जाते हैं।

अतः जामुन का मूलवृन्त तैयार करने के लिये भी औद्यानिक प्रयोग एवं प्रशिक्षण केन्द्र; बस्ती पर वर्ष 1976 में परीक्षण किये गये जिनसे पूर्ण सफलता प्राप्त की गई। दूसरी क्यारी में बदलने के लिए लगभग एक मास के जामुन के पौधों का चयन करना चाहिए। पौधे बदलने के लिये चौड़े फार वाले पैने खुर्पों का प्रयोग करना चाहिए। खुर्पे का प्रयोग क्यारी में इतनी गहराई तक करें कि मूसला जड़ें कट कर पौधे के साथ लगभग 2 सेमी० लम्बाई की जड़ें रह जाएँ। इस भाँति एक बार में जामुन के लगभग 25-30 पौधे भूमि में मुक्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् इनकी मिट्टी झाड़ कर टोकरी में रखकर दूसरी क्यारी में लगाने के लिए भेजे जा सकते हैं। एक टोकरी में इस प्रकार लगभग 350 पौधे रक्खे जा सकते हैं। इन पौधों को दूसरी खादयुक्त क्यारियों में 25×15 सेमी० की दूरी पर लगा दें।

पौधों के साथ गुठलियाँ मौजूद रहने पर दूसरी क्यारी में बदलने के पश्चात् शत प्रतिशत पौधे जीवित रहते हैं। आम और कटहल के विपरीत यदि जामुन के पौधों की गुठलियाँ पौधों से अलग भी हो जाएँ तो भी लगभग 80 से 90 प्रतिशत तक बीजू पौधे जीवित रह जाते हैं। अतः जामुन उद्योग में आगे और बड़ी क्रान्ति लाई जा सकती है।

इस भाँति क्यारियों में से पौधे यदि कुछ बेफिकरी के साथ भी निकाले जाएँ तो भी कोई विशेष हानि नहीं होती। दूसरी क्यारियों में बदलने के पश्चात् इन पौधों को भविष्य में अथवा आगामी ऋतु में उद्यान रोपण या पैच बडिंग करने के लिए प्रयोग करें। इन पौधों के सूखने की सम्भावना कम रहती है। □□

अपनी क्षमता को पहचानियें

वी॰ पेकेलिस
रूपान्तर : राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप*

[किसी भी पुस्तक का संक्षिप्तिकरण लेखक और पुस्तक दोनों के साथ अन्याय कहा जा सकता है। किन्तु आज की भाग-दौड़ की जिन्दगी में कम ही अवसर आते हैं जब हम किसी मोटी पुस्तक को पूरा पढ़ने का समय निकाल सकें। और अवसर होने पर भी क्या अच्छी पुस्तक हाथ लग पाती है ? अतएव 311 पृष्ठों की विषयवस्तु को इतने थोड़े पृष्ठों में समेटने के लिए श्री राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप निश्चय ही साधुवाद के पात्र हैं। इससे निस्संदेह आपको मूल पुस्तक पढ़ने की प्रेरणा मिलेगी, और मूल पुस्तक आपकी विकास यात्रा में सहायता कर सकती है – इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि यह एक प्रेरणादायक पुस्तक है। —संपादक]

जीवन की निराशा दूर करने, उसे फिर से कर्म-पथ पर गति प्रदान करने वाली पुस्तकें अनेक हैं। डेल कार्नेगी की अधिकांश कृतियाँ इसी श्रेणी में आती हैं। विभिन्न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों और शोध-निष्कर्षों के आधार पर जीवन को पुनर्प्रेरणा प्रदान करने वाली पुस्तकों का भी अभाव नहीं है, उदाहरण के लिये 'ट्रान्सऐक्शनल एनालिसिस' पर आधारित पुस्तकें— 'आई ऐम ओ० के०, यू० आर० ओ० के०', 'गेम्स पीपुल प्ले', 'व्हाट डू यू से आफ्टर यू से हलो' अथवा 'बार्न टु विन'। परन्तु वीक्तर पेकेलिस की रचना 'रियलाइज योर पोटेन्शल' इस कोटि की पुस्तकों में एक नवीन प्रकार की पुस्तक कही जा सकती है। यह एक प्रेरणादायक पुस्तक है।

वीक्तर पेकेलिस मूलतः वैज्ञानिक क्षेत्र के रचनाकार हैं। साइबरनेटिक्स उनका प्रिय विषय है और इस विषय पर उन्होंने 'साइबरनेटिक्स ए टु जेड', 'साइबरनेटिक्स मेडली', 'साइबरनेटिक्स टुडे' और 'साइबरनेटिक्स ऑव लिविंग मैटर' जैसी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं यद्यपि अंतिम दोनों पुस्तकें इन विषयों पर सोवियत वैज्ञानिकों की रचनाओं के संग्रह मात्र हैं।

'रिलाइज योर पोटेन्शल' (मीर पब्लिशर्स, मास्को, 1987) के लेखन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए पेकेलिस ने पुस्तक के चतुर्थ रूसी संस्करण में लिखा है; "इस पुस्तक में मैंने इस नियम पर बल देने का प्रयास किया है—कि एक पुरुष या स्त्री वही होता है जैसा वह अपने आपको बनाता है। इसलिये पूरी पुस्तक में उन वैयक्तिक गुणों के विकसित करने और परिष्करण करने पर बल दिया गया है जिनसे व्यक्ति की योग्यताओं का पूर्ण विकास संभव है।"

पुस्तक को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय का सम्बन्ध 'जीनियस' अथवा 'प्रतिभा के श्रेष्ठतम स्तर' से है। यह भी एक आश्चर्य-जनक तथ्य है कि इन जीनियसों की संख्या सम्पूर्ण मानव जाति के इतिहास में 400 से अधिक नहीं रही।

परन्तु बाल मनोविज्ञान के अध्येता इसे अच्छी तरह जानते हैं कि प्रत्येक बालक दो वर्ष की आयु में कम से कम भाषा की दृष्टि से महान प्रतिभा प्रदर्शित करता है।

प्रतिभा को कुछ लोग वंशानुक्रम पर आधारित मानते हैं। कुछ लोग प्रतिभा के लिये 'मानसिक अनियमितताओं' को आवश्यक समझते हैं। 18वीं शताब्दी के एक दार्शनिक क्लाउड हेलवेटियस ने प्रतिभा को वंशानुक्रम से अलग स्वीकार किया और विकास की प्रक्रिया में सामाजिक प्रभावों को अधिक महत्त्वपूर्ण माना। परन्तु इस सम्बन्ध में लेखक का निष्कर्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है : "वास्तविकता यह है कि सभी

*प्रवक्ता (शिक्षा), ए० पी० एन० डिग्री कॉलेज, बस्ती—272001

सौंदर्यपूर्ण वस्तुओं की सर्जना में श्रमपूर्ण प्रयत्न और एकाग्रता की अपेक्षा होती है। धैर्य और अनवरत श्रम के अभाव में कोई भी व्यक्ति जीनियस की श्रेणी प्राप्त नहीं कर सकता।"

इसी खण्ड में आगे बाल-प्रतिभाओं और वृद्ध-प्रतिभावानों पर विचार किया गया है।

मोटार्ज की संगीत-क्षमता 3 वर्ष की वायु में अनुभव की गयी थी। पास्कल, लाइबनिज, और गास की गणितीय क्षमता बाल्यावस्था में दिखाई देने लगी थी। इसी प्रकार शरीर-वैज्ञानिक आन्द्रे विसप्लस, न्यूटन, जूल, हेल्महोल्ट्ज आदि वैज्ञानिक चिंतकों ने 28 वर्ष के पूर्व अपनी महत्त्वपूर्ण खोजें कर डाली थीं। परन्तु शोधकर्त्ताओं के अनुसार सबसे अधिक सर्जनात्मकता (25-30) के वय वर्ग और (40 —) के वय वर्ग में प्राप्त होती है। परिणाम स्पष्ट है—हमारी शक्तियाँ हमारी धारणा से कहीं अधिक कार्य संपादित कर सकती हैं।

इसी खण्ड में विशिष्ट स्मृति के उदाहरणों पर भी विचार किया गया है। जूलियस सीज़र और सिकन्दर को अपनी सेना के प्रत्येक सैनिक (लगभग 30,000) के नाम याद थे, लियोनार्ड यूंलर को 100 तक की संख्याओं के 6ठवीं घात के मान कंठस्थ थे। भारतीय उदाहरण शकुंतला देवी का है जो 23 अंकों की संख्या को 23 अंकों की संख्या से मानसिक गुणनफल प्राप्त कर लेती हैं। वोरिस्लाव गदजांस्की के सम्बन्ध में एक उदाहरण आश्चर्यचकित करने वाला है।

—बोरिस्लाव क्या तुम 348, 517, 368, 454, 361, 458, 872 का 22वां मूल (22nd-root) प्राप्त कर सकते हो?

एक मिनट के पश्चात् उत्तर आया

—आठ

—अब 538, 436, 517, 832, 435, 456, 582 का 31वां मूल निकालो

एक मिनट और लगा

—चार

पुस्तक का दूसरा अध्याय है 'आप अपनी योग्यताओं को प्रभावित कर सकते हैं'। यह अंश सिसरो के उस उद्धरण से प्रारम्भ होता है जिसमें कहा गया है, "प्रत्येक व्यक्ति अपने को अत्यन्त न्यून रूप में जानता है और अपने को जानना अत्यन्त कठिन है।"

पेकेलिस का मत है—"प्रत्येक सामान्य व्यक्ति में गुणों का एक विस्तारित क्षेत्र होता है जो सामाजिक परिस्थितियों में अपने को व्यक्त करते हैं" तथा "अपने को नियन्त्रित करने की कला सीखने के लिये अपने कार्यों को एक निश्चित योजना के अनुसार निर्देशित करने, नैतिक मानदण्डों के अनुसार उनका समंजन करने, ऐसी कार्य-प्रेरणाओं को दमित करने जो इन मानदण्डों के विरोधी हों और उद्देश्य प्राप्ति की बाधाओं को हटाने के कौशल पर अधिकार करना होता है।"

इस कार्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश है 'अवधान' क्योंकि यही एकाग्रता का मुख्य तत्व है "उचित समय पर उचित विषय पर ध्यान न केन्द्रित कर पाना अधिकांश व्यक्तियों का रोग है।"

यदि अवधान-कुशलताओं का प्रशिक्षण किया जा सके तो सामान्य एकाग्रता, दिशात्मक एकाग्रता और उद्देश्य-निर्देशित एकाग्रता में वृद्धि सम्भव है। इसके लिये ठीक से सुनना, ठीक से निरीक्षण करना आवश्यक है। ठीक से सुनने के लिये पेकेलिस के सुझाव हैं—एकाग्रता के अभ्यास, या टी० वी० का कार्यक्रम देख कर उसे सूक्ष्मताओं के साथ दुहराने का प्रयास, कार्य करते समय विकर्षकों को हटाना, विरोधी विचारों को भी सहन करना, अपने को आदेश देना और दूसरों की अच्छी तरह सुनने में सहायता करना। सुनते समय इन प्रश्नों का उत्तर खोजना सहायक हो सकता है "आखिर वक्ता का उद्देश्य क्या है?" "श्रोता के रूप में मेरा क्या उद्देश्य है?"

अवधान के पश्चात् पेकेलिस 'स्मृति के प्रशिक्षण' पर विचार करते हैं—

—दीर्घ-कालिक स्मृति के लिये सूचना पर एकाग्रता और उन्हें बार-बार दुहराना आवश्यक होता है।

—जो सूचनाएँ पूर्व सूचनाओं से जितने अनेक संबंधों में जोड़ दी जाती हैं वे उतनी अधिक सुरक्षित हो जाती हैं।

—स्मृति के तीन वर्ग हैं जो एक दूसरे से संबंधित रूप में कार्य करते हैं, वे हैं—प्रत्यक्षात्मक स्मृति (दृश्य, ध्वनि, गंध, स्वाद, गतिज), संवेगात्मक स्मृति और तार्किक-स्मृति। किसी व्यक्ति में इनमें से कुछ अधिक प्रभावशाली हो सकती हैं। स्मृति-प्रशिक्षण के लिए पेकेलिस ने कुछ अभ्यासों और सूचनाओं को स्मृति का भाग बनाने की लघुरीतियों (**Muemonics**) का उल्लेख भी किया है।

स्मृति के पश्चात् पेकेलिस स्वाध्याय की चर्चा करते हैं।

हम सूचना-विस्फोट (इन्फार्मेशन एक्सप्लोजन) की अवस्था में आ गये हैं, 1800 में प्रकाशित होने वाली 100 वैज्ञानिक पत्रिकाओं की संख्या आज 200,000 से कहीं अधिक है। केवल रसायन के क्षेत्र में 6000 प्रकाशन हैं और इनमें प्रतिदिन 2 की वृद्धि हो रही है।

विश्व के एक बड़े पुस्तकालय 'लेनिन पुस्तकालय' की पुस्तकों की आल्मारियों की कुल लम्बाई 350 किमी० है और इसमें 15 किमी० की प्रतिवर्ष वृद्धि हो जाती है। ऐसा है, सूचना का विस्फोट !

तब इस सूचना का आत्मीकरण व्यक्ति कैसे करे ?

पेकेलिस इसके लिये 'त्वरित अध्ययन' की चर्चा करते हैं। उनका उद्देश्य है कि एक व्यक्ति की 'अध्ययन क्षमता' इतनी होनी चाहिए कि वह 200 पृष्ठों की पुस्तक उसके सारे महत्वपूर्ण अंशों और तर्कों की समझ के साथ 3 घन्टों में पढ़ सके। इस अध्याय में एक महत्वपूर्ण चर्चा बहु-भाषाविदों की भी है। आज विश्व में 3000 से अधिक भाषाएँ व्यवहार की जाती हैं। इनमें 13 भाषाओं का उपयोग कुल मिलाकर 2 अरब से अधिक लोग करते हैं—भाषाओं का ज्ञान मानसिक क्षितिज के विस्तार का सर्वोत्कृष्ट साधन है।

ट्राय के उत्खनक हेनरिक श्लीमान को चौदह भाषाएँ आती थीं।

भारत में राहुल सांकृत्यायन छत्तीस भाषाएँ जानते थे।

कार्डिनल मेजाफान्ती 100 भाषाएँ जानते थे।

आर० एच० रस्क, जो हालैण्ड निवासी थे और पुश्किन के समकालीन थे, ने 230 भाषाएँ सीखीं, 28 भाषाओं के शब्दकोष तैयार किये।

परन्तु पेकेलिस के अनुसार किसी भाषा के सर्वाधिक प्रचलित शब्दों में 2000 शब्दों का ज्ञान और व्याकरण की समझ व्यक्ति को उस भाषा से जोड़ सकती है। पेकेलिस ने 10 सुझाव प्रस्तुत किये हैं जो नई भाषा सीखने में सहायता कर सकते हैं।

अब पेकेलिस व्याख्यान की ओर मुड़ते हैं—सुझाव है "प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क का मार्ग उसके हृदय से होकर जाता है।"

इस अध्याय के अन्त में पेकेलिस का निष्कर्ष महत्वपूर्ण है।

सूचना का उपलब्ध समुद्र आज हमें नवीन प्रविधियों और तकनीकों का कौशल सीखने की आवश्यकता स्पष्ट करता है।

तृतीय अध्याय 'कार्य-निर्देशिका' है।

इसका पहला भाग भोजन से संबंधित है। भार की अधिकता के साथ आयु के सम्बन्धों में तालिकाएँ हैं। सुझाव है—ऐसा भोजन लिया जाये जिसका कैलॉरी-मूल्य व्यक्ति की आयु, ऊँचाई, व्यवसाय आदि से तालमेल रखता हो और जिसमें सभी पोषक तत्व उपस्थित हों।

अगला भाग हमारे लिये शुद्ध वायु की उपयोगिता स्पष्ट करता है। सामान्य व्यक्ति एक बार में 500 घन सेमी० वायु ग्रहण करता है जो 2000 घन सेमी० तक ले जाई जा सकती है परन्तु भार उठाने वालों को 4000 घन सेमी०, फुटबाल-खिलाड़ियों को 4200 घन सेमी, धावकों को 4750 घन सेमी० और नौका चालकों को 5450 घन सेमी० की आवश्यकता होती है।

गहरी सांस न लेने पर फेफड़ों को रक्त के शोधन के लिये पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिल पाती जिससे शरीर के कोष शुद्ध रक्त का लाभ नहीं प्राप्त कर पाते।

गहरी श्वास-प्रश्वास से पाचन क्रिया भी ठीक होती है, स्नायु संस्थान को विश्राम भी मिलता है।

अब पेकेलिस शरीर को 'कठोर' बनाने की चर्चा करते हैं।

सबसे पहले 'सौना बाथ' की—पहले गर्म भाप में जितनी देर रहा जा सके उसके बाद बर्फीले पानी में डुबकी।

सबेरे ठंडे पानी से स्नान परन्तु उसके पूर्व व्यायाम—नियमित रूप से।

नंगे पैर टहलना।

सूर्य—स्नान परन्तु सावधानी से और सीमा में।

अब वृद्धावस्था के बारे में—

जैसे-जैसे प्रभावशाली औषधियों और जीवन की सुविधाओं का विकास होता जा रहा है, मनुष्य की औसत आयु बढ़ती जा रही है।

जेरान्टालाजी और जेरियाट्रिक्स विज्ञान की वे शाखाएँ हैं जो वृद्धावस्था से सम्बन्धित हैं। पेकेलिस के अनुसार "प्रकृति ने हमें एक दीर्घ और उपयोगी जीवन के लिये तैयार किया है। अब यह व्यक्ति पर है कि वह अपनी संभावनाओं को विकसित करता है अथवा नहीं।"

आखिर सर्जनात्मकता को कैसे बढ़ाया जा सकता है?

पेकेलिस का उत्तर चौंकाने वाला लग सकता है—गति और विचार, अनिद्रा की समाप्ति, निराशापूर्ण मन:स्थितियों की विदाई।

जी हाँ, गति महत्वपूर्ण है।

जो नियमित व्यायाम करते हैं, उन्हें डॉक्टरों की सहायता लेने की आवश्यकता कम पड़ती है। अरस्तू का कहना था—"पैदल चल कर उत्तेजित हुए शरीर में विचार जीवन्त हो जाते हैं।"

मायाकोव्स्की जब 'द क्लाउड इन पैन्ट्स' की रचना कर रहा था तो प्रतिदिन समुद्र के किनारे दस से बीस किलोमीटर चलता था।

मास्को विश्वविद्यालय के शरीर-विज्ञान विभाग के शोधों के अनुसार 'एक संतुलित नियमित शारीरिक क्रिया क्रियाशीलता की वृद्धि में सहायक होती है।' शारीरिक स्वास्थ्य जितना अच्छा होगा मानसिक क्रियाओं को करने की योग्यता उतनी अधिक होती है—ए साउन्ड माइन्ड इन ए साउन्ड बाडी।

जी हाँ, जीवन की धारा में साथ-साथ कुछ चक्र भी चलते रहते हैं। हमारी क्रियाओं का 40–50 प्रतिशत दैनिक-लय से चलता है। 11 बजे प्रातः, 5 बजे सायं, 10 बजे रात्रि हम निर्णय लेने की श्रेष्ठतम स्थिति में होते हैं। परन्तु पेकेलिस ने और बहुत सी बातों की चर्चा की है इस संदर्भ में। और फिर निद्रा, मीठी नींद, ताजगी देने वाली नींद—

नींद में कितनी समस्याओं के हल प्राप्त किये गये हैं—जी हाँ बेंजीन अणु की संरचना का चक्रीय स्वरूप कीकुले ने नींद में ही पाया था परन्तु अनिद्रा लम्बे तनाव का परिणाम है और पेकेलिस तनाव-रहित विश्राम की पूरी योजना प्रस्तुत करते हैं—भारतीय शवासन के अनुरूप प्रत्येक अंग में सचेतन तनावहीनता की अनुभूति का क्रम।

अब आती है बारी निराशापूर्ण मन:स्थितियों की—पेकेलिस इन मनस्थितियों से उबरने का एक सुझाव देते हैं–इन निराशापूर्ण अंधियारी मनस्थितियों को सप्रयत्न आशापूर्ण, प्रसन्न मनस्थितियों से स्थानापन्न किया जाये एक रूसी कहावत है "आनंद दुखहर्ता है, दुखी अवस्था घातक है" इसलिये आज के मनुष्य को दूसरे की मित्रता, सांत्वना और सहायता की उस समय अत्यंत आवश्यकता पड़ती है जब वह कष्ट में होता है। जब मन:स्थिति बुरी हो तो पहले उसका कारण खोजिये–अपने में दृढ़ता उत्पन्न कीजिये, प्रत्येक दुख को सहन करने की शक्ति। यह तभी संभव हो सकता है जब जीवन का नियंत्रण आप कर रहे हों।

कुछ अच्छे ईमानदार, निष्ठावान मित्र भी जीवन के लिये आवश्यक हैं।

"दुनिया में हर समस्या का समाधान है, मृत्यु को छोड़कर तब, जो व्यक्ति समस्याओं का हल संवेगात्मक रूप से प्राप्त करता है वह इसी तार्किक रूप से

प्राप्त हल की अपेक्षा शीघ्र प्राप्त करता है। एक संवेगात्मक हल विषय को अंतर्दृष्टि द्वारा समझने का प्रयास करके उसके विश्लेषण और संश्लेषण द्वारा प्राप्त किया जाता है। तार्किक निर्णय प्रक्रिया में प्रत्येक संभव परिवर्तनों पर ध्यान देते हुए उनकी तुलना की जाती है जिससे सर्वश्रेष्ट विकल्प प्राप्त किया जा सके। इससे निर्णय की प्रक्रिया में समय तो लगता ही है।"

इतिहास प्रमाण है कि महान पुरुषों में से अधिकांश जीवनपर्यन्त संघर्ष करते रहे। बाधाओं से जूझने में संकल्प-शक्ति का उपयोग करते रहे। जिन्हें शांत, संघर्षरहित जीवन का अवसर मिलता है बहुधा वे प्रतिभा और सर्जना के निम्न स्तरों पर ही रह जाते हैं, उनकी संभावनाएँ अपूर्ण ही रह जाती हैं।

लेकिन हमारी अधिकांश असफलताओं का कारण हमारा अपने ऊपर अविश्वास होता है, दूसरे शब्दों में अपनी शक्तियों और योग्यताओं पर अनास्था।

चरित्र क्या है? व्यक्ति की सिद्धांतों के अनुसार अपना जीवन निर्देशित कर पाने की योग्यता और आदमी को अपने संबंध में निष्पक्ष निर्णय लेने में सक्षम होना चाहिये—जो दोष दिखें उनके संबंध में कठोर निर्णय लेना चाहिये।

इसलिये हममें मात्र प्रश्न पूछने की ही नहीं, सच-सच उत्तर देने की, वह भी अपने बारे में, क्षमता होनी चाहिये।

आत्मविकास की प्रक्रिया में प्रतिदिन, प्रतिक्षण के व्यवहार और सिद्धांतों तथा विश्वासों में तालमेल जरूरी है।

यदि कोई व्यक्ति समाज को अपनी प्रतिभा का कुछ लाभ देना चाहता है तो उसे आत्म-विश्लेषण करना ही होगा।

अब महत्वाकांक्षा पर एक दृष्टि—

पास्कल के शब्दों में—"मनुष्य की सबसे बड़ी नीचता प्रसिद्धि के लिये प्रयत्न है। परन्तु यही उसकी श्रेष्ठता का सबसे बड़ा प्रमाण है। क्योंकि उसकी संपत्ति, स्वास्थ्य और सुविधाएँ उसे संतोष नहीं प्रदान कर पातीं।

सर्जनात्मकता का अध्ययन करने वाले मनोवैज्ञानिक, विशेषरूप से वैज्ञानिक सर्जनात्मकता के अध्येता महत्वाकांक्षा को प्रथम पंक्ति का कारक मानते हैं जो सर्जनशीलता को जाग्रत करता है।

उचित और स्वस्थ महत्वाकांक्षा व्यक्ति को और अधिक उपलब्धियों के लिये प्रेरित करती है।

पुस्तक का चौथा अध्याय है–सर्जनात्मक संसाधनों की खोज में। इस अध्याय का कार्य के प्रारंभिक तत्व मनुष्य और कम्प्यूटर, योग्यता की सीढ़ियों पर ऊपर और सामूहिक-प्रतिभा का सूत्र में विभाजित किया गया है—

कार्य के प्रारंभिक तत्व में पहली नजर कार्य करने के वातावरण पर डाली है पेकेलिस ने।

गोर्की ने कहा था "एक व्यक्ति जो कार्य करे उससे उसे प्यार करना चाहिये। तब श्रम, चाहे जितना अपरिष्कृत क्यों न हो—सर्जन की ऊंचाइयां छू लेता है।"

एर्गोनामिक्स (एर्गो=कार्य, नोमोस=नियम) नामक एक विज्ञान मनुष्य और उसके वातावरण की अंतर्क्रिया की जाँच करता है। मनुष्यों और मशीनों के संबन्ध का एक विशेष लक्षण है—

मशीनों के साथ काम करने में मनुष्य को अधिक एकाग्रता, त्वरित अनुक्रियाशीलता और प्रवीणता की आवश्यकता होती है।

जी हाँ, उत्पादकशीलता ऐसे साधारण तत्वों के परिष्करण से प्रभावित की जा सकती है जैसे–उचित स्थान पर लगा हुआ स्विच, रंगों और उनकी तीव्रताएँ, दीवार का चित्र, कमरे में रखा हुआ सामान इत्यादि।

मनुष्य और तकनीक की अंतर्क्रिया—उच्चतम प्रतिफल के लिये दोनों का एक दूसरे से तालमेल आवश्यक है।

80% वायुयान दुर्घटनाएँ चालक या ट्रैफिक कंट्रोलरों की त्रुटियों के कारण होती हैं, दूसरे शब्दों में मनुष्य और तकनीक की आवश्यकताओं में तालमेल न होने के कारण।

परन्तु यह तो सुनिश्चित होना ही चाहिये कि व्यक्ति क्या करना चाहता है। उसके पश्चात् प्राथमिकताओं का प्रश्न आता है। अब पूरे कार्य को छोटे-छोटे लक्ष्यों में विभाजित करके, निश्चित समयावधि में उन लक्ष्यों को प्राप्त किया जाना चाहिये—प्रत्येक कार्य-अंश के पश्चात् और प्रत्येक दिन के पश्चात् कार्य का लक्ष्य-सापेक्ष मूल्यांकन होना चाहिये।

कार्य पद्धति का एक आवश्यक अंग है—उचित स्थान पर उचित वस्तु, निश्चित समय पर निश्चित कार्य।

लेकिन सही विकल्प कैसे चुने जाएँ ?

पेकेलिस कहते हैं-शुरू में कोई विकल्प चुन कर प्रारंभ कीजिये—परिस्थिति का विश्लेषण कीजिये—त्रुटियाँ होंगी और धीरे-धीरे कम होती जाएँगी।

अगले पृष्ठों में पेकेलिस कम्प्यूटरों की कार्यपद्धति की ओर मुड़ते हैं—

मनुष्य संगणकों की तुलना में अधिक श्रेष्ठता प्रदर्शित करता है।

—धीमी ध्वनियों और निर्बल प्रकाश संकेतों की पहचान में,

—विभिन्न संकेत बिम्बों के प्रत्यक्षीकरण, व्याख्या और संगठन में

—नम्य प्रबंधकीय कार्यों में

—दीर्घकालिक सूचना संग्रह में

—अध्ययन द्वारा सूचना भंडार के अद्यतनीकरण में

—संप्रत्ययों के निर्माण में

और संगणक का श्रेष्ठत्व प्रदर्शित होता है

—संकेत के प्रति अनुक्रिया की गति में

—निश्चित क्रमपूर्ण कार्यों के संपादन में

—संघनित सूचना भंडारण में

—गणना की तीव्र गति में

—अनेक क्रियाओं को एकसाथ संपादित करने में।

वीनर के अनुसार "यंत्र के रूप में मनुष्य बहुत धीमा और अपूर्ण है। परंतु यंत्र-मानव रोबो के प्रणालीगत विशिष्टीकरण की दृष्टि से वह सार्वभौमिक है—आश्चर्यजनक रूप में।"

अब कम्प्यूटर से तकनीकी के आज के स्तर पर ऐसी भाषाओं का उपयोग होता है जिससे मनुष्य और मशीन सूचना की भागीदारी कर सकें।

कुछ भाषाएँ हैं—अलगोल (ALGOL), कोबोल (COBOL), फोरट्रान (FORTRAN), जोवियल (JOVIAL), लिस्प (LISP), अल्फा (ALFA), अल्कोपोल (ALCOPOL) इत्यादि।

जब कम्प्यूटर मानवीय भाषाओं में अंतक्रिया करने लगेगा तो यह मानवीय ध्वनियों का विश्लेषण अत्यधिक तीव्र गति से करेगा।

उस स्थिति की अपनी समस्याएँ होंगी।

परन्तु कम्प्यूटर हमारा सहायक है—बस !

वह समस्याएँ हल कर सकता है लेकिन अपने आप नहीं।

कृत्रिम बुद्धि मनुष्य की बुद्धि की सीमा से आगे नहीं जा सकती।

मनुष्य/कृत्रिम बुद्धि प्रणाली मनुष्य को बौद्धिक-संगठन के नवीन स्तर पर ले जाएगी।

प्रतिभाशालियों की आवश्यकता तब भी रहेगी। आविष्कार की पद्धति भी वही रहेगी-ज्ञान, खोज, तुलना और चयन।

अब सर्जन के लिए मस्तिष्क उद्वेलन (ब्रेन स्टार्मिंग) चाहिये।

बड़े कार्यों और बड़ी समस्याओं के लिए अनेक मस्तिष्कों की प्रतिभा का उपयोग।

जी हाँ–मानवीय प्रतिभा के सामूहिक उपयोग पर आधारित होगा—मानव जाति का भविष्य। □□

वीरभोग्या वसुन्धरा

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। परस्पर ज़र, ज़न और ज़मीन (सम्पत्ति, नारी, भूमि) पर अधिकार प्राप्त करने के निमित्त वह अपने शौर्य पर गर्व का अनुभव करता है। क्षात्र-धर्म सम्बन्धी सभी वीरताओं की कहानियाँ इसी प्रकार की हैं। पर एक वह भी वीरता है—भयंकर परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करना—दुरूह दुर्गम और अजेय स्थानों पर पहुँचना, उनकी खोज करना, और शनैःशनैः उनसे परिचय प्राप्त करके अपनी संस्कृति, सभ्यता और समाज का विकास करना।

एक समय था, जब संसार का सर्वप्रथम मानव हिमालय की तलैटियों में कहीं जन्मा, फिर शनैःशनैः सहस्रों वर्ष के संघर्ष के अनन्तर भू-भाग के अनेक स्थलों में पहुँचा। प्राचीन आदि आर्यों के सम्बन्ध में में ऐसी ही एक उक्ति मनुस्मृति की है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वयं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ॥

आर्यावर्त्त के आर्य मानव सृष्टि के विभिन्न भागों में ऐसे ही लक्ष्य से प्रभावित होकर अवश्य फैले होंगे। पर दन्तकथाओं के अतिरिक्त उनके इस प्रसार का कोई व्यवस्थित विवरण हमारे पास नहीं है, पृथिवी मात्र पर यातायात की जो आज सुविधायें हमें प्राप्त हैं, वह मुख्यतया एक नई प्रवृत्ति का परिणाम हैं, जो पिछली तीन शतियों में यूरोप में जन्मी और फलीभूत हुई।

आज हमें अफ्रीका महाद्वीप के एक-एक कोने से परिचय है, आज इस महाद्वीप की भूमि पर पचास-साठ समृद्ध साम्राज्यों का शासन है। आज हमारे हवाई जहाज़ महाद्वीप के एक कोने से लेकर दूरस्थ कोनों तक उड़ान लेते हैं, रेलें भी हैं, पानी के जहाज़ भी हैं, सड़कें भी हैं, पर दो तीन सौ वर्षों से पूर्व यह महाद्वीप हमारे लिए सर्वथा अपरिचित था।

जिन कर्मठ यूरोपियन व्यक्तियों ने अफ्रीका के निर्जन स्थानों का पता लगाया, उनका परिवीक्षण किया, उनकी लम्बी सूची है। इनका नाम इतिहास में अमर रहेगा। एक सूची इस प्रकार है—

सर एच० एम० स्टेनले—**Sir H. M. Stanley**
जेम्स ए० ग्राण्ट—**James A. Grant**
एमिन पाशा—**Emin Pasha (1840-1892)**
गॉन एच० स्पेके—**John H. Speke**
सर आर० एफ० बर्टन—**Sir R. F. Burton**
सर सेमुअल बेकर—**Sir Samuel Baker**
एफ० क्लेपरटन—**F. Clapperton (1778-1827)**
रिचार्ड लैण्डर—**Richard Lander (1805-1834)**
मुंगो पार्क—**Mungo Park (1771-1806)**
जेम्स ब्रूस—**James Bruce (1730-1794)**
रॉबर्ट मोफट—**Robert Moffat**
डेविड लिविंग्स्टन—**Daivd Livingstone (1813-1874)**

कहा जाता है कि एण्ड्रू बैटल (**Andrew Battel**), नाम का एक ब्रिटिश नाविक 18 वर्ष तक अफ्रीका में जंगली लोगों का बन्दी रहा, और जब वह अपने देश लौटा तो उसने अफ्रीका के नर-राक्षसों की कहानी बताई, किन्तु किसी ने उस पर विश्वास नहीं किया। उससे पहले कार्थेजिनिअन की हैनो (**Hanno the Carthoginian**) ने अफ्रीका के पश्चिमी समुद्र तट की परिक्रमा की थी और सर्वप्रथम उसने विशालकाय बन्दरों का नाम गोरिल्ला (**Gorilla**) रक्खा था—इस नाम से हम आज भी परिचित हैं। उसके 200 वर्ष बाद एक फ्रान्सीसी नाविक पॉल बेलोनी डु शैलू (**Pawl Belloni du Chaillu**) अफ्रीका से कुछ गोरिल्लों के शव लाया, पर उसकी

सचाई पर किसी को विश्वास नहीं हुआ। अफ्रीका में छोटे नाटे कद के पिग्मी (Pygmies) भी होते थे। इन बौने कद के मानवों की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। और पशुओं में थे—जिराफ, ओकापिस और बारहसिंघे हिरण और इसी प्रकार शुतुर्मुर्ग भी। इस विचित्र महाद्वीप की तरह-तरह की कहानियाँ सुनकर ही यूरोप के कुछ युवकों को उत्सुकता हुई, और वे खोज के लिए निकल पड़े। वास्को डि गामा ने तो अफ्रीका के समुद्री तटों की ही परिक्रमा की थी, और यही बात कोलम्बस की भी थी, जो भारत की खोज के लिए निकला और अमेरिका तक पहुँच गया।

अफ्रीका की विशाल मरु भूमि सहारा (Sahara) नाम से प्रसिद्ध है जो मोरोक्को (Morocco) और एल्जीरिआ (ALGERIA) के दक्षिण की ओर और त्रिपोली (TRIPOLY) और एजिप्ट (EGYPT) के पश्चिम की ओर बड़े विस्तार से फैली हुई है। कोई इस मरुभूमि को पार करने का साहस नहीं करता था और इसकी किम्बदन्तियाँ (भूत-प्रेत की) ही जनता में प्रसिद्ध थी।

अफ्रीका में जाने वाले दो प्रकार के दल अपनी विशेषता के लिए प्रसिद्ध थे—(क) पहला—ईसाई मिशनरी जो वहाँ के जंगलियों को ईसाई धर्म में दीक्षित करना चाहते थे, (ख) दूसरा—अफ्रीका के जंगली निवासियों को पशुओं के समान पकड़कर गुलाम बनाने वाले लोग, जो इन गुलामों को दूर-दूर तक बेचते थे। एबिसिनिआ के हबशी अरब देश में (और भारतवर्ष में भी) बेचे जाते थे। अरब के लोगों ने अफ्रीका के पूर्वी तट पर यह धन्धा जमा रक्खा था। जँज़ीबार का टापू गुलामों को पकड़ने और व्यापार करने के लिए प्रसिद्ध था। मैंने जँज़ीबार की अपनी 9 अगस्त से 12 अगस्त 1977 की यात्रा में वे स्थान अपनी आँखों से देखे जहाँ दास पकड़कर रक्खे जाते, बेचे जाते, व्यभिचार करके उन्हें मौत के घाट उतारा जाता और कमजोर गुलामों को बेदर्दी से समुद्र में फेंक दिया जाता था।

अरब के लोग ही गुलामों का व्यापार नहीं करते थे, स्पेन और पुर्तगाल के लोगों ने भी अफ्रीका में गुलामों को पकड़ने का धन्धा आरम्भ किया। पकड़ने वाले लोग इन गुलामों की भाषाओं से भी परिचित न थे। सत्रहवीं शती के अन्त तक स्पेन और पुर्तगाल वाले लोग प्रति वर्ष 10,000 गुलामों का व्यापार करते और उन्हें ब्रेजिल (दक्षिणी अमेरिका) भेजते। वहाँ खेतों में पशुओं की तरह इन्हें काम करना पड़ता था। हट्टा-कट्टा गुलाम भी सात वर्ष के भीतर मर जाता—सात वर्ष से अधिक कोई गुलाम जी नहीं पाता था। आज का सभ्य इंगलैण्ड भी इस व्यापार से नहीं बचा था। अमेरिका के स्वातन्त्र्य की घोषणा से पूर्व 30 लाख अफ्रीकी गुलाम अमेरिका पहुँच चुके थे। गुलामों को पानी के जहाज से अफ्रीका से अमेरिका भेजा जाता था। 30 लाख गुलाम तो जीवित अमेरिका पहुँचे थे पर ढाई लाख (250,000) गुलाम जहाज में ही बीमार पड़े, और रास्ते में ही मर गए। उनकी लाशों को एटलाण्टिक महासागर में निर्ममता से बहा दिया गया।

अफ्रीका के समुद्री तट के निकट से ही गुलाम पकड़े गए, और साथ ही साथ सोना, हीरा और हाथी दाँत की सम्पत्ति भी अमेरिका तक लायी गयी, पर अफ्रीका महाद्वीप के भीतरी भाग का क्या हाल है, उसका विस्तार कैसा है—इस विवरण का किसी को भी पता न था। महाद्वीप की नदियों और झीलों का भी ज्ञान बाहर के देशों को न था।

जेम्स ब्रूस का प्रयास

नील नदी (River Nile) प्रसिद्ध थी, पर यह नदी कहाँ से निकलती है, किस-किस मार्ग में बहती है; यह बात सर्वथा अज्ञात थी। नील नदी के उद्गम स्रोत को जानने का प्रथम प्रयास जेम्स ब्रूस (1730-1794) नामक एक साहसी युवक ने किया। ब्रूस स्कॉटलैंड के स्टर्लिंगशायर (Stirlingshire) में जमा था। इसका कार्यक्षेत्र इथियोपिया में रहा। इस प्रदेश के लोगों ने पहले तो ब्रूस के साथ मित्रता का व्यवहार किया, पर जब वह नील नदी के उद्गम की तलाश में आगे बढ़ा, तो वनैले ने उसके साथ छल कपट किया।

ब्रूस निराश न हुआ। वह व्यवहार कुशल था। उसने राजघराने की एक रुग्ण कन्या का सफल इलाज किया और उसे इस राजघराने की आत्मीयता प्राप्त हो गयी। ब्रूस को राजघराने से एक राजसी घोड़ा भेंट में मिला था, जो उसके आगे-आगे चलता (यह घोड़ा मानों उसके लिए शाही-पासपोर्ट हो), और कोई भी वनैला उसे न रोकता। अफ्रीका के इन वनैले या जंगलियों ने कभी कोई बन्दूक देखी नहीं थी। ब्रूस के पास एक बन्दूक थी, जिससे वह कभी-कभी चिड़ियों और पशुओं का शिकार करता। उसका यह काम भी मानो कोई चमत्कार हो, ऐसा समझा जाता था। लोग ब्रूस को जादूगर समझने लगे थे। खोजता-खोजता ब्रूस एक स्थान तक पहुँचा, और उसने इस स्थान को नील नदी का स्रोत घोषित किया, पर वस्तुतः यह हमारी यमुना के समान नील-वर्णा नदी का उद्गम स्थान था, जो नदी असली नील नदी की सबसे बड़ी सहायकधारा-मात्र थी। चार वर्ष परिश्रम करके ब्रूस स्कॉटलैण्ड वापस चला गया, और उसने अपनी यात्रा के रोचक विवरण पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी। पर स्मरण रखना चाहिए कि नील नदी के उद्गम को जानने का यह अपूर्ण-प्रयास मात्र था। लोगों ने ब्रूस के प्रयास की हँसी भी उड़ायी और उसे छली और चपटी कहा। पर अन्त में यह स्पष्ट हो गया, कि उसने जो कुछ भी लिखा था वह अक्षरशः सत्य था।

नाइगर नदी का पता लगाने वाला मुंगो पार्क

ब्रूस की नील नदी के उद्गम का पता लगाने के प्रयास ने कई युवकों को प्रेरणायें दीं। ब्रूस जिस समय एबीसिनिया में नील नदी के मार्ग की खोज कर रहा था, स्कॉटलैंड में उसी समय एक युवक मुंगो पार्क था। उसने शल्य चिकित्सा की शिक्षा-पायी थी। कैप्टन कुक का एक मित्र सर जॉसेफ बैंक्स (J. Banks) था। इसकी सहायता से मुंगो पार्क ने सुमात्रा द्वीप के लोगों की भाषा और वहाँ के रीति-रिवाज से परिचय प्राप्त किया। उस समय एक संस्था अंग्रेजों ने बनायी थी "अफ्रीकन एसोशियेशन ऑन दी गैम्बिआ"। मुंगो पार्क ने इस संस्था में नौकरी कर ली, गैम्बिश की भाषा भी सीखी। वहाँ एक नदी नाइगर (Niger) थी। मुंगोपार्क इस नदी की गतिविधि के अध्ययन के लिए निकल पड़ा। एक अफ्रीकी वनैले ने मुंगो पार्क को पकड़ लिया, पर किसी प्रकार जान छुड़ाकर मुंगो पार्क भागा। उसने नाइगर नदी की सच्ची खोज कर डाली। समझा जाता था कि नाइगर नदी पश्चिम की ओर बहती है, पर वस्तुतः यह पूर्व की ओर बहती थी। मुंगो पार्क नाइगर नदी के एक पार से दूसरे पार तक जाना चाहता था, पर वहाँ के वनैलों ने उसे पार नहीं जाने दिया—यह कहकर कि "क्या तुम्हारे देश में नदियाँ नहीं हैं ?—इस हमारी नदी को पार करने से तुम्हें क्या मिलेगा ? बात एक सी है—जैसे तुमने अपनी नदी पार की, उसी प्रकार इस नाइगर को भी पार करना है।"

नाइगर नदी के स्रोत को जानने के लिए मुंगो पार्क आगे बढ़ा—पैर में छाले पड़ गए थे—बीमार और कमज़ोर हो गया। पर उसने अपनी यात्रा के विवरणों को बड़ी सावधानी से सँभाल कर रक्खा—मानों वे सोना या हीरा हों। मार्ग में उसे एक दास-विक्रय-व्यापारी मिला। उसकी सहायता से मुंगो पार्क समुद्र तट तक पहुँचा। वहाँ से वह फिर स्कॉटलैंड पहुँचाया गया। स्वस्थ्य होने पर उसने विवाह किया और सुख का जीवन बिताने लगा। कुछ दिनों बाद उसे फिर अफ्रीका जाने की प्रेरणा मिली—वह अपनी पुरानी खोज को पूरा करने के लिए फिर निकल पड़ा। वह जानना चाहता था कि नाइगर नदी कहाँ समाप्त होती है। उसके 45 साथियों में केवल 7 साथी बचे थे जो नाइगर नदी के मुहाने तक पहुँच पाये। सैन-सैंडिम (Sansanding) स्थान से उसने अपनी यात्रा के समस्त उपलब्ध विवरण इंगलैंड भेज दिये पर वह स्वयं इंगलैंड न जा पाया—एक पत्र में स्पष्ट लिखा था—"मरना मुझे स्वीकार है, पर जब तक नाइगर नदी के अन्तिम मुहाने तक नहीं पहुँचूंगा, पीछे नहीं लौटूंगा। इस विकट प्रयास में उसने अपने प्राण गँवा दिये। कोई नहीं जानता कि मुंगो पार्क को किसी ने मार डाला, या वह नदी में डूब गया। सन्

1806 में उसका बलिदान हो गया—इस समय उसकी आयु 35 वर्ष की थी।

अज्ञात अफ्रीका सम्बन्धी जीवट की कहानियों के प्रथम चरण का यह इतिहास है। यूरोप के लोगों ने नाइगर नदी और टिम्बकटू (Timbuctoo) की ख्याति सुन रखी थी। उस ख्याति के आधार पर ही कुछ वीर युवक खोज के लिए निकल पड़े। धीरे-धीरे उन्हें इस महाद्वीप के सम्बन्ध में बहुत कुछ पता चलने लगा। इन लोगों ने ट्रिपोली (Tripoli) के दक्षिण भाग से अफ्रीका में प्रवेश करना प्रारम्भ किया था। इस दूसरे चरण में जो विख्यात व्यक्ति यशस्वी हुए वे रिट्शे (Ritche), लायन्स (Lyons), औण्डल (Oundle), डेनहेम (Denham), क्लेपरटन (Clapperton) और लैण्डर (Lander) थे। इन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाकर परिवीक्षण (खोज) का काम किया।

क्लेपरटन का प्रयास

क्लेपरटन बड़ा उत्साही युवक था (जन्म 1788 ई०)। इसका जन्म निम्नस्तर के परिवार में हुआ था, पर धीरे-धीरे यह जल-सेना में उच्च पद पर पहुँच गया। इसने अफ्रीका की दो यात्रायें कीं और अन्त में चैड (Chad) झील तक पहुँच गया (चैड प्रदेश लीबिआ के दक्षिण में, एवं नाइगर और सूडान के बीच में है। यहाँ उसे एक नगर का पता चला जिसमें 60,000 व्यक्ति रहते थे जो अंग्रेजी माल का व्यापार करते थे, और जिनकी रुचि प्राचीन साहित्य के पठन-पाठन में थी (अरबी अनुवादों के माध्यम से)। क्लेपरटन इस प्रदेश में सोकोटो (Sokoto) की प्रसिद्ध नगरी में रहने लगा (यह नगरी उत्तरी नाइजीरिआ में है)। यहीं क्लेपरटन की मृत्यु 1827 ई० में हो गयी। उससे पूर्व उसके अन्य साथियों की भी यहीं मृत्यु हुई थी।

क्लेपरटन का एक विशेष सेवक था—रिचार्ड-लैण्डर (Richard Lander) [जन्म 1805]। ट्रूरो (Truro) के साकोटो में क्लेपरटन की मृत्यु के समय उसकी आयु केवल 20 वर्ष की थी। वह क्लेपरटन के लिखित समस्त विवरणों की प्रति इंग्लैण्ड ले आया। उसे क्लेपरटन के अधूरे कार्य को पूरा करने का आदेश भी मिला। इसके साथ इसका अनुज जॉन (John) भी अफ्रीका के लिए तैयार हो गया। इन दोनों युवकों ने नाइगर नदी के मुहाने का पता लगाने का कार्य पूरा किया। इन दोनों ने निश्चय पूर्वक सिद्ध कर दिया कि नाइगर नदी बाइट ऑव बेनिन (Bight of Benin) में जाकर अन्त होती है। अग्रज लैण्डर ने एक तीसरी यात्रा भी प्रारम्भ की, पर जंगली लोगों ने 1834 में उसकी हत्या कर दी।

अफ्रीका के रहस्यों का धीरे-धीरे उद्घाटन—ईसाई मिशनरी मोफट

यूरोप के लोग अब बड़े उत्साह से अफ्रीका के विषय में अधिकाधिक जानने के लिए निकल पड़े। किसी ने उत्तर से प्रवेश किया, तो किसी ने दक्षिण से, और किसी ने पूर्व से। फ्रान्सीसियों ने 1830 में एलजीरिआ (Algeria) को जीतकर उसमें अपना उपनिवेश बनाया। प्रारम्भ में जहाँ डच लोग पहुँचे थे, उन पर इंग्लैण्ड के लोगों ने कब्जा कर लिया। यह दो उपनिवेश जब बन गये, तो खोज करने वालों का काम बहुत कुछ आसान हो गया। ईसाईयों ने ईसाईयत का प्रचार भी वनैलों में उत्साह और साहस के साथ किया। यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि गोरे विदेशियों की संख्या बहुत कम थी, और काले मूल निवासियों की संख्या लाखों में थी। एशिया से आये हुए श्यामवर्णी लोग भी कम ही थे। मूल निवासी गोरे यूरोपियनों के घोर विरोधी थे—गोरों के व्यापार को यह खुली लूट मानते थे, और काले मूलनिवासियों को ये गोरे लोग निर्ममता से मारने में भी नहीं चूकते थे। गोरों के प्रति इस प्रकार के अविश्वास का वातावरण अफ्रीका भर में फैला हुआ था।

एशिया के मार्ग से अफ्रीका में आने वाले गोरों और श्यामवर्णों (भूरे मनुष्य—गेहुँआ रंग के) व्यक्तियों की संख्या बहुत कम थी। सबसे विख्यात ब्रिटिश मिशनरी जो अफ्रीका पहुँचा वह राबर्ट मोफट (Robert Moffat) था। वह दक्षिण अफ्रीका के

केप-टाउन से उत्तर की ओर चला। उसे दक्षिण अफीका की वर्णभेद वाली राजनीति से कुछ लेना-देना न था—जंगली जातियों के व्यक्तियों की सेवा करके मोफट उन्हें ईसाई धर्म का सन्देश देना चाहता था। मोफट विशाल नामाक्वा लैण्ड (Great Namaqua land) तक गया—कुरुमान (Kuruman) में बस गया और वहाँ ईसाई धर्म के प्रचार का आश्रम बनाया।

डेविड लिविंग्सटन का त्यागमय जीवन

मोफट की इस सफलता का समाचार इंग्लैण्ड पहुँचा इस समाचार ने अनेक-युवकों को प्रोत्साहित किया। इन युवकों में से ही एक युवक डेविड लिविंग्सटन (David Livingston) था—वह गरीब परिवार का था, और स्काटलैंड के एक सूती कारखाने में कार्य करता था। ग्लासगो के निकट ब्लैण्टायर (Blantyre) गाँव में वह जन्मा था। वह कारखाने में कार्य करते समय भी धार्मिक साहित्य पढ़ा करता था। जनता की सेवा करना उसके जीवन का लक्ष्य बन गया। वह चाहता था कि जैसा काम मोफट ने अफीका में किया है, वैसा ही वह चीन में करे। पर उन्हीं दिनों चीन में लड़ाई छिड़ गयी और लिविंग्सटन को चीन जाने का विचार त्यागना पड़ा। उसने मोफट के साथ काम करने की बात स्वीकार की। 1841 में वह चिकित्सक, मिशनरी और गवेषक के रूप में अफीका आ गया। इस समय उसकी आयु केवल 28 वर्ष की थी।

अफ्रीका के अज्ञात स्थलों की गवेषणा के इतिहास में एक नया चरण आरम्भ हुआ। लिविंग्सटन ने मेरी मोफट नामक सुन्दर कन्या से विवाह कर लिया। दक्षिण अफ्रीका में उस समय बोअरों (डच निवासियों) का शासन था. वे वहाँ के काले हबशियों से घृणा करते थे। उनकी वर्णभेद की नीति आज भी चर्चा का विषय बनी हुई है। इन बोअरों को लिविंग्सटन के समान पादरियों का काम कभी भी अच्छा नहीं लगा। मोफट के निवास स्थल के उत्तर की ओर लिविंग्सटन चल पड़ा; और खोज करते-करते उसे एक झील मिली, जिसका नाम लेकङ्गामी (Lake Ngami) है। लिविंग्सटन के मन में एक बात उठी—अफ्रीका महाद्वीप को पश्चिमी किनारे से पूर्वी किनारे तक आर-पार किया जाय (अर्थात् यात्रा एटलाण्टिक महासागर से आरम्भ करने की और महाद्वीप के भीतर ही भीतर चल कर हिन्द महासागर तक पहुँचने की)। युवक ने संकल्प ले लिया—दोनों समुद्री तटों के बीच में विकट जंगल थे, मार्ग दुरुह, जंगली जानवरों का भय, और वनैलों की राक्षसी—प्रवृत्तियों का जोखम दृश्य अलग। इस संकल्प को लिविंग्सटन ने पूरा कर ही डाला—आर-पार जाने में 4 वर्ष लगे। लिविंग्सटन पहला युवक था, जिसने इस कार्य में सफलता प्राप्त की।

लिविंग्सटन का बनैले मनुष्यों के प्रति व्यवहार इतना मधुर था, कि वे इसके मित्र बन गए, जो काम युद्ध की सेना भी न कर पाती, वह लिविंग्सटन की सद्भावनाओं ने कर दिखाया। लिविंग्सटन ने जिस अद्भूत और नये दृश्य का अपनी इस गवेषणा में परिचय प्राप्त किया वह संसार का सबसे बड़ा जल-प्रपात है जिसे विक्टोरिया फॉल (Victoria Falls) कहते हैं। यह प्रपात जैम्बेसी (Zambesi) सरिता के ऊपर से नीचे गिरने का हैं। यू०एस०ए० (अमेरिका) और कनाडा देशों के संगम पर जो न्यागरा-प्रपात (Niagara) विश्वविख्यात है उससे भी बड़ा यह विक्टोरिया प्रपात है। 1976 की अपनी जैम्बिया की यात्रा में मैंने (30 अप्रैल 1976 को) यह प्रपात देखा। इस प्रपात की चौड़ाई लगभग 1 मील होगी। 300 फुट ऊपर से यह प्रपात गिरता है। जिस नगर में यह संसार का सबसे बड़ा प्रपात है, उसका नाम ही लिविंग्सटन पड़ गया है। अमेरिका-केनाडा का न्यागरा फॉल्स मैने 1970 ई० में पहली बार देखा था। और दूसरी बार स्वर्गीय श्री प्रकाशवीर शास्त्री के साथ 3 अक्टूबर 1976 को देखा। न्याग्रा प्रपात की सारी शोभा यू० एस० ए० और केनाडा के तकनीकी वैभव के कारण है। जैम्बिआ (Zambia) और जिम्बावे (Zimbawe) राष्ट्र (जो पहले पूर्वी और

दक्षिणी रोडेशिया कहलाते थे, और अब कुछ वर्षों से ही स्वतन्त्र हुए हैं) कभी समृद्ध हो गए तो विक्टोरिया-प्रपात से इतनी विद्युत् ऊर्जा प्राप्त हो जायेगी जिसका अनुमान न्याग्रा प्रपात वालों को भी नहीं है। शायद कभी वह दिन आवे जब विक्टोरिया फाल्स को न्याग्रा फाल्स से भी अधिक मान प्राप्त हो, और वहाँ की रौनक यात्रियों के लिए महान् आकर्षण हो।

विक्टोरिया प्रपात की खोज के बाद लिविंग्सटन इंगलैण्ड लौटा, और थोड़े समय के बाद फिर वह अपने काम पर अफ्रीका चल पड़ा। उसके जीवन के कई लक्ष्य थे। अफ्रीकी लोगों को दास बनाकर बेचा जाता था—इस दासता से उन्हें मुक्ति दिलाना। अफ्रीका का कोई स्थान अज्ञात और सुनसान न रह जाय सबका पता यूरोपियनों को हो— वे इस महाद्वीप में इन्सानियत से बसें—और अफ्रीका की सभ्यता और संस्कृति का विकास हो। इन लक्ष्यों की पूर्ति का काम आसान न था। 1862 में उसकी पत्नी की मृत्यु हो गयी। अफ्रीका में विषैला वातावरण था—तरह-तरह की बीमारियाँ थीं और बीमारियों के भयंकर कीटाणु। इस महाद्वीप को बसने योग्य स्वच्छ बनाना आसान काम न था।

पाँच वर्ष तक लिविंग्सटन नयी झीलों की गवेषणाओं में लगा रहा–शिरवा (Shirwa) झील, न्यासा (Nyasa) झील, जेम्बेसी नदी के मार्ग की गवेषणा, और इसी प्रकार शिरे (Shire) और रोवुमा (Rovuma) नदियों की गवेषणा। उसकी बम्बई को एक स्टीमर भी भेजने की योजना थी, उस मार्ग पर जिसका वास्कोडिगामा ने निदेशन किया था।

लिविंग्स्टन कुछ दिनों विश्राम के लिए 1864 में फिर इंगलैंड गया। 1865 में वह अंतिम बार अफ्रीका आया—इसके बाद तो उसकी लाश ही इंगलैंड पहुँची थी—वह दुबारा जीवित इंगलैंड न पहुँचा। जनवरी 1966 में वह जैंजीबार गया। अब फिर वह अफ्रीका के भीतरी भाग की गवेषणा करने में जुट गया—मार्ग दुर्गम और अजेय थे—भयंकर रूप से वहाँ बीमार पड़ गया। अरब देश के दासों के व्यापारी भी उसके लिए संकट थे। दो वर्ष के परिश्रम के अनन्तर उसने दो नई झीलों का पता लगाया - लेक म्वेरु (Mweru) और लेक बंगव्यूलू (Bangweulu)। इस गवेषणा में वह कोंगो (Congo) भी पहुँच गया जो अन्वेषकों के लिए अद्‌भुत रहस्य था। कोंगो में जब वह पहुँचा तो उसे पता न था कि जिस भूमि पर वह खड़ा है, वह कोंगो ही है। कोंगो नदी को उसने नील नदी समझ रक्खा था।

लिविंग्सटन इस समय बहुत कमजोर पड़ गया था—उसे न तो उचित और पर्याप्त भोजन ही मिलता था, और न उचित दवायें ही। उसने आगे बढ़ना बन्द कर दिया। यह स्थान उजीजी (Ujiji) था। लिविंग्स्टन कहाँ भूला-भटका पड़ा है, किसी को पता न था। एक व्यक्ति भोजन और दवाओं के साथ उसकी खोज में भेजा गया। जब वह कुछ अच्छा हो गया, तो फिर खोज कार्य के लिए चल दिया—विकट साहसी व्यक्ति था। अब उसे अपनी अन्तिम बीमारी से सामना करना पड़ा। एक स्थान इलाला (Ilala) है, वहाँ भयंकर रूप से बीमार पड़ा। उसने अपने साथियों से कहा—"मेरे लिए झोपड़ी तैयार करो जिसमें मैं मर सकूँ। मुझे ठंडक बहुत लग रही है—झोपड़ी में अच्छी तरह घास-फूस बिछा दो, जिससे कुछ गरमी पा सकूँ। साथियों ने झोपड़ी तैयार कर दी, और लिविंग्स्टन को उसमें छोड़ दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल देखने में आया, कि वह अपनी शय्या के पास झुका हुआ पड़ा है—शरीर ठण्डा हो गया था—इस प्रकार लिविंग्स्टन का प्राणान्त हो गया।

लिविंग्सटन की इच्छा थी कि उसका शव इंग्लैण्ड में दफनाया जाय। यह बात उसके साथी जानते थे। वे उसके शरीर को कन्धों पर ढोकर जैंजीबार ले गए—कई सौ मील की यह यात्रा थी। मार्ग के वनवासी मिशनरी के शव का खुला ले जाना अपने लिए अशुभ मानते थे, इसलिए उन्हें झुठलाने के लिए एक और बडल तैयार किया, और लोगों को बताया गया कि इस बंडल में शव है, और उस झूठे बंडल को उन्होंने दफना दिया। लिविंग्स्टन का शव दूसरे एक

बंडल में छिपाकर रख दिया गया था। इस प्रकार छिपा चोरी से लिविंग्स्टन का असली शव जँज़ीबार पहुँचा। वहाँ से शव इंग्लैंड लाया गया, और सम्मान के साथ अप्रैल 1874 को वेस्टमिनिस्टर एबे में दफ़नाया गया।

लिविंग्स्टन और स्टैनले की मैत्री

बहुत दिनों तक इंगलैण्ड वालों को पता ही न चला कि लिविंग्स्टन कहाँ है, जीवित या मृत। यह बात लिविंग्स्टन की मृत्यु के पूर्व की है। उसे ढूँढने के लिए उन्होंने एक मिशनरी को भेजा, जिसका नाम हेनरी मॉर्टन स्टेनले (Henry Morton Stanley) था। प्रारम्भ में स्टेनले बहुत गरीब था। वह वेल्स (Wales) के एक छोटे से नगर में पैदा हुआ था। उसका असली नाम रॉलैण्ड्स (Rowlands) था। वह वेल्स से अमेरिका भेजा गया था और वहीं उसने अपना नाम बदलकर स्टैनले कर लिया। समाचार-पत्रों का संचालन करने वाली एक संस्था ने अपनी ओर से लिविंग्स्टन का पता लगाने के लिए स्टैनले को अफ्रीका भेजा, और इस कार्य के लिए प्रचुर धन की व्यवस्था की। जनवरी 1871 में स्टैनले लिविंग्स्टन की खोज के लिए पानी के जहाज से जँजीबार की ओर चला। साथ में स्टैनले ने प्रचुर खाने पीने का सामान भी अपने पास रक्खा। खोजता-खोजता वह उजीजी (Ujiji) पहुंचा, जहाँ पर थका-माँदा बीमार लिविंग्स्टन मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था। पाठक स्वयं अनुमान करेंगे, कि उन दोनों के प्रथम मिलन का दृश्य कितना भावुक रहा होगा। लिविंग्स्टन को जीवित देखकर स्टैनले का गला भर आया—मुँह से कठिनता से शब्द निकले—"क्या तुम ही लिविंग्स्टन हो!" लिविंग्स्टन के चेहरे पर हलकी सी मुस्कान आयी। यह मुस्कान ही स्टैनले के प्रश्न का मौन उत्तर थी। इसके बाद तो लिविंग्स्टन और स्टैनले गाढ़े मित्र बन गए। जीवित लिविंग्स्टन का समाचार संसार के समस्त अखबारों में मोटे-मोटे अक्षरों में छपा।

खा-पीकर लिविंग्स्टन एक बार फिर स्वस्थ हो गया। वह और स्टैनले अफ्रीका की खोज के काम में फिर जुट गए। स्टैनले ने टैंगानिका झील के चक्कर लगाये। उन्होंने उस मुहाने का भी पता लगाया, जहाँ पर कौंगो नदी अटलाण्टिक महासागर से मिलती है। स्टैनले को एमिनपाशा की सुरक्षा का भार भी 1886 सौंपा गया। जिस काम के लिए वह एक बार फिर अफ्रीका आया। काम में सफलता तो मिली, पर इस समय ऐसी दुर्घटना हो गयी जिसने अनेक मनुष्यों का प्राणान्त कर दिया।

एमिनपाशा कौन था?

यह व्यक्ति वस्तुतः सिलेशिआ (Silesia) का एक यहूदी था जिसका असली नाम एडवर्ड श्नित्ज़र (Edwerd Sehnitzer) था। यह 1840 में जन्मा था। पेशे से वह चिकित्सक था। उसने तुर्की वेशभूषा और तुर्की धर्म अपना लिया था। वह इजिप्ट पहुँचा, वहाँ उसकी नियुक्ति अच्छे खासे ऊँचे पद पर हो गयी थी। जनरल गॉर्डन ने अफ्रीका के इक्वेटरी प्रदेश का उसे गवर्नर बना दिया था। यह व्यक्ति पूरे ग्यारह वर्ष हबशियों के बीच में गोरांग विद्वान के रूप में रहा। उसने अफ्रीका की भाषाओं का अध्ययन किया, और वनवासियों के राक्षसी आचार-विचारों का अनुशीलन किया। जिन प्रदेशों में एमिनपाशा गया वहाँ के भूगोल, इतिहास, वनस्पति, जीव-जन्तु, ऋतु-शास्त्र—सभी का वैज्ञानिक पद्धति पर उसने अध्ययन किया। संसार में वह अपने विद्या-प्रेम के कारण यशस्वी बना। पर दासों का व्यापार करने वाला दल एमिनपाशा का घोर शत्रु था।

इस विरोधी दल ने एमिनपाशा को बहुत सताया। बहुत समय तक सभ्य-जगत् को पता भी न चला कि एमिनपाशा कहाँ है—जीवित या मृत। इसीलिए स्टैनले को उसकी सुरक्षा का काम सौंपा गया था। अफ्रीका में कार्य करना संकट का काम था। एक बार फिर एमिनपाशा अफ्रीका लौटा पर सन् 1892 में दास-व्यापारियों ने उसे घेरा और क्रूरता से एमिनपाशा की हत्या कर दी। स्टैनले द्वारा एमिनपाशा की सुरक्षा होने के तीन वर्ष बाद की यह घटना है।

सर रिचार्ड फ्रान्सिस बर्टन (Sir Richard Francis Burton) और जॉन हैनिंग स्पेके (John Hanning Speke)

अफ्रीका के गवेषकों की लम्बी सूची में बर्टन और स्पेके के नाम सदा यशस्वी रहेंगे। इंग्लैण्ड की रॉयल जिओग्रेफिकल सोसायटी के पास इन दोनों की सेवाओं की विशाल सामग्री है। 1856 में इस सोसायटी ने इन दोनों को यह काम सौंपा कि नील नदी वस्तुत: कहाँ से निकली है, इस विषय पर अन्तिम और यथार्थ निर्णय दें। दो वर्ष के घोर परिश्रम से उन्हें टेंगानिका (Tanganyika) झील का पता चला। पहले तो दोनों ने मिलकर काम किया, पर बाद को दोनों जब अलग-अलग थे तब स्पेक का ध्यान विक्टोरिया न्यान्जा झील (Lake Victoria Nyanza) की ओर गया। मतभेद बढ़ जाने के कारण बर्टन ने स्पेके का साथ छोड़ दिया था। स्पेके ने अपने साथ जेम्स ऑगस्टस ग्राण्ट (James Augustus Grant) को लिया, और दोनों मिलकर इस निर्णय पर पहुँचे कि लेकविक्टोरिया न्यान्जा ही नील नदी का आदि स्रोत है।

संयोग कि बात है कि इसी समय अफ्रीकी गवेषकों में प्रख्यात सर सैमुअल बेकर (Samuel Baker) अपनी भावी पत्नी के साथ (जो हंगेरी प्रदेश की सुन्दर भद्र महिला थीं) अफ्रीका के रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए निकले हुए थे। जिस समय वे अफ्रीका की धरती पर पहुँचे, उन्हें लौटते हुए ग्राण्ट और स्पेके मिले। इन दोनों ने उन्हें नील नदी के उद्‌गम का अन्तिम निर्णय सुनाया। यह समाचार सुनकर बेकर और उनकी संगिनी महिला भी रहस्यों के उद्‌घाटन के लिए चल दीं। उन्होंने ग्रामवासियों से दूसरे एक आन्तरिक समुद्र (एक प्रकार की झील) की बात सुनी जिसका नाम सर सैमुअल ने एलबर्ट न्यान्जा (Albert Nyanza) रख दिया। यह स्पष्ट है कि नीलनदी का प्रधान स्रोत तो विक्टोरिया न्यान्जा झील है, पर नील नदी यहाँ से निकल कर आगे चलकर एलबर्ट न्यान्जा में गिरती है। वह फिर इस झील से निकलकर आगे बढ़ती है। अत: नील नदी का आदि स्रोत विक्टोरिया न्यान्जा सिद्ध हुआ और दूसरा उद्‌गम एलबर्ट न्यान्जा। यह रहस्य बड़े महत्व का माना गया।

मैंने अपनी 1971 की यात्रा में विक्टोरिया न्यान्जा झील का वह स्थान देखा जो जिन्जा (Jinja) नगर के पास है, और जहाँ से नील नदी निकलती है। जिन्जा में एक अच्छा आर्य समाज मन्दिर भी है, जो उन दिनों भी वीरान पड़ा हुआ था। एक समय था, जब जिन्जा, टोरोरो और विक्टोरिया न्यान्जा के इस पार बसा किसूमू (Kisumu) नगरों में (जो केन्या में है) आर्यसमाज का अच्छा कार्य होता था। जिंजा और टोरोरो नगरियाँ उगाण्डा का भाग हैं। 1971 के बाद उगाण्डा की केन्या से मैत्री खतम हो गयी और यहाँ के भारतीय निवासी केनेडा आदि देशों में भाग गए। (ईदी अमीन की राक्षसी प्रवृत्तियों ने उगाण्डा की समृद्धि समाप्त कर दी)।

सर सैमुअल बेकर और उसकी सुन्दर संगिनी (जिसके साथ बेकर का विवाह हो गया) दोनों ने सूडान में दास-प्रथा के उन्मूलन में बहुत काम किया। यह काम भी बड़े जोखम का था, क्योंकि दासों के व्यापारी कभी यह नहीं चाहते थे, कि इस व्यापार में किसी भी दिशा से कोई बाधा पहुँचे। दास-प्रथा की समाप्ति का अपना पृथक् करुण-इतिहास है।

पिछले पचास वर्षों का इतिहास उपनिवेशों की समाप्ति का इतिहास है। आज तो अफ्रीका महाद्वीप का कोई अंचल ऐसा नहीं है जो अज्ञात हो, और जहाँ पर हवाई जहाज, बसें, रेलें, और समुद्री यान आते-जाते न हों। शासन में कहीं तानाशाही है, कहीं लोकतंत्र है और तरह-तरह के शासकीय विवाद हैं। पर इस दृष्टि से तो समस्त भूमण्डल ही त्रस्त है।

वर्तमान अफ्रीका

अफ्रीका विशाल महाद्वीप है—8000 किलोमीटर उत्तर से दक्षिण तक और पश्चिम से पूर्व तक भी लगभग इतना ही। भूमध्य रेखा (0°) केन्या में से होकर जाती है—उत्तर में अक्षांश 30°N और दक्षिण में भी लगभग 30°S तक। ग्रीनिच देशान्तर रेखा
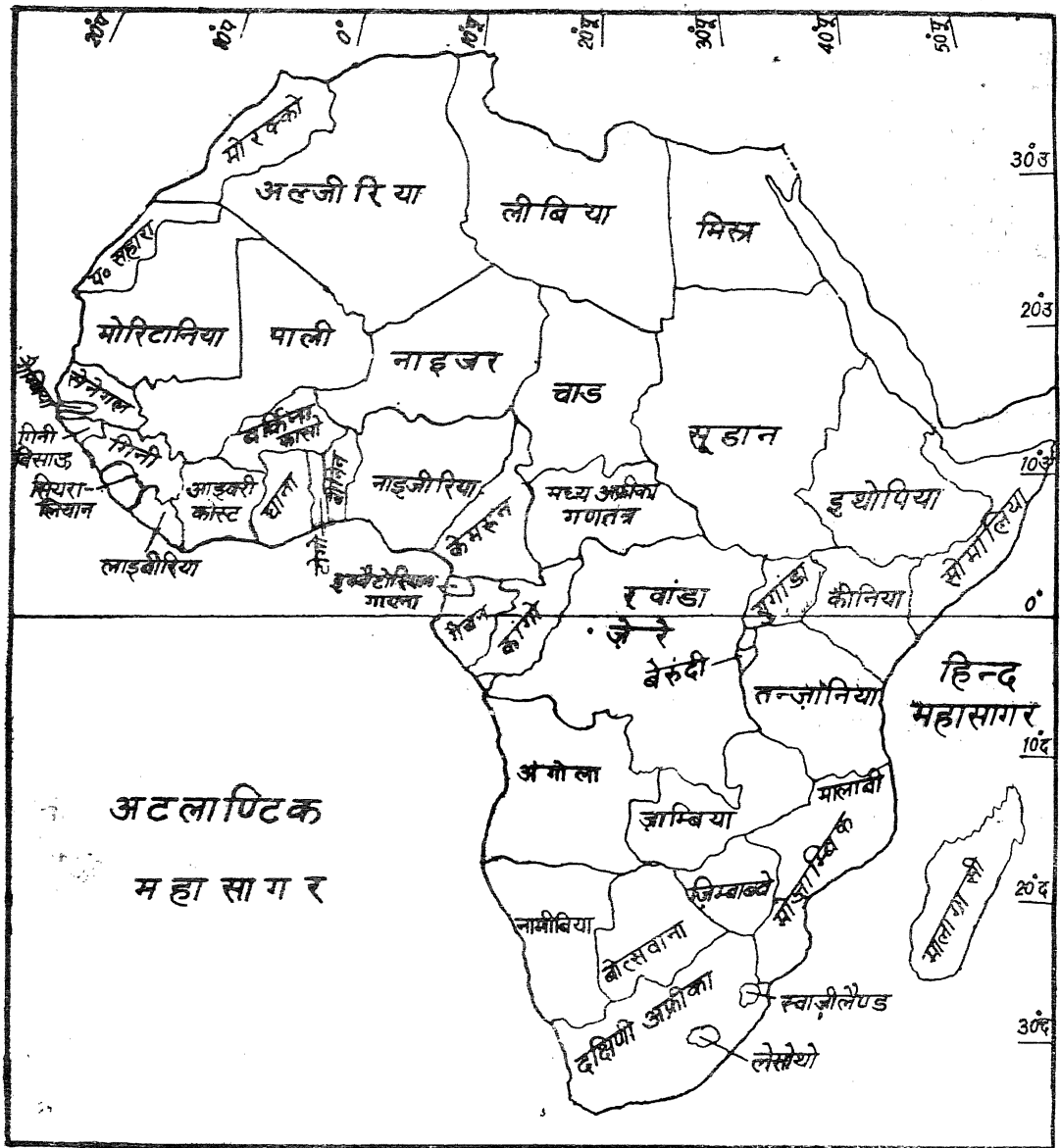
एलजीरिया, माली और घाना देशों में होकर जाती है, 50° पूर्व और 20° पश्चिम देशान्तरों तक अफ्रीका फैला हुआ है। अफ्रीका में छोटे-छोटे अनेक राष्ट्र हैं, जिनके कारण विश्वराष्ट्र संघ में अफ्रीकी राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व मुख्य स्थान रखता है, और इसीलिए यूरोप और अमेरिका के राष्ट्र अफ्रीका के राष्ट्रों में अपने स्वार्थों की दृष्टि से अच्छा स्नेह दिखा रहे हैं।

हम अफ्रीका के प्रमुख राष्ट्रों की आनुमानिक एक सूची दे रहे हैं—

उत्तरी तट के राष्ट्र—मौरिटेनिआ (Mauritania), मोरोक्को (Morocco), एलजीरिआ (Algeria), लीब्या (Libya), इजिप्ट (Egypt)।

पूर्वी तट के राष्ट्र—सूडान (Sudan), इथोपिआ (Ethopia), इजीबूटी (Djibouti), सोमाली (Somali), केन्या (Kenya), टैंजानिया (Tanzania), मलावी (Malawi), मोजमबीक् (Mozambique)।

अफ्रीका के दक्षिण भाग में-जैम्बिआ (Zambia), अंगोला (Angola), जिम्बावे (Zimbawe), नेमिबिआ (Namibia), बोट्स्वाना (Botswana), रिपब्लिक दक्षिण अफ्रीका (ट्रान्सवाल, नैटाल, केप आविन्स, ऑरेंज स्टेट)।

पश्चिमी तट पर—सेनिगाल (Senegal), गैम्बिआ (Gambia), गिनी (Guinea), गिनी बिसो (Guinea Bissau), सीरा-लिओन (Sierra Leone), लाइबेरिया (Liberia), आइवरी कोस्ट (Ivory Coast), घाना (Ghana), बेनिन (Benin), टोगो (Togo), इक्वेटोरिअल गिनी (Equatorial Guinea), नाइजेरिया (Nigeria), केमेरून (Cameroun), गेबन (Gabon), कोंगो (Congo), जेअर (Zaire)—रुआण्डा (Rwanda), बुरुण्डी (Burundi)।

अफ्रीका के भीतरी भाग में—बुरकिना फेसो (Burkina Faso), नाइगर (Niger), चैड (Chad), सेंट्रल अफ्रीकन रिपब्लिक (Central African Republic)।

पूर्वी तट के निकट का टापू—मेलेगासी (Malagasy)।

इन 45 के लगभग राष्ट्रों के अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे अनेक राष्ट्र हैं।

इन राष्ट्रों में लगभग सभी स्थानों पर भारतीय व्यापारी और कामकाजी लोग पहुँच चुके हैं, पर आर्य समाज केवल केन्या, उगाण्डा, टैंजानिआ, और दक्षिण अफ्रीका में पहुँचा। अभी हाल में घाना (Ghana) के उत्साही युवक चार्ल्स को भारत बुलाया गया था। वे घाना में आर्य समाज का कार्य संचालित करेंगे, ऐसी आशा है। जैम्बिआ में गुजराती और तामिल हैं, पर आर्य समाज नहीं है।

केन्या में 8 प्रदेश हैं—नैरोबी, मध्य (Central) तट (West), पूर्वी, उत्तर पूर्वी, न्याञ्जा, रिफ्टवैली, और पश्चिमी।

झीलें—नकूरू, नैवाशा, मगदी, बेरिंगो, बोगोरिआ।

□□

परिषद् का पृष्ठ

वार्षिक रिपोर्ट

विज्ञान परिषद् के 76 वर्ष पूरे हो चुके हैं। इस वर्ष परिषद् ने कुछ महत्वपूर्ण कार्य किये। प्रतिवर्ष की तरह 10 जुलाई को महत्वपूर्ण आयोजन 'डॉ० आत्मा राम-स्मृति व्याखान' रहा। यह व्याख्यान सिविल इंजिनियरिंग विभाग, रुड़की विश्वविद्यालय के सभागार में प्रतिकुलपति डॉ० आनन्द स्वरूप आर्य ने दिया, जिसकी अध्यक्षता स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती ने की। स्वर्गीय डॉ० आत्माराम की पत्नी श्रीमती सीता देवी द्वारा दान स्वरूप प्राप्त बीस हजार रुपयों की राशि के ब्याज से यह व्याख्यान प्रतिवर्ष आयोजित किया जाता है। परिषद् के संस्थापकों में से एक स्वर्गीय सालिगराम भार्गव की स्मृति में उनके शिष्यों डॉ० तोशनीवाल बंधुओं ने बीस हजार रुपये की दानराशि कृपापूर्वक प्रदान की है। अतएव दूसरा महत्वपूर्ण आयोजन 12 जुलाई को "प्रो० सालिगराम भार्गव स्मृति" प्रथम व्याख्यान रहा। यह व्याख्यान राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली के सभागार में डॉ० अजित राम वर्मा ने दिया एवं अध्यक्षता सी० एस० आई० आर० नई दिल्ली के महानिदेशक डॉ० ए० पी० मित्रा ने किया।

जनवरी में त्रिवेन्द्रम में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के शुभारंभ की पूर्व संध्या पर 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की गोष्ठी के अवसर पर 'प्रोजेक्ट टाइगर' (दिल्ली) के निदेशक श्री रामलखन सिंह जी ने अपना विद्वत्ता-पूर्ण अध्यक्षीय भाषण 'जैविक विविधता का संरक्षणः 'भारतीय संदर्भ में' विषय पर दिया। हम श्रीराम-लखन सिंह के आभारी हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के तत्वावधान में 'संकुल रसायन-विभिन्न आयाम' विषय पर द्विदिवसीय (7-8 अप्रैल 1989) राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी आयोजित की गयी जिसमें 27 शोध-पत्र प्रकाश में आये। ये सभी शोधपत्र 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' के अप्रैल 1989 अंक में प्रकाशित हुए।

इस वर्ष का सर्वाधिक उल्लेखनीय आयोजन 11-16 सितम्बर 1989 का विज्ञान परिषद् प्रयाग एवं भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर द्वारा हिन्दी-उर्दू में बाल विज्ञान साहित्य लेखन कार्यशाला रही। इस छः दिवसीय कार्य कार्यशाला का उद्घाटन सुप्रसिद्ध रसायन प्रो० वहीदुद्दीन मलिक, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय के कुलपति ने किया। प्रो० मलिक ने भार तीय भाषाओं के आपसी लेन-देन की आवश्यकता पर बल दिया। बच्चों की 4 विज्ञान पुस्तकों और 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' पुस्तक (एन० सी एस० टी० सी० के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित 300 पृष्ठों की पुस्तक) का विमोचन प्रसिद्ध रसायनज्ञ प्रो० रामचरण मेहरोत्रा ने किया।

इस कार्यशाला में उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश व नई दिल्ली के 35 और 33 स्थानीय प्रतिभागियों ने भाग लिया। इस कार्यविधि में उनके द्वारा 6-11 वर्ष और 11-16 वर्ष के दो आयु वर्गों के लिए सुग्राह्य भाषा और शैली में विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने के लिए विज्ञान के विविध विषयों पर लगभग 50 मानक आलेख बनाये व प्रस्तुत किये गये। आलेखों के लिए बनाये गये विभिन्न विषय वर्गों में से 4 स्वास्थ्य वर्ग में, 2 प्रदूषण वर्ग में, 2 कहानी वर्ग में, 2 भौतिकी वर्ग में, पोषण वर्ग में 6, कृषि वर्ग में 6, वैज्ञानिक मानसिकता वर्ग में 5, वन वर्ग में 6, अंतरिक्ष वर्ग में 4 और पर्यावरण वर्ग में 13, कुल 50 आलेख प्राप्त हुए।

इस कार्यशाला में उर्दू लेखन का प्रतिनिधित्व करने के लिए श्री मोहम्मद खलील, श्री फातही, डॉ० कलीम और मोहम्मद नासिर ने भाग लिया। कार्य-शाला में कुछ अच्छी प्रस्तुतियाँ, कविता कहानी व नाटिकाओं के स्वरूप में भी आई जिन्हें इस कार्यशाला की उपलब्धि कहा जा सकता है। कार्यशाला के अंत में मुख्य अतिथि डॉ० हरदेव बाहरी ने विज्ञान को सरल और रुचिकर बनाने के लिए कठिन शब्दावली का कम उपयोग करने व कहानी, कविता, नाटिका जैसी विधाओं में विज्ञान सिखाने का मार्ग बताया।

अमृत जयंती वर्ष का सबसे महत्वपूर्ण आयोजन रहा 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन'—समस्यायें और समाधान' विषय पर एक त्रिदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन। 11-13 दिसम्बर 1988 तक चलने वाली इस संगोष्ठी की सफलता के लिए विज्ञान परि-षद् उन सभी प्रतिनिधियों, विशेषकर अहिन्दी भाषी प्रतिनिधियों के प्रतिआभार प्रगट करती हैं जो इसमें सम्मिलित हुए तथा अपने आलेख प्रस्तुत किए। यहाँ परिषद् की ओर से एन० सी० एस० टी० सी०, नई दिल्ली तथा इसके निदेशक के हम सभी कृतज्ञ हैं जिन्होंने विज्ञान परिषद् को अस्सी हजार रुपयों की धनराशि इस संगोष्ठी के लिए उपलब्ध कराई।

पहली बार देश की किसी वैज्ञानिक संस्था के आमंत्रण पर विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखक, सम्पादक, वैज्ञानिक परिषदों/समितियों के पदाधिकारी एक मंच पर एकत्र हुए और उनके लिए एक दूसरे से विचार-विनिमय सम्भव हो सका। उनमें विज्ञान लेखन और प्रकाशन में आने वाली कठिनाइयों की चर्चा हुई और समाधान भी प्रस्तुत किए गए। गोष्ठी चार प्रमुख सत्रों में विभाजित थी। उद्घाटन और समापन

सहित छः सत्र सम्पन्न हुए। इस तीन दिन की गोष्ठी में जो भी विचार व्यक्त किए गए, जो भी आलेख हमें प्राप्त हुए उन्हें परिषद् द्वारा पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है। चार सत्र निम्नांकित हैं—

1. संचार माध्यमों के लिए विज्ञान लेखन
2. वैज्ञानिक पुस्तक साहित्य
3. शब्दावली एवं अनुवाद
4. विज्ञान-कथायें

हम चाहते थे कि सभी भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि और विज्ञाब लेखक आयें किन्तु ऐसा नहीं हो सका। फिर भी इस गोष्ठी के माध्यम से विभिन्न भाषा-भाषियों में सौहार्द बढ़ा है और एक दूसरे को समझने का अवसर मिला है। इस गोष्ठी में कन्नड़, तेलुगु, मराठी, बंगला, उड़िया, अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषाओं के लोग सम्मिलित हुए थे।

इस संगोष्ठी का महत्त्वपूर्ण और उत्साहवर्धक परिणाम यह निकला कि विभिन्न भारतीय भाषाओं की विज्ञान समितियों का अखिल भारतीय संगठन "भारतीय विज्ञान साहित्य महापरिषद्" का गठन सम्पन्न हुआ। इस संगठन, "महापरिषद्" का मुख्यालय, विज्ञान परिषद् भवन में स्थापित किया गया और सर्वसम्मति से विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री को इसका संयोजक चुना गया।

अप्रैल 88 एवं मार्च 89 तक 30 नये आजीवन सभ्य बने, किन्तु अब तक कुल 100 नये आजीवन सभ्य बन चुके हैं। इस दिशा में हमें और प्रयास करना है।

हमें प्रसन्नता है कि रोहतक (हरियाणा) में डॉ० ओमप्रभात अग्रवाल ने एक शाखा स्थापित कर ली है जिसमें 31 आजीवन सभ्य तथा 12 साधारण सभ्य हैं। वे कुरुक्षेत्र में भी शाखा स्थापित करने के लिए प्रयासरत हैं। अतीत में डॉ० अग्रवाल ने परिषद् के कार्यों में विशेष सक्रियता दिखाई है, हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं। इसी प्रकार दिल्ली में श्री डी० एन० भटनागर व उनके सहयोगियों ने भी परिषद् की एक शाखा स्थापित कर ली है, जिसमें 35 आजीवन सभ्य एवं 10 साधारण सभ्य हैं। श्री भटनागर बधाई के पात्र हैं। इससे हमारा उत्साह बढ़ा है। इसी प्रकार वाराणसी में शाखा स्थापित हो चुकी है और फैज़ाबाद में भी शाखा शीघ्र ही स्थापित हो जाने के आसार हैं। हमारा विभिन्न शहरों के सभी सभ्यों से आग्रह है कि वे अपने यहाँ परिषद् की शाखा स्थापित करने में हमारा सहयोग करें।

आलोच्य वर्ष में 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' का प्रकाशन नियमित हो गया है। 'विज्ञान' पत्रिका का प्रकाशन धनाभाव के कारण पिछड़ गया था किन्तु अब इसी माह से नियमित हो गया। पत्रिका के प्रकाशनार्थ धन संग्रह की और अनुदान राशि बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास अपेक्षित है।

'विज्ञान' पत्रिका में उत्कृष्ट लेखन के लिए प्रोत्साहन स्वरूप दिया जाने वाला 'डॉ० गोरखप्रसाद पुरस्कार' वर्ष 1988 के लिए डॉ० अनुराग श्रीवास्तव (भोपाल) तथा द्वारिका प्रसाद शुक्ल (इलाहाबाद) को दिया गया।

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती के प्रयास से "सुबोध पॉकेट बुक्स" (दिल्ली) ने बच्चों के लिए विज्ञान विषयक 100 पुस्तकें परिषद् के तत्वावधान में छापने का निश्चय किया है। इनमें चार पुस्तकें मुद्रित हो चुकी हैं जिनके नाम हैं—'ऊर्जा', 'वैज्ञानिक कृषि', 'कम्प्यूटर' और चौथी 'जीवों की उत्पत्ति'। इनके लेखक क्रमशः डॉ० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता, श्री आशुतोष मिश्र एवं श्री विजय जी हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त 11 पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं।

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती के अतिथिगृह 'ऋतम्भरा' में इस वर्ष एक कूलर की व्यवस्था हो गयी है। इसके अतिरिक्त गैस के दो सिलिंडरों एवं गैस के चूल्हे की भी व्यवस्था हो गयी है। इस अतिथि-गृह का प्रयोग स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती द्वारा अपने इलाहाबाद प्रवास के समय किया जायेगा।

आलोच्य वर्ष में धनाभाव के कारण जर्नलों की बाइंडिग न हो सकी। कुछ रेकों की भी आवश्यकता है।

व्याख्यानशाला का उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए होता रहा। उसमें पंखों का लगना आवश्यक है।

डॉ० आनन्द स्वरूप आर्य, प्रो० अर्थक्वेक इंजीनियरिंग, रुड़की विश्वविद्यालय, रुड़की ने विज्ञान परिषद् प्रयाग को 1000 (एक हज़ार) रुपये दान स्वरूप प्रदान किया। परिषद् परिवार ने उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित की एवं उन्हें सम्मानित सदस्य मनोनीत किया।

विशेष प्रसन्नता की बात है कि ओटावा विश्वविद्यालय (कनाडा) में भौतिकी के प्रोफेसर वाई० पी० वार्ष्णेय ने अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ० विटेकर की स्मृति में 'विज्ञान' पत्रिका में वर्ष के सर्वश्रेष्ठ लेख पर एक पुरस्कार—विटेकर पुरस्कार—प्रदान करने के लिए पाँच हज़ार रुपये की राशि परिषद् को भेजी है। इस राशि के वार्षिक ब्याज से उपरोक्त पुरस्कार दिया जाएगा। परिषद् प्रो० वार्ष्णेय के इस सहयोग के लिए आभारी है।

परिषद् की अंतरंग सभा के समस्त पदाधिकारी अपने कार्यों को सुचारु रूप से करते रहे। आशा है, आगे भी उनका सहयोग मिलता रहेगा।

डॉ० राम दास तिवारी	**डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्ता**
सभापति	प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग	**15-11-89**

विज्ञान परिषद् प्रयाग की वाराणसी शाखा का गठन

1. अध्यक्ष : डॉ० महाराज नारायण मेहरोत्रा भौमिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

2. उपाध्यक्ष : (i) डॉ० व्रजरतन दास गुप्त, प्रोफेसर भू-भौतिकी विभाग, का० हि० वि० वि०

(ii) डॉ० देवेन्द्र कुमार राय, प्रोफेसर, भौतिकी विभाग, का० हि० वि० वि०

3. कोषाध्यक्ष : डॉ० धनवंत किशोर गुप्त, उपनिदेशक, भौतिकी कक्ष, हिन्दी प्रकाशन, का० हि० वि० वि०

4. सचिव : डॉ० श्रवण कुमार तिवारी, सहायक निदेशक भौतिकी कक्षा, हिन्दी प्रकाशन, का० हि० वि० वि०

5. संयुक्त सचिव : डॉ० ब्रह्मेश्वर मिश्र, प्रवक्ता, भैषजिक रसायन विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हि० वि० वि०

6. परामर्श समिति के सदस्य :

(1) डॉ० एस०एन० सिंह (2) डॉ० राधेश्याम तिवारी

(3) डॉ० रामचन्द्र यादव (4) डॉ० भरत राय

(5) डॉ० वीरेन्द्र कुमार दुबे

—प्रस्तुति : **डॉ० श्रवण कुमार तिवारी**

रोहतक शाखा की वार्षिक बैठक

विज्ञान परिषद् रोहतक शाखा की वार्षिक बैठक 8 सितम्बर 89 को महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुई। अध्यक्षता का भार प्रो० सर्वजीत सिंह ने वहन किया। बैठक में सर्वप्रथम भौतिकी के व्याख्याता डॉ० अशोक कुमार शर्मा की, परामनोविज्ञान का वैज्ञानिक आधार, विषय पर अत्यन्त रोचक वार्ता हुई। उन्होंने किरलियन फोटोग्राफों की सहायता से बताया कि किस प्रकार वैज्ञानिक जगत् जीवित और अजीवित वस्तुओं के आभामंडल को देखने और उनसे उपयोगी सूचनायें पाने में समर्थ होता जा रहा है। स्मरणीय है

कि आभामंडल अभी तक कल्पना लोक की वस्तु समझी जाती थी। व्याख्यान में उपस्थित सदस्यों ने गहरी रुचि ली।

वार्ता के पश्चात् चुनाव हुआ। अगले सत्र के लिये निम्नलिखित लोग निर्वाचित हुये :—

प्रो० किशोरी शरण शर्मा—अध्यक्ष
डॉ० अशोक शर्मा —मन्त्री
डॉ० खेमचन्द्र कालरा —कोषाध्यक्ष

इन्हें यह अधिकार दिया गया कि वे शेष कार्यकारिणी का गठन कर लें।

इलाहाबाद की केन्द्रीय परिषद् के लिये **पद्मश्री डॉ० नन्द किशोर वर्मा** का नाम सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

चाय पान के साथ बैठक समाप्त हुई।

—प्रस्तुति : **डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल**

विज्ञान हिन्दी में ! | डॉ० अंजू शर्मा*

विज्ञान हिन्दी में !
जी नहीं, यह कैसे भला सम्भव है ?
अंग्रेजी हो, फ्रेंच हो, जर्मन हो या लैटिन
परन्तु हिन्दी में कदापि नहीं।
हिन्दुस्तान में हिन्दी तो गँवारों की भाषा है।
जो जानवर से बदतर जिनको न कुछ भी आता है।
संस्कृति नहीं, इज्जत नहीं, जिनकी कोई पहचान नहीं
मूढ़ हैं, समझे नहीं जो, भारत की हैं जान यही।
विज्ञान है जटिल विषय हिन्दी में कैसे आएगा ?
शब्दसागर हिन्दी का क्या इसको समा पाएगा ?
राजभाषा से अनजान प्रजा, ये कैसा प्रजातन्त्र है ?
'आई डोन्ट नो हिन्दी' इनका ये मूल मन्त्र है।
युग है साइंस टेक्नॉलजी का, कहते हैं सब ये मान से,
विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अर्थ से अनजान ये।
ये भ्रष्ट-बुद्धि लोग हैं, भारतीय नहीं 'इंडियन' कहो
हे सरस्वती माँ प्रकट हो, इस देश का कुछ तो करो।

* अनुसंधान अधिकारी, प्रकाशन एवं सूचना प्रभाग, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, अंसारी नगर, नई दिल्ली—110029

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठक,

पिछला नवम्बर अंक समय से पाकर अब आप भी संतोष का अनुभव कर रहे होंगे। 'विज्ञान' अब फिर से नियमित हो गयी है। इस बीच हमारे पास ढेरों पत्र आये हैं। कुछ का उत्तर भेजा गया है। आपके पत्रों से हमें बड़ा बल मिलता है। हम ही नहीं, आप भी 'विज्ञान' के प्रकाशन के अनियमित हो जाने से चिंतित थे। आपकी 'विज्ञान' और विज्ञान परिषद् के प्रति चिन्ता, आपका लगाव ही हमारा सम्बल है। बार-बार कठिनाइयों से उबरने की शक्ति हमें आपके सहयोग और आपके स्नेह से ही मिलती है।

मुझे आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि आपका सहयोग हमें सदैव मिलता रहेगा।

एक और प्रसन्नता की बात है कि स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती जी अब लगभग स्वस्थ हैं और अपनी आध्यामिक और बौद्धिक गतिविधियों में पूर्ववत जुट गए हैं। इसका ज्वलन्त प्रमाण आपको इस अंक में प्रकाशित उनके लेख 'वीर भोग्या वसुन्धरा' से मिलेगा। यह लेख स्वामी जी से मुझे उन्हीं की लिखावट में प्राप्त हुआ था और इसका चित्र भी उन्होंने ही बनाया था। इससे स्वामी जी के आत्मबल का आप सहज अनुमान लगा सकते हैं। स्वामी जी स्वस्थ और सक्रिय हैं, यह हम सब का सौभाग्य है।

विज्ञान परिषद् के नये वर्ष के पदाधिकारियों का चुनाव हो गया है। पर प्रसन्नता की बात यह है कि गतवर्ष के सभी पदाधिकारियों का सहयोग हमें यथावत् मिलता रहेगा। परिषद् के नये सभापति श्री गजानन्द आर्य से हमें बड़ी आशायें हैं। नये प्रधान मन्त्री डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी पिछले अनेक वर्षों से परिषद् से जुड़े रहे हैं। वे परिषद् की समस्याओं, कठिनाइयों, आर्थिक संकटों से भलीभाँति परिचित हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि भूतपूर्व प्रधानमन्त्री डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्त के अनुभव का लाभ उन्हें सदैव मिलता रहेगा, क्योंकि डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्ता जी ने उप-सभापति का भार ग्रहण कर लिया है। स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती विज्ञान परिषद् परिसर में निर्मित 'ॠतंभरा' में ही निवास कर रहे हैं। उनका आशीष हमें सहज ही उपलब्ध है।

नवनिर्वाचित अंतरंग सभा की बैठक इसी माह की 16 तारीख को होगी। हमारे सभापति श्री गजानन्द आर्य जी ने कलकत्ता से अपने आने की सूचना की पुष्टि भी की है।

अगले माह जनवरी 1990 में 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' के शुभारम्भ की पूर्व संध्या पर 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की वार्षिक गोष्ठी भी होनी है। हमें विश्वास है की वहाँ अनेक नये-पुराने विज्ञान-प्रेमियों से हमारा सम्पर्क होगा और परिषद् परिवार की जनसंख्या में सुखद वृद्धि होगी।

वर्ष 1990 आपके लिये नई खुशियाँ लाये, इस शुभकामना के साथ।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

अंतरिक्ष से भेजा वायजर ने संदेशा

मनोज कुमार पटैरिया

25 अगस्त **1989** को अमेरिका के नासा अंतरिक्ष केन्द्र में अंतरिक्ष से जो संकेत प्राप्त हुए, उन्होंने दुनिया भर में वैज्ञानिकों के कान खड़े कर दिए। इन संकेतों से पता चला कि किस तरह तापमान बढ़ने से पूरा ग्रह पिघल जाता है, और पुनः ठण्डा होने पर उसका पुनर्निर्माण होता है। ये संकेत दिए हैं, वायजर-**2** ने, जिसे सौर मण्डल के अध्ययन के लिए **1977** में अंतरिक्ष में भेजा गया था, और जिसने हाल ही में हमारे सबसे दूरस्थ ग्रह नेप्च्यून की यात्रा पूरी की है। वायजर परियोजना के वैज्ञानिक **एडवर्ड स्टोन** ने बताया है कि इन अध्ययनों से पृथ्वी पर बढ़ते तापमान को सुनियोजित करने, तथा इस ग्रह (पृथ्वी) पर जीवन को बचाने के दूरगामी उपाय करने में मदद मिलेगी।

क्या है सौर मण्डल में ?

हमारे सौर मण्डल के बीचो-बीच सूर्य है, उसके चारों ओर वृत्ताकार अलग-अलग कक्षाओं में **9** ग्रह चक्कर काटते हैं। ये नौ ग्रह हैं—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, वृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण (नेप्च्यून) और यम। ये सभी ग्रह तो सूर्य के चक्कर लगाते हैं, पर कुछ छोटे उपग्रह भी हैं, जो इन ग्रहों के चक्कर लगाते हैं, जैसे पृथ्वी का उपग्रह है चंद्रमा। कुछ ग्रहों के **2-3** उपग्रह भी हैं। इस तरह यह पूरा तंत्र सौर-मण्डल कहलाता है। और अखिल ब्रह्माण्ड में ऐसे अनेकानेक सौर मण्डल हैं, जो अनंत अंतरिक्ष में विभिन्न दूरियों पर अवस्थित हैं। अभी तक ज्ञात जानकारी के अनुसार हमारे सौर-मण्डल में हमारी पृथ्वी के अलावा कहीं भी जीवन का पता नहीं चला है। हो सकता है, हमारे सौर-मण्डल के पार किसी अन्य सौर-परिवार के किसी ग्रह या उपग्रह पर जीवन विद्यमान हो !

वायजर अभियान

पृथ्वी के अलावा अन्य ग्रहों पर सभ्यताओं की खोज के लिए वैज्ञानिक हमेशा उत्सुक रहे हैं। इसी उत्सुकता ने आदमी को चंद्रमा तक पहुँचा दिया। सुदूर अंतरिक्ष में जीवन की खोज की टोह लेने के लिए अनेक संयंत्र स्थापित किए गए हैं। अमेरिका में स्थापित एक केन्द्र में ऐसी व्यवस्था की गई है कि यदि अंतरिक्ष में कहीं से कोई सभ्यता रेडियो संकेत भेजे, तो वे हमें मिल जाएँ। इसी तरह यह केन्द्र अपने रेडियो संकेत दूर अंतरिक्ष को भेजता है।

इसी क्रम में अंतरिक्ष में उपकरणों से लैस यंत्र भेजने की बारी आई तो पहले यह निश्चित किया गया कि दूर अंतरिक्ष में जीवन की खोज करने से पहले अपने सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों पर जीवन की खोज की जाए। इसी तरह वायजर अभियान की शुरुआत हुई। वायजर-1 को वृहस्पति और शनि की ओर छोड़ा गया। इसकी सफलता के बाद वायजर-**2** को और आगे बढ़ाया गया, जिससे अंतरिक्ष से, अन्य ग्रहों के बारे में अभूतपूर्व जानकारी भेजी।

वायजर-**2**,**1977** में छोड़ा गया था। यह **1979** में वृहस्पति के पास से गुजरा और वृहस्पति व उसके चंद्रमाओं (उपग्रहों) पर उपयोगी जानकारी दी। उसके बाद यह आगे बढ़ता गया, और **1979** में शनि और उसके रहस्यमय वलयों की खोजें करता हुआ, **1986** में अरुण (यूरेनस) के पास पहुँचा, जहाँ से इसके कैमरों ने रेडियो तरंगों के द्वारा अनेक चित्र भेजे।

नासा के वैज्ञानिकों ने यह पहले ही सोच लिया था कि यदि वायजर-**1** सफलतापूर्वक शनि ग्रह तक जाता है, तो वे वायजर-**2** को यूरेनस तक और यथा-सम्भव नेप्च्यून तक भेजेंगे। और ऐसा ही हुआ। वायजर-**2** को यूरेनस और आगे नेप्च्यून की तहकीकात करने के लिए भेजा गया। वायजर का नियंत्रण रेडियो तरंगों और रिमोट कंट्रोल उपकरणों के जरिए पृथ्वी पर प्रयोगशाला में बैठकर किया जा रहा है।

ए-**22**, सैक्टर-**12**, नोएडा-**201301**, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

अनंत ब्रह्माण्ड में मानव की कल्पना से भी दूर बहुत दूर घुप्प अँधकार में पृथ्वी का यंत्रदूत वायजर-2 अंतरिक्ष यान, मौन साधे हुए आगे ही बढ़ता ही जा रहा है। पिछले 12 वर्षों से वायजर यही कर रहा है। अपने एक टन के भार सहित यह यान अब तक 7 अरब 20 करोड़ किलोमीटर का लम्बा और उबाऊ रास्ता पार कर कई मंजिलों की ओर बढ़ता रहा है। इस क्रम में वह अब तक 4 ग्रहों और 56 चन्द्रमाओं को पीछे छोड़ चुका है। हमारे सबसे दूरस्थ ग्रह नेप्च्यून से हाथ मिलाने के बाद यह हीलियोस्फियर सीमा में प्रवेश कर गया है, जहाँ से हमारी सौर मण्डल सीमा समाप्त होती है और ग्रहों व आकाश गंगा के बीच का इंटर-स्टेलर अंतरिक्ष आरम्भ होता है।

नेप्च्यून एक वास्तविकता है

वायजर द्वारा सौर मण्डल के सबसे दूरस्थ ग्रह नेप्च्यून से आँखें लड़ाने के साथ ही अमेरिकी अंतरिक्ष एजेन्सी की जेट प्रक्षेपण प्रयोगशाला के एक खगोल विज्ञानी ने खुशी से चिल्लाते हुए कहा कि अब वरुण विज्ञान कथा या फिल्म का हिस्सा नहीं रहा। अब वह एक वास्तविकता बन गया है।

अंतरिक्ष यान भारतीय समयानुसार 9 बजकर 26 मिनट पर वरुण के उत्तरी ध्रुव के बादलों की बाहरी सतह से 4,905 किलोमीटर करीब पहुँचा जहाँ से उसने करीब 81 हजार फोटोग्राफ टेलिविजन कैमरों द्वारा भेजे। इन संदेशों के आने में 4 घन्टे और 6 मिनट का समय लगता है। वायजर ने वरुण के चारों ओर चक्कर लगाते हुए धूलकणों की पट्टियों का पता लगाया है। नासा के खगोल शास्त्री **आर० टेरिल** ने बताया है कि धूलकण वरुण की काल्पनिक मध्य रेखा का चक्कर लगा रहे हैं। यान ने वरुण के 3 और चन्द्रमा पता लगाए हैं। इस तरह अब इसके ज्ञात उपग्रहों की संख्या 6 हो गई है। यान ने वरुण के एक पूर्ण वलय और एक आंशिक वलय का भी पता लगाया था। इन वलयों को क्रमशः **1989 एन 3** और **1989 एन** 4 कहा गया है। नेप्च्यून का व्यास 44,800 किलोमीटर है, तथा सूर्य से इसकी दूरी 4496.7 मिलियन किलोमीटर है। यह 164.8 वर्ष में सूर्य का एक चक्कर लगा पाता है। वायजर ने वरुण के उपग्रह ट्राइटन पर उपयोगी जानकारी भेजी है।

बहुत चमकता है ट्राइटन

नेप्च्यून से सबसे बड़े चन्द्रमा ट्राइटन के बारे में, वायजर ने जो चित्र भेजे हैं, उनको देखकर वैज्ञानिकों की उत्सुकता नेप्च्यून से ज्यादा ट्राइटन में जागृत हो गई है। अमेरिका की नेशनल एयरोनाटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) में इन चित्रों के अध्ययन से पता चला है कि ट्राइटन के वायुमण्डल में नाइट्रोजन है। वैज्ञानिकों ने ट्राइटन में गुलाबी बर्फ के ज्वालामुखी को अनूठा बताया। इसका सतह तापमान शून्य से 240 डिग्री सेल्सियस नीचे है। यह सौर मण्डल का सर्वाधिक ठण्डा पिण्ड है, तथा दूसरे स्थान पर प्लूटो (यम) तथा उसका चन्द्रमा चरोन ठण्डे पिण्ड हैं।

वायजर से प्राप्त तस्वीरों से प्राप्त निष्कर्षों में पाया गया है कि ट्राइटन पहले पूरी तरह पिघल गया था, और बाद में फिर ठण्डा हुआ। इसकी सतह पर नाइ-ट्रोजन के साथ कार्बनिक पदार्थ की भी संभावना है। ट्राइटन के चित्र वायजर ने 38,500 किलोमीटर की दूरी से लिए हैं। इसका व्यास 2720 किलोमीटर है, जो हमारे चन्द्रमा से कुछ कम है। इसकी सतह हमारे चन्द्रमा से 10 गुनी ज्यादा परावर्ती है, अतः ट्राइटन अधिक चमकता है। इसका दक्षिणार्ध गुलाबी बर्फ से ढका है, जो इस पर पड़ने वाले प्रकाश का 80 प्रतिशत भाग परावर्तित कर देती है। इसका दक्षिणार्थ गुलाबी भूरे रंग का है, औत् इसकी सतह 60 प्रतिशत प्रकाश का परावर्तन करती है।

ट्राइटन पर बड़े विवर और खाइयाँ देखी गयी हैं। साथ ही 200 से 400 वर्ग किलोमीटर के मैदानों का भी पता चला है। पूरा ट्राइटन जमा हुआ है। इसमें पानी, नाइट्रोजन और मीथेन प्रमुख हैं। इसके धरातल पर चट्टानें भी देखी गई हैं। पानी हालाँकि बहुत कठोर बर्फ के रूप में है, पर नाइट्रोजन और मीथेन का मिश्रण नरम तथा कुछ पिघला हुआ है।

प्लेनेटरी सोसायटी के अध्यक्ष और नेशनल एयरोनाटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन के जेट प्रोपल्शन प्रयोगशाला के पूर्व निदेशक **ब्रूस मूरे** का कहना है कि वायजर से मिले वरुण और ट्राइटन के चित्रों से हमारे मस्तिष्क को काफी सामग्री मिली है, जिसका उपयोग भविष्य में किया जा सकेगा।

कार्नेल यूनिवर्सिटी के अंतरिक्ष विज्ञानी **कार्ल सगान** का कहना है कि यदि पृथ्वी को सही ढंग से समझना है, तो अन्य ग्रहों को भी समझना होगा। इस तरह की जानकारी के आधार पर ही वैज्ञानिकों ने शुक्र ग्रह के बारे में बताया कि इस ग्रह के घने बादल कैसे सौर ऊर्जा को संचित करते हैं, और तापमान 100 डिग्री होता है। नए अध्ययनों से यह अनुमान लगाने में सहायता मिलेगी कि औद्योगिक प्रदूषण से पृथ्वी का तापमान बढ़ सकता है, जिसके कारण ध्रुवों पर जमी बर्फ पिघल सकती है, और तटवर्ती इलाकों में समुद्री बाढ़ का संकट पैदा हो सकता है। इस तरह वायजर-2 द्वारा नेप्च्यून और ट्राइटन के बारे में प्राप्त हजारों फोटोग्राफों और संकेतों के जरिए न केवल सौर मण्डल को समझने में मदद मिलेगी, बल्कि हम पृथ्वी पर जीवन विकास की क्रियाविधि तथा उसके संरक्षण को भी बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।

नेप्च्यून और ट्राइटन से होकर गुजरने के बाद मानवरहित वायजर अभियान सम्पन्न हो गया है। बस अब उससे प्राप्त सूचनाओं के विश्लेषण से निष्कर्ष निकालने और अध्ययन करने की बातें ही बाकी हैं लेकिन फिर भी, वैज्ञानिक वायजर-2 की मुस्तैदी को मद्देनजर रखते हुए सौर मण्डल के पार भी कुछ जानने के लिए वायजर की कारगुज़ारियों पर आँखें लगाए हुए हैं। □□

एड्स का फैलता आतंक

राजीव गुप्ता

[दुनिया के 136 देशों में हजारों लोग "एड्स" नामक यौन-रोग के शिकार होकर बेमौत मर रहे हैं। अब तक वैज्ञानिक एड्स पर 3500 शोध पत्र छाप चुके हैं। किन्तु एड्स के रोगियों के लिए एक खुशखबरी है। इस बीमारी के शिकार एक व्यक्ति का बोनमैरो बदलने से उसके शरीर से एड्स के वायरस समाप्त हो गए। रोग का निदान ढूँढने के दौरान पहली बार इस तरह का नतीजा सामने आया है। पर जब तक इस रोग पर काबू नहीं कर लिया जाता तब तक सबसे जरूरी है जनता तक सही जानकारी पहुँचाना। —संपादक]

एक नयी छूत की बीमारी निकली है, जिसका काटा पानी नहीं माँगता। इसका नाम है—"एड्स"। एड्स एक ऐसा संक्रामक रोग है जो एक अदृश्य दैत्य के समान धर पकड़ता है। जब तक इसका पता चलता है, तब तक बहुत देर हो जाती है और इसका एक ही नतीजा होता है—मृत्यु। दुनिया भर के वैज्ञानिकों के अनथक प्रयासों के बावजूद यह पता नहीं चल पाया कि यह रोग आखिर आया कहाँ से, न ही आज तक इस जानलेवा बीमारी का कोई इलाज ही निकल पाया है। बहरहाल, वस्तुस्थिति यह है कि विश्व में लगभग प्रत्येक मिनट एक व्यक्ति एड्स की चपेट में आ जाता है।

विश्व-व्यापी संकट

विश्व स्वास्थ्य संगठन के आँकड़े बताते हैं कि "पूरी दुनिया में 50 लाख से एक करोड़ लोगों के शरीर में एड्स के रोगाणु घर कर चुके हैं।" इनमें से

संपर्कसूत्र : श्री हरीश अग्रवाल, डी-40 गुलमुहर पार्क, नई दिल्ली—110049 फोन : 669820

लगभग 2 लाख व्यक्ति इस रोग के शिकार हो गये हैं। एड्स से पीड़ित अधिकांश व्यक्ति इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि वे रोगी हैं। यही सिलसिला चलता रहा तो सन् 1990 तक करीब 3 करोड़ लोग एड्स के चंगुल में जा फँसेंगे। विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि अगले पाँच वर्षों में एड्स का शिकंजा गत पाँच वर्षों के रोगियों से लगभग 20 गुना अधिक लोगों को धर दबोचेगा।

एड्स आखिर फैलता कैसे है? यह छूत, यौन-सम्बन्धों, दूषित रक्त के आदान-प्रदान, गंदी इंजेक्शन की सुई के प्रयोग तथा एड्स-पीड़ित महिला के माँ बनने से होता है। यदि माँ एड्स की रोगी है तो नवजात शिशु का इस बीमारी से ग्रस्त होना लाज़मी है। इन्हीं चार कारणों से यह रोग यत्र-तत्र-सर्वत्र 'जंगल की भयानक आग' की भाँति फैलता जा रहा है। यह रोग न तो किसी जानवर द्वारा आदमी तक पहुँचा और न ही हवा, मिट्टी, या पानी से उत्पन्न "वायरस" या जीवाणु द्वारा। यह छूत तो आधुनिक इंसान की "आधुनिकता" की देन है। आज के मानव का स्वच्छंद यौन-जीवन, खून को लम्बे समय तक टिकाए रखने की अप्राकृतिक पद्धतियाँ, आधुनिक हवाई-यात्राएँ व आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली—ये सभी एड्स के जिम्मेदार हैं। जब भी आप प्रकृति के नियमों का उलंघन करेंगे—चाहे वह अफ्रीका के आधुनिकीकरण द्वारा हो अथवा अमेरिका के पुरुषों के परस्पर यौन-सम्बन्धों द्वारा हो—तो उसके भेंट स्वरूप पायेंगे—एड्स।

दुखद तथ्य तो यह है कि दस-दस साल तक व्यक्ति को ज्ञात ही नहीं होता कि एड्स के रोगाणु उसके शरीर में पल रहे हैं। ऊपरी तौर से वह रोगी स्वस्थ लगता है और वह स्वयं यही अनुभव करता है। परन्तु धीरे-धीरे शरीर को खोखला बनाते हुए यह रोग जब फूट निकलता है तब तक, भयानक कैंसर की तरह, इसका कोई इलाज नहीं रह जाता। मृत्यु के सिवाय इस रोग से मुक्ति का कोई उपाय नहीं रह जाता।

एड्स का वायरस

एड्स के रोगाणु शरीर के भीतर किस प्रकार क्षति पहुँचाते हैं? होता यह है कि एड्स का "वायरस" देह की प्रतिरोधक प्रणाली को पूर्णरूपेण ध्वस्त कर देता है। एड्स के रोगाणु सर्वप्रथम ख़ून के सफेद रक्त कणों (लिम्फोसाइट्स) के एक विशेष समूह "टी-4" पर हमला बोल देते हैं। टी-4 के अलावा ये रोगाणु "बी" कोशिकाओं और "मैक्रोफोसेज" जैसे प्रति-रोधक-प्रणाली के महत्त्वपूर्ण अंगों को नष्ट कर देते हैं। जैसे ही टी-4 कोशिकाएँ गायब होती हैं, वैसे ही "एन्टीबॉडीज़" या प्रतिरक्षियों को बनाने के सन्देश मिलने बन्द हो जाते हैं। सूचना न मिलने से प्रतिरक्षियों का निर्माण बन्द हो जाता है, जिससे रोगाणुओं का विरोध पूर्णतया समाप्त हो जाता है। परिणाम यह होता है कि धीरे-धीरे शरीर की समूची प्रतिरोधक प्रणाली ठप्प हो जाती है और मनुष्य एड्स के भँवर में हमेशा के लिए डूब जाता है। प्रतिरोधक क्षमता ख़त्म होने पर आदमी ज़्यादा दिन ज़िंदा नहीं रह पाता।

भारत में एड्स

भारत में जून 1989 तक 1290 लोगों में एड्स के रोगाणु पाये गए हैं, जिनमें से 29 व्यक्ति एड्स के शिकार हो चुके हैं। इनमें से 18 भारतीय थे, जो चल बसे। 1183 भारतीयों के खून में एड्स का वाइरस पल रहा है। पूरे देश में 40 निगरानी केन्द्रों पर जाँच चल रही है। चूँकि इस रोग का कोई इलाज नहीं है, अतः इससे बचने का एकमात्र उपाय है—समय रहते जनता को इस रोग से सम्बद्ध सही जानकारी प्रदान करना। अमेरिका में रेडियो, प्रेस, टेली-विजन इत्यादि के जरिए एड्स से जुड़ी जानकारी का इतना ज़ोरदार प्रचार-प्रसार हुआ कि वहाँ के सैन-फ्रांसिस्को शहर के समलैंगिक यौन-संबन्ध रखने वाले कामी पुरुषों में व्याप्त यह रोग 18 प्रतिशत से घटकर एक प्रतिशत भी नहीं रह गया।

जानकारी का अभाव

एड्स के बारे में आम जनता में यह गलत धारणा फैली हुई है कि एड्स के रोगी को छूने भर से यह छूत लग जाती है। सत्य इसके ठीक विपरीत है। यह रोग न तो रोगी के साथ उठने-बैठने, खाने पीने या उसके भोजन अथवा अन्य किसी वस्तु का प्रयोग करने से होता है। आप मज़े से उसके गिलास में पानी पी सकते हैं और उसकी बाहों में बाहें डालकर घूम सकते हैं। और तो और रोगी के चुंबन से भी यह रोग दूसरे व्यक्ति को नहीं लगता। एड्स के रोगी की सेवा-सुश्रुषा से भी यह छूत नहीं फैलती और न ही उसे काटे मच्छर द्वारा आपको काटने से। यहाँ तक कि यदि एड्स का रोगी अगर आपको काट खाए तब भी यह रोग नहीं फैलता। इन सभी दृष्टियों से यह एक सुरक्षित रोग है। यह छूत केवल रोगी के साथ काम-सम्बन्ध स्थापित करने तथा उसके रक्त को स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में पहुँचाने से फैलती है।

अज्ञात का भय

इस जानकारी के अभाव में विश्व भर में एक देश के लोग दूसरे देश को दोषी ठहरा रहे हैं और एड्स के रोगियों का इलाज तो दूर उनका सामाजिक बहिष्कार कर रहे हैं। अब यह बीमारी शारीरिक कम और सामाजिक ज्यादा हो चली है। अफ्रीका की हाल की घटना पर नजर डालिए, जहाँ एक पति ने अपनी पत्नी को इसलिए धक्के मार कर घर से निकाल दिया क्योंकि उसको पता चला कि उसकी पत्नी को एड्स है। बेचारी महिला करती क्या न करती, सो उसने वेश्यावृत्ति अपना ली। इस प्रकार वह न जाने और कितने लोगों में एड्स फैलाती रही। दूसरी ओर पति महोदय ने दूसरी शादी कर ली, बिना यह जाने कि वे स्वयं एड्स से पीड़ित थे। अनजाने में ही उन्होंने अपनी नयी पत्नी और आने वाले बच्चों को भी एड्स का रोगी बना दिया।

अमानवीय व्यवहार

ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जहाँ लोगों ने एड्स के रोगियों के घर के घर जला दिये। अमेरिका में तो अस्पतालों ने एड्स के बीमारों को लेने से ही मना कर दिया। भारत में पिछले महीने ही बंबई पुलिस ने गोवा के एक नवयुवक को मानसिक अस्पताल में नज़रबंद कर दिया, क्योंकि उसके खून में एड्स के रोगाणु निकले। यही हाल उन वेश्याओं का हुआ जिनका रक्त "सीरो पोजिटिव" निकला। जो वेश्याएँ वकील रख सकीं वे ही छूट पायीं और शेष आजीवन पागल खाने में बन्द रहेंगी।

जागृति : एकमात्र विकल्प

यह सब मूर्खता एड्स के प्रति अज्ञान के कारण व्याप्त है। इस अज्ञान से भय उत्पन्न होता है और अज्ञान के इस भय से हिंसा उपजती है। समाज के इस अमानवीय व्यवहार से घबराकर एड्स के रोगी सामने नहीं आते और गुपचुप यह रोग फैलाते रहते हैं। बहुतेरे तो घबराकर आत्महत्या ही कर लेते हैं।

यदि हमें सही रूप में और उचित ढंग से इस समस्या से निपटना है तो कड़े कानून नहीं, अपितु एक सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण करना होगा। जनता में जागृति एवं चेतना का ज्ञान-दीप जलाना होगा। अन्ततोगत्वा, हमें **गाँधीजी** के इन शब्दों का अनुसरण करना होगा कि "**पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।**"

(इस्वा फीचर्स)

□□

कम्प्यूटर से कैंसर की पहचान

राजेश कुमार सिंह

जैसा कि हम जानते हैं कैंसर एक भयावह और प्राणघातक व्याधि है। मानव आज इससे बुरी तरह ग्रस्त है। कैंसर मानव शरीर में होने वाला एक प्राण-घातक फोड़ा है। प्राचीन आयुर्वेद में इसे "कर्कट" के नाम से जाना जाता रहा है। इसके मुकम्मल इलाज के हेतु कई शोधों, खोजों और अनुसंधानों का सहारा लिया गया, परन्तु कोई विशेष सफलता वैज्ञानिकों और चिकित्सकों के हाथ न लग सकी। प्रत्येक वर्ष लाखों लोग अकाल काल के गाल में समा जाते हैं।

वैसे कैंसर की पहचान हेतु अनेक उच्च और उपयुक्त तरीके प्रारम्भ से ही वैज्ञानिकों और चिकित्सकों के द्वारा खोजे जाते रहे हैं, नित्य नये-नये शोध किये जाते रहे हैं और इसी के परिणामस्वरूप कैंसर की अल्ट्रासानिक टिश्यू करैक्टराइजेशन (यू० टी० सी०) की नई विधि खोजी जा सकी, जिससे कि अब ध्वनि तरंगों की सहायता से कैंसर की पहचान की जा सकेगी। जब ध्वनि तरंगों के बीमार कोशिकाओं के समूह से लौट कर आने से जो परिवर्तन होता है व उससे ऊतकों की गहराइयों में चल रही कोशिकीय उथल-पुथल को यू० टी० सी० भली प्रकार से जाँच करता है। जैसा कि कैंसर काफी समय तक भीतर ही भीतर बगैर किसी कष्ट के बढ़ता ही रहता है और इस ओर मरीज का ध्यान शीघ्र नहीं जा पाता। जब उसका ध्यान इस ओर जाता है तब तक रोग लाइलाज हो चुका होता है।

हिस्टोग्राफ ध्वनि तरंगों से मरीज़ के शरीर के भीतर के हिस्सों के ऊतकों के बारे में पूरी जानकारी दे सकने में सक्षम हैं और यदि किसी मरीज़ के पूरे शरीर का हिस्टोग्राफ तैयार कर लिया जाय तो निश्चित ही उसके शरीर में कहीं भी कैंसर होने की जानकारी को ज्ञात किया जा सकता है। हिस्टोग्राफ से बगैर एक बूंद भी खून बहाये अथवा काटे यह समग्र प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। हिस्टोग्राफ के ध्वनि तरंगों को वास्तव में हमारे कान तक नहीं सुन सकते हैं, क्योंकि उनकी तीव्रता काफी कम होती है। ध्वनि विज्ञान को बहुत ही परिष्कृत रूप में उपयोग में लाये जाने से ऐसा संभव हो पाता है। बहुत तेज गति से भेजी गयी ध्वनि तरंग वापस इसलिए लौट नहीं पाती है क्योंकि ध्वनि तरंगों में कुछ ऊतकों द्वारा सोख ली जाती हैं और कुछ विभिन्न प्रकार के कोणों में फैल जाती हैं, जिन्हें कि संवेदनशील और अच्छे उपकरणों में रिकार्ड कर लिया जाता है। इस आधार पर ही, शरीर के कौन से भाग के ऊतकों में गड़बड़ी है का पता लगा लिया जाता है। इस सम्पूर्ण तकनीक को, दूसरे शब्दों में, शरीर के भागों का आंतरिक दूरदर्शन कह सकते हैं।

इन ध्वनि तरंगों को भेजते समय यदि थोड़ी सी भी असावधानी हो जावे तो उससे ज़िंदगी और मौत का फ़ैसला हो जावेगा यानी ध्वनि तरंगों को भेजते समय सतत् सावधानी अत्यंत ही आवश्यक है। करोड़ों कोशिकाओं से मिलकर हमारे शरीर का निर्माण हुआ है। प्रत्येक कोशिका का अपना अलग महत्व है। बड़ी कोशिकाओं को छोड़कर छोटी कोशिकाओं को केवल काफी उच्चशक्ति वाले माइक्रॉस्कोप से ही देखा जा सकता है। छोटी और बड़ी किसी भी एक कोशिका के कार्य न करने से भविष्य में कैंसर हो सकने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है। अत: शरीर में काम न कर रही ऐसी कोशिकाओं की पहचान अब समय से काफी पूर्व ही की जा सकती है। अभी भी ध्वनि तरंगों के ऊपर जो नित्य ही नये-नये अनुसंधान हो रहे हैं वे एकदम नये हैं जिनसे

235 डी, किदवई नगर, अल्लापुर इलाहाबाद-211006

कि शरीर के अन्दर ध्वनि तरंगें भेजने और उनके व्यवहार की पूरी जानकारी नहीं मिल पा रही है। अतः इस क्षेत्र में अभी और अधिक अनुसंधानों के द्वारा ही सफलता पायी जा सकती है।

एटॉमिक रेडिएशन से अभी तक कैंसर का इलाज किया जाता रहा है। रेडिएशन के ऊतकों पर क्यों और कैसे पड़ने वाले प्रभावों को माइक्रो-कम्प्यूटर की मदद से ज्ञात किया जाता रहा है। अभी तक इन कम्प्यूटर उपकरणों द्वारा सबसे अधिक घातक जिगर का कैंसर और थायराइड के ऊतकों की पहचान में 99 प्रतिशत सफलता प्राप्त की जा चुकी है। अब तो शल्यचिकित्सक भी एक्स-किरणों एवं ध्वनि तरंगों की मदद से बगैर शल्यचिकित्सा के पथरी जैसे रोगों का इलाज सफलता के साथ करने लगे हैं। सर्वप्रथम अप्रैल, 1988 में इसका अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रयोग शुरू हुआ और भारत में (बंबई) में शल्य चिकित्सकों के द्वारा पथरी का सफल इलाज किया गया जो कि सामाय शल्य-चिकित्सा के मुकाबले कई अर्थों में अधिक लाभदायक रहा। न दर्द, न ऑपरेशन (शल्य-क्रिया), न रक्त की क्षति और न अलग से अतिरिक्त रक्त की व्यवस्था की कोई ज़रूरत। मात्र तीन घण्टे के इलाज के उपरान्त और तीन दिन ही अस्पताल में रहने के बाद मरीज को छुट्टी मिल जाती है। लिथोट्रिप्टर चालित कम्प्यूटर मशीन से बगैर ऑपरेशन के ध्वनि तरंगों से पथरी का इलाज किया जाने वाला एक सर्वोत्तम और सहज माध्यम है। यू० टी० सी० पद्धति के कैंसर के पहचान में सबसे अधिक विश्वसनीय, उपयुक्त और सफलता के बीच भी इस दिशा में अभी और अधिक बेहतर तकनीक की खोज की जा सकती है क्योंकि इस विधि का भविष्य उज्ज्वल है।

□□

एकल संवर्धन : विवादग्रस्त क्यों ?

प्रेम सागर त्रिपाठी

आज एकल संवर्धन वानिकी के क्षेत्र में चर्चा का ज्वलन्त उदाहरण बनकर उपस्थित हुआ है। एकल संवर्धन का नाम सुनते ही वानिकीविदों में पक्ष तथा विपक्ष में अपने मतों की बौछार होने लगती है। वानिकी के क्षेत्र में एकल संवर्धन वह पद्धति है जिसमें एक बड़े क्षेत्र पर एक ही प्रजाति के वृक्षों को रोपित किया जाता है। **युकेलिप्टस** का रोपण इस संदर्भ में अभी भी सर्वाधिक विवादास्पद विषय बना हुआ है, किन्तु इसके पीछे सत्यता से अधिक भ्रांँतियाँ हैं। युकेलिप्टस के एकल संवर्धन से सम्बन्धित जो भी भ्रांँतियाँ हैं वे पूर्वतः निराधार हैं क्योंकि भारतीय वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून ने ऐसा कुछ नहीं पाया जो युकेलिप्टस के रोपण पर पाबन्दी लगाना पड़े। किन्तु एक बात यह स्पष्ट है कि युकेलिप्टस के संदर्भ में विवाद उठने पर इसकी लोकप्रियता पर कुछ प्रभाव स्पष्ट पड़ रहा है। आज इसकी लोकप्रियता कुछ प्रान्तों यथा उत्तर प्रदेश, गुजरात आदि में इतनी बढ़ चुकी है कि उसे देखने से यही प्रतीत होता है कि वृक्षारोपण का तात्पर्य युकेलिप्टस के रोपण से है। विशेषकर सामाजिक वानिकी (**Social Forestry**) के अन्तर्गत इसके रोपण पर विशेष बल दिया गया तथा यह सामाजिक वानिकी के सभी पहलुओं में अपना कदम जमा लिया है। कृषिवानिकी, प्रक्षेत्र वानिकी, प्रसार वानिकी, ग्रामीण वानिकी एवं मनोरंजन वानिकी आदि सभी के अन्तर्गत इसका अधिपत्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है। गाँव से शहर तक सभी लोगों ने इसे अपनाया तथा ग्रामीण क्षेत्रों में इसे अपने खेतों की मेड़ों तथा खेतों एवं घर के इर्द-गिर्द रोपित

सी० एफ० आर० टी०, चंद्रापुर, महाराष्ट्र—442401

किया। कुछ शहरी व्यवसायी प्रवृत्ति के लोगों ने धन कमाने की दृष्टि से इसके रोपण को व्यवसाय के रूप में अपनाया तथा ग्रामीण क्षेत्रों की ज़मीनों को पट्टे पर लेकर उस पर बड़े पैमाने पर युकेलिप्टस की खेती शुरू कर दी। यदि हम युकेलिप्टस की लोकप्रियता का अध्ययन करें तो इसके पीछे कुछ तथ्य मुख्य हैं। यह एक तीव्र गति से बढ़ने वाली प्रजाति है तथा इसके पालन-पोषण की कोई विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती, जानवर इसे खाते नहीं हैं तथा यह सिर्फ आठ वर्ष में प्रौढ़ होकर काटने योग्य हो जाता है। आठ वर्ष के पूर्व भी इसका उपयोग कागज़ एवं अन्य लुग्दी उद्योग में किया जा सकता है। अतः इतने कम समय में लाभ प्रदान करने वाले गुण को लेकर इसकी लोकप्रियता बढ़ी है तथा व्यावसायिक बुद्धि के लोगों ने इसे अपनाना शुरू कर दिया है।

युकेलिप्टस के काले पृष्ठ अर्थात् इसके विवादग्रस्त होने के पीछे एक मुख्य भ्रांति यह है कि ज़मीन से बहुत ज़्यादा पानी एवं भोज्यपदार्थ शोषित करता है जिससे मृदा बाद में कृषि योग्य नहीं रह जाती है तथा पानी की सतह ज़मीन में नीचे चली जाती है। यही इसका तथाकथित दोष है जिसको लेकर इसके विपक्ष में आवाज़ बुलन्द हो रही है। वैसे इस तथाकथित भ्रांति के पक्ष में अभी तक कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं हो पाया है। इस सन्दर्भ में एक विचार प्रस्तुत करना समीचीन होगा कि जो भी पौधा तीव्र गति से बढ़ेगा तो उसका सम्बन्ध उसके मृदा एवं वातावरण से अवश्य होगा। किन्तु युकेलिप्टस के सन्दर्भ में पौधे के दोष से अधिक पौध लगाने वाले का प्रतीत होता है, जो बिना यह समझे बूझे कि किस पौधे को कैसा वातावरण उपयुक्त होगा तथा पौधे की प्रकृति के विपरीत वातावरण में उसे रोपित किया है तो इसका प्रभाव मृदा पर पड़ना कोई अप्रत्याशित बात नहीं लगती। यही कुछ युकेलिप्टस के साथ हो रहा है जो भ्रांतियों की जड़ बन गया है। इस प्रकार यदि युकेलिप्टस को शुष्क जगहों पर न रोपित कर नम ज़मीन पर उगाया गया तो इसका फल अच्छा होगा। तालाब के आसपास, नाली तथा नहरों के किनारों पर तथा यहाँ तक कि कृषि योग्य भूमि के मेड़ों पर इसका रोपण अच्छा फल दे चुका है। सिंचाई का उत्तम प्रबन्ध होने पर इसे समोद्‌मिद् ज़मीन पर भी रोपित किया जा सकता है।

एकल संवर्धन वृक्षारोपण के क्षेत्र में कोई नयी बात नहीं है। यह पुराने काल से ही प्रचलन में रही है किन्तु आज के समय में यह नाम भले ही नया प्रतीत होता हो। पुराने काल से ही फलों की बाग लगाई जाती रही है जिसमें प्रायः एक ही जाति के वृक्ष रोपित किये जाते रहे हैं। ये वृक्ष सैकड़ों वर्षों तक फल प्रदान करते हैं। इसके बावजूद भी वहाँ की मृदा में उर्वरा-शक्ति की कमी या जल सतह का नीचे जाना नहीं सुना जाता। मानव ने ही नहीं प्रकृति ने भी एकल संवर्धन को अपनाया है। बहुत से ऐसे जंगल देखने को मिलते हैं जिनमें एक विशेष जाति की ही प्रचुरता रहती है। सागौन (**Teak**) के वन के लिए मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं आन्ध्रप्रदेश प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहे हैं। इनमें मध्यप्रदेश के कुछ हिस्सों तथा आन्ध्रप्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र जैसे स्थानों पर सागौन **95%** या इससे भी अधिक है जिसे हम प्रकृति का मोनोकल्चर ही कह सकते हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य प्रकार के वनों का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। साल के वन मध्यप्रदेश के रायपुर, बस्तर, बिलासपुर, मण्डला, बालाघाट आदि वन प्रभागों में बहुतायत से मिलते हैं। वर्तमान में वन विभाग के संरक्षण में रायपुर (म० प्र०) में प्राकृतिक उद्‌भवन (**Natural Regeneration**) तथा गोरखपुर एवं हल्दवानी (उ० प्र०) में टौंगिया एवं अन्य कृत्रिम उद्‌भवन द्वारा साल को रोपित किया गया है तथा इस विधि से साल के वनों को तैयार भी किया जा रहा है। किन्तु अभी तक इसके एकल रोपण से कोई दुष्परिणाम सामने नहीं आया है। हिमालय क्षेत्र चीड, फर, एवं देवदार के लिए बहुत पुराने समय से जाना जाता है। चीड 3000 फिट से 10,000 फिट ऊँचाई तक पायी जानेवाली जाति है जिसका वितरण कहीं-कहीं

पर 94% से 98% तक है जिन पर हमारा सम्पूर्ण रेंजिग उद्योग आधारित है। इन प्राकृतिक एकजातीय वनों से हमें कभी कोई शिकायत नहीं मिली। ये सभी वन एक प्रकार से प्राकृतिक एकल संवर्धन (**Natural Monoculture**) ही तो हैं।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि एकल संवर्धन के नाम मात्र पर आक्रोश व्यक्त करना उचित प्रतीत नहीं होता है। मोनोकल्चर के विषय में अपना मत व्यक्त करने से पहले कुछ तथ्यों पर विचार करना आवश्यक है : यथा किस प्रजाति के पौधे को रोपित करना है तथा किस जगह पर रोपित करना है। उस प्रजाति हेतु उस क्षेत्र की जलवायु उपयुक्त है कि नहीं, वहाँ पर उसे पूर्ण प्राकृतिक दशा प्राप्त हो सकेगी कि नहीं, उस क्षेत्र के लिए वह जाति देशज (इण्डिजिनस) है कि नहीं अर्थात् उस क्षेत्र में वह प्रजाति प्राकृतिक रूप से पायी जाने वाली है आदि। इसके साथ ही प्रजाति के आवर्तन काल (Rotation Period) को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह माना जाता है कि लम्बे आवर्तन काल वाले जाति के एकल-संवर्धन से हानि की सम्भावना शून्य के तुल्य होती है, क्योंकि इतने लम्बे आवर्तन अवधि में पौधों द्वारा मृदा से जो भी पोषक तत्व अवशोषित किये जाते हैं उनसे कहीं अधिक मात्रा में वह मृदा को देता है। यह पूर्ति उसकी पत्तियों के गिरकर सड़ने से होती रहती है। यह विदित है कि पौधे द्वारा जो भी पोषक तत्व अवशोषित किया जाता है वह किसी न किसी रूप में अवशोषित मात्रा से कहीं अधिक मात्रा में पत्तियों में उपस्थित रहता है। अतः जड़ों के माध्यम से मृदा से अवशोषित तत्व पत्तियों के माध्यम से मृदा तक पुनः पहुँच जाते हैं। मोनोकल्चर का दुष्परिणाम उस स्थिति में सम्भावित है जब उपरोक्त बातों पर ध्यान न दिया गया हो। कुछ लोग वानिकी के अन्तर्गत एकल संवर्धन की तुलना फसलों के एकल संवर्धन से करते हैं, जो सर्वथा अनुचित है, क्योंकि फसल का आवर्तन काल बहुत कम होता है तथा उसमें मृदा के पोषकतत्व सिर्फ ऊपरी सतह से ही अवशोषित किये जाते हैं।

अन्त में एक मुख्य बात यह है कि आज के युग में जहाँ पर वन-सम्पदा समाप्त होती जा रही है, वृक्षों का काटना मानव की सुलभ प्रवृत्ति सी बन गयी है वहाँ पर वृक्षारोपण मात्र ही महत्वपूर्ण है चाहे वह ''मोनोकल्चर'' के अन्तर्गत हो या ''पॉलीकल्चर''। इतना तो अक्षरशः सत्य है कि मोनोकल्चर के प्रति चाहे जितनी भ्रांतियाँ हों, यह चाहे जितना विवादास्पद हो, किन्तु वृक्ष के न रोपण से तो एकल संवर्धन बेहतर ही है। यदि हमें इस वसुन्धरा पर हरित शांति (ग्रीन पीस) लानी है तो हमें वृक्षारोपण करना ही है अन्यथा मानवजाति की ही नहीं, सम्पूर्ण जीव जगत् की अस्मिता ख़तरे में है।

हरित शांति है तभी सम्भव।
वृक्षों का यदि हो उद्भव ॥ □□

उछाल-प्रभाव : अप्रत्याशित की प्रत्याशा

जोस लुत्जनबर्गर

सामान्यतया मौसम विशेषज्ञ एवं वायुमण्डल-वैज्ञानिक इस कथन पर एकमत हैं कि मौसमी-अनियमितताएँ, जो विश्व में चारों ओर दिखाई पड़ रही हैं, वास्तव में तथाकथित 'हरितगृह प्रभाव' का प्रारम्भ व्यक्त करती हैं। यह भी आशा की जाती है कि पृथ्वी के चतुर्दिक स्थित वायुमण्डल आगामी **50** वर्षों में **2-3** अंश सेल्सियस का बढ़ा तापक्रम प्रदर्शित करेगा।

परन्तु इससे भी अधिक चिन्ता की बात यह

सौजन्य 'डेवलेपमेंट-फोरम', सितंबर-अक्तूबर 1989

सम्भावना है कि एक 'उछाल-प्रभाव' (फ्लिप ओवर एफेक्ट) अचानक ही इन भयानक परिणामों वाली प्रवृत्तियों को 10-15 वर्षों की अवधि में ही सामने उपस्थित कर सकता है।

रासायनिक प्रयोगशालाओं में, जब किसी परखनली में कोई पदार्थ विश्लेषित किया जाता है तो सूचक को धीरे-धीरे बूँद-बूँद करके ही डाला जाता है। प्रारम्भ में कुछ भी निरीक्षणीय नहीं होता, परन्तु एक ऐसी स्थिति भी आती है जब सूचक अचानक पूरी तरह रंग-परिवर्तन कर लेता है।

पृथ्वी के वातावरण की ओज़ोन पर्त में घट रहे नाटकीय परिवर्तन इस 'उछाल-प्रभाव' का मौसम सम्बन्धी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। क्योंकि पिछले 20 वर्षों से वैज्ञानिक वातावरण में प्रतिवर्ष 10 लाख टन क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सी० एफ० सी०) गैसों के वातावरण में उत्सर्जित किये जाने के फलस्वरूप वातावरणीय ओज़ोन-समाप्ति की चेतावनियाँ देते रहे हैं। और उनकी तार्किक अपेक्षा अगले 50 वर्षों में नियमित रूप में वातारणीय-ओज़ोन की समाप्ति रही है। परन्तु, वास्तव में जो हुआ-वह एक ओज़ोन विवर की अचानक उपस्थिति थी जो अत्यंत तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है। इस ओज़ोन विवर के सम्बन्ध में भी हम इसके अस्तित्व में आने के पश्चात् ही कुछ जान सके थे। और वह भी बहुत बाद में।

इसी प्रकार एक दशक पूर्व दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट पर 'उछाल-प्रभाव' की अप्रत्याशित घटना घटित हुयी। इस घटना ने भूमि और जल की भोजन-श्रृंखला पर श्रृंखला-प्रतिक्रिया प्रारम्भ कर दी तथा मानवीय-आर्थिक-क्रियाओं को भी नाटकीय रूप में परिवर्तित किया।

पहले घटित होता रहा घटना-क्रम इस प्रकार था—दक्षिण की शीत जल-धारा, हम्बोल्ट धारा, अपने साथ गहरे जल के पोषक-पदार्थ लाती थी जिससे पेरू के तटवर्ती क्षेत्रों में मछलियों की बहुतायत होती थी। इससे एक सम्पन्न मछली-उद्योग अस्तित्व में था। इसी प्रकार निकटवर्ती द्वीपों पर मछलियों की अत्यधिक उपस्थिति के कारण चिड़ियों की उपस्थिति और उनके द्वारा उत्सर्जित मल पदार्थ के कारण इन द्वीपों की उर्वरता सहज ही स्वीकृत थी।

बिना किसी चेतावनी के, अचानक ही, उत्तर से आती हुयी एक अपेक्षाकृत गर्म और पोषक पदार्थों से रहित जल-धारा ने 'हम्बोल्ट धारा' को समुद्र की ओर ढकेल दिया। भोज्य पदार्थों के अभाव ने मछलियों की संख्या को घातक हानि पहुँचाई और करोड़ों पक्षी भी काल कवलित हो गये। अचानक ही पेरू के तटवर्ती मछली-उद्योग का जैसे रातोरात सफाया हो गया।

परन्तु यह श्रृंखला-प्रतिक्रिया यहीं समाप्त नहीं हुयी। पेरू के मत्स्य-उद्योग की अचानक मृत्यु ने अमेज़न-क्षेत्र में विनाश की एक प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी है। सच्चाई यह है कि पेरू से इकट्ठा की गयी मछलियाँ मानवीय-भोजन के रूप में कम ही प्रयोग की जाती थीं, उनका उपयोग पशुओं के भोजन के लिये किया जाता था।

मछलियों की समाप्ति ने पशु-चारे की समस्या को भयावह स्तर तक पहुँचा दिया—विकल्प के रूप में सोयाबीन की खेती और उत्पादन बढ़ाने की चेष्टा की गयी। ब्राज़ील-प्रशासन ने दक्षिणी ब्राज़ील में सोयाबीन-उत्पादन को प्रोत्साहित किया। इस प्रक्रिया में रियोग्रान्दोदसुल, पुरना और सान्ता कतारिना के जंगल काटे गये और अब यह प्रक्रिया मध्य-ब्राज़ील के जंगलों के विनाश पर केंद्रित हो गयी है।

यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि ब्राज़ीली-सोयाबीन के उत्पादन की इस तीव्र वृद्धि से भूखे ब्राज़ीलवासियों को भोजन नहीं मिला। इस सोयाबीन ने यूरोप की गायों को पोषक आहार प्रदान करके वहाँ दूध और मक्खन के उत्पादन में वृद्धि की है।

वैसे ब्राज़ील में बड़ी जोत वाले किसानों की संख्या ही अधिक है, परन्तु दक्षिण ब्राज़ील के आप्रवासी जर्मन, इटैलियन, पोल और यहूदी नागरिकों ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में वहाँ पारिस्थितिक दृष्टि से त्रुटिहीन कृषि-प्रणाली विकसित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। सोयाबीन खेती को राजकीय संरक्षण और

प्रोत्साहन मिलने के कारण यह कृषि-प्रणाली और इस पर आधारित संस्कृति दोनों ही विनाश के कगार पर पहुँच गये। इस प्रकार लाखों लोगों ने न केवल अपनी भूमि छोड़ने की विवशता अनुभव की वरन् उन्हें अमेज़न के जंगलों में आश्रय लेने को मजबूर होना पड़ा।

ओज़ोन पर्त का विनाश और पेरू के मत्स्य-उद्योग की समाप्ति हमारे लिये चेतावनियाँ हैं—कि घटनाएँ हमारे अनुमान के अनुसार धीरे-धीरे और नियमित रूप में नहीं घट सकती हैं। जब यह दुर्घटनाएँ घटेंगी, वे अचानक ही सामने आएँगी, और पूरे विश्व पर हानिकर प्रभाव डालेंगी।

यही बात जंगलों के बारे में है। इन्हें बहुत तेज़ी से नष्ट किया जा रहा है और इनकी पूरी समाप्ति के लिये इन्हें पूरी तरह जलाना या काटना जरूरी नहीं होगा। इनके कुछ हिस्से की कमी पूरे जंगल को नष्ट करने की प्रक्रिया का कारण बन सकती है, क्योंकि जंगल के एक अंश की कमी ही वृष्टि और तापक्रम में ऐसे परिवर्तन कर सकती है जिनसे पूरा जंगल ही, कुछ वर्षों में अस्तित्वहीन हो जाए—स्वाभाविक है यह प्रक्रिया भी पूरे विश्व को प्रभावित करेगी। □□

[अनुवादक—राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप, शिक्षाशास्त्र विभाग, ए० पी० एन० कॉलेज, बस्ती-272001]

हमारी अंतरिक्ष उड़ानों में नए पंख

हरीश अग्रवाल

[आर्यभट उपग्रह से इनसेट-श्रृंखला के उपग्रहों तक भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान ने एक लम्बा सफर तय किया है। लेकिन कब तक हम विदेशी अड्डों से भाड़े के राकेटों पर अपने उपग्रह प्रक्षेपित कराते रहेंगे? क्या हम प्रक्षेपण-तकनीक में आत्मनिर्भर नहीं हो सकते?

—संपादक]

अंतरिक्ष में सफलताएँ प्राप्त करने के लिए भारतीय वैज्ञानिकों के प्रयत्न जारी हैं। चाहे बड़े देशों के बराबर भारत के पास इतने साधन नहीं हैं, फिर भी इतने थोड़े समय में अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी में देश ने काफी सफलता प्राप्त की है। अब अपने आप उपग्रह और राकेट तैयार किए जा सकते हैं। अंतरिक्ष में संदेश भेजने, वहाँ से चित्र मँगाने और पृथ्वी पर ग्रहण केन्द्र बनाने में हमने सफलता प्राप्त की है।

अब से 25 साल पहले तक अंतरिक्ष विभाग का कोई नामो-निशान न था। हमारे अंतरिक्ष संगठन स्थापित हुए तब हमारे पास अमेरिका से प्रशिक्षित वैज्ञानिक थे। उन्होंने नई-नई तकनीकों से अपना काम शुरू कर दिया। अब भी जब अमेरिका तथा यूरोप में निरंतर नई तकनीकें आ रही हैं, भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिक उन्हें भी अपना रहे हैं। अमेरिका से भारत को ये तकनीक नहीं मिल रही, लेकिन अब देश की आँख फ्रेंच तकनीक पर है और आशा की जा रही है कि इसके साथ-साथ यूरोप के अनेक उद्योग भारत के साथ कंधा से कंधा लगाकर चलेंगे।

समझा जाता है कि प्रक्षेपण वाहनों की आधुनिकतम जानकारी के लिए भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन तथा फ्रांस व अन्य यूरोपीय अंतरिक्ष संगठनों के बीच वार्ता चल रही है। आशा की जा रही है कि तकनीकी हस्तान्तरण सौदे की कीमत आठ अरब रुपया होगी।

थुम्बा में विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र के उच्च अधिकारी इसे स्वीकार नहीं करते। फिर भी गत नौ महीनों में बातचीत अवश्य हुई है। इनमें भारतीय वैज्ञानिकों तथा यूरोपीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों और उद्योगों ने भाग लिया है। अक्टूबर, 1988 में बंगलूर में अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष विज्ञान कांग्रेस हुई थी। तब से भारतीय अंतरिक्ष संगठन को अनेक विकल्प खोजने

का अवसर मिला। तब फ्रांसीसी वैज्ञानिकों की ओर से संकेत मिले कि आधुनिकतम तकनीक वे भारत को देने के लिए तैयार हैं, जिसे **एरियाने-3 प्रक्षेपण वाहन** में इस्तेमाल किया जाता है।

भारत भविष्य में अपने व्यावहारिक उपग्रहों के लिए समकालिक प्रक्षेपण वाहन पर निर्भर करेगा। ये उपग्रह दूरसंचार, मौसम की भविष्यवाणी तथा टेलीविजन व टेलीफोन संदेशों के लिए काम आते हैं। इनके लिए ज़रूरी है कि उपग्रह 25,000 मील की ऊँचाई पर रहे और 24 घंटे में पृथ्वी का एक चक्कर पूरा कर ले। तब पृथ्वी पर किसी भी देखने वाले के लिए उपग्रह स्थिर कक्षा में दिखाई देगा। इस प्रकार के उपग्रह को भू-समकालिक उपग्रह कहते हैं। इस प्रकार के भारी उपग्रह छोड़ने के लिए प्रक्षेपण वाहन के लिए विशेष प्रकार के ईंजन चाहिए। इन्हे "क्रामोजेनिक इंजन" कहते हैं। भारत फ्रान्स से इन इंजनों की तकनीक प्राप्त करना चाहता है। इस समय बहुत कम देशों के पास इस प्रकार के इंजन हैं। इनमें द्रव हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन इस्तेमाल होती है और इनका तापमान बहुत कम रखा जाता है।

भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिक यह अच्छी तरह समझते हैं कि द्रव इंजन तकनीक में हमारा भविष्य है। भारत को ठोस इंजन विकसित करने का अनुभव है। भारत के दो उपग्रह प्रक्षेपण वाहन सफल हो चुके हैं, फिर भी ठोस इंजन टेक्नोलॉजी में हम पिछड़े नहीं हैं। इस समय हम ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण वाहन तैयार कर रहे हैं। भारतीय अंतरिक्ष संगठन को आशा है कि 1990 तक हम इसकी तथा उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (ए० एस० एल० वी०) की उड़ानें सफलतापूर्वक कर लेंगे। इस समय प्रक्षेषण वाहन अपने ठोस ईंधन इंजनों का प्रयोग करके 150 किलोग्राम भारी उपग्रह को 400 किलोमीटर की कक्षा में स्थापित कर सकता है। लेकिन ध्रुवीय वाहन (पी० एस० एल० वी०) का उद्देश्य भारतीय सुदूर संवेदन श्रेणी (आई० आर० एस०) के उपग्रहों को सूर्य की समकालिक कक्षा में स्थापित करना है। भारतीय अंतरिक्ष संगठन के वैज्ञानिकों का कहना है कि सुदूर संवेदन उपग्रहों को छोड़ना इतना ज़रूरी नहीं है, जितना बड़े बहुददेशीय इन्सेट श्रेणी के उपग्रहों को भू-समकालिक कक्षा में छोड़ना।

चार चरण वाला ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण वाहन ठोस तथा द्रव दोनों ही प्रकार के इंजन इस्तेमाल करता है। वास्तव में इस योजना के अंतर्गत महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हो चुकी। दक्षिण भारत में वालियामल स्थान में द्रव इंजन प्रणाली केन्द्र के निदेशक **डॉ० मुथुनायगम** के अनुसार केन्द्र में भारतीय द्रव इंजन विकसित कर लिया गया है और इसका नाम 'विकास' रखा गया है।

वास्तव में विकास इंजन की तकनीक फ्रांसीसी वाइकिंग इंजन पर आधारित है। यहाँ यह बात दिलचस्प है कि "विकास" के लिए मूल जानकारी फ्रांस से आई, लेकिन इंजन को बनाने और उसके परीक्षण का सारा काम देश में ही पूरा हुआ।

21 नवम्बर 1988 को भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम को 25 वर्ष पूरे हुए। इस दिन तीन बड़ी उड़ानों की घोषणा की गई—(1) सुदूर संवेदन उपग्रह-1 ए की उड़ान, (2) उपग्रह प्रक्षेपण वाहन-ए० एस० एल० वी०-डी 2 की विकासात्मक उड़ान तथा (3) दूर संचार उपग्रह इन्सेट-1 सी की उड़ान। अंतरिक्ष आयोग के अध्यक्ष प्रो० यू० आर० राव भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम के प्रति बहुत आशावान हैं। उनका कहना है कि हमारी एक दो असफलताओं से हमारे सारे कार्यक्रल पर छींटाकशी नहीं करनी चाहिए। हम महत्वपूर्ण टेक्नोलॉजी पर काम कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि इनके द्वारा हमारे प्रक्षेपण वाहनों पर खर्च कम हो जाए। वे कहते हैं—"हमें आगे प्रयोग करने से कोई नहीं रोक सकता। अपना अंतरिक्ष कार्यक्रम आगे ले जाने से लिए हम वचनबद्ध हैं। हमने अपनी अंतरिक्ष योजनाओं का एक दशक का कार्यक्रम बनाया है। हमने सुझाव दिया है कि भविष्य में 20 प्रतिशत बजट अनुसंधान और विकास के लिए निर्धारित किया जाए आज जो अनुसंधान है वह आठ-दस वर्ष में हमारी कार्य प्रणाली बन जाती है। हमें यही बात आत्मनिर्भरता की ओर ले जाएगी।" ◘☐

(इस्वा फीचर्स)

भारी धातुयें और मृदा-प्रदूषण | दिनेश मणि

मृदा, पर्यावरण के सभी घटकों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटक है। सारे अपशिष्ट पदार्थ जो कि वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि के लिए उत्तरदायी हैं, मृदा को भी प्रदूषित करते हैं। कल-कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों से युक्त जल से सिंचाई करने तथा सघन कृषि के लिये अधिक मात्रा में प्रयुक्त रासायनिक उर्वरकों एवं जीवनाशियों (कीटनाशी, शाकनाशी एवं कवकनाशी आदि) के फलस्वरूप मृदा में भारी धातुओं की मात्रा बढ़ रही है (भारी धातुओं के अन्तर्गत वे तत्व आते हैं जिनका घनत्व 5 से अधिक होता है)। मुख्य भारी धातुयें जो कि अधिकांश उद्योगों द्वारा उत्सर्जित होती हैं निम्न हैं—कैडमियम, क्रोमियम कोबाल्ट, कापर, आयरन, मरकरी, मैंगनीज, मोलिब्डिनम, निकिल, लैड, टिन तथा ज़िंक।

कुछ भारी धातुओं जैस—कापर, आयरन, मैंगनीज जिंक, मोलिब्डिनम तथा कोबाल्ट की सूक्ष्म मात्रा पौधों के लिये आवश्यक होती है। कुछ भारी धातुओं जैसे क्रोमियम, निकिल तथा टिन की सूक्ष्म मात्रा जानवरों के लिये आवश्यक होती है, किन्तु कैडनियम, मरकरी तथा लैड न तो पौधों के लिये आवश्यक हैं और न ही जानवरों के लिए अर्थात् पर्यावरण में इनकी उपस्थिति वनस्पतियों, जीवों एवं स्वयं मनुष्य के लिये हानिकारक होती है।

सारिणी–1

भारी धातुओं की सान्द्रता (माइक्रोग्राम/ग्राम शुष्क पदार्थ)

भारी धातु	थल-मण्डल में[1]	मृदा में[2]		पौधों में[3]
		औसत	परिसर	
कैडमियम	0.2	0.06	0.01—0.7	0.2—0.8
कोबाल्ट	40	8	1—40	0.05—0.5
क्रोमियम	200	100	5—3000	0.2—1.0
कॉपर	70	20	2—100	4—15
आयरन	50,000	38,000	700—550,000	140
मरकरी	0.5	0.03	0.01—0.3	0.015
मैंगनीज	1000	850	100—4000	15—100
मोलिब्डिनम	2.3	2	0.2—5	1—10
निकिल	100	40	10—1000	1
लेड	16	10	2—200	0.1—10
टिन	40	10	2—200	0.3
जिंक	80	50	10—300	8—100

1—गोल्डस्मिट, 1958 2—बोवेन, 1966 3—अलाये, 1968

सारिणी–2

प्रमुख भारी धातुओं की विषाक्तता

भारी धातु	विषाक्तता स्तर	भारी धातु	विषाक्तता स्तर
क्रोमियम	निम्न	कैडमियम	मध्यम से उच्च
निकिल	उच्च	मरकरी	निम्न से उच्च
ज़िंक	मध्यम	लेड	उच्च

शोध छात्र, शीलाधर मृदा-विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सारिणी-3

विभिन्न भारी धातुयें एवं इनकी अधिकतम स्वीकार्य सान्द्रता

भारी धातु	अधिकतम स्वीकार्य सान्द्रता मि० ग्रा०/लीटर
कैडमियम (Cd)	0.01
क्रोमियम (Cr^{6})	4.05
लेड (Pb)	0.05
मरकरी (Hg)	0.005
सेलीनियम (Se)	0.01
सिल्वर (Ag)	0.05
आर्सेनिक (As)	0.1
बेरियम (Ba)	0.1
कॉपर (Cu)	3.0
आयरन (Fe)	0.3
मैंगनीज (Mn)	0.3
ज़िंक (Zn)	15

अपशिष्टों में पायी जाने वाली ये भारी धातुयें मृदा की ऊपरी सतह से लेकर काफी गहराई तक मिट्टी में पहुँच जाती हैं और अन्ततः भूमि-जल को भी प्रदूषित कर देती हैं। (अर्थात् इनकी सान्द्रता विषाक्तता स्तर से अधिक हो जाती है।) मृदा प्रदूषण के लिये घरेलू वाहित मल-जल कम, कल-कारखानों से निकला हुआ वाहित अपाशिष्ट पदार्थ अधिक ज़िम्मेदार है, क्योंकि इसमें विषैले भारी तत्वों की अधिक मात्रा रहती है। ऐसे जल से खेत की सिंचाई करने पर उसमें उगाई गयी फसल में इन विषैले भारी तत्वों का संचय हो जाता है, क्योंकि पौधे अपनी जड़ों द्वारा जिस मृदा-विलयन से पोषक तत्वों का अवशोषण करते हैं उसमें इनकी सान्द्रता बढ़ जाती है। विषैले भारी तत्वयुक्त पौधों के खाने योग्य भागों का जानवरों या मनुष्यों द्वारा उपयोग करने पर ये तत्व शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इनका दुष्प्रभाव तमाम बीमारियों के रूप में शरीर पर पड़ता है। उदाहरण के लिये कैडमियम की विषाक्तता का दुष्प्रभाव यकृत (लीवर) तथा गुर्दे (किडनी) पर पड़ता है।

भारी धातुओं से मृदा में होने वाले बचाव के लिये कल-कारखानों से निकले हुये अपशिष्ट पदार्थों को सीधे खेती योग्य भूमि या जल स्रोतों में न बहाकर इन्हें एक निश्चित स्थान पर (कृषि के लिये बेकार भूमि) एकत्रित करके इनकी छँटाई, पिसाई, संग्रहण कम्पोस्टिंग, इन्हें सुखाकर एवं खाद मिलाकर उपयोग में लाना चाहिये। ऐसा करने से मृदा को प्रदूषित न होने के साथ भूमि को उपजाऊ भी बनाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त वाहित मल-जल को भूमि पर बहाने के पूर्व इसका तनूकरण कर लेने से इसमें भारी धातुओं की सान्द्रता कम होती है। इसके लिये उपचार संयन्त्रों की भी व्यवस्था की जा सकती है। ☐☐

फफूंदों के बिना-असम्भव है जीना

डॉ० ब्रजेश कुमार राय
कु० अरविन्दर कौर

शायद आप चौंक गए। चौंकिए मत। यह एक कड़वा सच है। यदि प्रकृति ने आज तक फफूँदों या कवकों (**Fungi**) को बनाकर, संजोए कर न रखा होता तो आज पाँच अरब से भी अधिक मनुपुत्रों का भार ढोती हुई धरती जीव-हीन रही होती। यदि जीव होते भी तो वे केवल सूक्ष्म जीव होते, वह भी बहुत कम तादाद में। शायद आप को अभी भी विश्वास नहीं हो रहा है। आइए, देखिए फफूँदों के जन्म लेने से आज तक की कहानी।

• वनस्पति विभाग, शासकीय विज्ञान आदर्श महाविद्यालय, जबलपुर—482001 (मध्य प्रदेश)

पृथ्वी आग उगलती गोला थी जो ठंडी होती गई; गुजरती गई अनेक भौतिक, भौगोलिक, भूगर्भिक, रसायनिक परिवर्तनों से जिसके परिणामस्वरूप वह तैयार हुई जीव-धारण करने के लिए। प्राप्त जीवाश्म विज्ञान के सबूतों से यह स्पष्ट है कि सर्वप्रथम जीव की उत्पत्ति समुद्र के जल से हुई थी और पहला एककोशिक जीव आज से लगभग 5,000 मिलियन वर्ष पूर्व रासायनिक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न हुआ था। इसी अवस्था से लेकर शुरू हुई एक ऐसी प्रक्रिया जो आज भी हो रही है और भविष्य में भी होती रहेगी। यह क्रिया है—जैव विकास जिसने समय-समय पर पृथ्वी को अलग-अलग जीव दिए हैं। पहले के जीव सरल, एककोशिक थे और आज के जीव जटिल और बहुकोशिक हैं और कल के जीव जटिलतम होंगे। इस जैव विकास ने पृथ्वी को एक लम्बे समय बाद मानव जाति प्रदान की है जो शुरू में तो प्रकृति की गुलाम थी परन्तु अब प्रकृति को ही गुलाम बनाना चाहती है। प्रकृति के परम्परागत चलरहे क्रिया-कलापों से छेड़खानी करने को हमेशा आतुर रहती है यह मानव जाति।

आज से 2,000 मिलियन वर्ष पूर्व 'फफूँदों ने अपने निकटतम रिश्तेदारों यानी जीवाणुओं और नील हरित शैवालों के साथ इस पृथ्वी पर बसेरा डाला था। तब से लेकर आज तक फफूँदों ने पृथ्वी के विभिन्न रूप महसूस किए हैं। शुरू में उत्पन्न हुई फफूँदें अपने ही मरे-अधमरे परिजनों स्वजनों पर अपने भोजन के लिए आश्रित थीं परन्तु समय के साथ-साथ इन्होंने पृथ्वी पर समय-समय पर पदार्पण करते जीवों को भी अपना ग्रास बनाना शुरू किया। कुछ फफूँदे इतनी क्रोधित हुईं कि अन्य जीवों पर जीवित अवस्था में ही आक्रमण बोल दिया और उनके भोज्य पदार्थों पर अधिकार कर लिया। कुछ फफूँदै जो नरम दल की थीं उन्होंने इन नए आए जीवधारियों को अपना ग्रास उस वक्त बनाया जब ये जीव काल के ग्रास हो जाया करते थे। दर असल प्रकृति ने धरती को फफूँदें इसलिए सौंपी थीं कि वे धरती पर सफाई किया करेंगी, सड़ी-गली वस्तुओं को तोड़ेंगी और उन तत्वों को मुक्त करेंगी जिनसे मिलकर जीवों की उत्पत्ति होती है।

कितनी कर्त्तव्यपरायण हैं ये फफूँदें। अपने जन्म से लेकर आज तक, सौंपे गए अपने कार्य को कितने मुस्तैदी से करती हैं। प्लास्टिक जैसी अमर कही जाने वाली वस्तुओं को भी ये धीरे-धीरे नष्ट कर डालती हैं। इनकी इस धैर्यता की दाद देनी होगी। इसके अतिरिक्त ये फफूँदें अपने सूक्ष्मजीवी परिवार के साथ भी ताल-मेल बनाए रखती हैं। आपस में मिल-जुलकर ये सभी जीव रहते हैं, भोजन बाँट-बाँट कर खाते हैं। हालाँकि इनमें भी कुछ नट-खट होते हैं।

समय-समय पर पृथ्वी ने कई करवटें लीं हैं। हर करवट से जीव-जगत् में भारी तब्दीली आई है। कुछ नये पेड़ पौधे और जन्तु आये हैं और कुछ पुराने पेड़-पौधे जन्तु सहित समय की गोद में समा गए हैं। पृथ्वी की करवटों ने फफूँदों पर भी असर डाला लेकिन इन फफूँदों ने बदलते वातावरण के साथ हर पल जीवित रहने के लिए कोशिश की तथा अपने कुछ सदस्यों की समय-समय पर आहुति दे-देकर अपने को पृथ्वी पर हमेशा बनाये रखा।

जब बड़े पेड़-पौधों ने पृथ्वी पर पनपना शुरू किया तो फफूँदों ने भी अपने-अपने कार्य क्षेत्र बाँट लिए। फफूँदों का एक समुदाय जीवित पेड़-पौधों की पत्तियों, डालियों, शाखाओं, तनों पर आक्रमण कर रोग उत्पन्न करने लगे तथा उन्हें काल के गाल में सौंपने लगे। फफूँदों के दूसरे समुदाय ने इन काल ग्रसित जीवों को अपना भोजन बनाया तथा पृथ्वी को भेंट में एक ह्यूमस की मोटी परत दी। प्रकृति भी खुश हुई और 230 मिलियन वर्ष पूर्व से लेकर 135 मिलियन वर्ष पूर्व तक पृथ्वी को भारी नग्नबीजी पेड़-पौधों के जंगल भेंट में दिए। इस बढ़ती हुई वन-संपदा ने फफूँदों के क्रिया-कलापों में भी परिवर्तन किया।

कुछ फफूँदों ने इन पेड़-पौधों की जड़ों के साथ रहने का फैसला किया। तय यह हुआ कि फफूँदें इन जड़ों को जल तथा खनिज लवण देंगी और जड़ें इन फफूँदों को पत्तियों द्वारा निर्मित और फ्लोएम ऊत्तक

द्वारा पहुँचाए गए भोज्य पदार्थों का कुछ अंश देंगी। वनस्पति विज्ञान की भाषा में इस अवस्था को 'माइकोराइज़ा' कहते हैं। **पाइनस (Pinus)** वृक्ष की जड़ों में यह तथ्य आज भी दृष्टिगोचर होता है। समय ने पेड़-पौधों को इतना आश्रित कर दिया है कि ये वृक्ष बिना अपनी फफूँदों के जीवित नहीं रह सकते, जैसे **मोनोट्रोपा** (Monotropa)।

आप सोचते होंगे कि ये फफूँदें हमेशा दूसरों के द्वारा निर्मित भोज्य पदार्थों पर ही क्यों आश्रित रहती हैं? वास्तव में प्रकृति ने इन्हें 'क्लोरोफिल' नामक चूल्हा नहीं दिया जिससे ये अपना भोज्य पदार्थ निर्मित कर सकें। प्रकृति ने क्लोरोफिल केवल हरे पेड़-पौधों को ही उपहार में दिया है चाहे वे शैवाल, हों या ब्रायोफाइट, टेरिडोफाइट, जिम्नोस्पर्म अथवा एन्जियोस्पर्म हों। दरअसल यह वनस्पतियों के विकसित होने का क्रम है। फफूँदों का विकास तो जन्तुओं के पूर्वज यानि प्रोटोज़ोआ (**Protozoa**) के खानदान से हुआ है फिर प्रकृति इन्हें क्लोरोफिल प्रदान कर जन्तु जगत् के साथ पक्षपात क्यों करे?

विभिन्न युगों के अन्तर्गत विकास का अध्ययन करने से पता चलता है कि मानव विकास प्लीस्टोसीन युग में अर्थात् आज से 1-5 मिलियन वर्ष पूर्व हुआ था। अपने पेट की क्षुधा को मिटाने के लिए आदि मानव ने जंगलों में घूमकर उस वक्त की वनस्पतियों के फल-फूल, कन्द-मूल आदि खाए। समय के साथ-साथ सभ्यता की दौड़ ने मानव को वनस्पतियों पर आधारित कर दिया।

ग्रीस और रोम की सभ्यता से मालूम चलता है कि वे फफूँदों की एक किस्म **मशरूम** को खाने के लिए इस्तेमाल किया करते थे। चीन में कई शताब्दियों से फफूँदों को खाद्य तथा दवा के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। **गैस्पर्ड बुहीन** ने फफूँदों की 100 जातियाँ खोजीं और उनमें से अधिकांश का प्रयोग दवा के रूप में अपने जीवन-काल में किया। यहीं से शुरू होता है मानव क्षेत्र में फफूँदों की उपयोगिता। फफूँदों का अध्ययन 'माइकोलॉजी' कहलाता है। समय-समय पर अनेक माइकोलॉजिस्टों (कवकविदों) ने अपना सम्पूर्ण जीवन फफूँदों के विभिन्न रूपों का अध्ययन कर मानव जाति के हित में लगाया है।

माइकोलॉजी के क्षेत्र में निरन्तर किए जा रहे अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ कुछ फफूँदें हानिकारक हैं, फसलों, जानवारों और मानव में रोग उत्पन्न करती हैं वहीं कुछ फफूँदें लाभदायक भी हैं। शराब बनाने से लेकर दवाईयों के निर्माण में फफूँदें अपना अमूल्य योगदान देती हैं। **पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, ऐरोमाइसिन, टेरामाइसिन** जैसी अनेक, प्रतिदिन हमारी स्वास्थ्य रक्षा में जुड़ीं, दवाईयों की जन्मदाता ये फफूँदें ही हैं। मशरूम के रूप में, या गुच्छी (मॉरकेला) के रूप में फफूँदें काफी अधिक मात्रा में आर्थिक लाभ देते हुए हमें पौष्टिकता प्रदान करती हैं।

हाल के वर्षों में कीड़े-मकोड़ों की फफूँदों के द्वारा नष्ट करने से संबंधित शोध-कार्य चल रहे हैं। पचास से भी अधिक ऐसी फफूँदें खोजी जा चुकी हैं जो कि कीड़े-मकोड़ों को नष्ट कर डालती हैं और जिनसे हमारी फसलों को भारी हानि पहुँचती है। फफूँदें चर्म उद्योग से लेकर आनुवंशिकी के अध्ययन-कार्य तक हमारी सेवा करती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फफूँदें जो प्रायः सूक्ष्म होती हैं, हमारे रोज़मर्रा के जीवन में कितनी उपयोगी और लाभप्रद हैं। इनके अभाव में हमारा जीवन संकट में पड़ सकता है। यदि फफूँदें आज नहीं होतीं तो मृदा की उर्वरता न होती, पेड़-पौधे न होते, ऑक्सीजन न होती, सड़ती-गलती वस्तुओं से ज़हरीली गैसें निकलती और सभी बहुकोशिक जीव समाप्त हो जाते। कुछ समय के लिए एक कोशिक सूक्ष्मजीव होते और हमारी इस धरती पर जीव-जन्तुओं का विकास न हो पाता। फिर कैसा स्वरूप होता इस वसुन्धरा का?

अतः हमें सचेत रहते हुए, दूरदर्शिता तथा संयम से प्रकृति द्वारा विरासत में मिली इन फफूँदों का अध्ययन कर इनकी उपयोगिता को बढ़ाना है। शासन को चाहिए कि इन नन्हीं-नन्हीं वनस्पतियों से संबंधित शोध-कार्यों को अधिक से अधिक आर्थिक सहायता प्रदान करे ताकि प्रकृति का संतुलन बना रहे। □□

विकिरण द्वारा खाद्य पदार्थों का परिरक्षण

डॉ० अशोक कुमार गुप्ता

विकिरण शब्द से अनायास ही मन में एक भय-सा उत्पन्न हो जाता है। पर अब विकिरण के अनेक मानवोपयोगी रूप भी सामने आ रहे हैं। वैज्ञानिकों को विकिरण की सहायता से खाद्य पदार्थों के परिरक्षण में अभूतपूर्व सफलता मिली है। विकिरण वास्तव में एक प्रकार की आण्विक ऊर्जा है और इस आण्विक ऊर्जा को फलों, सब्जियों, अनाजों आदि को परिरक्षित कर अधिक समय तक ताज़ा व गुणवत्ता बरकरार रखी जा सकती है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से फल व सब्जियों के परिरक्षण की उपयोगिता समझ में आ गई थी और तभी से इन्हें लम्बी अवधि के लिए परिरक्षित करने के अनेक उपायों पर शोध-कार्य चल रहे हैं। समय-समय पर सब्जियों एवं फलों के परिरक्षण में अनेक तकनीकों का विकास हुआ, जिससे फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने की समस्या कुछ हद तक हल हो गई। इनमें निर्जलीकरण, नमक व अनेक परिरक्षक रासायनिक पदार्थों का उपयोग, तथा हिमीकरण अत्यन्त सफल हुआ। यही नहीं, इससे सब्जियों और फलों के पकने के समय इन पर आक्रमण करने वाले अनेक रोगों से रक्षा के भी उपाय मिल गये हैं। विकिरण द्वारा परिरक्षण किये जाने से सब्जियों और फलों के रंग, सुगन्ध, बनावट, तथा उनकी गुणवत्ता में कोई परिवर्तन नहीं होता और वे ताजा ही दिखते हैं। फसल कटने के बाद समुचित भण्डारण व्यवस्था न होने तथा विपरीत वातावरणीय प्रभाव के कारण खाद्य-पदार्थों की भंडारण क्षमता कम हो जाती है, जिससे किसानों को बहुत हानि होती है। मत्स्य, कृषि-उत्पाद तथा अन्य तैयार खाद्य सामग्रियों की विकिरण द्वारा भंडारण क्षमता बढ़ने तथा उन्हें लम्बे समय के लिए परिरक्षित करने में कृषकों एवं उत्पादकों को होने वाली क्षति से छुटकारा मिलने की संभावना बढ़ी है। यही नहीं, इस तकनीकी से अपने उत्पाद को परिरक्षित कर कृषकों ने निर्यात करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है, जबकि पहले उन्हें अपने उत्पाद कम मूल्य पर बेचने पड़ते थे। आज इस नवीन परिरक्षण विधि द्वारा ताज़े खाद्य-पदार्थों को कृषकों को सुदूर स्थानों तक भेज कर अच्छे दाम प्राप्त करने में सफलता मिल चुकी है।

भारतवर्ष में आलू एवं प्याज सबसे अधिक मात्रा में पैदा होता है। इससे किसान को न केवल नगद पैसा मिलता है वरन् इसके निर्यात द्वारा देश को भी विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। प्याज और आलू में अंकुर निकल आने से इसकी भण्डारण क्षमता कम हो जाती है। अतएव इनकी गुणवत्ता में कमी आते ही कृषक को बहुत कम मूल्य मिल पाते हैं। इनमें अंकुरण रोकने के लिये 15 किलो–रैड्स से कम विकिरण देकर इनके भण्डारण को अधिक समय तक के लिये सुनिश्चित किया जा सकता है। यही नहीं, प्याज व आलू में अंकुरण के अलावा उनमें निर्जलीकरण से होने वाली क्षति को रोका जा सकता है। उन्नतशील प्रजातियों के उपयोग तथा कीट व रोगरोधी किस्मों के विकास से पिछले कई वर्षों से आलू व प्याज की पैदावार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। पर ऐसे पैदावार की भण्डारण क्षमता सामान्यतया कम देखी गई है। रासायनिक तरीकों से इनमें अंकुरण रोकना अत्यन्त कठिन तथा खर्चीला कार्य है। और तो और प्रभावी भी कम होता है। विकिरण द्वारा इनके अंकुरण को रोकना सरल तथा अत्यन्त प्रभावकारी है। साथ ही इनमें 'कन्द-माथ' कीट का प्रकोप भी कम हो जाता है। यह कीट आलू के भण्डारण में अत्यन्त हानिकारक है। अतः आलू, प्याज, लहसुन, अदरक तथा अन्य कन्द सब्जियों में अंकुरण से होने वाली क्षति को विकिरण द्वारा सफलतापूर्वक रोका जा सकता है। अभी इस विधि को

कृषि रसायन विभाग, इलाहाबाद एग्रीकल्चर इंस्टीट्यूट, नैनी, इलाहाबाद

प्रचलित होना है। परीक्षणों द्वारा यह मालूम हो गया है कि निर्धारित समय के पश्चात् विकिरण से कोई हानि नहीं है तथा विकिरण द्वारा परिरक्षित सब्जियों का लगातार उपयोग करते रहने से भी शरीर में विकिरण का कोई दूरगामी प्रभाव भी नहीं होता।

अनेक फल जैसे आम, केला, अमरूद, सेब, संतरा, अंगूर, नाशपाती, सफेदा के शीघ्र पकने के कारण उनके स्थानान्तरण तथा भण्डारण में कई तरह की समस्यायें उत्पन्न होती हैं। सर्वाधिक उत्पादन के समय इनको निर्यात कर या सुदूर स्थानों तक भेज कर वांछित मूल्य नहीं प्राप्त हो पाता है और कम मूल्य में ही बेंच कर संतोष करना पड़ता है। इससे हानि तो उठानी ही पड़ती है। इस क्षति को अत्यन्त कम विकिरण अर्थात् 50 किलो रैड से भी कम द्वारा इन फलों के पकने में विलम्ब कर, रोका जा सकता है। विकिरण के प्रयोग से इनको एक-दो सप्ताह तक पकने से रोका जा सकता है। यही नहीं, आम तौर से अविकिरित ये फल पकते समय कई कीटों व रोगाणुओं के शिकार हो जाते हैं, जिससे इनकी क्षति दर बढ़ जाती है या इनकी गुणवत्ता घट जाती है। गामा-विकिरण द्वारा इन्हें कीटों, कवकों, व जीवाणुओं के आक्रमण से बचाया जा सकता है।

भारत आज खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है साथ ही वह अन्य देशों को खाद्यान्नों के आयात की भी क्षमता रखता है। अन्न का भण्डारण ठीक न होने से अभी भी 10 प्रतिशत से अधिक अन्न कीड़ों द्वारा नष्ट हो जाता है। कीड़ों से इन्हें बचाने के लिए कीटनाशी रसायनों व धूमकों का बार-बार प्रयोग करना पड़ता है। क्योंकि इन रसायनों के उपयोग से विकसित कीट तो नष्ट हो जाते हैं पर अंडों पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता और इसी कारण बाद में अण्डों से विकसित कीटों को नष्ट करने के लिए इन रसायनों का पुनः प्रयोग आवश्यक होता है। अपर्याप्त भण्डारण सुविधा के कारण कीड़ों से क्षति होती है। छोटा किसान तो अपनी वर्ष भर की आवश्यक खाद्यान्न की मात्रा का भी ठीक से भण्डारण नहीं कर पाता। विकिरण के प्रयोग से खाद्यान्न पूर्णतया कीटमुक्त तथा जीवाणुमुक्त हो जाता है और कीटों के अंडे भी मर जाते हैं। इस विधि द्वारा भण्डारण करने से खाद्यान्नों की भण्डारण क्षमता कई गुनी बढ़ जाती है। सरकारी गोदामों में तथा 'बफर स्टॉक' गोदामों में इस विधि द्वारा सफलता से अन्न को सुरक्षित किया जा सकता है इसी विकिरण तकनीकी द्वारा आटा, सूजी, मैदा, वेसन, दलिया आदि को भी कीटों से रक्षा की जा सकती है, जिससे इनके 'पैकेट' अधिक दिनों तक सुरक्षित रह सकें।

भारत में लगभग 5000 किलोमीटर समुद्रीतटों पर बसे अधिकांश लोग मत्स्य-व्यवसाय में लगे हैं। मांसाहारी खाद्यों में मत्स्य का प्रमुख स्थान है। पर समुद्रीतटों पर बसे लोगों में से 70 प्रतिशत व्यक्तियों की यह मुख्य भोज्य सामाग्री है। मत्स्य एक अच्छा प्रोटीन स्रोत है व पौष्टिक आहार भी। शीघ्र ही सड़ कर खराब होने के कारण मछलियों को दूर तक नहीं भेजा जा सकता है। जीवाणु द्वारा उत्पन्न सड़न को 200 किलो रैड के विकिरण द्वारा रोका जा सकता है तथा विकिरण द्वारा परिरक्षित मछलियों को लगभग दो सप्ताह तक सड़ने से रोका जा सकता है। मछलियों से बने स्वादिष्ट व्यञ्जनों को हिमीकरण विधि द्वारा डिब्बों में बन्द करने के पूर्व विकिरत करने से इन व्यंजनों को काफी लम्बे समय तक के लिए सड़ने से रोका जा सकता है तथा सुदूर स्थानों तक सरलता से भेजा जा सकता है। डिब्बों में रखे मत्स्य खाद्य व मत्स्य व्यंजन महीनों तक अपरिवर्तित व सुरक्षित रहते हैं।

भारत मसालों व मेवों का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। यहाँ से मसालों का बहुत अधिक निर्यात होता है। कीट व अनेक रोगों से ग्रसित होने के कारण इनकी गुणवता में कमी आ जाती है, जिससे विदेशों में ये विक नहीं पाते तथा निर्यातकर्ताओं को बहुत क्षति उठानी पड़ती है। हल्दी, मिर्चा, इलायची, जीरा, धनिया, सौंफ, लौंग, काजू, मखाना, पिस्ता, बादाम

आदि का संरक्षण रासायनिक धूमकों द्वारा ठीक से नहीं हो पाता। इनके स्वाद व सुगन्ध में भी अन्तर आ जाने से इसकी गुणवता में कमी हो जाती है। एक एम-रैंड से भी गामा विकिरण द्वारा इन मसालों व मेवों को अधिक दिनों तक सुरक्षित रक्खा जा सकता है। इस तकनीकी द्वारा परिरक्षित करने से इनके अन्दर प्रवेश कर गये कीटों के अण्डे व जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। फिर तो ये परिरक्षित मसाले और मेवे दूर-दूर के स्थानों को बिना खराब हुए भेजे जा सकते हैं।

यूँ तो विकिरण द्वारा खाद्य-पदार्थों को परिरक्षित करना सरल व लाभकारी प्रतीत होता है पर इस तकनीकी से उत्पन्न होने वाली हानियों को भी समझ लेना बहुत ज़रूरी है। विकिरण का जीवों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हानिकारक प्रभाव पड़ता है। अत-एव इस विधि द्वारा खाद्य-पदार्थों को परिरक्षित करने से पूर्व वैज्ञानिकों का चिंतित होना स्वाभाविक था। अतः इस ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। विकिरण से परिरक्षित खाद्य-पदार्थों को बाज़ार में भेजने से पूर्व राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक परीक्षण किये गये। इनके दूरगामी प्रभावों के जैविक परीक्षण भी विभिन्न प्रयोगशालाओं में किये गये। 'खाद्य एवं कृषि संगठन' तथा 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के संयुक्त तत्वाव-धान में विशेषज्ञों के दलों ने अनेक परीक्षणों के बाद संतुष्ट होने पर ही इस परिरक्षण तकनीकी की स्वीकृति दी। खाद्य सामाग्री में एक एम-रैंड की विकिरण मात्रा मनुष्यों के लिए सुरक्षित मानी गयी है। मानव शरीर पर इसका कोई विषाक्त परिणाम नहीं देखा गया है। विकिरण की इस मात्रा से बहुत कम मात्रा में ही खाद्य सामाग्री का परिरक्षण किया जाता है। अतः विकिरण द्वारा मनुष्यों के स्वास्थ्य पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं देखा गया है। यह विधि एक सुरक्षित विधि है।

अब तक तीस देशों ने विभिन्न 40 से अधिक खाद्य सामग्रिओं में विकिरण की इस भौतिक परिरक्षण पद्धति को मान्यता प्रदान कर दी है। पर डिब्बों या बक्सों पर विकिरण की मात्रा, दिनांक आदि का स्पष्ट उल्लेख आवश्यक है।

भारत में प्याज, आलू, हिमीकृत समुद्री खाद्य सामाग्री, मसालों आदि को विकिरण द्वारा परिरक्षित करने की मान्यता प्राप्त है। 'भाभा परमाणु शोध संस्थान' (बम्बई) में इस विधि द्वारा खाद्य-पदार्थों को परिरक्षित करने की पूर्ण सुविधायें उपलब्ध हैं। वहाँ अनेक छोटे यन्त्रों एवं इस तकनीकी की जानकारी भी दी जाती है। निर्यात करने वाली कम्पनियों ने इस पद्धति द्वारा परिरक्षण करने के प्रति अपनी रुचि दिखाई है। दुग्ध उत्पादों जैसे दूध, पनीर खोआ, मक्खन, आदि को इस तकनीकी द्वारा परिरक्षित करने पर शोध-कार्य चल रहा है। कई देशों ने विकिरण द्वारा परिरक्षित पके व्यंजनों (बेक्ड प्रोडक्ट्स) को खुले बाज़ारों में बेचना आरम्भ भी कर दिया है।

विकिरण द्वारा परिरक्षण तकनीकी के लाभ अनेक हैं। पर भारत में इस तकनीकी का विकास करने से पूर्व विकिरण सम्बन्धी पूरी जानकारी आवश्यक है।

भारत की आर्थिक दशा सुधारने के लिए इस बात की नितांत आवश्यकता है कि इस विधि से सब्ज़ियों, फलों, मसालों, मछलियों, खाद्यान्नों और अनेक प्रकार के व्यंजनों के परिरक्षण को प्रोत्साहन दिया जाये। यह समय की पुकार है। ▢▢

एडमण्ड टेलर व्हिटेकर

डॉ० वाई० पी० वार्ष्णेय

श्री एडमंड टेलर व्हिटेकर का जन्म 24 अक्टूबर 1·73 को इंग्लैंड में लंकाशायर स्थित बर्क डेल नामक स्थान में हुआ था। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा मैनचेस्टर के ग्रामर स्कूल से सफलतापूर्वक पूरी करने पर उन्हें अध्ययन हेतु ट्रिनिटी कॉलिज, कैम्ब्रिज के लिए छात्र-वृत्ति मिल गई। वहीं उन्हें 1895 में द्वितीय 'रेंगलर पुरस्कार' और 1897 में प्रथम 'स्मिथ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

वर्ष 1906 में ई० टी० व्हिटेकर को डबलिन विश्वविद्यालय में खगोल विज्ञान के प्रोफेसर की नियुक्ति मिल गईं, इसी के साथ उन्हें 'आयरलैंड के राजकीय खगोल वैज्ञानिक' की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। यहाँ उनके शिष्यों में **एमाॅं डी वेलेरा** भी थे, जो आगे चलकर आयरलैंड के प्रेसीडेंट बने। कुछ समय बाद 1912 में उन्होंने प्रोफेसर के रूप में एडिनबरा विश्वविद्यालय में गणित विभाग का पद भार सँभाला और 1946 में अपनी सेवानिवृत्ति के क्षणों तक उसी पद पर आसीन रहे।

श्री व्हिटेकर बहुमुखी प्रतिभा और वैविध्यापूर्ण व्यक्तित्व के स्वामी थे। गणित और सैद्धान्तिक भौतिकी के क्षेत्र में उनके शोध-पत्र प्रकाशित हुए। उनके द्वारा संपादित शोधकार्यों में 'विभव सिद्धान्त'· (Potential Theory) और 'विशिष्ट फलन' (Special Functions) पर उनका कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने लाप्लास के त्रिआयामी समीकरण का एक अति सामान्य समाधान प्रस्तुत किया जो मूलबिन्दु पर विश्लेषणात्मक है। उन्होंने 'विचित्रता संगम' (Confluence of two singularities) की विधि से हाइपरजियोमेट्रिक समीकरण से प्राप्त अवकलन समीकरण (Differencial Equation) का भी व्यापक अध्ययन किया। इसी के फलस्वरूप उन्होंने Wk, m(z)। फलन प्रस्तुत किये जो अब **'व्हिटेकर फलन'** के नाम से विख्यात है। उन्होंने बीजगणित और संख्यात्मक विश्लेषण (Numerical Analysis) की कुछ विशिष्ट समस्याओं पर भी शोध-पत्र तैयार किए। व्हिटेकर को सापेक्षता के सिद्धान्त में गहरी रुचि थी और 1921 के बाद के वर्षों में उन्होंने तत्सम्बन्धी विषयों पर दस शोधपत्र प्रकाशित करवाये।

व्हिटेकर ने पुस्तकों का भी प्रणयन किया। उनकी 1902 में प्रकाशित 'माडर्न एनालिसिस' अंग्रेज़ी भाषा की प्रथम पुस्तक थी जिसमें सम्मिश्र चर के फलनों (functions of complex variable) के सिद्धान्तों की परिचयात्मक प्रस्तुति थी। उनकी एक अन्य रचना 'ट्रीटिस ऑन एनालिटिकल डाइनैमिक्स ऑव पार्टिकिल्स एण्ड रिजिड बॉडीज़' (1904) अपने विषय की मानक पुस्तक मानी जाती है। तथापि उनकी विशिष्टतम रचना 'द हिस्ट्री ऑव थियरीज़ ऑव ईथर एण्ड इलेक्ट्रिसिटी' मानी जाती है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन 1910 में हुआ था। वर्ष 1951 में उक्त पुस्तक का एक संवर्धित संस्करण प्रकाशित हुआ जिसमें उसी शीर्षक से एक नया प्रबन्ध भी संयुक्त था। इसमें उन्नीसवीं शती के अन्त तक के इलेक्ट्रिसिटी के इतिहास का वर्णन है। इसका दूसरा भाग 1953 में प्रकाश में आया जिसमें 1900 से 1926 के मध्य हुई प्रगति, विशेषकर सापेक्षता और क्वांटम सिद्धान्तों, की व्याख्या है। पुस्तक के दोनों खंड अपने विषय की अभूतपूर्व और अद्वितीय कृतियाँ हैं। इस पुस्तक में वैद्युत-चुंबकत्व, आणविक संरचना, और क्वांटम सिद्धान्तों के सुदूर प्रारम्भ से लेकर 1926 तक के विकास का संपूर्ण, सुव्यवस्थित और विश्लेषणात्मक व्याख्या प्राप्त होती है।

प्रस्तुतिकरण की स्पष्टता, विषय की व्यापकता

प्रोफेसर, भौतिकी विभाग, ओटावा विश्वविद्यालय, ओटावा, कनाडा

और सूक्ष्म विश्लेषणों के कारण यह रचना भौतिक शोधपरक कार्यों की समकक्षता और उन्हीं जैसा प्रभाव तथा प्रमाणिकता प्राप्त करती है। उक्त रचना की 'साइंटिफिक अमेरिकन' में समालोचना करते हुए विख्यात भौतिकविद् **एफ० जे० डाइसन** ने लिखा है— "मेरे विचार से यह संभव है कि इससे अधिक विद्वतापूर्ण और प्रामाणिक कृति हमें इस काल के इतिहास पर दूसरी कभी नहीं मिल सकती है।" कुछ कारणों से परवर्ती सिद्धान्तों सम्बन्धी पुस्तक के तीसरे खंड के विषय में बनाई गई योजना कभी पूरी न हो सकी।

ह्विटेकर को इस शताब्दी के महानतम गणितज्ञों की श्रेणी में रखा जाता है। अपनी प्रतिभा के अनुरूप उन्होंने अनेक पुरस्कार और अलंकरण प्राप्त किए। 1905 में ही उन्होंने 'रायल सोसाइटी' की सदस्यता प्राप्त कर ली थी। आगे चलकर क्रमशः 1931 और 1954 में उन्हें सोसायटी के 'सिलवेस्टर' और 'कॉपली' पदकों से सम्मानित किया गया। 1929 से 1944 की अवधि में वे एडिनबरा की रॉयल सोसाइटी के अध्यक्ष भी रहे। वे अन्य अनेक विद्वत् संस्थाओं द्वारा भी सम्मानित किए गये। इसके अतिरिक्त 'इडियन मैथमेटिकल सोसाइटी' (1924) और 'बनारस मैथमेटिकल सोसाइटी' (1920) सहित अनेक संस्थाओं से सम्मानित या विदेशी सदस्य के रूप में भी आप जुड़े रहे। छः विश्वविद्यालयों ने उन्हें अपनी मानद उपाधियों से विभूषित किया था।

श्री ह्विटेकर ने 1901 में **मेरी ब्वायड** नामक महिला से विवाह किया था। उनके यहाँ तीन पुत्र और दो कन्याओं ने जन्म लिया। अपने पूरे जीवन भर श्री ह्विटेकर एक धार्मिक श्रद्धालु व्यक्ति बने रहे। मूलतः वे एक प्रोटेस्टेंट थे, पर आगे चलकर 1930 में वे रोमन कैथोलिक संप्रदाय से जुड़ गये। 24 मार्च 19 6 को स्काटलैंड के एडिबनरा नामक स्थान में उनकी मृत्यु हो गई। □□

(रूपान्तर : मंजुलिका लक्ष्मी)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक : धातु लोक की सैर

लेखक : डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रकाशक : प्रकाशन विभाग
: सूचना और प्रसारण मंत्रालय
: भारत सरकार, पटियाला हाउस
: नई दिल्ली—110001

मूल्य : 9.00 रुपये

पृष्ठ : 78+6

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, के प्रकाशन विभाग द्वारा 'रोचक विज्ञान माला' के अन्तर्गत प्रकाशित 'धातु लोक की सैर' (प्रथम पुष्प) पुस्तक अपनी उद्देश्य पूर्ति में पूर्णरूप से सफल है। विभिन्न धातुओं के परिचय, वर्गीकरण, एवं अन्य आवश्यक विवरण से युक्त इस पुस्तक की भाषा रोचक तथा सारगर्भित है। धातुओं की खोज के विषय में ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक प्रमाणों की प्रस्तुति बहुत बुद्धिमत्ता के साथ की गयी है। पुस्तक के पढ़नेवाले चाहे बच्चे हों या वयस्क, किसी को भी बिल्कुल ऊब नहीं महसूस होगी। निःसन्देह, रसायनशास्त्र जैसे विषय को रोचक ढँग से प्रस्तुत करने का **डॉ० मिश्र** का यह प्रयास सराहनीय है। पुस्तक की विषयवस्तु जीवन्त है, सुस्पष्ट है। बाल-विज्ञान-साहित्य के अभाव को देखते हुये इस पुस्तक की बहुत उपयोगिता है। मुख पृष्ठ आकर्षक और मूल्य उचित है। लेखक और प्रकाशक को साधुवाद।

—दिनेश मणि

पुस्तकों की सुरक्षा

7 मार्च 1989 को न्यूयार्क शहर के कई दर्जन लेखकों और प्रकाशकों ने एक अनुबन्ध पर हस्ताक्षर किये, जिसके द्वारा पुस्तकों के अधिक समय तक सुरक्षित रखने की गारण्टी दी गई थी। वक्तव्य में इस बात की प्रतिज्ञा थी कि अच्छी कड़ी जिल्द वाली पुस्तकों के लिए अम्लमुक्त कागज का ही इस्तेमाल किया जायेगा (यदि ऐसा कागज़ उपलब्ध हो)।

बढ़ती साक्षरता के कारण वर्ष 1850 में प्रकाशक सूती और लीनेन चीथड़ों से बनाये गये कागज़ के सम्पूर्ण उपलब्ध भण्डार का उपयोग करने पर बाध्य हो गये। उस समय से संयुक्त राज्य अमेरिका और अधिकांश पश्चिमी देशों द्वारा लकड़ी की लुगदी से बनाये गये कागज़ का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार के कागज के निर्माण में अम्ल का इस्तेमाल होने के कारण कुछ ही दशकों में कागज़ खस्ताहाल, भूरा और भुरभुरा-हो जाता है। इसका परिणाम यह है कि 1850 के आस-पास मुद्रित पुस्तकें अब बहुत खराब दशा में पहुँच चुकी हैं। कागज़ सम्बन्धी संकट की यह सूचना 1950 के दशक में पुराविज्ञानी **विलियम जे० बारो** द्वारा जनता के समाने लायी गई।

पुस्तकालयों में सड़ती पुस्तकों की दशा गम्भीर समस्या उपस्थित करती है। 'द न्यूयार्क टाइम्स' की एक सूचना के अनुसार 'न्यूयार्क पब्लिक लायब्रेरी' में 2.5 मिलियन किताबें आलमारियों में खस्ताहाल पड़ी हैं। 1989 में इस पुस्तकालय की खराब हो रही पुस्तकों को सुरक्षित रखने के लिए उनकी 'माइक्रोफिल्म' बनाने का अनुमानित व्यय 3 मिलियन डॉलर था।

इधर के वर्षों में कागज़ निर्माताओं ने अधिक क्षारीय रसायनों का इस्तेमाल शुरू कर दिया है। इससे अम्लता घटी है और कागज़ की गुणवत्ता बढ़ी है। 1988 में अमेरिका में 25% कागज़ अम्लमुक्त था। ऐसी आशा है कि 1990 तक यह प्रतिशत बढ़कर दो गुना हो जावेगा।

('द रोटेरियन' जून 1989 से साभार)

परिषद् का पृष्ठ

नवनिर्वाचित सभापति का स्वागत एवं अन्तरंग सभा की बैठक की कार्यवाही

(1) विज्ञान परिषद् के नवनिर्वाचित सभापति **श्री गजानन्द आर्य** के स्वागतार्थ दिनांक 15.12.89 को अपराह्न 3 बजे परिषद् के प्रेक्षागृह में एक स्वागत समारोह का आयोजन **स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती** की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें शहर के गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया। समारोह के प्रारम्भ में परिषद् के प्रधानमन्त्री **प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी** ने सभापति महोदय का औपचारिक स्वागत किया और उपस्थित महानुभावों को विज्ञान परिषद् की गत 76 वर्ष की गतिविधियों और उपलब्धियों से परिचित कराया। **डॉ० शिवगोपाल मिश्र** ने अपने उद्बोधन में परिषद् की आर्थिक स्थित का चित्रण प्रस्तुत किया और ज़ोर दिया कि आर्थिक स्थिति का को सुदृढ़ बनाने हेतु नवनिर्वाचित कार्यकारिणी समिति को गम्भीरता से विचार कर निदान ढूंढ़ना होगा।

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती ने यह कहा कि परिषद् से एक बार जो जुड़ जाता है, वह परिषद् का होकर रह जाता है और सभापति तो एक बार चुने जाने के बाद अलग ही नहीं हो सकता, क्योंकि यदि वह त्याग-पत्र दे दें, या छोड़ दें तो भी आजीवन पदेन उपसभापति रहते हैं। स्वामी जी ने परिषद् की कार्य प्रणाली में सुधार और 'विज्ञान' पत्रिका को लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक सुझाव दिए। अंत में नवनिर्वाचित उपसभापति **डॉ० पूर्ण चन्द्र गुप्ता** ने सभी के प्रति आभार व्यक्त किया।

दिनांक 17.12.89 को परिषद् की अन्तरंग सभा की बैठक 11 बजे पूर्वाह्न सभापति **श्री गजानन्द आर्य** की अध्यक्षता में हुयी। बैठक में निम्नलिखित सदस्यों ने भाग लिया :—

श्री गजानन्द आर्य—सभापति स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती—पदेन उपसभापति, प्रो० पूर्ण चन्द्र गुप्ता—उपसभापति, प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी—प्रधानमंत्री, डॉ० चन्द्रिका प्रसाद—स्थानीय अन्तरंगी, श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव—संपादक विज्ञान, डॉ० राम

सुरंजन धर दुबे—आडीटर, डॉ० अशोक महान—पुस्तकालयाध्यक्ष, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता—भवन मंत्री। श्री अनिल कुमार शुक्ल—वाह्य अन्तरंगी, श्री विजयजी—संयुक्त मंत्री, डॉ० सुप्रभात मुकर्जी—संयुक्त मंत्री.

सभा के प्रारम्भ में प्रधानमन्त्री डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी ने नवनिर्वाचित पदाधिकारियों की स्वीकृतियों से अन्तरंग सभा को अवगत कराया। इसके उपरान्त अन्तरंग सभा ने निम्नवत् निर्णय लिये।

(क) अन्तरंग सभा ने सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया कि यद्यपि अब तक विज्ञान परिषद् विज्ञान लेखन से सम्बन्धित योजनायें ही सम्पादित करता रहा है परन्तु अब जन साधारण की आवश्यकता को देखते हुये विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए सक्रिय कार्यक्रम प्रारम्भ किये जायें। उपर्युक्त उद्देश्य से सक्रिय कार्यक्रम की एक परियोजना तैयार की जायें। योजना तैयार करने के लिए निम्नलिखित सदस्यों की एक उपसमिति का गठन किया गया—

(1) डॉ० चन्द्रिका प्रसाद
(2) डॉ० शिवगोपाल मिश्र
(3) डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
(4) डॉ० सुप्रभात मुकर्जी

(ख) अन्तरंग सभा ने परिषद् के मुखपत्र "विज्ञान" को स्वावलम्वी बनाने की योजना पर विचारोपरान्त यह निर्णय लिए कि **डॉ० अशोक कुमार गुप्ता** एवं **श्री अनिल कुमार शुक्ल** योजना को अन्तिम रूप प्रदान कर राष्ट्रीय विज्ञान एवं तकनीकी संचार परिषद्, नई दिल्ली को प्रेषित करेंगे।

(ग) सदस्यता शुल्क के सम्बन्ध में अन्तरंग सभा ने यह निर्णय लिया कि **जनवरी** 1990 से विज्ञान परिषद् की सदस्यता हेतु देय शुल्क निम्नवत् होंगे—

(1) आजीवन सदस्य............200.00 रु०
(2) वार्षिक सदस्य............25.00 रु०
(3) विज्ञान पत्रिका का वार्षिक मू० 25.00 रु०
तीन वर्ष का ....60.00 रु०
और एक प्रति का मूल्य रुपया 2.50 रु०

(घ) **स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती** (पदेन उपसभापति) ने "डॉ० रत्नकुमारी स्मृति व्याख्यान माला" प्रारम्भ करने हेतु 30.00। रु० का दान प्रदान करने के अपने निश्चय से सदस्यों को अवगत कराया तथा 3000 रुपये अतिरिक्त प्रदान करने का आश्वासन दिया जिससे व्याख्यान माला 1990 से प्रारम्भ की जा सके।

(ङ) **डॉ० चन्द्रिका** प्रसाद (सुपुत्र डॉ० गोरख प्रसाद) ने अपने पिता की स्मृति में व्याख्यान माला प्रारम्भ करने के लिए 15,000 रु० के अंशदान का चेक प्रधानमंत्री को दिया। इसी सन्दर्भ में डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने सदस्यों को अवगत कराया कि 'डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति व्याख्यान माला' के लिए 5000 रु० की शेष धनराशि श्री अरुण कुमार जी द्वारा प्रदान की जायेगी। स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने यह बताया कि वे 2000 रु० की अतिरिक्त धनराशि विज्ञान परिषद् को प्रदान करेंगे जिससे 'डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति व्याख्यान माला' भी वर्ष 1990 से प्रारम्भ की जा सके।

(च) **डॉ० अशोक कुमार गुप्त', भवनमंत्री** ने अन्तरंग सभा को अवगत् कराया कि 20,000 रु० खर्च करके परिषद् के प्रेक्षागृह में पंखे एवं स्पीकर लगवाने का उनका प्रस्ताव है। उन्होंने सभापति महोदय का ध्यान प्रेक्षागृह में प्रतिध्वनि की समस्या की ओर आकृष्ट किया। यह निर्णय लिया गया कि ध्वनि के परावर्तन की समस्या के निदान के लिए आवश्यक धनराशि का आकलन करा लिया जाय। सभापति महोदय ने इस हेतु सहयोग प्रदान करने का स्वयं का भी आश्वासन दिया।

(छ) **डॉ० अशोक महान** (पुस्तकालयाध्यक्ष) ने पुस्तकालय के लिए अलमारियों तथा पत्रिकाओं की वाईडिंग की आवश्यकता की ओर अन्तरंग सभा का ध्यान आकृष्ट किया। यह निर्णय लिया गया कि पुस्तकालय के लिए अलमारियाँ क्रय की जायें।

(ज) **स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती जी** ने अन्तरंग सभा के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि उनके स्वास्थ्य की अवस्था को दृष्टिगत रखते हुये उन्हें 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' के संपादन के दायित्व से मुक्त कर दिया जाय। इस हेतु उन्होंने **डॉ० चन्द्रिका प्रसाद जी** का नाम प्रस्तावित किया। अन्तरंग सभा ने सर्वसम्मतति से आगामी वर्ष से डॉ० चन्द्रिका प्रसाद को 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' का "सम्पादक" मनोनीत किया।

(झ) सभा के अन्त में प्रधानमंत्री **डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी** ने अन्तरंग सभा के सदस्यों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया।

प्रस्तुति : डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की वाराणसी शाखा से

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

शाखा परिषद् की बैठक

विज्ञान परिषद् (वाराणसी) की एक बैठक गत नवम्बर के प्रथम सप्ताह में आयोजित की गई, जिसमें वैज्ञानिक व्याख्यानमाला के लिए निम्नलिखित वैज्ञानिकों के नाम प्रस्तावित किए गए :

1. **प्रो० ओंकार नाथ श्रीवास्तव**, भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
2. **डॉ० पी० सी० बेहरे**, मानसिक चिकित्सा विशेषज्ञ, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
3. **प्रो० देवेन्द्र कुमार राय**, भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

व्याख्यानों का आयोजन

अक्टूबर-नवम्बर (1989) में भौतिकी विभाग में दो अत्यंत रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक व्याख्यान, विज्ञान परिषद् के तत्वावधान में आयोजित किए गए—

1. **मानसिक रोग : कारण और निवारण**—डॉ० पी० सी० बेहरे
2. **ब्रह्माण्ड का विस्तार**—प्रो० देवेन्द्र कुमार राय

लेजर के उपयोग पर चार दिवसीय संगोष्ठी
(11 से 15 दिसम्बर 1989 तक)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के स्पेक्ट्रॉस्कोपी संभाग की स्थापना के 50वें वर्ष पर
(अन्तराष्ट्रीय-संगोष्ठी)

संगोष्ठी का शुभारम्भ **डॉ० डी० डी० भवालकर** ने किया । इस संगोष्ठी में लेज़र-किरणों के उपयोग के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित दो सौ निबन्ध पढ़े गए। इसमें देश के विभिन्न शिक्षा संस्थानों—असम, बंगाल, विहार, उ० प्र०, दिल्ली, आंध्र प्रदेश (हैदराबाद), मद्रास, त्रिवेन्द्रम, कोचीन, मैसूर, और बम्बई से आने वाले प्रतिनिधियों के अतिरिक्त विदेशों से—अमेरिका, इंग्लैण्ड, नीदरलैंड और जर्मनी से आये हुए विशिष्ट वैज्ञानिकों ने भी भाग लिया । निबन्धों की शृंखला में तीस निबन्ध विशेष रूप से आमंत्रित निबन्ध थे । लेजर के उपयोग के विभिन्न क्षेत्रों की चर्चा हुई और अपने देश में इसके विस्तार के लिए **डी० एस० टी०** द्वारा संचालित योजनाओं की जानकारी भी दी गई । संगोष्ठी के संयोजक **प्रो० सूर्य नारायण ठाकुर** ने बताया कि यह आयोजन अत्यंत महत्वपूर्ण रहा । इसके आयोजन में "भारतीय लेजर एवं स्पेक्ट्रॉस्कोपी सोसाइटी" ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

इस अवसर पर भौतिकी विभाग के प्रमुख संभाग, "स्पेक्ट्रॉस्कोपी प्रयोगशाला" की स्थापना के पचास वर्ष पूरे हुए; अतः 13 दिसम्बर को इस प्रयोगशाला से सम्बद्ध रहे ग्यारह प्राचीन वैज्ञानिकों/शिक्षकों को सम्मानित किया गया । उन्हें सम्मानस्वरूप एक-एक शाल एवं एक-एक सरस्वती-प्रतिमाएँ (मिश्रधातु की) भेंट की गईं । यह कार्यक्रम गोरखपुर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति **प्रो० देवेन्द्र शर्मा** के सभापतित्व में उल्लास पूर्वक सम्पन्न हुआ ।

प्रस्तुति : डॉ० श्रवण कुमार तिवारी
सचिव, वाराणसी शाखा
काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी

जानलेवा रोग एड्स

डॉ० कृष्णानन्द पाण्डय

दृष्य—ताऊ के मकान में एक बैठक ।

पात्र—ताऊ (एक वृद्ध), राजू (ताऊ के पड़ोस में रहने वाला लड़का), रवि (शहर में डॉक्टर)

राजू : ताऊ, राम-राम ।

ताऊ : कौन ? राजू ! राम-राम बेटा, बड़े दिनों बाद दिखाई दिया ।
कहाँ रहता है आजकल ?

राजू : ताऊ, मेरा दोस्त करीम है न, उसके चाचा बहुत बीमार चल रहे हैं । उनको मेडिकल में दिखाने करीम जा रहा था, मैं भी साथ दिल्ली चला गया था ।

ताऊ : अरे वही कल्लू खान, जो तीन-चार महीनों पहले अरब से वापस आया है । इतनी कम उम्र में उसने लाखों जमा कर लिया है । ईश्वर सभी को ऐसा सुखी व धनवान बनाए ।

राजू : न न ताऊ, खान चाचा लखपति तो ज़रूर बन गए हैं परन्तु वे सुखी बिल्कुल नहीं हैं । ईश्वर किसी को उनके जैसा रोगी न बनाए ।

ताऊ : अरे ऐसा क्या हो गया है, उसे···?

राजू : ताऊ, काफी डॉक्टरी जाँच के बाद डॉक्टरों ने बताया है कि खान चाचा को एडस रोग हो गया है ।

ताऊ : मलेरिया, पीलिया, गठिया, मोतियाबिन्द, और कैंसर के नाम तो सुन रखा था, अब यह एडस कहाँ से आ गया और क्या बला है ?

राजू : ताऊ, मुझे इस रोग के बारे में ज़्यादा तो पता नहीं । चलिए रवि भैया के घर चलकर उन्हीं से पूछते हैं । वे मेडिकल में ही डॉक्टर हैं और उन्हीं की मदद से खान चाचा की जाँच भी आसान हो गई है, वरना मेडिकल में जाकर देखने से लगता है पूरा देश ही बीमार है ।

ताऊ : हाँ···हाँ···बेटा चल···पता करें कि ये एडस क्या रोग है । कहीं मुझे हो गया तो मेरा बुढ़ापा खराब हो जाएगा । कम से कम पता तो होना चाहिए ।

दृश्य—दोनों डॉक्टर रवि के घर जाते हैं । डॉ० रवि बैठां अपनी पुस्तक पढ़ रहा है ।

डॉ० रवि : आओ ताऊ···आओ···बैठो···राजू तुम भी बैठो । कहिए आज कैसे दर्शन दिए ?

ताऊ : बेटा···ये राजू कह रहा है कि कल्लू खान को एडस रोग हो गया है । भला ये कौन सी बीमारी है, कुछ हमें भी तो बताओ ।

डॉ० रवि : हाँ ताऊ, खान चाचा को एक जनलेवा रोग हो गया है । इस रोग को एड्स कहते हैं ।

ताऊ : क्या कहा एडस···ये राजू तो एडस···एडस कह रहा था ।

डॉ० रवि : ताऊ, राजू को अभी इसकी पूरी जानकारी नहीं है । आइए आप दोनों को एड्स के बारे में कुछ खास बातें बताएँ ।

ताऊ : बेटा, पहले ये बता कि यह एड्स किन-किन कारणों से होता ।

डॉ० रवि : ताऊ, एड्स की बीमारी कई कारणों से हो जाती है, जैसे किसी रोगी को ऐसे व्यक्ति से लिया गया खून चढ़ाया जाए, जिसे पहले से ही एड्स रहा हो । और ऐसे किसी भी व्यक्ति के साथ शारीरिक संपर्क बनाने से जो एड्स का रोगी हो । इससे मिलते-जुलते और भी कई कारण हो सकते हैं ।

राजू : रवि भैया, यह बताइए कि एड्स कैसे फैलता है ।

तकनीकी अधिकारी, प्रकाशन एवं सूचना प्रभाग, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, पोस्ट बाक्स 4508, नई दिल्ली–110029

डॉ० रवि : राजू, यह रोग शरीर में एक ख़तरनाक विषाणु के प्रवेश कर जाने से फैलता है। ये विषाणु हमारे खून में मौजूद टी-4 नमक श्वेत रक्त कोशिकाओं को नष्ट करके शरीर की प्रतिरक्षा प्रक्रिया को हमेशा के लिए नष्ट कर देता है।

राजू : भैया यह प्रतिरक्षा प्रक्रिया क्या होती है ?

डॉ० रवि : राजू, किसी भी रोगा से लड़ने और उसे वेअसर करने के लिए हमारे शरीर में एक खास क्षमता है, इसे ही प्रतिरक्षा प्रक्रिया कहते हैं।

ताऊ : तो बेटा, क्या एड्स रोग हमारे शरीर में मौजूद रोग से लड़ने की क्षमता से अधिक बलवान है ?

डॉ० रवि : ताऊ, मैंने बताया न कि इस रोग में शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली हमेशा-हमेशा के लिए नष्ट हो जाती है।

ताऊ : बेटे, इस रोग के लक्षण क्या-क्या हैं ?

डॉ० रवि : ताऊ, इस रोग में बुखार आना, भूख बिल्कुल न लगना, वज़न कम हो जाना, रात में पसीना आना, जाँघ, गर्दन और आँख में मौजूद लसीका ग्रन्थियों में सूजन आ जाना है। रोग के बढ़ जाने पर रोगी अपनी याददाश्त खो बैठता है। खून की नलियों में अधिक वृद्धि हो जाने के कारण वह फट जाती है और शरीर से खून बहने लगता है। यहाँ तक कि फेफड़ों के प्रभावित होने से न्यूमोनिया तथा कैंसर भी हो जाता है।

राजू : बाप रे, तब तो रोगी मर ही जाएगा।

डॉ० रवि : ठीक कहा राजू ने, एड्स के रोगी की मौत निश्चित है।

ताऊ : बेटा, क्या अपने देश में कोई ऐसा रोगी है ?

डॉ० रवि : ताऊ, अभी तक लगभग ढाई लाख लोगों की जाँच की जा चुकी है, जिनमें 920 लोग ऐसे पाये गये जिनमें एड्स रोग होने का ख़तरा है। अपने देश में अब 18 रोगी इस जानलेवा रोग की चपेट में आ चुके हैं, जिनमें 1५ पुरुष और 3 महिलाएँ हैं।

राजू : भैया, क्या अभी तक कोई दवा नहीं बनाई जा सकी है ?

डॉ० रवि : राजू, हमारे देश के ही नहीं, दुनिया भर के वैज्ञानिक इसके इलाज के लिए दवा ढूँढ़ निकालने के लिए दिन-रात कोशिश कर रहे हैं। इसका पक्का इलाज तो अभी सम्भव नहीं है पर कुछ दवाएँ बना ली गई हैं, जो शरीर में इस जानलेवा विषाणु के बढ़ने को रोक सकती हैं। परन्तु बहुत कीमती और तरह-तरह के साइड इफैक्ट डालने वाली हैं। जैसे एक वर्ष तक चलने वाली दवा की कीमत लगभग एक लाख रुपये। इसके अलावा अधिक दिनों तक प्रयोग करने से शरीर में खून की लगातार कमी होती जाएगी तथा खून सम्बन्धी अनेक रोग उभर आएँगे।

ताऊ : बेटा, इस जानलेवा रोग को रोकने के लिए हमारे देश के वैज्ञानिक क्या कर रहे हैं ?

डॉ० रवि : ताऊ, 'भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्' ने (यही अपना आई० सी० एम० आर०) वैसे देश भर में एड्स की जाँच के लिए जाँच केन्द्रों का जाल बिछा दिया है। अब तक कुल 42 केन्द्रों में इस रोग की जाँच की जा रही है। अपनी दिल्ली में, इसी मेडिकल में, **डॉ० सहगल, डॉ० प्रदीप सेठ व डॉ० ए० एन० मालवीय** की देखरेख में उनकी प्रयोगशालाओं में इसकी जाँच की ज़िम्मेदारी दी गई है। इसके अलावा अपना परिषद् एड्स पर रिसर्च करने के लिए एक अलग संस्थान खोलने पर विचार कर रहा है। ताऊ,

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् के महानिदेश **डॉ० औतार सिंह पेंटल** का तो विचार है कि इस रोग पर काबू पाने के लिये हमारे यहाँ ऐसे कानून बनाए जाएँ जिसमें अनजाने लोगों से शारीरिक सम्पर्क बनाने वाले पर 20 हज़ार रुपयों का जुर्माना या 3 माह की कैद दी जानी चाहिए।

ताऊ : बेटा इस रोग से बचा कैसे जा सकता है?

डॉ० रवि : ताऊ, किसी अनजान पुरुष या महिला से शारीरिक सम्पर्क कभी न बनाना चाहिए। शरीर में यदि खून चढ़ाया जा रहा हो तो इसकी जाँच कर ली जाए कि उसमें एड्स के विषाणु तो मौजूद नहीं।

ताऊ : बेटा, अपना कल्लू खान तो बड़ा ही नेक बन्दा है, वह इसकी चपेट में कैसे आ गया?

डॉ० रवि : ताऊ, याद है पिछले साल अरब में ही खान चाचा का एक्सीडेंट हो गया था और उन्हें खून चढ़ाया गया था। ज़ाहिर है जो खून चढ़ाया गया उसे देने वाला एड्स का रोगी रहा होगा। फिर अपने खान चाचा कैसे बच पाते?

ताऊ : सुना राजू, कितनी लाभदायक बातें बताई रवि बेटे ने। तू इन बातों का हमेशा ध्यान रखना, और अपने दोस्तों को भी बताना। हाँ, मेरी शंका जरूर दूर हो गई कि मुझे यह जानलेवा एड्स रोग कभी नहीं होगा। अच्छा राजू बेटा, बहुत-बहुत धन्यवाद।

डॉ० रवि : राम राम ताऊ।

(ताऊ और राजू चले जाते हैं) □□

सांस लेने के लिए | अनिल श्रीवास्तव

तुम्हारे पास का पेड़
क्या तुम्हें
दे नहीं रहा आवाज़ें?
क्या लगते नहीं तुम्हें
समझाते हुए उसके
एक-एक झुलसे पत्ते?
क्या कुछ कह नहीं रहीं
उसकी काली पड़ गयीं टहनियाँ?
क्या अधपके फटे फल
चींखते नहीं दिखते तुम्हें?
रोती नहीं दिखती तुम्हें
क्षीण हो रही उसकी काया?
नहीं दिखाई देता है शायद तुम्हें
उसका यह क्रन्दन,
क्योंकि तुम तो शायद
प्रदूषण का करते हो अभिनन्दन!
तभी तो झूम उठते हो
बैठते हो जब
ज़हर उगलती खटारा कारों पर।
चलाते हो घर्र-घर्र करती स्कूटरें,
फैला देते हो
आक्सीडेंट और ओज़ोन को।
और कर देते हो
ज़हरीला वातावरण,
निकाल कर सल्फर डाइ-ऑक्साइड
अनेक कारखानों से।
और ओढ़ लेते हो छतरी
ख़तरनाक गैसों की।
क्या दे सकते हो तुम
खुद को जवाब?
क्या होता नहीं महसूस तुम्हें—
छलनी हो गये फेफड़े,

डी०-27, सेक्टर-20, पो० नोएडा, जि० गाज़ियाबाद (उ० प्र०)-201301

घुटती हुई साँसें,
शिथिल हो गया शरीर,
क्या आँखों का जलना
होता नहीं है महसूस तुम्हें ?
क्या काँपती नहीं है
तुम्हारी मनोचेतना
मौत से भय खाकर
पीते हुए जहर को ?
यदि चलता रहा यही काल-चक्र
तो क्या रह जाएगा
यह जीव-समूह ?
भस्म नहीं हो जाएंगे हम सब
प्रदूषित-वायु लपटों में ?
नित्य निकलती कोमल कोपलें
क्या मुरझा नहीं जाएगीं
निकलने से पहले ?
क्या दे सकेंगे हम
कोई मजबूत आधार
टिक सके जिस पर भारत ?
और ऊँचा हो शीश इसका
गर्व करे अपने पर ।
इसलिए हे दोस्तों !
तुम्हें प्रदूषण रोकना होगा
अभी इसी समय,
इसी वक्त ।
नहीं तो अधूरे रह जाएँगे
हमारे सुनहरे स्वप्न, नई आशाएँ
और नहीं मिल सकेगी हमें
मुट्ठी भर शुद्ध वायु
थोड़ी सी साँस लेने के लिए । □□

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक : संरक्षण या विनाश

(पर्यावरणीय परिस्थिति :एक अध्ययन)

लेखिका : सरला देवी

प्रकाशक : ज्ञानोदय प्रकाशन, हल्द्वानी (नैनीताल)

वितरक : बंसल बुक डिपो, नैनीताल : प्रथम संस्करण 1980, पृष्ठ संख्या 304

मूल्य : 30.00 रु० सजिल्द, 15.00 पेपर बैक

सरला बहिन मूलतः लन्दन की हैं। इनका जन्म 5-4-1901 को हुआ । इनका नाम था **कैथरीन मेरी हाइलामन** । इनके पिता स्विस जर्मन थे। प्रथम विश्व युद्ध की घटनाओं से कैथरीन का मन उद्वेलित हो उठा । 1928 में **महात्मा गाँधी** का नाम सुना तो उनके दर्शन के लिए लालायित हो उठीं । 1932 में इन्हें भारत आने का अवसर मिला तो उदयपुर में विद्याभवन में कार्य करना प्रारम्भ किया । यहाँ इन्होंने हिन्दी सीखी । 1935 में वर्धा गईं तो गाँधीजी ने इन्हें "नई शिक्षा प्रणाली" की अगुवा बना दिया। 1941 में ये अल्मोड़ा गईं । 1942 में कौसानी में एक कन्या स्कूल खोला । किन्तु 1942 में ही जब "भारत छोड़ो" आन्दोलन शुरू हुआ तो आन्दोलन में गिरफ्तार लोगों के परिवारों की सेवा-सुश्रुषा करने लगीं । ब्रिटिश सरकार ने इन्हें जेल में डाल दिया। जेल में ही इन्होंने हिन्दी का प्रयोग प्रारम्भ किया। बाद में सरला जी ने कौसानी में एक आश्रम की स्थापना की, पहाड़ी बोली सीखी और नंगे पाँव पहाड़ी ग्रामों में घूमने लगीं । इनका आश्रम 'सरला आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध है । बाद में ये **संत बिनोवा** की भी अनुगामिनी बनीं । इन्हें 4 नवम्बर 1979 को 'जमना लाल बजाज पुरस्कार' से सम्मानित किया गया ।

'सादा जीवन उच्च विचार' वाली तपस्विनी महिला ने प्रकृति एवं प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन एवं मनन किया है । प्रकृति का संरक्षण उनकी दृष्टि में महत्वपूर्ण है । यह पुस्तक इसी विचारधारा की अभिव्यक्ति है । जो लोग 'साइलेंट स्प्रिंग' की

लेखिका **रोशेल कार्लसन** की पुस्तक पर मुग्ध हैं उन्हें भी सरला देवी की पुस्तक "संरक्षण या विनाश" अत्यन्त मौलिक एवं भारतीय परिस्थितियों की सही मार्ग-दर्शिका प्रतीत होगी। पता नहीं अभी तक इस पुस्तक की चर्चा या इसमें व्यक्त विचारों का उपयोग विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में क्यों नहीं हुआ !

यह पुस्तक अत्यन्त ज्ञानवर्धक है। इसकी भाषा की विशेषता है उसका प्रवाह। विदेशी होते हुए भी इस तपस्विनी ने भारत देश की नब्ज़ पकड़ी है। उसने हिन्दी में यह पुस्तक लिखकर बड़ा उपकार किया है। वे भूमिका में लिखती हैं—"मैं जो कि विज्ञान की शिक्षा से वंचित रही हूँ, एक वैज्ञानिक विषय पर लिखने की धृष्टता क्यों कर रही हूँ इसका थोड़ा स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता है। बचपन में ही मुझे अनुभव होने लगा था कि जिस सभ्यता के युग में हम रहते हैं उसमें कुछ गड़बड़ी है।"··········यह पुस्तक पाश्चात्य वैज्ञानिक दृष्टि और पूर्वी आध्यात्मिक दृष्टि को जोड़ने के लिए एक नम्र सेतु का काम कर सके तथा हमारे देशवासियों को सचेत कर सके कि हमें किस ओर बढ़ना है तो मैं इसे विनोवा जी का आशीर्वाद मानूँगी।"

इस पुस्तक में कुल **21** अध्याय हैं और अन्त में एक परिशिष्ट है। अध्यायों के नाम हैं— भूमिका, संतुलन शास्त्र, चार चक्र, हमारी पृथ्वी का निर्माण, जीवन का चक्र, अन्तः प्रेरणा की ओर, पुरानी दुनिया में कृषि द्वारा नैसर्गिक क्रियाओं में हस्तक्षेप, भूस्खलन, कीटनाशक दवाइयाँ, यन्त्रीकरण का संदूषण, रेडियोधर्मिता, ग्राह्य—मात्रा का निर्धारण, हवा का प्रदूषण, जल का संदूषण, चरित्र का संदूषण, लड़ाई के लिए विचार और स्वभाव का संदूषण, स्वास्थ्य में संदूषण, अर्थशास्त्र—अर्थ और राजनीति, अन्य देशों में संदूषण विरोधी कार्य, भारत की परिस्थिति तथा नये क्षितिज की ओर।

शीर्षक स्वतः स्पष्ट हैं। कुछेक को छोड़कर शेष अध्याय पर्यावरण या प्राकृतिक संतुलन से सम्बन्धित हैं और सूचनाओं तथा आँकड़ों से भरे पड़े हैं। ये आँकड़े बासी नहीं, बिल्कुल ताज़े लगते हैं। लेखिका ने **हावर्ड** के प्रयोगों एवं उनकी विचारधारा को आदर्श माना है। ये हावर्ड वही हैं जिन्होंने इन्दौर में रहकर कम्पोष्ट प्रणाली का सूत्रपात किया था। पृष्ठ **58** पर सरला जी ने लिखा है, "पशु हमारी फ़सल की जाँच कर सकते हैं—अपनी खुराक में चूने की कमी होने पर मुर्गी और घोड़े दीवालों के गारे का चूना खाना प्रारम्भ कर देते हैं। अच्छा तथा स्वच्छ चारा मिलने पर ये चारा नहीं खाते। बिल्लियों ने रासायनिक खाद से पैदा हुए आलुओं को नहीं खाया······वैज्ञानिकों को कृषकों से सीखना चाहिए। वैज्ञानिकों को मानना चाहिए कि कृषि-कर्मों में पशु हमारे साझेदार हैं।" पृष्ठ **61** पर—जब रवीन्द्र नाथ टैगोर से पूछा गया कि भारत की संस्कृति नगरों की संस्कृति है या गाँवों की तो उन्होंने उत्तर दिया—"भारतीय संस्कृति अरण्य की संस्कृति है"। शुरू में प्रकृति में मनुष्य का हस्तक्षेप अज्ञानवश हुआ···पिछली दो शताब्दियों में वैज्ञानिक आविष्कारों से अब मनुष्य सिर्फ कृषि के क्षेत्र में नहीं बल्कि सारे जीवन के क्षेत्र में प्राकृतिक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप करने लगा है ! अब प्रकृति के लिए आदरभाव के बदले 'प्रकृति पर विजय' पाने की दिशा में आगे बढ़नेमें पाश्चात्य मनुष्य अपना गौरव समझने लगा है। दुर्भाग्यवश अब पूर्व की संस्कृति का तिरस्कार करके 'अविकसित' देश भी तेजी से पाश्चात्य सभ्यता की विकासशील दिशा को अपनाने की कोशिश में हैं।" ···अहंकार भाव से स्वामित्व की भावना बढ़ने से वह जमीन के प्रति अपना कर्तव्य भूल गया। वह जमीन लूटने लगा। इस प्रकार का शोषण करने का सिद्धान्त सर्वमान्य हुआ।······अब प्रकृति की घटती शक्ति देखकर मनुष्य कुछ चेत गया और समझने लगा कि कोरा लुटेरा बनने से काम नहीं चलेगा। यदि भूमि से फ़सल लेनी है तो भूमि की सेवा भी करनी पड़ेगी तब वह खेतों में खाद डालने लगा।···हालाँकि प्रकृति माता इस परिवर्वतन से पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हुई फिर भी उर्वरा शक्ति काफी जारी रही और काम चलता रहा। आजकल रेगिस्तानों को आबाद करने के लिए दुनिया में कुछ प्रयोग हो रहे हैं।

पृष्ठ 72 : अरण्य सम्पूर्ण जीवन का आधार है। जो संस्कृति अरण्य के सन्तुलन के विरुद्ध काम करती है उसका ह्रास निश्चित है'''जापान ने बहुत समझदारी से अपने वन और कृषि की व्यवस्था को सन्तुलित रखा है। पहाड़ों के वनों में संरक्षण के लिए बड़े सरल कानून बनाये हैं।

पृष्ठ 78 : एक पौंड गेहूँ के विकास के लिए लगभग 600 किलो पानी की आवश्यकता होती है। एक पौंड मक्की के लिए 325 किलो और एक पौंड सूखी घास के विकास में 450 किलो पानी लगता है इसलिए कृषि में पानी की व्यवस्था कैसी हो, यह एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है।

पृष्ठ 85 : **हावर्ड** तथा **फाइफर** जैसे लोगों की चेतावनी के बाद भी वैज्ञानिक, पूँजीपति तथा उद्योगपति अपने मार्ग पर आगे बढ़ते रहते। बढ़ती हुई आबादी के भय से जल्दी में कृषि उत्पादन को बढ़ाने तथा आवश्यकता की पूर्ति के लिए '**हरित क्रान्ति**' का विचार उन्हें सूझा।

पृष्ठ 89 : **मैडम क्यूरी** के तपस्यामय जीवन से सक्रिय रेडियोशक्ति की खोज इसी उम्मीद से सम्भव हुई कि इसका उपयोग मानवजाति के लिए एक वरदान होगा'''अब रेडियोशक्ति द्वारा दुनिया की संस्कृति का नाश करने का प्रयास हो रहा है। आम जनता जो इन चीजों का उपयोग करती है चमकीले विज्ञापनों से बेहोश हो जाती है। इसी प्रकार उद्योगपतियों, पूँजीपतियों, राजनीतिज्ञों तथा वैज्ञानिकों के सम्मिलित षडयंत्र से प्रकृति के नियमों का उल्लंघन निरन्तर हो रहा है और यह दुनिया रहने लायक नहीं बन रही है।

पृष्ठ 136 : संदूषण जहाँ पैदा होता है वहाँ पर वह सीमित नहीं रहकर जिन अविकसित देशों का वातावरण अभी तक शुद्ध है उसका भी शोषण करता है। व्यक्त और अव्यक्त शोषण का कोई अन्त नहीं है। एक दिन में एक विमान को इतनी ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है जितनी 17000 हेक्टेयर वन में पैदा होती है।

चरित्र संदूषण अध्याय बहुत महत्वपूर्ण है। पृष्ठ 163 : "बुद्धि (रीजन) और होशियारी (इटेलिजेंस) में फर्क है। आजकल मनुष्य पहले की अपेक्षा ज्यादा होशियार है, लेकिन उसकी बुद्धि कुंठित है।

स्वास्थ्य संदूषण के प्रसंग में 182 पृष्ठ पर कहा गया है—

"जिस प्रकार वैज्ञानिकों ने प्रकृति के समतोल के नियम की अवहेलना करके प्रकृति पर विजय पाने का प्रयत्न किया उसी तरह डॉक्टरों ने भी किया और बिगड़ते हुए जनस्वास्थ्य के रूप में हम उसका फल भुगत रहे हैं। गलत पोषण से तथा तेज़ दवाईयों से दिन पर दिन मनुष्य की 'रोग निरोधक शक्ति' बहुत तेज़ी से घट रही है।"

पृष्ठ 190 पर : "**शुमाखर** को बहुत स्पष्टता से दीखता था कि हमारा रोग ज्ञान की कमी से है। विज्ञान की तकनीकी की, व्यवस्था की और औद्योगिक सम्बन्धों की कोई कमी नहीं है। इन सब बातों में हमें विलक्षण सफलता मिल रही है। लेकिन लक्ष्यों और पद्धतियों में सही मार्गदर्शन देने का ज्ञान हमारे पास नहीं है।

पृष्ठ 249 : भारत में चरित्र का संदूषण भी तेज़ी से बढ़ रहा है।

वे अगाह करती हुई लिखती हैं (पृष्ठ 252)—

"भारत के नागरिकों को पश्चिमी दुनिया की परिस्थितियों को समझकर इन कडुवे अनुभवों से जागरुक रहना चाहिए। वे निश्चय करें कि प्राकृतिक सम्पत्ति के विनाश से तथा वातावरण के संदूषण से हमें बचना है।"

—डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

विज्ञान के बढ़ते चरण | श्यामसरन अग्रवाल 'विक्रम'

1. कठोरतम अस्थि पर मुलायम काट

सामान्यतः मानव का सिर कठोरतम होता है; इसीलिये जब सिर पर शल्यक्रिया आवश्यक हो जाये तब आरी और छुरी का चला आ रहा पुरातन ढंग समय तो अधिक लेता ही है, बड़ा बेढंगा भी दिखता है।

अमेरिकी शल्य चिकित्सक, **पीट्सबर्ग के डॉ॰ राबर्ट हॉल** ऐसा हल लेकर आये हैं जो सिर से मन चाहे आकार की कटोरी यूँ काट लें मानो सेब को तराश लिया।

न्यूरेथरटोन नामक यह नवाविष्कृत यंत्र, सूराख करने वाले एक छोटे बरमे (ड्रिल) के रूप में है। इसका ब्लेड एक बोतल में भरे उच्च दाब के नाइट्रोजन द्वारा संचालित, एक मिनिट में 2400 चक्र गति से घूमता है। बस, प्रारम्भ में एक नन्हा छिद्र सिर में निर्धारित स्थल पर करके उसमें बरमें का ब्लेड प्रविष्ट कराना पर्याप्त है। फिर तो इच्छित आकार की रेखा में बरमा घुमाकर दो मिनिट में ढक्कन सरीखा गोल कटकर बाहर आ जाता है। मस्तिष्क की कोई भी जटिल शल्यक्रिया इस प्रकार सरलतापूर्वक करके वही ढक्कन वापस सील कर दिया जा सकता है। यों अन्यथा वदशक्ल निशान भी नहीं बन पाता। उरु-अस्थि तथा पसलियों की भी कटाई इससे अत्यन्त सुगम हो सकेगी।

2. या कुतिया ! तेरा ही सहारा

एक यंत्र का आविष्कार जितना रोचक हो सकता है, सूझ-बूझ का आविष्कार भी उतना ही रोचक माना जायेगा। बाढ़, बरसात के दिनों महानगरों के भूमिगत नालों, सीवरों को नियंत्रण में रखते हुए उन्हें अनियंत्रित उफनने से कैसे रोका जाये?

इसका हल लास एन्जेल्स (अमेरिका) के एक सर्वेक्षक दल ने खोज निकाला है। उन्होंने एक कुतिया को, यह देखकर कि अपनी सर्वाधिक प्रिय आइसक्रीम के लिये वह कुछ भी कर सकती है, उसे प्रशिक्षित किया। उसके गले में मापक फीता, एक लम्बी टेप के रूप में बाँधकर सीवर के एक सिरे पर नीचे उतार दिया। कुछ किलोमीटर दूर, दूसरे सिरे पर कुतिया को बाहर निकालने हेतु प्रतीक्षा में बैठे सर्वेक्षक दल से कुतिया को आइसक्रीम का इनाम और सर्वेक्षकों को माप आदि प्राप्त हो जाते हैं। केवल एक बार कुतिया तनिक इसलिये देरी कर गयी थी कि एक चूहे को देखकर उसके पीछे लग गयी थी!

3. चमचागीरी जिन्दाबाद

चालू चमचागीरी की बात करे सो गुनाहगार। बात तो है एक नयी करामाती चम्मच-शृंखला की जो चिराग़ अलाद्दीन से कम नहीं। इसके लिये हमें अमेरिकी अल्युमिनियम कम्पनी का आभारी होना पड़ेगा। क्या कहा···चाय, काफी चाहिये! दो मिनिट में! ये लीजिये, उबलते दूध-पानी मिश्रण में ये खास चम्मच हिला दीजिये। अब फेंक भी दीजिये चम्मच को! ऐसे करामाती चम्मच, अलग-अलग स्वाद और सुगंध से चाय, काफी, कोको, फ्रूट जूस, सूप आदि का ज़ायका दे जायेंगे। कहीं कोई पत्ती, दाना, डालने की आवश्यकता ही नहीं। भिन्न-भिन्न पदार्थों युक्त ये चम्मच अत्यन्त सूक्ष्म छिद्रों से अपना माल दूध-पानी को दे देते हैं। कुछ विशिष्ट औषधियों के लिये भी ऐसी चमचागीरी को काम में लाने की सोच रही है—अमेरिकन अल्यु-मिनियम कंपनी!

4. अपना तोशा, अपना भरोसा

स्वतःविद्युतोत्पादक पम्प···यह पम्प है मगर कहने मात्र को। कोई कल-पुर्जा नहीं। कह लीजिये, डब्बा है डब्बा मगर सारा करिश्मा भी इसी डब्बे में भरा है। ढलाई घरों में पिघली धातु का प्रवाह अबाध बनाये रखता है यह। आइये, इसे नज़दीक से समझें।

इसकी जड़ है ताप-विद्युतीय चुम्बकत्व। इसके एक सिरे से पिघली धातु प्रविष्ट होती है। उसका तापांश होता है 1300 डिग्री फारनहाइट। उसी सिरे पर दो विद्युदाग्र फिट है जो उसे उच्चताप से विद्युत् उत्पादित कर लेते हैं। यों उत्पन्न वह विद्युत्धारा अपने गिर्द ऐसा सशक्त चुम्बकीय क्षेत्र बना लेती है जो प्रवाहित धातु-द्रव पर लम्ब रूप में दवाव डालती हुयी उसे प्रवाहित बनाये रखती है।

केवल लगभग 30 से॰ मी॰ लम्बा और 22 कि॰ ग्रा॰ वज़नी, अनवरत दस हज़ार घण्टे चलने की क्षमता युक्त इस पम्प के आविष्कर्ता और निर्माता हैं ऐटमिक इन्टरनेशनल ऑफ अमेरिका। मानव शरीर के रक्त-संचरण क्षेत्र में भी इसकी उपयोगिता की संभावनाओं पर खोज जारी है। □□

68 असिस्टेंट लाइन, बिरला नगर, ग्वालियर-474004

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण !

सबसे पहले आप सभी नये वर्ष की शुभ कामनायें स्वीकार करें। नया वर्ष आपके लिए नई खुशियाँ लाये। नया वर्ष मंगलमय हो।

हम नये संकल्प के साथ 'विज्ञान' का जनवरी अंक आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। 'विज्ञान' की पृष्ठ संख्या अब 24 पृष्ठों से बढ़ाकर 32 पृष्ठ कर दी गई है। मुख पृष्ठ में भी सुधार किया जा रहा है। प्रकाशित सामग्री का स्तर ऊँचा करने का भी प्रयास है। कागज, छपाई और ब्लाक आदि के मूल्यों में वृद्धि के कारण हमें पत्रिका का मूल्य विवश होकर बढ़ाना पड़ा है। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि हमारे पाठक हमारी मजबूरी को ध्यान में रखते हुए पत्रिका से अपना स्नेह यथावत् बनाये रखेंगे।

विज्ञान के लेखकों के लिए एक शुभ समाचार है। वर्ष 1990 से हम 'व्हिटेकर पुरस्कार' प्रारम्भ कर रहे हैं। यह पुरस्कार प्रति वर्ष किसी पत्रिका में प्रकाशित लेखों में सर्वश्रेष्ठ लेख पर दिया जायेगा। सर्वश्रेष्ठ लेख पर 500 रुपये और एक प्रमाण-पत्र प्रदान किया जायेगा। इस पुरस्कार के लिए कनाडा के ओटावा विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के प्रोफेसर डॉ० वाई० पी० वार्ष्णेय ने 5000 रुपयों की धनराशि प्रदान की है। इसी राशि के ब्याज से यह पुरस्कार प्रतिवर्ष दिया जायेगा। प्रकाशक की अनुमति से पुरस्कृत लेख 'विज्ञान' में प्रकाशित भी किया जायेगा। लेख मौलिक है इस आशयक का लेखक का प्रमाण-पत्र आवश्यक है। हमारे लेखकों के प्रोत्साहन के लिए प्रो० वार्ष्णेय का यह सहयोग वंदनीय है। हम प्रो० वार्ष्णेय के कृतज्ञ हैं।

किन्तु मेरे पास कहने को सभी कुछ अच्छा नहीं है। पिछले दिनों विज्ञान परिषद् परिवार को अपूरणीय छति भी उठानी पड़ी है। पहले वयोवृद्ध रसायनज्ञ **प्रोफेसर सत्येश्वर घोष** का निधन हो गया। प्रो० घोष इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अवकाशप्राप्त अध्यक्ष थे। वे विज्ञान परिषद् से गहरे जुड़े थे। 1925 में 'विज्ञान' में रंगों पर उनका एक लेख भी प्रकाशित हुआ था।

इसके बाद ही 4 दिसम्बर 1989 को विक्रम विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में रीडर **डॉ० महेन्द्र सिंह वर्मा** का एक स्कूटर दुर्घटना में निधन हो गया। एक उदीयमान युवा वैज्ञानिक का दुःखद अंत। डॉ० वर्मा पिछले अनेक वर्षों से 'विज्ञान' पत्रिका में बराबर लिखते आ रहे थे। उन्हें विशिष्ट लेखन के लिए 'डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार' से सम्मानित भी किया गया था। परिषद् द्वारा आयोजित अखिल भारतीय गोष्ठियों में वे आते रहते थे। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि भी ली थी।

हम इनके शोक से उबर भी नहीं पाये थे कि अंटार्कटिका से 4 भारतीय वैज्ञानिकों—**वी० के० श्रीवास्तव, ए० के० बेदी, बी० एल० शर्मा** और **एन० सी० जोशी**—के निधन का समाचार मिला। इन सभी दिवंगत आत्माओं को विज्ञान परिषद् परिवार की भाव भीनी श्रद्धांजलि अर्पित है।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

तोड़-फोड़ की अंतर्राष्ट्रीय कार्यवाही में विज्ञान

मनोज कुमार पटैरिया

भारत ही नहीं वरन् पूरी दुनिया इस समय आतंकवाद के दौर से गुज़र रही है और नित नई आतंकवादी कार्यवाहियों की सूचनाएँ विश्व के अनेक भागों से देखने-सुनने को मिलती हैं। इन आतंकवादी कार्यवाहियों में वैज्ञानिक और तकनीकी साधनों का खुलकर इस्तेमाल किया जा रहा है। वास्तव में आतंकवाद में विज्ञान का इस्तेमाल दो तरह से होता है। एक तो आतंकवाद फैलाने में और दूसरा आतंकवाद को रोकने में। आज यहाँ पहले तरह की तकनीकें इतनी अधिक परिष्कृत हो चुकी हैं, कि आतंकवाद विरोधी पुरानी तकनीकों से काम नहीं चल पाता, वहीं दुनिया भर में विशेषज्ञ आतंकवादी तकनीकों के साथ ही आतंकवाद विरोधी तकनीकों का अध्ययन और विकास करने में जुटे हुए हैं। लॉस ऐलमॉस की राष्ट्रीय रक्षा प्रयोगशाला इसका पक्का पता लगाने का प्रयास कर रही है कि आतंकवादी और प्रति आतंकवादी (टेरोरिज्म एंड एंटी-टेरोरिज्म) तकनीकों में किसका हाथ ऊपर है। प्रयोगशाला के पूर्व संयुक्त-निदेशक **पॉल रॉबिसन** कहते हैं कि कोई आतंकवादी संगठन जो भी हरकतें करता है, प्रति-आतंकवादी तकनीकें उससे कहीं अधिक प्रभावी ढँग से उन्हें निष्फल कर सकती हैं।

परमाणु हथियार और आतंकवाद

अमेरिका की गुप्तचर एजेंसियाँ इस बात का पता लगा रही हैं कि अगर आतंकवादी परमाणु हथियार पा लेते हैं तो उससे क्या खतरे पैदा हो सकते हैं। 'वाशिंगटन टाइम्स' में छपे लेख के अनुसार गुप्तचर एजेंसियाँ उन देशी और अन्तर्राष्ट्रीय गिरोहों का पता लगा रही है जो परमाणु हथियारों के ज़रिए आतंक फैलाने की क्षमता रखते हैं। लेख में कहा गया है कि कुछ विशेषज्ञों ने ऐसे आतंकवादी गिरोह का पता लगा लिया है जो न कि सिर्फ परमाणु सामग्री हथियाने का इरादा रखते हैं बल्कि उनसे विस्फोटक बनाने की क्षमता भी रखते हैं।

परमाणु ऊर्जा विभाग के एक अध्ययन के अनुसार कोई आतंकवादी इस्लामी गिरोह परमाणु बम बनाने की सामग्री प्राप्त करने के लिए किसी अमेरिकी परमाणु प्रतिष्ठान पर हमला कर सकता है। 'परमाणु नियंत्रण संस्थान' के अध्यक्ष **पॉल लेवेंथल** ने परमाणु बिजली घरों को उस खतरे से सचेत कर दिया है। विशेषज्ञों ने कहा है कि देश-विदेश में आतंकवादी आजकल तकनीकी रूप से आधुनिक होते जा रहे हैं। वे जानकार वैज्ञानिकों की मदद से परमाणु बम बना सकते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि परमाणु हथियारों या सामग्री के लिए आतंकवादियों की नज़र परमाणु बिजलीघर पर लगी रहती है। अमेरिका का ऊर्जा विभाग परमाणु बिजलीघर की सुरक्षा पर प्रति वर्ष 75 करोड़ डॉलर खर्च करता है।

आतंकवाद क्यों ?

वाशिंगटन स्थित एक आतंकवाद विशेषज्ञ **ओमर कादर** ने बताया है कि आतंकवादी प्रायः दो तरह के होते हैं। एक तो **नैतिक राष्ट्रवादी** जैसे आई० आर० ए० (आइरिश रिपब्लिकन आर्मी) और पी० एल० ओ०, जो भाषायी, धार्मिक और क्षेत्रीय सम्बन्धों के लिए लड़ रहे हैं और दूसरे **प्रेरित दल,** जैसे लातीनी अमेरिका में भूराजनैतिक रैड ब्रिगेड्स या राइट विंग डैथ स्क्वैड्स। हाल ही में अमेरिका में "आतंकवाद का भय" विषय पर आयोजित संगोष्ठी में **रॉबर्ट कुपरमैन** ने कहा है कि आतंकवाद की सफलता इस पर निर्भर नहीं करती है कि आतंकवादियों ने कितना अधिक शक्तिशाली विस्फोटक प्रयोग किया या कितनी अधिक संख्या में लोग मारे गये। **रॉबिसन** पूछते हैं कि क्या आतंकवादी पूरे शहर की आबादी को नष्ट कर देना

प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी० एस० आई० आर०, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली—110012

चाहते हैं, और क्या यह तकनीकी से सम्भव है ? या वे किसी घोषित कारण के लिए लोगों का ध्यान बँटाना चाहते हैं ? **कादर** ने कहा कि अधिकांश आतंकवादी, नाशवादी नहीं हैं और वे परिवर्तन चाहते हैं। सुरक्षा सलाहकार **एम० सी० जॉर्ज** ने कहा कि आतंकवादी कभी भी एक सीमा तक तकनीकी स्तर नहीं गिरने देते, और यदि हम प्रति-आतंकवादी तकनीकों का स्तर बढ़ाते हैं, तो वे भी इसकी बराबरी करते हैं।

दुनिया विस्फोटकों की

23 अक्टूबर 1953 को प्रातः 6.22 बजे बेरूत अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे के निकट बटालियन लेंडिंग टीम मुख्यालय के 4 मंज़िले भवन को विस्फोटक से उड़ा दिया गया था, जिसमें 300 से अधिक नाविक सो रहे थे। इसमें से 241 से अधिक मारे गए थे। इसे फेडरल ब्यूरो ऑव इन्वेस्टिगेशन की अपराध प्रयोगशाला ने भयंकर गैरपरमाणुविक विस्फोट कहा था। इस विस्फोट में 6 टन टी एन टी (ट्राई नाइट्रो टॉल्वीन) का उपयोग किया गया था जो सामान्य डायनामाइट से दो गुना शक्तिशाली होता है। 1970 में विस्कांसिन विश्वविद्यालय के अनुसंधान भवन को उड़ाने के लिए 1700 पौंड डॉक्टर्ड फर्टिलाइज़र विस्फोट का इस्तेमाल किया गया था। प्लास्टिक जैसा **सी-4** और **सेमटेक्स** नामक दो विस्फोटक हैं जो **टी एन टी** से एक तिहाई अधिक शक्तिशाली होते हैं। प्लास्टिक विस्फोटक दूसरे विश्व युद्ध के दौरान विकसित किए गये थे। इन्हें ईंटों, जूतों के तल्लों, वस्त्रों, और डिब्बों के आकार का बनाया जाता है। सबसे घातक प्लास्टिक विस्फोटकों में **आरडीएक्स** है। इसके बाद की श्रेणी में **सी टी एम टी एन** (साइक्लोट्राइमेथाइलेनट्राइनाट्रामीन) या **पी ई एन टी** (पेंटाएरिथ्राइटटेट्रानाइट्रेट) आते हैं। 1790 में जर्मन वैज्ञानिकों ने ये विस्फोटक तैयार किये थे। ब्रिटेन ने 88.3% आर डी एक्स और 11.7% गैरविस्फोटक मिलाकर हाथ से विस्फोट करने वाले हथगोले बनाए। सी-4 एक तीव्र विस्फोटक है, जो उच्च ताप पर भी स्थाई रहता है। यह गंधहीन, गंदा सफेद और हल्का भूरा होता है। इसमें 91 आर डी एक्स, 53 डाई- (2-एथिल हेक्सिल) सेबेकैट, 2 1 पॉलीआइसोब्यूटिलीन और 1.6 प्रतिशत मोटर का तेल होता है। इसके चौथाई पौंड से किसी सामान्य भवन को नष्ट किया जा सकता है। सेमटेक्स को प्रायः कम पसंद किया जाता है, क्योंकि इसे जल्दी पहचान लिया जाता है। इसी कारण 11 अप्रैल, 1986 को ई एल ए आई उड़ान के लिए लन्दन में एक ईरानी महिला **अन्ना मारिआ मर्फी** को रोक लिया गया था, जिसके सूटकेस में उसके पुरुष मित्र **पॉल एस्टिनियन** का एक बम पहचाना गया था। बाद की जानकारी जनता के लिए जारी नहीं की गई।

हथियार भी पीछे नहीं

एम० सी० जॉर्ज कहते हैं कि अधिकांश आतंकवादी संगठन नई आतंकवादी तकनीकों के प्रति भ्रमित नहीं हैं। वे सरल और सामान्य तकनीकें इस्तेमाल करते हैं, लेकिन इन तकनीकों से मतलब निम्न श्रेणी की तकनीकें नहीं समझनी चाहिए। इसका तात्पर्य है ऐसी युक्तियाँ जो गल्तीरहित हों और आसानी से संचालित की जा सकें तथा विश्वसनीय हों। जैसे सोवियत रूस में निर्मित 'कालाश्निकोव बंदूक' जो वहाँ क्रांतिकारी आंदोलन में खूब प्रयुक्त हुई है। जैक निर्मित स्कॉर्पियॉन वी ज़ेड-61 एक हल्की मशीन है, जिसका इस्तेमाल रेड ब्रिग्रेड्स ने इटली के पूर्व प्रधानमन्त्री **एल्डो मोरो** को मारने के लिए 1978 में किया था। यह अपने छोटे आकार और प्रभावी मारक दर के कारण मूल्यवान है। अब प्लास्टिक की बनी एक नई पीढ़ी विकसित हो रही है। इसी श्रृंखला में, **मिर्मी**, ग्लॉक-17 पिस्तौल विशेष रूप से चर्चित है। इसका भार भरने से पहले 22 औंस होता है। यह अपेक्षाकृत सस्ती है और आसनी से एक दूसरे स्थान को ले जाई जा सकती है। और तो और यह एक्सरे मशीनों की पकड़ में नहीं आती और डिटेक्टरों के पर्दे पर भी प्रकट नहीं होती, क्योंकि यह गैर धात्वीय मजबूत

पॉलीमर की बनी है। इसे आस्ट्रेलिया ने बनाया है। अमेरिकी सेना भी 35 औंस भारी 9 मिमी० बेरेटा पिस्तौल प्रयोग कर रही है। इसके पहले आतंकवादियों के पास पतले एल्युमिनियम की बनी हल्की पिस्तौल थी, जिसे भी पहचानना बड़ा मुश्किल काम था।

रॉकेट और मोरटार का प्रयोग

विदेशों में आतंकवादियों ने अधिक आक्रमक ढंग से नवीनतम तकनीकों का प्रयोग किया है। इनमें अत्याधुनिक हैं सोवियत आर पी जी-7 ग्रेनेड लांचर और एस ए एम-7 स्ट्रेला एंटी-एयरक्राफ्ट मिशाइल। आर पी जी-7 जो स्टील में 14 इंच तक घुसने में समर्थ है और एक आरमर्ड कार को रोक सकता है। एम ए एम-7 एक सुबाह्य रूप से विकसित किया गया है, जिसे सूटकेस में बन्द करके रखा जा सकता है। हथियारों में सुधार करने की दिशा में सम्भवतः यह आई आर ए अधिक आविष्कारशील रहा है। इसने 1700 मी० की रेंज का 60-मिमी० मोरटार विकसित किया है, जो सूटकेस में फिट हो सकता है। आतंकवादी तकनीकों के निर्माण में विशेषरूप से **क्रिशियन क्लार** का नाम उल्लेखनीय है, जो इस समय जर्मनी की जेल में बंद हैं। उन्होंने अपना कैरियर रेड आर्मी फ्रेक्शन में आरम्भ किया, और ड्रोन हेलिकॉप्टर तथा 40-बेटेलरियन फायर मोरटार का विकास किया। इनके अलावा अन्य अनेक तरह के हथगोले, विस्फोटक, बंदूक, स्टेनगन, टाइमबम, कार बम आदि आतंकवादी कार्यवाहियों के आम तरीके हैं। इनकी पहचान के लिए विभिन्न प्रकार की तकनीकें विकसित भी की गई हैं, जिन्हें आतंकवाद विरोधक तकनीकें कहा जाता है।

धातु सूचक यन्त्र (मेटल डिटेक्टर)

प्रायः कोई भी हथियार किसी न किसी धातु का बना होता है, जिसे धातु सूचक द्वारा आसानी से पकड़ा जा सकता है। यह यंत्र एक तरह की तरंगें छोड़ता है। ये तरंगें केवल धातु विशेष से टकराकर वापस यंत्र में आती हैं, जिससे पीं पीं का स्वर उत्पन्न होता है, और इससे हथियार की पहचान हो जाती है। सैंडिया प्रयोगशाला, एल्बुरवेकँने ऐसे मेटल डिटेक्टर बनाए हैं, जो इस तरह समायोजित किए जा सकते हैं, जिनमें चाबी का गुच्छा, बेल्ट बक्कल और ऐसी ही छोटी चीज़ों को नज़रंदाज़ करने की क्षमता है और जाँच में अधिक समय नहीं लगता। इस तरह सुरक्षित क्षेत्रों में तथा संदिग्ध स्थानों पर मेटल डिटेक्टरों की मदद से आतंकवादी कार्यवाहियों को रोका जा सकता है।

विस्फोटक की पहचान

विस्फोटक पदार्थ आतंकवादी कार्यवाहियों के प्रमुख साधन हैं और विस्तार से प्रयोग किये जाते हैं, चाहे कार बम हो या बारूदी सुरंग, सभी में विस्फोटक प्रयुक्त होता है। विस्फोटकों की पहचान करना अपेक्षाकृत अधिक कठिन कार्य है। सैंडिया प्रयोगशाला की मुख्य रुचि, विस्फोटक डिटेक्टर विकसित करने में है। लगभग एक दशक से ऐसे सूचक प्रयोग किये जा रहे हैं, जो उसके पास गुज़रने वाले व्यक्तियों या सामानों से लगने वाली हवा के नमूने के द्वारा विस्फोटक की जाँच करते हैं, पर ये केवल डायनामाइट तक ही सीमित हैं। एक अन्य युक्ति में डिटेक्टर के मध्य खड़े व्यक्ति के समीप की 5 घन फीट हवा एक पंखे द्वारा ली जाती है। इसमें अक्रिय गैस आगे मिलती है जैसे आर्गन या हीलियम। इस मिश्रण पर रेडियोएक्टिव स्रोत से बीटा कीरणों की बौछार की जाती है। यदि विस्फोटक के कण उपस्थित होते हैं, तो उसके इलेक्ट्रॉन अवशोषित हो जाते हैं, और विद्युत्धारा उत्पन्न होती है जिसे प्रवर्धित कर एक अलार्म बज जाता है, जो विस्फोटक होने की सूचना देता है।

सेंडिया के एक अनुसंधानकर्ता **फ्रेंक कोनाडे** ने बताया कि एक अति संवेदनशील उपकरण काम में लाया जा सकता है, जो आर डी एक्स की पहचान कर सकता है। इसे आमतौर पर पर्यावरण में अंशमात्र विषैले रसायनों का पता लगाने के काम में लाया जाता है। यह अणु आयनन की विधि का कार्य करता है। छुपे विस्फोटकों को खोज निकालने की एक और तकनीक है रासायनिक प्रतिदीप्ति। यह युक्ति नाइट्रोजन कणों के होने पर ओज़ोन की उपस्थिति में प्रतिदीप्ति

उत्पन्न करती है। लेकिन ये सभी विधियाँ केवल तभी उपयोगी हैं, जब विस्फोटक कण हवा में आ जाएँ। पर यदि विस्फोटक प्लास्टिक या पॉलीथीन की पर्तों में पैक हो तो उसका संसूचन किया जाना मुश्किल है। ब्रिटिश एयरोस्पेस ने इलेक्ट्रॉनिक स्फितर तकनीक खोजी है। यह विस्फोटकों के कणों और टुकड़ों को ढूँढ़ निकालती हैं चाहे विस्फोटक पॉलीथीन की चद्दर में ही क्यों न लिपटे हों। इसमें दो मिनट लगते हैं, और यह शीघ्रता से जाँच करने में सक्षम वतायी जाती है। इंग्लैंड के पश्चिम किनारे पर डापर स्थित हवाई अड्डों पर "ग्रीन चैनल" लगाया गया है, जिसमें लगी एक्स-रे युक्ति सारी गड़वड़ सेकेंडो में साफ़ कर देती है। फेडेरल एविएशन एडमिनिस्ट्रेशन ऐसा विस्फोटक सूचक विकसित कर लेने का दावा रखता है, जो **3-6** सेकंड में डायनामाइट, अमोनियम नाइट्रेट उत्पाद, ब्लैक पाउडर, टी० एन० टी०, सी-**4**, पी० ई० टी० एन० और आर डी एक्स को खोज निकालेगा।

बुलेट प्रूफ पोशाक और वाहन

कई वार आपने सुना होगा प्रधान मन्त्री ने बुलेट प्रूफ बाक्स के पीछे से भाषण दिया। अनेक देशों के राष्ट्राध्यक्ष बुलेटप्रूफ पोशाक पहनते हैं। यह ऐसे पदार्थ की बनी होती है, जिसे गोली नहीं बेध सकती। इस पदार्थ का नाम है केवलर, जो मूल रूप से रेडियल टायरों को मज़बूत करने के लिए डू पोन्ट से तैयार किया जाता है। यह हल्का और परतें बनने योग्य होता है। यह स्टील के भार के अनुसार **5** गुना अधिक मज़बूत होता है। बुलेट रोधी कपड़े केवलर की परतों के बनाए जाते हैं। रेनकोट, शर्ट, सूट, सदरी आदि इसकी लोकप्रिय पोशाकें हैं। ये पोशाकें काफी समीप के वार को भी रोक सकती हैं। केवलर के साथ अन्य पदार्थ मिलाकर इससे बुलेटप्रूफ गाड़ियाँ और बाक्स भी बनाए जाते हैं, जो अनेक सुरक्षा कार्यों में काम में लाये जाते हैं। अमेरिका के राष्ट्रपति का बुलेटप्रूफ कोट **16** केवलर पर्तों का बना होता है, जिसकी एक परत को भी **357** मैग्नम बुलेट पार करने में सफल नहीं हो सकी, और एक निशान छोड़ कर दूर छिटक गई।

हर हालत में सुरक्षा

हाल में अमेरिकी प्रशासन ने आतंकवाद को अधिक आक्रमक ढँग से दबाने के लिए हर स्तर पर सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए क़दम उठाए हैं। आतंकवाद से ग्रस्त अन्य देश भी इसका अनुसरण कर रहे हैं। किटलेंड वायुसेना आधारित आणुविक हथियारों के बड़े भण्डार को भूमिगत बनाया गया है, जहाँ ताप-नाभिकीय हथियार रखे गए हैं। इसे चारों ओर से तीन पर्तों से गहन विद्युत्-अनुक्रमों द्वारा घेरा गया है और आर्मर्ड ट्रेक्टर ट्रेलर पहरा दे रहे हैं। उधर ट्रक विस्फोटक से भरे ट्रक को टार्गेट से पहले ही पहचान कर नष्ट करने में सक्षम हैं। अमेरिका ने दुनिया भर में अपने दूतावासों को आतंकवादी कार्यवाहियों से सुरक्षा के लिए पुनः उनमें आवश्यक सुधार करने के लिए **1985** में कार्लिस ब्यूरो की स्थापना की जो **44** करोड़ डॉलर ख़र्च करके विश्व भर में फैले अमेरिकी दूतावासों में अतिरिक्त निर्माण कार्य करायेगा। अब तेज़ी से ऐसी तकनीकों का विकास और निर्माण किया जा रहा है जो आतंकवादी गतिविधियों को रोकने में सहायक हों। एक स्कॉटिश आविष्कारक ने ऐसी सुरक्षा युक्ति डिज़ाइन की है, जो सुरक्षा में सहायक पाई गई है। इसके इस्तेमाल में 45 वर्षीय आतंकवादी **नजर हिंडवी** को कारागार भेजा गया, जिसे विमान में बम रखने के षडयंत्र में गिरफ्तार किया गया था।

अपहरण और घुसपैठ पर अंकुश

कई देशों में प्रायः हवाई जहाज़ों का अपहरण करके आतंकवादी अपनी माँगों को मनवाने का प्रयास करते हैं। ऐसी स्थिति से बचने के लिए **रोबिंसन** ने बताया है कि संयुक्त और ब्रिटिश सरकारों के अधुसंधानकर्ता एक तीव्र क्रियाकारी गैस का ऐरोसॉल मिश्रण तैयार कर रहे हैं, जो शीघ्रता से फैल कर स्थितियाँ परिवर्ति कर सकता है और रक्षा कर्मी मोर्चा संभाल सकते हैं। उन्होंने स्वचालित हथियारों से शीघ्रमारक रबर की स्वचालित गोलियों का भी विकास किया है। सेंडिया, जो घुसपैठ अलार्म की

अग्रदूत है, अब घुसपैठ अलार्म के अतिरिक्त थर्मो-प्लास्टिक फोम का निर्माण कर रही है। इसके साथ ही वे ठंडे रासायनिक धुयें और अन्य क्रियाशील पदार्थों का निर्माण कर रहे हैं, जो शीघ्रता से पंप द्वारा फैल कर उच्च सुरक्षा क्षेत्रों में घुसपैठियों को अक्रिय बना सकते हैं।

आज वास्तविकता यह है कि आतंकवाद के संत्रास से त्रस्त विश्व की आँखें अब आतंकवाद निरोधक टेक्नोलॉजी की ओर गड़ी हुई हैं कि ये टेक्नोलॉजी किस तरह कारगर ढँग से आतंकवाद का मुक़ाबला करती है। लेकिन रक्षा तकनीकी के संयुक्त-निदेशक **डेनियल कार्लिन** का कहना है कि इतना कुछ आतंकवाद निरोधक साधन होते हुए भी पूरी सफलता परिश्रमी पुलिस बल की सर्तकता तथा तत्परतापूर्वक किए गए कार्य व जनसहयोग पर निर्भर करती है। हवाई अड्डा तथा अन्य सुरक्षा स्थानों पर पक्की और गल्तीरहित जाँच से भी काधी सीमा तक आतंकवाद विरोधी तकनीकों की सार्थकता सिद्ध हो सकती है। उन्होंने कहा कि विज्ञान तो केवल साधन प्रस्तुत करता है। यह उसे उपयोग करने वालों पर निर्भर करता है कि वे उसका उपयोग किस हद तक करते हैं या कर सकते हैं। □□

मिठासयुक्त रसायनों की उपयोगिता

अनिल वशिष्ठ

खट्टा, मीठा, चटपटा या नमकीन स्वाद मनुष्य की कमज़ोरी रही है। यदि रसगुल्ला स्वादहीन हो तो भूखा व्यक्ति भी उसे खाने से मना कर देगा। मीठा स्वाद दुनिया भर में मान्यता प्राप्त सर्वश्रेष्ठ स्वाद है। मिठास उत्पन्न करने वाले पदार्थों को ''मधुरक'' कहा जाता है। मधुरक पदार्थ प्राकृतिक अवस्था में मिलते हैं तथा कृत्रिम उपायों से भी बनाये जाते हैं। ये मधुरक पदार्थ रासायनिक संरचना के आधार पर अलग-अलग वर्गों से जुड़े हैं। ''मधुरक'' पदार्थों के कारण ही चुकन्दर, डेट खजूर, गन्ना, अंगूर, केला, संतरा, सेब जैसे अनेक फल तथा पेड़-पौधे लोकप्रिय रहे हैं।

मिठास की अनुभूति के अनुभव के पीछे जीभ का विशेष योगदान है, यदि जीभ न होती तो मनुष्य स्वाद अनुभव करने से वंचित रह जाता। जीभ में छोटे-छोटे छिद्र होते हैं, जिन्हें ''स्वाद रंध्र'' कहते हैं। स्वाद रंध्र के ठीक नीचे के भाग को ''स्वाद कलिका'' कहते हैं। ''स्वाद कलिकाओ'' का सम्बन्ध मस्तिष्क तक पहुँचता है, जहाँ से मीठेपन का आदेश वापस आता है और हम तभी कह बैठते हैं कि यह वस्तु अधिक या कम मीठी है। सभी स्वाद कलिकाएँ मिठास का अनुभव नहीं करातीं। स्वाद कलिकाएँ अलग-अलग स्वाद के लिये जीभ के अलग-अलग भाग पर पायी जाती हैं। मिठास अनुभव कराने वाली स्वाद कलिकाएँ जीभ के अगले भाग पर पायी जाती हैं। यदि मिठासयुक्त पदार्थ को सीधे जीभ के पिछले भाग पर रख दें तो हम स्वाद का अनुभव नहीं कर सकते। स्वाद का अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह भी हैं यदि मिठासयुक्त पदार्थ ठोस है और जल में विलेय नहीं है तो ठोस अवस्था में सूखी जीभ पर उस पदार्थ को रखने पर स्वाद की अनुभूति नहीं होगी। इससे स्पष्ट होता है कि मिठास अनुभव कराने वाली स्वाद कलिकाओं पर पदार्थ को तरल अवस्था में रखें तभी मिठास का अनुभव होगा अन्यथा नहीं। उदाहरण के तौर पर सूखी पूर्ण अवस्था की सैकरीन जीभ से चखने पर बहुत कड़ुवी लगती है। जबकि उसका पानी की भारी मात्रा में बना विलयन बहुत मीठा लगता है। मिठास उत्पन्न करने वाले पदार्थों को मुख्यतया तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—**प्राकृतिक मधुरक, कृत्रिम मधुरक तथा अर्द्ध संश्लेषी मधुरक।**

पोस्ट-घोड़ाखाल, जिला-नैनीताल—263156 (उत्तर प्रदेश)

प्राकृतिक मधुरक

वे रसायन है जो पेड़ पौधों के विभिन्न भागों में प्राकृतिक अवस्था में पाये जाते हैं जैसे—सुक्रोज, फ्रक्टोज, ग्लूकोस, मोनेलिन, थीमेटिस, लैक्टोज, माल्टोज आदि।

कृत्रिम मधुरक

वे रसायन जो प्राकृतिक अवस्था में नहीं पाये जाते हैं तथा जिन्हें प्रयोगशाला में बनाया जा सकता है।

अर्द्ध संश्लेषी मधुरक

वे रसायन जो प्राकृतिक अवस्था में उतने मीठे नहीं होते जितना उनके रसायनिक रूप परिवर्तित करने पर हो जाते हैं जैसे—जाइलिटोल, बाइनकासिल आदि।

सबसे मीठा कौन और कैसे

सबसे मीठा पदार्थ कौन सा है यह जान पाना बहुत ही कठिन कार्य है, क्योंकि अभी तक मिठास को नापने वाला कोई यंत्र या मशीन नहीं बनी है। मिठास अनुमापन का अभी तक एक ही उपाय प्रचलित है, जिसकी अनुमापकता पर संदेह किया जाता रहा है। वह है विभिन्न मधुरक पदार्थों का निश्चित मात्रा के जलीय घोल बनाकर उस घोल की चीनी के घोल या सुक्रोज के जलीय विलयन से विभिन्न व्यक्तियों को स्वाद लेने के लिए माध्यम बनाकर, मिठास की तुलना करना। इसी तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर मिठास से जुड़े तरह-तरह के पदार्थ सामने आये हैं। जैसे—दुनिया को अब तक का सर्वाधिक मीठा पदार्थ'' 1-एन प्रोपॉक्सी, 2-एमिनो, 3-नाइट्रो-बेन्ज़ीन'' आँका गया है जो सुक्रोज के एक प्रतिशत विलयन से 5,600 गुना अधिक मीठा है। दूसरा पदार्थ **डिस्कोरियोफिलस क्येमेंसई** नामक, पौधे का ''मोनेलिन'' नामक प्रोटीन है जो चीनी से 3000 गुना अधिक मीठा है। **थीमेटोकोकस डेनिलाई** पौधे से प्राप्त प्रोटीन ''थीमेटिस'' सुक्रोज से 1600 गुना अधिक मीठा है, जो ''एस्पार्टम'' नामक कृत्रिम मधुरक चीनी से 300 गुना अधिक मीठा होता है। जो 'एस्पार्टिक' नामक अम्ल तथा फेनिल एलानीन के कारण होता है। ''साइक्लामैट'' नामक कृत्रिम मधुरक सुक्रोज से 30 गुना अधिक मीठा होता है। कार्बोहाइड्रेट तथा इससे व्युत्पन्न मधुरकों में ''जाईलिटोल'' सर्वाधिक मीठा है। उसके बाद मीठेपन में क्रमशः ''फ्रक्टोज'', ''सुक्रोज'' तथा ''ग्लूकोज'' आदि आते हैं। आजकल वैकल्पिक तथा कृत्रिम मधुरक बनाने की दिशा में भारी कार्य चल रहा है। इसका मुख्य कारण प्राकृतिक मधुरकों से होने वाली बीमारियों जैसे **मधुमेह** या मोटापा आदि हैं। ये बीमारियाँ अधिक मात्रा में चीनी आदि लेने तथा उसके पूर्ण पाचन न होने के कारण होती हैं, क्योंकि प्राकृतिक मधुरकों की ऊर्जा अधिक होती है। जबकि कृत्रिम पदार्थों में ऊर्जा (या कैलोरिक वेल्यू) बहुत कम होती है।

मधुरक पोषकता तथा उपयोगिता

मधुरकों में अधिकतर पदार्थ ''कार्बोहाइड्रेट'' वर्ग के होते हैं। कार्बोहाइड्रेट में शर्करा श्रेणी के रसायन ही मधुरकों की श्रेणी में आते हैं, अन्य नहीं। ये पदार्थ विभिन्न फल-फूलों में भारी मात्रा में पाये जाते हैं। इन पदार्थों में ऊर्जा बहुत अधिक मात्रा में होती है, जिसे कैलोरी में मापते हैं। अधिक कैलोरी ऊर्जा के कारण इन पदार्थों की पोषकता बहुत अधिक होती है। उदाहरणार्थ अंगूर में डैक्स्ट्रोज, दूध में लैक्टोज चीनी, चुकन्दर तथा खजूर में सुक्रोज, चुकन्दर तथा अनाज में रैफिनोज, भूरे शैवाल में मैन्निटोल, सेब, नाशपाती तथा खुबानी में डी-सार्बिटोल नामक शर्करा पायी जाती है। शहद में विभिन्न प्रकार की शर्करा का मिश्रण होता है। फलों में अन्य शर्करा के साथ फ्रक्टोज भी पायी जाती है। पौष्टिकता के कारण ही फल भोजन का एक हिस्सा बन गये हैं। किन्तु अधिक मात्रा में ऐसे पदार्थ लेने पर, पैंक्रियाज की गामा कोशिकाओं को असंतुलित कर देते हैं और शरीर में इन्सुलिन नाम के रसायन का बनना कम हो जाता है या रुक जाता है, जो शर्करा के पाचन में सहायक है। शर्करा का पाचन पूर्णतया न होने से ''मधुमेह'' नामक रोग हो जाता है, जिसमें शरीर की प्रतिरोधक क्षमता समाप्त हो जाती है।

2—प्राकृतिक मधुरकों में दूसरे प्रकार के पदार्थ जैसे प्रोटीन या एमिनो अम्ल होते हैं, जिनमें मधुरकता तो बहुत अधिक होती है किन्तु कैलोरिपिक मात्रा कम होती है। जैसे "मोनेलिन, थीमेंटिस व स्टेवियोसायड आदि। इन पदार्थों पर अभी अध्ययन चल रहा है ताकि इनके शरीर में प्रभाव आदि को जाना जा सके।

3—तीसरी श्रेणी में कृत्रिम मधुरकों को रखा जा सकता है। इस श्रेणी में मधुरकों में सर्वप्रथम 'एस्पार्टम' है जो एस्पार्टिक अम्ल तथा फेनिल एलेनीन का मिश्रण है तथा चीनी की तुलना में इसकी मधुरकता 2 कैलोरी है, जहाँ पर चीनी के लिये यह 18 कैलोरी होती है। इस पदार्थ को "न्यूट्रास्वीट" नाम से भी जाना जाता है। इसका उपयोग सुगन्धयुक्त क़ॉफ़ी बनाने, अनाज से भोज्य पदार्थ बनाने तथा चाय बनाने में किया जाता है। भारत के बाज़ारों में यह अभी प्रचलित नहीं है। इसी श्रेणी के रसायन "सैकरीन" की खोज 1880 के आस-पास **फलवर्ग** नामक वैज्ञानिक ने कोलतार के एक अंश से की। यह फ्लेवर आदि के साथ चीनी के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। मधुमेह के रोग में मीठी स्वाद अनुभूति के लिए इसका प्रयोग करते हैं। 'साइक्लामेट' चीनी से 30 गुना मीठा है। पचास से सत्तर के दशक में इसका उपयोग ठंडे पेय में किया गया। आजकल कैंसरजन्य लक्षण उत्पन्न करने के कारण इस रसायन के उपयोग पर रोक लगी हुई है।

4—अर्द्ध संश्लेषी मधुरकों पर आजकल विशेष अनुसंधान किये जा रहे हैं, क्योंकि ये पोषक होने के साथ-साथ शर्करा की मात्रा रक्त में नहीं बढ़ाते हैं। इस वर्ग के मधुरकों में जाइलिटोल तथा बाइनकासिन प्रमुख हैं। बाइनकासिन को मंड के हाइड्रोजनीकृत करने पर प्राप्त किया जाता है, जबकि ज़ाइलिटोल हेमीसैलूलोज के अपघटन तथा किण्वनीकरण से प्राप्त किया जाता है। ज़ाइलिटोल का शरीर पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता व दूसरे यह चीनी से मीठा है इस कारण यूरोप में यह सर्वाधिक प्रचलित मधुरक हो गया है। भारत में भी इस पर अनुसंधान कार्य चल रहा है।

मनुष्य को विभिन्न प्रकार के स्वाद की अनुभूति ग्रहण करने की प्राकृतिक लालसा है। यदि डॉक्टर मधुमेह के रोगी के लिये शर्करा का उपयोग पूर्णतया बन्द करने को कहें तो यह पूर्णतया संभव नहीं कि मीठा खाना छोड़ दिया जाय। आजकल शर्करा को छोड़कर कृत्रिम मधुरकों का उपयोग करके बीमारी रोकने का उपाय तथा मीठे स्वाद की अनुभूति दोनों ही प्राप्त किये जा सकते हैं। दूसरे शर्करा के प्राकृतिक साधन माँग के अनुसार कम पड़ते जा रहे हैं। ऐसे में अर्द्ध संश्लेषित पदार्थों का निर्माण कर जैसे ज़ाइलिटोल आदि से मधुर स्वाद की अनुभूति तथा उचित मात्रा में उच्च कैलोरी ऊर्जा से पोषकता भी अर्थात् स्वाद तथा पोषकता दोनों ही रहेगी। संश्लेषित तथा अर्द्ध संश्लेषित पदार्थों के निर्माण से प्राकृतिक पदार्थों पर दबाव कम होगा और पोषकता तथा स्वाद दोनों उद्देश्यों को पूरा किया जा सकेगा। □□

ग्रामीण शिल्पी के लिए रस्सी बटने की हस्तचालित मशीन

निर्मल भटनागर

[प्राचीन काल से ही रस्सी मानव सभ्यता के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। यह कल की जरूरत थी, आज की ज़रूरत है और कल की ज़रूरत होगी। घर पर रस्सी बुनकर हमारे किसान भाई अच्छी आमदनी भी कर सकते हैं। प्रस्तुत है रस्सी बटने की कला पर रोचक जानकारी निर्मल जी की कलम से।

—**सम्पादक**]

डी–720, सरस्वती विहार, दिल्ली–110034

रस्सी का उपयोग आदि मानव ने लगभग 10,000 साल से भी पहले शुरू कर दिया था। वह चमड़े की पट्टियों को हाथ से बटकर अथवा गूँथ कर रस्सियाँ बनाता था।

बताया जाता है कि **ईसा** से लगभग **3500 वर्ष** पूर्व मिस्रवासियों ने अपने विशाल आराधना गृहों और 'पिरामिडों' को बनाते समय बड़े-बड़े पत्थरों को ढोने और ऊँचाई पर पहुँचाने के लिए जिन मज़बूत रस्सों का उपयोग किया वे चमड़े के पट्टों और **पपीरस पौधे** के डंठलों के रेशों से बनाए जाते थे।

ईसा से लगभग 3000 वर्ष पूर्व मिस्र और भूमध्य सागर के पूर्व में बसे देशों में समुद्री जहाजों के मस्तूल बाँधने और लम्बी समुद्री यात्राएँ करने में भी रस्सों का उपयोग किया जाने लगा। रस्सी बटने के लिए **सन** का उपयोग लगभग 3000 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ बताया जाता है। ईसा से 2800 वर्ष पूर्व चीन में उपयोग होने का वर्णन मिलता है। आधुनिक संवत प्रारम्भ होते-होते रस्सी बनाने के लिने जगह-जगह सन के रेशों का उपयोग होने लगा।

रस्सी बटने के लिए मशीन का उपयोग सबसे पहले इंग्लैण्ड में लगभग 230 वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ। इंग्लैण्ड के निवासी **रिचर्ड मार्श** ने **1754** में दुनिया की सबसे पहली रस्सी बटने की मशीन का पेटेंट प्राप्त किया और 1775 आते-आते मशीन व्यापक रूप से काम में लाई जाने लगी।

हमारे देश में रस्सी बटने के लिए परम्परागत रूप से व्यवहृत तरीके में एक व्यक्ति दो खराड़ियाँ घुमाता हुआ आगे-पीछे चलता है। खराड़ी रस्सी बटने के लिए काम में लाए जाने वाले उस उपकरण को कहते हैं, जिसे स्थानीय तौर पर इस काम के लिए बनाया जाता है। दो अन्य व्यक्ति इन दोनों खराड़ियों में साथ-साथ रेशों को भरते भी जाते हैं। इस प्रकार दो रेशों के परस्पर बट जाने से एक तन्तु गुच्छ बनता है। इन तन्तु गुच्छों की विभिन्न संख्याओं को आपस में बटकर विभिन्न मोटाइयों की रस्सियाँ तैयार कर ली जाती हैं।

इस काम को और अच्छा, तेज़ गति से तथा कम श्रम से करने के लिए कम लागत की एक मशीन महात्मा फुले कृषि विश्वविद्यालय, राहुड़ी (अहमदनगर) में अभिकल्पित और विकसित की गई है। यह चार छोटी घिरनियों के समूह से बनी है, जो लकड़ी की बनी एक बड़े आकार की घिरनी से चलाई जाती है। बड़ी घिरनी को एक संचालक घुमाता है। इस मशीन से एक साथ चार तंतु तैयार किये जा सकते हैं।

बनावट

इस मशीन की बनावट बड़ी सरल है। इससे लकड़ी का एक फ्रेम लकड़ी के तीन पहियों पर आरोपित है। बड़े आकार की एक घिरनी इसमें लगी होती है, जिस पर चमड़े का पट्टा (बेल्ट) वहन करने के लिए दो खाँचे बने होते हैं। इस पर एक क्रैंक युक्त हैण्डल भी लगा होता है। जब संचालक इस घिरनी को घुमाता है तो इसके कारण फ्रेम के निचले भाग में लगी लकड़ी की चार घिरनियाँ घूमती हैं। बड़ी घिरनी से छोटी घिरनियों तक शक्ति का स्थानांतरण चमड़े के दो पट्टों से पूरा होता है। इन छोटी घिरनियों के शैफ्टों पर भी घिरनियाँ लगी होती हैं, जिनके साथ रेशे बाँधे जाते हैं। मशीन पर उपयुक्त ऊँचाई पर एक हैंडल लगा होता है ताकि उसके सहारे मशीन को पीछे खिसकाया जा सके।

उपयोग

इस मशीन में लगे चारों हुकों को रेशों का भरण करने के लिए मशीन के सामने चार व्यक्तियों को बैठाना पड़ता है। संचालक मशीन के पीछे खड़ा होता है। अब संचालक फ्रेंक वाले हैंडल को घुमाता है। इससे जैसे-जैसे तंतु की लम्बाई बढ़ती है, वैसे-वैसे वह मशीन के पीछे खिसकता जाता है। जब चारों तंतुओं की एक उचित लम्बाई प्राप्त हो जाती है तो मशीन को पीछे खिसकाना रोक दिया जाता है। भरण किये जाने वाले सिरे पर दो-दो तंतुओं को परस्पर बाँध कर तंतुओं के जोड़े बना लिए जाते हैं। इन युग्म तंतुओं को परस्पर बट कर दो अलग तंतु गुच्छ प्राप्त कर लिये जाते हैं। इस प्रकार मशीन की एक ही सैटिंग

में दो तंतु गुच्छ तैयार हो जाते हैं। इसी तरीके से इस मशीन का उपयोग चार तंतुगुच्छ वाली रस्सी तैयार करने के लिए भी किया जा सकता है।

इस मशीन की कार्यक्षमता परखने के लिए किये गए परीक्षणों से सिद्ध हुआ है कि इसकी उत्पादन दर परम्परागत रस्सी बटने के तरीके के मुकाबले ढाई गुनी अधिक है।

इस मशीन द्वारा रेशों को अपेक्षाकृत अधिक ऐंठन दी जा सकती है, जिसके फलस्वरूप रस्सी की गुणता में वृद्धि हो जाती है। इसके अलावा इस मशीन के लिए कम व्यक्तियों की ज़रूरत होती है तथा मनुष्य की शारीरिक शक्ति भी कम खर्च होती है।

इस मशीन की मरम्मत स्वयं शिल्पी आसानी से कर सकता है, क्योंकि इसके अधिकांश पुर्जे लकड़ी के बने होते हैं। फिर इस मशीन की कीमत भी 300 रुपये के आसपास है जो ग्रामीण शिल्पी की पहुँच के भीतर है।

इस मशीन का उपयोग अन्य किस्म के रेशों से रस्सी बटने के लिए भी किया जा सकता है। □□

[सम्प्रेषण]

ऊर्जा, खेती तथा पर्यावरण

डॉ० प्रशान्त कुमार मिश्र

ऊर्जा संकट आज समस्त विश्व के लिए प्रमुख समस्या बना हुआ है। औद्योगिक क्रांति के बाद कोयला एवं पेट्रोलियम का उपयोग प्रमुख ऊर्जा स्रोत के रूप में किया जाने लगा। परन्तु शनैः शनैः कम होता कोयले का भण्डार एवं आकाश को छूता पेट्रोलियम का मूल्य इस बात का संकेत है कि वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत को खोज निकालना अब अनिवार्य हो गया है। इसी सन्दर्भ में वृक्षों एवं अन्य पौधों का उपयोग ऊर्जा उत्पादन में किया जाने लगा। हमारे देश में वैसे भी लकड़ियों का उपयोग ईंधन के रूप में आज भी उतना ही प्रचलित है जितना कोई अन्य साधन। परन्तु जबसे वैज्ञानिकों ने पौधों से विद्युत् उत्पादन करने की विधि को विकसित किया है; "ऊर्जा के लिए खेती" पर लोगों का ध्यान ज्यादा आकृष्ट हुआ। जैव-ईंधन के महत्व को समूल नकारा नहीं जा सकता, परन्तु इनके उपयोग के साथ कुछ पर्यावरण की समस्याएँ भी जुड़ी हैं जिनके प्रति लापरवाही अन्ततः घातक साबित हो सकती है।

बड़े पैमाने पर सामान्य भूमि पर वृक्षारोपण से कुछ समय के बाद मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों एवं अन्य पोषक तत्वों की कमी होने लगती है। ईंधन एवं ऊर्जा के लिए वृक्षारोपण की सफलता वृक्षों के छोटे जीवन-चक्र एवं उनकी पूर्णरूपेण कटाई पर निर्भर करता है और यह दोनों ही अवस्थायें मिट्टी को और भी बेकार बना देती हैं। मिट्टी को पुनः उपजाऊ बनाने के लिए उर्वरक का उपयोग किया जा सकता है, परन्तु इसके लिए भी उपयोगकर्ता को पूर्ण प्रशिक्षित होना आवश्यक है। बहुधा ऊर्वरक के अविवेकपूर्ण उपयोग से मिट्टी में अनेक प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं, जिससे किसी अन्य पोषक तत्व की काफी कमी हो जाती है। इसके अतिरिक्त सघन वृक्षारोपण तथा उसके पश्चात् होने वाली वृक्षों की कटाई से भूमि में कार्बनिक पदार्थों की जो कमी हो जाती है, उसे पूरा करना और भी कठिन हो जाता है।

अभी तक के अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर ऊर्जा उत्पादन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पौधा **गन्ना** (*Saccharum officinarum*) माना जाता है। वस्तुतः प्रत्येक वनस्पति के उत्पादन, वरिवहन तथा उससे उपयोगी ऊर्जा प्राप्त करने की प्रक्रिया में भी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। गन्ने के सन्दर्भ में इस आवश्यक ऊर्जा की मात्रा उपलब्ध ऊर्जा की मात्रा से काफ़ी कम

वनस्पति विज्ञान विभाग, आर० एस० मोर कॉलेज, गोविन्दपुर, धनबाद—828109 (बिहार)

है। सर्वप्रथम पौधों से **इथेनॉल** नामक रसायन बनाया जाता है जिससे विभिन्न प्रकार के ईंधन बनाए जा सकते हैं। परन्तु पौधे से इथेनॉल प्राप्त करने की प्रक्रिया अत्यन्त प्रदूषणकारी होती है। एक अध्ययन के अनुसार पौधे से प्राप्त एक घन मीटर ईंधन के साथ करीब तेरह घनमीटर प्रदूषक पदार्थ पैदा होते हैं। अतः ऊर्जा के लिए वनस्पतियों के उपयोग को प्रचलित करने के पूर्व इससे होने वाले प्रदूषण का निदान ढूँढना आवश्यक है।

जैव-ईंधन परियोजनाओं में वनस्पति रोपण के लिए उचित भू-खण्ड का निर्धारण भी अति आवश्यक होता है। ज़मीन पर वृक्षारोपण तथा उसके पश्चात् वृक्षों की कटाई से मृदा-क्षरण की समस्या ज्वलन्त रूप में सामने आ सकती है। इसके अतिरिक्त वृक्षों की कटाई से वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास को भी क्षति पहुँचती है। और तो और ऊर्जा के लिए वृक्षारोपण से कृषि संसाधनों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। अक्सर अधिक आमदनी के लालच में खेती के लिए उपयुक्त भू-खण्ड पर भी अन्य पौधे लगा दिये जाते हैं। इन समस्याओं के समाधन के लिए जलोद्भिद् विशेषतः **जलकुम्भी** (***Eichhornia***) के उपयोग का सुझाव भी सामने आया है। परन्तु इस विकल्प के साथ भी पर्यावरण की समस्याएँ हैं। तालाबों और जलाशयों में जलकुम्भी की उपस्थिति स्वयं एक समस्या है। अतः इन पौधों को व्यापारिक रूप से उपजाने के परिणाम-स्वरूप जलाशय के अन्य पौधों एवं जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

जैव-ईंधन का उपयोग विशेषतः विकासशील देशों में काफ़ी पूर्व से होता आ रहा है। हाल के वर्षों में पौधों से इथेनॉल तथा विद्युत्-ऊर्जा प्राप्त करने का प्रावधान सामने आया। यह वैकल्पिक ऊर्जा के खोज की दिशा में एक क्रान्तिकारी क़दम था। परन्तु इस विकास के साथ कुछ गम्भीर पर्यावरण सम्बन्धी समस्याएँ भी सामने आई। इन समस्याओं का निदान खोज निकालना अनिवार्य है। सर्वप्रथम उचित वनस्पति एवं उचित भू-खण्ड का चुनाव करना आवश्यक होगा। इसके साथ ही मृदाक्षरण तथा भूमि की ऊर्वरक क्षमता का ह्रास भी रोकना होगा। प्रदूषण की समस्या का निदान भी खोज निकालना आवश्यक होगा। इसके अतिरिक्त आर्थिक कसौटी पर भी जैव-ईंधन परि-योजनाओं को खरा उतरना आवश्यक है। अतएव इस दिशा में अनुसंधान पर विशेष बल देना होगा। ☐☐

टिहरी बाँध के वैज्ञानिक विकल्प हैं

रमेश दत्त शर्मा

[उत्तर प्रदेश के गढ़वाल मंडल में अब से कोई पौने दो साल पहले बसे टिहरी नगर के ठीक पास से बहती भागीरथी नदी पर बनाया जा रहा टिहरी बाँध वैज्ञा-निक दृष्टि से इतना ख़तरनाक है कि फिलहाल इसका निर्माण कार्य रोक दिया गया है। लेकिन इस बाँध से करोड़ों रुपया कमाने वाले इसे फिर से चालू कराने के चक्कर में हैं। प्रस्तुत है टिहरी बाँध से जुड़े वैज्ञानिक पक्ष पर एक बेबाक रपट प्रसिद्ध विज्ञान लेखक **रमेश दत्त शर्मा** द्वारा।

—संपादक]

"अभी-अभी समाचार मिला है कि 260 मीटर ऊँचा टिहरी बाँध फट पड़ा है। इस क्षेत्र में भूकंप के कारण यह दुर्घटना हुई है। भूकंप के झटकों ने बाँध की ऊँची-ऊँची दीवारों में जहाँ-जहाँ भारी दरारें डाल

बी–38, कृष्ण विहार, नई दिल्ली–110048
इस्वा संपर्क सूत्र–40, गुलमुहर पार्क, नई दिल्ली-110049, फोन : 669820

दी हैं। बाँध फटने से टिहरी से लेकर हरिद्वार और उधर देहरादून तक प्रलयकारी बाढ़ आ गई है। यह बाढ़ रास्ते में जो भी पड़ा, उसे बहा ले गई। लाखों लोग जान से हाथ धो बैठे हैं। गाँव, बस्तियाँ और शहर के शहर बह गए हैं। बाँध के पास बना बिजली घर और उसके आसपास बनी कर्मचारियों की बस्ती 10 मीटर पानी के नीचे डूबी पड़ी है। बचाव कार्य के लिए सेना बुलाई गयी है। हेलीकॉप्टर और मोटर बोट तथा नौकाएँ इस्तेमाल की जा रही हैं। प्रधान मंत्री और मुख्यमंत्री नुकसान का जायजा लेने गए हैं।"

कटु वैज्ञानिक सत्य : कच्ची पहाड़ियाँ और भूकंप क्षेत्र

यह एक काल्पनिक समाचार है। लेकिन सच इससे भी ज़्यादा भयंकर होगा। अभी तो टिहरी बाँध बनाने की जगह पर धारा का मुँह मोड़ने के लिए सुरंगें ही बनी हैं। कुछ सड़कें और इमारतें बनी हैं। इसी पर 429 करोड़ के लगभग रुपया खर्च हो चुका है। पूरा बाँध बनाने पर इस समय 3 हज़ार करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान है। अगले दस साल में यह खर्च दूना होकर छः हज़ार करोड़ से ऊपर पहुँचेगा। फिलहाल बड़े बाँध की जगह छोटे बाँध बनाकर बिना किसी को डुबोए बिजली और सिंचाई के लक्ष्य पूरे किए जा सकते हैं।

बाँध के विकल्पों पर सिंचाई विशेषज्ञ और वैज्ञानिक विचार कर चुके हैं। पर ठेकेदार, नेता और इंजीनियरों की तिकड़ी मिलकर बड़ा बाँध बनाकर कड़ी चाँदी काटने के चक्कर में वैज्ञानिक तथ्यों को सामने ही नहीं आने दे रहे।

वैज्ञानिक तथ्य यह है कि टिहरी बाँध, जिन पहाड़ियों के बीच में बनाया जा रहा है, वे कच्ची पहाड़ियाँ हैं और भूकंप क्षेत्र में हैं। वैज्ञानिक तथ्य यह है कि टिहरी बाँध का पर्यावरणीय मूल्यांकन करने के लिए बनाई गई समिति ने इस बाँध को रद्द कर दिया और पर्यावरण-मंत्रालय ने इस बाँध को बनाने की अनुमति नहीं दी। यह रिपोर्ट उच्च न्यायालय में सीलबंद करके रख दी गई है, ताकि जनता तक सही जानकारी नहीं पहुँच सके। फिर भी भारतीय सांस्कृतिक निधि (इनटैक) के पर्यावरण-निदेशक **श्री नलिनीधर जयाल** ने मूल्यांकन समिति के अध्यक्ष **श्री सुनीलकुमार राय** का 28 अगस्त 1989 का वह पत्र प्रकाशित कर दिया है, जो पर्यावरण विभाग के तत्कालीन सचिव **श्री टी० एन० शेषन** के नाम लिखा गया था।

इस पत्र में निष्कर्ष के तौर पर श्री राय ने कहा है कि "पर्यावरण की दृष्टि से टिहरी बाँध का स्थान 260.5 मीटर ऊँचे बाँध के लिए उपयुक्त नहीं है।··· अंतिम पैरा में श्री राय ने चिंता व्यक्त की है कि "टिहरी बाँध का स्थान ऋषिकेश और हरिद्वार के ऊपर होने के कारण इसमें होने के कारण इसमें होने वाली कोई भी दुर्घटना कितनी गंभीर होगी, इसका अनुमान लगाना भी मुश्किल है। इसके नियोजन में किसी भी संभावित त्रुटि या गलत संगणना का या इस क्षेत्र में किसी बड़े भूकम्प के कारण पैदा होने वाली असंख्य विपत्तियों के लिए भावी पीढ़ियों के प्रति उत्तरदायी होने को कौन तैयार होगा।

वैज्ञानिकों के सवाल

अनेक भू-वैज्ञानिकों ने टिहरी बाँध पर सवाल उठाये हैं, जिन्हें "इनटैक" ने एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया है। उदाहरण के लिए 'वाडिया इन्स्टीट्यूट ऑव हिमालयन जिओलोजी' के सर्वेक्षण के निदेशक **डॉ० एस० पी० नौटियाल** का कहना है कि "भागीरथी और भिलंगना नदियाँ हिममंडित मध्य हिमालय के दक्षिणी ढलानों पर बहकर आती हैं। यहाँ असाधारण गति से भू-स्खलन होते रहते हैं और वर्ष भर में 8 महानदियाँ अपने साथ बालू, रेत तथा मलबा बहाकर लाती हैं।······टिहरी बाँध का जीवन प्रत्याशित 100 वर्ष की बजाय 30–40 वर्ष का ही हो सकता है।" उन्होंने आगे लिखा है, "अभी तक भारतीय इन्जीनियरों द्वारा मिट्टी के भराव से बनाया गया सबसे ऊँचा बाँध राम गङ्गा बाँध है। इसी सामग्री से 850 फुट ऊँचा टिहरी बाँध बनाना खासतौर से टिहरी

जैसे सँकरी घाटियों वाले भूकम्प-प्रवण स्थान में, बहुत बड़ा जोखिम हैं।"

कुमायूँ विश्वविद्यालय के भूविज्ञान विभाग के अध्यक्ष **डॉ० के० एस० वाल्दिया** ने अपनी रपट में बताया है कि टिहरी बाँध की जगह के पहाड़ जहाँ ज़मीन में धँस रहे हैं, वहाँ विखण्डनशील भ्रंश हैं। और चट्टानें तथा शैलखण्ड टूटी-फूटी हालत में हैं। इस कारण बाँध में भरा पानी रिसकर नीचे ज़मीन में जा सकता है। गहरे में इस पानी का दबाव बढ़ने से ज़मीन फट सकती है और भूकम्प आ सकते हैं।

'राष्ट्रीय भू-भौतिकी अनुसंधान' के निदेशक **डॉ० विनोद गौड़** अब दिल्ली में 'सागर विकास विभाग' के सचिव हैं। उन्होंने अपने अध्ययन में अनेक सवाल उठाये हैं और कहा है कि इनका जवाब मिलने पर ही बाँध के बारे में अंतिम निर्णय करना चाहिए। कुछ प्रश्न इस प्रकार हैं :

(1) 7.5 गुरुत्व या उससे अधिक शक्ति के किसी ऐसे बड़े भूकम्प के आने की अगले दस सालों में क्या सम्भावना है ?

(2) भूकम्प आने की स्थिति में बाँध टिका रहे, इसके लिए डिज़ाइन में क्या उपाय शामिल किए गये हैं ?

(3) यदि इस क्षेत्र में संकटपूर्ण दबाव बना हुआ है, तो बड़े जलाशय के कारण, चट्टानें खिसकने के कारण क्या दुष्परिणाम होगें ?

डॉ० गौड़ का अपना विचार यह है कि " 897 के असम के भयानक भूकम्प के बाद से हिमालय क्षेत्र में 7.5 गुरुत्व या इससे अधिक शक्ति के आठ बड़े भूकम्प और अनेक छोटे-छोटे भूकम्प आ चुके हैं। अतः तर्क यह दिया जा सकता है कि उस क्षेत्र में जिस पर पहले से ही संकट की स्थिति तक का दबाव बना हुआ है, किसी बड़े जलाशय के निर्माण से चट्टानें खिसक सकती हैं। यदि बाँध के निकट चट्टानें खिसक गईं तो समुद्र स्तर से 550 मीटर की ऊँचाई से बहकर आती हुई 260 मीटर ऊँची पानी के दीवार से नीचे नदी के बहाव-क्षेत्र के आसपास निश्चय ही भयंकर विध्वंस हुए बिना नहीं रहेगा।"

भूकम्प आने की ऐसी ही आशंका 'भू-चुम्बकीय अनुसंधान संस्थान' के निदेशक **डॉ० हर्ष गुप्ता** ने भी व्यक्त की है। ये अंटार्कटिका अभियान का भी नेतृत्व कर चुके हैं। भू-विज्ञानी **प्रो० पी० एल० सकलानी** तथा **प्रो० बी० एन० वाजपेयी** के अनुसार 'टिहरी बाँध की जगह में चट्टाने भुरभुरे और चूर्णशील पत्थर की हैं।......जलाशय में 260.5 मीटर जलस्तर से न केवल बाँध की तिलहटी पर उसके भार का दबाव पड़ेगा, बल्कि आसपास की ज़मीन भी कट-कटकर गिरेगी। रुड़की विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा गङ्गा तथा यमुना घाटियों की जलसंसाधन परि-योजनओं के लिए तैयार की गई रिपोर्ट से पता चलता है कि इस क्षेत्र में भूकम्प-क्रियाएँ लगातार बढ़ रही हैं। 1971 के पहले हर साल भूकम्प के एक या दो झटके महसूस किये जाते थे। लेकिन 1974 में 5 बार और 1975 में 7 बार भूकम्पों के झटके आये। बाँध स्थल पर ही एक बड़ा भ्रंश हैं, जिसकी चौड़ाई 15 मीटर है। वहाँ बाँध के पानी का दबाव पड़ते ही, भूकम्प आ जायेगा।

बड़े बाँध का विश्वव्यापी विरोध

महाराष्ट्र में कोयना बाँध में 6.7 शक्ति के ही भूकम्प के कारण जान-माल का भारी नुकसान हुआ था। दुनियाभर में 10 हज़ार बाँधों में से कम से कम 466 बाँध दुर्घटनाग्रस्त और 140 बाँध पूरी तरह ध्वस्त हो चुके हैं। भारत में 1500 से ऊपर बड़े बाँध हैं, जिनमें से कोई भी अपनी अपेक्षाएँ पूरी नहीं कर सका। इनमें से 41 बाँधों में दरारें पड़ चुकी हैं और 14 से ज़्यादा बाँध पूरी तरह असफल हो चुके हैं। सन् 1961 में पंचेट बाँध टूटने से भारी विनाश हुआ। 1958 में कदम बाँध, 1967 में नानक सागर, 1972 में चिकाहोले, 1973 में दाँतावाला, 1978 में भरान बाँध टूटे और लाखों जानें गईं और करोड़ों का असबाब नष्ट हुआ। 1978 में हिगलों बाँध टूटा था और

अगस्त 1979 में मोरवी बाँध। भाखड़ा में गाद जमा हो जाने से हर साल उसका पानी छोड़ा जाता है और बाढ़ पैदा की जाती है। इस बाँध के कारण पंजाब में ज़मीनों में लवण ऊपर आ गए हैं और रेह् की समस्या बढ़ रही है।

घाटे का सौदा

टिहरी का बाँध बना तो टिहरी शहर के अलावा 22 गाँव डूबेंगे और 86 हज़ार लोग विस्थापित हो जायेंगे। 72 गाँवों के खेत-खलिहान डूब जाएँगे। कोई 5200 हैक्टेयर भूमि डूबेगी, जिसमें से 1600 हेक्टेयर बहुत ऊपजाऊ भूमि है। जून 1988 में पूना के **प्रो० विजय परांजपे** की विस्तृत रिपोर्ट टिहरी बाँध के बारे में इनटैक ने प्रकाशित की है। इसके अनुसार टिहरी बाँध पर खर्चे एक रुपये से 56 पैसे मिलेंगे, जबकि योजना आयोग उसी परियोजना को स्वीकृत देता है, जिस पर खर्चे एक रुपये से डेढ़ रुपया मुनाफा हो। ऊपर से अनेक दुर्लभ जीव-जन्तु और वनस्पतियाँ हमेशा के लिए लुप्त हो जाएँगी सो अलग।

भारतीय डिज़ाइन में 1100 मीटर चौड़ी नींव है, जबकि रूसी इसे 1500 मीटर चौड़ी चाहते हैं। टिहरी बाँध के लिए रूस ने 30 करोड़ रूबल (लगभग 2000 करोड़ रुपये) की आर्थिक सहायता दी है और 150 के करीब रूसी इंजीनियर भेजे हैं। इन्होंने 2 अक्टूबर 1987 को पत्र लिखकर भारत सरकार को शिकायत की है कि बाँध की भारतीय डिज़ाइन में भूकंप-शंका का ख्याल नहीं रखा गया। **श्री गोर्वाचोव** को पत्र भेजा गया है कि वे ग़लत डिज़ाइन वाले बाँध से समर्थन वापस लें। उनकी सहायता किसी और भले काम में लगे तो अच्छा।

इस तरह टिहरी बाँध हर तरह से घाटे का सौदा है। इसकी जगह मनेरी टेलरेत के पानी को एक छोटी नहर बनाकर इधर लाया जाय और टिहरी बाँध-स्थल पर बिजली बनाने के लिए हैड डिफरेंस में उपलब्ध जल-कल का उपयोग किया जाय। बाँध की ऊँचाई 130 मीटर यानी आधी कर दें, तो बिना किसी को डुबोए बिजली बना सकते हैं और ख़तरा भी आधा रह जायेगा। भागीरथी और भिलंगना पर दो छोटे-छोटे पन बिजली घर बना सकते हैं। टिहरी बाँध की मूल परियोजना में इस विकल्प पर भी विचार किया गया है और उसे स्वीकारा गया है। 'गैर परम्परागत ऊर्जा विभाग' के सचिव **डॉ० महेश्वर दयाल** के अनुसार 100 करोड़ रुपये ख़र्च करके 100 मैगावाट बिजली पैदा करने वाला एक सौर-ऊर्जा चालित बिजलीघर बना सकते हैं। यानी 3000 करोड़ में ऐसे 30 बिजलीघर बन सकते हैं, जिनसे न पर्यावरण बिगड़ेगा, न भूकंप आयेंगे, न विनाश होगा और न कोई डूबेगा।

टिहरी बाँध विरोधी संघर्ष समिति इन्हीं वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय में बाँध के ख़िलाफ़ याचिका दे चुकी है। नई सरकार के वन और पर्यावरण मंत्री तथा ऊर्जा मंत्री तथा योजना आयोग के विद्वान सदस्य भी टिहरी के विनाशकारी बाँध के पक्ष में नहीं हैं। फिर भी बाँध बना तो यही माना जायेगा कि चाँदी की चकाचौंध ने सबको अन्धा कर दिया। □□

(इस्वा फीचर्स)

हार्मोन और स्वास्थ्य

डॉ० अजय कुमार चतुर्वेदी

वे रासायनिक पदार्थ, जो ग्रंथियों में उत्पन्न होते हैं, शरीर के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और शरीर के विभिन्न अंगों का नियन्त्रण करते हैं तथा आपस में समन्वय कर जैविक क्रियाओं को चलाते हैं, उन्हें हार्मोन कहते हैं। हार्मोन प्रत्येक सजीव में पाये जाते हैं। हार्मोन की गति मन्द होती है अतः मन्द गति से चलने वाले प्रक्रमों जैसे वृद्धि, प्रजनन, उपापचयिक क्रियाएँ आदि, का नियमन करते हैं। एक विशेष क्रिया के लिए विशेष हार्मोन होता है। अतः विभिन्न क्रियाओं के लिए विभिन्न हार्मोन की आवश्यकता होती है। एक ही हार्मोन सब क्रियाओं में काम नहीं कर पाता। विभिन्न क्रियाओं में विभिन्न हार्मोन काम करते हैं। विशिष्ट हार्मोन विशिष्ट कोशिकाओं को ही प्रभावित करता है। इसीलिए ये समन्वय भी करते हैं।

हार्मोन उपापचयिक क्रियाओं का सूत्रपात नहीं करते उनकी दर को कम या अधिक कर उनका नियमन करते हैं। इसी कारण हार्मोन की कमी या अधिकता से शरीर में विशिष्ट रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्य का सामान्य से अधिक लम्बा होना या सामान्य से छोटा होना हार्मोनों की अधिकता व कमी के प्रभाव का फल है। लड़के-लड़कियों में, स्त्री-पुरुष में अन्तर हार्मोनों के प्रभाव के द्वारा ही होता है।

हार्मोन शरीर के अन्दर विशेष प्रकार की ग्रंथियों के अन्दर स्रावित होते हैं। इन ग्रंथियों को अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ कहते हैं। इन ग्रंथियों में कोई नलिका नहीं होती। इस आधार पर इन ग्रंथियों को नलिकाविहीन ग्रंथियाँ भी कहते हैं। हार्मोनों का परिवहन विभिन्न अंगों तक रुधिर की धारा के द्वारा ही होता है। रुधिर एक स्थान से दूसरे स्थान मन्दगति से जाता है। अतः हार्मोन भी मन्द गति से चलते हैं। इसीलिए हार्मोनों द्वारा समन्वय एक मन्दगति का प्रक्रम है। हार्मोन हमारे जीवन को सुखमय बनाने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं अतः हार्मोन बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

एक कोशिक जन्तुओं में जैविक क्रियाओं का नियंत्रण और समन्वयन केन्द्रक द्वारा होता है। बहुकोशिक जन्तुओं में कार्य-विभाजन होता है। भिन्न कार्य के लिए भिन्न अंग ही काम आते हैं। जैसे श्वसन, संवेदना आदि कार्यों को अलग कोशिकाएँ समूहबद्ध होकर करती हैं। कोशिकाओं के समूह अंग-तंत्र बनाते हैं। विशेष कोशिकाएँ विशेष कार्य करने में दक्ष हो जाती हैं—जैसे आमाशय की कोशिकाएँ पाचन हेतु, यकृत की कोशिकाएँ उपापचयिक क्रियाओं हेतु विशेषीकृत होती हैं। बहुकोशिक जन्तुओं में जैव-क्रियाओं का नियंत्रण एवं समन्वयन हार्मोनों के द्वारा होता है। अतः बहुकोशिक जन्तुओं में हार्मोनों का विशेष महत्व है।

पौधों में भी जैव-क्रियाएँ जैसे अंकुरण, वृद्धि, पुष्प लगना, फल लगना का नियंत्रण एवं समन्वयन हार्मोनों के द्वारा ही होता है। इन हार्मोनों को पादप हार्मोन या वृद्धि नियंत्रक हार्मोन कहते हैं। ये हार्मोन मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं। (1) आक्सिन—ये पौधे को प्रकाश की ओर ले जाते हैं ओर पौधे की आकृति के विकास पर नियंत्रण करते हैं, (2) जिबरेलिन—ये तने की लम्बाई को बढ़ाने में सहायक होते हैं, (3) साइटोकाइनिन—ये हार्मोन पोषक पदार्थों को एक भाग से दूसरे भाग में पुनर्गमन में सहायता करते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य में भी प्रमुख अन्तःस्रावीग्रन्थियाँ पाई जाती हैं, जो हार्मोन स्रावित कर जैव क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। हार्मोन के प्रभाव से ही हमारा विकास सम्भव है। इनकी कमी या अधिकता से विकास में तथा जैव क्रियाओं में रुकावट आ जाती है। अतः हार्मोन की उचित मात्रा ही आवश्यक है।

मनुष्य के शरीर में विभिन्न भागों में विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ पाई जाती हैं, जो भिन्न-भिन्न

रसायन विभाग, धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

हार्मोन उत्पन्न कर विभिन्न जैव-क्रियाओं पर नियन्त्रण व समन्वय करती हैं। सामान्य-क्रिया होने पर सामान्य विकास होता है, अन्यथा कुछ असामान्यता आ जाती है।

मनुष्य में निम्न अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ पाई जाती हैं (1) **थाइरॉइड**—यह ग्रंथि गर्दन में पाई जाती है। यह ग्रंथि थाइरॉक्सिन नामक हार्मोन स्रावित करती है। इस हार्मोन में आयोडीन की मात्रा पाई जाती है। आयोडीन की कमी से घेघा रोग हो जाता है। यह हार्मोन कोशिकाओं की वृद्धि को नियंत्रित करती है। इस कारण इस ग्रंथि को वृद्धि-प्रेरक ग्रन्थि भी कहते हैं। यह हार्मोन उपापचयिक क्रियाओं का नियन्त्रण व नियमन भी करती है। मस्तिष्क का विकास भी इसी हार्मोन के द्वारा होता है। इस हार्मोन की कमी से हृदय की गति धीमी, शरीर में सुस्ती, व मस्तिष्क कमज़ोर हो जाता है। इसकी अधिक मात्रा भी हानिकारक है। इसकी अधिक मात्रा से उपापचयिक क्रियाओं की गति तेज़ हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा व घबराहट हो जाती है। और तो और आँखें भी बड़ी हो जाती हैं।

(2) **पैराथाइरॉइड**—यह ग्रन्थि भी गर्दन में पाई जाती है। यह थाइरॉइड ग्रन्थि के निचले भाग के पास होती है। यह ग्रन्थि पैराथारमोन नामक हार्मोन उत्पन्न करती है। यह हार्मोन मांसपेशिओं को क्रियाशील रखता है। इसके साथ यह हार्मोन हड्डियों की वृद्धि एवं दाँतों के बनने का नियमन करता है। इस हार्मोन की कमी से हड्डियों का बढ़ना रुक जाता है और दाँतों के बनने में कैल्शियम व फॉस्फोरस की कमी हो जाती है, जिससे मज़बूत दाँत नहीं बनते और हड्डियाँ भी कमज़ोर हो जाती हैं।

(3) **थाइमस**—यह ग्रन्थि छाती के ऊपरी भाग में स्थित है। पैराथाइरॉइड ग्रन्थि के नीचे, यह ग्रन्थि दो थैलों के रूप में उपस्थित रहती है। इस ग्रन्थि का हार्मोन जननग्रन्थियों को सक्रिय बनाने में काम आता है। 12 वर्ष की आयु के बाद छोटी होने लगती है।

(4) **आहार नली**—आमाशय की भीतरी दीवार की कोशिकाओं से जो हार्मोन निकलता है उसे गैस्ट्रिन कहते हैं। यह हार्मोन जठर ग्रन्थियों को उत्तेजित करता है। इसी प्रकार ड्यूओडिनम की श्लेष्मिका से सीक्रीटिन तथा कोलेसिस्टोकाइनिन हार्मोन निकलता है। ये अग्न्याशय तथा पित्ताशय को उत्तेजित करता है तथा रक्त-परिवहन का नियमन करता है।

(5) **अग्न्याशय**—यह ग्रन्थि ग्रहण और आमाशय के मध्य स्थित होती है। यह हल्के पीले रंग की लम्बी चपटी अनियमित आकार की होती है। यह अनेक छोटे पिण्डकों से मिलकर बनती है। यह ग्रन्थि इन्सुलिन नाम का हार्मोन स्रावित करती है। यह हार्मोन भोजन के कार्बोहाइड्रेट को ग्लाइकोजन में बदल देता है। यह ग्लूकोज के उपापचय से ऊर्जा भी देता है। इस हार्मोन की कमी से ग्लूकोज का उपापचय नहीं हो पाता। ग्लूकोज की मात्रा काफी बढ़ जाती है। ग्लूकोज की यह बढ़ी मात्रा मूत्र के साथ निकलती है। इसे मधुमेह के नाम से जानते हैं।

(6) **एड्रीनल**—यह ग्रन्थि वृक्क के प्रतिपृष्ठ तल पर होती है। यह हल्के पीले रंग की लम्बी ग्रन्थि होती है। यह ग्रन्थि दो हार्मोन स्रावित करती है। एक हार्मोन ग्रन्थि के बाहरी भाग से निकलता है, जो कारटिन कहलाता है। कारटिन उपापचय क्रियाओं की गति पर नियंत्रण करता है। यह प्रोटीन संश्लेषण में भी सहायक है। इस हार्मोन की कमी से रुधिर का पानी व लवण निकल जाता है। इससे मांशपेशियाँ शिथिल हो जाती हैं। हार्मोन की अधिक मात्रा होने पर लिंग बदल जाता है। एड्रीनल ग्रन्थि का दूसरा हार्मोन एड्रीनेलीन है। यह ग्रन्थि के अन्दर के भाग में होता है। यह हार्मोन रुधिर-दाब का नियमन करता है। इस हार्मोन की अधिक मात्रा होने पर हृदय की गति तेज़ हो जाती है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं, आँखें बड़ी हो जाती हैं। हृदयगति कम होने पर ऐड्रीनेलीन का इन्जेक्शन दिया जाता है।

(7) **वृषण ग्रन्थि**—यह ग्रन्थि नर मनुष्य में पाई जाती है। यह जनन ग्रन्थि है। यह ग्रन्थि टेस्टोस्टेरोन और एन्डोस्टोरोन नामक हार्मोन उत्पन्न करते हैं।

ये हार्मोन पुरुषत्व के लक्षणों को प्रदर्शित करते हैं। इस हार्मोन की कमी से प्रजनन के लिए मनुष्य बेकार हो जाता है।

(8) **अण्डाशय**—यह भी जनन ग्रन्थि है। यह ग्रन्थि मादा मनुष्य (औरत) में पाई जाती है। यह ग्रन्थि ईस्टरोन नामक हार्मोन उत्पन्न करती है। यह हार्मोन स्त्री के लक्षणों का नियमन करता है। इस ग्रन्थि का दूसरा हार्मोन प्रोजेस्टिरोन है। यह हार्मोन भ्रूण को स्थापित करने में सहायक है और साथ ही गर्भाशय को सक्रिय बनाता है। मासिक धर्म का नियमन भी करता है। स्तनों के विकास व वृद्धि में भी सहायक है।

(9) **पिट्यूटरी ग्रन्थि**—यह ग्रन्थि मस्तिष्क में पाई जाती है। यह ग्रन्थि अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर नियंत्रण कर उनका नियमन करती है। इसीलिए इस ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि भी कहते हैं। यह ग्रन्थि अन्य ग्रन्थियों को क्रियाशील होने में सहायता प्रदान करती है। जैविक क्रियाओं यथा ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाओं के सम्पन्न होने में इस ग्रन्थि का विशेष योग-दान है। उदाहरणस्वरूप रुधिर दाब का सही रहना, शरीर का सही विकास होना जैसी जैविक क्रियाएँ। भूख लगना, नींद आना ऐच्छिक क्रियाएँ हैं। डर के कारण मुंह से चीख निकलना, रोंगटे खड़े होना, आँखों के सामने अँधेरा छा जाना आदि अनैच्छिक क्रियाएँ हैं। इन सब क्रियाओं के पूर्ण होने में पिट्यूटरी ग्रन्थि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन्हीं कारणों से पिट्यूटरी ग्रन्थि का हमारे जीवन में बहुत महत्व है।

पिट्यूटरी ग्रन्थि एक द्रव उत्पन्न करती है, जिसे पिट्यूटीन द्रव कहते हैं। इसमें नौ-दस हार्मोन होते हैं। ये हार्मोन प्रोटीन या पॉलीपेप्टाइड प्रकृति के होते हैं। ये हार्मोन अपना व्यक्तिगत और सामूहिक प्रभाव प्रदर्शित करते हैं, जिससे शारीरिक व मानसिक विकास पूर्ण होता है।

पिट्यूटरी ग्रन्थि से निम्न हार्मोन उत्पन्न होते हैं। इस ग्रन्थि का सबसे महत्वपूर्ण हार्मोन सोमेटोट्रोफिन है। यह हार्मोन वृद्धिप्रेरक हार्मोन है। यह हार्मोन कंकाल और मांसपेशियों की वृद्धि, वसा और कार्बो-हाइड्रेट का उपापचय और ऊतकों में प्रोटीन नाइट्रोजन का प्रतिधारण करता है। यह शरीर की वृद्धि का नियंत्रण करता है। इसकी अधिकता से महाकायता हो जाती है। इसकी कमी से मनुष्य बौना (सामान्य से कम लम्बाई) हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह हार्मोन थाइरॉइड ग्रन्थि, अधिवृक्क वल्कुट और जनन अंगों पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव दिखाता है। चूँकि यह हार्मोन वृद्धि और उपापचय को प्रभावित करता है इसलिए इस हार्मोन को वृद्धि-उपापचय हार्मोन भी कहते हैं।

कार्टिकोट्राफिन—यह हार्मोन अधिवृक्क कोर्टेकज से अन्य हार्मोनों के स्राव के लिए अत्यावश्यक है। दूसरे यह हार्मोन उपापचयात्मक प्रभाव भी डालता है।

थाईरोट्राफिन—थाइरॉइड ग्रन्थि को क्रियाशील बनाने में यह हार्मोन आवश्यक है। इस हार्मोन के द्वारा ही थॉइराइड ग्रन्थि में हार्मोन का निर्माण होता है। अतः यह हार्मोन थाइरॉइड ग्रन्थि का संचालन व नियंत्रण करता है।

गोनेडोट्राफिन—यह हार्मोन जनन अंगों के कार्यों का नियंत्रण करता है। कुछ अन्य हार्मोन भी इसमें सहायता प्रदान करते हैं। अंतरालीय कोशिका उद्दीपक हार्मोन जनन ग्रन्थि की परिपक्वता और लिंग हार्मोन के उत्पादन पर नियंत्रण करता है। फालिकल उद्दीपक हार्मोन अण्डाशय के ऊतकों की वृद्धि को उद्दीप्त करता है।

मिलेनोसाइट—यह उद्दीपक हार्मोन वर्ण कणिकाओं के फैलाव के लिए कार्य करता है और त्वचा के वर्ण को गहरा बनाता है।

मिलैनोफोर—यह संकेद्रक हार्मोन है। यह वर्ण कणिकाओं में आकुंचन उत्पन्न करता है।

वैसोप्रेसिन—यह हार्मोन धमनियों के आकुंचन द्वारा रुधिर दाब को बढ़ाने में सहायता करता है।

ऑक्सीटॉक्सिन—यह हार्मोन गर्भाशय की पेशियों को उत्तेजित कर आकुंचन को बढ़ाने में सहायक है। दुग्ध ग्रन्थि के परिवर्तन व दुग्ध-उत्पादन में भी यह हार्मोन सहायता प्रदान करता है।

एन्टीडाइयूरेटिक—यह हार्मोन उत्सर्जन-क्रिया का नियंत्रण करता है। इससे रुधिर दाब सही रहता है।

प्रोलेक्टिन—यह हार्मोन मुख्यतः लैंगिक संरचनाओं और क्रियाओं पर नियंत्रण करता है। यह दुग्ध के निर्माण में सहायक है। यह हार्मोन दुग्ध स्राव को उद्दीप्त करता है। प्रोजेस्टेरोन का स्राव भी इससे प्रभावित होता है, जिससे यौन-परिपक्वता पर भी नियंत्रण होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पिट्यूटरी ग्रन्थि के विभिन्न हार्मोन विभिन्न जैविक, ऐच्छिक, अनैच्छिक क्रियाओं के पूर्ण होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसीलिए इस ग्रन्थि का हमारे शरीर में विशेष महत्व है। इसी कारण इस ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि कहते हैं। यह ग्रन्थि अन्य ग्रन्थियों का संचालन, नियंत्रण और समन्वयन कर हमारा शारीरिक व मानसिक विकास करती है। अतः यह ग्रन्थि एक महत्वपूर्ण ग्रन्थि है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि हार्मोन लड़के-लड़की, पुरुष-स्त्री में अन्तर प्रगट करते हैं साथ ही हार्मोन विभिन्न जैविक, ऐच्छिक व अनैच्छिक क्रियाओं का संचालन, नियंत्रण और समन्वयन कर हमारा शारीरिक, मानसिक, विकास करते हैं, जिससे हम स्वस्थ रहते हैं। यदि किसी स्तर पर इन हार्मोनों की मात्रा में कमी या अधिकता हो जाय तो हमारे विकास में गतिरोध उत्पन्न हो जायेगा, जिससे हम स्वस्थ नहीं रह पायेंगे। तब हमारा जीवन नीरस बन जायेगा।

अतः हार्मोन हमारे सुखद जीवन की मूल आवश्यकता हैं। इनका प्रभाव हमारे जीवन पर सीधा पड़ता है। इसलिए हार्मोन हमारे जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। □□

साक्षात्कार

हिन्दी विज्ञान लेखन के पुरोधा : गुणाकार मुले

[हमारे सौभाग्य से लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी विज्ञान लेखक श्री गुणाकर मुले जी विज्ञान परिषद् और भारतीय भाषा संस्थान, (मैसूर) द्वारा आयोजित 'हिन्दी-उर्दू में बाल विज्ञान लेखन' कार्यशाला में भाग लेने, अपने अतिव्यस्त जीवन से समय निकाल कर, यहाँ पधारे। हमने इस अवसर का भरपूर लाभ उठाया। अपने सहज स्वभाव के कारण उन्होंने साक्षात्कार के हमारे निवेदन को स्वीकार कर लिया। यह अनौपचारिक साक्षात्कार 'विज्ञान' पत्रिका की ओर से 'विज्ञान' की सुपरिचित लेखिका श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी ने लिया। इसके लिए मैं परिषद् की ओर से और अपनी ओर से भी श्री मुले जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ और मंजुलिका जी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। —सम्पादक]

श्री गुणाकर मुले हिन्दी विज्ञान लेखकों की नित सुदृढ़ होती सैन्य पंक्ति के एक सुयोग्य और सफल सेनापति रहे हैं, ऐसा कहें तो अत्युक्ति न होगी। विज्ञान और वैज्ञानिक लेखन में रुचि लेने वाला समस्त पाठक वर्ग उनके नाम और कृतित्व से सुपरिचित है। मन की सहज जिज्ञासा सदैव ऐसी सफल यात्राओं के बीच आने वाले मोड़ों और पड़ावों की पृष्ठभूमि कुरेदने की आदी रही है। केवल रचना का स्वरूप ही मन को संतुष्ट नहीं कर पाता—रचना से इतर उस रचनाकार के जीवन-व्यसन, प्रेरणाओं-निराशाओं के बारे में जानना भी मन के कौतूहल का इष्ट रहा है। इसी खोजी प्रवृत्ति से विवश होकर 'विज्ञान परिषद, प्रयाग' के अतिथिकक्ष में सुविख्यात विज्ञान लेखक श्री गुणाकर मुले से लिया गया यह साक्षात्कार।

परन्तु साक्षात्कार वार्ता से पूर्व कुछ साक्षात्कार के औचित्य के सम्बन्ध में। किसी सफल व्यक्ति से साक्षात्कार का एक सर्वप्रमुख उद्देश्य होता है उसकी सफलताओं से प्रेरणा पाना, असफलताओं से सीख

लेना, उससे ऊर्जा और उत्साह को ग्रहण करना और अपनी दिशा, अपने पथ का निर्माण। किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है उस बिन्दु की पहचान जो उस व्यक्ति विशेष के निर्माण में निर्णायक रहा। भले ही यह बिन्दु हर व्यक्ति के जीवन में भिन्न-भिन्न रहते आये हों, पर साक्षात्कारों में उसकी पहचान निस्संदेह अपनी पहचान क्षमता की सीमाओं को विस्तार देती है। इसीलिए साक्षात्कार की आवश्यकता भी है और सार्थकता भी—

श्री गुणाकर मुले से लिया गया यह साक्षात्कार प्रारम्भ में तो पारम्परिक औपचारिक प्रश्नोत्तरी की लीक पर ही चला पर बहुत शीघ्र और अनजाने ही उसने अनौपचारिक, निर्बन्ध वार्तालाप का स्वरूप ग्रहण कर लिया। बातों से बातें निकलीं और उनके व्यक्तित्व की गरिमा, ऊर्जा, निश्छल विनम्रता और जुझारू आक्रोश सब शब्द बन कर फूटे। संभवतः उस समूचे अनावश्यक विस्तार के लिए यहाँ स्थान न हो पर थोड़े विस्तार की क्षमा माँगते हुए और 1% (एक प्रतिशत) की छूट लेते हुए उनकी बातें 99% (निन्नानबे प्रतिशत) उन्हीं की शैली और शब्दों में—

प्रश्न—मुले जी, अनेक वर्षों से आपके विज्ञान लेख पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ती आ रही हूँ। इस कार्यशाला (विज्ञान परिषद्, प्रयाग और भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के सहयोग से 'हिन्दी-उर्दू में बाल विज्ञान लेखन' पर 11-16 सितम्बर 1989 के बीच विज्ञान परिषद्, प्रयाग में चलने वाली 6 दिवसीय कार्यशाला) में आपके दर्शन का सौभाग्य भी मिला तो यह जानने की सहज उत्कंठा हुई कि आपसे ही आपके विषय में कुछ जानूँ। क्या आप बताएँगे कि आपका जन्म कब और कहाँ हुआ और आपकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा एवं वह परिस्थितियाँ कैसी थीं जिन्होंने आपको हिन्दी विज्ञान लेखन के शिखर तक पहुँचाया ?

उत्तर—मेरा जन्म महाराष्ट्र के विदर्भ स्थित अमरावती जिले के एलिचपुर तहसील में—आज उसको अचलपुर कहते हैं—सतपुड़ा की तराई के एक गाँव सिन्डी बुज़रुग में सन् 1935 में हुआ था। मेरे पिताजी किसान थे—बहुत कम पढ़े-लिखे, बस चौथी तक। गाँव में बस चौथी तक का एक मराठी स्कूल था। वहीं मैंने भी पढ़ाई शुरू की। मेरे सबसे अधिक पढ़े लिखे रिश्तेदार सातवीं पास मेरे मामा थे, जो स्कूल में अध्यापक थे। शिक्षा, एम० ए०, बी० ए०, विश्वविद्यालय यह सब क्या होता है, यह मैं जानता तक नहीं था तब। पिताजी मुझे पढ़ाना भी नहीं चाहते थे। पर माँ चाहती थीं। शायद स्कूल अध्यापक मेरे मामा के प्रभाव से वह यह चाहती थीं कि मैं भी कम से कम सातवीं तो पास करूँ, जिससे स्कूल अध्यापक बन सकूँ।

चौथी से आगे के लिए तीन मील दूर के एक दूसरे गाँव में दो नाले पार कर जाना पड़ता था। सुबह रोटी बाँध कर जाता। इस तरह ग्यारह वर्ष की उम्र में सातवीं पास की। पर नॉर्मल स्कूल का अध्यापक बनने के लिए वह उम्र कम थी। मैट्रिक की परीक्षा में भी नहीं बैठ सकता था। समस्या थी कि बीच के इस खाली समय में क्या करूँ। तब तक गाँव में पंजाब से आए महानुभाव संप्रदाय के एक शास्त्री जी के प्रयत्न से एक पाठशाला खुल चुकी थी। वहाँ मैंने संस्कृत और हिन्दी की पढ़ाई की। मेरे गाँव में कुछ मुस्लिम जनसंख्या भी थी, जिसके सम्पर्क से हिन्दी मेरे लिए पहले भी अपरिचित नहीं थी। इस तरह मैंने संस्कृत की प्रथमा, मध्यमा परीक्षाएँ पास कीं।

प्रश्न—मुले जी, क्या आप अपने बाल जीवन की किसी ऐसी विशेष घटना का उल्लेख कर सकते हैं, जिसने आपको विज्ञान पढ़ने की ओर प्रेरित किया ?

उत्तर—आप जानती होंगी कि मैं गणित का विद्यार्थी रहा हूँ। आज जब मैं स्वयं से पूछता हूँ कि

वह कौन सी प्रेरणा थी जिसने मुझमें गणित के प्रति रुचि उत्पन्न की तो मुझे सातवीं कक्षा के अपने गणित अध्यापक की याद आती है। उनका नाम था **लक्ष्मण राव कुलकर्णी**। मैं उनके स्नेह से भरे पढ़ाने से तरीके को नहीं भूल सकता। शिक्षक के प्रति श्रद्धा और सम्मान की भावना वहीं से पैदा हुई। मैंने आगे चलकर भी पढ़ने के लिए जो गणित विषय चुना उसका कारण उनके द्वारा डाली गई वह नींव ही थी। शिक्षा के प्रति उत्साह के मूल में मेरी माँ थीं और विज्ञान की ओर बढ़ने के मूल में कुलकर्णी जी। मेरे पिता बिल्कुल नहीं चाहते थे कि मैं आगे पढ़ूँ।

प्रश्न— फिर आपकी आगे की शिक्षा-दीक्षा और आपके अंदर छिपे लेखक का उद्घाटन कैसे हुआ ?

उत्तर—खेती का काम देखना मुझे स्वीकार नहीं था। पढ़ने की लालसा जाग चुकी थी। मैं गाँव से वर्धा चला आया। वर्धा की 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की तीन परीक्षाएँ मैं गाँव से ही पास कर चुका था। समिति के तत्कालीन प्रधान मंत्री **भदन्त आनन्द कौसल्यायन** के पास पहुँचा और नौकरी माँगी। अब 14 वर्ष के लड़के के मुख से नौकरी की बात सुन शायद वे समझ गये कि सचमुच मुझे पढ़ने के लिए नौकरी की आवश्यकता है। 25 रु० प्रतिमाह की, प्रमाणपत्रों पर नाम भरने की वह नौकरी मेरे जीवन की पहली और आखिरी नौकरी थी जो डेढ़ वर्ष तक चली।

यहाँ आकर पहली बार अंग्रेज़ी की ए, बी, सी, डी सीखी। कौसल्यायन जी से **पाली** सीख कर 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' की **विशारद परीक्षा** पास की, फिर मैट्रिक करने 1951 में प्रयाग आ गया। शायद इसीलिए कि सम्मेलन के कारण प्रयाग के नाम से परिचय था। यहीं मैंने अंग्रेज़ी के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों में विशेष योग्यता के साथ मैट्रिक पास किया। अब घर वालों को भी लगा कि इसकी मदद करनी चाहिए।

फिर मन में इच्छा जगी, शायद **मेघनाद साहा, जे० सी० बोस, पी० सी० रे** जैसी वैज्ञानिक विभूतियों के कारण कि मैं प्रेसीडेन्सी कॉलेज, कलकत्ता में पढ़ूँ।

कौसल्यायन जी के साथ कलकत्ता पहुँचा, जहाँ उन्होंने **प्रो० सुनीतिकुमार चटर्जी** से मिलवाया, पर प्रेसीडेन्सी कॉलेज में तब तक एडमिशन (प्रवेश) बन्द हो चुके थे। प्रो० चटर्जी के कहने से स्कॉटिश चर्च में एडमिशन तय हो गया पर मैं अस्वस्थता के कारण वहाँ समय पर पहुँच नहीं पाया। अन्त में एडमिशन हुआ, शिलांग के सेंट एडमसन कॉलेज में। पर एक ओर मेरे शाकाहारी संस्कार और होस्टल मेस का मांसाहारी भोजन, दूसरे आइरिश अध्यापकों का उच्चारण समझने में कठिनाई, तीसरे मौसम की प्रतिकूलता। मैं 'प्रीवियस' (प्रथम वर्ष) के बाद ही इलाहाबाद लौट आया तथा इंटर यहीं से 'प्राइवेट' (व्यक्तिगत) किया।

मेरी विशेष रुचि गणित में थी इसलिए बी० ए० में विज्ञान तो छूट गया और अंग्रेज़ी साहित्य, भूगोल और गणित लेकर मैंने बी० ए० पास किया। **एस० सी० देब, फ़िराक साहब, डॉ० पी० एल० श्रीवास्तव और बी० एन० प्रसाद** सरीखे अपने विषय के धुरंधर विद्वान मेरे अध्यापक थे। फिर गणित से ही एम० ए० किया। और कुछ दिन रिसर्च भी की।

यहाँ एक बात मैं स्पष्ट कर दूँ कि बचपन से ही मेरे मन में स्वाभिमान की एक तीव्र भावना थी। घर की खेती के कारण नौकरी क्या होती है? कैसे की जाती है? यह मैं जानता ही न था। न स्वयं किसी का 'सबॉर्डिनेट' (मातहत) बन कर रहना, न किसी को अपना 'सबॉर्डिनेट' बनाना— यह मैंने सीखा ही नहीं। इसीलिए मुझे लगा कि रिसर्च करने का जो तरीक़ा है, जो अपने 'गाइड' (निर्देशक) की खुशामदें करनी पड़ती हैं, उनके घर दौड़ना पड़ता है, वह सब मैं कर नहीं सकूँगा। तो स्वाभिमान से पी-एच०

डी० नहीं मिल सकेगी इसलिए पी-एच० डी० नहीं कर सका।

प्रश्न—आप तो मराठी भाषी हैं, हिन्दी की ओर आप कैसे उन्मुख हुए ?

उत्तर—हिन्दी से तो, जैसा कि मैंने बताया, मेरा परिचय बचपन से ही हो गया था। फिर मैंने संस्कृत भी पढ़ी थी। अतः हिन्दी के लिए एक तैयार पृष्ठभूमि मेरे पास थी। यह अवश्य है कि विश्वविद्यालय के प्रारम्भिक तीन वर्षों की अवधि में मेरा हिन्दी से कोई लगाव नहीं रह गया था। वहाँ घुसने पर, वह जो छात्रों पर प्रारंभिक दिनों का नशा होता है, मुझ पर भी हावी हो गया था। हिन्दी न बोलना, पश्चिमी ढँग के वस्त्र पहनना, अंग्रेज़ी में ही बातें करना, अंग्रेज़ी न बोलने वालों से दूरी रखना, **रसेल** और '**लिसनर**' (पत्रिका) पढ़ना जैसी और सारी बातें जो इन आदतों के साथ फैशन के रूप में चलती हैं, मुझे भी घेरे हुए थीं। 'फाइनल ईयर' (अंतिम वर्ष) एम० ए० में पहुँचते-पहुँचते मैं 'रेगुलर' (नियमित रूप से) क़ॉफ़ी-हाउस जाने लगा था।

यहीं से एक बड़ा बदलाव आया। ये वो दिन थे जब इलाहाबाद हिन्दी का गढ़ था। **पंत, महादेवी, निराला** तो थे ही, इनके अतिरिक्त **कमलेश्वर, मार्कण्डेय, साही, अमरकांत, भारती,** और भी दूसरे बहुत से लोगों की हर शाम कॉफी हाउस में ही बीतती थी। उन दिनों इलाहाबाद में 'परिमल' संस्था भी पूरी तरह 'एक्टिव' (सक्रिय) थी। अपनी हर शाम कॉफी-हाउस में हिन्दी के इन स्थापित लेखकों के साथ बिताने ने मुझे बदलने में एक बड़ी भूमिका अदा की। इन सभी से मुझे बहुत अपनत्व मिला और आज भी इनमें से अधिकांश के साथ मेरे बड़े अच्छे सम्बन्ध हैं। इसी साहित्यिक वातावरण ने मुझे हिन्दी और फिर लेखन की ओर प्रवृत्त किया।

आपने इससे पहले पूछा था न कि मैं लेखक कैसे बना ? तो इन्हीं दिनों मैंने एक किताब लिखी थी '**सूरज, चाँद, सितारे**'। किताब 'राजकमल' के **ओम प्रकाश जी** को पसंद आ गई और छप गई। फिर वहीं से दूसरी-तीसरी भी छपीं।

विश्वविद्यालय के बाद मैं 'ऑसिलेट' (दोलन) कर रहा था। इधर लेखन में सफलता मिल रही थी। ज़िंदगी चल निकली। तुरन्त ही अपने पैरों पर खड़ा हो गया। अतः स्वाभाविक ही झुकाव लेखन की ओर ही हो गया।

शुरू में हिन्दी में दिक्क़तें आईं, पहले लोगों ने कहा कि बीच-बीच में मराठी शब्द आ जाते हैं। अहिन्दीभाषी के लिए इलाहाबाद में स्वयं को हिन्दी लेखन में स्थापित करना कठिन था। पर मैं आतंकित नहीं था। मैंने समझौते नहीं किए और धीरे-धीरे चल निकला। आज मेरे लगभग **तीन हज़ार प्रकाशित लेख हैं और चालीस पुस्तकें**, जिनमें कई के दूसरे-तीसरे संस्करण भी आए हैं।

प्रश्न—आप अपनी रचनाधर्मिता के लिए किस वैज्ञानिक, लेखक अथवा अध्यापक की प्रेरणा को उत्तरदायी मानते हैं ?

उत्तर—ऐसा तो नहीं कि किसी से प्रभावित नहीं पर यह पूरे परिवेश के लिए कहना अधिक उचित होगा। मैं साहित्यकारों के बीच रहा। मेरी पूरी 'ग्रोथ' (विकास) उन्हीं में हुई। आज मैं यह कह सकता हूँ कि मैं जो कुछ हूँ इलाहाबाद के कारण हूँ।

प्रश्न—आपने लेखकों की तीन पीढ़ियाँ देखी हैं। एक अपने पूर्व की, एक अपनी समकालीन और एक आज की नवीन पीढ़ी। क्या इन तीनों पीढ़ियों के विज्ञान लेखकों की सोच में कोई अन्तर है? क्या आप इसे स्पष्ट करना चाहेंगे ?

उत्तर—मैंने जब लिखना प्रारम्भ किया तब **डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० सत्यप्रकाश**, जैसे लोग काफ़ी लिख चुके थे। पर यह लोग हिन्दी में विज्ञान साहित्य ला रहे थे। इनका लेखन पत्रकारिता के स्तर पर नहीं था। तब तक

'भारत', 'आज', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' जैसे समाचार-पत्र और पत्रिकाओं में नियमित रूप से वैज्ञानिक लेख नहीं आते थे। धीरे-धीरे मेरी पीढ़ी के समय यह परिवर्तन आया कि इन पत्रिकाओं में विज्ञान का एक-एक लेख अवश्य आने लगा। शायद मैं भी इसमें 'इन्स्ट्रूमेन्टल' (सहायक) रहा। अब पाठक भी जुड़े हैं। तीस वर्ष पूर्व यह स्थिति नहीं थी। इन तीस वर्षों में रुचियाँ बदलीं। छपने के साधन भी उपलब्ध हुए। विषयवस्तु प्राप्त करने की सुविधाएँ बढ़ीं। पर उस अनुपात में श्रम करना कम हो गया है। जितने वैज्ञानिक बाहर निकलते हैं उस अनुपात में लेखक नहीं।

प्रश्न—आपने बड़ी उम्र वाले सचेत पाठकों के लिए भी लिखा है और छोटे-छोटे बालकों के लिए भी। इसके अतिरिक्त आपके लेखन के विषय भी अंतरिक्ष, भौतिकी, रसायन से लेकर प्रेरणादायक जीवनियों तक होते हैं। तो आप अपने लेखन में यह वैविध्य कैसे लाते हैं?

उत्तर—मैं अपने लेखन के प्रति प्रामाणिक और प्रतिबद्ध रहना चाहता हूँ। क्योंकि वही मेरा स्रोत है। गणित मेरा प्रिय विषय है, पर पुरातत्व, इतिहास (पुरालिपि), विज्ञान साहित्य, खगोल विज्ञान आदि मैं विद्यार्थीकाल से ही पढ़ता रहा हूँ। फिर अंतरिक्ष अनुसंधान युग आया तो उससे भी जुड़ा। जब कंप्यूटर का सरकारी रेला आया तो लगा कि जनता को समझाना चाहिए कि ये क्या है? हिन्दी में उसे समझाने की चुनौती स्वीकार की। तब तक मैं स्वयं उसके विषय में कुछ नहीं जानता था, पर फिर मैंने बाइनरी अल्जेब्रा, एलेक्ट्रॉनिक्स और साइबरनेटिक्स पढ़ा। इस तरह कम्प्यूटर के विषय में आसान भाषा में लिखकर उसका हौवा हटाया। यूँ लिखा तो बहुत पर मुख्यतः फ़िज़िकल साइन्सेज़ (भौतिक विज्ञान) पर ही लिखा, जीव विज्ञान पर बहुत कम। स्रोत सामग्री के रूप में संदर्भ ग्रन्थ मेरे पास हैं। जर्नल (शोध पत्रिकाएँ) मैं मँगाता हूँ। इस तरह पापुलर राइटिंग (लोकप्रिय लेखन) के लिए मैं एक 'एकेडेमिक' (शास्त्री) की तरह ज़िन्दगी बिताता हूँ। एक ज़िम्मेदारी भी महसूस करता हूँ, अलग भाषा के शब्दों के लिए हिन्दी समानार्थी रखने के पहले बार-बार सोचकर, छानकर तब लिखता हूँ। '**आकाश दर्शन**' (पुस्तक) में कई तारों के नाम नये सोचने पड़े। पर मेरे शब्दों को आगे दूसरों द्वारा भी प्रयोग किया गया। तो तलवार तो लटकती रहती है, सावधान रहना पड़ता है, पर इसमें सुख मिलता है।

प्रश्न—बालोपयोगी विज्ञान साहित्य का स्वरूप आपके विचार में कैसा होना चाहिए? उसमें किस स्वर पर अधिक बल देना चाहिए? बालक तक अधिकाधिक सूचनाएँ पहुँचा देने की चेष्टा पर अथवा सीमित सूचनाएँ जो बालक को बोधगम्य हों और शैली की रोचकता पर?

उत्तर—देखिए यह टी० वी० वीडियो का युग है अतः पुस्तकों में बच्चों की रुचि बढ़े इसके लिए यह बहुत आवश्यक है कि पुस्तकें सचित्र हों और आकर्षक हों। पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग नहीं होना चाहिए। अब कोई निश्चित प्रतिमान तो नहीं है पर पुस्तकें उनकी मातृभाषा में हों, क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग हो, सचित्र हों और सरल भाषा में तथा संक्षेप में हों। इन सब बातों पर बल देना चाहिए। अभी हिन्दी में इसका बहुत अभाव है। वस्तुतः बालोपयोगी लेखन लोगों को निम्नस्तरीय लगता है। विश्वविद्यालय के अध्यापक, जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, वे भी नहीं लिखते। वास्तव में शुरूआत वहीं से होनी चाहिए।

प्रश्न—हिन्दी में उच्चकोटि के वैज्ञानिक साहित्य के विषय में काफ़ी वर्षों से कुछ मतभेद की सी

स्थिति रही है। अधिकतर कहा जाता है कि हिन्दी में अच्छी पुस्तकें ही नहीं हैं। अतः हिन्दी में उच्च शिक्षा और शोध आदि संभव नहीं है। आपके इस सम्बन्ध में क्या विचार हैं?

उत्तर—हमने चालीस वर्षों में शोध के स्तर में कोई वृद्धि नहीं की। क्योंकि हर जगह 'ब्यूरोक्रैटिक' (नौकरशाही) बाधाएँ हैं। नई पीढ़ी को हिन्दी-अंग्रेज़ी दोनों नहीं आती। जैसे तैसे जो वह लिखता है वह अंग्रेज़ी है नहीं। लिखना और विषय की जानकारी दो अलग-अलग चीजें हैं। आपको भाषा, विषय सब आता है, आप लिखना चाहते भी हैं, पर चूँकि लेखन एक विशिष्ट कला है अतः पैराग्राफ कहाँ शुरू करना, कहाँ उसकी सीमा हो, कैसे प्रस्तुत करना—यह प्रस्तुतिकरण–आपको नहीं आता तो सब गड़बड़ हो जाता है। फिर वर्तनी, एकरूपता और व्याकरण पर भी ध्यान देना होता है। इसलिए हिन्दी में सामर्थ्य तो बहुत है, उच्च शिक्षा और शोध सब सम्भव है, पर प्रयास की कमी है।

वस्तुतः शिक्षा, संस्कृति, आचरण, धर्म सब समाज की जो तत्कालीन अर्थव्यस्था और राजनीति है, उससे प्रमुखता से प्रभावित होते हैं अतः शिक्षण और विश्व-विद्यालयों की जो दुर्गति है, वह आज की राजनीति और अर्थव्यवस्था के कारण।

प्रश्न—मुले जी! साहित्यकार के लेखकीय सामाजिक दायित्व की बात बड़ी ज़ोर-शोर से की जाती है। एक लोकप्रिय विज्ञान लेखक के रूप में आप कैसे अपने इस दायित्व का निर्वाह करते हैं?

उत्तर—मैंने बताया न कि समाज राजनीति से प्रभावित होता है। आज़ादी के बाद के वर्षों में वैज्ञानिक नीतियों के तहत विश्वविद्यालयों को जाने वाला पैसा विज्ञान के सरकारी संस्थानों को स्थानान्तरित होने लगा। इसके पूर्व के वैज्ञानिकों ने थोड़े पैसों से भी देश के लिए ख्याति अर्जित की थी। बाद में ब्यूरोक्रैटिक तंत्र में उलझ कर विज्ञान में भी राजनीति शुरू हो गई। बल्कि यूँ कहें कि विज्ञान पीछे रह गया और राजनीति ही 'प्रीडॉमिनेन्ट' (अभिभावी या प्रधान) हो गई। तो ईमानदार विज्ञान लेखक को विज्ञान ही नहीं, विज्ञान 'पॉलिसी' (नीति) के बारे में भी लिखना चाहिए। केवल वैज्ञानिक लेख लिखना अपर्याप्त है। यह उसका दायित्व है। मैं यह प्रयत्न करता रहता हूँ (यहाँ श्री मुले ने 'धर्मयुग' के 7-13 अगस्त 1988 के अंक में छपे अपने लेख 'आज़ादी की लौ को वैज्ञानिकों ने भी तेज़ किया' का उल्लेख किया, जिनमें उनके इस दृष्टिकोण की व्यापक झलक उपलब्ध है)। दायित्व यदि हम साहित्य में समझते हैं तो विज्ञान लेखन में क्यों नहीं? नरोरा प्लांट, नर्मदा घाटी, टेहरी बाँध की समुचित आलोचना आवश्यक है।

प्रश्न—आपने गुणवत्ता और मात्रा दोनों की दृष्टि से हिन्दी में विशाल वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध कराया है। क्या आप अनुशासन के तहत प्रतिदिन कुछ घंटे नियमित लेखन करते हैं? या आप अपनी इच्छानुसार लेखकीय मूड के अनुरूप जब चाहा तब लिखने की शैली के अनुयायी हैं?

उत्तर—नियमित लेखन करता हूँ। मैंने बताया न कि यह लेखन मेरी जीविका है। इसलिए संसार से बहुत जुड़ा नहीं। सभा-सोसाइटियों में कम जाता हूँ। कभी तैयार लेख कहीं समय पर पहुँचाना ही हो तो निकलता हूँ, अन्यथा नहीं। मैं लेखन के लिए अपनी शक्ति और समय संचित करना चाहता हूँ। टाइपराइटर पर ही लिखता हूँ। एक बार में 'फिनिश्ड' (तैयार) प्रति ही निकलती है। पुस्तक की प्रेस कॉपी स्वयं तैयार हो जाती है। पूछता हूँ

कितने पैसे दे रहे हैं? कितनी जगह दे रहे हैं? उसी हिसाब से लिखता हूँ।

प्रश्न—आप लेखों के माध्यम से **विज्ञान परिषद्** की पत्रिका 'विज्ञान' से बार-बार जुड़ते रहे हैं। 'विज्ञान' को संपुष्ट करने के विषय में आपके क्या सुझाव हैं?

उत्तर—कुछ अंक तो 'विज्ञान' के बहुत अच्छे आये हैं। पर विज्ञान की पत्रिका को काफी सचित्र होना चाहिए। एक बात और है कि विद्यार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उस पक्ष पर विशेष बल देना चाहिए। वैसे 'विज्ञान' और विज्ञान परिषद् को मैं अपना पूरा सहयोग अवश्य दूँगा।

प्रश्न—अनुमति दें तो एक नितांत व्यक्तिगत-सा प्रश्न। आप स्वतन्त्र लेखन करते हैं, क्या स्वतन्त्र लेखन करने वाले पत्रकार या लेखक अपना और परिवार का जीवन-यापन मात्र इसी के बल पर सुचारु रूप से कर सकते हैं? और फिर इस कार्य में आपको पत्नी या परिवार से क्या सहयोग मिल पाता है?

उत्तर—मैं तो पूरी तरह स्वतन्त्र लेखन पर निर्भर हूँ। संघर्ष भी करना पड़ा। पर शिकायत नहीं। आज दिक्कत भी नहीं है। एक सामान्य अफसर जैसा घर बैठे स्वाभिमान से प्राप्त कर लेता हूँ। किसी भी पत्र-पत्रिका से लेख की माँग आने पर में पूछता हूँ कि आप का किसी भी लेखक को उच्चतम पारिश्रमिक क्या है? और मैं उससे कम नहीं लेता। इस बात पर मैंने कभी समझौता नहीं किया। मैं कहता हूँ विज्ञान लेखक को दूसरे लेखकों से कम मत समझो। तो मैं विज्ञान के लिए लड़ता हूँ। पूरे विज्ञान लेखक वर्ग के लिए उनकी लड़ाई लड़ता हूँ। और एक सीमा तक मैं अपनी इस लड़ाई में सफल भी हुआ हूँ। मेरा स्वागत हुआ है।

रही परिवार और पत्नी की बात तो परिवार तो पत्नी ही चलाती है। आज उसी की बदौलत मुझे परिवार की कोई चिन्ता नहीं। वह एम. ए. है 'पॉलिटिकल साइन्स' (राजनीति विज्ञान) से। नौकरी करती थी, पर परिवार की देखभाल के लिए उसने नौकरी छोड़ दी। वह चाहती है कि मेरा सारा समय लेखन में लगे।

प्रश्न—आपको अपने लम्बे लेखकीय सफर में अनेक उपलब्धियाँ मिली हैं। आप अपने जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि क्या मानते हैं?

उत्तर—साहित्यकार शायद सरलता से इसका उत्तर दे सकता था। मेरे लिए कठिनाई है। मैं जहाँ से सफर शुरू करना चाहता था, वहाँ से नहीं किया। सोचा था 'टीचर' (अध्यापक) बनूँगा। गणित (एकेडेमिक शिक्षा क्षेत्र में) के क्षेत्र में नहीं जा सका। लेखन में चला आया। तो सोचता रहा क्या टिक सकूँगा? क्या स्वागत होगा? या अलग फेंक दिया जाऊँगा? पिछले तीस वर्षों से एक डर निरन्तर बना रहा कि अगले साल क्या होगा? पर 'कंसिस्टेन्ट' (अविचल) रहा, अपने लेखन के लिए प्रतिबद्ध और ईमानदार बना रहा। कोइ 'रॉयल रोड (राजमार्ग) नहीं खोजी। अपना एक प्रगतिवादी, 'मार्क्सवादी' दृष्टिकोण रहा और शब्द या विचारधारा कुछ भी, कभी किसी के कहने से या दबाव से कभी नहीं बदले। आज मुझे छपने की पूरी संतुष्टि है। पाठकों का 'फीड-बैंक' (पुनर्निवेशन) ही मेरा सुख है। चिट्ठियाँ बल देती हैं, मेरा लेखन पसंद किया जा रहा है। इतने वर्षों बाद इलाहाबाद आया। यहाँ सब इतने अपनत्व से मिले। यही मेरी उपलब्धियाँ हैं। इतनी मुझे अपेक्षा नहीं थी।

प्रश्न—आज के युवा विज्ञान लेखकों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

उत्तर—उनको यही संदेश है कि वे अपने को साहित्यकारों से अलग न समझें। आज आवश्यकता है दस कहानी के बदले एक विज्ञान लेख की। हिन्दी, विज्ञान को वहन नहीं कर सकती, यह व्यर्थ की बदनामी हो रही है। पर इसे दूर करने के लिए उनके प्रयास, श्रम और सहयोग की ज़रूरत है। □□

भारत के खनिज संसाधन

डॉ॰ विजय कुमार उपाध्याय

[गतांक से आगे]

भारत में टाइटेनियम-अयस्क (इल्मेनाइट) का कुल अनुमानित भंडार लगभग 15 करोड़ टन है जो मुख्यतः तमिलनाडु तथा केरल में पाया जाता है। आजकल टाइटेनियम का मुख्य उपयोग पिगमेंट उद्योग में है। टाइटेनियम का दूसरा मुख्य अयस्क है रूटाइल। इल्मेनाइट तथा रूटाइल महाराष्ट्र के रत्नागिरि, केरल के क्विलोन तथा कन्नानोर के बीच तथा तमिलनाडु के रामनाथपुरम, तिरुवेनली तथा तांजावुर के समुद्र तटीय बालू के साथ पाये जाते हैं।

भारत में अलमुनियम अयस्क (बॉक्साइट) मुख्यतः बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, गुजरात तथा उड़ीसा में पाया जाता है। अपने देश में बॉक्साइट का कुल अनुमानित भंडार लगभग 25 करोड़ टन है। सन् 1975 ई० में भारत में बॉक्साइट का कुल उत्पादन लगभग 12 लाख 69 हजार टन था, जिसका मूल्य लगभग 2 करोड़ 97 लाख रुपये था। उपर्युक्त उत्पादन का 36.6% बिहार में, 28% मध्य प्रदेश में, 19% महाराष्ट्र में तथा 9.8% गुजरात में खनन हुआ। बिहार में बॉक्साइट लोहरदग्गा जिले के सिरानडुग, बगडूपत, लुपुंगपत तथा लुचुतपत आदि स्थानों में पाया जाता है।

सोना हालाँकि भारत के अनेक राज्यों जैसे बिहार, आसाम, आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, मेघालय, उड़ीसा, पंजाब, सिक्किम, तथा तमिलनाडु में उपलब्ध है, परन्तु व्यवसायिक मात्रा में सिर्फ कर्नाटक के दो क्षेत्रों कोलार तथा हट्टी में पाया जाता है। सन् 1975 ई० में भारत में 2824 कि० ग्रा० सोने का खनन हुआ जिसका मूल्य 11 करोड़ रुपये से अधिक था। सन् 1982 ई० में बिहार के मुंगेर जिले में जमुई अनुमंडल के करमटिया ग्राम में सोने का पता चला है। यहाँ घुटने पहाड़ी से करमटिया होते हुए नारगंजो तक लगभग साढ़े पाँच कि० मी० लम्बी पट्टी में स्वर्ण मिश्रित सल्फाइड तथा पाइराइट के चट्टानी परत (host rock) भरे पड़े हैं। करमटिया में 100 मीटर की गहराई तक खुदाई (drill) करने के बाद जो चट्टानी परत का नमूना मिला है उससे पता चलता है कि यहाँ जो सोना मिलेगा वह कोलार से उच्चतर दर्जे का होगा।

भारत में ताँबा कम मात्रा में उपलब्ध है। सन् 1975 ई० में लगभग 18 लाख 31 हजार टन ताम्र-अयस्क का खनन किया गया जिसका मूल्य लगभग 20 करोड़ रुपये थे। इसमें से लगभग 10 लाख 37 हजार टन ताँबा-अयस्क बिहार में निकाला गया, 7 लाख 34 हजार टन राजस्थान में, 57 हजार टन कर्नाटक में तथा 3 हजार टन आंध्र प्रदेश में। बिहार में ताम्र-अयस्क के मुख्य खनन केन्द्र सिंहभूम जिले के मोसाबनी तथा राखा माइन्स हैं। सिंहभूम ताम्र-अयस्क की पट्टी लगभग 128 कि० मी० लम्बी है जो पश्चिम में बामिनी नदी के तट पर स्थित द्वारपुरम से प्रारम्भ होकर खरसाँवा, सरायकेला तथा ढालभूम होते हुए पूरब में बहारगोरा तक फैली है। राजस्थान में खेत्री ताम्र-अयस्क की पट्टी 80 कि० मी० लम्बी है जो सिंधाना के रघुनाथगढ़ तक फैली हुई है।

सीसा-अयस्क (Lead ore) भारत में राजस्थान के उदयपुर जिले के जावर क्षेत्र में पाया जाता है। सन् 1975 ई० में यहाँ 13830 टन सीसा-अयस्क का खनन हुआ जिसका मूल्य लगभग एक करोड़ 92 लाख रुपये था। जावर के मोचिया मोंगरा क्षेत्र में सीसे एवं जस्ते के लिये पुराने खनन के संकेत मिलते हैं। इस क्षेत्र में खनिज निक्षेप की दो पट्टियाँ हैं। एक पट्टी पिपली-कुंडला-बिला-बरला में फैली है जिसमें सीसे का अयस्क गैलेना मिलता है। दूसरी

सह प्राध्यापक भूगर्भ, इंजीनियरी कॉलिज, भागलपुर–813210

पट्टी मोचिया-मोंगरा-बलरिया क्षेत्र में फैली है जिसमें जस्ते का अयस्क मिलता है। इस क्षेत्र में सीसा, जस्ता अयस्क का अनुमानित भण्डार लगभग 12 करोड़ टन है, जिसमें औसत धातु की मात्रा लगभग 3% है। उदयपुर जिले में ही जावर पट्टी से सटी हुई दरीबा-राजपुरा 17 कि० मी० लम्बी सीसा-जस्ता अयस्क की पट्टी है।

रांगा-अयस्क (Tin ore) बिहार, राजस्थान, तथा मध्य प्रदेश में पाया जाता है। भारतीय भूतत्व सर्वेक्षण विभाग (Geological Survey of India) के प्रतिवेदन के अनुसार उच्च दर्जे का कैसीटेराइट (रांगा-अयस्क) मध्य प्रदेश में बस्तर जिले के गोविन्दपाल, चिउड़वाद, चितलवार, मुंडवाल तथा जोगपाल आदि क्षेत्रों में पाया जाता है। कैसीटेराइट में रांगा की मात्रा 55% से 67% तक रहती है। बिहार में कैसीटेराइट गया, हजारीबाग तथा राँची जिले के अनेक क्षेत्रों में पाया जाता है। हजारीबाग के नुरुंगो क्षेत्र में सन् 1867 से 1914 ई० के बीच कभी-कभी कैसीटेराइट का खनन होता था इस कैसीटेराइट में औसत 1.8% रांगा उपस्थित था। राजस्थान में भीलवाड़ा जिले के सोनियाना क्षेत्र में कैसीटेराइट के बड़े-बड़े मणिभ (Crystal) उपस्थित हैं। गुजरात के बनासकाँठा जिले में भी कैसीटेराइट पाया जाता है।

अभ्रक (Mica) उत्पादन के क्षेत्र में भारत विश्व में अग्रणी रहा है। सन् 1975 ई० में अपने देश में 11244 टन अभ्रक का उत्पादन हुआ जिसका मूल्य लगभग 2 करोड़ 22 लाख रुपये था। देश के अंदर अभ्रक की खपत अधिक नहीं है, अतः अधिकतर मात्रा का निर्यात जापान, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस को कर दिया जाता है। बिहार सबसे बड़ा अभ्रक उत्पादक राज्य है। यहाँ अभ्रक पट्टी गया से भागलपुर तक फैली है जिसकी लम्बाई लगभग 145 किलोमीटर है। बिहार में अभ्रक-खनन के मुख्य केन्द्र हैं—कोडरमा, चटकारी, डोमचाँच, ठाव, गावाँ इत्यादि। भारत में दूसरी अभ्रक पट्टी आंध्र प्रदेश के नेल्लोर में है जो लगभग 96 किलोमीटर लम्बी तथा 13 से 15 कि० मी० चौड़ी है।

परमाणविक खनिजों में यूरेनियम के खनिज बिहार में सिंहभूम जिले के जादुगुड़ा, नरवार पहाड़, तामा डुँगरी तथा धनतुप्पा आदि स्थानों में पाये जाते हैं। जादुगुड़ा में यूरेनियम खनिज के खनन का कार्य विगत कई वर्षों से चल रहा है। यहाँ पर यह खनिज 300 से 600 मीटर तक की गहराई में पाया जाता है। यहाँ यूरेनियम खनिज का अनुमानित भंडार लगभग 2 करोड़ टन है। परमाणु ऊर्जा आयोग ने यूरेनियम खनिजों का पता राजस्थान के उदयपुर भीलवाड़ा, अलवर, डुंगरपुर तथा झुंझुनू जिलों में भी लगाया है। थोरियम के अयस्क व्यवसायिक स्तर पर केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश तथा उड़ीसा में समुद्री किनारे पाये जाने वाले बालू में उपलब्ध हैं। यहाँ पाया जाने वाला अयस्क मोनाजाइट है।

भारत में उर्वरक-उत्पादन के लिये कच्चे माल के रूप में रॉक फॉस्फेट तथा जिप्सम का उपयोग किया जाता है। रॉक फॉस्फेट का काफी बड़ा भंडार उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में है। मसूरी के पास फॉस्फेट का अनुमानित भंडार एक करोड़ 90 लाख टन है। राजस्थान में जैसलमेर जिले के बीरमहिया क्षेत्र में 48 लाख टन फॉस्फेट का अनुमानित भंडार है। देश में जिप्सम का कुल अनुमानित भंडार लगभग 117 करोड़ टन है। राजस्थान के नागौर क्षेत्र में जिप्सम का सबसे बड़ा भंडार है।

तेजी से बढ़ते हुए सीमेंट, लोहा एवं इस्पात तथा रसायन उद्योग को ध्यान में रखते हुए भारतीय भूतत्व सर्वेक्षण विभाग ने बहुत बड़े पैमाने पर चूना पत्थर तथा डोलोमाइट के सर्वेक्षण का कार्य अपने हाथों में लिया। भारत में चूना पत्थर का कुल अनुमानित भंडार लगभग 260 करोड़ टन है, जिसमें सीमेंट में उपयोग लायक चूना पत्थर का अनुमानित भंडार 180 करोड़ टन है। इस तरह का चूना पत्थर अधिकतर आंध्रप्रदेश, आसाम, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में मिलता है। भारत में डोलोमाइट का

कुल अनुमानित भंडार लगभग 125 करोड़ टन है, जिसमें 45 करोड़ टन ऊष्मसह (refractory) स्तर का है तथा 20 करोड़ टन प्रद्रावक (flux) स्तर का।

गंधक-अयस्क पाइराइट अधिकतर बिहार तथा राजस्थान में पाया जाता है। बिहार के अमझोर क्षेत्र में पाइराइट का अनुमानित भंडार लगभग 7.9 करोड़ टन है जिसमें 41% गंधक उपलब्ध है। यहाँ पाइराइट का खनन विगत 25 वर्षों से पाइराट्स एवं केमिकल डेवलपमेंट कारपोरेशन द्वारा किया जा रहा है। राजस्थान में पाइराइट्स का अनुमानित भंडार लगभग 4.4 करोड़ टन है जिसमें 30% गंधक उपलब्ध है। कर्नाटक के इंगलवालू क्षेत्र में पाइराइट्स का अनुमानित भंडार लगभग 15 लाख टन है जिसमें 30% गंधक उपलब्ध है।

कुछ खनिज ऐसे हैं जो वर्णक (Pigment) निर्माण में व्यवहृत होते हैं। प्राकृतिक रूप में प्राप्त होने वाले खनिज वर्णकों में शामिल हैं लौह ऑक्साइड, गेरू तथा ग्रैफाइट आदि। ये रंग में क्रमशः लाल, भूरे तथा काले हैं। लाल रंग का वर्णक हेमाटाइट नामक खनिज से प्राप्त होता है, तथा भूरे रंग का लाइमोनाइट से। हरा वर्णक ग्लौकोनाइट से प्राप्त होता है। सन् 1975 ई० में भारत में 89739 टन गेरू का खनन हुआ जिसका मूल्य 1759000 रुपये का था। राजस्थान में गेरू बीकानेर, भरतपुर, बूँदी तथा चित्तौरगढ़ आदि स्थानों पर मिलता है। बिहार में सिंहभूम जिले के जैरडीह तथा रोहतास जिले के कैमूर पहाड़ी में मिलता है। □□

[समाप्त]

यूरेनियम का विद्युत्-उत्पादन में योगदान

दिलीप भाटिया

भारत में यूरेनियम के प्रचुर भण्डार हैं। हमारे पास 70,000 टन यूरेनियम उपलब्ध है। इसका सबसे अच्छा, लाभकारी व शांतिमय उपयोग है—विद्युत् उत्पादन। परमाणु बिजलीघरों में यूरेनियम को यूरेनियम डाइऑक्साइड ईंधन के रूप में काम में लाकर विद्युत्-उत्पादन किया जाता है। यूरेनियम के तीन आइसोटोप होते हैं—यूरेनियम-234, यूरेनियम-235 और यूरेनिवम-238। प्राकृतिक यूरेनियम में 0.7 प्रतिशत यूरेनियम-235 होता है, जो नाभिकीय प्रक्रिया में भाग लेकर विखण्डन क्रिया द्वारा उष्मा देता है व विद्युत्-उत्पादन में निरन्तर काम में आता है। तारापुर-राजस्थान, मद्रास व नरोरा परमाणु बिजलीघरों से 1465 मेगावाट विद्युत्-उत्पादन हो रहा है। भविष्य में 10,000 मेगावाट का लक्ष्य है, जो इस योगदान को सन् 2000 तक 10 प्रतिशत कर सकेगा। कम ईंधन, अधिक सुरक्षा, संतुलित व दोषहीन पर्यावरण, आत्मनिर्भरता व तकनीकी क्षमता, ये कुछ ऐसे गुण हैं जो इस बहुमूल्य नाभिकीय ईंधन को हमारे लिए वरदान सिद्ध करते हैं व नाभिकीय ऊर्जा के महत्त्व को प्रभावशाली बनाते हैं।

ताप बिजलीघर की अपनी सीमाएँ व समस्याएँ हैं। सीमित भण्डार हैं कोयले के व एक सीमित क्षेत्र में ही स्थित हैं। ईंधन की मात्रा अधिक चाहिए। 3000 मेगावाट बिजली बनाने के लिए प्रतिदिन 20000 टन कोयला चाहिए। इससे हानिकारक गैसें, प्रतिवर्ष 150.000 टन सल्फर डाइ ऑक्साइड 75,000 टन नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड व असीमित मात्रा में कार्बन डाइ ऑक्साइड निकलेगी।

पन बिजलघर भी दोष रहित नहीं हैं। इसके लिए ईंधन की आवश्यकता प्रकृति पर निर्भर है। पन बिजलीघर लगाने के लिए लोगों को विस्थापित करना होता है व पानी एक जगह भरा होने से बाढ़ का ख़तरा तो है ही—मलेरिया व अन्य बीमारियाँ भी फैलती हैं।

अभियंता-एस ई, राजस्थान परमाणु बिजलीघर, अणु शक्ति–323303 (कोटा), राजस्थान

बढ़ती हुई बिजली की आवश्यकता पूरी करने के लिए आज सर्वश्रेष्ठ व अत्यधिक सुरक्षित विकल्प यूरेनियम है। यूरेनियम का यह सर्वश्रेष्ठ सदुपयोग है। विकिरण, रेडियोधर्मिता व अन्य पहलुओं का पूरा ध्यान रखा जाता है व किसी भी परिस्थिति को सही करने के लिए आपात्कालीन प्रावधान व योजनाएँ हैं। पर्यावरण प्रयोगशाला व स्वास्थ्य भौतिकी विभाग इस बात का बराबर ध्यान रखता है कि पर्यावरण दूषित न हो व जनता व कर्मचारियों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर न हो। अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी द्वारा निर्धारित मानदण्डों का पालन किया जाता है।

विद्युत्-उत्पादन के बाद अपशिष्ट ईंधन का भी उपयोग होता है। इस अपशिष्ट यूरेनियम से प्लूटोनियम निकालकर कई क्षेत्रों में काम में लिया जाता है। यूरेनियम के साथ प्लूटोनियम मिलाकर बनाया गया मिश्र ईंधन पुनः परमाणु बिजलीघर में काम में लाकर अधिक विद्युत्-शक्ति प्राप्त की जा सकती है। फास्ट ब्रीडर रिएक्टर के लिए अनुसंधान व अन्य कार्यक्रमों के लिए भी इस प्लूटोनियम का उपयोग होता है। इस प्रकार यह यूरेनियम विद्युत्-उत्पादन के बाद भी कई लाभकारी कार्यों में काम आता है।

यूरेनियम बहुत महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। हमारी योजनाओं के लिए हमारे पास पर्याप्त यूरेनियम उपलब्ध है। मितव्ययिता से इसका उपयोग करके अधिकतम लक्ष्य को प्राप्त करना है व अपशिष्ट यूरेनियम का भी उपयोग करना है। हम आश्वस्त हैं कि यूरेनियम विद्युत्-उत्पादन में अपना योगदान देकर राष्ट्र की प्रगति में, देशवासियों के जीवन स्तर को उन्नत बनाने में, **भाभा, नेहरू** के सपनों को साकार करने में समर्थ होगा व इस वैज्ञानिक उपलब्धि द्वारा विश्व में हम एक गौरवशाली कीर्ति स्थापित कर सकने में सफल होंगे। ☐☐

पुस्तक समीक्षा

(1) आर्थिक वनस्पति विज्ञान

लेखक—रघुनाथ प्रसाद, सरस्वती प्रकाशन, विण्ढमगंज-232221, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश, मूल्य 20 रु०।

पुस्तक बी० एस-सी० (सामान्य एवं प्रतिष्ठा) तथा सेण्ट्रल बोर्ड ऑफ् सेकेण्डरी एजूकेशन की चिकित्सीय परीक्षा को दृष्टिगत रखते हुए लिखी गयी है। पुस्तक में दालों, शाकसब्जियों, धान्य, फलों, खाद्य तेल प्रदाय पौधों, शर्करा प्रदाय पौधों, मसाले तथा सुगन्धियाँ, ओषधीय पौधों, स्फूर्तिदायक पेय, नशीले पदार्थों तथा रेशा प्रदाय पौधों से सम्बन्धित आर्थिक वनस्पति विज्ञान की जानकारी दी गयी है।

पृष्ठ 92 पर "अधिक जानकारी के लिए" शीर्षक के अन्तर्गत अंग्रेज़ी की 10 पुस्तकों का उल्लेख है पर हिन्दी में प्रकाशित बहुचर्चित एवं उपयोगी सन्दर्भ ग्रन्थ "भारत की सम्पदा" का उल्लेख न होना खटकता है।

यद्यपि विषय वस्तु की प्रस्तुति में कोई नयापन और मुद्रण आकर्षण नहीं बन पाया है तथापि हिन्दी में स्नातक स्तर पर विज्ञान विषय में पुस्तक लेखन का पुनीत कार्य करने के लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही साधुवाद के पात्र हैं।

(2) स्नातक वनस्पति विज्ञान

सूक्ष्मजैविकी एवं पादप रोग विज्ञान (प्रतिष्ठा सैद्धान्तिक द्वितीय पत्र), लेखक—रघुनाथ प्रसाद, सरस्वती प्रकाशन, विण्ढमगंज, सोनभद्र (उ० प्र०) 232221; मूल्य-30 रु०, 1989-90 संस्करण।

पुस्तक बिहार के बी० एस-सी० (प्रथम वर्ष) त्रिवर्षीय पाठयक्रम के छात्रों की आवश्यकता को देखकर लिखी गयी है। सूक्ष्य जैविकी की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि, कल्चर माध्यम का निर्माण, सूक्ष्मजीवों के पृथक्ककरण की तकनीक, जीवाणु कोशिका की आधुनिक अवधारणा, तम्बाकू मोज़ैक विषाणु, जीवाणु भोजी, नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सूक्ष्मजीवों की भूमिका, जीवाणु तथा कवक का औद्योगिक महत्व, कृषि उत्पादों के भण्डारण में सूक्ष्म जैविक विघटन, पादप रोगों में टॉक्सिन के महत्व, पादप रोगों में विकरों का महत्व,

तथा बिहार के कुछ प्रमुख पादप रोग, लक्षण तथा उनके रोकथाम के उपायों के सम्बन्ध में स्नातक स्तरीय जानकारी पुस्तक में उपलब्ध करायी गयी है।

पुस्तक में जो बात खटकती है वह है कोष्ठकों में आवश्यकता से अधिक अंग्रेज़ी शब्दों का दिया जाना उदाहरणस्वरूप प्रथम पृष्ठ पर नंगी आँख (**unaided eye, Naked eye**), पृष्ठ 15 पर टैबलेट (**tablet**) आदि। अच्छा होता यदि केवल पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्दों के ही अंग्रेज़ी रूपान्तर को कोष्ठकों में दिया जाता। चित्रों के निरूपण में और अधिक सावधानी और स्वच्छता अपेक्षित है।

—**डॉ॰ सुप्रभात मुकर्जी**
संयुक्त मंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

यह दशक भी याद रहेगा

विज्ञान समाचार | हरीश अग्रवाल

[सौर मंडल की नयी खोजें, नया सुपरनोवा तारा, अंतरिक्ष और अंटार्कटिका में भारत के क़दम, दुनिया पर एड्स का हमला और नस प्राण रक्षक टीके, रोबोट आपकी सेवा में—यह था, गुज़रा हुआ विज्ञान-दशक, जिसकी झलक प्रस्तुत कर रहे हैं जाने-माने विज्ञान लेखक **हरीश अग्रवाल**। —संपादक]

अस्सी का दशक विज्ञान के लिए याद रखा जाएगा। अब हम नब्बे के दशक में आ गए और दस साल बाद इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर जाएँगे। तो विज्ञान हमारा सबका जीवन किस तरह ढाल रहा है, यह तो ये दोनों दशक तय करेंगे। सब आशा करते हैं कि विज्ञान के किसी आविष्कार का दुरुपयोग नहीं होगा और दुनिया कायम रहेगी।

एक नज़र गुज़रे दशक की प्रगति पर डालते हैं। यह तो मानना पड़ेगा कि जहाँ सफलताएँ मिलीं, वहाँ असफलताएँ भी झेलनी पड़ीं। मानना पड़ेगा कि कंप्यूटर सारे दशक दुनिया पर छाया रहा, जिसका असर, भारत पर भी रहा। दशक के मध्य में 'चेलेंजर दुर्घटना' से अमेरिकी अंतरिक्ष कार्यक्रम पर बहुत बुरा असर पड़ा, लेकिन महीने की देरी के बाद कार्यक्रम फिर शुरू हो गया। 1986 में रूसी परमाणु रिएक्टर (चेरनोबिल) दुर्घटना से सारे संसार के परमाणु कार्यक्रमों पर असर पड़ा। सबने इस बात पर पुनर्विचार किया कि परमाणु टेक्नोलॉजी के क्या-क्या ख़तरे हैं, और किस तरह सुरक्षित परमाणु रिएक्टर बनाए जा सकते हैं।

भूकम्पों ने भी बहुत विनाश किया, लेकिन इसकी भविष्यवाणी संभव नहीं हुई। अल्जीरिया, आर्मीनिया तथा सान फ्रांसिस्को में भीषण भूकंप आए। हज़ारों लोग मरे, अनेक नगर के नगर ध्वस्त हो गए।

दशक ने तारों की दुनिया में आदमी के पहले क़दम देखे जब पायनीयर 90 अंतरिक्ष-यान जून 1983 में सौरमंडल से दूर जाने में पहला मानव-निर्मित यान बाना। पृथ्वी से जाने वाले तीन और मानवरहित यान इसके साथी बन गए। इसी दशक में इन्हीं यानों से सौरमंडल की खोज का पहला चरण पूरा हुआ। वायजर अंतरिक्ष यान से सबसे पहले 1981 में शनि ग्रह के रोमांचकारी चित्र मिले। इसके बाद 1986 में यूरेनस तथा 1989 में नेप्चून व उसके चन्द्रमा ट्राइटन के चित्र मिले।

ब्रह्माण्ड के अनेक रहस्य खुले। फिर भी यह रहस्यमय बना रहा। 1987 में एक सुपरनोवा तारे का पता चला, जो सैकड़ों वर्षों में पहली बार की बहुत बड़ी ब्रह्माण्डीय घटना थी। हमारी आकाश गंगाएँ कैसे बनती हैं, अभी तक यह एक बड़ा रहस्य है। लेकिन दशक के अंत में आकाश गंगाओं की एक विशाल दीवार का पता चला, जिससे आकाश गंगा निर्माण के

40 गुलमुहर पार्क, नई दिल्ली–110049 फोन : 669820

वर्तमान सिद्धान्तों को गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा।

भारतीय वैज्ञानिकों को दशक के शुरू में प्रथम स्वदेशी उपग्रह प्रक्षेपण वाहन एस० एल० वी०–3 छोड़ने में सफलता मिली। 1981 में अंटार्कटिका को प्रथम भारतीय अभियान दल गया। भारत का प्रथम अंतरिक्ष यात्री 1984 में सोवियत यान में अंतरिक्ष पर गया। भारत ने दशक के उत्तरार्द्ध में संसार के प्रक्षेपास्त्र क्लब ने शामिल होने में सफलता प्राप्त की। उसनें "त्रिशूल", "पृथ्वी" तथा "अग्नि" प्रक्षेपास्त्र छोड़े, जो सब सफल रहे। ये सब स्वदेशी टेक्नोलॉजी से बनाए गए।

दूरसंचार, कृत्रिम बुद्धि तथा जैवतकनीकी में भी भारत को अद्वितीय सफलता मिली। भारत में प्रथम स्वदेशी टेलीफोन एक्सचेंज बना। जैवतकनीकी अनुसंधान देश में 1980 में शुरू हुआ तथा दशक समाप्त होने से पहली इसमें उपलब्धियाँ शुरू हो गईं। भारतीय अनुसंधान केन्द्रों में रोग-निदान किट, टीके तथा नई आनुवंशिक फिंगरप्रिंट विधि विकसित की गई।

उत्तरार्द्ध में भारत को अंतरिक्ष कार्यक्रम में धक्का लगा। एक साथ 1987 तथा 1988 में संवंधित उपग्रह प्रक्षेपण वाहन में असफलता हाथ लगी। 19.9 में दुर्घटना के कारण इनसेट एक-डी संचार उपग्रह को क्षति पहुँची तथा इनसेट एक-सी का एक यंत्र खराब हो गया।

एड्स का आतंक और अतिचालकता

दशक में घातक रोग एड्स ने सारे संसार को डस लिया। इसकी शुरूआत 1983 में हुई और महाद्वीप इसके शिकार हो गए। इससे तीन लाख लोग मर गए और एक करोड़ संक्रमित हो गए। वैज्ञानिकों ने वचन लिया कि वे इस दशक में एड्स विषाणु मारने के लिए टीका बनाने में सफलता प्राप्त कर लेंगे। संसार की कई प्रयोगशालाओं में अनुसंधान कार्य चल रहा है।

अतिचालकता बिजली के प्रवाह का एक ऐसा गुण है, जिसमें प्रवाह के दौरान बिजली नष्ट नहीं होती। लेकिन यह विशेष प्रकार की विद्युत् संवाहक सामग्री के इस्तेमाल से ही संभव होता है। 1986 में इसी प्रकार की नई सामग्री का आविष्कार हुआ। इसके बाद संसार की प्रयोगशालाओं में कमरे के तापमान पर अतिचालक सामग्री बनाने के प्रयत्न शुरू हो गए। यह खोज अभी जारी है।

"डिस्कवर" पत्रिका ने एक साल पहले एक विशेषांक निकाला था—**'सन् 2001'**। हमारा जीवन वास्तव में कैसा होगा? यही वर्ष होगा जब इक्कीसवीं सदी शुरू होगी, लेकिन समारोह सन् 2000 में ही शुरू होने लगेंगे। पत्रिका ने बताया था कि हमने अब तक क्या पाया है? हमारी उपलब्धियों में अस्सी के दशक की अहम भूमिका रही। घरों में ऐसे रोबट होंगे जो कार साफ़ करेंगे और बगिया में पानी देंगे। प्लास्टिक के घर होंगे, जिनमें एक मास्टर कंट्रोल पेनल होगा जो स्टीरिओ से लेकर सुरक्षा प्रणाली तक पर नियंत्रण रखेगा।

पत्रिका के प्रधान सम्पादक ने विचार प्रकट किया था कि उन्होंने ऐसा दशक देखा है जब टेक्नोलॉजी पर आदमी का नियंत्रण बढ़ना शुरू हुआ। उन्होंने कहा, "यदि हमने इस दुनिया को बनाए रखा, वनों को सुरक्षित रखा, जल संरक्षण बनाए रखा, तो भविष्य हमारा अभिनन्दन करेगा।" □□

विज्ञान वक्तव्य

पाठक स्वजन !

मार्च मास भारतीय नव वर्ष का अग्रदूत होने के साथ ही साथ 'विज्ञान परिषद्' के जन्म दिवस (10 मार्च) का वाहक भी है। साथ ही इसी महीने से 'विज्ञान' अपनी निरन्तर अनथक जीवन-यात्रा के 75 वर्ष भी पूरे करने जा रहा है। ऐसे सुखद संयोग के अवसर पर हम उपस्थित हैं अपने वायदे के अनुरूप इस अंक में आपके लिए कुछ विशिष्ट सामग्री लेकर। जी हाँ, हमारा आशय लब्धप्रतिष्ठ विज्ञान लेखक **श्री गुणाकर मुले** के अद्यतन साक्षात्कार से है। इसमें नवीनता तो है ही 'विज्ञान' के लिए एक नई बिधा के रूप में भी इसका महत्व है। आशा है आपकी पाठकीय क्षुधा को संतुष्ट करेगा।

असंतोष केवल एक बात का है कि हम कतिपय अपरिहार्य कारणों से भारतीय विज्ञान कांग्रेस के 77वें अधिवेशन की पूर्व घोषित विस्तृत रिपोर्ट नहीं प्रकाशित कर पा रहे हैं। तथापि समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों पर प्रकाशित सामग्री से संभवतः उस कमी की आपूर्ति हो सके।

अन्दर के पृष्ठों पर आप पायेंगे विवादास्पद **टेहरी बाँध** से सम्बन्धित एक विचारोत्तेजक लेख जो समस्या के सभी आयामों को आपके सामने प्रस्तुत कर सकेगा। टेहरी बाँध की निर्माण योजना अपने जन्मकाल 1969 से ही **हाँ-नहीं** और **आरोपों-प्रत्यारोपों** की दुविधा में जकड़ी रही है। नई सरकार द्वारा सोवियत विशेषज्ञों की सम्मति से रुके हुए निर्माणकार्य को पुनः हरी झंडी दिखा देने के निर्णय ने प्रसिद्ध पर्यावरण आन्दोलकारी **श्री सुन्दर लाल बहुगुणा** के आक्रोश को फिर जगा दिया है। श्री बहुगुणा बाँध के निर्माण से बेहद क्षुब्ध हैं। वैसे श्री बहुगुणा के इस बाँध विरोधी आन्दोलन पर प्रश्नचिह्न लगाये जा रहे हैं और इस पर इसके राजनीतिप्रेरित होने का आरोप है, पर उनकी दृष्टि में इससे पर्यावरण (भूक्षरण और भूस्खलन आदि द्वारा) को तो हानि पहुँचेगी ही, स्वयं बाँध के उम्र के लिए 40% तक घट जाने की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता। यह तो सर्वविदित है कि बाँध भूकम्प सक्रिय क्षेत्र में है। अंटार्कटिका अभियान दल के भूतपूर्व प्रमुख, कोचीन विश्वविद्यालय के उपकुलपति और भूकम्प विशेषज्ञ **श्री हर्ष कुमार गुप्ता** भी वर्तमान योजना के अनुरूप बाँध-निर्माण के विरुद्ध हैं। पर भारतीय मानस सम्भवतः स्वदेशी को नकार कर विदेशी को सम्मान देने में गर्व का अनुभव करता है। तभी तो सोवियत विशेषज्ञों द्वारा बाँध योजना को सहमति दिये जाने को सहर्ष स्वीकार कर लिया गया और भारतीय विशेषज्ञों की सम्मति उपेक्षणीय बनी रही। सोवियत वैज्ञानिकों का मत है कि भूकम्प से बचाव के लिए बाँध-निर्माण में जिन सुरक्षा साधनों का प्रयोग किया जाने वाला है वह उस क्षेत्र के भीषणतम भूकम्प के लिए पर्याप्त है। पर क्या सचमुच ? पर्याप्त सुरक्षा सावधानियाँ तो चेर्नोबिल में भी बरती ही गई होंगी।

और एक दूसरा महत्वपूर्ण मानवीय प्रश्न वहाँ से विस्थापित, अपनी जड़ से कटे, अपनी भूमि से उखड़े लोगों का ? क्या उसे भी अनदेखा किया जा सकता है ? तो टेहरी बाँध के प्रश्न पर एक सुरक्षित पर्यावरण और भविष्य को ध्यान में रखते हुए आप सभी पाठकों की सम्मतियों और प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा में अगले अंक तक के लिए विदा।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1990

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख को 500 रु० का पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से संबन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।

(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।

(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।

(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।

(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1990 से दिसम्बर 1990 माह के बीच प्रकाशित हो।

(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।

(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता—1990

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद् एवं **राजभाषा कार्यान्वयन समिति** (भा० प० अ० केन्द्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियाँ आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियाँ (लगभग 3000 शब्द) वैज्ञानिक कार्यालय को भेजें। चित्रों को सफ़ेद काग़ज़ पर काली रोशनाई से बनाएँ।

पुरस्कार : प्रथम रु० 750; द्वितीय रु० 500; तृतीय रु० 250

इसके अतिरिक्त पाँच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिन्दी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो विशेष पुरस्कार प्रत्येक रु० 150 के दिये जायेंगे। अतएव अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि : 31 जुलाई 1990

विशेष : पुरस्कृत रचनाएँ **वैज्ञानिक** की संपत्ति होगी। **वैज्ञानिक** से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

"वैज्ञानिक" हेतु रचनाएँ भी आमन्त्रित हैं। सभी प्रकाशित रचनाओं पर पारिश्रमिक दिया जाता है।

पत्र व्यवहार का पता :

डॉ० शिव प्रकाश गर्ग

व्यवस्थापक, "वैज्ञानिक", भौतिकी धातुकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई–400085

फार्म 4/ FORM IV

[नियम 8 देखिये (See Rule 8)]

1. प्रकाशन स्थान	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद–211002
2. प्रकाशन अवधि	मासिक, प्रत्येक मास का 15 दिनांक
3. मुद्रक का नाम	श्री सरयू प्रसाद पाण्डेय
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हाँ
पता	नागरी प्रेस, अलोपी बाग, इलाहाबाद
4. प्रकाशक का नाम	डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हाँ
पता	प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
5. सम्पादक का नाम	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हाँ
पता	वनस्पति विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों ।	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद–211002

मैं, हनुमान प्रसाद तिवारी, एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं ।

दिनाक 1-3-90

हनुमान प्रसाद तिवारी
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

कचरे से कंचन

डॉ शिवगोपाल मिश्र

कचरा, छीजन, अवशेष, अपशिष्ट या कूड़ा-करकट कहलाने वाली और प्रायः निकृष्ट लगने वाली वस्तु वह **साधन** (resource) है जो फिलहाल ग़लत स्थान पर जा पड़ी है, किन्तु जिसे उपयोगी बनाया जा सकता है। यह कचरा कृषि-कार्यों से प्राप्त हो सकता है, यह वनोपज के रूप में मिल सकता है, यह पशुओं के मल-मूत्र से उत्पन्न हो सकता है और बड़े-बड़े नगरों में यह कूड़ा-करकट तथा मलमूत्र के रूप में अथवा उद्योगों से निकले व्यर्थ पदार्थों के रूप में पाया जा सकता है। यह ठोस, तरल तथा गैस तीनों रूपों में हो सकता है।

प्रायः कचरे को घृणित एवं अस्वास्थ्यकर समझा जाता रहा है, किन्तु अब इस विचारधारा में परिवर्तन आ रहा है और देश के कर्णधार इसे "नक़दी माल", "कल का कच्चा माल" या "भावी सम्पत्ति" कहने लगे हैं।

व्यर्थ की वस्तुओं को एक बार प्रयोग में लाने के बाद फेंक देना बर्बादी का सूचक हो सकता है, अमीरी का नहीं। क्योंकि जिस गति से प्राकृतिक साधनों का ह्रास हो रहा है और माँग बढ़ती जा रही है उसे देखते हुए इस कचरे के उपयोग का विचार वैज्ञानिकों को काफी पहले सूझा था। इसे वे **पुनर्चक्रण (recycling)** कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि एक टन रद्दी काग़ज़ का फिर से उपयोग किया जाय तो इससे एक टन लकड़ी की बचत होगी, जिसका अर्थ होगा बारह वृक्षों को काटने से बचा लेना। पुनर्चक्रण की सबसे बड़ी विशेषता है ऊर्जा की बचत और प्राकृतिक साम्य का संरक्षण।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड आदि यूरोपीय देशों को जब खाने-पीने की वस्तुओं तथा चारे की आपूर्ति बन्द हो गई तो इन राष्ट्रों ने 4 वर्षों के भीतर अपने वैज्ञानिकों एवं नागरिकों के सहयोग से सभी प्रकार के व्यर्थ पदार्थों या कचरों का सदुपयोग ढूंढ़ निकाला। यहाँ तक कि स्कूली बच्चों तथा अध्यापकों ने भी इस अभियान में हाथ बँटाया। इसीलिए किसी भी देश की समृद्धि का मापदण्ड उसके अपने साधनों को चुका देने में नहीं अपितु उन साधनों के मितव्ययी उपयोग में है। कचरे का पुनर्चक्रण किसी फैशन या दिखावे के लिए नहीं अपितु राष्ट्रीय नीति का अंग होना चाहिए।

अनुमान है कि हमारे देश का हर नागरिक प्रतिदिन औसतन 500-800 ग्राम कचरा निकालता है। इस तरह देश में प्रतिवर्ष कुल 204 मिलियन टन कचरा निकलता है। इस कचरे में पशुओं से प्राप्त होने वाले गोबर तथा मूत्र सम्मिलित नहीं जिनकी मात्रा इस कचरे से पाँच गुनी अधिक है। यूरोप तथा अमेरिका जैसे समृद्ध देशों में प्रतिव्यक्ति निकलने वाला कचरा 2-3 किलोग्राम है अर्थात् हमारे देश की तुलना में प्रति व्यक्ति 4 गुना अधिक है।

हमारे देश में कचरे के जितने साधन हैं उनमें कृषि से निकलने वाले व्यर्थ पदार्थों की मात्रा अत्यधिक है। इन्हें 'कृषि अपशिष्ट' कहा जाता है। कृषि अपशिष्टों के अन्तर्गत आलू तथा शकरकंद की लतरें, खरपतवार, भूसा, सनई, तथा जूट के डंठल, फसलों की जड़ें, सड़ा अन्न, मक्के की गिल्ली, फलों तथा तरकारियों के अवशेष तथा विविध कुटीर उद्योगों से निकलने वाला रद्दी माल—यथा गुड़ उद्योग से निकली खोई, धान कूटने से प्राप्त धान की भूसी, लकड़ी चिराई से प्राप्त बुरादा, तेलघानी से निकली खलियाँ, आम की गुठलियाँ, नारियल की जटा या फिर बबूल तथा खैर की छाल अथवा ताल-तलैयों में उगी जलकुम्भी या सिंघाड़े की लतरें, काइयाँ आदि उल्लेखनीय अपशिष्ट हैं।

प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद—211002

एक अनुमान के अनुसार 1965-66 में कृषि से प्रति हेक्टेयर $2\frac{1}{4}$ (सवा दो) टन कचरा निकलता था जो 1979-80 में बढ़कर $4\frac{3}{4}$ (पौने पाँच) टन प्रति हेक्टेयर हो गया। वर्तमान समय में कुल कृषि अपशिष्ट की मात्रा 283 मिलियन टन आँकी गई है, जो 2000 ई० में बढ़कर 336 मिलियन टन हो जायेगी। इस तरह इन अपशिष्टों की मात्रा में 20 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि सम्भावित है। स्पष्ट है कि इतनी विशाल मात्रा का सदुपयोग किया जाना है।

इस समय कृषीय कचरे के चार मुख्य उपयोग हैं—1. चारे के रूप में, 2. कम्पोस्ट बनाने में, 3. ऊर्जा उत्पन्न करने में तथा 4. रासायनिक पदार्थ तैयार करने में। स्मरण रहे इस कचरे के सदुपयोग के पूर्व इसकी प्रकृति की सही-सही जानकारी उपलब्ध होनी चाहिए। कचरे का अधिक अंश वानस्पतिक अवशेष के रूप में होता है जिसमें लिग्नोसेल्यूलोस नामक रासायनिक अंश रहता है। यह अंश सीधे आहार, ईंधन तथा चारे के अतिरिक्त विविध रासायनिक उत्पादों–वसा, एल्कोहॉल आदि में परिणित किया जा सकता है। किन्तु इसके लिए सूक्ष्म जैविकी, रसायन विज्ञान, एंज़ाइम टेक्नोलॉजी, कृषि तथा रासायनिक इंजीनियरी, सामाजिकी एवं अर्थशास्त्र को एकजुट होकर काम करना होता है।

कृषीय कचरे या अन्य किसी कचरे के उपयोगों पर बल दिये जाने के अनेक कारण हैं। यथा—1. साधन का संरक्षण, 2. पर्यावरण की सुरक्षा, 3. रोज़गार की उपलब्धि, 4. आर्थिक विकास में सहयोग तथा 5. जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति।

यदि कचरे को यों ही पड़ा रहने दिया जाय तो यह सड़ेगा, पर्यावरण प्रदूषण बढ़ेगा, रोग फैलेंगे और कचरे के तमाम तत्व घुल-घुल कर मिट्टी में संचित होंगे जिन्हें पौधे ग्रहण करेंगे, जिनसे वे पशुओं तथा मनुष्यों में पहुँचेंगे। इसलिए पर्यावरण की स्वच्छता के लिए कचरे का निपटान आवश्यक है। यह निपटान सामान्य विधियों से अथवा उच्च प्राविधिक तरीकों से सम्भव है।

किन्तु कचरे की प्रभूत मात्रा को देखते हुए उसका संचय करने एवं उसको संसाधित करके उपयोगी उत्पादों का रूप देने के लिए हमें व्यक्तियों का समूह या कर्मीगण चाहिए। स्पष्ट है कि जितने ही अधिक व्यक्ति इस कार्य में लगेंगे उतनी ही जल्दी यह कार्य सम्पन्न होगा और ये कर्मी जितना ही अधिक प्रशिक्षित होंगे उतनी दक्षतापूर्वक यह कार्य पूरा हो सकेगा। इस तरह कृषीय कचरे से रोज़गार उत्पन्न हो सकेगा और हमारे नवयुवकों के लिए अभूतपूर्व अवसर प्राप्त होगा कि वे ग्रामीण क्षेत्रों में अपना योगदान दें।

यह संचय या संग्रह कार्य खर्चीला हो सकता है, लेकिन कचरे के अल्प या नगण्य कीमत में उपलब्ध होने के कारण स्थानीय साझेदारी तथा सहयोग से इसे सहज ही सम्पन्न किया जा सकता है। सारे कृषीय अपशिष्टों को नगरों में ले जाकर फिर उसका उपचार या संसाधन न तो आर्थिक दृष्टि से लाभकर होगा, न ही किसी स्वस्थ उद्योग को जन्म दे सकेगा। इसलिए कृषि अपशिष्ट का उपयोग गाँवों में ही होना चाहिए। गाँवों में ही संसाधन की इकाइयाँ स्थापित की जानी चाहिए और ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षित करके इन इकाइयों का भार उन्हें ही सौंप दिया जाना चाहिए।

दुर्भाग्यवश ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी विज्ञान का सही ढंग से प्रवेश नहीं हो पाया है। यदि किसी ग्रामीण से कृषीय अपशिष्ट से आहार बनाये जाने की बात की जाय तो उसे आश्चर्य होगा और यदि उसे ऐसा आहार काम में लाने के लिए कहा जाय तो वह इसके लिए तैयार भी नहीं होगा। वह तो ईंधन, चारा तथा खाद इन तीनों रूपों में कृषीय अपशिष्टों का उपयोग अपने ढंग से करता रहा है इसलिए उसे इस दिशा में नवीनतम उपलब्धियों से परिचित कराये जाने की आवश्यकता है। साथ ही कृषीय अपशिष्टों से बहुउपयोगी रसायन भी बनाये जाने की आवश्यकता है।

यद्यपि ज्वार, बाजरा तथा मक्के के डंठलों को कुट्टी बनाकर पशुओं को चारे के रूप में खिलाया जाता है, किन्तु भविष्य में कृषि के मशीनीकरण के साथ ही पशुओं की संख्या में कमी आवेगी। अतः फसलों के इन डण्ठलों का उपयोग चारे के रूप में नहीं हो पावेगा। तब वे व्यर्थ पड़े रह सकते हैं। ऐसी दशा में इनका कोई श्रेष्ठ उपयोग होना चाहिए। विदेशों में ऐसा किया जा चुका है। उदाहरणार्थ, अमेरिका में मक्का के डण्ठलों को सुखाकर ईंधन के रूप में कोयले के साथ जलाया जाता है। चूँकि मक्का के डण्ठलों में गंधक की मात्रा कम होती है इसलिए इस प्रकार के ईंधन से पर्यावरण प्रदूषण कम होगा।

हमारे देश में कृषीय कचरे के सदुपयोग का पहला प्रयास 1924 ई० में **होवर्ड** तथा **वैड** नामक दो वैज्ञानिकों ने किया था। उन्होंने कपास के डण्ठलों, खलिहानों से निकले सभी तरह के अपशिष्टों एवं चीथड़ों को गड्ढों में भर कर कम्पोस्ट तैयार की। यह विधि 'इन्दौर प्रणाली' के नाम से विख्यात है। इस प्रणाली की **महात्मा गाँधी** तक ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

इसी तरह इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अन्तर्गत 'शीलाधर मृदा शोध संस्थान' के भूतपूर्व निदेशक एवं सुप्रसिद्ध रसायनविज्ञानी स्वर्गीय **डॉ० नीलरत्न धर** ने 1935 ई० से ही लगातार इस बात पर बल दिया कि सभी प्रकार के कृषि अपशिष्टों को यदि खेतों में डालकर जोत दिया जाय तो मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है। इस तरह गरीब किसानों के लिए कृषीय अपशिष्ट उत्तम कार्बनिक खाद का काम दे सकते हैं।

सुप्रसिद्ध ग्रामविज्ञानी **चन्द्रशेखर लोहुमी** ने मक्के की गिल्ली से कोयला तथा राख बनाने की विधि निकाली है, जिसे उन्होंने पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय की सहायता से अत्यन्त उपयोगी प्रदर्शित किया है। राख का उपयोग फ़सलों तथा तरकारियों के कीटों का नाश करने के लिए किया जा सकता है।

कुछ रसायनशालाओं एवं कुछ संस्थानों ने कृषीय अपशिष्टों से कुछ उपयोगी खाद्य पदार्थ, रसायन तथा व्यापारिक वस्तुएँ तैयार करने में सफलता प्राप्त की है। उदाहरणार्थ फ़सलों की हरी पत्तियों से प्रोटीन निकालने के प्रयास हुए हैं। इसी तरह कपास के डण्ठलों से सेल्यूलोस प्राप्त किया जाता है। यही नहीं, छाल निकालने के बाद डण्ठलों से काठ-कोयला भी बनाया जा सकता है।

नारियल के खोपड़े या धान की भूसी से 'ऐक्टिवेटेड कार्बन' तैयार किया जाता है, जिसका उपयोग बिजली उद्योग में होता है। धान की भूसी, जो अभी तक व्यर्थ जाती थी, को जला कर सोडियम सिलिकेट तथा ऐक्टीवेटेड कार्बन तैयार किया जाता है। यही नहीं, 'फरफ्यूरल' नामक उत्पाद भी प्राप्त किया जाता है, जिसका पेट्रोलियम उद्योग में उपयोग होता है। सोडियम सिलिकेट साबुनों के बनाने में प्रयुक्त होता है। अनुमान है कि हमारे देश में 15 मिलियन टन धान की भूसी प्रति वर्ष निकलती है। इसका उपयोग इन रसायनों के लिये अल्प लागत पर किया जा सकता है। लकड़ी के बुरादे तथा वृक्षों की थैलियों को क्षार से उपचारित करके पशु-आहार तैयार किया जाता है। बुरादे, पुआल तथा जलकुम्भी से एल्कोहॉल बनाया जाता है। टमाटर के बीज, अंगूर के बीज, तरबूज़ के बीज —इन सभी से तेल निकाला जाता है, जिसका उपयोग जलाने तथा साबुन बनाने में किया जाता है।

आम की गुठलियाँ ग़रीबों का भोजन हैं और पशु भी उन्हें खाते हैं, किन्तु अब विशेष उपचार द्वारा इनसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा विलग किया जाता है। 100 पौंड गुठलियों से उतना ही प्रोटीन मिल सकता है जितना 80 पौंड जौ से और उतना ही स्टार्च निकलेगा जितना 86 पौंड जौ में होता है।

यह अत्यन्त विचित्र बात लगती है कि एक ओर जहाँ जापान, जर्मनी, अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्रों में कचरों के उपयोग की दिशा में बहुत पहले से ध्यान दिया जाता रहा है वहीं भारत जैसे विकासशील देश में कचरे के प्रति अभी संकल्प करना शेष है। विकासशील देशों को तो चाहिए कि कचरे को किसी भी दशा में व्यर्थ न जाने दें। यह एक महत्त्वपूर्ण कच्चा माल है—यह कंचन है-असली अर्थ में सोना। इसका संरक्षण एवं सदुपयोग हमारा राष्ट्रीय दायित्व है। □□

(आल इंडिया रेडियो इलाहाबाद के सौजन्य से)

कुष्ठरोग कलंक नहीं

डॉ० अंजू शर्मा

पात्र : माँ, बेटी रूपा तथा डॉक्टर लीला।

दृश्य : घर का।

माँ—रूपा, ओ रूपा बेटी, कहाँ हो ? देखो तो तुम्हारे लिए एक खुशखबरी है। तुम्हारी सगाई की तिथि निश्चित हो गई है।

रूपा—(अन्दर से आते हुए) क्या है माँ। इतना शोर क्यों कर रही हो ? इसमें इतना खुश होने की क्या बात है ?

माँ—रूपा, क्या बात है ? तबियत तो ठीक है न तुम्हारी ! तुम्हें इतना अच्छा घर मिल रहा है, यह क्या खुश होने की बात नहीं है ?

रूपा—माँ, आखिर इतनी जल्दी क्या है ? क्या इस बात को कुछ दिन टाला नहीं जा सकता ?

माँ—क्या कह रही हो बेटी ! ऐसा कहने का क्या कारण है ? क्या तुम्हें यह रिश्ता पसन्द नहीं ?

रूपा—नहीं माँ, आप गलत समझ रही हैं, परन्तु मैं अभी विवाह के पक्ष में नहीं हूँ।

माँ—अरे, तुम पढ़ी-लिखी लड़कियों की बुद्धि का कोई ठिकाना नहीं। जरा मुझे भी तो पता चले कि विवाह क्यों नहीं करना चाहती ?

रूपा—माँ, आप बात को कहाँ से कहाँ ले जाती हो। अच्छा मैं चलती हूँ। ऑफिस जाने के लिए देर हो रही है।

दृश्य—शाम का समय। रूपा घर में प्रवेश करती है।

माँ—रूपा, क्या बात है ? बड़ी थकी-थकी और परेशान लग रही है ? क्या ऑफिस में कुछ बात हुई है ?

रूपा—नहीं माँ, कुछ नहीं; ठीक है। (कुछ रुक कर) माँ, मैं सचमुच विवाह नहीं करूँगी। कारण मत पूछना।

माँ—कारण तो बताना ही होगा। ऐसी नासमझी की बातें क्या बिना किसी कारण के की जा सकती हैं ?

रूपा—माँ, अगर आप जानना ही चाहती हैं तो सुनिए, मुझे कुष्ठरोग हो गया है।

माँ—(कानों पर हाथ रखते हुए) नहीं, नहीं ! ये क्या अनाप-शनाप बक रही है ? कुष्ठरोग ? कभी नहीं। कुष्ठरोग तो पाप-कर्मों का फल होता है। भगवान का अभिशाप होता है। यह तुम्हें कैसे और क्यों हो सकता है ?

रूपा—माँ, मैं जानती थी कि आपको दुःख होगा। इसीलिए बताना नहीं चाहती थी, पर आपने मजबूर कर दिया। देखिए यह सफ़ेद दाग़ (बाँह पर सफ़ेद गोल चकत्ता दिखाती है)।

माँ—रूपा, यह दाग़ कब से है ? तुमने मुझे पहले क्यों नहीं दिखाया ?

रूपा—माँ, मैंने भी यह दाग़ कुछ सप्ताह पहले ही देखा है। डर लगता है कि अगर किसी ने देख लिया तो मेरा तो सामाजिक बहिष्कार ही हो जाएगा। विवाह को भी इसीलिए मना कर रही हूँ। कौन करेगा कुष्ठरोग ग्रस्त लड़की से शादी। आज नहीं तो कल सभी को पता लग जाएगा। माँ, मैं यह सब नहीं सह सकती।

माँ—(कुछ गम्भीर होकर) रूपा, ऐसे हिम्मत हारने से क्या होगा ? यह दाग़ कुछ और भी तो हो सकता है। चलो हम किसी डॉक्टर को दिखाते हैं।

रूपा—नहीं माँ, यह कुष्ठरोग ही है और डॉक्टर इस सत्य को क्या बदल सकता है ?

माँ—नहीं रूपा, डॉक्टर की सलाह जरूरी है। चलो हमारे पड़ोस में डॉ० लीला रहती हैं, बहुत

अनुसंधान अधिकारी, प्रकाशन एवं सूचना प्रसार, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली—110029

अच्छी हैं, और सुना है होशियार भी हैं। चलो उनकी सलाह लेते हैं।

माँ और रूपा डॉक्टर लीला के क्लीनिक की ओर प्रस्थान करती हैं।

दृश्य—डॉ० लीला का क्लीनिक।

माँ—नमस्कार डॉक्टर साहब !

डॉ० लीला—आइए माँ जी बैठिए, कहिए कैसे आना हुआ ?

माँ—डॉक्टर, यह मेरी बेटी रूपा है।

रूपा—नमस्कार डॉक्टर।

डॉ० लीला—आओ रूपा, बैठो।

माँ—डॉ० साहब, आपसे एक सलाह लेनी थी।

डॉ० लीला—हाँ हाँ, बोलिए !

माँ—रूपा ने कुछ सप्ताह पहले अपनी बाँह पर सफ़ेद दाग़ देखा है। तब से यह काफ़ी डर गई है। ये सोच कर कि इसे कुष्ठरोग हो गया है, इसने किसी को नहीं बताया। अब इसके विवाह की बात चल रही है और यह इन्कार करती है। कहती है कि ऐसी स्थिति में विवाह सम्भव नहीं।

डॉ० लीला—रूपा, जरा अपनी बाँह दिखाओ। (रूपा बाँह पर सफ़ेद दाग़ दिखाती है)

डॉ० लीला—क्या इस दाग़ पर स्पर्श का अहसास होता है ?

रूपा—नहीं, बिल्कुल नहीं।

डॉ० लीला—अच्छा यह बताओ कि ऐसे दाग़ कहीं और भी हैं ?

रूपा—जी नहीं, बस यही एक है।

डॉ० लीला—यह तुमने अच्छा किया जो मेरे पास आ गई। कुष्ठरोग का इलाज अब सम्भव है। दवाओं द्वारा इसे पूरी तौर से ठीक किया जा सकता है।

रूपा—क्या सचमुच डॉक्टर ? क्या मैं बिल्कुल ठीक हो सकती हूँ ?

डॉ० लीला—हाँ, हाँ, क्यों नहीं ?

माँ—क्या कुष्ठरोग 'भगवान' द्वारा दी गई सज़ा नहीं ?

डॉ० लीला—यह आप क्या कहती हैं माँ जी ! कुष्ठरोग किसी भी अन्य रोग की तरह होने वाला एक रोग है और इसे फैलाने वाले जीवाणु को **माइकोबैक्टीरियम लेप्री** कहते हैं।

रूपा—क्या यह रोग सारे संसार में होता है ?

डॉ० लीला—हाँ, वैसे तो इस रोग के रोगी सम्पूर्ण विश्व में पाये गये हैं, परन्तु एशिया तथा अफ्रीका में इसके रोगी अधिक हैं। यूरोप और अमेरिका में इस रोग को लगभग समाप्त कर दिया गया है, पर हमारे देश में कुष्ठरोगियों की संख्या अभी भी बहुत अधिक है। तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि हमारे देश में प्रत्येक एक हज़ार व्यक्तियों में लगभग 4-5 कुष्ठरोगी पाये जाते हैं।

रूपा—यह तो काफी अधिक संख्या है।

डॉ० लीला—हाँ, यही नहीं बल्कि भारत के कुछ राज्यों जैसे तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा आदि में कुष्ठरोगियों की संख्या बहुत अधिक है।

रूपा—डॉक्टर, क्या यह छूत का रोग है ?

डॉ० लीला—हाँ, कुछ हद तक ही क्योंकि सभी कुष्ठरोगी छूत नहीं फैलाते। परन्तु यह भी सच है कि संक्रमण फैलाने के लिए पूर्ण रूप से जिम्मेदार केवल आदमी है। इस रोग के प्रसार में किसी जानवर अथवा कीड़े का कोई योगदान नहीं होता। इस रोग के जीवाणु रोगी की नाक, त्वचा आदि से निकलते हैं। संक्रामक रोगी के छींकने, खाँसने तथा बोलने से उड़ने वाले नाक-थूक के छींटों में जीवाणु होते हैं। परन्तु यह भी ज़रूरी नहीं कि इन जीवाणुओं के सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को कुष्ठरोग हो ही जाएगा।

रूपा—डॉक्टर क्या सफ़ेद दाग़ होना ही कुष्ठरोग का लक्षण है ?

डॉ० लीला नहीं, केवल सफ़ेद दाग़ दिखाई देने का अर्थ कुष्ठरोग नहीं है। कुष्ठरोग होने पर दाग़ के स्थान की त्वचा पर संवेदनशीलता समाप्त हो जाती है। स्पर्श, गर्म अथवा ठण्डी वस्तु का अहसास नहीं होता। कुष्ठरोग की पुष्टि से लिए रोगकारक जीवाणुओं **माइकोबैक्टीरियम लेप्री** का परीक्षण आवश्यक है। नाक से निकलने वाले पदार्थ (श्लेष्म) का आलेप परीक्षण किया जाता है। त्वचा की जीवऊतिपरीक्षा (बायोप्सी) की जाती है। इन सब परीक्षणों के परिणाम के आधार पर ही रोग की सही पहचान सम्भव है।

रूपा—क्या कुष्ठरोग से बचाव के लिए कोई टीका उपलब्ध है ?

डॉ० लीला नहीं रूपा ! यद्यपि हमारे वैज्ञानिक इस दिशा में अनुसंधानरत हैं, पर अभी तक कोई सफल टीका विकसित नहीं हो पाया है। इस अवस्था में रोग प्रकट होने पर ही उपचार किया जा सकता है। आज कुष्ठरोग की चिकित्सा के लिए **डेप्सोन, रिफेम्पिसिन, क्लोफ़ज़ामीन** जैसी अनेक ओषधियाँ उपलब्ध हैं और वह ओषधि चिकित्सा तो अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुई है।

रूपा—क्या नियमित दवा लेने पर मैं ठीक हो सकूँगी ?

डॉ० लीला ज़रूर, परन्तु अभी कई महीनों तक नियमित रूप से डॉक्टर को दिखाना भी होगा ताकि दवा उस समय तक दी जा सके जब तक रोग के सभी लक्षण तथा जीवाणुओं की उपस्थिति पूरी तरह से समाप्त न हो जायें।

रूपा—डॉक्टर, आप मेरे सभी आवश्यक परीक्षण करवा दीजिए और मेरा उपचार आरम्भ कीजिए।

डॉ० लीला–शाबाश रूपा ! तुम ज़रूर स्वस्थ हो सकोगी और अपनी ज़िन्दगी सामान्य रूप से हँसी-खुशी व्यतीत कर सकोगी। पर याद रखना, कुष्ठरोग किसी पाप का फल नहीं है और मेरी नज़र में कोई ऐसा कारण नहीं जिसके लिए कुष्ठरोगी को समाज से बहिष्कृत किया जाए। कुष्ठरोग अन्य किसी भी रोग की तरह ही है और इसका उपचार पूर्णरूपेण सम्भव है।

रूपा—धन्यवाद डॉक्टर, आपने आज मेरे जीवन को एक नई दिशा दी है।
(माँ की तरफ़ देखते हुए)
चलो माँ ! (रूपा और माँ प्रस्थान करती हैं)

और इसी के साथ पर्दा गिरता है। □□

दिल के दौरे को रोकता है मछली का तेल | रणबीर सिंह

[नये अनुसंधानों से रक्त चाप, दिल के दौरे और गठिया की रोकथाम में मछली का तेल बड़ा फायदेमंद साबित हो रहा है। इस नई खोज का खुलासा कर रहे हैं भारतीय विज्ञान लेखक संघ के युवा सदस्य श्री रणबीर सिंह।

—सम्पादक]

दिल और रक्तवाहिकाओं के रोगों से मनुष्य को बचाने के लिये वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के कई मोर्चे खोल रखे हैं। इनमें व्यवहार और परिवेश परिवर्तन, अधिक प्रभावी और सुरक्षित ओषधियों की खोज और सर्जरी के अलावा खान-पान में संशोधन भी शामिल है। पोषण वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनुसंधान से यह

जनसम्पर्क अधिकारी, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, अंसारीनगर, नई दिल्ली-110029

जानकारी मिली है कि जहाँ कुछ प्रकार की वसा, जो खाद्य तेलों और घी से प्राप्त होती है, एथीरोस्क्लेरोसिस और हाइपरटेंशन को जन्म देते हैं वहीं इनकी किस्म और रचना में मामूली फेरबदल वाली कुछ दूसरी वसाओं का इस्तेमाल हमें दिल और रक्तवाहिकाओं के रोगों से बाहर निकाल ले जाने में काफी प्रभावपूर्ण साबित हुए हैं। अर्थात कुछ खाद्य स्रोतों से प्राप्त हुई वसा का चिकित्सीय महत्व है।

कुछ वैज्ञानिकों ने शोध करके हाल ही में इस धारणा की फिर से पुष्टि कर दी है कि ऐसी मछली खाने से जिसमें वसा की मात्रा दूसरों से कुछ ज्यादा होती है या जैसा है वैसे ही रूप में उपलब्ध मछली के तेल का इस्तेमाल करने से न केवल स्थायी हो चुकी हाइपरटेंशन से छुटकारा पाया जा सकता है बल्कि दिल के दौरे के बाद स्वास्थ्यलाभ करने वाले व्यक्तियों में पुनः दिल के दौरे को रोका जा सकता है।

बाजार में दर्जनभर खाने के रिफाइंड तेल और वनस्पति घी के अलावा देशी घी भी प्रचुरता से उपलब्ध हैं। इसके अलावा मांस, मछली और अण्डे में भी वसा की काफी मात्रा मौजूद होती है। शाकाहारी लोगों को दालों और हरी सब्जियों के खाने से भी कुछ मात्रा में वसा प्राप्त होती रहती है। वनस्पति से प्राप्त वसा में लाभकारी लिनोनिक अम्ल काफी मात्रा में होता है।

वसा में चिकने पदार्थ ग्लाइसिरोल, विटामिन ए० डी० और० ई० के अलावा कई तरह के वसीय अम्ल भी होते हैं। शरीर इन घटकों का कई उपयोगी जैविक क्रियाओं के लिये इस्तेमाल करता है। कोशिकाओं की दीवार के निर्माण के लिये इसेंशियल फैटी एसिड्स बड़े काम की चीज होते हैं। भुखमरी या ऐच्छिक उपवास के दिनों केलिये भी शरीर में त्वचा के नीचे और एडीपोज टिशू में काफी मात्रा में वसा जमा हो जाती है। परन्तु असली मुद्दा यह है कि वसा में मौजूद कई तरह के अम्ल अर्थात फैटी एसिड्स हमारे शरीर में क्या भूमिका अदा करते हैं?

पोषण वैज्ञानिकों का कहना है कि वसा अर्थात खाद्य तेलों और घी में मौजूद सैचुरेटेड फैटी एसिड्स हमारे दिल और खून की नसों (आरट्रीज) की सेहत के लिये खराब होते हैं जबकि अनसैचुरेटेड फैटी एसिड्स का प्रभाव लाभकारी होता है। खाद्य तेलों और घी में सैचुरेटेड और अनसैचुरेटेड दोनों किस्म के फैटी एसिड्स मौजूद होते हैं फर्क इतना है कि किसी खाद्य तेल और घी में सैचुरेटेड फैटी एसिड्स ज्यादा मात्रा में होते हैं और किसी में अनसैचुरेटेड फैटी एसिड्स। दुधारू पशुओं से प्राप्त घी और अन्य जंतुओं से प्राप्त होने वाले मांस में सैचुरेटेड फैटी एसिड्स काफी मात्रा में होते हैं। इसीलिये पोषण वैज्ञानिक और हृदयरोग विशेषज्ञ बारम्बार यह सलाह देते हैं कि जंतु उत्पादों यथा घी और मांस से प्राप्त वसा अर्थात् एनीमल फैट्स का उपयोग कम से कम करना चाहिए। इसकी अपेक्षा वनस्पति स्रोतों से प्राप्त वसा या खाद्य तेलों, न कि वनस्पति घी के उपयोग को तरजीह देनी चाहिये। अनुसंधान से यह स्पष्ट हो चुका है कि मूँगफली, बिनौला, तोरिया और सरसों, तिल, सोयाबीन, सूरजमुखी, मक्का और कुसुम से प्राप्त खाद्य तेलों में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में अनसैचुरेटेड फैटी एसिड्स मौजूद होते हैं।

पोषण वैज्ञानिकों और हृदयरोग विशेषज्ञ पॉली-अनसैचुरेटेड फैटी एसिड्स की अधिकता वाली वसा के इस्तेमाल की सिफारिश इसलिये करते हैं ताकि ये वसीय अम्ल शरीर में एक लाभकारी पदार्थ प्रोस्टाग्लेंडिन के संश्लेषण को प्रेरित करते हैं।

जन्तुओं में केवल मछली ही एक ऐसा स्रोत है जिससे काफी मात्रा में अनसैचुरेटेड फैटी एसिड्स से भरपूर वसा प्राप्त होती है। यह वसा सीधे तौर पर मछली को खाने से प्राप्त हो सकती है या मछली के तेल का उपयोग करने से। कारखाने में मछली से इस वसा को अलग किया जाता है। यह वसा तरल रूप में और कैप्सूलों में बन्द करके बाज़ार में बेची जाती है। दवा निर्माता कम्पनियाँ मछली के तेल को कैप्सूलों

में बन्द करके अनेक प्रकार के व्यापारिक नामों से बेचती हैं। बाल-चिकित्सक मछली के तेल के कैप्सूलों को बच्चों के पोषण सम्बन्धी विकारों को दूर करने के लिए इस्तेमाल करते हैं।

काफी समय से इस बात के स्पष्ट संकेत तो थे कि मछली के तेल के प्रयोग से इसेंशियल हाइपरटेंशन और गठिया अर्थात् रूमेटाइड आर्थ्राइटिस रोग में कुछ राहत महसूस होती है, परन्तु चिकित्सीय परीक्षणों के अभाव में इसे पूरी तरह विश्वसनीय मान लेने में थोड़े और सब्र की जरूरत थी। सन् 1989 में दो ऐसे चिकित्सीय परीक्षणों के परिणाम प्राप्त हुए हैं जिनसे यह स्पष्ट हो गया है कि मछली के तेल में औषधीय गुण हैं जिनकी वजह से हाइपरटेंशन और दिल के दौर से पीड़ित व्यक्तियों को राहत दी जा सकती है।

इन चिकित्सीय परीक्षणों के ब्यौरे चिकित्सा जगत् की प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिकाओं 'द लान्सेट' और 'द न्यू इंग्लैंड जरनल ऑव मेडिसिन' में प्रकाशित हुए हैं। इन दोनों पत्रिकाओं की विश्वसनीयता, पठनीयता और प्रतिष्ठा संदेह से परे है 'द लान्सेट' के 19 अगस्त 1989 के अंक में प्रकाशित एक सम्पादकीय लेख का ज़िक्र यहाँ करना ठीक होगा। सम्पादकीय में कहा गया है कि ब्रिटेन के बाज़ारों में **मैक्सीपा** नाम से एक दवा को यह कह कर बेचा जा रहा है कि इसके सेवन से उन रोगियों के रक्त में ट्राइग्लीसराइड्स (चर्बी) को कम किया जा सकता है जिनके रक्त में इसकी मात्रा जरूरत से ज़्यादा हो गई है और जिनमें दिल का दौरा पड़ने की संभावना व्यक्त कर दी गई है। ये ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं जिनमें आहार परिवर्तन से भी अब कुछ भला होने वाला नहीं होता। ट्राइग्लीसराइड्स में स्टीयरिक, पॉमिटिक, ओलिक और लिनोलिक नाम के वसीय अम्ल होते हैं। मछली के तेल युक्त मैक्सीपा के बारे में यह भी कहा गया है कि इसका सेवन प्रोस्टाग्लेंडिन और रक्त में घुली चर्बी पर अपना प्रभाव छोड़ने के अलावा रक्तवाहिकाओं के भीतर की टूट-फूट की मरम्मत को ठीक से पूरा करवाने के लिए भी मददगार है। 50 ग्राम प्रतिदिन चार सप्ताह तक मछली के तेल के रूप में पॉलीअनसैचुरेटेड फैटी एसिड्स का सेवन करने के बाद यह पाया गया कि इससे रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों का रक्तचाप कम हो गया और **थ्रोमबक्सेन ए**-2 नामक एक पदार्थ का संश्लेषण भी कम हो या जिसकी वजह से दिल का दौरा पड़ता है। यह भी देखा गया कि 10 सप्ताह तक मछली के तेलयुक्त 18 मैक्सीपा कैप्सूल रोजाना खाने से अस्थमा में काफी राहत महसूस हुई। सन् 1989 के सितम्बर महीने के **'द लान्सेट'** के अंत में प्रकाशित हुए अंक में मछली के तेल के चिकित्सीय प्रभाव का ब्यौरा देने वाले कई वैज्ञानिक पत्र प्रकाशित हुए। इनमें मछली के तेल के चिकित्सीय उपयोग के बारे में मिली-जुली राय दी गई है। कुछ अध्ययनों की बाबत लिखा गया है जिनमें मछली के तेल के सेबन से रोगियों या संभावित रोगियों को काफी लाभ हुआ। परन्तु कुछ ने यह भी बताया है कि मछली के तेल के सेवन से खास अन्तर नहीं पड़ता। सभी ने यह स्वीकार किया है कि शायद उनके अध्ययन सीमित पैमाने पर किये गये हैं और पूरी तरह नियंत्रित नहीं थे। इसीलिए नतीजों को लेकर सभी एकमत नहीं हैं। सभी ने बड़े पैमाने पर शोध करने का सुझाव दिया है। वैज्ञानिक जगत् में ऐसे सुझाव काफी समय तक मिलते रहे हैं। अतः 20 अप्रैल के **'द न्यू इंगलैंड जरनल ऑव मेडिसिन'** और 30 सितम्बर के **'द लान्सेट'** में प्रकाशित ऐसे ही दो बड़े अध्ययनों के नतीजे अब हमारे सामने हैं।

अमेरिका के वेंडरबिल्ट विश्वविद्यालय में क्लिनिकल फार्माकोलॉजी डिविजन के **डॉ० हावर्ड आर० नॉप** और **गैरेट ए. फिज़गेराल्ड** ने 32 व्यक्तियों में आठ सप्ताह तक परीक्षण जारी रखे। यह ध्यान रखा गया कि इनमें से **कोई भी धूम्रपान करने वाला न हो तथा अतितनाव के अलावा किसी अन्य बीमारी से भी पीड़ित न हो।**

डॉ० फिज़गेराल्ड और **हावर्ड** ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इसेंशियल हाइपरटेंशन से पीड़ित

व्यक्तियों को एक महीने तक रोज़ाना 50 मिलीलीटर मछली के तेल की खुराक देने से उन्हें इस रोग से छुटकारा मिल गया था। पीड़ित को 50 ग्राम मछली के तेल से 9 मिलीग्राम ईकोसापेन्टानोइक एसिड और 6 ग्राम डिकोसाहैक्सानोईक एसिड नामक इसेंशियल फैटी एसिड्स मिले। ये वसीय अम्ल शरीर में प्रोस्टाग्लेंडिन एच-2 के संश्लेषण को प्रेरित करते हैं। प्रोस्टाग्लेंडिन, रक्त की प्रगाढ़ता को संतुलित रख कर इसके बहाव को कायम रखने, रक्तवाहिकाओं के संकुचन में रुकावट पैदा करने और रक्त प्लेटलेट्स के जमाव को रोकने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके कारण एथीरोस्क्लेरोसिस और हाइपरटेंशन के रोगियों को बड़ा आराम मिलता है।

इसके विपरीत परीक्षणाधीन जिन व्यक्तियों को मछली के तेल की कम मात्रा (10 मिलीलीटर) दी गई और साथ में वसा की प्रतिदिन आवश्यक न्यूनतम मात्रा पूरी करने के लिए अन्य खाद्य तेल जैसे सैफलावर तेल (अमेरिका में इस खाद्य तेल का प्रचलन है), दिया गया तो उनमें अतितनाव के चिह्न कायम रहे। इसका अर्थ यह हुआ कि मिश्रित वसा अर्थात् जिसमें दोनों तरह के वसीय अम्ल मौजूद थे, के प्रयोग से कोई लाभ नहीं होता। पश्चिमी समाज में चूँकि एक स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन 50 ग्राम चिकनाई खाने में लेने की सिफारिश की गई है, इसलिए अगर यह पूरी मात्रा ही पॉलीअनसैचुरेटेड फैटी एसिड्स के रूप में हो तो व्यक्ति के वारे-न्यारे समझिए। भारत में राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद के अनुसार एक औसत स्वस्थ व्यक्ति के आहार में प्रतिदिन कम से कम 35 से 40 ग्राम वसा अवश्य शामिल होनी चाहिए।

'द लान्सेट' में प्रकाशित शोधपत्र में जिस अध्ययन का ज़िक्र है उसमें ऐसे 2033 व्यक्तियों को शामिल किया गया था जिन्हें एक वार दिल का दौरा (मायोकार्डियल इनफार्कशन) पड़ चुका था। यह अध्ययन इसीलिये किया गया था ताकि यह मालूम हो सके कि मछली के तेल में चिकित्सीय गुण हैं या नहीं हैं। इस अध्ययन में शामिल किये गये **पीड़ितों को यह निर्देश दिया गया कि अगर वे धूम्रपान करते हों तो अध्ययन के दौरान इसे बिल्कुल छोड़ दें।** अनेक व्यक्ति ऐसे भी थे जिन्हें धूम्रपान की आदत नहीं थी। परीक्षणाधीन व्यक्तियों को तीन तरह के भोजन की हिदायत दी गई थी। पहली श्रेणी में वे लोग थे जिन्हें यह बताया गया कि एक तो वे कुल वसा का इस्तेमाल इतना कम कर दें जिससे 30 प्रतिशत ऊर्जा में कटौती संभव हो सके। इसके साथ वे केवल पॉलीअनसैचुरेटेड फैट्स का ही उपयोग करें। दूसरी श्रेणी में वे लोग थे जिन्हें सप्ताह में कम से कम दो वार 200 से 400 ग्राम तक अधिक वसायुक्त मैकेरल, हेरिंग, किप्पर, पिल्कर्ड, सारडीन, सामन और ट्राऊट जाति की मछलियाँ खाने की सलाह दी गई। तीसरी श्रेणी के परीक्षणार्थियों को ऐसा भोजन लेने की सलाह दी गई जिससे उन्हें आहार में प्रतिदिन कम से कम 18 ग्राम रेशा तो ज़रूर ही मिले। विदित है कि रेशे वाला भोजन (यथा छिलके वाली दालें, फलियाँ और हरी पत्तेदार सब्ज़ियाँ) रक्त में ट्राइग्लीसराइड्स अर्थात् चर्बी की मात्रा को कम करता है।

अध्ययन पूरा होने के बाद यह पाया गया कि जिन लोगों को रेशे की अधिकता वाला और मिश्रित वसाओं वाला भोजन खाने की सलाह दी गई थी उनमें दो वर्ष के भीतर मृत्यु की दर उस श्रेणी के लोगों से कहीं ज़्यादा थी जिन्हें वसा की प्रचुरता वाली मछलियाँ खाने की सलाह दी गई थी। पहली दो श्रेणियों के मुकाबले में मछली खाने वालों में मृत्युदर 29 प्रतिशत कम आँकी गई। इन लोगों की मृत्यु पुनः दिल का दौरा पड़ने से हुई थी। अतः यह स्पष्ट हो गया कि मछली से उपलब्ध वसा हृदयाघात से रक्षा करती है।

परीक्षणाधीन व्यक्तियों में समय-समय पर रक्तचाप और रक्त कोलेस्टेरॉल के स्तर को माप कर देखा गया था। इन व्यक्तियों के शरीर के भार पर भी निगाह रखी गई और ऐसा प्रयास किया गया जिससे अध्ययन के दौरान इनके शरीर का भार न बढ़े। जिन व्यक्तियों ने मछली का सेवन या मछली के तेल वाले

कैपसूल खाये थे उनमें तो रक्त कोलेस्टेरॉल और ट्राइग्लीस्राइड्स का स्तर क्रमशः घटता गया और वांछित स्तर तक घट गया। याद रखने योग्य बात यह है कि अमेरिकी और ब्रिटिश मानक स्तरों के अनुसार रक्त में कोलेस्टेरॉल की मात्रा प्रति डेसीलिटर में 210 मिलीग्राम से ज़्यादा नहीं होनी चाहिये।

वसायुक्त मछली अथवा मछली के तेल का चिकित्सीय उपयोग बड़ी सावधानी से करने की ज़रूरत है। इसका उपयोग हर हालत में अनुभवी चिकित्सक की देखरेख में होना चाहिये। क्योंकि समय-समय पर मरीज़ के रक्त आदि की जाँच करनी पड़ती है, रक्त में कोलेस्टेरॉल के स्तर की जाँच करना बड़ा ही पेचीदा और तिकड़म वाला काम है। यह तो ज़रूर ही ध्यान में रखना चाहिये कि गम्भीर अवस्था में पहुँची हुई बीमारी का इलाज करने के लिये मछली के तेल का उपयोग किसी भी हालत में दवा का विकल्प नहीं हो सकता। ऐसा करने वाले अपनी जान को ही जोखिम में डाल लेंगे। इस प्रकार के अध्ययनों का प्रमुख उद्देश्य यह होता है कि रोगियों के खाने में ऐसा परिवर्तन लायें जिससे एक तो उन्हें दवा की कुछ कम मात्रा लेनी पड़े, दूसरे खाने में किये गये परिवर्तन वांछित चिकित्सीय प्रभाव छोड़ें।

(इस्वा फीचर्स)

□□

नमक और आपका स्वास्थ्य

सीताराम सिंह 'पंकज'

हमारे दैनिक आहार से नमक का चोली-दामन जैसा संबंध है। नमक रहित भोजन फीका और बेस्वाद लगता है। सच पूछिए तो सदियों से नमक हमारे आहार का अभिन्न अंग रहा है। प्राचीन काल में नमक की क़ीमत सोने के बराबर थी। नमक भोजन को स्वाष्टि बनाने के लिए ही नहीं, वरन् विभिन्न खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने के काम में भी आता है। यही कारण है अचार, निमकी, चिप्स तथा डिब्बा बंद खाद्य सामग्रियों में नमक की प्रचुर मात्रा होती है। भाँति-भाँति के व्यंजन हों, किन्तु उनमें नमक न हो तो सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है।

नमक से संबंधित मुहावरे और किंवदंतियों की कमी नहीं है, मसलन, 'जले पर नमक छिड़कना,' 'नमक की सैरियत देना' आदि आदि। हमारे राष्ट्र-पिता **महात्मा गाँधी** ने 1931 में अंग्रेज़ों के खिलाफ़ ऐतिहासिक 'नमक आंदोलन' का श्रीगणेश किया था। कहते हैं मृत सागर (डेड सी) में इतना अधिक नमक है कि कोई जीव उसमें ज़िंदा नहीं रह सकता। वैसे भी समुद्र जल में नमक की प्रचुर मात्रा होती है। समुद्र जल को सुखाकर खाने का नमक तैयार किया जाता है।

आहार में नमक की मात्रा

ज़ाहिर है कि नमक हमारे भोजन का एक अभिन्न अंग है। जिस साधारण लवण का प्रयोग हम अपने दैनिक जीवन में करते हैं, उसे रसायन की भाषा में सोडियम क्लोराइड (NaCl) कहते हैं। हमारे आहार में नमक की मात्रा कई बातों पर निर्भर करती है जैसे वातावरण, उष्मा, शारीरिक श्रम इत्यादि। रेगिस्तान के निवासियों तथा अधिक शारीरिक श्रम करने वालों को सामान्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक नमक की आवश्यकता होती है। क्योंकि तेज़ धूप या अधिक श्रम से शरीर से ज़्यादा पसीना निकलता है और पसीने से नमक बाहर निकल जाता है, उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों के निवासियों के शरीर से पसीने द्वारा नमक निकलता रहता है। अतः उन्हें सामान्य से थोड़ा अधिक नमक चाहिए।

विशेषज्ञों के अनुसार प्रतिदिन 3-4 ग्राम नमक का सेवन हानिकारक नहीं है। वैसे भारत जैसे देश के

अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग, के० एस० आर० कॉलिज, सरायरंजन, समस्तीपुर—848127 (बिहार)

लिए 2 ग्राम नमक ही पर्याप्त है। आधुनिक शोध-कार्यों एवं सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ है कि आदिम जातियाँ कम से कम नमक का प्रयोग करती हैं। यही कारण है उनमें उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, मानसिक तनाव जैसी शिकायतें बहुत कम होती हैं। भारत ही नहीं न्यू गिनी, मलेशिया, युगांडा तथा विश्व के अन्य क्षेत्रों में पायी जाने वाली जनजातियाँ भी नमक का बहुत कम उपयोग करती हैं। इसके कारण वे नमक की अधिकता से होने वाले रोगों के चंगुल में नहीं फँसती।

अधिक नमक : 'साइलेंट किलर'

शहरीकरण और आधुनिक फ़ैशन ने मनुष्य की आहार योजना को भी निश्चित रूप से प्रभावित किया है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि पहले की अपेक्षा आजकल लोग ज़्यादा नमक का प्रयोग करने लगे हैं। आधुनिक अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि आवश्यकता से अधिक नमक स्वास्थ्य के लिए बहुत घातक है। सच पूछिए तो ज़रूरत से ज़्यादा नमक 'साइलेंट किलर' की तरह है, जो धीरे-धीरे शरीर को रोगग्रस्त बना देता है। ज़रूरत से ज़्यादा नमक का प्रयोग अनेक स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देता है। इनमें सबसे प्रमुख है उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रेशर)। आज उच्च रक्तचाप की समस्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है। इसका एक प्रमुख कारण है आवश्यकता से अधिक नमक का सेवन। आधुनिक शोधों से यह जान-कारी मिली है कि रक्तचाप और अधिक नमक के प्रयोग में सीधा संबंध है। विशेषज्ञों के अनुसार प्रति-दिन 25 ग्राम या इससे अधिक नमक का प्रयोग करने वाले देर-सबेर उच्च रक्तचाप के मरीज़ बनते ही हैं।

ज़ाहिर है कि उच्च रक्तचाप से अनेक बीमारियों का संबंध है। मसलन दिल का दौरा (हार्ट अटैक), गुर्दे के रोग, अनिद्रा, चर्मरोग, मानसिक विकृतियाँ, अत्यधिक मानसिक तनाव (हाइपर टेंशन) इत्यादि। एक प्रयोग में उच्च रक्तचाप के मरीज़ों को अधिक नमकयुक्त आहार दिया गया। परीक्षण से यह ज्ञात हुआ है कि उनका रक्तचाप बढ़ गया। कम रक्तचाप वाले मरीज़ों को भी अधिक नमकीन भोजन देने से उनका रक्तचाप बढ़ जाता है। अधिक नमक खाना आजकल एक फ़ैशन भी बन गया है। सब्ज़ी-सलाद में अलग से नमक लेकर खाने की नई आदत विकसित हो रही है। सुखी-सम्पन्न व्यक्तियों के घरों में अचार, पापड़, निमकी, चिप्स तथा डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है। इन खाद्य साम-ग्रियों में आवश्यकता से अधिक नमक होता है, जो स्वास्थ्य के लिए सदैव हानिकारक है। डिब्बा बंद खाद्य जल्द खराब न हों इसलिए उनमें ज़्यादा नमक डाल दिया जाता है। लेकिन ऐसी वस्तुओं के निर्माता यह नहीं सोचते कि आवश्यकता से अधिक नमक सेहत के लिए कितना घातक है। शरीर की आवश्यकता से अधिक नमक को निकालने के लिए गुर्दे को ज़्यादा श्रम करना पड़ता है और उपापचयी क्रियाओं पर प्रतिकूल असर पड़ता है। अधिक नमक का सेवन 'ब्राइट' रोग भी उत्पन्न करता है।

'अति लवण वर्जयेत'

अधिक नमक का सेवन हर दृष्टि से स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह सत्य है कि नमक हमारे आहार के लिए आवश्यक है, किंतु इसकी अधिक मात्रा सदैव घातक होती है। उच्च रक्तचाप या हृदय के रोगियों को चिकित्सक कम से कम नमक के सेवन की सलाह देते हैं। बाज़ारू नमक की जगह सेंधा नमक का प्रयोग स्वास्थ्य के लिए हितकर है। 'अति लवण वर्जयेत' जैसे आदर्श वाक्य को दैनिक जीवन में उतार कर व्यक्ति अनेक घातक रोगों के चंगुल में फँसने से बच सकता है। □□

हिन्दी में विज्ञान के शोध प्रबन्ध

मंजुलिका लक्ष्मी

अक्सर बुद्धजीवियों के मध्य यह वार्तालाप सुनने को मिलता है कि हिन्दी भाषा अभी वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों की जटिलताओं और गूढ़ सिद्धान्तों को पूर्णरूपेण व्यक्त करने में सक्षम नहीं हुई है। इस सम्बन्ध में हिन्दी की "नवनिर्मित" शब्दावली से अनभिज्ञता और पाश्चात्य भाषाओं से आये पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद या उनके यथावत् ग्रहण पर मतभेद जैसी समस्याओं की चर्चा आम बात है। इस मत के विपरीत इस क्षेत्र में कार्य करने वाले समर्पित लोगों को ज़ोरदार शब्दों में इस आरोप का खंडन करते भी देखा गया है। पूर्ण सत्य तो दोनों ही पक्षों का कथन नहीं है, पर इस क्षेत्र से जुड़ा कोई भी व्यक्ति इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि हिन्दी भाषा ने आज इतने पड़ाव तय कर लिए हैं कि वह विज्ञान और तकनीकी की सूक्ष्मतम जटिलताओं को अपनी वैज्ञानिक शब्दावली की सहायता से पूरी तरह बोधगम्य बना सकती है।

वर्ष 1915 में "विज्ञान परिषद्, प्रयाग" जैसी आज की प्रतिष्ठित और तब की सद्यजात संस्था ने हिन्दी में एक वैज्ञानिक पत्रिका निकालने का बीड़ा उठाया तो वह एक साहसिक और अभूतपूर्व क़दम था। इस साहसिक पहल ने कछुए की चाल चल कर भी हिन्दी भाषा के पक्ष में जो एक वातावरण तैयार किया, आज उसका सुफल मिलता दिखाई दे रहा है।

आज हिन्दी में विज्ञान के शोध स्तरीय साहित्य के प्रकाशन ने गति पकड़ ली है। 'विज्ञान परिषद्' प्रयाग ने ही वर्ष 1958 में **प्रो० जे० बी० एस० हाल्डेन** की प्रेरणा व सुझावों के फलस्वरूप 'विज्ञान-परिषद् अनुसंधान पत्रिका' का प्रकाशन आरम्भ किया। अब तक यह त्रैमासिक शोध पत्रिका अपने जीवन के तीन दशक पूरे कर चुकी है। इस शोध पत्रिका के तात्कालिक कुशल सम्पादन का श्रेय हिन्दी के अनन्य सेवी और प्रसिद्ध वैज्ञानिक **स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती** को है। आज यह शोध पत्रिका डॉ० चंद्रिका प्रसाद के अनुभवी हाथों से सम्पादित हो रही है। इस अवधि में इस शोध पत्रिका ने 'डॉ० रामन', 'पुरातत्व', 'संकुल रसायन' जैसे विषयों पर सराहनीय विशेषांक निकाले हैं।

अप्रैल 1989 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में 'संकुल रसायन-विभिन्न आयाम' शीर्षक से एक गोष्ठी सम्पादित हुई जिसमें सभी शोध-पत्र हिन्दी में प्रस्तुत किए गये। गोष्ठी की सफलता ने यह मान्यता पुष्ट कर दी कि हिन्दी अत्यन्त सशक्त और ग्राह्य तरीके से शोधस्तरीय सूक्ष्मताओं को संप्रेषित कर सकती है। उक्त गोष्ठी के सभी आलेख 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' में 'संकुल रसायन विभिन्न आयाम' विशेषांक (अप्रैल 1989) में प्रकाशित हुए हैं।

'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' के स्तर और सफलता से उत्साह पाकर ग्वालियर से भी हिन्दी में एक शोध पत्रिका का प्रकाशन अनेक वर्षों से सफलतापूर्वक किया जा रहा है। 'रसायन-समीक्षा' नामक राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी से प्रकाशित होने वाली शोध-पत्रिका पिछले 13 वर्षों से रसायन के क्षेत्र में होने वाले अद्यतन शोध-ज्ञान को रसायन वैज्ञानिकों और विद्वानों तक पहुँचा रही है।

'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' ने 'ओमिक स्पर्श बनाने की तकनीकें' नाम से राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, दिल्ली के **विपिन कुमार** तथा **ठाकुर दास राघव** द्वारा संकलित एक शोध संग्रह भी 1978 में प्रकाशित किया है।

भारत सरकार की 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्' नामक संस्था 'कृषिचयनिका' नामक शोध-पत्रिका का प्रकाशन कर रही है। इसके अतिरिक्त 'इंस्टीट्यूशन ऑव इंजीनियर्स' नामक विश्वविद्यालय स्तर की संस्था भी 'इंस्टीट्यूशन ऑव इंजीनियर्स

5-ई/4, लिडिल रोड, जार्ज टाउन, इलाहाबाद—211002

(इंडिया)' मुखपत्र का शोध-लेखों का हिन्दी **संस्करण** नियमित प्रकाशित करती आ रही है। **विश्वम्भर प्रसाद 'गुप्त-बन्धु'** के निर्देशन में प्रकाशित होने वाली इस शोधपत्रिका को चालीस के दशक में शुरू होने के कारण हम इस क्षेत्र का अग्रगामी मान सकते हैं।

इस दिशा में एक और शुभ लक्षण यह दिखाई देने लगा है कि **डी० फिल** जैसी उच्च उपाधि के लिए तैयार किए जाने वाले शोध ग्रन्थ भी हिन्दी में प्रस्तुत किए जाने लगे हैं। इनमें **डॉ० ओ० पी० शर्मा** द्वारा लिखित 'वैज्ञानिक शब्दावली : इतिहास और सिद्धान्त' नामक शोध प्रबन्ध हिन्दी माध्यम से वैज्ञानिक विषय पर प्रस्तुत किया जाने वाला प्रमुख ग्रंथ है।

इस क्षेत्र में **डॉ० वेद प्रताप वैदिक** और **श्री श्याम रुद्र पाठक** द्वारा हिन्दी में शोध प्रबन्ध स्वीकृत कराने की लड़ाइयाँ अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। **श्री श्याम रुद्र पाठक** ने तो हाल के वर्षों में ही 'भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान', दिल्ली में एक क्रान्तिकारी की भाँति हिन्दी की लड़ाई लड़ कर लोगों को इस विषय पर और गंभीरता से सोचने को विवश कर दिया है। कुछ अन्य नाम भी इस दिशा में उल्लेखनीय हैं, जिनमें इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के **डॉ० राजकुमार बंसल** भी हैं। कार्बनिक रसायन में इनका शोध प्रबन्ध निरीक्षण के लिए हिन्दी के विज्ञान सेवी रसायनज्ञ (स्वर्गीय) **डॉ० फूलदेव सहाय वर्मा** को भेजा गया था।

इधर कुछ और विज्ञान शोध प्रबंधों के हिन्दी में प्रस्तुत किए जाने की सूचनाएँ आ रही हैं। इनमें पाँच शोध प्रबन्ध संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किए गये हैं। वनस्पति विज्ञान विषयक शोध प्रबन्ध के शोधकर्ता **डॉ० पुरुषोत्तम लाल गुप्त** ने 1968 में 'ओषधीय पौधा भृंगराज (**एक्लिप्टा प्रॉस्ट्रेटा लिन०**) का पारिस्थितिकीय अध्ययन' विषय पर अपनी थीसिस प्रस्तुत की थी। **डॉ० नारायण गोपाल डोंगरे** ने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यामय से 'वैदिक साहित्य में विज्ञान' विषय पर, (स्व०) **डॉ० लक्ष्मी शंकर शुक्ल** (रासायनिक अभियांत्रिकी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) ने 'वसाओं के ग्लिसराइड संरचना का अध्ययन' 1971 में, **डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव,** भौतिक विज्ञान विभाग (बी० एच० यू०) ने 1974 में 'सोनघाटी (पश्चिमांचल) का अवसादकीय अध्ययन' (जनपद मिर्ज़ापुर) पर एवं **डॉ० सच्चिदानन्द सिंह**, भौतिकी विभाग (बी० एच० यू०) ने 1989 में 'काशी में गंगा प्रदूषण : अवसाद-कीय अध्ययन' विषय पर थीसिस प्रस्तुत की थी।

हिन्दी में विज्ञान के स्थापित लेखक **श्री शुकदेव प्रसाद** (इलाहाबाद) ने विज्ञान की हिन्दी पत्रकारिता विषयक अपना शोध ग्रंथ हिन्दी में प्रस्तुत करके सराह-नीय कार्य किया है।

श्री मनोज कुमार पटेरिया (नई दिल्ली) रचित 'हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता' नामक अनुसंधानपरक संदर्भ ग्रंथ भी सम्प्रति प्रकाशनाधीन है।

पिछले कुछ वर्षों से शोध संस्थानों द्वारा उनकी सामयिक प्रगति रिपोर्टें भी हिन्दी में ही प्रकाशित हो रही हैं।

इस दिशा में प्रगति के लिए उचित होगा कि सरकारी तकनीकी प्रभाग अपने यहाँ से नियमित शोध-पत्रों का प्रकाशन करें। हिन्दी में छपने वाले वर्ष के हर विषय के सर्वोत्तम शोध-पत्र को पुरस्कृत करने की व्यवस्था बने और बिश्व की अन्य भाषाओं की उच्च-स्तरीय शोध सामग्री निरन्तर हिन्दी में अनूदित होकर विद्वानों और शोधकर्ताओं को उपलब्ध होती रहे। □□

मछलियों में प्रकाश-उत्पादन

बी० एस० रावत

[खुले नील गगन के तले रात में नन्हें-नन्हें उड़ते जलते-बुझते बल्ब जैसे जुगनुओं की ओर आकर्षित हुए बिना भला कौन रह सकता है? अपने बचपन में ऐसे प्रकाश उत्पन्न करते जुगनुओं को हममें से बहुतों ने पकड़ा भी होगा और रूमाल अथवा कपड़े के रूमाल नुमा टुकड़ों में जुगनुओं को कैद करके घंटों आश्चर्य मिश्रित कौतूहल से निहारते भी रहे होंगे। पर हममें से कितनों को यह ज्ञात है कि मछलियों की अनेक प्रकार की प्रजातियों में भी जुगनुओं की ही भाँति प्रकाश-उत्पादन की क्षमता विद्यमान होती है? आपकी जानकारी के लिए प्रस्तुत है युवा विज्ञान लेखक श्री बी० एस० रावत की कलम से एक ताजी खोजपूर्ण रचना। हमारे पाठकों में से किसी को इस विषय की कुछ और नवीन जानकारी हो तो उसे हमें अवश्य लिखें।

—सम्पादक]

यह एक आश्चर्यजनक किन्तु निर्विवाद सत्य है, कि जुगनू की तरह मछलियों में भी प्रकाश-उत्पादन की अद्भुत क्षमता होती है। खास तौर पर उन मछलियों में जो समुद्र के गहरे पानी में रहती हैं और जहाँ छाया रहता है चारों ओर घुप्प अंधकार।

गहरे पानी में रहने वाली कुछ मछलियों की प्रजातियों में काफ़ी बड़ी-बड़ी आँखें होती हैं। कुछ अन्य प्रजातियों में तो टेलिस्कोपिक आँखें होती हैं, जिनकी सहायता से मछली मन्द प्रकाश में भी भली प्रकार देख सकती है। गहरे पानी में ही पायी जाने वाली कुछ दूसरी प्रजातियों की मछलियों में आँखें या तो बहुत छोटी-छोटी होती हैं या फिर उनका धीरे-धीरे ह्रास हो जाता है।

ऐंगलर मछली (Angler fish) गहरे पानी में रहने वाली एक ऐसी ही मछली है, जो न केवल स्वतः प्रकाश उत्पन्न करती है, वरन् स्वतः उत्पादित प्रकाश का भरपूर लाभ भी उठाती है। इस मछली के सिर पर ऊपर की ओर लैंटर्न (लालटेन) सदृश एक सीधी संरचना होती है, जिससे प्रकाश-उत्पन्न होता है। इससे होता यह है कि प्रकाश की तरफ अन्य छोटे-छोटे जलीय जन्तु आकर्षित होते हैं, जिनमें से ऐंगलर मछली अपना मनपसन्द भोजन चुन लेती है।

मछलियों में प्रकाश-उत्पादन का लाभ भोजन को देखने तथा अपनी ओर आकर्षित करने में तो होता ही है, साथ ही साथ इसकी मदद से एक प्रकार की मछलियों की प्रजातियों को दूसरी प्रजातियों से आसानी से अलग करके पहचाना भी जा सकता है। इसके अतिरिक्त मछलियों के लिंग को पहचानने में भी आसानी होती है।

प्रकाश-उत्पादन करने वाली मछलियों का शरीर गहरे पानी की विशेष परिस्थितियों यथा—प्रकाश की अनुपस्थिति, कम ताप तथा अधिक दबाव, स्थिर जल, जलीय पौधों की नितांत अनुपस्थिति, भोजन की कमी तथा नर्म दलदल वाले तल इत्यादि में रहने के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। अत्यधिक दबाव के कारण शरीर चपटा व लम्बा हो जाता है। आँखों में या तो कम प्रकाश में भी देख सकने की क्षमता होती है अथवा आँखें अनुपस्थित होती हैं। कुछ में स्वतः प्रकाश-उत्पादन की विलक्षण क्षमता होती है। इनमें छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े भोजन को निगलने की क्षमता होती है। मुँह का आकार अपेक्षाकृत बड़ा होता है। कीचड़ में धँसने से बचाने के लिए कुछ मछलियों में निचली सतह पर झाड़ी सदृश संरचना पायी जाती है।

मछलियाँ जिस अंग से प्रकाश-उत्पादन करती हैं, उसे "फोटोफोर" कहते हैं। वास्तव में फोटोफोर एक प्रकार की विशेष ग्रंथियाँ होती हैं, जो त्वचा की बाह्य

जन्तु विज्ञान, शोध विभाग, राजकीय डिग्री कॉलेज, ऋषिकेश, देहरादून, उत्तर प्रदेश

पर्त (एपिडर्मिस) से बनती हैं। फोटोफोर की संख्या, संरचना, तथा शरीर पर पाये जाने का क्रम मछलियों की भिन्न-भिन्न प्रजातियों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। साधारणतया फोटोफोर मछलियों के सिर पर, शरीर की निचली सतह पर, और किनारों पर पाये जाते हैं।

स्कोपेलस (*Scopelus*) तथा **हैलोसरॉपसिस** (*Halosauropsis*) में फोटोफोर एक या दो कतारों में व्यवस्थित होते हैं, तथा मछली के सिर से लेकर पूँछ तक पाये जाते हैं। कभी-कभी ये फोटोफोर मछली के शरीर में गोलाकार चक्कर में व्यवस्थित होते हैं, जैसे **ओपोस्टोमियास** (*Opostomias*) में। कभी-कभी ये फोटोफोर बड़ा रूप भी धारण कर लेते हैं तथा ऐसी स्थिति में मछली के डॉर्सल फिन (पीठ पर स्थित पंख) की पहली शिरा 'स्पाइन' (Spine) लम्बी उध्वार्धर व्यवस्थित होती है, जिस पर ये फोटोफोर एक लैनटर्न की शक्ल बनाता है (ऐंगलर मछली)।

पोरिचथिस (*Porichthyes*), जिसे टोढ़ मछली भी कहते हैं, में फोटोफोर बहुत अधिक संख्या में होते हैं तथा किनारे की ओर (लैट्रल लाइन में) व्यवस्थित रहते हैं।

मछलियों में प्रकाश-उत्पादक अंग दो तरह के पाये जाते हैं। कुछ मछलियों में प्रकाश-उत्पादन की प्रक्रिया में कुछ विशेष जीवाणु (बैक्टिरिया) महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जबकि कुछेक अन्य में स्वतः ही प्रकाश-उत्पादन होता है।

मालाकोसिफेलस लेविस (*Malacocephalus laevis*), **एनोमैलॉप्स** (*Anomalops*), **फोटोब्लीफैरॉन** (*Photoblepharon*), **लियोगनेथस** (*Leiognathus*) इत्यादि बहुत सी मछलियों में जीवाणु ही प्रकाशोत्पादन में सहायक होते हैं। फोटोफोर गड्ढे नुमा आकृति वाले होते हैं, जिनमें जीवाणु होते हैं।

फोटोब्लीफैरॉन (*Photoblepharon*) मछली में दोनों आँखों के नीचे लम्बे-लम्बे तथा बड़े-बड़े फोटोफोर होते हैं। इस मछली की विशेषता यह होती है कि यह अपनी प्रकाश-व्यवस्था को इच्छानुसार जला व बुझा सकने में समर्थ होती है।

फोटोब्लीफैरॉन (*Photoblepharon*) तथा एनोमैलॉप्स (*Anomalops*) में प्रकाश के जलने तथा बुझने का एक कारण यह भी हो सकता है, कि इन मछलियों के फोटोफोर अंग के ऊपर आँखों की पलक जैसा ढक्कन लगा होता है, जो आवश्यकतानुसार फोटोफोर को ढँक लेता है। **एनोमेलाप्स** में एक विशेष प्रकार का काला ऊतक होता है, जिसके सम्पर्क में आने पर प्रकाश निकलना वन्द हो जाता है।

पैचीस्टोमियास माइक्रोडॉन (*Pachystomias microdon*) मछली में फोटोफोर की संरचना कुछ अलग ही होती है। इसमें फोटोफोर कप या प्याले का शक्ल धारण कर लेते हैं। इस प्याले में बहुत सी ग्रंथिनुमा संरचनाएँ तथा काले रंजक या पिगमेंट्स (*Pigments*) होते हैं। इस प्याले की तलहटी में काँटों जैसी सतह होती है, जो प्रकाश को परावर्तित कर देती है। प्याले के मुँह पर लेंस की शक्ल की पारदर्शक माँसपेशियाँ होती हैं, जो उत्पन्न प्रकाश को और बढ़ा देने में सहायक होती हैं।

जीवाणुओं के अतिरिक्त कुछ एंज़ाइम (*Enzymes*) प्रकाश उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। **एपोगॉन** (*Apogon*) तथा **पैराप्रियाकेंथस** (*Parapriacanthus*) में दो एंज़ाइम **लूसीफेरिन** (*Luciferin*) और **लूसीफेरेज** (*Luciferase*) पाये जाते हैं। ये दोनों एंज़ाइम जब आपस में मिलते हैं तो प्रकाश उत्पन्न होता है। इस अभिक्रिया में लूसीफेरिन ऑक्सीकृत होकर ऑक्सीलूसीफेरिन (*Oxyluciferin*) बनाता है।

सभी मछलियों द्वारा उत्पन्न प्रकाश का रंग सूर्य के प्रकाश सा नहीं होता, बल्कि थोड़ी विभिन्नता लिए हुए नीला या मिश्रित हरा-नीला होता है।

अधिकांश वैज्ञानिकों का यह मानना है कि प्रकाश उत्पादक अंग मछली की तंत्रिका तंत्र तथा अन्तःस्रावी ग्रंथियों द्वारा नियन्त्रित होते हैं। कुछ मछलियाँ ऐसी भी होती हैं, जो अपने प्रकाश उत्पादक अंगों को टार्च की तरह किसी भी दिशा अथवा दिशा विशेष में घुमा सकती हैं। **फोटोस्टोमियास** (*Photostomias*), **इडियाकैंथस** (*Idiacanthus*), **एनोमैलॉप्स** (*Anomalops*) तथा **फोटोब्लीफैरॉन** (*Photoblepharon*) ऐसी ही मछलियाँ हैं।

उपयोगिता की दृष्टि से मछलियों में प्रकाश का उत्पादन मछलियों के लिए हितकर होता है। इससे मछलियाँ प्रकाश में अपने दुश्मन को तथा अपने शिकार या भोजन को तो देख ही लेती हैं साथ ही साथ अचानक प्रकाश कर दुश्मन को चकाचौंध कर भगाने में भी सफल हो जाती हैं।

यही नहीं, प्रकाश के कारण छोटे-छोटे समुद्री जीव प्रकाश के चारों और मंडराने लगते हैं। ऐसे में मछली बिना परिश्रम के आसानी से भोजन प्राप्त कर सकती है।

पेरिचथिसिस (*Perichthysis*) के विषय में वैज्ञानिकों का मत है, कि दुश्मन की उपस्थिति में यह मछली ख़तरे के संकेत के रूप में रोशनी जलाती है।

प्रकाश उत्पन्न करने वाली मछलियाँ लगभग सारे संसार में पायी जाती हैं। अधिकांश मछलियाँ 500 से 2,500 मीटर तक की गहराई में पायी जाती हैं, जबकि कुछ ऐसी प्रजातियाँ भी होती हैं जो रात्रि के समय पानी की सतह पर तैरने लगती हैं। किन्तु अधिकतर प्रजातियाँ केवल गहरे पानी में ही पायी जाती हैं। (चित्र पृष्ठ 18 पर) □□

पर्यावरण

मौत का धुँआ

प्रेम प्रकाश व्यास

विज्ञान वैसे तो समय-समय पर कई चेतावनियाँ देता रहा है और उसका प्रभाव भी देखा गया है, लेकिन जहाँ तक धूम्रपान का प्रश्न है, लगता है सारी चेतावनियाँ बेअसर रही हैं। सिगरेट के पैकेट पर 'धूम्रपान करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है' लिखे होने के बावजूद सिगरेट के प्रचलन का बढ़ावा इस बात का सूचक है कि इस पर कोई गौर नहीं किया गया है।

लेकिन इस बात पर शायद ही किसी ने गौर किया हो कि धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के पास बैठना भी कुछ कम हानिकारक नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि धूम्रपान करने वाला अपने नथुनों से निकले धुएँ से अपने चारों ओर के वातावरण को भी विषाक्त बना देता है, और आसपास बैठे लोग उस धुएँ को निगलने को बाध्य होते हैं। यदि यह कार्य बस, रेल, रेस्त्राँ या बंद कमरे में हो रहा हो तो इसकी विषाक्तता बढ़ जाती है। आज सिगरेट पीने वालों की अपेक्षा न पीने वालों की संख्या अधिक होने पर भी न तो कोई सिगरेट पीने वालों का विरोध करता है न ही उन्हें वहाँ से हटने को बाध्य कर सकता है। कई बार बसों में 'धूम्रपान निषेध' की चेतावनी के नीचे ड्राइवर व कण्डक्टर दोनों को धुएँ के छल्ले बनाते देखा जा सकता है।

1983 में एक अमेरिकन स्त्री ने अदालत में अपने मालिक के विरुद्ध मुकदमा दयार कर दिया कि उसने ऑफिस में धूम्रपानियों के लिए कोई पृथक व्यवस्था नहीं कर रखी है और धूम्रपान न करने वालों को मजबूरन धुआँ निगलना पड़ रहा है। अदालत ने इस स्त्री के पक्ष में फैसला देते हुए मालिक को एक पृथक कक्ष धूम्रपान न करने वालों के लिए बनाने का आदेश दिया। पर्यावरण के क्षेत्र में निश्चय ही यह अनूठा मुकदमा था।

प्रधानाध्यापक, राजकीय माध्यमिक विद्यालय, जसाई, बाड़मेर—344001

एक सिगरेट सामान्यतया 10 से 12 मिनट तक जल सकती है और उसमें से 50 सेकेण्ड तक कोई भी व्यक्ति धुआँ निगलता रहता है। हलांकि नथुनों से वापिस निकाला धुआँ विषाक्त पदार्थों से किसी सीमा तक मुक्त होता है, क्योंकि वे पदार्थ उस व्यक्ति के रक्त में घुल चुके होते हैं। फिर भी उन तत्त्वों का कुछ प्रतिशत उसमें रह जाता है। सिगरेट के धुएँ में पाये जाने वाले पदार्थ हैं बेंजो एल्फा एन्थ्रासीन, बेंजो एल्फा पाइरीन, डाइ बेंजो एल्फा पाइरीन, बेंजो फ्लोरेन्थीन, बेंजो जे, फ्लोरेंथीन आदि। ये सभी पदार्थ कैंसरवर्द्धक हैं और संवेदनाशीलता को बढ़ाने वाले हैं। भले ही सिगरेट पीने वाला एक मिनट में चार सेकेण्ड ही धुआँ निगलता हो, आसपास बैठे लोगों के हिस्से में इसका एक चौथाई भाग तो आता ही है। धूम्रपानी व्यक्तियों से विवाहिता महिलाओं में फैफड़ों के कैंसर की दर गैर धूम्रपानी व्यक्तियों से विवाहिता महिलाओं से 3.4 गुना अधिक पाई गई। जापान की 91000 स्त्रियों पर गिए गए परीक्षण से पता चलता है कि जो दम्पति धूम्रपान करते थे उनमें फेफड़ों का कैंसर उन दम्पतियों से 2.08 गुना अधिक था, जो धूम्रपान नहीं करते थे। किसी एक साथी के भी धूम्रपान करने पर दम्पति में कैंसर का पाया जाना शतप्रतिशत सिद्ध हुआ है। गर्भवती महिलाओं का धूम्रपान करना गर्भस्थ शिशु के लिए हानिकारक है, क्योंकि विषैले पदार्थ रक्त के प्रवाह के साथ, गर्भनाल से होते हुए शिशु तक पहुँच जाते हैं। उत्पन्न शिशु का भार काफी कम और रोग-प्रतिरोधक क्षमता बहुत ही कम पाई गई। निरन्तर धूम्रपान से स्त्रियों में 'रेनोड सिन्ड्रोम' नामक रोग भी उत्पन्न होता पाया गया है। इस रोग में पाँव के पंजे व उँगलियों में जाने वाली रक्त नलिकाएँ सिकुड़ जाती हैं और रक्त प्रवाह रुक जाने से वे टेढ़ी होने लगती हैं।

धूम्रपान का विरोध करने वालों में अमेरिका के पर्यावरण प्रेमी सबसे अधिक जागरुक हैं। 1914 में ही वहाँ धूम्रपान विरोधी विधेयक लाया गया। चौदह राज्यों ने इसे कठोरता से लागू किया। इसके अनुसार सार्वजनिक स्थान, रेस्त्राँ, बस, रेल व अन्य वाहन में यात्रा करते समय धूम्रपान करना दण्डनीय अपराध होगा। कई कार्यालयों को एक पृथक कक्ष धूम्रपान हेतु बनाना पड़ा। 1964 में संयुक्त राज्य सर्जन जनरल द्वारा किए गए शोध कार्यों से सिगरेट द्वारा कैंसर की पुष्टि हुई और अन्य राज्यों ने भी धूम्रपान के सार्वजनिक उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाया। 1974 में हुए शोध कार्यों से सिगरेट के धुएँ का पर्यावरण पर प्रभाव स्पष्ट हुआ और गैरधूम्रपानी लोगों को धूम्रपान करने वालों के पास बैठने में संकोच होने लगा। इस समय विश्व में सर्वाधिक कठोर नियम मिनेसोट्टा राज्य के हैं जहाँ किसी भी कार्यालय, खेल-कूद के मैदान या पवेलियन तथा सार्वजनिक स्थल पर धूम्रपान करने पर पाँच अमेरिकी डॉलर (लगभग पचास रुपये) का दण्ड देना पड़ता है। अमेरिकी मेडिकल एशोसिएन तो सिगरेट के विज्ञापनों को भी प्रतिबन्धित करने की सोच रही है। जुलाई 1980 में अमेरिकी सिनेट ने एक "क्लीन इन्डोर एयर एक्ट" पास किया जिसमें किसी भी सभा में, समारोह में अथवा उत्सव में सार्वजनिक रूप से धूम्रपान दण्डनीय अपराध होगा। अमेरिका जैसे सिगरेट उपभोक्ता देश के लिए निश्चय ही यह उपलब्धि कही जाएगी।

लेकिन भारत जैसे विकासशील देशों की स्थिति अच्छी नहीं है। यहाँ पर न तो कोई नियम अथवा संहिता है न ही पर्यावरण के प्रति चेतना। बसों, रेलों व सार्वजनिक स्थानों पर 'धूम्रपान न करें' के साइन-बोर्ड तो मिल जाते हैं, परन्तु धूम्रपान करने वालों को रोकने वाला न तो कोई कानून है न जन चेतना। पर्यावरण के प्रति सचेष्ट व्यक्तियों को सिगरेट के नुकसान व स्वास्थ्य पर पड़ने वाले इसके कुप्रभावों को आधार बना कर सरकार द्वारा एक कोडबिल अथवा कानून बनाने में तो पहल करनी ही चाहिए। □□
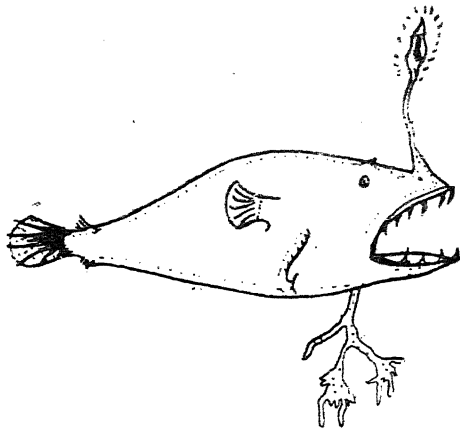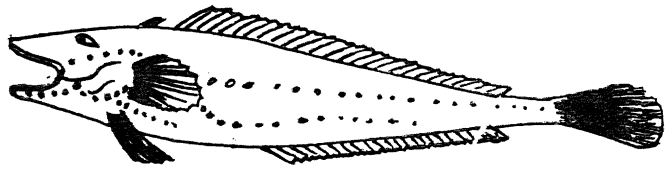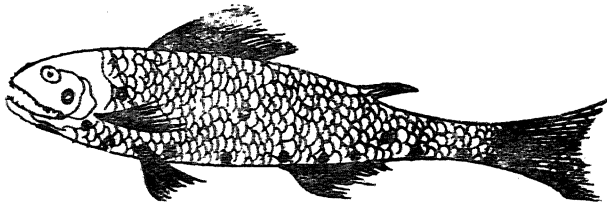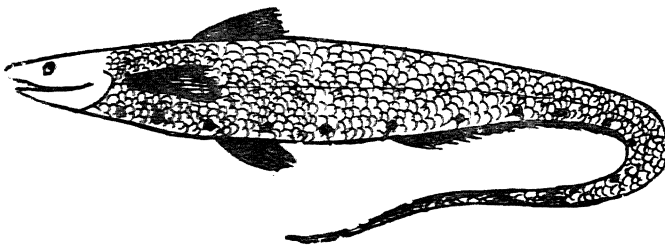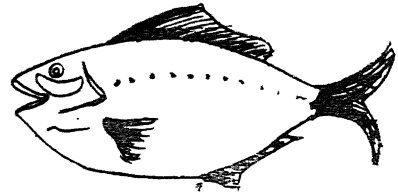
चित्र—1. एंगलर मछली, मुँह के ऊपर 'लैन्टर्न' और नीचे दलदल में सहारे के लिए झाड़ सदृश्य संरचना। चित्र—2. स्क्रोपिलस क्रोकोडिलस के शरीर पर काले बिन्दु के रूप में फोटोफोर। चित्र—3. हेलो-सॉरोपसिस, काले बिन्दु के रूप में फोटोफोर। चित्र—4 पैचिस्टोमिअस माइक्रोडान। चित्र—5. पोरिचथिस। चित्र—6. फोटोब्लिफेरॉन।

महान सोवियत वैज्ञानिक : बोरिस लिचकोव

राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप

महान सोवियत वैज्ञानिक **बोरिस लिचकोव** के प्रति टिप्पणी करते हुए एक पत्र में सोवियत जीवविज्ञानी **एन० खोलोद्नी** ने **वर्नाड्स्की** को लिखा था :

"मैं उन्हें अपने विद्यार्थी जीवन से जानता हूँ और मैं उनका एक ऐसे महान् वैज्ञानिक के रूप में आदर करता हूँ जिसमें सामान्यीकरण करने की चमत्कारी प्रतिभा है। ·····विज्ञान उनके लिए जीवन का उद्देश्य है। बहुत थोड़े से व्यक्ति ही उनके जैसे हैं और उनको उचित सम्मान दिया ही जाना चाहिये।"

बोरिस लिचकोव का जन्म 18 जुलाई, 1888 को इरकुल्स्क में हुआ था। उनके पिता मूल रूप से खोलमोगोरी के निवासी थे जो आर्चान्जेल्स्क क्षेत्र में है। बोरिस के पिता लियोनिद लिचकोव एक सांख्यकी विशेषज्ञ और अर्थशास्त्री थे और माँ एक स्कूल-शिक्षिका थीं। इस बौद्धिक-समृद्धि के वातावरण ने बोरिस के शैशव और बाल्यावस्था को अत्यन्त प्रभावित किया था।

1891 में लिचकोव-परिवार कीएव आया। यहीं मात्र सोलह वर्ष की आयु में बोरिस ने लोकप्रिय वैज्ञानिक लेख लिखना प्रारम्भ किया। ये लेख भौतिक भूगोल, अर्थशास्त्र, सांख्यकी और प्राकृतिक विज्ञानों की प्रविधि से सम्बन्धित थे।

18 वर्ष की अवस्था में बोरिस ने कीएव विश्वविद्यालय के भौतिकशास्त्र और गणित-संस्थान के प्राकृतिक विज्ञान विभाग में प्रवेश लिया। यहीं महान् भूविज्ञानी **एन० आन्द्रूसोव** के व्याख्यानों से उनमें भूविज्ञान के प्रति इतनी अधिक रुचि उत्पन्न हुयी कि उन्होंने भूविज्ञान के अध्ययन के प्रति अपने को समर्पित करने का निर्णय ले डाला। आन्द्रूसोव के निर्देशन में बोरिस ने कैस्पियन सागर के पूर्वी तट पर स्थित मैन्जीश्लाक प्रायद्वीप पर जीवाश्मिकी सम्बन्धी अनेक अध्ययन किये। जैसे-जैसे अतीत के अवशेषों का उनका अध्ययन बढ़ता गया वे उनमें और भी डूबते चले गये। उनकी रुचि अमोनाइटों और ट्रिगोनियाओं में, जो प्राचीन चूर्ण प्रावारों के जीवाश्मीकृत अवशेष थे, केन्द्रित सी हो गयी। इस अध्ययन के परिणाम दर्शाते हुए उन्होंने इस क्षेत्र के ट्रिगोनियाओं पर अपना प्रथम स्वतन्त्र शोधपत्र प्रस्तुत किया। इस शोधपत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें समस्या को स्तर विज्ञान, जीवाश्मिकी, सामान्य जीवविज्ञान और विकासात्मक सिद्धांत के दृष्टिकोणों से जाँचा-परखा गया था।

बोरिस के उपरोक्त अनुसंधान की अत्यन्त प्रशंसा हुई। सोवियत जीवाश्म-वैज्ञानिकों **बी० सोकोलोव** और **वी० मेनर** ने इस कार्य का निम्नलिखित शब्दों में मूल्यांकन किया :

"ट्रिगोनिया के विस्तार-क्षेत्र का विश्लेषण, उनका नवीन वर्गीकरण और अनुसंधानकर्ता के मौलिक निष्कर्ष इस लेख को शोध-परक लेखों में अनुपमेय बना देते हैं। एक ट्रिगोनिया समूह का नामकरण भी उनके नाम पर किया गया···।"

1914 में बोरिस लिचकोव ने "प्राकृतिक विज्ञानों की संज्ञानात्मक सीमाएँ" नामक अध्ययन प्रकाशित किया। इसमें प्राकृतिक विज्ञानों और दर्शन के अंतर्गुंफन को रेखांकित किया गया था। लिचकोव के अनुसार "प्रत्येक प्राकृतिक विज्ञानी को दर्शन में और प्रत्येक दार्शनिक को प्राकृतिक विज्ञान की सामान्य प्रवृत्तियों और समस्याओं से पूर्णतया परिचित होना चाहिये। यही आदर्श है।"

और बोरिस लिचकोव अपने संपूर्ण-जीवन की अवधि में इस आदर्श से पूर्णतया संलग्न रहे।

प्रवक्ता (शिक्षा), ए० पी० एन० महाविद्यालय, बस्ती-272001, उत्तर प्रदेश

बोरिस के मतानुसार विषय-वस्तु अनश्वर है और तथ्य-वस्तु को संकल्पनाओं द्वारा संपूरित किया जाना अपेक्षित है। वास्तविकता के वैज्ञानिक प्रादर्शों की एक दूसरी विशेषता यह है कि उनमें बिम्बीकरण का अत्यधिक उपयोग होता है। बोरिस लिचकोव के अनुसार "मनुष्य का संपूर्ण चिंतन बिम्बों द्वारा होता है और विज्ञान के लिये तथ्यों और तार्किकी का उतना ही महत्त्व है, जितना कल्पना और बिंबीकरण की प्रक्रिया का।" आज के विज्ञान सम्बन्धी चिंतन में यह विचारधारा अत्यन्त महत्त्पूर्ण है।

1923 में, बोरिस लिचकोव ने "जीवन का उद्भव और विकास" पुस्तक प्रकाशित की। बोरिस ने यह मत व्यक्त किया कि कोई भी जीव (आर्गेनिज्म) एक स्वनियंत्रित और स्वसंपोषित (सेल्फ रेगुलेटरी एण्ड सेल्फ सस्टेनिंग) यन्त्र है जिसका कार्य वाह्य कारकों से अपने को बचाते हुए जो जीवन्त है उसे सुरक्षित रखना है। मृत अथवा अजीवित से जीवन के उद्भव धारणा के सम्बन्ध में लिचकोव का विचार था कि अजीवित से जीव-निर्माण की प्रक्रिया सम्भव होने के लिये कुछ मूलभूत शर्तें पूरी होना आवश्यक है। और, यह पूर्वापेक्षाएँ मणिभों के अस्तित्व में निहित होती हैं।

लिचकोव ने दोनों प्रकार के विकासात्मक अवयवियों—प्रथम प्रकार के जो परिस्थितियों से पूरी तरह समंजीकृत होते हैं जिन्हें विशेषीकृत (स्पेशलाइज्ड) कहा जाता है और दूसरी प्रकार के जो परिस्थितियों से न्यूनतम समंजीकृत अर्थात् प्लास्टिक या बहुप्रकार्यात्मक होते हैं—के बीच सीमा रेखा खींचने का प्रयास किया। पर्यावरण में आधारभूत परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पहले प्रकार के अवयवी समाप्त हो जाते हैं जब कि दूसरे प्रकार के अवयवी अधिक जटिल होकर वातावरण के प्रभावों को सहन करने की योग्यता विकसित कर लेते हैं।

1917 के क्रांतिकारी वर्ष में बोरिस लिचकोव ने अपनी परास्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की तथा कीएव विश्वविद्यालय में ऐतिहासिक भू-विज्ञान पर एक व्याख्यान-श्रृंखला प्रस्तुत की। उसी वर्ष उन्हें उक्रेन भू-विज्ञान समिति, जिसके तत्कालीन अध्यक्ष प्रख्यात शैल वैज्ञानिक **वी० लुचित्स्की** थे, की सदस्यता के लिये आमंत्रित किया गया।

1918 में बोरिस लिचकोव को प्रख्यात सोवियत वैज्ञानिक, प्रकृतिवादी और चिंतक **वी० वर्नाड्स्की** से मिलने का अवसर मिला। यह मिलना एक ऐसी मित्रता का प्रारम्भ था, जो चौथाई शताब्दी तक चली।

सोवियत सत्ता की विजय के पश्चात् बोरिस लिचकोव कीएव में ही रहे। अनेक वर्षों तक वे उक्रेन भू-विज्ञान समिति के अध्यक्ष रहे। वे उक्रेन की वैज्ञानिक अकादमी के भी संस्थापक-सदस्य थे। यहीं रहते हुए, उन्होंने उक्रेन के भू-वैज्ञानिक अनुसंधानों के निर्देशन का कार्य किया।

सोवियत विज्ञान पत्रिका 'साइंस यू० एस० एस० आर०' (अंक 2, 1987) में प्रकाशित **आर० बालानबिन** के एक लेख के अनुसार "लिचकोव के वैज्ञानिक विचारों तथा सिद्धान्तकार की प्रतिभा की अभिव्यक्ति उनके उत्तरी गोलार्द्ध के मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों के जीवाश्मीय मरुस्थलों सम्बन्धी अध्ययनों में हुयी।"

इस सन्दर्भ में पूर्ववर्ती विचारधारा यह थी कि खुले क्षेत्रों में हिमनदों की समाप्ति से मरुस्थलों का जन्म हुआ। यह सिद्धांत **ए० तुत्कोव्स्की** द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इस सम्बन्ध में उसका तर्क यह था कि पोलिस्ये क्षेत्र के रेतों के ढूह बिल्कुल उसी प्रकार के हैं जैसे कराकुम और कीजीत्कुम मरुस्थलों के रेतों के ढूह।

अपनी यात्राओं के पश्चात् लिचकोव ने हिमनदों की यह संकल्पना स्वीकार नहीं की। उनका मत था कि आज जहाँ मरुस्थल हैं वहाँ कभी जल-क्षेत्र रहे होंगे।

"सीढ़ीनुमा आकार की रेतीली संरचनाएँ हिमनदों के किनारे पानी के प्रवाह को व्यक्त करती हैं न कि किसी मरुस्थल की उपस्थिति।"

लिचकोव ने अपना ध्यान नदियों के जल-प्रवाह की ओर केंद्रित किया जो धरती की तलीय संरचना को परिवर्तित करने का प्रभावशाली कारक है और उसे समतल करते हुए रेतीले किनारे उत्पन्न कर देता है। तलीय आकृति की संपूर्ण नति विशाल हिमनदों के दाब के प्रभाव में भू-पटल के कंपन का परिणाम होती है और जब यह दाब समाप्त हो जाता है तो स्थायी रूप प्राप्त कर लेती है।

लिचकोव ने द्नीपर और प्रिप्यात नदियों के अपेक्षाकृत भोथरे उभारों की व्याख्या करने का प्रयास किया जो आज भी स्वीकृत व्याख्या है। उन्होंने सीढ़ीनुमा पंक्तियों का जो अंकन किया वह भूमध्यसागरीय सीढ़ीनुमा आकारों (टेरेसेज) के समतुल्य हैं। पृथ्वी के इतिहास में अंतिम क्वार्तरने हिमनदीकरण के क्षेत्रों में विभिन्न नदी-प्रणालियों के द्वारा निर्मित इन सीढ़ीनुमा संरचनाओं को स्तरविन्यासिक सन्दर्भ बिंदुओं के रूप में उपयोग करना अपेक्षाकृत सरल होता है क्योंकि वहाँ उपस्थित हिमनदीय अवसादों (ग्लेशियल सेडिमेंट्स) से भूतलीय घटनाओं का समय-निर्धारण किया जा सकता है।

विशाल हिमनदों के अभ्याघात से भौमिक-स्थिति में महान् परिवर्तन होते थे जिनसे हिमनदीय उभार, वहित स्तर निर्माण एवं विशिष्ट निक्षेप निर्मित हो जाते थे। पुरातन स्तरों की प्राप्ति नवीन स्तरों के साथ संभव हो जाती थी। नदी-तलों की नति भी परिवर्तित हो जाती थी। इनके आपसी सम्बन्धों के आधार पर इन भूतलीय घटनाओं और परिवर्तनों का क्रम-निर्धारण संभव हो सकता है।

1915 में विज्ञान अकादमी के अंतर्गत रूस के प्राकृतिक उत्पादक बलों के अध्ययन के लिये एक आयोग (कमीशन फॉर स्टडीज़ ऑव नेचुरल प्रोडक्टिव फोर्सेज ऑव रशा) का गठन किया गया और **वर्नाड्स्की** के आमंत्रण पर लिचकोव को 1927 में उसका वैज्ञानिक सचिव नियुक्त किया गया। 1930 में यह समिति एक परिषद् के रूप में पुनर्गठित की गयी। इस आयोग की स्थापना कुर्स्क चुंबकीय असंगति कोला प्रायद्वीप एवं करबोगाज गोल के खनिज-भंडारों की जाँच और उराल, मध्य एशिया तथा काकेशस के क्षेत्रों के व्यापक अध्ययन के उद्देश्य से की गयी थी। सोवियत सत्ता के प्रारम्भिक वर्षों में आयोग ने अनेक ऐसे वैज्ञानिक संस्थानों की स्थापना की जिन्होंने परवर्ती काल में सोवियत विज्ञान को उन्नत करने में महत्वपूर्ण भूमिका ग्रहण की।

लिचकोव ने इस आयोग की अपनी कार्यावधि में प्रशासनिक व्यस्तताओं के बावजूद अनेक अध्ययन-अभियानों का आयोजन करते हुए देश के सुदूर भागों की यात्राएँ कीं, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में भू-विज्ञान और भू-आकृतिविज्ञान पर नियमित व्याख्यान दिये तथा प्रति वर्ष लगभग दस शोध-पत्रों का प्रकाशन किया। भू-विवर्तनिकी (जियो-टेक्टोनिक्स) में उनकी रुचि भी अनवरत बनी रही। उस समय नदी तल (खिर-बेस) के ऊपर और नीचे के जलीय क्षेत्रों के द्रवगतिक (हाइड्रोडायनमिक) लक्षणों की व्याख्या के लिये ऊर्ध्वाधर भूमि जल क्षेत्रीयता (वर्टिकल ग्राउन्ड-वाटर जोनैलिटी) का उपयोग किया जाता था। लिचकोव ने भू-जल वितरण सिद्धान्त को भू-आकृति-विज्ञान, भौतिक भूगोल और गतिज-भू-विज्ञान के आँकड़ों और अवधारणाओं से समृद्ध किया क्योंकि वह पृथ्वी की सम्पूर्ण जल-प्रणाली को एक एकीकृत पूर्णता स्वीकार करते थे। पृथ्वी के जल भण्डारों के सम्बन्ध में उन्होंने एक नवीन विचारधारा को जन्म दिया।

आज भी वातावरण में उपस्थित जल का अध्ययन मौसम-विज्ञान का, पृथ्वी तलीय जल का अध्ययन समुद्रविज्ञान का और अन्तर्भूजल का अध्ययन जल-भू-विज्ञान का अलग-अलग विषय-क्षेत्र है। परन्तु वर्नाड्स्की ने पृथ्वी के समस्त जल को एक प्रणाली के रूप में देखा और लिचकोव ने भौगोलिक और भू-वैज्ञानिक आँकड़ों द्वारा उनके इस सिद्धान्त को समर्थन दिया।

वास्तविकता यह है कि वर्नाड्स्की और लिचकोव दोनों ही पृथ्वी पर जीवन के आधारभूत नियमों की खोज कर रहे थे। वर्नाड्स्की ने जीव-मण्डल (बायो-

स्फीयर) के सम्बन्ध में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया था जो प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा था। इसी काल में लिचकोव ने 'महाद्वीपीय-गति और अतीत की जलवायु' विषयक अपनी पुस्तक प्रकाशित की और विश्व की इस दिशा की विचार-धारा को प्रभावित किया।

महाद्वीपों की क्षैतिज गतिशीलता की व्याख्या लिचकोव ने पृथ्वी के अक्षीय घूर्णन और सूर्य के चतुर्दिक परिभ्रमण में होने वाली अनियमितताओं के कारण गुरुत्वाकर्षण बल में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर किया। उनके मतानुसार महाद्वीप के अपेक्षाकृत हल्के भूतलीय अंश अत्यन्त भारी दाब और उच्च ताप की अवस्था में अपेक्षाकृत सघन निम्नतलों, जो उच्च-श्यानता के द्रव की भाँति व्यवहार करते हैं, में तैरते हैं। लिचकोव की इस विवर्तनिक अवधारणा का विस्तार करके जर्मन भू-भौतिक विज्ञानी **ए० वेगेनर** ने ऊर्ध्व भूतलगतियों (वर्टिकल क्रस्टल मोशन्स), भू-अभिनति प्रक्रियाओं (जियोसिन्क्लीनल प्रासेसेज) और भूतल पर कार्यरत भू-वैज्ञानिक बलों की व्याख्या करने का प्रयास किया।

लिचकोव विशिष्ट मौसम सम्बन्धी, भू-आकृतिक और जैव-भौगोलिक प्रभावों की व्याख्या भूतल (क्रस्ट) की क्षैतिज और ऊर्ध्व गतियों के आधार पर करना चाहते थे, परन्तु अपनी संकल्पना में वह वर्नाड्स्की के प्रत्ययात्मक मानक स्तर पर नहीं पहुँच सके। **बालांदिन** का विचार है कि ऐसा होना इसलिये सम्भव नहीं हुआ क्योंकि वह सम्पूर्ण भूतलीय और ब्रह्माण्डीय बलों को समावेशित करने वाली अत्यन्त जटिल प्राकृतिक प्रक्रियाओं की व्याख्या करना चाहते थे और इसके लिये पर्याप्त सैद्धांतिक आधार उपलब्ध नहीं थे। उन्होंने
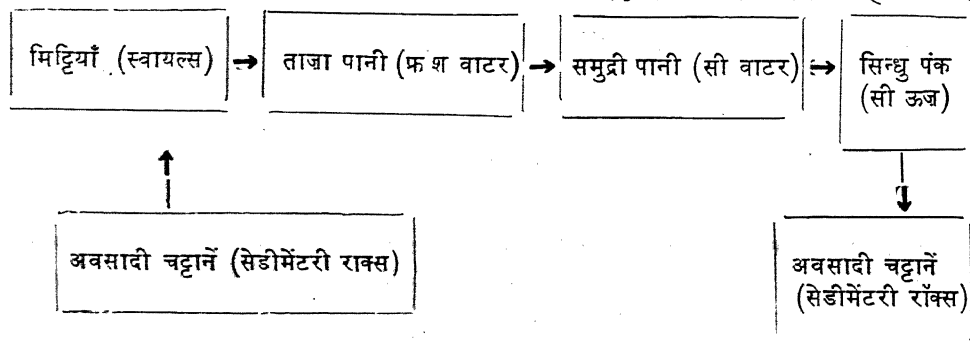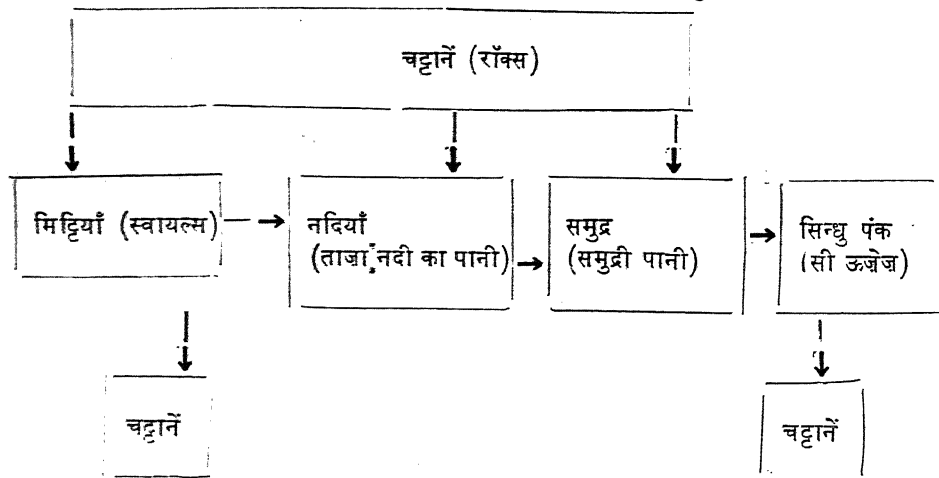
जिन वैज्ञानिक नियमों और संकल्पनाओं का सहारा लिया उनमें से अधिकांश की पुष्टि नहीं की गयी थी।

वर्नाड्स्की लिचकोव के सिद्धान्तों को कितना महत्व देते थे इसका उदाहरण लेनिनग्राद के भू-वैज्ञानिक संस्थान के **आन्देई विताल्येविच लापो** ने अपनी पुस्तक 'ट्रेसेज़ ऑव बायगान बायोस्फियर्स' (मीर पब्लिशर्स, मास्को) में दिया है। वर्नाड्स्की ने अवसादी चट्टानों की निर्माण प्रक्रिया निम्न प्रकार से प्रस्तावित की थी, जो जल के भीतर ही घटती थी।

अर्थात् अवसादी चट्टानों का निर्माण महाद्वीपीय तलों पर भी हो सकता है। वर्नाड्स्की ने न केवल इस विचार को स्वीकार कर लिया वरन् इसे अपनी पुस्तक 'जीवमण्डल और इसके चतुर्दिक वातावरण की रासायनिक संरचना' में इस पर विचार भी किया।

परन्तु वैज्ञानिक चिंतन में विरोधी दृष्टिकोण अमान्य नहीं होते —जब तक कि कोई विचारधारा पूरी तरह गलत न सिद्ध कर दी गयी है। ऐसा वर्नाड्स्की और लिचकोव के सम्बन्ध में भी सच है।

लिचकोव की मान्यता थी कि भूगर्भ में तेल का निर्माण नदियों की घाटियों और डेल्टा-प्रदेशों में हुआ। वर्नाड्स्की ने इस पर असहमति प्रकट की जिस पर लिचकोव ने उत्तर दिया, "मैं नहीं समझता कि आप सही हैं। मेरी अवधारणा सामान्यीकरण की उन शृंखलाओं की एक कड़ी है जिन्हें मैंने पिछले वर्षों में प्रस्तुत किया है।"

इसी प्रकार लिचकोव मानते थे कि पहाड़ों का निर्माण नदियों द्वारा किया गया है जबकि वर्नाड्स्की नदियों को अवसादन का कारण स्वीकार नहीं करते थे। परन्तु वर्नाड्स्की ने उनकी आलोचना जिस रूप में की थी वह वैज्ञानिक नम्रता का एक उदाहरण हो सकता है। वर्नाड्स्की ने लिखा था—

"तुम्हें यह याद रखना चाहिये कि अत्यधिक संभावना इस बात की है कि तुम्हारी धारणाएँ सत्य हों और मेरी त्रुटिपूर्ण। मैंने तो इस अपरिचित क्षेत्र में अचानक प्रवेश किया है। सामान्यीकरण की दृष्टि से तुम्हारी स्थिति अधिक सुदृढ़ है।"

वर्नाड्स्की के लिचकोव के प्रति स्नेह का एक उदाहरण वह समीक्षा है जो उन्होंने लिचकोव के शोध पत्रों का डॉक्टरेट के लिये आकलन किये जाने पर लिखी थी।

"सोवियत भूविज्ञान के अत्यंत अधिकारी विद्वान् अकादमीशियन **एन० आन्द्रसोव** के शिष्य लिचकोव नई पीढ़ी और विश्व-प्रसिद्धिप्राप्त भू-वैज्ञानिकों में प्रथम पंक्ति में हैं। मेरा विश्वास है कि उनके नवीन विचार मेरे अध्यापक **वी० डोकुचाएव** के द्वारा निर्मित विचार-पथ को और आगे ले जाएँगे।"

1950 में लिचकोव ने नक्षत्रीय भूविज्ञान और खगोलीय भूविज्ञान के नवीन क्षेत्रों में कार्य करना प्रारम्भ किया। इन विषयों में भू-भौतिकी, भू-रसायन, खगोलविज्ञान, भूगोल और ऐतिहासिक भूविज्ञान की आधारभूत समस्याओं पर समग्र दृष्टि से दृष्टिपात करने का प्रयत्न किया गया। इस सम्बन्ध में लिचकोव ने अनेक शोधपत्रों के अतिरिक्त 'द अर्थ्स नैचुरल वाटर्स एण्ड द लिथोस्फीयर' (1960) और 'फंडामेंटल्स ऑफ द अर्थ्स रीसेंट हिस्ट्री' (1965) प्रकाशित की।

पहली कृति में अपेक्षाकृत अधिक स्थलों पर गहरी अंर्तदृष्टि के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिये—

"भूवैज्ञानिकों के बहुसंख्यक वर्ग की धारणा के विरोध में हमारी धारणा है कि पहाड़ों का निर्माण पृथ्वी के घूमने के कारण ही हुआ है। पर्वत-श्रेणियों का निर्माण पृथ्वी के दीर्घवृत्तज (इलिप्सायड) के केन्द्रापसारी (सेंट्रीफ्यूगल) बलों द्वारा हुआ है और यही उनकी ज्यामितीय रचना की व्याख्या करता है। पर्वत-निर्माण की प्रक्रिया उस बड़ी प्रक्रिया का अंश है जिसमें पृथ्वी की घूर्णन गति के परिवर्तन से पृथ्वी की आकृति में परिवर्तन होता है। पृथ्वी का गुरुत्वीय भार इसके आपसी द्रव्याकर्षण से कहीं अधिक है·········अर्थात् गुरुत्वीय-नियम की समझ पृथ्वी पर जीवन की समझ के लिये आवश्यक है।"

अपने जीवन के सांध्यकाल तक बोरिस लिचकोव ने वैज्ञानिक जीवन दृष्टि के प्रति आस्था और गहरी संलग्नता प्रदर्शित की। बहुसंख्यक वैज्ञानिक समुदाय के विरोध के बावजूद वे निर्भीकतापूर्वक अपनी मान्यताओं और सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति देते रहे। □□

हर घर में मटियाले चूल्हे

राजीव गुप्ता

ज़िंदगी भर चूल्हा फूंकते हुए कलेजे को छलनी कर लेने वाली करोड़ों भारतीय गृहणियों के लिए आशा का संदेशा लेकर आये हैं सुधरे चूल्हे। लेकिन अभी हमारे वैज्ञानिकों को इनमें काफी सुधार करने होंगे, खासतौर से स्थानीय ज़रूरतों और उपलब्ध सामग्री के संदर्भ में। यों पिछले तीन साल में गैर-परम्परागत ऊर्जा विभाग ने पूरे देश में 45 लाख के करीब सुधरे चूल्हे लगवा दिए हैं और कई गाँव धुआँरहित कर दिए हैं।

—संपादक

वातावरण के शहरी प्रदूषण से तो सभी वाकिफ़ हैं, परन्तु ग्रामीण घरेलू प्रदूषण को देश के पर्यावरण की सूची में अत्यन्त निचला दर्जा प्राप्त है। गुजरात राज्य में अहमदाबाद के आणंद ज़िले के 36 घरों के चौके के चूल्हे का अध्ययन करने से पता चला है कि रसोई बनाने वाली औसत गृहणी के फेफड़ों में 7000 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर (टी० एस० पी०) या हवा में तैरने वाले प्रदूषककण विद्यमान हैं जो कि 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' द्वारा निर्धारित, 150 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर से अधिक नहीं होना चाहिए। ठीक इसी प्रकार गुजरात की ग्रामीण स्त्रियाँ औसतन 3,850 नानोग्राम प्रति घन मीटर "बी० ए० पी०" नामक प्रदूषक धुएँ द्वारा ग्रहण करती हैं। दूसरे शब्दों से, गुजरात की आम ग्रामीण महिला चौके के धुएँ से लगभग 20 पैकेट सिगरेट के बराबर 'बी० ए० पी०" ग्रहण करती हैं—चूँकि एक सिगरेट में 20 नानोग्राम बी० ए० पी० पाया जाता है।

बी० ए० पी० जैसे कैंसरजन्य पदार्थ के अलावा लकड़ी के धुएँ में अनेक प्राणघातक तत्व रहते हैं, जिनमें कार्बन मोनोआक्साइड व फार्मल्डीहाइड मुख्य प्रदूषकों की श्रेणी में आते हैं।

कार्बन मोनोऑक्साइड शरीर के भीतर प्रवेश कर खून में ऑक्सीजन का संचार करने वाले तत्व, हीमोग्लोबीन, से मिलकर एक ऐसा स्थायी मिश्रण बनाता है कि ऑक्सीजन का संचार कम हो जाता है व रक्त के लाल कणों की कमी से **एनीमया या रक्ताल्पता** की बीमारी हो जाती है। अनुमान है कि हमारे देश में कम उम्र की लड़कियों में 40 से 60 प्रतिशत, वयस्क महिलाओं में 25 से 30 प्रतिशत और 24 सप्ताह से अधिक के गर्भवाली 50 प्रतिशत स्त्रियाँ रक्ताल्पता की शिकार हैं। इसका दुष्प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर भी पड़ता है—जो ऑक्सीजन के अभाव में जन्मते ही मृत्यु का वरण करता है।

धुएँ में दूसरा ख़तरनाक प्रदूषक "फार्मल्डीहाइड" है, जिसके कारण आँख, नाक और गला जलने लगते हैं। फेफड़े की नसों पर भी इसका बुरा असर पड़ता है तथा चर्मरोगों को भी यह उभारता है। धुएँ में काम करने वाली औरतों पर इसका प्रभाव ठीक वैसा ही पड़ता है जैसा धूम्रपान करने वालों के स्वास्थ्य पर। दिल्ली के अस्पतालों में किये गये परीक्षण द्वारा धुएँदार चूल्हे प्रयोग करने वाली महिलाओं के फेफड़ों में **ब्रोंकाइटिस** रोग पाया गया जोकि अक्सर बीड़ी/सिगरेट पीने वालों को होता है। इस रोग में फेफड़ों में अत्यधिक हवा भर जाती है और वे बुरी तरह फूल जाते हैं यानी कि हमारी ग्रामीण महिलाएँ बिना ही कोई कश खींचे चौके के धुएँ से धूम्रपान का शिकार हो चली हैं।

रसोई बनाते समय धुँआ कम हो इसके लिए समुचित ईंधन, निर्धूम चूल्हा तथा हवादार चौके का इंतजाम आवश्यक है।

जहाँ तक ईंधन का सवाल है, लकड़ी के कोयले से लेकर गोबर-गैस तक के उपाय प्रकाश में आये हैं। परन्तु इनमें से कोई भी लकड़ी का विकल्प नहीं बन पाया है। जरूरत ऐसे ईंधन की है जो न्यूनतम धुँआ दें। बबूल, धामड़ा व कैथा की लकड़ी में धुँआ काफ़ी कम होता है, जबकि नीम बहुत धुँआ छोड़ता है।

द्वारा श्री हरीश अग्रवाल, डी 40, गुलमुहर पार्क, नई दिल्ली—49

अतः कम धुँआ देने वाले वृक्षों को सामूहिक वानिकी कार्यक्रम के जरिए भारी मात्रा में लगाना चाहिए।

दूसरा विकल्प है—निर्धूम अथवा धुँआ रहित चूल्हा। निर्धूम चूल्हे का अभियान आज से करीब 50 साल पहले आरम्भ हो चुका था, परन्तु आज तक हमारे ग्रामीण अंचल में बिना धुएँ वाला चूल्हा घर नहीं कर पाया है। ज्यादातर चूल्हे 40वें दशक में हैदराबाद इंजीनियरिंग रिसर्च लेबोरेटरी के बने "हर्ल" चूल्हे पर पर आधारित हैं। इसके पश्चात् पचासवें दशक में राजू चूल्हा व मगन चूल्हा प्रकाश में आए और देखा-देखी ढेर सारे चूल्हे निर्धूम-चूल्हों की इस कतार में आ खड़े हुए। विडंबना यह हुई कि धुँआ तो ग्रामीण गृहणी के गले के नीचे उतर गया मगर निर्धूम चूल्हा नहीं उतर सका। क्योंकि सही तकनीक, उचित प्रशिक्षण व सार-संभाल के अभाव में यह सुधारा चूल्हा ग्रामीण महिलाएँ नहीं अपना पायीं।

जब तक गाँव की स्त्रियाँ ऐसे चूल्हे खुद नहीं बना पातीं, जिनमें ईंधन कम लगे, आँच ज्यादा मिले और धुएँ का उचित निष्कासन हो, तब तक वे चूल्हे गृहणियाँ नहीं स्वीकारेंगीं। यदि चौके में कार्य करने वाली महिला अपना चूल्हा आप मरम्मत नहीं कर सकती तो ऐसा चूल्हा ज्यादा दिन नहीं टिकने वाला। सुधरे निर्धूम चूल्हे को भी सुचारु रूप से चलाने के लिए गृहणी के मन में यह भाव जागना जरूरी है कि चूल्हा उसका अपना है, सरकार का नहीं।

चौके के धुएँ से निपटने का तीसरा कारगर उपाय है—हवादार चौका। कबूतर के दड़बों के सरीखे दमघोंटू चौकों में भोजन पकाने के बजाय महिलाओं को खुले आँगन, दालान या चौबारे में रसोई बनानी चाहिए। पक्के घरों की अपेक्षा कच्चे घरों में धुँआ बाहर निकलने के कई रास्ते हैं। परन्तु सुरक्षा की दृष्टि से बने पक्के घरों में इस समस्या का उचित समाधान नहीं हो पाता है। चोर-उचक्कों से बचने के लिए लोग बन्द घर और छोटे-छोटे रोशनदान बनाते हैं, जिससे धुँआ घर के भीतर ही घुट कर रह जाता है।

अन्त में यदि हमारी ग्रामीण औरतों को जानलेवा धुएँ के चंगुल से बचाना है तो कम धुँआ देने वाली लकड़ी के पेड़ लगाए जाएँ, घरों को और हवादार बनाया जाए तथा ऐसे सुधरे चूल्हों को ग्रामीण भारत में फैलाया जाय जो लोक स्वीकृति की कसौटी पर पूर्णरूपेण खरे उतरें। □□

(इस्वा फीचर्स)

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1990

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख को 500 रु० का पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।
(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1990 से दिसम्बर 1990 माह के बीच प्रकाशित हो।
(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।
(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

विज्ञान को ज़मीन से कब जोड़ा जाएगा ?

सुन्दरलाल बहुगुणा

भारतीय विज्ञान कांग्रेस के 77वें अधिवेशन में **प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह** का उद्घाटन भाषण, जो उन्होंने परम्परा से हटकर लिखित के बजाय जबानी दिया, एक ऐतिहासिक उद्बोधन माना जाएगा। उन्होंने जो कुछ कहा है, उससे अल्पदृष्टि वाले राजनेता की यथास्थिति को कायम रखने के बजाय एक नीतिमान दृष्टा के विचारों की ध्वनि सुनाई देती है। उन्होंने विज्ञान के मानवीय पहलू के साथ ऊर्जा के प्रदूषणरहित वैकल्पिक स्रोतों और विकेन्द्रित उत्पादन की तकनीकों को विकसित करने की अपील की है।

मानव जाति के भविष्य की चिंता करने वाले मनीषी, राजनेताओं को कभी नहीं समझ सकते हैं। नहीं तो **आइन्स्टाइन** को अपने अंतिम दिनों यह पछतावा न होता कि अणुशक्ति का आविष्कार कर उसने भारी भूल की थी और **बर्ट्रेण्ड रसेल** को अपने देश के अणु आयुध बनाने वाले कारखाने के द्वार पर इस विनाशकारी प्रवृत्ति को रोकने के लिए धरना देकर जेल की हवा न खानी पड़ती। भोगवादी सभ्यता के केन्द्र पश्चिमी जगत् में आज भी ऐसे मानवतावादी वैज्ञानिक मौजूद हैं, पर राजनेताओं की उपेक्षा और दूरदृष्टि के अभाव में उनकी आवाज़ दबी हुई है।

वर्ष 1987 के लिए वैकल्पिक 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त करने वाले दो वैज्ञानिकों, नार्वे के शांति पर शोध करने वाले **जॉन गालत्मुग** और जर्मनी के अणु आयुधों का शांति के लिए प्रयोग और विकल्पों पर शोध करने वाले **हंस पीटर डर** से जब मैंने मानव अस्तित्व और विज्ञान को लेकर एक जन आंदोलन छेड़ने की चर्चा की तो उन्होंने व्यथित हृदय से कहा, "यहाँ पर उसके लिए अनुकूल पृष्ठभूमि नहीं है।" मैं बहुत देर तक इस सोच में डूब गया कि क्या भारत, जिसमें वेदांत का विचार विकसित हुआ है और जिसने वनस्पति में प्राण के वैज्ञानिक सत्य के शोधकर्ता **जगदीश चन्द्र बसु** को जन्म दिया है, वेदांत और विज्ञान का समन्वय कर, मानवता की, जीवन की जय का मंत्र नहीं दे सकता है? जब तक भारत पश्चिम की अंधी नकल करता रहेगा और अपनी संस्कृति के जीवन मूल्यों की उपेक्षा करता रहेगा, यह असम्भव है, लेकिन यदि भारत अपने को पहचान कर प्रकृति का विज्ञान और तकनीकी की मदद से सुसंस्कार कर प्राणीमात्र के लिए सुख-शांति और संतोष की प्राप्ति का रास्ता ढूँढ़ निकालेगा, तो यही सारे विश्व के लिए विकृति से संस्कृति की ओर बढ़ने की नई राह होगी।

बावजूद इसके कि पिछले चालीस वर्षों में भारतीय संस्कृति के मूल्यों के साथ अपने को जोड़ने वाले वैज्ञानिकों के बजाय, धरती और संसाधनों का मानव की भोगलिप्सा के लिए शोषण की तकनीकी विकसित करने वालों का ही बोलबाला रहा है, उन्हें ही राज्य का आश्रय, प्रोत्साहन और मान्यता मिलती रही है। इस देश में ऐसे विज्ञान मनीषी मौजूद हैं जो मानवतावादी विज्ञान की साधना में लगे रहे, वे राजधानियों, महानगरों, अखबारों की सुर्खियों और दूरदर्शन के पर्दों में नहीं, पीड़ित और दुखितों के बीच में अपनी प्रयोगशाला बनाकर काम करते रहे।

मुझे आठ वर्ष पूर्व मद्रास नगर के बाहर एक गाँव में एक ऐसी विभूति के दर्शन हुए, वे भौतिक विज्ञान के जाने-माने विद्वान थे। प्रचलित शोषणकारी व्यवस्था को आगे बढ़ाने के लिए युवकों को तैयार करने वाले एक तकनीकी संस्थान की प्रोफेसरी छोड़कर वे इस गाँव में गाँधी की जैसी झोपड़ी में बैठ गए थे। उन्होंने कम लागत वाला गोबर गैस संयंत्र बनाया था। लेकिन

चिपको सूचना केन्द्र, नवजीवन आश्रम, पोस्ट सिल्यारा, टिहरी गढ़वाल–249155 (उत्तर प्रदेश)

उसे प्रचारित कर लोकप्रिय बनाने के लिए सरकारी मान्यता नहीं मिली थी, क्योंकि इसमें बड़े उद्योगों से निर्मित सामान की खपत कम थी। वे दूसरा प्रयोग गोबर से काई बनाने का कर रहे थे, जिससे गरीब, जिनके लिए अब दाल खरीदना असम्भव हो गया था, सस्ते में प्रोटीन प्राप्त कर सकें। वे थे **प्रो० शेषाद्रि**। उन्होंने दूरी के बजाय काल को प्रधानता देकर पश्चिम के वैज्ञानिक चिंतन को चुनौती देते हुए एक शोधपत्र लिखा था। मैंने यह शोधपत्र तत्कालीन राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री तक भी पहुँचाया था। सम्भवतः यह कहीं रद्दी की टोकरी में पड़ गया हो। सौभाग्य से शेषाद्रि के सम्पर्क में आए कई युवा वैज्ञानिक भारत के गरीबों के लिए उपयुक्त तकनीकी की खोज में लगे हैं। उनका एक समूह देशभक्त लोक विज्ञान और तकनीकी (पैट्रियाटिक साइंस और टेक्नोलॉजी) के नाम से मद्रास में सक्रिय है। पिछले वर्ष उन्होंने खेती में रासायनिक कीटनाशकों के बजाय जैविक कीटनाशकों पर एक संगोष्ठी का आयोजन भी किया था।

सरकारी प्रतिष्ठानों में भी ऐसे वैज्ञानिकों की कमी नहीं है, लेकिन उनका शोधकार्य निहित स्वार्थों की धनलिप्सा की प्रवृत्ति के रास्ते में आड़े आता था, इसलिए उसे दबाया जाता रहा है। धान की हज़ारों देशी क़िस्मों को सुरक्षित रखने वाले कृषि वैज्ञानिक **डॉ रिछारिया** के उत्पीड़न की कहानी जग-जाहिर है। रसायनिक खादों और पानी की राक्षसी माँग वाले बहुप्रचारित संकर बीजों के बाज़ार के लिए उनके शोध कार्य ने ख़तरा पैदा कर दिया था, जो इस देश की अर्थ-व्यवस्था और संस्कृति का मूल आधार है। मानवतावादी विज्ञान और तकनीकी की चिंता को सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। खेती के साथ मिट्टी की गुणवत्ता और जल की आवश्यकता भी जुड़ी हुई है। बढ़ती हुई आबादी और प्रति व्यक्ति घटती हुई कृषि भूमि, पानी की उपलब्धि, ग़लत कृषि पद्धतियों के कारण रेगिस्तान के फैलाव, लवणीकरण और दलदलीपन की चुनौतियों ने अब खाद्य की पूर्ति के लिए 'वृक्ष खेती' को अनिवार्य कर दिया है। अब तक खाद्य, बीज, काष्ठफल, तैलीय बीज, शहद और पौष्टिक मौसमी फलों की खेती के बारे में कोई शोध नहीं हुआ है। वृक्ष खेती केवल वायु प्रदूषण के महादैत्य से ही मुक्ति नहीं दिलाएगी, बल्कि भूमिगत जल के स्तर को ऊँचा उठाने, जल के शुद्धिकरण, सतही जल के प्रवाह का नियमन करने और प्रदूषण को रोकने में सहायक होगी। खाना पकाने के लिए जलाऊ लकड़ी व ऊर्जा में बचत करेगी।

रुड़की स्थित 'केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान' ने गरीबों के लिए सस्ते और टिकाऊ मकान बनाने तथा ताप बिजलीघरों से निकलने वाली राख से ईंट बनाने की तकनीकी विकसित की है। मिट्टी के पलस्तर के साथ तारकोल का उपयोग करके उसे सीमेंट जैसा टिकाऊ बनाया जा सकता है, लेकिन उसके लिए सर्वसाधारण को तारकोल उपलब्ध नहीं हो सकता। यह सड़क बनाने वाले सरकारी निर्माण विभाग का एकाधिकार है। दूसरे यह तकनीक लोकप्रिय हो जाए तो धूल-धुँआ, भूक्षरण व वन-विनाश के द्वारा प्रदूषण फैलाकर नफा कमाने वाले सीमेंट के कारख़ानों का क्या होगा? यही समस्या राख से ईंट बनाने के साथ जुड़ी हुई है। मिट्टी से ईंट बनाने का धंधा बहुत ही लाभप्रद है और यह राजनैतिक अनुग्रह के सहारे चलता है। ताप बिजलीघरों की राख को ठिकाने लगाने के लिए दूर ले जाना पड़ता है, उस पर जो खर्चा लगता है यदि उसे ईंट बनाने के लिए सहायता के तौर पर दिया जाए तो ये ईंटें सस्ती पड़ेंगी।

पिछले चालीस वर्षों में गाँधी को विज्ञान और तकनीकी का विरोधी और तरक्की का दुश्मन साबित कर उनके विचारों को दफ़नाने का भरपूर प्रयास हुआ है। लेकिन गाँधी की मानवतावादी विज्ञान और तकनीकी पर अटूट श्रद्धा थी। इसीलिए उन्होंने इनके विकास के लिए 'अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ' की स्थापना की और अर्थशास्त्री **कुमारप्पा** के मार्गदर्शन में वहाँ पर चूल्हे से लेकर चक्की-चाक और चरखे में सुधार के प्रयोग होते रहे। यद्यपि यह सच है, तकनीकी विकास के सभी क्षेत्रों को यह छोटा-सा केन्द्र,

जो आज भी टिमटिमाते हुए दीप की तरह प्रकाश दे रहा है, स्पर्श नहीं कर सकता था। पर यह एक बुनियादी काम था। यह संतोष का विषय है कि कुमारप्पा के शिल्प तकनीकी विशेषज्ञ 'गाँधी ग्राम विश्वविद्यालय' के पूर्व उपकुलपति **श्री देवेन्द्र कुमार गुप्ता** के मार्गदर्शन में यह केन्द्र आज भी कार्यरत है और वे बायोगैस, भवन-निर्माण और अन्य सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रशिक्षण व शोध-कार्य कर रहे हैं। हमारे देश में आज़ादी के बाद यूरोप की बराबरी करने की होड़ में उच्च तकनीकी के विकास पर जितना धन व बुद्धि लगी है, यदि उसका दसवाँ हिस्सा भी लोकोपयोगी और जनाभिमुख विज्ञान और तकनीकी पर लगता, तो निश्चित रूप से आम लोगों की भोजन, वस्त्र और आवास की ही नहीं प्राणवायु और स्वच्छ जल की बुनियादी आवश्यकताएँ बहुत हद तक पूरी हो जातीं।

विज्ञान का मानवतावादी स्वरूप तब तक प्रकट नहीं हो सकता जब तक हमारे समाज का कोई स्पष्ट दर्शक नहीं है। यदि हम प्राणीमात्र को सुख-शांति और संतोष प्रदान करने के लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहते हैं, जिसका सपना ढाई हज़ार वर्ष पहले **बुद्ध** ने देखा था और जिसे **शूमाखेर** जैसे आधुनिक चिंतकों ने आज के लिए भी उपयुक्त माना है, तो हमें अपनी सभी गतिविधियों - आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और तकनीकी—को उसकी प्राप्ति का साधन बनाना होगा। यह महाप्रश्न विश्वनाथ प्रताप सिंह और उनके जैसा सोचने वाले विश्व के नीतिमान द्रष्टाओं के सामने खड़ा होगा। □□

('**नव भारत टाइम्स**' 14 मार्च 1990 से साभार)

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र एकदिवसीय वैज्ञानिक संगोष्ठी

लेसर का विकास एवं उपयोग

डॉ० विजय मनचंदा

26 मार्च, 1990 को हिन्दी जगत् के इतिहास में एक अद्भुत् अध्याय जुड़ा है। हिन्दी विज्ञान परिषद्, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई द्वारा एकदिवसीय वैज्ञानिक संगोष्ठी 'लेसर का विकास एवं उपयोग' का आयोजन किया गया। गोष्ठी सेण्ट्रल कॉम्पलेक्स सभागृह में सम्पन्न हुई।

लेसर आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में इस शताब्दी की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में हुए अनुसंधान कार्य द्वारा लेसर के ऐसे उपयोग प्रकाश में आए हैं जिनकी कुछ दशक पूर्व तक कल्पना करना भी असम्भव था। हमारे देश के वैज्ञानिक भी इस क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के तत्वावधान में आयोजित इस संगोष्ठी का मुख्य उद्देश्य सक्रिय वैज्ञानिकों को राष्ट्रभाषा हिंदी में विचार-विमर्श के लिए एक मंच प्रदान करना है। इसके फलस्वरूप देश के जनमानस को निकट भविष्य में उसके जीवन में आनेवाले क्रांतिकारी परिवर्तनों की आहट सुनाई देगी।

संगोष्ठी का उद्घाटन **डॉ० आर० चिदम्बरम,** निदेशक भौतिकी वर्ग बी० ए० आर० सी० तथा अध्यक्ष, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद् ने किया। उन्होंने अपने भाषण में इस प्रकार की संगोष्ठियों के महत्व तथा लेसर के चमत्कारिक उपयोगों पर प्रकाश डाला। **डॉ० यू० के० चटर्जी**, अध्यक्ष, लेसर प्रभाग भा० प० अ० केंद्र ने लेसर के विकास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की।

"लेसर का विकास एवं उपयोग" सम्बन्धी विषयों

वैज्ञानिक अधिकारी, रेडियो रासायनिक प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बम्बई–400085

पर भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बम्बई, इंडियन इन्सटीट्यूट ऑव टेक्नोलॉजी, बम्बई, तथा प्रगत-प्रौद्योगिकी केंद्र, इंदौर में अनुसंधान कार्य में संलग्न 10 लब्धप्रतिष्ठित वैज्ञानिकों ने अपने विचार प्रकट किए। लेसर के रूप में मानव ने एक अद्भुत प्रकाश स्रोत को प्राप्त किया है, जो अपनी स्थिर एकवर्णता तथा प्रकाशीय तीव्रता के कारण विश्व भर के वैज्ञानिकों को पिछले तीन दशकों से अपनी ओर आकर्षित किए हुए है। परिणामस्वरूप विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों (चिकित्सा, रसायन, भौतिकी, जीव, अंतरिक्ष, नाभिकीय) तथा कई औद्योगिकी क्षेत्रों में लेसर के विस्तृत एवं व्यापक उपयोग मानव समाज के समक्ष उपस्थित हुए हैं।

अत्यन्त सूक्ष्म और केंद्रित होने के कारण लेसर द्वारा किए जाने वाले आपरेशन लगभग रक्तविहीन होते हैं। लेसर किरण पुंज आवश्यकतानुसार शरीर के किसी भी भाग को सूक्ष्मतापूर्वक काटता है तथा इससे समीपस्थ कोशिकाएँ अप्रभावित रहती हैं। परिणामस्वरूप संक्रमण का भय भी नहीं रहता। इसके द्वारा एक सेकेण्ड के हजारवें हिस्से में सबसे कठोर पदार्थ हीरे में छेद किया जा सकता है। 5 मिलीमीटर मोटी स्टील की चादर को उतनी ही आसानी से काटा जा सकता है, जैसे कि केक को साधारण छुरी से। एक लेसर किरण पुंज में इतनी सामर्थ्य होती है कि वह कई करोड़ टेलीफोन संदेश या लगभग 1 लाख दूरदर्शन कार्यक्रम एक साथ ले जा सकती है।

लेसर किरण पुंज के एक दिशक गुणधर्म का उपयोग राडार द्वारा शत्रु के उपग्रहों व प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करने में भी किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका का बहुचर्चित "स्टार वार्स' कार्यक्रम लेसर के इस उपयोग पर आधारित है। नाभिकीय संलयन तथा उच्च ताप प्लाज़्मा के निर्माण द्वारा उच्च शक्ति लेसरों ने ऊर्जा के क्षेत्र में भी एक नये विश्वास का जागरण किया है। एक पदार्थ के आइसोटोप्स को अलग करने तथा एक परमाणु के संसूचन की क्षमता भी लेसर किरण पुंज में है। चूँकि सभी क्रियाएँ बिना किसी संसर्ग के होती हैं इसलिए किसी प्रकार के संदूषण का भय नहीं रहता।

इस गोष्ठी में लगभग 200 वैज्ञानिकों ने भाग लिया। संयोजक के रूप में **डॉ० एस० ए० अहमद, डॉ० एच० सी० पंत**, तथा आयोजन समिति के अन्य सदस्यों ने परिषद् उपाध्यक्ष **डॉ० डी० डी० सूद** के नेतृत्व में कार्यक्रम को सफल बनाने में सराहनीय कार्य किया। □□

परिषद् का पृष्ठ

विज्ञान परिषद् में स्थापना दिवस समारोह

पिछले माह 10 मार्च को परिषद् के स्थापना दिवस के अवसर पर 'विज्ञान और समाज' विषय पर एक संगोष्ठी की गई। इस संगोष्ठी की अध्यक्षता परिषद् के उपसभापति एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अवकाशप्राप्त अध्यक्ष **प्रो० रामदास तिवारी** ने की। इस गोष्ठी में मुख्य वक्ता **स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती** थे। इनके अतिरिक्त **प्रो० शिवगोपाल मिश्र**, **डॉ० सुप्रभात मुकर्जी, डॉ० ज्वलंत कुमार** शास्त्री (सुल्तानपुर), **डॉ० राम सुरंजन धर दुबे, श्री वीरेन्द्र नारायण सिं**[illegible] (मेरठ), **श्री द्वारिका प्रसाद शुक्ल** (वाराणसी) ने भी अपने विचार व्यक्त किए। इनके अतिरिक्त **प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी, डॉ० मुरारी मोहन वर्मा, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता, श्री विनय कुमार दुबे** ('द टाइम्स ऑव इण्डिया' पत्र से संबद्ध) आदि ने भी भाग लिया। संचालन **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** और धन्यवाद ज्ञापन **प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी** ने किया।

विषय प्रवर्तन करते हुए **प्रो० मिश्र** ने विज्ञान परिषद् के विगत 75 वर्षों के कार्य का लेखा-जोखा संक्षेप में प्रस्तुत किया और परिषद् के नेतृत्त्व का भार तरुण हाथों में जाये, इस बात पर विशेष बल दिया।

डॉ० मुकर्जी—हम बच्चों को विज्ञान पढ़ाते हैं इसका यह मतलब नहीं कि वे सभी आगे चलकर वैज्ञानिक ही बनेंगे, वरन् इसलिए कि उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण पनपे। किसी भी कार्य के सम्पादन में वे वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनायें। विज्ञान परिषद् की भूमिका यही है। परिषद् पिछले 76 वर्षों से अपनी भूमिका बखूबी निभाती आयी है, पर अभी भी बहुत कुछ करना शेष है।

ज्वलंत जी—मैं जिस क्षेत्र का व्यक्ति हूँ वह 'वेद' और संस्कृत का क्षेत्र है, पर विज्ञान मुझसे अपरिचित नहीं है। पिछले 100 वर्षों में विज्ञान ने तेज़ी ने समाज को प्रभावित किया है। पिछले एक दशक में तो विज्ञान बड़ी तेज़ी से बढ़ा है। विज्ञान ने हमारे चिंतन-मनन को प्रभावित किया है। किन्तु जितनी तेज़ी से हमारा जीवन-स्तर ऊँचा उठा है उतनी तेज़ी से अवैज्ञानिक मान्यताओं को ध्वस्त नहीं कर पाया है। आज भी हम पाखण्डों से घिरे हैं। अभी भी लोग मिथकों को सच मान रहे हैं। विज्ञान पढ़ाने वाले अध्यापक भी ऐसी मान्यताओं में विश्वास रखते हैं कि अमुक दिन अमुक दिशा में नहीं जाना चाहिए। आज टेलीविज़न दृश्य-श्रव्य विज्ञान का चमत्कार है पर पत्र-पत्रिकाओं में राशिफल धड़ल्ले से छपता है। श्री सुधाकर द्विवेदी ज्योतिषी थे पर उनकी पुत्री विवाह के समय ही विधवा हो गई। भारत गाँवों का देश है। गाँवों में आज भी पाखण्ड व्याप्त है। मृत्यु को वहाँ आज भी लोग कहते हैं 'व्यक्ति को डाइन खा गई'। अच्छा होगा यदि विज्ञान हमें एक समग्र दृष्टि दे सके।

डॉ० दुबे—जब हम विज्ञान की बात करते हैं तो हम पिछले 400 वर्षों से पश्चिम से आयातित विज्ञान को ही विज्ञान मानते हैं। विज्ञान की भौतिक उपलब्धियाँ विज्ञान की 'ऑफ शूट' हैं। वस्तुतः विज्ञान मनुष्य के जीवन का अंग है। प्रारम्भ से ही आदमी विज्ञान से जुड़ा रहा है। बच्चा भी यदि माँ के निकट है तो उसे धीरे से और दूर है तो ज़ोर पुकारता है, बिना ध्वनि-विज्ञान के ज्ञान के। वैज्ञानिक वह नहीं है जो प्रयोगशाला में कार्य करता है। वैज्ञानिक वह है जिसमें वैज्ञानिक चेतना हो। विज्ञान और समाज एक दूसरे पर आधारित हैं। समाज सदा से विज्ञान से प्रभावित होता रहा है। समाज मानव की बौद्धिक क्षमता का प्रतीक है। कभी चाँद को देखकर हमने कहानियाँ गढ़ी थीं, पर आज मानव चंद्रमा को पदाक्रांत कर चुका है। जब तक हम कौतूहल के साथ जीवित हैं, विज्ञान आगे बढ़ता रहेगा और साथ ही समाज भी।

श्री शुक्ल—विज्ञान सोचने और परखने की विचारधारा है और समाज लोगों का संगठित रूप। दोनों ही सुनियोजित, व्यवस्थित रूप हैं। समाज विज्ञान का जनक है। कई बार कुतूहलवश और कई बार उपयोग-दुरुपयोगवश समाज विज्ञान के स्वरूप को बदलता रहता है। पुराने ग्रीक समाज में यह 'दर्शन' के नाम से जाना जाता था। बाद में 'नैचुरल साइन्स' को इससे अलग कर दिया गया। उच्चस्तरीय 'इंट्यूशन' विज्ञान की सीमा के बाहर है। चेतना के कुछ ऐसे आयाम हैं, जहाँ विज्ञान पहुँच ही नहीं सकता। 'इलेक्ट्रॉन' देखा नहीं, पर मानता हूँ। विज्ञान कुतूहल और जिज्ञासा से उपजता है।

स्वामीजी—बोलना बहुत चाहता हूँ, पर सब नहीं बोलूँगा। यहाँ एकत्र होने के लिए बधाई। यह परिषद् की नवीन गतिविधि है। पहले हम स्थापना दिवस नहीं मनाते थे। अच्छा हो यदि इस समय हम अपने कार्यों का सिंहावलोकन करें।

पहले का विज्ञान डिडक्टिव लॉजिक से पैदा हुआ पर आज का विज्ञान इस लॉजिक से पैदा नहीं हुआ है। पहले लोग मानते थे कि पत्थर धरती पर इसलिए गिरता है क्योंकि धरती का बेटा है। ज्वाला ऊपर की ओर जाती है क्योंकि सूरज की बेटी है। अण्डा पहले या मुर्गी जैसे विषयों पर पहले विवाद अधिक होते थे।

पहले 'कम्पास' लेकर नहीं चलते थे। कम्पास एक विधा है। पर विज्ञान बिना टेक्नोलॉजी के अपूर्ण है। टेक्नोलॉजी का मतलब है विज्ञान का फल घर-

घर में पहुँच जाये। विज्ञान परिषद् की स्थापना इसी उद्देश्य को लेकर हुई थी।

पहले गणित भी 'श्लोकों' में लिखा मिलता था। आज गणित की, विज्ञान की अनेक भाषायें हैं। विज्ञान ने कई नई भाषायें दीं यथा समीकरण भाषा। लॉ ऑव कंज़रवेशन ऑव मॉस एण्ड एनर्जी, फिर संयुक्तीकरण हुआ। आइंस्टाइन स्टैटिस्टिक्स, बोस-आइंसटाइन स्टैटिस्टिक्स, फर्मी-डिरैक स्टैटिस्टिक्स। आधुनिक विज्ञान नई भाषा, नये समीकरणों के कारण आया। इतिहास के प्रति आस्था दूसरी बात है पर आज माना वही जाता है जो सिद्ध हो जाये। पहले शब्द की बड़ी मान्यता थी। किसी बड़े व्यक्ति ने कहा है सो मानो। पर आज 'डाटा' इकट्ठा करते हैं, फिर कुछ परिणाम निकलते हैं। अब 'मेंटल बिहैवियर', 'ग्रुप बिहैवियर' की बातें करते हैं। आज का विज्ञान, आज का समाज ऐसी मान्यताओं पर चल रहा है।

पहले 'सैटेलाइट' को 'मेंटल एक्सरसाइज' (दिमाग़ी कसरत) मानते थे, पर आज सैटेलाइट हमारे लिए कितना उपयोगी है, यह स्वयं सिद्ध है।

'इकलिप्स' (ग्रहण) देखने लोग विदेशों से आते हैं पर हम घर में छुपकर बैठे रहते हैं। बाहर नहीं निकलते। यह बात दूसरी है कि 'इकलिप्स' में मुर्गी का अण्डा किस प्रकार प्रभावित होता है, इस पर शोध करते हैं।

अब इस युग में यदि एकता होगी तो विज्ञान के कारण। अब हिन्दू गणित, अरब गणित, चीन की केमिस्ट्री न होकर एक गणित, एक रसायन होगा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई भले ही एक न हों पर विज्ञान एक होगा जो सभी समाजों के लिए लाभदायक होगा।

—प्रस्तुति : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान वक्तव्य

प्रियपाठकगण !

परीक्षाओं के इस मौसम में अक्सर नकल करते हुए परीक्षार्थियों के पकड़े जाने की खबरें आप पढ़ते होंगे, पर यह प्रवृत्ति अगर उन वैज्ञानिकों को भी जकड़ ले जिन पर भविष्य के प्रवाह को गति और दिशा देने का दायित्व है, तो निश्चय ही यह स्थिति क्षोभजनक और चिंतनीय है। हाल में ही 'सोसाइटी फॉर साइंटिफ़िक वैल्यूज़' एक ऐसी ही घटना को सामने लाई है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गणित विभाग के **डॉ० एस० एन० सिंह** और उनके सहयोगियों पर यह आरोप है कि उनके द्वारा अपने नाम से प्रकाशित कराये गये कई शोधपत्र कनाडा के एक वैज्ञानिक द्वारा एक दशक पूर्व प्रकाशित किए गये शोधपत्रों की शब्दशः नकल हैं।

अभी पिछले ही वर्ष विदेशी वैज्ञानिकों ने चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय के एक भूगर्भशास्त्री पर नकली हिमालयी जीवाश्म प्रस्तुत करने का आरोप लगाया था। भारतीय विश्वविद्यालय, कोयंबटूर के एक प्राणिवैज्ञानिक ने तो इंग्लैंड के समुद्र तट से ही पकड़े गये एक साधारण केकड़े को दुर्लभ हिमालयी क्षेत्र का केकड़ा बताकर वाहवाही लूटनी चाही।

विंडसन विश्वविद्यालय, ओंटारियो (कनाडा) के गणितज्ञ **डॉ० आर० एम० बैरन** और **डॉ० ओ० पी० चाडना** ने अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के नकल करने वाले वैज्ञानिकों के इस दल द्वारा प्रकाशित 40% कार्य उपर्युक्त दोनों वैज्ञानिकों के कार्यों की प्रतिलिपि मात्र है।

वैज्ञानिकों द्वारा इस प्रकार के अशोभनीय कार्यों से विदेशों में भारतीय विज्ञान और वैज्ञानिकों की प्रतिष्ठा धूमिल हो रही है।

'सोसाइटी फॉर साइंटिफिक वैल्यूज़' प्रख्यात भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा गठित एक स्वतंत्र परिषद् है, जो वैज्ञानिक क्षेत्र में मूल्यों की गिरावट से लड़ने को सन्नद्ध है। परिषद् के अध्यक्ष और भारतीय चिकित्सकीय अनुसंधान परिषद्' के डाइरेक्टर जनरल **डॉ० ए० एस० पेन्टल** ने कहा है कि इस प्रकार की निम्नस्तरीय गतिविधियों में संलग्न सभी वैज्ञानिकों को केन्द्रीय शासकीय सेवा के तहत लागू होने वाले सेवा नियमों के अनुसार ही दंडित किया जाएगा।

'सोसाइटी फॉर साइंटिफिक वैल्यूज़' और डॉ० पेन्टल को बहुत-बहुत बधाई।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मस्कुलर डिस्ट्रॉफी । वर्तमान चित्र

राजेश कुमार
मदन मोहन बजाज

[7 अप्रैल को प्रतिवर्ष 'विश्व स्वास्थ्य दिवस' पूरे विश्व में मनाया जाता है। इस वर्ष 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने विषय चुना 'स्वास्थ्य एवं पर्यावरण'। इसके तहत नारा (स्लोगन) दिया 'अवर प्लैनेट-अवर हेल्थ : थिंक ग्लोबली-ऐक्ट लोकली' अर्थात् हमारी धरती, हमारा स्वास्थ्य : भूमण्डलीय सोचो, स्थानीय करो। इस अवसर पर प्रस्तुत है 'मस्कुलर डिस्ट्रॉफी' नामक बच्चों के रोग पर एक शोधपरक लेख।—संपादक]

मस्कुलर डिस्ट्रॉफी एक ऐसा भयंकर असाध्य रोग है जिसमें चार वर्ष की आयु तक सामान्य लगने वाला बच्चा पेशियों में कमज़ोरी आने से 20 वर्ष की आयु तक मृत्यु का ग्रास बन जाता है। सम्बन्धी एवं माता-पिता के लिये ही नहीं अपितु चिकित्सकों के लिये भी यह रोग एक सिरदर्द बना हुआ है। भारत में लगभग एक लाख बच्चे इस रोग से पीड़ित हैं और इस रोग की असहनीय व्यथा, पीड़ा एवं दुख को भोगते हुये जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं।

मस्कुलर डिस्ट्रॉफी एक रोग है अथवा कई रोगों का समूह, यह कहना कठिन है। परन्तु एक ऐसे रोग के रूप में इसे पहचाना जाता है जिसमें रोगी स्वयं अपनी पहचान खो देता है। दैनिक क्रियाकलापों के लिये भी सम्बन्धियों पर आश्रित हो जाता है। माता-पिता एवं सम्बन्धी इस रोग से पूर्णतः अपरिचित होने के कारण चिकित्सक के पास लेकर जाते हैं परन्तु चिकित्सक ही नहीं वैज्ञानिक भी इस जटिल समस्या का हल ढूँढ़ने में असमर्थ रहे हैं अतः रोग की पूर्ण जानकारी के अभाव में रोगी शीघ्र ही अकाल मृत्यु का ग्रास बन जाता है। परिवार एवं समाज का ऐसे रोगियों के प्रति क्या दायित्व हो, यह बताने से पूर्व इस रोग के बारे पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है।

रोगी बच्चों में इसके लक्षण चार वर्ष के उपरान्त ही दिखाई देने लगते हैं। माता-पिता इसे सामान्य कमज़ोरी समझते हैं परन्तु जब बच्चा स्वयं चलने में भी कठिनाई अनुभव करता है तो माता-पिता चिकित्सक के पास पहुँचते हैं। ऐसी स्थिति में चिकित्सक भी कुछ नहीं कर सकता क्योंकि रोग बढ़ चुका होता है तथा पेशियों की अत्यधिक सिकुड़न को पुनः पूर्व अवस्था में लाना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में माता-पिता बच्चे को स्वयमेव अपनी आँखों के सामने ही मौत के मुँह की ओर प्रतिदिन अग्रसर होता हुआ देखते हैं और कुछ भी कर पाने में असमर्थ होते हैं।

इस बीमारी में सामान्यतः पुरुष रोगी ही देखने में आते हैं। ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी बच्चों का ऐसा रोग है जिसके बारे में सर्वप्रथम **ड्यूशन** नामक वैज्ञानिक ने सन् 1861 में अपनी पुस्तक में उल्लेख किया था। ड्यूशन ने ही सर्वप्रथम विद्युत् का चिकित्सा में उपयोग किया था। सन् 1868 में उसने ऐसे तेरह रोगियों का अध्ययन करके इसके विषय में कई महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ दीं। यद्यपि ड्यूशन से दस वर्ष पूर्व सन् 1852 में **पेरीयान** नामक वैज्ञानिक ने भी चार ऐसे ही रोगियों से सम्बन्धित जानकारी दी थी परन्तु ड्यूशन ने ही इस पर पूर्णरूपेण प्रकाश डाला और इसे बच्चों की गंभीर बीमारी बताते हुये इसके कारणों की भी विवेचना की अतः इस रोग को ड्यूशन के नाम पर 'ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी' कहा जाता है।

आयुर्भौतिक शोधशाला, भौतिकी एवं खगोल भौतिकी प्रयोगशाला, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली—110007

यह एक आनुवंशिक रोग है। यद्यपि यह बीमारी पुरुषों को ही लपेट में लेती है, परन्तु असामान्य जीन माता के द्वारा ही रोगी बच्चे के शरीर में प्रवेश करता है। अतः माता इस स्थिति में वाहक का कार्य करती है। एक ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी के रोगी की बहन के वाहक होने की सम्भावना 50% आँकी गई है। इस प्रकार यह रोग एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाता रहता है तथा म्यूटेशन (उत्परिवर्तन) के समय जीन के असामान्य होने के कारण होता है। इस बीमारी के जीन एक्स गुणसूत्र में ही स्थिति होते हैं। पुरुष में तथा महिला में 22 जोड़े गुणसूत्र एक जैसे ही होते हैं, परन्तु 23वें जोड़े में पुरुष में एक्स तथा वाई (XY) गुणसूत्र (क्रोमोसोम) होते हैं, जबकि महिलाओं में दोनों ही एक्स होते हैं। अमेरिका तथा यूरोप में इस विषय पर भारत की तुलना में बहुत अधिक शोध कार्य हो रहा है। अमेरिका के एक वैज्ञानिक **प्रोफेसर कुंकल** ने इस असामान्य जीन का पता लगा लेने का दावा किया है। ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी के जीन की लम्बाई कम से कम 18 हज़ार किलो बेस है तथा इसमें बेस-पेयर का क्रम अभी नहीं जाना जा सका है। उनके अनुसार यह एक अप्रभावी जीन है। वैज्ञानिकों ने शोध द्वारा पता लगाया है कि रोगी व्यक्ति के जीन के कुछ हिस्से किसी दूसरे गुणसूत्र से जुड़ जाते हैं, जिससे व्यक्ति मस्कुलर डिस्ट्रॉफी का रोगी बन जाता है। इसी का मॉडल बनाने में कनाडा के वैज्ञानिक **आर्थर एम० बर्गहैस** सफल रहे हैं, जिससे आगामी शोध-कार्य में बहुत मदद मिलेगी। अब शीघ्र ही हमें ऐसी तकनीक मिल जायेगी जिससे हम गर्भस्थ शिशु के रोगी होने की संभावनाओं पर भी टिप्पणी कर पाने में सक्षम होंगे तथा गर्भपात द्वारा अथवा अन्य प्रकार से इस प्रकार के रोगी के जन्म लेने को रोका जा सकेगा।

लंदन के एक वैज्ञानिक **जैक्सन एवं उनके साथियों** के अनुसार इस रोग में विटामिन ई की भारी कमी हो जाती है। उन्होंने विभिन्न जानवरों (चूहों आदि) पर प्रयोग द्वारा इसे सिद्ध भी किया है। अमेरिका के ही वैज्ञानिक **बोनिला और उनके साथियों** ने 'डिस्ट्रॉफिन' नामक तत्व प्राप्त करने में सफलता पाई है, जिसे उन्होंने ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी के जीन से प्राप्त किया है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यह प्रोटीन तत्व (डिस्ट्रॉफिन) ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी में अत्यधिक कम होता है और अन्ततः गायब हो जाता है, जिससे पेशियों में इस प्रोटीन की कमी विभिन्न असमानताओं को जन्म देती है। अन्य देशों के वैज्ञानिकों ने भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचने का दावा किया है (**सुगीता एवं साथी**, 1988, **प्रोसीडिंग जापान एकेडेमी** 64, 37-39) तथा **जुबर्जका गार्न एवं साथी (नेचर)**। **बर्टोलिनी एवं उनके साथियों** के अनुसार ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी के रोगियों की पेशियों में **कैल्शियम** की मात्रा 50% बढ़ जाती है जबकि **मैगनीशियम** की मात्रा 44% कम हो जाती है।

हमने विभिन्न रोगियों से चर्चा की और उनमें व्यापक समानताओं को देखा। ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी से पीड़ित रोगी ज़मीन पर बैठकर अपने-आप उठ नहीं सकता। उसे सीढ़ियाँ चढ़ने में बहुत परेशानी होती है। अत्यधिक कठिनाई से घुटने पर हाथ रख-रख कर एक-एक सीढ़ी चढ़ पाता है। स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। खाने-पीने में रुचि नहीं रहती तथा भूख कम लगती है। सामान्यतः ऐसे रोगी दूध पसन्द नहीं करते। फल आदि में तुलनात्मक दृष्टि से अधिक रुचि लेते हैं। शौच का समय अनियमित रहता है तथा अक्सर कब्ज़ की शिकायत रहती है। अक्सर ज्वर रहने लगता है तथा ज्वर के समय कमज़ोरी आने से चिड़चिड़ापन और अधिक बढ़ जाता है। पढ़ाई में अधिक रुचि नहीं रहती जबकि टेलीविज़न, रेडियो आदि के कार्यक्रमों में विशेष रुचि रहती है। सामान्य ज्ञान की विभिन्न बातों में अपेक्षाकृत अधिक रुचि लेते हैं। ऐसे रोगियों का मानसिक स्तर सामान्य बच्चों से कम नहीं होता है। ये रोगी कभी-कभी खड़े-खड़े स्वयमेव गिर जाते हैं। हड्डियाँ बहुत कमज़ोर होती हैं तथा हल्की सी चोट पर ही टूटने की आशंका रहती है। हर समय इनका मुँह स्वयमेव खुला रहता

है। जीभ बढ़ जाती है। 7 से 13 वर्ष की आयु में रोगी चलना बंद कर देता है। पेशियों में सिकुड़न के कारण धीरे-धीरे सभी अंग मुड़ने लगते हैं। शरीर एक ओर झुक जाता है। काफ (Calf) पेशियों में दर्द की शिकायत रहती है और ये फूल जाती हैं। **वाल्टन एवं गार्डनर** (974) के अनुसार 100,000 पुरुषों में से 13 से 33 पुरुष ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी (डी० एम० डी०) के रोगी होते हैं। जबकि **बेकमन** के अनुसार प्रति 1700 पुरुषों में एक पुरुष डी० एम० डी० से पीड़ित होता है। सही अनुपात का पता चलना बहुत कठिन है क्योंकि ऐसे रोगी चिकित्सालय में अधिक समय नहीं रहते एवं शीघ्र ही इन्हें वापिस भेज दिया जाता है। कुछ चिकित्सालयों में तो चिकित्सक रोग का निदान होते ही अथवा रोग का नाम सुनते ही अपनी असमर्थता व्यक्त कर देते हैं, जिससे रोगियों की संख्या का सही आकलन नहीं हो पा रहा है। **हाल्डन** ने इस रोग की म्यूटेशन गति ज्ञात की है, जो कि अत्यधिक उच्च है। हाल्डन फार्मूले से **स्टीफन एवं टेलर** ने इसका आकलन 95 प्रति लाख जीन प्रति जेनेरेशन (पीढ़ी) परिकलित किया है तथा **स्टीवेन्सन** ने 65 और **वाल्टन** ने 43 प्रति दस लाख परिकलित किया है। मानवीय रोगों में यह सर्वाधिक म्यूटेशन गति है। एक बार चलना बंद कर देने के पश्चात् रोगी का शरीर अधिक गति से मुड़ने लगता है और पैरों में अधिक शिथिलता आ जाती है अतः यथासम्भव पेशियों से काम करते रहने का प्रयास करना चाहिये। अधिकतर रोगी 20 वर्ष से पूर्व ही मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं तथा मृत्यु सामान्यतः श्वसन तंत्र के असामान्य होने के कारण होती है। पेशियों की कमजोरी से ही श्वसन तंत्र असामान्य होता है। मस्कुलर डिस्ट्रॉफी का पता लगाने के लिये मुख्यतः तीन विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं। सी० पी० के०, ई० एम० जी०, तथा मस्कुलर बायोप्सी। इन तीनों परीक्षणों से आजकल मस्कुलर डिस्ट्रॉफी ज्ञात की जाती है। ई० एम० जी० में असामान्य क्रम सभी प्रकार की मस्कुलर डिस्ट्रॉफी में पाया जाता है अतः असामान्य ई० एम० जी० क्रम से ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी का पता नहीं चलता। मस्कुलर बायोप्सी में फाइबर (**Fibre**) का आकार बदल जाता है। इन तीनों निरीक्षणों में प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर मस्कुलर डिस्ट्रॉफी को निम्न प्रकार से विभाजित किया गया है।

1. ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी,
2. बेकर मस्कुलर डिस्ट्रॉफी,
3. लिंब गिरडल मस्कुलर डिस्ट्रॉफी,
4. सक्रेपुलो ह्यूमेरल मस्कुलर डिस्ट्रॉफी,
5. फेसियो सक्रेपुलो ह्यूमेरल मस्कुलर डिस्ट्रॉफी,
6. मायोटोनिक डिस्ट्रॉफी, और
7. ऑकुलर मस्कुलर डिस्ट्रॉफी

इन सभी प्रकार की मस्कुलर डिस्ट्रॉफी में सर्वाधिक भयानक रोग ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी है, जिसमें स्वयं अपने पैरों एवं हाथों से कार्य करने में समर्थ मनुष्य पहले ह्वील चेयर (पहिया गाड़ी) का सहारा लेता है और बिस्तर पर पड़ा रहता है, पर ह्वील चेयर भी उसे सहारा नहीं दे पाती। रोगी को देख कर बिल्कुल पता नहीं लगता कि वह कुछ वर्षों का मेहमान है।

दिल्ली निवासी **इन्द्रजीत सिंह गुजराल की** पत्नी के भाई की मृत्यु भी इसी रोग से हुई थी और अब उनके दो बच्चे इसी रोग की चपेट में हैं तथा **चन्द्रपाल सिंह** के दो बेटों की मृत्यु इसी रोग से हो चुकी है और तीसरा भी व्हील चेयर पर बैठा हुआ मौत का इन्तज़ार कर रहा है। सोहन गंज (दिल्ली) निवासी **मनोज गुप्ता** की माता अथवा पिता दोनों के परिवारों में किसी को किसी पीढ़ी में भी पहले यह रोग नहीं था, जबकि पहली बार उनका बेटा इस रोग का शिकार बना है। अशोक विहार (दिल्ली) के **दीपक वर्मा** को भी इसी रोग ने पकड़ रखा है और उसके बड़े भाई की मृत्यु भी इसी रोग के कारण हो गई थी। 14 वर्षीय **दीपक** नामक एक अन्य रोगी की मृत्यु के उपरान्त उसके पिता **गुरूचरण सिंह** एवं माता **सावित्री** ने मस्कुलर डिस्ट्रॉफी से ग्रसित बच्चों को इस रोग से लड़ने हेतु आजीवन प्रोत्साहन एवं सहयोग देने

का निश्चय किया है। इस रोग से पीड़ित बच्चों को एक सामान्य वातावरण की आवश्यकता होती है, जहाँ वे भी अन्य बच्चों के समान शिक्षा, मनोरंजन, ज्ञान-सामग्री आदि का उपभोग कर सकें। ऐसे रोगियों को शारीरिक अंगों को गतिशील बनाये रखने हेतु कुछ व्यायाम करने आवश्यक होते हैं। विदेशों में केयर सेंटर बने हैं जहाँ पर ऐसे रोगियों की शिक्षा, मनोरंजन, ज्ञान-विज्ञान एवं व्यायाम क्रियाओं हेतु सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। ऐसी स्थितियों में रोगी के जीवन काल को निश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है। यद्यपि इस रोग का पूर्णरूपेण निदान तो अभी तक सम्भव नहीं है, परन्तु सामान्य शारीरिक क्रियायें एवं विशेष व्यायाम द्वारा इस रोग के संक्रमण से अधिकाधिक समय तक बचा जा सकता है। दिल्ली के सोहन गंज निवासी **मनोज गुप्ता** ने अपने हाथों की गतिशीलता बनाये रखने के लिए उनसे कार्य करना जारी रखा। उसने कागज़ों के अजीबोगरीब अद्भुत सुन्दर-सुन्दर डिज़ाइन (चित्र-4) बनाये हैं, जिन्हें देखकर कोई भी बनाने वाले की स्थिति को देखकर चकित हुये बिना नहीं रह सकता। इसके साथ साथ वह हाथ से लिखने का कार्य करता रहा, जिससे यद्यपि उसका पूर्ण शरीर रोग की चपेट में आ चुका परन्तु उसके हाथ आज भी डिज़ाइन बनाते हैं (चत्र-4)। इसी प्रकार से तुर्कमान गेट (दिल्ली) के **मुहम्मद हनीफ** ने अपने हाथों से कार्य करना जारी रखा तथा वह प्रतिदिन कैरम आदि खेलता रहा, जिससे उसके हाथों में शक्ति बनी रही। अपने सम्पूर्ण शरीर का भार वह हाथ पर रख कर बैठता था, जिससे उसके हाथों में आज भी शेष अंगों की तुलना में अधिक क्रियाशीलता है (चित्र-3)। अतः ऐसे रोगियों को अधिकाधिक शारीरिक क्रियायें करते रहने के लिये प्रेरित करना चाहिये अन्यथा पेशियों की सिकुड़न से हड्डियाँ मुड़ने व असामान्य होने लगती हैं। मालिश द्वारा भी शरीर को तथा पेशियों को आवश्यक पोषक तत्वों की प्राप्ति हो जाती है। पेशियों को यथासम्भव गर्म रखने का प्रयास करना चाहिये। इन्फ्रारेड या डायाथर्मी भी सहायक सिद्ध हो सकती है। ग्लायसिन देने से भी इस संक्रमण को रोकने में कुछ हद तक सफलता मिली है, परन्तु इसका उपचार नहीं हो सका। विटामिन-ई की गोलियाँ देने से भी उपचार तो नहीं हुआ परन्तु संक्रमण पर अवश्यमेव प्रभाव देखा गया है। सर्दी से ऐसे रोगी को यथासंभव बचाना चाहिये तथा ज्वर नहीं होने देना चाहिये। ज्वर, खाँसी तथा जुकाम की स्थिति को गंभीरता से लेना चाहिये तथा इन रोगों के उपचार हेतु तुरन्त चिकित्सक से सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। बलगम से ही रोगी की मृत्यु भी हो सकती है अतः इसके बनते ही चिकित्सक से उपचार करवाना चाहिये। ऐसे रोगी की मनोदशा विचित्र हो जाती है अतः उसे खाली कदापि न बैठने दें। शिक्षा का प्रबन्ध करें, जिससे बुद्धि सकारात्मक बनी रहे। रोगी को किसी ऐसे व्यवसाय की ओर भी प्रोत्साहित करें जिससे उसके हाथ कार्यरत रहें। इस प्रकार जहाँ शरीर में क्रियाशीलता बनी रहेगी वहीं दृष्टिकोण भी नकारात्मक नहीं होगा। उसे इस बात का लगातार अहसास दिलायें कि समाज में उसकी बहुत आवश्यकता है तथा वह भी समाज का एक अंग है। डी० एम० डी० का इलाज भविष्य में जीन के निदान से सम्भव हो सकता है। इस रोग से प्रभावित बच्चों में डिस्ट्रॉफिन नामक प्रोटीन की कमी पाई गई है। डिस्ट्रॉफिन की कमी से मांसपेशियों में कमज़ोरी आ जाती है। ऐसे बच्चे प्रायः हृदय गति के अवरुद्ध हो जाने से अथवा फेफड़ों के रोग से मरते हैं। इसलिये अस्थिपंजर से जुड़ी मांसपेशियों में यदि डिस्ट्रॉफिन पहुँचा देना सम्भव हो भी तो भी उससे कोई विशेष लाभ नहीं होगा। एक अन्य समस्या यह भी है कि जीन, जो डिस्ट्रॉफिन को कोड करता है, वह रिट्रोवायरसों में प्रविष्ट कराने के उद्देश्य से काफी बड़ा है। यह जीन उन सभी जीनों से बड़ा है जिन्हें वैज्ञानिक सेलों (कोशिकाओं) में प्रविष्ट कराते हैं। ''नेचर'' (वोल्यूम 343, पृष्ठ 190) में प्रकाशित ऑक्सफोर्ड के एक वैज्ञानिक की रिपोर्ट से एक नई आशा बँधी है। इस रिपोर्ट के अनुसार किसी प्रकार की जीन चिकित्सा सम्भव हो सकेगी। अनुपस्थित जीन का महज़ एक अंश पुर्नस्था-

पित करने से इस रोग के लक्षणों की क्रूरता एवं भयंकरता काफी हद तक कम हो जायेगी।

चित्र 1—ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी रोग से ग्रसित एक रोगी (मनोज गुप्ता) चार वर्ष की आयु में पूर्ण स्वस्थ मुद्रा में खड़े हुये।

ऑक्सफोर्ड की आणविक चिकित्सा संस्था की **सुश्री के० डेवीज़** ने कहा है कि वह और उसके साथी इस प्रश्न का उत्तर देना चाहते हैं कि वह कौन सी चीज़ है जो कोमल मस्कुलर डिस्ट्रॉफी के लिये उत्तरदायी है। उन्होंने एक ऐसा व्यक्ति खोजा है, जिसमें कोमल मस्कुलर डिस्ट्रॉफी के लक्षण हैं और जिसमें डिस्ट्रॉफिन से सम्बद्ध जीन कोडिंग का एक बहुत बड़ा भाग गायब है। इससे स्पष्ट है कि यदि हम आधा जीन भी बदल दें तो उससे रोग के निदान में बहुत सहायता मिल सकती है। आज वैज्ञानिकों को यह तो मालूम है कि उन्हें किस भाग को बदलना है, परन्तु वास्तविक समस्या उसके पहुँचाने के तरीके की है। हमें जीन को ऐसे बाँधना होगा कि मांसपेशियों के सेल उन्हें पकड़ लें और उन्हीं में जीन अपना स्थान बना ले।

चित्र 2—रोगी मनोज गुप्ता 10 वर्ष के उपरान्त बिस्तर पर तकिये के सहारे बैठे हुये।

डॉक्टर एवं वैज्ञानिक बिना सुविधाओं के कुछ नहीं कर सकते। इस रोग की ओर न तो सरकार ही पूर्ण ध्यान दे रही है और न ही स्वैच्छिक संस्थाओं ने इसका बीड़ा उठाने का प्रयास किया है। अभी तक कोई वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्र इस कठिन कार्य को हाथ में नहीं ले रहा है। एक स्वैच्छिक संस्था के अन्तर्गत "मस्कुलर डिस्ट्रॉफी रिसर्च एंड वेल्फेयर सेंटर" की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई है। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रांगण में अनेक सुविधाओं के अभाव में भी हम लोग इस जानलेवा बीमारी पर विजय पाने का प्रयास कर रहे हैं। अकेले न्यूयार्क में ऐसे 10 संस्थान हैं, जिन्हें वहाँ की सरकार से पूर्ण सहयोग मिलता है।

मानवीय अनुभूतियों तथा जीवन के उच्च मूल्यों की परीक्षा शायद ऐसी ही परिस्थितियों में होती है। हमारे समाज के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि ऐसे असहाय बच्चों की भरपूर सहायता एवं सेवा करे। हमारे पवित्र ग्रंथों ने भी "वसुधैव कुटुम्बकम्" (अर्थात् 'यह विश्व एक परिवार की भाँति है') का शंखनाद किया है अतः ऐसे रोगियों को अपना सम्बन्धी जानकर उनकी पीड़ा को हरने का तथा नियमित रूप से मानसिक एवं शारीरिक प्रोत्साहन देने का प्रयास करना चाहिये। दरिद्र बच्चों के लिये पौष्टिक आहार तथा उचित व्हील चेयर का प्रबन्ध करना हमारा ही कर्तव्य है। समय-समय पर इन परिवारों में जायें तथा कुछ क्षण बिताकर उनके दर्द को कम करने का प्रयास करें। ऐसे बच्चों की समाज में अलग से प्रतियोगितायें करवायें तथा जीवन की धारा से उन्हें अलग न होने दें।

चित्र 3—एक अन्य बीस वर्षीय रोगी मुहम्मद हनीफ शरीर का पूर्ण भार बायें हाथ पर रख कर दीवार के सहारे बैठे हुए। हाथो में आज भी शेष शरीर की तुलना में अधिक शक्ति है।
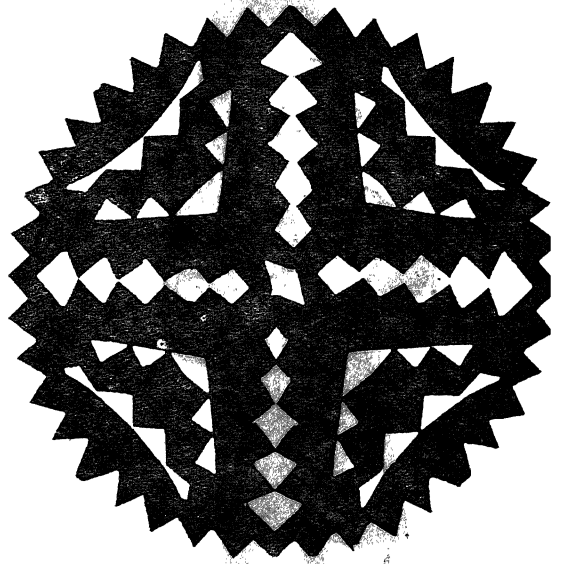
चित्र 4—मनोज गुप्ता द्वारा बनाया गया पेपर डिज़ाइन जिससे उनके हाथों की कार्यक्षमता में वृद्धि हुई।

केन्द्रीय आर्य युवक परिषद्, आर्य समाज, फ्रेन्डस ऑव हैन्डीकैप्ड, मदर टेरेसा के मिशन तथा अन्य संस्थाओं को इस क्षेत्र में आगे आना होगा। शोध-कार्य हेतु सुविधायें प्रदान करने का कार्य ऐसी संस्थायें कर सकती हैं। सरकार को भी इस ओर विशेष ध्यान देना होगा। हम लोग आयुर्वेद, होम्योपैथी, ऐलोपैथी शल्य-चिकित्सा सम्पोषण विज्ञान, फिज़ियोथेरेपी तथा अन्य सभी विधियों से रोग का निदान ज्ञात करने में लगे हैं। इसमें समाज का सहयोग आपेक्षित है। इस विशद कार्य में भारत के एक मात्र शोध केन्द्र "मस्कुलर डिस्ट्रॉफी शोध एवं कल्याण केन्द्र" को सहयोग देकर आप इस महायज्ञ में अपनी आहुति डाल सकते हैं। इसमें सभी का सहयोग अपेक्षित है।

अधिक जानकारी के लिए निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें—

मस्कुलर डिस्ट्रॉफी शोध एवं कल्याण केन्द्र
आयुर्भौतिकी शोधशाला
भौतिकी एवं खगोल भौतिकी प्रयोगशाला
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110 007

मोटापे से छुटकारा

डॉ॰ अनुराग श्रीवास्तव

मोटापा शरीर की वह अवस्था है, जब व्यक्ति अतिरिक्त वसा या चर्बी एकत्रित हो जाने से स्थूल व सामान्य से अधिक भार वाले शरीर का स्वामी बन जाता है। आवश्यकता से अधिक भोजन मोटापे का सर्वप्रमुख एवं सामान्य कारण है। आवश्यकता से अधिक लिया गया भोजन वसा में परिवर्तित होकर शरीर के एडिपोज ऊतकों में एकत्र हो जाता है। पश्चिमी देशों तथा भारत एवं अन्य विकासशील देशों के 'उच्च आय वर्ग' के व्यक्तियों में मोटापा सामान्य रूप से पाया जाता है।

कॉर्नेल विश्वविद्यालय के **मैक ले** ने एक रोचक प्रयोग किया। उन्होंने चूहों को दो समूहों में विभक्त कर एक समूह को इच्छानुसार अधिकाधिक भोजन खाने दिया, किन्तु दूसरे समूह को नियंत्रित मात्रा में ही भोजन प्रदान किया। उन्होंने पाया कि नियंत्रित मात्रा में भोजन पाने वाले समूह के चूहे अत्यधिक सक्रिय पाये गये तथा उनका जीवनकाल अत्यधिक भोजन करने वाले समूह के चूहों से लगभग दुगुना हो गया। चूहों के ऊपर किया गया यह प्रयोग मानव के लिए एक शिक्षाप्रद उदाहरण है।

मोटापे के विभिन्न कारण

1. **आयु तथा लिंग** : मोटापा किसी भी वय के पुरुष अथवा महिला को अपना शिकार बना सकता है।
2. **आर्थिक स्थिति** : मोटापा 'निम्न आय वर्ग' की अपेक्षा 'उच्च आय वर्ग' के व्यक्तियों में अधिक पाया जाता है, क्योंकि ये व्यक्ति सामान्यतया अधिक आहार तो लेते हैं, किन्तु शारीरिक श्रम कम करते हैं।
3. **शारीरिक श्रम का अभाव** : मोटापा कम शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्तियों को विपरीत रूप से प्रभावित करता है। आधुनिक वाहन सुविधा, औद्योगीकरण एवं स्वचालित तकनीक व्यक्तियों के जीवन में श्रम का अभाव पैदा कर रही है, जो मोटापे का कारण बनती है। 'निम्न आय वर्ग' के शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति मोटापे से प्रभावित होने से बचे रहते हैं।
4. **खान-पान अथवा आहार सम्बन्धी आदतें** : अत्यधिक खाने की आदत और परिणामस्वरूप उत्पन्न मोटापा बाल्यकाल से प्रारम्भ होकर जीवन-पर्यन्त चलते हैं। सामान्य तौर पर मोटे बच्चे को माता-पिता अत्यधिक स्नेहवश आवश्यकता से अधिक आहार देना प्रारम्भ कर देते हैं। परिणामस्वरूप हृदय-रोगों एवं मोटापे का खतरा बाल्यकाल से ही प्रारम्भ हो जाता है। वही स्वास्थ्य जिस पर माता-पिता शुरू में तो गर्व महसूस करते हैं, आगे चलकर मोटापे से ग्रस्त बनाकर व्यक्ति को हृदय-रोगी बना सकता है।

कभी-कभी यह भी देखने में आता है कि कुछ लोग अत्यधिक खाने-पीने के बाद भी दुबले-पतले बने रहते हैं, जबकि कुछ दूसरे लोग भरपेट आहार लेते ही मोटापे से ग्रस्त हो जाते हैं।

भूख का लगना एवं आहार नियंत्रण

केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र हमें 'भूख लगने' व 'पेट भरने' की जानकारी कराता है। इसी के अनुसार हम भोजन लेना प्रारम्भ व समाप्त करते हैं। जानवरों पर किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि मस्तिष्क में भूख से सम्बन्धित 'लालसा केन्द्र' को नष्ट कर देने पर जानवर की भूख समाप्त हो जाती है और भोजन के अभाव में अन्ततः वह मर जाता है, जबकि 'तृप्ति केन्द्र' को नष्ट करने पर जानवर अत्यधिक खाता चला जाता है और शीघ्र ही मोटापे का शिकार बनता है।

सारणी क्रमांक 1 : ऊँचाई एवं अनुपातिक वजन सारणी (सारणी पृष्ठ 8 पर)

1 डी/स्ट्रीट 4 ए, सेक्टर 9, भिलाई–490006 (मध्य प्रदेश)

ऊँचाई (सेमी०)	वजन (किग्रा०) शारीरिक आकार		
	छोटा	मध्यम	बड़ा
		पुरुष	
154	50.5-54	53-58	56.5-63
156	51.5-55	54-59.5	58-64.5
158	52.5-56	55-60.5	59-66
160	53.5-57.5	56-61.5	60-67
162	54.5-58.5	57.5-63	61-68.5
164	55.5-59.5	58.5-64	62-70
166	57-61	59.5-65.5	63-71.5
168	58.5-62.5	61-67	64.5-73
170	59.5-64	62.5-68.5	66.5-75
172	61-65.5	64-70.5	68-76.5
174	62.5-67	65.5-72	69.5-78.5
176	64-68.5	67-73.5	71-80
178	65.5-70	68-75.5	72.5-81.5
180	67-71.5	69.5-77	74-83.5
182	68.5-73	71-78.5	76-85
184	69.5-74.5	72.5-80	77.5-87
186	71-76	74-82	79-88.5
188	72.5-77.5	76-83.5	80.5-90
190	74-79	77.5-85.5	82-92
		महिला	
142	41.5-44.5	43.5-48.5	47-54
144	42.5-45.5	44-49.5	48-55
146	43-46.5	45-50.5	48.5-56
148	44-47.5	46-51.5	50-57
150	45-38.5	47-52.5	51-58
152	46-49.5	48.5-54	52-59
154	47-51	49.5-55	53-60
156	48-52	50.5-56	54-61.5
158	49.5-53	51.5-57.5	55.5-63
160	50.5-54	52.5-59	56.5-64.5
162	51.5-55.5	54-60.5	58-66
164	52.3-57	55.5-62	59.5-67
166	54-58.5	57-63.5	61-68.5
168	55.5-60	58.3-65	62.3-70
170	57-61.5	59.5-66.5	64-71.5
172	58.5-63	61-68	65.5-73.5
174	60-64.5	62.5-69.5	66.5-75
176	61.5-66	63-71	68-77
178	63-67	65.5-72.5	69.5-78.5

मोटापे का आकलन

मोटापे का आकलन सामान्यतः 'ऊँचाई एवं आनुपातिक वज़न सारणी' द्वारा किया जाता है। इस सारणी द्वारा कोई भी व्यक्ति यह पता लगा सकता है कि वह कहीं मोटापे का शिकार तो नहीं है और यदि है, तो, स्थिति की गम्भीरता कितनी हो चुकी है। इन सारणियों का प्रयोग करते समय अपनी कद काठी का स्मरण रखना चाहिये। शरीर का आकार (बनावट) छोटा, मध्यम या फिर बड़ा होने से वांछित वज़न सीमा में परिवर्तन हो जाता है।

प्रस्तुत 'ऊँचाई एवं आनुपातिक वज़न सारणी' में दर्शाए आँकड़े सांख्यिकी बुलेटिन, मेट्रोपोलिटन जीवन बीमा निगम (1959) द्वारा प्रस्तावित हैं एवं सामान्य जीवनकाल के व्यक्तियों पर लागू होते हैं। वज़न सामान्य वस्त्रों सहित बिना जूते-चप्पल पहने लिया जाना चाहिए एवं वस्त्रों के लिए पुरुषों को 3 6 किग्रा तथा स्त्रियों को 1.8 किग्रा कम कर लेना चाहिये। दर्शाये गए वज़न 25 वर्ष एवं इससे अधिक उम्र वाले व्यक्तियों के लिए प्रस्तावित हैं। 18 से 25 वर्ष के बीच की महिलाओं को, 25 वर्ष से कम होने पर, 0.45 किग्रा. प्रति वर्ष के हिसाब से कम कर अपनी सामान्य वज़न सीमा ज्ञात कर लेनी चाहिये।

ऊँचाई एवं आनुपातिक वज़न सारणी क्रमांक—1

सामान्य वज़न से 20 प्रतिशत या अधिक होने पर व्यक्ति मोटापे से ग्रस्त माना जाता है। स्थिति की गंभीरता ज्ञात करने हेतु कृपया नीचे दर्शाई गई सारणी देखें—

शरीर के भार की अधिकता का प्रतिशत	मोटापे की श्रेणी
20	निम्न श्रेणी
40	मध्यम श्रेणी
80	उच्च श्रेणी
100	अत्यधिक गंभीर श्रेणी

मोटापे की जटिलताएँ : दुष्परिणाम

मोटापे को यदि वक्त रहते नियंत्रित न किया जाये तो विभिन्न जटिलताएँ उत्पन्न हो सकती हैं, यथा—

1—शारीरिक अक्षमता

2—आंतरिक शारीरिक क्रियाओं में व्यवधान एवं दोष

3—विभिन्न हृदय रोग

4—दुर्घटनाओं की सम्भावना, एवं

5—अल्प जीवनकाल

स्थूल शरीर वाले व्यक्तियों की मधुमेह, एथरोस्क्लीरॉसिस (रक्त नलिनाओं में चर्बी का जमना) एवं अन्य हृदय रोगों से पीड़ित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। उनके रक्त में ग्लूकोज, कोलेस्ट्रॉल व ट्राई-ग्लिसरॉइड्स का स्तर भी सामान्य से अधिक हो सकता है। ऐसी स्थिति में वे आसानी से दुर्घटना का शिकार बन सकते हैं। उनमें उच्च रक्तचाप की सम्भावना भी अधिक पाई जाती है, जो हृदय पर अतिरिक्त भार डालती है। अत्यधिक वज़न ढोने के कारण घुटनों में गठिया होने की सम्भावना भी बलवती हो जाती है। मोटे व्यक्तियों में 'हर्निया' की शिकायत भी सामान्य व्यक्तियों से अधिक पाई जाती है। उपरोक्त जटिलताएँ स्थूल व्यक्ति के जीवनकाल में कमी लाने का कारण बनती हैं।

मोटापा और रोगजनित मृत्यु की सम्भावना

ऐसा कहा जाता है कि 10 प्रतिशत अतिरिक्त भार जीवनकाल को 13 प्रतिशत कम कर देता है। मोटापे के कारण सामान्य व्यक्तियों की तुलना में रोग-जनित मृत्यु की सम्भावना निम्न अनुपात में बढ़ जाती है—

मृत्यु का कारण	सामान्य वज़न की तुलना में मोटे व्यक्तियों में प्रतिशत सम्भावना वृद्धि
1. हृदय रोग	42
2. स्ट्रोक	59
3. वृक्क रोग	90
4 पित्ताशय की पथरी	106
5. मधुमेह	283

अपना वज़न कम कैसे करें ?

चूँकि अधिक आहार एवं कम शारीरिक श्रम

मोटापे का कारण है, अतः मोटापे से छुटकारा पाने हेतु जिन सिद्धांतों की आवश्यकता है, वे हैं—

(i) आहार-कैलोरी नियंत्रण

(ii) शारीरिक गतिविधियों/श्रम में वृद्धि

क. वज़न को कम करने वाला आहार

आहार द्वारा ली जाने वाली कैलोरी नियंत्रण द्वारा शरीर में कैलोरी की कमी उत्पन्न होती है एवं ऊर्जा की व्ययपूर्ति हेतु शरीर में एकत्रित वसा का उपयोग होने लगता है। इस विधि द्वारा मोटापे को धीरे-धीरे ही कम किया जाना चाहिये। इस प्रकार के आहार द्वारा दैनिक आवश्यकता की आधी मात्रा में ही कैलोरी ली जानी चाहिये। विभिन्न कीमतों पर वयस्कों हेतु वज़न कम करने वाले 1100 व 1300 कैलोरी मूल्य के आहार की विस्तृत जानकारी नीचे दर्शाई सारणियों (2,3,4) में दी गई है—

सारणी क्रमशः 2 : उच्च आय वर्ग के वयस्कों के लिए वज़न को कम करने एवं वज़न को नियत बनाए रखने हेतु प्रस्तावित आहार योजना

(ग्राम/प्रतिदिन/वयस्क)

पदार्थ	वज़न कम करने वाला आहार				वज़न नियत रखने वाला आहार			
	कैलोरी मूल्य 1100		कैलोरी मूल्य 1300		कैलोरी मूल्य 1500		कैलोरी मूल्य 1800	
	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी
अनाज	80	80	100	100	100	100	150	150
दालें	100	100	100	100	100	100	100	100
दूध (स्किम्ड)	1000	500	1000	500	1000	500	1000	500
पनीर	50	—	50	—	70	—	80	—
अंडा	—	1	—	1	—	1	—	1
मांस/मछली	—	100	—	100	—	150	—	200
हरी पत्तेदार सब्ज़ियाँ	200	200	200	200	200	200	200	200
अन्य सब्ज़ियाँ	200	200	200	200	200	200	200	200
कंद—मूली, गाजर, शकरकंद	50	50	50	50	50	50	50	50
फल	50	50	50	50	50	50	50	50
वसा/तेल	15	15	20	20	30	30	30	30
शक्कर/चीनी	15	15	20	20	30	30	30	30
मल्टी विटामिन खनिज गोली	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक

सारणी क्रमांक 3 : मध्यम आय वर्ग के वयस्कों के लिए वज़न को कम करने एवं वज़न को नियत बनाये रखने हेतु प्रस्तावित आहार योजना

(ग्राम/प्रतिदिन/वयस्क)

खाद्य पदार्थ	वज़न कम करने वाला आहार				वज़न नियत रखने वाला आहार			
	कैलोरी मूल्य 1100		कैलोरी मूल्य 1300		कैलोरी मूल्य 1500		कैलोरी मूल्य 1800	
	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी
अनाज	100	100	150	150	150	150	220	220
दालें	100	100	100	100	100	100	100	100
दूध (स्किम्ड)	500	300	500	300	500	300	500	300
नट्स (काजू, नारियल/मूँगफली)	30	—	30	—	60	30	60	30
अंडा/मांस/मछली	—	50	—	50	—	50	—	50
हरी पत्तेदार सब्ज़ियाँ	200	200	200	200	200	200	200	200
अन्य सब्ज़ियाँ	200	200	200	200	200	200	200	200
कंद मूली/गाजर	50	50	50	50	50	50	50	50
फल	50	50	50	50	50	50	50	50
वसा/तिल	15	15	15	15	15	15	15	15
शक्कर/चीनी/गुड़	15	15	15	15	15	15	15	15
विटामिन/खनिज गोली	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक

सारणी क्रमांक 4 : निम्न आय वर्ग के वयस्कों के लिए वज़न को कम करने एवं वज़न को नियत बनाए रखने हेतु प्रस्तावित आहार योजना

(ग्राम/प्रतिदिन/वयस्क)

खाद्य पदार्थ	वज़न कम करने वाला आहार				वज़न नियत रखने वाला आहार			
	कैलोरी मूल्य 1100		कैलोरी मूल्य 1300		कैलोरी मूल्य 1500		कैलोरी मूल्य 1800	
	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी
अनाज	80	80	120	120	170	170	240	240
दालें	150	150	150	150	150	150	150	150
दूध (स्किम्ड)	300	200	300	200	300	200	300	200
काजू/नारियल/मूँगफली	60	30	60	30	60	30	60	30
मांस/मछली/अंडा	—	30	—	50	—	30	—	30
हरी पत्तेदार सब्ज़ियाँ	200	200	200	200	200	200	200	200

अन्य सब्जियाँ	200	200	200	200	200	200	200	200
कंद (मूली/गाजर)	50	50	50	50	50	50	50	50
फल	50	50	50	50	50	50	50	50
वसा/तेल	10	10	10	10	15	15	15	15
मल्टीविटामिन/खनिज गोली	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक

ख. वांछित वज़न को नियमित बनाए रखने वाला आहार

वयस्कों के लिए अपना कम किया हुआ वज़न नियत सीमा में बनाये रखने हेतु 1500 व 1800 कैलोरी मूल्य वाले विभिन्न कीमतों में उपलब्ध आहार की विस्तृत जानकारी सारणी 2,3 एवं 4 में दी गई है।

मोटापे से बचाव

मोटापे को हटाने का सर्वप्रमुख कारगर उपाय है—आहार नियंत्रण। बार-बार एवं अत्यधिक आहार लेने से बचना चाहिये। अत्यधिक कैलोरी युक्त खाद्य पदार्थों, जैसे—तली वस्तुएँ (पूड़ी, पराठे, पकौड़ियाँ व कचौरियाँ), मिठाइयाँ, चाकलेट इत्यादि के सेवन से बचना चाहिये। अपने जीवन में शारीरिक श्रम व व्यायाम को यथोचित स्थान देना चाहिये। सारणी में दर्शाए गए सामान्य वज़न के अनुरूप ही अपने वज़न को कैलोरी नियंत्रण द्वारा निश्चित सीमा में बनाए रखना चाहिये। छोटे बच्चों व उनकी माताओं को पोषण व स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा मोटापे के विस्तार को सीमित कर इसके ख़तरों को टाला जा सकता है।

रेशा-युक्त खाद्य पदार्थ लाभकारी

मोटापे को कम करने हेतु रेशेदार पदार्थों (हरे साग, सब्ज़ी, भिण्डी, गुआर, लोबिया, मूली, गाजर, ककड़ी, खीरा, दालें इत्यादि) का जितना अधिक प्रयोग किया जाए, उतना लाभप्रद है। ऐसे पदार्थों के उपयोग से बिना अतिरिक्त कैलोरी के पेट भरने का संतोष तो मिलता ही है, साथ ही साथ, रेशा रक्त में ग्लूकोज की (कोलेस्ट्रॉल व ट्राइग्लिरॉइड्स) की मात्रा को भी कम करता है। डायबिटीज (मधुमेह) व हृदय रोगों में रेशा अत्यंत लाभकारी है। पानी पाकर फूलने की अपनी विशेषता के कारण रेशा कब्ज़, पाइल्स व आँत के कैंसर जैसी भयंकर स्थितियों से छुटकारा दिलाता है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि एक चाकलेट बार व तीन बड़े सेब कैलोरी की दृष्टि से बराबर हैं, जबकि तीन सेब खाने से आपको तृप्ति, कैलोरी के साथ वांछित रेशा भी प्राप्त होता है, जो स्वास्थ्यकर है।

कल की प्रतीक्षा क्यों ? आज से ही अपनी दैनिक कैलोरी आवश्यकता ज्ञात कर अपने आहार को तदनुरूप नियंत्रित कीजिए। आहार नियंत्रण व शारीरिक श्रम या व्यायाम बढ़ाकर अपने शरीर के अतिरिक्त अवांछनीय भार को हटा फेंकिए। प्रारम्भ में मुश्किल सामने आती है, किंतु जैसे ही आपका वज़न कम होना शुरू होगा, आप अपने को पहले से कहीं बेहतर पाएँगे और आप की अपने वज़न को और कम नियत सीमा में लाने की चाह बलवती होती जाएगी। फिर अपने वज़न को सामान्य सीमा में बनाए रखना आपके लिए मुश्किल न रह जाएगा और आप पा जाएँगे अनचाहे मोटापे से मुक्ति। □□

मृदा एवं जल प्रदूषण समस्यायें एवं समाधान

डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि

हमारे चारों ओर का वातावरण एवं परिवेश 'पर्यावरण' कहलाता है। इसके अन्तर्गत जल, थल एवं वायुमण्डल सभी शामिल हैं। सभी प्रकार के जीवों तथा वनस्पतियों के बढ़ने, पनपने एवं समुचित विकास के लिये पर्यावरण में सन्तुलन की आवश्यकता रहती है। सीधे शब्दों में यदि पर्यावरण है तो हम हैं। इसके बिना किसी भी जीव या वनस्पति का कोई अस्तित्त्व नहीं है। वर्तमान युग में जनसंख्या की वृद्धि, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण मनुष्य का भौतिकवादी दृष्टिकोण तथा विज्ञान और तकनीकी की निरन्तर प्रगति के फलस्वरूप हमारा पर्यावरण अनेक प्रकार के प्रदूषण से प्रभावित हो रहा है जिसका सीधा असर वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं, यहाँ तक कि स्वयं मनुष्य पर पड़ रहा है।

इस समय भारत की कुल जनसंख्या 81 करोड़ पहुँच चुकी है। जनसंख्या की अधिकता के कारण घरेलू अपशिष्ट पदार्थ की मात्रा में भी वृद्धि हुई है जो कि मृदा और जल प्रदूषण के लिये उत्तरदायी है। अपने देश में कूड़ा-करकट उत्पादन की दर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 5.0 किलोग्राम है। भारत के चार बड़े नगरों के कूड़ा करकट की उत्पादन की दर इस प्रकार है—

कलकत्ता—4000 टन प्रतिदिन

बम्बई—3500 टन प्रतिदिन

दिल्ली—3000 टन प्रतिदिन

मद्रास—2200 टन प्रतिदिन

आजकल शहरों का कूड़ा-करकट (घरेलू तथा औद्योगिक), मल-मूत्र आदि सब मिट्टी में ही डाला जा रहा है। इसके अतिरिक्त सघन कृषि के लिये प्रयुक्त रासायनिक उर्वरक, कीटनाशी, शाकनाशी आदि रासायनिक पदार्थ भी मिट्टी को प्रदूषित करते हैं। प्रदूषित जल—यथा वाहित मल-जल या लवणीय पानी से लगातार सिंचाई करते रहने से भी मृदा प्रदूषण की सम्भावना बढ़ती है। औद्योगिक कूड़े-कचरे, वाहित मल-जल एवं अवपंक (सीवेज-स्लज) में पाये जाने वाले क्रोमियम, निकिल, कैडमियम लेड, ज़िक, मरकरी आदि भारी तत्त्व मृदा को प्रदूषित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

कुछ औद्योगिक स्रोतों के विशिष्ट प्रदूषक (जो धुआँ, सल्फर डाइ ऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड के अलावा पाये जाते हैं) इस प्रकार हैं—

उर्वरक—उर्वरक धूल, अमोनिया, सल्फ्यूरिक अम्ल मिस्ट, फ्लोराइड

सीमेण्ट—सीमेण्ट, चूने के कण

कृत्रिम धागे—अम्लीय धुआँ

कागज़—हाईड्रोजन सल्फाइड, मरकेप्टन

ताप बिजलीघर—राख (फ्लाइऐश)

तेल शोधक कारखाने—हाइड्रोजन सल्फाइड, हाइड्रोकार्बन, मरकेप्टन

धातुकी—धातु का धुआँ

कास्टिक सोडा—क्लोरीन, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, पारा

कल कारखानों की चिमनियों एवं मोटर वाहनों से निकलने वाले धुयें और अन्य गैसों में सीसा (लेड) की प्रचुर मात्रा होती है, जो कि मृदा-कणों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है और यह मृदा में विषाक्तता उत्पन्न करता है। इससे पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त सल्फर डाइ ऑक्साइड से मिट्टियों का पी० एच० मान घट सकता है, जिससे मिट्टी के अम्लीय हो जाने की

शीलाधर मृदा विज्ञान अनुसंधान संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

आशंका रहती है। परमाणु विद्युत् केन्द्रों, परमाणु अनुसंधान केन्द्रों, युद्ध उद्योगों से उत्पन्न रेडियोसक्रिय अपशिष्ट पदार्थ मिट्टी के अवयवों के साथ क्रिया करके उसी में अन्तर्विष्ट हो जाते हैं।

विभिन्न औद्योगिक कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों से मिट्टी के अतिरिक्त जल-स्रोत भी प्रदूषित हो रहे हैं। भारत में रासायनिक खाद के 67 बड़े कारखाने हैं. जिनसे अनेक तरह के विषैले पदार्थ निकलते हैं। ये पदार्थ अन्ततः मृदा और जल-स्रोत को ही प्रदूषित करते हैं। मृदा एवं जल-स्रोतों के प्रदूषण का मुख्य साधन नगरों से वाहित मल-जल है। सीवेज में भारी तत्त्वों—कैडमियम, लेड, निकिल, मरकरी, क्रोमियम, ज़िंक आदि के अतिरिक्त डिटर्जेन्ट, बोरेट, फॉस्फेट तथा अन्य लवणों की भारी मात्रा घुली रहती है जो पौधों की वृद्धि के लिये हानिकारक होती है। साथ ही ये मिट्टी की भौतिक दशा को भी बिगाड़ते हैं। वाहित मल-जल में घरेलू अपशिष्टों के अतिरिक्त कल-कारखानों का व्यर्थ पदार्थ (ठोस एवं द्रव) भी मिला रहता है। ऐसे जल का उपयोग शहरों के आस-पास की भूमि पर की जाने वाली सब्ज़ियों की खेती में सिंचाई हेतु किया जाता है। ऐसे जल से लगातार सिंचाई करने से मिट्टी 'बीमार' पड़ सकती है।

मिट्टी प्रदूषण के अतिरिक्त जल प्रदूषण भी एक गम्भीर समस्या है। एक अनुमान के अनुसार विश्व में लगभग 30,000 व्यक्ति प्रतिदिन प्रदूषित पानी के कारण मरते हैं। भारत की लगभग 70% ग्रामीण जनता प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पीने के साफ़ पानी की सुविधा के अभाव में ही काल कवलित होती है। प्रदूषित जल में अनेक प्रकार के रोगकारक जीवाणु होते हैं जो तरह-तरह की बीमारियाँ यथा हैजा, पेचिश, पीलिया, टायफाइड, डायरिया आदि उत्पन्न करते हैं। कई शहरों में तो यह मात्रा प्रति व्यक्ति 60 लीटर प्रतिदिन हो गई है।

जल-स्रोतों के प्रदूषण के मुख्य कारण हैं—घरों की गन्दगी तथा मल-मूत्र वाहित नाले और कारखानों से निकले विभिन्न हानिकारक रससायनयुक्त अपशिष्ट। जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ घरेलू व्यर्थ पदार्थों और वाहित मल की मात्रा भी बढ़ रही है।

भारत में लगभग एक लाख टन कीटनाशी प्रतिवर्ष इस्तेमाल किये जाते हैं। ये सभी कीटनाशी अन्ततः जल को ही प्रदूषित करते हैं। इसमें से 70% मात्रा ऐसे कीटनाशियों की है, जिनके उपयोग पर पश्चिमी देशों में प्रतिबन्ध है। इन कीटनाशियों में विषैले भारी तत्वों की अधिक मात्रा होती है, जो जल को प्रदूषित कर उसे पीने के अयोग्य बना देते हैं। पीने योग्य-पानी में भारी तत्वों की इष्टतम सीमा इस प्रकार है—

भारी तत्व	**इष्टतम सीमा मि० ग्रा० प्रति लीटर**
कैडमियम	0.01
कॉपर (ताँबा)	0.04
ज़िंक (जस्ता)	5.0
क्रोमियम	0.05
लेड (सीसा)	0.01

शहरों की गन्दगी, चर्म उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, कागज़ उद्योग, चीनी एवं एल्कोहॉल के कारखाने, उर्वरक एवं रसायन उद्योगों के अतिरिक्त अस्पतालों आदि की गन्दगी भी जल के अतिरिक्त परमाणु अस्त्रों के परीक्षण से रेडियोधर्मिता पानी में फैलती है। इस रेडियोएक्टिव व धात्विक पदार्थों के अतिरिक्त पेट्रोलियम आदि से भी जल प्रदूषण होता है।

प्रदूषण द्वारा जल में उपलब्ध अवयव और उनका स्वास्थ्य पर प्रभाव (सारणी)

अवयव	प्रमुख स्रोत व कारण	इष्टतम सीमा मि० ग्रा०/लीटर	सार्थकता व शरीर पर प्रभाव
1. आर्सेनिक	औद्योगिक प्रदूषण	0.05	कैंसर का कारण
2. बेरियम	कार्बोनेट के रूप में लवणीय जल में	1.0	हृदय, रूधिर वाहिका और नाड़ियों के लिये घातक
3. कैडमियम	विद्युत्-लेपन उद्योगों के विसर्जन से	0.01	वृक्क की धमनियों के लिये घातक
4. सायनाइड	विद्युत्-लेपन अपशिष्ट	0.01	जैवक्रियाओं पर प्रभाव 50-60 मि० ग्रा०/लीटर मात्रा घातक
5. क्रोमियम	औद्योगिक अपशिष्ट	0.05	कैंसर का कारण
6. सीसा	औद्योगिक अपशिष्ट व मृदुजल की सीसों के पाइपों पर क्रिया से	0.05	ऊतकों में संग्रहीत होकर सीसा विषाक्तता
7. सेलीनियम	औद्योगिक प्रदूषण	0.01	दन्तक्षय और कैंसर कारक
8. चाँदी	औद्योगिक प्रदूषण	0.05	'आर्जिया' रोग जिसमें आंखों और त्वचा का रंग नीला और स्लेटी हो जाता है।

मृदा एवं जल प्रदूषण रोकने के उपाय

मृदा प्रदूषण को रोकने के लिये निम्नखिलित प्रयास सार्थक सिद्ध हो सकते हैं—

1. कल-कारखानों से प्राप्त सीवेज-स्लज को भूमि पर पहुँचने से पूर्व इन्हें उपचारित किया जाना चाहिये। सीवेज-स्लज का तनूकरण भी अनिवार्य है। सीवेज की 1:1000 तक की तनुता मिट्टी तथा पौधों के लिये सुरक्षित रहती है। सीवेज-स्लज जितनी अधिक दूरी से आता है उसमें पाये जाने वाले प्रदूषकों की मात्रा उतनी ही कम होती जाती है। अतः सीवेज स्लज का उपयोग दूरस्थ ग्रामीण इलाकों में किया जा सकता है।
2. अन्य औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों के मानीटरिंग की व्यवस्था की जानी चाहिये। इसके विषाक्तता सीमा पहुँचते ही आवश्यक सावधानी बरती जा सकती है।
3. सघन कृषि के लिये रसायनिक उर्वरकों का उचित प्रयोग किया जाय। साथ ही फ़सल सुरक्षा के लिये कीटनाशियों, कवकनाशियों एवं शाकनाशियों का कम से कम उपयोग किया जाय।
4. कृषि अपशिष्ट, शहरी कूड़े-कचरे से जैव प्रौद्योगिकी, ताप अपघटन, किण्डवीकरण आदि विधियों एवं सूक्ष्मजीवों की सहायता से अवाय-वीय चय-अपचय द्वारा गैस और खाद प्राप्त की जा सकती है, जिससे प्रदूषण की समस्या भी स्वतः कम हो जाती है।
5. शहरी कचरे में कृषि वानिकी अपशिष्टों, मनुष्य एवं पशुओं के मल विष्ठा के अतिरिक्त 40-50% सेलुलोज होता है। इस कूड़े-कचरे में काँच, अनेक लवण, धातुयें, राख, कंकड-पत्थर और प्लास्टिक आदि के टुकड़े होते हैं, जिन्हें साफ़ करके सेलुलोज

का अंश और और अधिक हो जाता है। वायु की अनुपस्थिति में जैविक विधि से कचरे से गैस तैयार की जा सकती है। बायो-गैस संयन्त्र पर्यावरणीय समस्याओं को दूर करने में काफ़ी उपयोगी सिद्ध हुये हैं। इससे न केवल ईंधन मिलता है बल्कि मल विष्ठा के निपटान से मक्खी-मच्छर तथा रोगाणु नहीं पनप पाते और आस-पास का वातावरण स्वच्छ रहता है। इसके अलावा गैस के साथ उपचारित अवमल को सुखाकर खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस खाद में भारी मात्रा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश होता है।

6. प्रदूषित मिट्टी में जैव पदार्थ के प्रयोग से विषैले तत्वों का प्रभाव कम किया जा सकता है। जल प्रदूषण को रोकने के लिये निम्नलिखित उपाय अपनाये जाने चाहिये—

1. नदियों, तालाबों आदि जल-स्रोतों में कूड़ा-करकट, मल-मूत्र, व्यर्थ पदार्थ, औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ आदि न डाले जायें। घाटों में अधजले शवों को बहाने पर रोक लगायी जाये।
2. नदियों में गिराये जाने वाले अपशिष्ट का उपचार किया जाये। प्रत्येक कारखाने पर औद्योगिक अपशिष्ट के उपचार के लिये उपचार संयन्त्र लगाने की पाबन्दी होनी चाहिये।
3. जल संयन्त्रों में पानी का शुद्धीकरण किया जाये। इसके लिये ब्लीचिंग पाउडर तथा पोटेशियम परमैंगनेट का प्रयोग किया जा सकता है।
4. व्यर्थ दूषित पदार्थों (ठोस एवं जल) को प्राकृतिक जल-स्रोतों में गिराने से पूर्व कृत्रिम जलाशयों में रोककर उसमें शैवाल की कुछ जातियों एवं जलकुम्भी को उगाकर दूषित जल का शुद्धीकरण किया जा सकता है। साथ ही इन पौधों को एकत्रित कर खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में उगाई गयी जलकुम्भी की फ़सल 240,000 लीटर दूषित जल से 24 घण्टे में लगभग 300 ग्राम निकिल तथा कैडमियम अवशोषित करने की क्षमता रखती है।
5. बूचड़खाने से निकलने वाले व्यर्थ जल (जिसमें रक्त, मज्जा, अंतड़ियाँ आदि होते हैं) को अवायवीय सम्पर्क छन्ने द्वारा छानकर ठोस अपशिष्ट को गैस हेतु तथा जल को सिंचाई एवं मछली पालन हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है। 'नीरी' में इस तरह के प्रयोग किये जा रहे हैं।
6. घरेलू तथा औद्योगिक व्यर्थ जल के उपचार के लिये स्थायीकरण, ऑक्सीकरण ताल, हवादार लैगून जैसी विधियों को प्रयोग में लाया जा सकता है। इसके लिये किसी विशेष उपकरण या रसायन की आवश्यकता नहीं पड़ती। 'नीरी' और इन्जीनियरिंग कॉलेज (मद्रास) में ऑक्सीकरण ताल में सूर्य के प्रकाश और सूक्ष्मजीवों की सहायता से वाहित मल-जल के उपचार के संबंध में किये गये परीक्षणों से उत्साहवर्द्धक परिणाम प्राप्त हुये हैं। इस विधि से उपचार पर बहुत कम लागत आती है। उपचारित तरल भाग सिंचाई, मछली पालन तथा कवक आदि उगाने के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है और ठोस अवमल को सुखाकर खाद बनायी जा सकती है।
7. शैल रसायनिकी उद्योगों से उत्सर्जित तरल बहि:स्राव में मुख्यरूप से हाइड्रोकार्बन और उनसे बने अन्य कार्बनिक पदार्थ तथा कुछ मात्रा में अम्ल, क्षार एवं प्रक्रम रसायन होते हैं। ये रसायन मुख्यत: कार्बनिक यौगिक होते हैं अत: जीवाणुओं द्वारा इनका विघटन सम्भव है तथा बहि:स्राव उपचार तंत्र का सावधानीपूर्वक चयन करके इनका उपचार किया जा सकता है और इस प्रकार संग्राही तालों में जलीय जीवन के संरक्षण हेतु प्राधिकारियों एवं निर्धारित एवं मान्य सीमाओं के अन्दर इनकी मात्रा को मर्यादित रखा जा सकता है। इस प्रकार उपचारित बहि:स्रावी द्रव को प्रक्रम संयन्त्रों में तथा बागवानी और वनरोपण में पुन: इस्तेमाल किया जा सकता

है। केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण मण्डल ने शैल रासायनिकी उद्योगों के लिये निम्नतम राष्ट्रीय मानकों की सिफारिश की है—

पैरामीटर	सान्द्रण की ऊपरी सीमा मि० ग्रा०/ली० (के अतिरिक्त)
पी० एच०	6.5 से 8.5
बी० ओ० डी० 520° से० ग्रे०	50
सी० ओ० डी०	250
फिनॉल	5
सी० एन० के रूप में सायनाइड	0.2
एस० के रूप में सल्फाइड	2
एफ० के रूप में फ्लोराइड	15
सी आर के रूप में हैक्सावलेट क्रोमियम	0.1
सी आर के रूप में कुल क्रोमियम	2
कुल निलंवित ठोस	100

8. मिट्टी एवं जल से अम्लता दूर करने में चूने का प्रयोग अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ है। इस दिशा में ब्रिटेन और स्वीडेन के वैज्ञानिक ज़ोर-शोर से अनुसंधान कर रहे हैं। विश्व में सबसे ज़्यादा चूने के पहाड़ स्वीडेन में हैं। स्वीडेन की 85,-000 झीलों में 17,000 अम्लीय जल की अधिकता से ग्रसित हैं। इसमें से 3000 को पहले से ही चूनायुक्त किया जा चुका है। यहाँ के पर्यावरण अनुसंधान संस्थान के निदेशक **डॉ० हांस हाटबर्ग** के अनुसार इन झीलों में मुख्यतः चूने के टुकड़े डाल दिये जाते हैं जो धीरे-धीरे घुलकर अपना प्रभाव छोड़ते रहते हैं। बढ़ते हुये जल प्रदूषण के कारण स्वीडेन की अधिकांश नदियों में मछलियों की संख्या कम होने लगी थी, लेकिन अब जिन नदियों व झीलों में चूने का इस्तेमाल किया जा चुका है उनमें मछलियों तथा अन्य जलचर प्राणियों की संख्या में काफ़ी तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई है। ☐☐

7 अप्रैल विश्व स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर

बन्द रक्त-वाहिकाओं को खोलने की नई तकनीक विकसित

डॉ० एन० भटनागर

अमेरिकी चिकित्सकों के एक दल ने अल्ट्रासाउण्ड यानि पराध्वनि का उपयोग करके बन्द रक्त-वाहिकाओं को खोलने का एक नया तरीका ढूंढ़ निकाला है जो ऐसे हृदय रोगियों के लिए उपयोगी होगा जिन्हें बाइ-पास सर्जरी की आवश्यकता है।

इस तरीके में एक तार के सहारे अत्यन्त उच्च आवृत्ति की पराध्वनिक तरंगें बन्द रक्त-वाहिका में इस प्रकार प्रवाहित की जाती हैं कि वह खुल जाती है। तरंगों के प्रवाह के लिए प्रयुक्त उपकरण इस काम के लिए अभी तक उपयोग किये जाने वाले लेसर से कहीं सस्ता है। विशेषज्ञों का विचार है कि लेसर तकनीक की ही तरह नई तकनीक कोरोनरी बाइ-पास सर्जरी के बजाए उपयोग में लाई जा सकेगी।

वास्तव में बन्द हृदय रक्त-वाहिकाओं को खोलने के लिए लेसर का उपयोग पहले-पहल एक अंग्रेज़ शल्य-चिकित्सक ने 1986 में किया था। इसमें बन्द वाहिका में पहले एक सुनम्य नलिका प्रवेश कराई जाती है। यह सही-सही बन्द स्थान तक पहुँच रही है या नहीं इसका अंदाज एक्स किरण बिंबयोजना से लगाया जाता है। फिर नलिका में से एक प्रकाशिक तंतु अंदर डाला जाता है और लेसर स्पंदों का उपयोग करके धमनी में रुकावट करने वाले धक्के को भेदा जाता है। इसके

डी–720, सरस्वती विहार, दिल्ली—110034

बाद प्रकाशिक तंतु को निकाल कर एक और नलिका को, जिसके अंतिम सिरे पर एक छोटा गुब्बारा लगा होता है, अन्दर प्रवेश कराया जाता है। अब इस गुब्बारे को फुलाकर लेसर द्वारा भेद कर खोले गए धमनी मार्ग को और चौड़ा किया जाता है जिससे रुकावट पूरी तरह दूर हो जाए।

कोरोनरी बाइ-पास सर्जरी की तुलना में लेसर तकनीक कहीं उपयोगी है। सर्जरी में बन्द धमनी का कार्य करने के लिए एक रक्त-वाहिका का टुकड़ा आरोपित किया जाता है। लेसर तकनीक में सामान्य संज्ञाहारी (बेहोश करने की औषधि) का इस्तेमाल भी ज़रूरी नहीं है और अस्पताल में भी बहुत थोड़े ही समय के लिए रहना पड़ता है। इसमें केवल यही दोष है कि यह महँगी है और यदि लेसर स्पंद ग़लत दिशा में प्रवाहित हो जाएँ तो धमनी में छेद कर सकते हैं जो हृदय-वाहिकाओं के मामलों में मारक सिद्ध हो सकते हैं। आँकड़ों के अनुसार लगभग 1000 मामलों में एक ऐसी घटना हो ही जाती है। इसी से अधिकतर चिकित्सक अभी भी इसे पूरी तरह सुरक्षित नहीं मानते और लेसर चिकित्सा की सलाह केवल तभी देते हैं जब अन्य कोई उपाय शेष न रह जाए।

दूसरी ओर पराध्वनिक तरंगों से इलाज अपेक्षाकृत सस्ता होगा और इसमें धमनी में छिद्र होने पर भी कोई ख़तरा नहीं है। अमेरिकी चिकित्सक इस तकनीक को और सुधारने में लगे हैं। वे महीन टाइटेनियम तारों की सहायता से, जिन्हें वे लेसर तकनीक में प्रयुक्त सुनम्य नलिका में से शरीर में प्रवेश कराते हैं, पराध्वनिक स्पंद भेजते हैं। अभी तक इस तकनीक का उपयोग केवल टाँगों की बंद धमनियों में पुन: रक्त-संचार करने के ही लिए किया गया है। हृदय की धमनियों को खोलने के लिए इसका उपयोग करने से पूर्व चिकित्सक इसे और परिष्कृत करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इसका एक और लाभ यह दिखाई दे रहा है कि यह बन्द धमनियों को खोलने के साथ-साथ उन्हें सुनम्य भी बनाती है। आशा की जा रही है कि इससे भविष्य में उनके दुबारा बन्द होने का ख़तरा कम हो जाएगा।

(सम्प्रेषण) □□

7 अप्रैल विश्व स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर

आपका रुधिर

[शिराओं और धमनियों के माध्यम से रक्त हमारे शरीर में प्रतिपल दौड़ता रहता है। रुधिर-संचार है तो दिल की धड़कन है और दिल की धड़कन है तो आदमी ज़िन्दा है। धड़कन बंद तो 'इहलीला' समाप्त।

रक्त की महत्ता जानते-समझते हुए भी हममें से बहुतों को अपने रक्त-वर्ग का पता भी नहीं रहता। हमें अपने साथ रहने वाली किसी डायरी में अथवा कार्ड में अपना रुधिर-वर्ग अवश्य लिखकर रखना चाहिए ताकि दुर्घटना के समय रुधिर-वर्ग की जाँच के लिए अनावश्यक समय न बर्बाद हो।

इस आलेख में प्रस्तुत है प्रो॰ अजय कुमार चतुर्वेदी की क़लम से रुधिर के विषय में आम जानकारी।

—सम्पादक

अजय कुमार चतुर्वेदी

रुधिर हल्के या गहरे लाल रंग का अपारदर्शी, गाढ़ा, क्षारीय तथा स्वाद में नमकीन होता है। रुधिर की उत्पत्ति मीसोडर्म कोशिकाओं में होती है। यह घनत्व में शरीर का 1/13वाँ भाग घेरे रहता है।

रुधिर हमारे जीवन के लिए बहुत ही आवश्यक है। इसकी कमी से हम बीमार हो जाते हैं। रुधिर शरीर के विभिन्न भागों को पोषक तत्व ऑक्सीजन, हार्मोन व अन्य आवश्यक पदार्थों को पहुँचाता है तथा उपापचय के फलस्वरूप उत्पन्न हानिकारक पदार्थों को शरीर के बाहर निकालने में सहायता करता है। यह शरीर के ताप को नियंत्रित रखता है। शरीर के विभिन्न भागों में विभिन्न तत्वों, आयनों और जल का

रसायन विभाग, धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

सन्तुलन बनाये रखता है। इस प्रकार शारीरिक क्रियाओं के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसीलिए यह हमारे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि यह कहें कि इसके बिना जीवन सम्भव नहीं है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

रुधिर के दो भाग होते हैं—(1) तरल पदार्थ, जो प्लाज़्मा कहलाता है तथा (2) रुधिर कणिकायें। आयतन के आधार पर प्लाज़्मा 55% तथा रुधिर कणिकायें 45% होती हैं।

प्लाज़्मा—यह हल्का पीला, चिपचिपा, पारदर्शी तरल पदार्थ होता है। यह माध्यम का कार्य करता है। इसमें रुधिर कणिकाएँ घूमती रहती हैं। इसमें 90% जल तथा 10% अकार्बनिक व कार्बनिक पदार्थ पाये जाते हैं।

अकार्बनिक पदार्थ मुख्य रूप से सोडियम के क्लोराइड एवं बाइकार्बोनेट होते हैं। सूक्ष्म मात्रा में कैल्सियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम के फॉस्फेट, बाइ-कार्बोनेट पाये जाते हैं। इसी कारण रुधिर क्षारीय होता है।

कार्बनिक पदार्थ—घुलित अवस्था में एल्ब्यूमिन, ग्लोबूलिन, फाइब्रिनोजन, प्रोथ्राम्बिन प्रोटीन, ग्लिस-रॉल, वसा अम्ल, एमीनो अम्ल, विटामिन, ग्लूकोज, एमोनिया, यूरिया, यूरिक अम्ल, हार्मोन्स, एन्टीजेन्स, एन्टीबॉडी पाये जाते हैं—

रुधिर कणिकाएँ

रुधिर कणिकाएँ मुख्यतया दो प्रकार की होती हैं।

(1) **लाल रुधिर कणिकाएं** (R.B.C.)—ये गोल उभयावतल तथा अनाभिकीय होती हैं। इनका जीवन काल 50 से 120 दिन होता है। ये पुरुष में आम तौर से प्रति घन मि० मी० 5,·0,00,000 तथा महिला में 4,50,00.000 होती हैं। लाल रुधिर-कणिका में हीमोग्लोबिन होता है। हीमोग्लोबिन में 95% रंगहीन घुलनशील प्रोटीन होती है, जिसे ग्लोबिन कहते हैं तथा 5% हीमेटिन (लोहे का यौगिक) होता है। हीमेटिन लोहा तथा पोरफाइरिन नामक रंग के कण से मिलकर बनता है। लाल रुधिर कण का निर्माण अस्थियों की लाल मज्जा में होता है तथा भ्रूण में यकृत तथा स्प्लीन में बनता है।

श्वेत रुधिर कणिकाएँ (W.B.C.)—ये अस्थायी आकार की केन्द्रमय रंगहीन कणिकाएँ होती हैं। इनका आकार लाल रुधिर कणिका से बड़ा तथा ये संख्या में कम होती हैं। इनकी संख्या 6000-10,000 प्रति घन मि० मी० होती है। जीवद्रव्य तथा केन्द्रक के आधार पर श्वेत रुधिर कणिका दो प्रकार की होती हैं—

कणिकामय (ग्रेन्यूलोसाइट)—इनमें जीवद्रव्य दानेदार तथा नाभिक खण्डित होता है। ये तीन प्रकार की होती हैं। (i) **इसनोफिल**—इनका जीवद्रव्य दाने-दार तथा केन्द्रक दो पिन्डों में होता है। ये पिन्ड सूक्ष्म धागे से जुड़े रहते हैं। यह कुल श्वेत रुधिर कणिकाओं की संख्या का 2-4% भाग होता है। (ii) **बेसोफिल**—जीव द्रव्य के दाने संख्या में कम तथा कण बड़े होते हैं। केन्द्रक बड़ा और अनियमित रूप में बहुरूपी होता है। ये श्वेत रुधिर कणिकाओं की कुल संख्या का 5% होती हैं। (iii) **न्यूट्रोफिल**—जीव द्रव्य के कण बहुत छोटे तथा संख्या में अधिक होते हैं। केन्द्रक घोड़े की नाल की तरह होता है। इनकी संख्या श्वेत रुधिर कणिकाओं की कुल संख्या का 60-70% होती है। ये जीवाणु तथा बाहरी पदार्थों को नष्ट करने का कार्य करती हैं।

कणिका रहित (**एग्रेन्यूलोसाइट**)—इनका जीवद्रव्य दानेदार नहीं होता है। ये तीन प्रकार के होते हैं—

(i) **लिम्फोसाइट**—यह आकार में छोटा है। कोशिका द्रव्य की मात्रा कम एवं केन्द्रक गोल, बड़ा होता है। यह श्वेत रुधिर कणिकाओं की मूल संख्या का 20-28% भाग है।

(ii) **मोनोसाइट**—यह आकार में बड़ा होता है। इनका केन्द्रक छोटा तथा एक ओर कटा हुआ होता है। ये जीवाणुओं का भक्षण करती हैं। ये श्वेत रुधिर कणिकाओं का 3-10% भाग होती हैं।

(iii) **थ्राम्बोसाइट**—यह मध्य में मोटी तथा सिरों पर नुकीली तथा चपटी होती है। इनका केन्द्रक गोल होता है। ये रुधिर के जमने में सहायता करती हैं।

कार्ललैण्ड स्टीनर ने बताया है कि लाल रुधिर कणिका के ऊपर एक विशेष प्रकार की प्रोटीन होती है। इसे एन्टीजेन कहते हैं। एन्टीजेन्स विभिन्न प्रकार की होती है। इसी कारण सभी मनुष्यों का रुधिर भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। एन्टीजेन के साथ एन्टीबॉडीज़ भी होती है। एन्टीजेन के आधार पर मनुष्य का रुधिर चार वर्गों में बाँटा गया है, जो निम्नवत् हैं—

वर्ग	एन्टीजेन्स	एन्टीबॉडी
ए	ए	बी
बी	बी	ए
ए बी	ए बी	कोई नहीं
ओ	ओ	ए बी

जब एक का रुधिर दूसरे को दिया जाता है तब इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि दाता और प्राप्तकर्ता के रुधिर में एन्टीबॉडी एक ही हो। अतः रुधिर का आदान-प्रदान समान रुधिर वर्ग में ही सम्भव है। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर अन्तरवर्गीय रुधिर भी लिया जा सकता है। ए वर्ग का रुधिर ए और ओ वर्ग के रुधिर में मिलाया जा सकता है। इसी प्रकार बी वर्ग का बी और ओ में, ए बी वर्ग सभी को दिया जा सकता है। ओ वर्ग केवल ओ का रुधिर ले सकता है। इस आधार पर ए बी वर्ग को सर्व प्राप्तकर्ता एवं ओ वर्ग को सर्वदाता कहते हैं।

रुधिर को 40° फारेनहाइट पर सुरक्षित रखा जाता है। रुधिर में थोड़ा सा सोडियम साइट्रेट मिलाकर 30 दिन तक रखा जा सकता है। जिस कक्ष में रुधिर रखा जाता है उसे 'रुधिर बैंक' कहते हैं।

रुधिर जितने झटके के साथ हृदय से धमनियों में प्रवाहित होता है, उसे 'रक्त चाप' कहते हैं। यह दाब इतना होता है कि हृदय से रुधिर को धमनियों द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों तक ले जाता है तथा अंगों से शिराओं के द्वारा हृदय तक वापस लाता है। धमनी में यह दाब अधिक होता है तथा शिराओं में कम दाब होता है।

रुधिर चाप दो प्रकार का होता है। यह हृदय के संकुचन और फैलने के कारण होता है। संकुचन के समय के रुधिर दाब को सिसटोलिक रुधिर दाब व फैलने के समय के रुधिर दाब को डाइस्टोलिक रुधिर दाब कहते हैं। सामान्यतया सिसटोलिक रुधिर दाब 100-140 मि० मी० तथा डाइस्टोलिक रुधिर दाब 55-80 मि० मी० पारे के दाब के बराबर होता है।

सामान्य रुधिर दाब विशेष परिस्थितियों में ज़्यादा या कम हो जाता है, तब मनुष्य सामान्य नहीं रह पाता। दाब बढ़ने पर उसे उच्च रुधिर दाब हो जाता है। यह असन्तुलित भोजन, अधिक कार्य, चिन्ता या आवेश, घबराहट, धूम्रपान से हो जाता है। दाब कम होने पर निम्न रुधिर दाब हो जाता है। यह थकान रुधिर की कमी के कारण होता है। इन रोगों से दूर रहने के लिए उनके कारणों से दूर रहना ही हितकर है।

जब हृदय के विलय में संकुचन होता है तो रुधिर रुक-रुक कर झटके के साथ बहता है। इसे हृदय स्पंदन तथा लहर को नाड़ी कहते हैं। एक मिनट में हृदय और धमनी में समान स्पंदन होता है। इसे नाड़ी-दर कहते हैं। नवजात शिशु में 130-140, बालक में 120, वयस्क में 70-80 तथा वृद्ध में 60 नाड़ी दर होती है।

व्यायाम, डर, क्रोध, मानसिक चिन्ताओं से नाड़ी दर बढ़ जाती है।

स्वस्थ रहने के लिए हमारे लिए यह आवश्यक है कि नाड़ी दर, रुधिर दाब सामान्य रहे। यह तब ही सम्भव है जब हम खुश व सामान्य रहें तथा पौष्टिक व सन्तुलित आहार लेते रहें, जिससे रुधिर शुद्ध व उचित मात्रा में बनने लगे।

रुधिर का जमना

शरीर में कहीं भी चोट लगने पर रुधिर वाहिनी फट जाती है और रुधिर निकलने लगता है, किन्तु

थोड़े समय बाद रुधिर का बहना बन्द हो जाता है। ऐसा रुधिर का थक्का बनने के कारण होता है। रुधिर का थक्का बनने को ही रुधिर का जमना कहते हैं। रुधिर के जमने के बाद एक प्रकार का हल्का पीले रंग का द्रव निकलता है, जिसे सीरम कहते हैं।

रुधिर का जमना एक रासायनिक क्रिया है। यह कई चरणों में पूर्ण होती है।

प्रथम चरण—घायल भागों के क्षतिग्रस्त ऊतकों से **थाम्बोप्लास्टिन** नामक पदार्थ निकलता है। इसी प्रकार रुधिर कोशिकाओं से निकले रुधिर में रुधिर प्लेटलेट्स का विघटन होता है और यह प्लेटलेट्स, प्लेटलेट तत्व में परिवर्तित हो जाती है। दोनों तत्व प्लाज़्मा में उपस्थित कैल्सियम तथा प्लाज़्मा प्रोटीन से मिलकर नया पदार्थ **प्रोथ्राम्बिनेज** एन्ज़ाइम बनाते हैं।

द्वितीय चरण—प्रोथ्राम्बिनेज की उपस्थिति में हिपेटिन एवं एन्टीप्रोथ्राम्बिन को निष्क्रिय करता है और फिर प्रोथ्राम्बिन को थ्राम्बिन में बदल देता है।

तृतीय चरण—थ्राम्बिन प्लाज़्मा में उपस्थित घुलनशील फाइब्रिनोजन प्रोटीन को सक्रिय फाइब्रिन के अणुओं में तोड़ देता है। ये अणु पतला सूत्र बना देते हैं। ये सूत्र घने जाल के रूप में चोट पर जम जाते हैं, जिससे रुधिर कण बाहर नहीं निकल पाते। इस प्रकार चोट लगने पर जाल थक्का बन जाता है। थोड़े समय बाद हल्का पीला सा तरल पदार्थ बहता है। यह सीरम है, जो फाइब्रिन से छनकर बाहर आता है।

रुधिर श्वसन की क्रिया को पूर्ण करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रुधिर का हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन के साथ मिलकर ऑक्सी-हीमोग्लोबिन बनाता है। यह शरीर के विभिन्न भागों में जाकर ऑक्सीजन वही मोग्लोबिन में टूट जाता है। ऑक्सीजन ऑक्सीकृत कर ऊर्जा देती है।

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि रुधिर की एक बूंद हमारे लिए कितनी उपयोगी है। इसे नष्ट न होने देना चाहिए।

आजकल महानगरों में नशीली दवाओं का प्रयोग काफी ज़ोरों पर है। इन दवाओं के प्रभाव से रुधिर का सामान्य स्तर कम हो जाता है। रुधिर की मात्रा भी कम हो जाती है और मृत्यु हो जाती है। इस कारण इन दवाओं का प्रयोग नहीं करना चाहिए। रुधिर को हमेशा शुद्ध ही रखना चाहिए। यह एक अनमोल पदार्थ है। इसके सही रहने पर हम जीवन का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। अतः रुधिर हमारे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

रुधिर की कमी होने पर शरीर पीला पड़ जाता है। कमज़ोरी, थकान हो जाती है। किसी कार्य को करने का मन नहीं करता। शरीर कमज़ोर होने पर बीमारियाँ भी हो जाती है। गर्भवती महिलाओं में रुधिर की कमी हो जाती है, क्योंकि उन्हें रक्त की अधिक आवश्यकता होती है, अतः रुधिर उनके जीवन के लिए बहुत ही मूल्यवान है। इसकी कमी को दूर करने के लिए विटामिन बी कॉम्प्लेक्स, व लौह तत्व के लिए हरी पत्ते वाली सब्ज़ियाँ, दूध आदि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इन पौष्टिक पदार्थों के अभाव में गर्भवती महिलाओं को आमतौर से 'रक्ताल्पता' (अनीमिया) नामक रोग हो जाता है।

शल्य-क्रिया में रुधिर की आवश्यकता पड़ती है। रुधिर के वर्ग के अनुसार 'ब्लड बैंक' से प्राप्त कर प्रयोग में लाते हैं। ऐसे समय रुधिर की कमी के कारण मृत्यु भी हो जाती है। इस प्रकार खून जीवन के लिए बहुत आवश्यक है।

बीमार होने पर रुधिर की रचना में परिवर्तन हो जाता है। इस परिवर्तन से तात्पर्य यह है कि विभिन्न कणिकाओं की संख्या बढ़ जाती है। इसका पता करने से बीमारी का पता लग जाता है। मधुमेह होंने पर इसनोफिल की संख्या बढ़ जाती है—आदि। इस प्रकॉर रुधिर टेस्ट विभिन्न बीमारियों को पहचानने में सहायक है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि रुधिर हमारे लिए जीवन दायक, जीवन रक्षक है। रुधिर के अभाव में जीवन सम्भव ही नहीं है। यह एक अनमोल वस्तु है। हमें समझना चाहिए कि यह कितना महत्वपूर्ण है। इसकी एक-एक बूंद की रक्षा करनी चाहिए, जिससे अपने और अन्य के काम आ सके। रक्त शरीर में नवजीन का संचार करता है। □□

अतिसार की रोकथाम के प्रारम्भिक उपाय

डॉ० विजय कुमार श्रीवास्तव

[अतिसार की तुरंत रोकथाम में ज़रा सी भी देरी रोगी के लिए मृत्यु का कारण बन सकती है। इसकी रोकथाम के प्रारम्भिक उपायों की जानकारी सभी के लिए ज़रूरी है।

सम्पादक]

हमारे देश में पाँच वर्ष की आयु तक के बच्चों की मृत्युदर काफ़ी अधिक है। इनमें आधे से अधिक अपना दूसरा जन्मदिन मनाने से पूर्व ही इस दुनिया से कूच कर जाते हैं। वैसे तो इन शिशुओं की मृत्यु के अनेक कारण हैं, लेकिन इन सबमें सम्भवतः सबसे बड़ा हत्यारा है अतिसार (डायरिया) जिसे आम बोल-चाल में दस्त लगना कहा जाता है। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में प्रति वर्ष 6 महीने से लेकर 5 वर्ष की आयु के 5 से 10 लाख शिशु इसके शिकार हो जाते हैं।

इस रोग के प्रसार का सबसे बड़ा कारण है दूषित जल। इसीलिए गरीब तबके के, तंग बस्तियों तथा झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाले शिशु, इसका शिकार अधिक होते हैं। बरसात और बाढ़ जैसी परिस्थितियों में जब साफ़ और दूषित पानी का सहज ही संगम हो जाता है तो इसकी तांडव लीला अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं की सुर्खी बन जाती है।

विडम्बना तो यह है कि अतिसार से होने वाली अधिकांश मौतों को आसानी से रोका जा सकता है। बस आवश्यकता होती है रोग को पहचानने की और प्रारम्भिक अवस्था में ही उस पर काबू पाने के प्रयास की अधिकांश स्थितियों में इसके लिए शिशु को किसी विशेषज्ञ चिकित्सक के पास अथवा अस्पताल ले जाने की भी ज़रूरत नहीं होती। लेकिन अतिसर पर काबू पाने के प्रयास किए जाने से पहले यह जानना बहुत ज़रूरी है कि इससे शिशु की मृत्यु क्यों होती है।

अतिसर में दिन भर तीन या उससे अधिक बार पानी जैसे पतले दस्त होते हैं। माँ का दूध पीने वाले बच्चों का मल वैसे ही थोड़ा पतला होता है। यह अतिसार के कारण नही होता। अतिसार में मल अधिक दुर्गन्ध वाला होता है। साथ ही मल होते समय आवाज़ हो सकती है।

अतिसार से मृत्यु शरीर से अधिक मात्रा में पानी तथा लवण निकल जाने के कारण होती है, साथ ही रोगी के शरीर में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। यदि बच्चा पहले से ही कुपोषण का शिकार है तो उसकी मृत्यु की सम्भावनाएँ और भी बढ़ जाती हैं।

सामान्य अवस्था में शरीर को पानी और लवण खाद्य एवं पेय पदार्थों से प्राप्त होते हैं। आँतों से ये पदार्थ रक्त में पहुँचते हैं। थोड़ी-थोड़ी मात्रा में पानी और लवण मल-मूत्र और पसीने के साथ-साथ निकलते भी रहते हैं। लेकिन अतिसार में आँतों की व्यवस्था बिगड़ जाती है और आँतों से पानी और लवण रक्त में जाने के बजाय रक्त आँतों में आने लगता है और आँतों से मल के साथ शरीर के बाहर निकल जाता है। सामन्य से अधिक मात्रा में पानी शरीर से बाहर निकल जाने पर शरीर निर्जलन का शिकार हो जाता है। प्रत्येक दस्त के साथ निर्जलन बढ़ता जाता है। शिशुओं में गर्म जलवायु में तथा बुखार की स्थिति में निर्जलन अधिक होता है।

अतिसार में मृत्यु का कारण निर्जलन है यह जान लेने के बाद अतिसार में मृत्यु को रोकने के लिए तीन उपाय किए जा सकते हैं। ये उपाय हैं निर्जलन होने न देना और यदि हो ही गया हो तो उसे दूर करना, साथ ही बच्चे को पर्याप्त आहार भी देते रहना ताकि शरीर स्वस्थ रह सके।

अधिकतर मामलों में बच्चे के शरीर में पानी की कमी न होने देने से ही अतिसार काबू में आ जाता है क्योंकि अधिकांश बच्चों में अतिसार अधिक उग्र नहीं होता और उनके शरीर में पानी की कमी नहीं होती। पानी की कमी न होने पाए इसके लिए घर में ही बच्चों को पर्याप्त मात्रा में पेय पदार्थ दिए जाने चाहिए। इन पेय पदार्थों में शरबत, लस्सी, दाल का पानी, हरे नारियल का पानी, चावल का पानी, पानी मिला दूध, कम पत्ती वाली चाय और माँ का दूध प्रमुख हैं।

लेकिन यदि दस्तों की संख्या अधिक हो तथा वे अधिक पतले हों तो उनसे होने वाली पानी और लवण की हानि को केवल इन पेय पदार्थों से नहीं रोका जा सकता। इस अवस्था में एक विशेष पेय पदार्थ देना होता है जिसे मुखीय पुनर्जलन घोल अथवा "ओरल रिहाइड्रेशन सोल्यूशन" संक्षेप में "ओ० आर० एस०" कहते हैं।

इस घोल के बने बनाये पैकेट प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के पास उपलब्ध होते हैं। लेकिन आवश्यक्ता पड़ने पर इन्हें घर में भी तैयार किया जा सकता है। एक लिटर घोल बनाने के लिए 3.5 ग्राम सोडियम क्लोराइड अथवा साधारण नमक, 20 ग्राम ग्लूकोज़ (ग्लूकोज़ न होने पर 40 ग्राम साधारण चीनी), 2.9 ग्राम ट्राइसोडियम साइट्रेट डाइहाइड्रेट अथवा 2.5 ग्राम सोडियम बाइकार्बोनेट (खाने वाला सोडा) और **15** ग्राम पोटैशियम क्लोराइड की आवश्यकता पड़ती है। वैसे आपात स्थिति में सोडियम बाइकार्बोनेट और पोटैशियम क्लोराइड न भी हों तो भी कोई विशेष नुकसान नहीं है परन्तु यदि ये पदार्थ भी मिल सकें तो अच्छा होगा।

इन सारे पदार्थों को एक लिटर ताज़े उबालकर ठण्डा किए पानी में घोलकर ताज़ा घोल बना लेना चाहिए। इस घोल को छान कर हर दस्त के बाद बच्चे को पिलाना चाहिए।

ध्यान रहे घोल बनाने के लिए पानी न तो एक लिटर से अधिक हो और न कम। कम पानी में बना घोल बच्चे के लिए हानिकारक होगा और अधिक पानी में बना घोल पर्याप्त लाभ नहीं पहुँचा पाएगा। घोल को बनाते तथा बच्चे को उसे देते समय स्वच्छता बहुत ही आवश्यक है वर्ना इसके लाभ धरे रह जाएँगे।

घोल देते रहने के साथ-साथ बच्चे को शीघ्र पचने वाला पौष्टिक आहार भी देते रहना न भूलें। ग्लूकोज़ का घोल बच्चे को न पिलाएँ क्योंकि इससे केवल पानी और शर्करा की ही आवश्यकता पूरी हो पाती है। इससे शरीर के लिए आवश्यक लवण और खनिज नहीं मिल पाते हैं।

इन सबके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि बच्चे पर दस्त तुरन्त रोक देने वाली कोई भी ओषधि न आज़माएँ अन्यथा अतिसार को जन्म देने वाले जीवाणु शरीर में ही रह जाएगें और दवा का असर समाप्त होते ही वह फिर प्रभावी हो जाएँगे।

एक और बात का ध्याय रखना भी आवश्यक है। यदि घर में ओ० आर० एस० के उपयोग से 12-18 घण्टे के भीतर बच्चे की हालत में सुधार न हो तो बिना और देरी किए उसे तुरन्त चिकित्सक के पास अथवा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या अस्पताल ले जाएँ। □□

(सम्प्रेषण)

पादप रोगों के जनक : माइकोप्लाज़्मा

रवि कृष्ण गुप्ता

अक्सर यह देखा गया है कि पौधों की पत्तियाँ अपने साधारण आकार से काफी छोटी रह जाती हैं। तने में अनेक शाखायें-प्रशाखायें उत्पन्न हो जाती हैं और ब्रश जैसी हो जाती हैं। फूलों के विभिन्न अंग पत्ती-नुमा हो जाते हैं। साथ ही ऐसे पौधों में फल नहीं लगते। इसी प्रकार गन्ने के पौधों में अंकुर न फूट कर उनमें सीधे पत्तियाँ निकलने लगती हैं या नींबू पकने पर भी हरे रह जाते हैं या आलू में काले धब्बे पड़ जाते हैं।

इन रोगों का पता लगाने के लिए जापान के पादप रोग विज्ञानी **दाई** और उनके सहयोगियों को गहन अध्ययन के परिणामस्वरूप यह पता लगा कि रोगग्रस्त पौधों में **प्लूरोनिमोनिया** सदृश्य अत्यन्त सूक्ष्मजीव विद्यमान होते हैं। ये सूक्ष्मजीव ही इन रोगों के कारण हैं। इन सूक्ष्मजीवों का आकार आमतौर पर 80-800 मिलीमाइक्रॉन (mμ) होता है। पर इनमें कोशा भित्ति नहीं होती। ये निश्चित रूप फंजाई (कवक), वाइरस (विषाणु), बैक्टीरिया (जीवाणु) आदि से भिन्न हैं। सूक्ष्मजीवों के इस समूह का नाम **माइकोप्लाज़्मा** रखा गया। अध्ययन करने के बाद यह पता लगा कि **माइकोप्लाज़्मा** पौधों में 80 से अधिक विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।

माइकोप्लाज़्मा की खोज 1898 में दो फ्रांसीसी वैज्ञानिकों-**ई० आई० ई० नेकार्ड** और **पी० पी० रॉक्स** ने की थी। ये वैज्ञानिक **प्लूयुरोनिमोनिया** से पीड़ित पशु के पार्श्व तरलों का अध्ययन कर रहे थे। आज
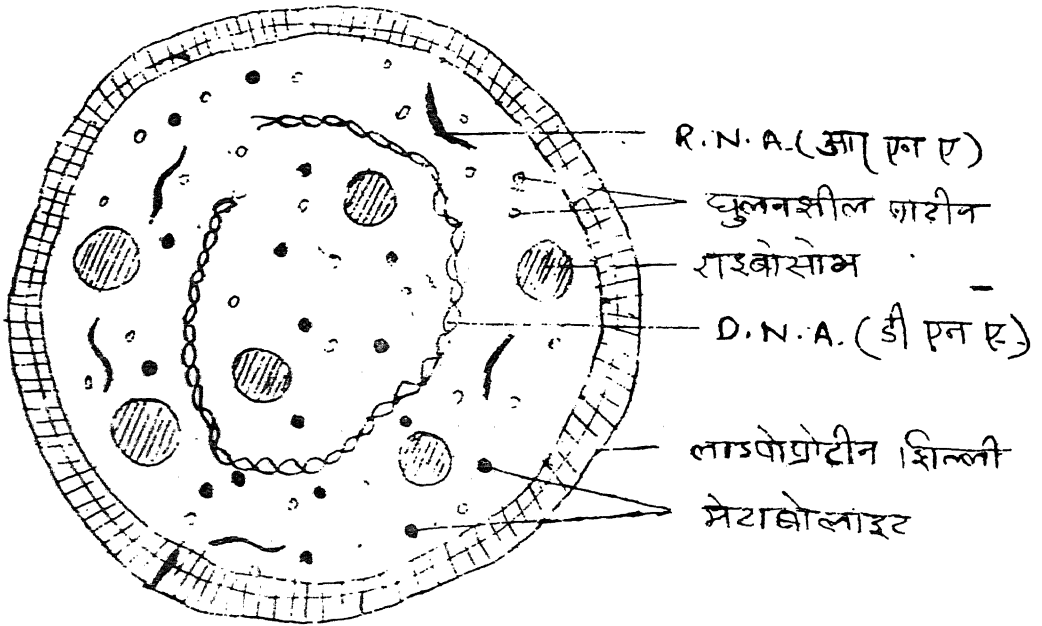
चित्र—माइकोप्लाज़्मा कोशिका

62 चक, इलाहाबाद—211003 (उत्तर प्रदेश)

यह मालूम किया जा चुका है कि **माइकोप्लाज्मा** पौधों में ही नहीं वरन् पशुओं और मनुष्यों में भी आमवात (गठिया) जैसे रोग उत्पन्न करते हैं।

माइकोप्लाज़्मा की रचना

माइकोप्लाज़्मा में कोशाभित्ति का तो अभाव होता है, परन्तु कोशिका का आकार बनाये रखने के लिए एक त्रिस्तरीय झिल्ली होती है। यह झिल्ली लाइपो-प्रोटीन की बनी होती है और इसे 'इकाई कला' कहते हैं। यह झिल्ली अत्यधिक पतली और लचीली होती है, जिससे **माइकोप्लाज्मा** का रूप बदलता रहता है।

रासायनिक विश्लेषण एवं अन्य परीक्षणों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि **माइकोप्लाज़्मा** में **डी० एन० ए०** एवं **आर० एन० ए०** दोनों ही मौजूद होते हैं। इसमें डी० एन० ए० वस्तुतः वृहत कोशिकाओं के गुणसूत्रों में उपस्थित द्विवलयक कुण्डली सदृश्य होता है। इनके अतिरिक्त **माइकोप्लाज़्मा** में राइबोसोम, घुलनशील प्रोटीन तथा मेटाबोलाइट भी पाये जाते हैं।

लक्षण

माइकोप्लाज़्मा का विस्तृत अध्ययन करने पर 1971 में **डेविस और ह्वाइट** को निम्नलिखित विशिष्ट लक्षण मिले—

(1) **माइकोप्लाज़्मा** का संवर्धन कोशिका-मुक्त माध्यम में भी हो सकता है। इनका रूप बदलता रहता है और साधारणतया इनकी वृद्धि के लिए स्टेरॉल जरूरी होते हैं।

(2) इन पर प्रतिजैविक (एण्टीबायोटिक) पेनि-सिलीन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु ये टेट्रासाइ-क्लीन एण्टीबायोटिक से प्रभावित हो जाते हैं।

वर्गीकरण

माइकोप्लाज़्मा और **बैक्टीरिया** (जीवाणु) की रचना और लक्षणों में काफी समानता होती है जैसे कठोर कोशाभित्ति का अभाव। परन्तु **माइकोप्लाज़्मा** और **बैक्टीरिया** के अनेक लक्षणों में बहुत अन्तर भी पाया जाता है। इसलिए इन्हें जीवाणु के अन्तर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। 1966 में 'इण्टर-नेशनल कमेटी ऑन नामेनक्लेचर ऑव बैक्टीरिया' ने **माइकोप्लाज़्मा** को मॉलिक्यूटस वर्ग में रखा है।

माइकोप्लाज़्मा-जन्य रोगों का फैलना

जब कोई स्वस्थ्य पौधा **माइकोप्लाज़्मा** से ग्रसित पौधे के सम्पर्क में आता है तो उसके भी रोग से ग्रसित होने की आशंका हो जाती है। वैसे कीड़े और अन्य जीव भी इन रोगों को एक पौधे से दूसरे पौधे में फैला देते हैं। कुछ दशाओं में कलम बाँधने से भी ये रोग फैला सकते हैं।

सावधानियाँ एवं उपचार

यदि फ़सल बोने के लिए स्वस्थ्य बीजों का उप-योग किया जाता है तो **माइकोप्लाज़्माजन्य** रोग के फैलने की आशंका बहुत कम हो जाती है। इसी प्रकार एक पौधे की कलम दूसरे पौधे पर लगाने से पहले यह जाँच कर लेना भी उपयोगी होता है कि कलम **माइको-प्लाज़्मा** से ग्रस्त तो नहीं है। यदि उनमें **माइकोप्ला-ज़्मा** मौजूद है तो उसे इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

कीटनाशकों के प्रयोग से **माइकोप्लाज़्मा** नष्ट हो जाते हैं। टेट्रासाइक्लीन व लेडरमायसीन जैसे प्रति-जैविकों (एण्टीबायोटिकों) के प्रयोग से इस रोग का समुचित उपचार किया जा सकता है। □□

7 अप्रैल विश्व स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर

पर्यावरण खराब तो सेहत खराब

प्रदीप कुमार

इस साल 7 अप्रैल को दुनिया भर में मनाये जा रहे 'विश्व स्वास्थ्य दिवस' का मुख्य विषय है—"हमारी धरती—हमारा स्वास्थ्य।" इस अवसर पर 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने एक नारा भी दिया है,

सम्पर्क सूत्र: डी-720, सरस्वती विहार, दिल्ली-110034

जिसका मतलब है अपने देश में कुछ करने से पहले दुनिया भर की सोचो। यह विषय और नारा इस बात का बोध कराते हैं कि हमारे स्वास्थ्य और धरती के पर्यावरण के बीच गहरा रिश्ता है। अगर हमारा पर्यावरण खराब है तो अच्छी सेहत की कल्पना नहीं की जा सकती। पर्यावरण का भौगोलिक सीमाओं से कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए सारी दुनिया को एक होकर पर्यावरण का मोर्चा सँभालना होगा।

इस अवसर पर 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने एक दस्तावेज़ जारी किया है, जिसमें पर्यावरण और स्वास्थ्य से जुड़ी अनेक समस्याएँ उठायी गई हैं। तेज़ी से बढ़ती आबादी को मानव जाति की सबसे गम्भीर समस्या माना गया है। इक्कीसवीं सदी में हमारी आबादी छह अरब हो जाएगी। विश्व बैंक के अनुसार दुनिया के 80 करोड़ लोग घनघोर गरीबी में ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं। ग़रीबी के कारण उनकी मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो रही हैं। इन्हें मजबूरी में गंदा पानी पीना पड़ता है जो अनेक रोगों को जन्म देता है। झुग्गी झोपड़ियों में बसने वालों को कई मानसिक रोग भी घेर लेते हैं। यहाँ आत्महत्या की समस्या आम है।

कुपोषण भी ग़रीबी से जुड़ी समस्या है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जारी दस्तावेज़ के अनुसार दुनिया के लगभग साढ़े चौदह करोड़ बच्चों (पाँच साल से कम आयु के) को पर्याप्त ऊर्जा और प्रोटीन नहीं मिल रही है। ऐसे में वे शारीरिक और मानसिक दोनों ही रूपों में कमज़ोर पड़ जाते हैं। सफ़ाई की व्यवस्था ठीक न होने के कारण बच्चों को बार-बार संक्रामक रोग भी घेर लेते हैं। गंदे पानी के कारण तीसरी दुनिया के पचास लाख बच्चे दस्त (डायरिया) के कारण दम तोड़ देते हैं, जबकि इसका आसान इलाज भी मौजूद है। यहाँ बात उठती है अज्ञानता की। इसलिए लोगों को स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी देना भी बेहद ज़रूरी है।

पानी की तरह हवा का हाल भी खराब है। बड़े-बड़े उद्योगों के अलावा शहरों में दौड़ती मोटरकारें भी वायु प्रदूषण का प्रमुख स्रोत हैं। इन मोटरकारों से निकलने वाला काला धूँआ सड़कों के किनारे बने भवनों को काला कर देता है। ऐसे में हमारे फेफड़ों का क्या हाल होता होगा, आसानी से सोचा जा सकता है। इस धुँऐं में सीसे, कार्बनमोनोऑक्साइड और नाइट्रोजन के ऑक्साइड जैसे ज़हरीले रसायन मौजूद होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सलाह दी है कि हमें निजी मोटरकारों की जगह परिवहन के जनसाधनों का इस्तेमाल करना चाहिए। उससे वायु-प्रदूषण को कम करने में काफी मदद मिलेगी।

इसके अलावा दस्तावेज़ में और भी कई समस्याएँ उठाई गई हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने घरों में, शहरों में, काम-काज की जगहों में और गाँवों में प्रदूषण को कम करने के लिए अनेक उपयोगी सुझाव दिये हैं। इन्हें अमल में लाकर मानव जाति के स्वास्थ्य की रक्षा की जा सकती है। □□

(सम्प्रेषण)

जीन सरवे स्टास

डॉ० किरण बनर्जी

रसायनशास्त्र को सुदृढ़ वैज्ञानिक नींव पर स्थापित करने का श्रेय कई महापुरुषों को प्राप्त है। इन महापुरुषों में **स्टास** का भी नाम है। यद्यपि **लावाशिये** ने स्टास से बहुत पहले परिमाणात्मक कार्य का प्रारम्भ रसायन के क्षेत्र में कर दिया था, पर इस कार्य की नींव दृढ़ करने में स्टास ने वर्षों तक जिस लगन और तपस्या से कार्य किया वह रसायन विज्ञान के इतिहास में सदा चिरस्मरणीय रहेगा।

स्टास का जन्म बेलज़ियम के लोवें (Louvain) नामक स्थान में 21 अगस्त सन् 1813 ईसवी में हुआ

द्वारा डॉ० संत प्रसाद टंडन, 15 बैंक रोड, इलाहाबाद—211002

था। बाल्यकाल का विद्याध्ययन समाप्त करने के बाद स्टास ने चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया और डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की। किन्तु उनकी रुचि तो रसायनशास्त्र में थी। उनका मन चिकित्सावृत्ति में कैसे लगता। कुछ दिनों की प्रेक्टिस के बाद ही उन्होंने इस व्यवसाय को छोड़ दिया।

सन् 1835 में अपने एक मित्र **कोनिक** के साथ उन्होंने अपने घर के एक छोटे कमरे में 'फ्लोरिडज़िन' नामक पदार्थ की परीक्षा व उसका विश्लेषण प्रारम्भ किया। यहीं से स्टास का रसायन के क्षेत्र में पदार्पण होता है। फ्लोरिडज़िन सेब की जड़ की छाल से प्राप्त हुआ प्राकृतिक रासायनिक पदार्थ था। इस प्रारम्भिक कार्य से स्टास की रुचि रसायन की ओर अधिक बढ़ी और उन्होंने भविष्य में इसी कार्य को अपनाने का निश्चय कर लिया। इसके कुछ ही दिनों बाद स्टास ने प्रसिद्ध फ्रांसीसी रसायनज्ञ **ड्यूमा** की पेरिस की प्रयोगशाला में प्रवेश प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उन दिनों यूरोप में ड्यूमा की प्रयोगशाला की बड़ी प्रसिद्धि थी और वह कुछ उन थोड़ी इनी गिनी प्रयोगशालाओं में मानी जाती थी जहाँ रसायनशास्त्र सम्बन्धी खोज करने के सभी वैज्ञानिक साधन विद्यमान थे। ड्यूमा की प्रयोगशाला में प्रवेश प्राप्त करने की स्टास की उत्सुकता निम्न छोटी सी बात से भली भाँति ज्ञात हो जाती है। वे जब ड्यूमा से मिलने उनके घर गये तो ड्यूमा की नौकरानी ने उन्हें बतलाया कि ड्यूमा घर पर नहीं थे। इसके बाद वे इतनी बार ड्यूमा के मिलने के प्रयत्न में उनके घर का चक्कर लगाते रहे कि नौकरानी भी उन्हें 'नहीं' का उत्तर देते-देते ऊब सी गई थी। अंत में जब एक दिन वे पुनः ड्यूमा के घर पहुँचे और ड्यूमा घर पर थे तो नौकरानी के मुंह से प्रथम उत्तर उसकी आदतवश 'नहीं' निकला। किन्तु साथ ही हाथ के संकेत से उसने बतलाया कि ड्यूमा किस कमरे में बैठे थे।

ड्यूमा ने इन्हें अपनी प्रयोगशाला में एक शिष्य के रूप में भर्ती कर लिया। स्टास अपने साथ फ्लोरिडज़िन ले गये थे और ड्यूमा की प्रयोगशाला में सब से पहले उन्होंने इसी पर फिर से कार्य किया और इसके अनेक गुणों को खोज निकाला। उन्होंने सिद्ध किया कि हल्के अम्ल में उबालने से फ्लोरिडज़िन विघटित होकर फ्लोरेटिन और ग्लूकोज़ उत्पन्न करता है। इस प्रकार के जो पदार्थ विघटित होकर ग्लूकोज़ उत्पन्न करते हैं उन्हें ग्लूकोसाइड नाम दिया जाता है। स्वीडेन के रसायनज्ञ **बरजीलियस** का नाम उन दिनों सारे यूरोप में विख्यात था और वे बहुत ऊँचे वैज्ञानिक माने जाते थे। उन्होंने स्टास के इस कार्य की प्रशंसा की और साथ ही यह भविष्यवाणी की कि भविष्य में स्टास एक ऊँचे रसायनज्ञ होंगे। बरजीलियस जैसे दिग्गज वैज्ञानिक के मुंह के प्रशंसा प्राप्त कर कौन अपने को धन्य और गर्वित अनुभव न करेगा। फलतः स्टास द्विगुणित उत्साह से अपनी आगे की खोज में जुट गये और बरजीलियस की भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध कर दिया।

फ्लोरिडज़िन का कार्य समाप्त करने के बाद ड्यूमा और स्टास ने मिलकर पोटाश और चूने के मिश्रण का रासायनिक प्रभाव का विभिन्न एल्कोहॉल, तथा वसा अम्लों के एस्टरों पर अध्ययन किया और कई कार्बन अम्लों के लवण प्राप्त किये। इन दोनों ने एमाइल एल्कोहॉल के रासायसिक रूप का निरूपण भी किया और यह भी सिद्ध किया कि एसीटोन एल्कोहॉल के ग्रुप का पदार्थ नहीं है।

इसी वर्ष ड्यूमा और स्टास ने कार्बन का परमाणु भार मालूम करने का महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया। यहीं से स्टास के उस महत्वपूर्ण कार्य का प्रारम्भ होता है, जिसमें उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया और जिसके कारण उनका नाम आज रसायन के इतिहास में अमर हो गया है। तत्वों के परमाणु भार मालूम करने का कार्य बरजीलियस ने बड़े परिश्रम से किया था। बरजीलियस का कार्य अपनी पूर्णता व शुद्धता के लिए सर्वमान्य था। किन्तु कभी-कभी बरजीलियस द्वारा निश्चिय किये हुये तत्वों के परमाणु भार के आधार पर अन्य रासायनिक प्रयोगों के फल त्रुटिपूर्ण प्राप्त होते थे। अतः यह सन्देह होने लगता था कि

बरजीलियस के परमाणु भार की संख्या में कुछ अशुद्धि है। तत्वों के परमाणु भारों का पुनः प्रयोगों द्वारा निश्चित करने का कार्य स्टास ने किया और सदा के लिए इस कार्य को पूर्ण कर दिया।

उन दिनों के बड़े रसायनज्ञों में, जिनमें लीबिग और ड्यूमा भी थे, यह प्रायः देखा था कि अधिक अणुभार वाले हाइड्रोकार्बन पदार्थों के विश्लेषण से प्राप्त हुये कार्बन और हाइड्रोजन का योग, प्रयोग के प्रारम्भ में लिये गये पदार्थ की मात्रा से कुछ अधिक होता था। कार्बन और हाइड्रोजन का योग प्रयोग में उत्पन्न हुई कार्बन डाइ-ऑक्साइड और पानी की मात्राओं से गणना कर मालूम किया जाता था। ड्यूमा की यह निश्चित धारणा थी कि कार्बन डाइ-ऑक्साइड और पानी के रासायनिक संगठन की संख्यायें, जो उन दिनों मान्य थीं, अवश्य त्रुटिपूर्ण थीं। इन पदार्थों में परमाणुओं के भारों का अनुपात बरजीलियस द्वारा निम्न बतलाया गया था—

कार्बन डाइऑक्साइड···कार्बन: ऑक्सीजन
=12.246 : 32.042

जल ···हाइड्रोजन: ऑक्सीजन
=2 : 16.021

ड्यूमा और स्टास ने ऊपर के अनुपातों की सत्यता निर्धारित करने के लिए कार्बन डाइऑक्साइड और जल के परमाणु भारों को होशियारीपूर्वक प्रयोगों द्वारा पुनः मालूम किया। उदाहरणार्थ–कार्बन डाइऑक्साइड का रासायनिक संगठन निश्चित करने के लिए कई प्रकार के शुद्ध कार्बन-ग्रैफाइट, हीरा आदि – द्वारा अलग-अलग प्रयोग किये। प्रयोग की विधि यह थी— कार्बन की एक निश्चित मात्रा को एक पोरसिलेन की नली में शुष्क ऑक्सीजन के वायुमण्डल में जलाया गया। कार्बन के जलने पर जो कार्बन डाइऑक्साइड बनी उसे कास्टिक पोटाश के घोल में, जिसकी तौल पहले मालूम कर ली गई थी, शोषण किया गया और फिर इस कास्टिक पोटाश को तौल कर कार्बन डाइ-ऑक्साइड की तौल मालूम कर ली गई। कार्बन के जल चुकने के बाद पोरसिलेन की नली में जो राख शेष बची उसका भी ध्यान रखकर कुल गणना की गई। कई बार के प्रयोगों के फलस्वरूप निम्न औसत परिणाम कार्बन डाइऑक्साइड के संगठन का प्राप्त हुआ :

कार्बन : ऑक्सीजन = 74.956 : 100

हीरे के कार्बन से निम्न फल प्राप्त हुआ :

कार्बन : ऑक्सीजन = 75.005 : 100

चूँकि हीरा परम शुद्ध कार्बन का रूप है, इस कारण पिछले फल को इन वैज्ञानिकों ने अधिक विश्वसनीय माना।

इन खोजों को समाप्त करने के बाद सन् 1840 ई० में स्टास पेरिस से अपने देश वापस आ गये और ब्रूसेल्स की एक शिक्षा संस्था में आचार्य का पद ग्रहण कर लिया। इस पद पर उसने 25 वर्षों से भी अधिक समय तक केवल नाममात्र के वेतन पर कार्य किया। इस पद पर 30 वर्ष पूरा करने पर वह पेन्शन का अधिकारी हो जाता, किन्तु इसके पूर्व ही उसके कंठ में सूजन का रोग हो गया जिससे उसे व्याख्यान के कार्य में कष्ट होने लगा। अतः उसने पेन्शन की अवधि पूरी करने की परवाह न कर इस पद से त्यागपत्र दे दिया। तब उसे बेलज़ियम की सरकार ने सरकारी कोष-विभाग में कमिश्नर का पद दिया किन्तु इस पद से भी उसे कुछ ही समय बाद त्याग-पत्र देना पड़ा। चाँदी सस्ती होने के कारण बेलज़ियम की सरकार ने सोने के स्थान में इसी के सिक्के बड़ी मात्रा में ढलवाने का निश्चय किया। स्टास ने जनता के हित के विचार से सरकार की इस योजना का विरोध किया, किन्तु उसके विरोध का कोई परिणाम न होने से उसने सन् 1872 में कोष-विभाग के कमिश्नर पद से त्याग-पत्र दे दिया। इसके बाद उसने वैतनिक रीति से कोई कार्य नहीं किया और अपना शेष जीवन भी ब्रूसेल्स में ही रहकर जनता व देश की सेवा में बिताया। स्टास जीवनपर्यन्त अविवाहित रहा। उसके जीवन मे केवल एक ही लगन, एक ही अभिलाषा थी, और वह थी विज्ञान की उन्नति करना। विज्ञान की सेवा को ही उसने अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया।

वैतनिक जीवन के अतिरिक्त उसे अनेक सार्वजनिक पदों पर अवैतनिक रूप से भी कार्य करना पड़ा। अपने देश की ओर से उसे विभिन्न रूपों में मान व प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। बेलजियम की सरकार ने उसे लीपोल्ड ऑर्डर के बड़े अफसर की पदवी देकर उसका सम्मान किया था। उन दिनों यह पदवी बेलजियम में सबसे अधिक मान की समझी जाती थी।

वैज्ञानिक संसार में भी स्टास ने कम प्रतिष्ठा नहीं पाई। यरोप की कोई भी प्रयोगशाला व शिक्षा संस्था ऐसी नहीं थी जो उसे अपनी डिग्री या सदस्यता प्रदान करने की इच्छुक न रही हो। बेलजियम की विज्ञान की एकेडेमी का वह सभापति रहा, लंदन की रॉयल सोसायटी ने उसे अपना फेलो बनाया तथा जर्मनी व अन्य देशों की एकेडेमियों ने उसे अपना सदस्य बनाकर उसे मान दिया। अनेक विश्वविद्यालयों ने उसे अपनी डिग्रियाँ प्रदान कर सम्मानित किया। कितनी ही वैज्ञानिक संस्थाओं ने उसे उसके कार्य के उपलक्ष्य में पदक प्रदान किये। इन पदकों में रॉयल सोसायटी, लंदन द्वारा सन् 1885 में दिया गया 'डेवी पदक' तथा ब्रूसेल्स की एकेडेमी द्वारा सन् 1891 में इस एकेडेमी में उसकी सदस्यता के 50 वर्ष पूरा होने के उपलक्ष्य में दिया गया पदक विशेष उल्लेखनीय हैं। रॉयल सोसायटी का 'डेवी पदक' विज्ञान में बहुत ऊँचा मौलिक कार्य करने पर दिया जाता है। इन पदकों से स्टास के रसायन के क्षेत्र में किये गये कार्यों के महत्व का कुछ अनुमान किया जा सकता है। ब्रूसेल्स की एकेडेमी ने सन् 1891 में उसकी 'स्वर्ण जयन्ती' मनाने के लिए जो उत्सव आयोजित किया था, उसमें विभिन्न देशों से बड़े-बड़े वैज्ञानिक सम्मिलित हुये थे और अनगिनत संस्थाओं व व्यक्तियों ने बधाई के पत्र भेजे थे। 'स्वर्ण जयन्ती' के उपलक्ष्य में प्रोफेसर **डब्ल्यू स्प्रिंग** ने स्टास के समस्त वैज्ञानिक कार्यों को पुस्तकाकार प्रकाशित करने का आयोजन किया था।

विचारों की स्वतन्त्रता तथा उसे व्यक्त करने की निडरता ने उसे बेलजियम के पादरियों का शत्रु बना दिया था। उसने खोज तथा अध्यापन के कार्य को गिर्जे के अधिकार क्षेत्र से स्वतन्त्र रखने के लिए जो विचार व्यक्त किये उनके कारण पादरियों ने उसे अपने पत्रों में बुरी तरह गालियाँ सुनाई। उसके विचार स्वातन्त्र्य के कारण बेलजियम की सरकार भी उससे नाराज़ रही। इस नाराज़गी की कुछ झलक बेलजियम के मंत्रियों की चैम्बर में दी गई वक्ताओं से प्रकट होती है। सरकार तथा गिर्जे का अप्रिय होने पर भी वह जनता का अन्त तक प्रिय बना रहा और जनता से उसे जो प्रेम और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई वह उसको सुख व सन्तोष देने के लिए पर्याप्त थी।

स्टास का धर्म में कोई विश्वास नहीं था। वह जीवित रहते इसके बन्धन से अलग रहा और मरते समय भी यह इच्छा प्रकट कर गया कि उसकी समाधि गिर्जे के अधिकार क्षेत्र से बाहर बनाई जाय। धार्मिक विरोध होने पर भी चर्च के बहुत से सज्जन उसके व्यक्तित्व की प्रशंसा करते थे और कुछ तो उससे हार्दिक प्रेम व मित्रभाव रखते थे। स्टास एकदम स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति था। ऐसा स्वभाव होने पर भी उसके व्यक्तित्व में इतना आकर्षण था कि लोग स्वयं उसके पास मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए खिंच आते थे। उसकी गहरी मित्रता कुछ ऐसे लोगों से भी हो गई थी जिनका राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में ऊँचा स्थान था। इन मित्रों में ब्रेज़िल के **सम्राट डोम पेड्रो** और **प्रिंस जेरोम बोनापार्ट** के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अपने नवयुक शिष्यों से उसका व्यवहार सदा मित्रवत रहता था। उनको वैज्ञानिक कार्य करने में वह अपनी पूर्ण सहायता व उत्साह प्रदान करता था। जो उसके प्रिय शिष्य होते थे उनकी सहायता वह विशेष रूप से करता था, किन्तु इसके साथ ही जिनसे वह घृणा करने लगता था उनके प्रति वह कठोर भी कम नहीं था। रसायन के नवीन सिद्धान्तों को उसने शीघ्र स्वीकार नहीं किया और अपनी मृत्यु के कुछ पहले तक उसे इन सिद्धान्तों की खिल्ली उड़ाने में कोई संकोच नहीं होता था। प्रसिद्ध रसायनज्ञ केकूले के नवीन सिद्धान्तों की स्टास ने यद्यपि बहुत समय तक कड़ी आलोचना की किन्तु यह भी सच है कि केकूले को उसके प्रारम्भिक जीवन में सहायता देकर अपरोक्ष रूप से नवीन रसायन की उन्नति में भी वह सहायक रहा।

स्टास का देहावसान 13 दिसम्बर सन् 1891 में हुआ। इस तपस्वी वैज्ञानिक को अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उसके मृत शरीर के पास अनेक बड़े-बड़े धर्मी, मानी व विद्वान व्यक्ति एकत्रित हुये थे। इस प्रकार जीवन भर सत्य की उपासना व उसकी खोज करते-करते स्टास चिरशान्ति प्राप्त करने अनन्त की गोद में पहुँच गया।

ब्रूसेल्स के अपने 50 वर्षों के वैज्ञानिक जीवन में अपने मुख्य कार्य परणाणु भार निश्चित करने के अतिरिक्त अन्य कई दिशाओं में भी उसने महत्वपूर्ण खोज के कार्य किये। अपनी खोज के कार्य में जीवन भर वह बड़ी शान्तिपूर्वक संलग्न रहा। कभी किसी सांसारिक चिंताओं से वह उत्तेजित नहीं होता था। सन् 1842 में उसने 'वायुमण्डल की हवा के विश्लेषण के परिणाम' फ्रान्स की एकेडेमी को सूचित किये। सन् 1843 में उसने 'रॉयल सोसायटी' के पास एक खोज सम्बन्धी लेख भेजा जिसमें उसने सलफ्यूरिक एसिड और एसीटिक एसिड की पारस्परिक रासायनिक क्रियाओं पर विवेचना की थी।

व्यावहारिक रसायन के क्षेत्र में भी उसने कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये। सन् 1846 में उसने आलू में होने वाले रोग के सम्बन्ध में एक लेख पेरिस की वैज्ञानिक एकेडेमी के पास भेजा। इस लेख में उसने रोगी आलू की रासायनिक दशा की तुलना स्वस्थ आलू से की और बतलाया कि रोग क्यों और कैसे होता है। इसी बीच एक दुःखद हत्याकाण्ड हो गया। इस हत्याकाण्ड के अवसर पर भी स्टास की वैज्ञानिक सूझ-बूझ ने ही हत्यारे को न्यायालय के सामने हत्यारा सिद्ध करने में मदद दी। नवम्बर सन् 1850 में एक काउण्ट ने उसके बहनोई को जलप्रयोग द्वारा निकोटीन खिलाकर उसकी हत्या की। काउण्ट ने कहीं से निकोटीन का बनाना सीखा था और उसके बहनोई की हत्या के लिए स्वयं ही निकोटीन बनाया था। उन दिनों इस विषय का ज्ञान अन्य लोगों को नहीं था। काउण्ट और हत्या में सहायता करने के कारण उसकी पत्नी पर अगले साल जो मुकदमा चला उसकी जनता में बड़ी चर्चा और चहल पहल रही, क्योंकि यह हत्या एक नई विशेष रीति से की गई थी! स्टास ने अपनी प्रयोगशाला में निकोटीन को बनाने तथा उसे पहचानने के सम्बन्ध में परिश्रमपूर्वक प्रयोग किये और सफलता प्राप्त की। उसकी इसी सफलता के आधार पर काउण्ट का अपराध सिद्ध किया जा सका। अपने साक्ष्य में उसने निश्चित रूप से निकोटीन को पहचानने व परीक्षण करने की विधि बतलाई जिसने काउण्ट का अपराध सरलता से सिद्ध हो गया और न्यायालय ने उसे उचित दंड दिया। निकोटीन पर कार्य करने के फलस्वरूप उसने समस्त अलकोलायड (पौधों से प्राप्त विष) को पहचानने के लिए एक नई विधि मालूम की। इस विधि में बाद में **ओटो** ने कुछ संशोधन किया और यही विधि आज भी विष पहचानने के लिए प्रयुक्त होती है।

सन् 1862 में जब लंदन में विश्व प्रदर्शनी हुई तो स्टास से तेल व चर्बियों को विश्लेषित करने की अच्छी विधि पूछी गई। उसने प्रयोगों द्वारा विभिन्न विधियों के गुण दोष मालूम किये और बतलाया कि मोमबत्तियों के लिए स्टियरिक एसिड प्राप्त करने के लिए तेल व चर्बियों को सल्फ्यूरिक एसिड द्वारा विश्लेषित करने की विधि अधिक अच्छी है। अस्त्र-शस्त्र बनाने के उपयुक्त अच्छी धातु संकर तैयार करने के सम्बन्ध में भी उसने अपनी सकरकार के कहने पर कार्य किया और परिणाम सरकार के पास भेज दिया। ये परिणाम गोपनीय रक्खे गये।

जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है, स्टास के जीवन का सब से बड़ा कार्य जिस पर उसने अपने जीवन का अधिक समय और अपनी सारी विचार शक्ति लगा दी, तत्त्वों के परमाणुभारों का पुनः निश्चित करना था। ब्रूसेल्स में पहुँचने के तुरन्त ही बाद उसने इस कार्य का प्रारम्भ कर दिया था। अपने गुरू ड्यूमा द्वारा उत्साहित किये जाने के कारण ही उसने इस कार्य को अपनाया था। बरजीलियस का इस दिशा में किया हुआ कार्य उन दिनों सर्वमान्य था। बरजीलियस के कार्य को पुनः अन्य रीति से करने में स्टास का ध्येय यह था कि सदा के लिए इस कार्य की सत्यता सिद्ध हो जाय।

सन् 1803 में **डॉल्टन** ने यह कल्पना की कि प्रत्येक शुद्ध तत्त्व बहुत छोटे-छोटे कणों के सम्मिलन से बना हुआ है। एक ही तत्त्व के सारे कण समान भौतिक व रसायनिक गुण के होते हैं। इन कणों को उसने परमाणु नाम दिया और इसी कल्पना के आधार पर 'परमाणु सिद्धान्त' की स्थापना की। रसायन तथा भौतिक विज्ञान की वर्तमान उन्नति का अधिक श्रेय इसी 'परमाणु सिद्धान्त' को है। यदि परमाणुओं की कल्पना वैज्ञानिकों ने न की होती तो विज्ञान की इतनी उन्नति सम्भव न हो पाती। इस दृष्टि से स्टास के परमाणुओं के भार निश्चित करने के कार्य की महत्ता भलीभाँति विदित हो जाती है। इस कार्य में स्टास ने जितने धैर्य और परिश्रम से कार्य किया वह बहुत थोड़े लोग कर सकते हैं। स्टास आज भी अपने उच्चस्तरीय शोधों के रूप में जीवित हैं। □□

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण !

यह विचित्र संयोग है कि माह **अप्रैल** (जूलियन कैलेण्डर) का पहला दिन अब सारे संसार में 'फूल्स डे' (बेवकूफ़ दिवस) के नाम से विख्यात है। इस दिन लोग एक दूसरे को बेवकूफ़ बनाने की युक्ति सोचते हैं। किन्तु आज से 76 वर्ष पूर्व 'विज्ञान परिषद्, प्रयाग' ने 1915 के अप्रैल माह में 'विज्ञान' नामक मासिक पत्रिका निकालकर अज्ञान के अंधकार को दूर करने के लिए एक नन्हा दीप जलाया था। वह दीप आज भी प्रज्वलित है।

अब तो अप्रैल महीने का महत्व बहुत बढ़ गया है। 7 अप्रैल को 'विश्व स्वास्थ्य-दिवस' और 22 अप्रैल को 'विश्व पृथ्वी-दिवस' मनाया जाता है। इस वर्ष अप्रैल महीने में सारे संसार में उपरोक्त दोनों ही दिवस बड़े धूम-धाम से मनाये गये हैं। भारत में भी 'विश्व पृथ्वी-दिवस' बड़े उत्साह से मनाया गया है। यह निश्चिय ही अपनी धरती की सुरक्षा के प्रति जनमानस की चेतना का प्रतीक है। इस वर्ष अपने देश में पृथ्वी को लेकर जो चिंता व्यक्त की गई है, पत्र-पत्रिकाओं, व्याख्यानों गोष्ठियों के माध्यम से जनजागरण जो ऐसा कार्य हुआ है उसकी प्रशंसा सारे विश्व में हुई है। यह निश्चय ही शुभ लक्षण है।

आप सबको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' द्वारा 'विश्व स्वास्थ्य-दिवस' और 'विश्व पृथ्वी-दिवस' के अवसर पर स्थानीय स्तर पर विचार गोष्ठियाँ आयोजित की गई थीं। इन विचार गोष्ठियों की संक्षिप्त रिपोर्ट आपको जून अंक में पढ़ने को मिलेगी। 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' है। 5 जून को भी विज्ञान परिषद् में हम 'विश्व पर्यावरण दिवस' के अवसर पर एकत्र होंगे। मैं 'विज्ञान' के माध्यम से आप सबसे विनम्र निवेदन करता हूँ कि 5 जून को जब आप परिषद् में एकत्र हों तो ज्वलंत पर्यावरणीय समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए तैयार होकर आयें। अच्छा होगा यदि 5 मिनट बोलने के लिए एक आलेख तैयार कर लें। इसके दो लाभ हैं। एक तो आप को क्या कहना है, यह पहले से आपको ज्ञात है और लिखा होने से कम समय में आप अधिक बात कह सकते हैं, और दूसरी बात यह कि हमें आपके विचार टेप करने में सुविधा होगी और साथ-ही-साथ हम 'विज्ञान' के आगामी अंक में आपके विचार प्रकाशित भी कर सकेंगे।

हम आर्थिक अभाव के कारण 'विज्ञान' में रंग-बिरंगे चित्र तो नहीं दिखा सकते पर चिंतन-मनन की सामग्री देते रहेंगे।

आशा है, सानन्द हैं।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

एक शाम पृथ्वी के नाम

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

आदरणीय सभाध्यक्ष जी, परिषद् के प्रधानमन्त्री प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी जी, शीलाधर मृदा अनुसंधान संस्थान से पधारे वैज्ञानिक और उपस्थित विद्वज्जन !

मैं आज परिषद् के इस पुस्तकालय कक्ष में आप सभी का हृदय से स्वागत करता हूँ। आज रविवार के दिन धूप और गर्मी की परवाह न करते हुए आप सब का यहाँ आना परिषद् और पृथ्वी के हित चिन्तन का परिचायक है। इससे यह सुस्पष्ट है कि आप पर्यावरणीय समस्याओं को लेकर कितने जागरूक, कितने चिन्तित और कितने प्रतिबद्ध हैं।

विचार-गोष्ठी के शुभारंभ के पूर्व मैं अपनी बात बच्चों और बड़ों द्वारा समान रूप से पढ़े जाने वाले कॉमिक्स से करता हूँ।

विज्ञान गल्पों से जुड़े पात्रों—फ्लैश गॉर्डेन और प्रो० ज़ारकोव के कारनामों से आप भली भाँति परिचित हैं। कथाओं में ये पात्र वर्तमान समय के अतिरिक्त 10-5 हज़ार वर्ष पूर्व अथवा भविष्य के काल में प्रवेश कर जाते हैं, जहाँ इनका साक्षात्कार तत्कालीन सभ्यताओं से होता है। अपनी बुद्धि चातुर्य के बल पर कठिन से कठिन परिस्थितियों पर विजय पाकर ये पुनः धरती के अपने वर्तमान समय में वापस लौट आते हैं।

मैं 10-5 हजार वर्ष तो नहीं, किन्तु 20 वर्ष पूर्व के अमेरिका के न्यूयार्क शहर की मुख्य सड़कों में से एक **पाँचवें ऐवेन्यू** पर आप सभी को लिए चलता हूँ। हाँ तो देखिए आपके दायें-बायें गगनचुम्बी इमारतें ही इमारतें हैं, किन्तु न तो वाहनों की चिल्ल-पों है और न ही धुँआ-धक्कड़। है न अजीब बात ! पर आदमियों का तो जैसे सैलाब ही उमड़ आया है। लोग किस तरह खुशी से उछल-कूद और नाच-गा रहे हैं। सभी के चेहरों पर आप प्रसन्नता की झलक साफ़ देख रहे हैं। पास मुस्कुराते बच्चे से पूछते हैं तो कहता है, "अरे ! आपको नहीं मालूम ? आज न्यूयार्क शहर के मेयर ने पाँचवें ऐवेन्यू पर मोटर वाहनों को ले जाने से मना कर दिया है। लोग वर्षों बाद प्रदूषणमुक्त हवा में साँस ले रहे हैं। पहली बार लोगों को यह एहसास हुआ है कि एक ऐसा भी वाहन है जो प्रदूषणमुक्त है, और वह है आदमी के अपने पाँव। जानते नहीं, आज 22 अप्रैल 1970 है और इस दिन को हम 'पृथ्वी-दिवस' के रूप में मना रहे हैं।"

22 अप्रैल 1990 को आज इस दिवस की प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है, क्योंकि आज ओज़ोन की झीनी होती जा रही पर्त, कार्बनडाइऑक्साइड की बढ़ती मात्रा, जंगलों का कटना, रेगिस्तानों का बढ़ते जाना, सूखा और बाढ़, मिट्टी की ऊपरी पोषक पर्त का नष्ट होते जाना, अनेक जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों की जातियों का लुप्त होते जाना आदि ऐसी समस्यायें हैं, जिनकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।

स्मरण रहे यह धरती केवल मनुष्य के लिए नहीं है। हम इस धरती के जन्मदाता नहीं हैं। धरती हमारे लिए नहीं, हम धरती के लिए हैं। जब हम नहीं थे तो भी यह धरती थी और हमारे बाद भी रहेगी। पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों, पेड़-पौधों की उम्र से यदि आदमी की तुलना करें तो पता चलता है कि इनका जन्म इस धरती पर मनुष्य से लाखों वर्ष पूर्व हुआ था। एक गणना के अनुसार यदि इस धरती की उम्र एक वर्ष की हो तो आदमी वर्ष के अन्तिम दिन 31 दिसम्बर की रात 7.30 बजे पैदा हुआ।

धरती पर नया होने के कारण आदमी धरती के महत्व को अभी भी ठीक से नहीं समझ सका है और संभवतः इसी कारण सबसे लालची, महत्वाकांक्षी और अशान्त है। **डॉ० जेकिल** और **मि० हाइड** के रूप में अच्छे और बुरे काम करता है। पर आदमी मूल रूप

से भला है। मुझे मनुष्य के विवेक पर, बुद्धि पर विश्वास है। यदि मनुष्य ने समस्याएँ पैदा की हैं तो समाधान की क्षमता भी मनुष्य रखता है और इसी आशय से इस विचार-गोष्ठी के लिए हम एकत्र भी हुए हैं।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यहाँ एकत्र विद्वज्जन समस्याओं को रेखांकित करते हुए समाधान भी सुझायेंगे। अब केवल बोलने नहीं, कुछ करके दिखाने का समय है। अतएव अब अधिक समय न लेकर मैं सभाध्यक्ष जी से निवेदन करूँगा कि कृपापूर्वक औपचारिक रूप से इस विचार-गोष्ठी के शुभारंभ की अनुमति प्रदान करें और मुझे आदेश दें कि मैं पहले वक्ता को अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित करूँ। □□

पृथ्वी दिवस के अवसर पर विचार-गोष्ठी

भूमि दिवस : हमारी चिन्ता का प्रतीक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

अजीब चिन्ता व्यक्त की जा रही है, अजीब बेचैनी छाई है और अजीब विवाद छिड़ा है विश्व भर में पृथ्वी की सुरक्षा को लेकर। इससे भी पूर्व एक बार 20 वर्ष पहले ऐसी ही चिन्ता व्यक्त हो चुकी है, किन्तु वह स्मृति के गर्त में खो चुकी है। भावों का यह आन्दोलन शायद जागरूकता उत्पन्न करने के लिए है।

पृथ्वी के विषय में ऐसी चिन्ता अनादि काल से होती चली आ रही है। वैदिक काल के ऋषि-मुनि बड़े ममतावान थे। उन्होंने पृथ्वी को माता और अपने आप को पुत्र कहकर उसको स्वर्ग से भी गरीयसी बतलाया था। पौराणिक काल में पृथ्वी स्वयं अपनी रक्षा के लिए गो रूप धारण करके वैकुंठ लोक पहुँचती है और वर पाकर लौटती है।

शायद वैसा ही परिवेश आज भी है। धरती को क्षमा कहा गया है। वह कितनी सहिष्णु है—भार बढ़ाते जाइये चूँ तक नहीं करती। यह भार चाहे जनसंख्या का हो या प्रदूषण का। धरती के अनेक नाम लिये गये हैं किन्तु "कूड़े की टोकरी" पर्यावरणविदों द्वारा प्रदत्त नया नाम है। शायद हमारी चिन्ता का प्रतीक भी।

जितनी गतिविधियाँ सम्प्रति पृथ्वी पर हो रही हैं, उतनी पहले कभी नहीं थीं। पृथ्वी का दोहन भीतर से और बाहर से हो रहा है। भीतर से खनिज/रत्न निकाले जा रहे हैं और सतह पर खेती की जा रही है। खेती भी क्या? अजीब भूख समाई है कृषि वैज्ञानिकों में। कृषि को वे प्रौद्योगिकी का रूप दे चुके हैं। सारे विकासशील राष्ट्र सोने के अंडे के लिए मुर्गी का पेट चीर डालना चाहते हैं। परिणाम चाहे जो भी हो।

कुछ परम्परावादी सिरफिरे अपने को प्रकृतिवादी तो नहीं कहते, वे अपने को पारिस्थितिकीविद् जरूर कहते हैं। उन्होंने अजीब-अजीब नारे निकाल रखे हैं—अम्ल वर्षा, ओज़ोन संस्तर, पौधघर प्रभाव और न जाने क्या-क्या।

हमारी अरण्य सभ्यता हमें भाई नहीं। ऋषि-मुनि जंगलों में रहते, कन्द मूल-फलखाते और हरि का गुण गाते थे। वे धरती को जोतने की बात नहीं करते थे। नैमिषारण्य में बड़ी-बड़ी गोष्ठियाँ हुई हैं। उस वैदिक दर्शन में आज के लिए राहत छिपी है—शून्य जुताई, आर्गेनिक फार्मिंग, बायोमास-सभी उसमें है।

अच्छा हो एक बार हम फिर से प्राचीन संस्कृति का अवलोकन, अध्ययन एवं मनन करें।

आज का दिन पृथ्वी को नमन करने का है। हमारे ऋषि-मुनि तो नित्य ही उठते समय पृथ्वी को प्रणाम करते थे। मैं भी उसे आज प्रणाम करता हूँ। □□

निदेशक, शीलाधर मृदाविज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद—211002

धरती तुझे प्रणाम | राजेश कुमार केसरी

आज 'पृथ्वी-दिवस' के अवसर पर मैं 'अथर्व वेद', जिसका रचनाकाल आज से लगभग 1000 ई० पूर्व समझा जाता है, की सूक्ति से करना चाहता हूँ। आज से हज़ारों साल पहले हमारे पुरखे पृथ्वी की पूजा करते थे। इसी पुराने विचार को आत्मसात करते हुए हमें इस धरती की रक्षा करनी होगी।

हे पृथ्वी, तुम्हारे पर्वत, तुम्हारे हिमाच्छादित पर्वत शिखर,
तुम्हारे वन, हम पर दयालु हों।
भूरी, काली लाल, नाना रंगों वाली
इस ठोस एवं विस्तृत पृथ्वी की रक्षा इन्द्र करते हैं।
अपराजेय, अविजित तथा अक्षत इस पृथ्वी पर मेरा निवास है।
जैसे घोड़ा धूल उड़ाता है, उसी भाँति
पृथ्वी ने जब रूप धारण किया तो मनुष्यों
की बौछार की।
जो पेड़ों और पौधों को मजबूती से धारण
किये हुए है......।

ऐसी पृथ्वी को मैं नमस्कार करता हूँ।

यहाँ मैं 'पर्यावरण दशक' की कुछ विशेष बातों की चर्चा कर रहा हूँ—

1. तुरन्त अधिक से अधिक क्षेत्रों में ऐसी ऊर्जा का उपयोग करना शुरू हो जो प्राकृतिक रूप से सर्वत्र उपलब्ध हो या जिसे पुनरुज्जीवित किया जा सके। जैसे पेट्रोल या कोयले के स्थान पर सूर्य ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग।
2. वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड कम करने के सभी प्रभावशाली उपाय करना, जिससे वायुमण्डल की बढ़ती हुई गर्मी में कमी आये।
3. वायुमण्डल में ओज़ोन परत का विनाश कर रहे रसायनों पर पाँच साल की अवधि में विश्वव्यापी प्रतिबन्ध लगाना, जो धरती का तापमान बढ़ा रहे हैं।
4. पुराने प्राकृतिक जंगलों की सुरक्षा और नये वनों का लगना।
5. स्थाई संतुलित विश्व जनसंख्या।
6. नष्ट होती जा रही वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं की प्रजातियों के संरक्षण के उपाय करना।
7. एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का गठन, जो वायुमण्डल, समुद्र आदि जैसे प्राकृतिक धरोहरों को ख़तरों से बचाने के लिए अधिकृत हो।

□□

बी० एस-सी० तृतीय वर्ष, सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद—211002

पृथ्वी दिवस के अवसर पर विचार-गोष्ठी

भूमि संरक्षण | डॉ० मुरारी मोहन वर्मा

पृथ्वी की ऊपरी सतह वह समतल भूमि है, जिसे मनुष्य अपने जीवन-यापन के लिए अनेक रूपों में आवश्यकतानुसार आदि काल से प्रयोग में लाता रहा है। वनों के लिए, खेती के लिए, उद्यानों के लिए, चारागाहों के लिए, मवेशी-पालन, कुक्कट-पालन आदि कार्यों के लिए भूमि की आवश्यकता होती है। भवन-निर्माण, सड़क, रेलवे, पार्क, खेल के मैदान, औद्योगिक संस्थान, स्कूल, आदि के अस्तित्व भूमि के बिना सम्भव ही नहीं है। सारांश में कहा जाय कि मनुष्य जीवन का सारा आधार ही भूमि है, तो ग़लत नहीं होगा।

शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद–211002

विज्ञान के विकास के साथ-साथ मनुष्य भूमि को पहले से बेहतर समझने में सक्षम हुआ है। मनुष्य ने अपने उपयोग के लिए भूमि का मनमाने ढँग से प्रयोग किया है, विशेष रूप से खेती के लिये। भूमि की उर्वराशक्ति धीरे-धीरे क्षीण होने लगी। विश्व की बढ़ती जनसंख्या के पोषण का भार भी तो भूमि को बर्दाश्त करना है। अतः वैज्ञानिकों ने भूमि के संरक्षण की बात सोची। भूमि संरक्षण योजना के अन्तर्गत भूमि के नष्ट होने से सुरक्षित रखने की व्यवस्था तथा भूमि का समुचित उपयोग करने के लिए कार्यक्रम बनाये गये। भारत सरकार के कृषि मंत्रालय ने भूमि संरक्षण विभाग का गठन किया। भूमि संरक्षण के कार्यों में आंशिक सफलता ही मिल पा रही है, क्योंकि अभी भी किसानों एवं नागरिकों का पूर्ण सहयोग नहीं मिल पा रहा है। अतः इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम में सभी वर्गों का मिला-जुला प्रयास होना चाहिए, जिससे भूमि का संरक्षण समुचित ढँग से हो सके।

भूमि-संरक्षण का प्रथम प्रयास अपरदन के द्वारा नष्ट हो रही भूमि की रोकथाम करना है। हमारे देश में भूमि का कटाव अथवा अपरदन एक गंभीर समस्या है। मृदा-कणों का ह्रास और स्थानान्तरण प्रायः तेज हवाओं और भारी वर्षा के फलस्वरूप धीरे-धीरे होता रहता है, जिसे हम अपरदन कहते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में अपरदन का खास प्रभाव भूमि पर दिखाई नहीं पड़ता, परन्तु कुछ वर्षों में स्थिति भयावह हो जाती है। प्राप्त आँकड़ों के आधार पर लगभग 60 हज़ार लाख टन मिट्टी का अपरदन प्रत्येक वर्ष भारत में होता है। इस प्रकार नष्ट हुई मिट्टी लगभग 25 लाख टन नाइट्रोजन, 33 लाख टन फॉस्फेट और 25 लाख टन पोटाश उर्वरक तत्वों के समकक्ष आँकी गई है।

भूमि-निर्माण पर्यावरण के प्रभावों द्वारा खनिज एवं कार्बनिक पदार्थों के दीर्घकालीन पारस्परिक क्रियाओं के फलस्वरूप प्रकृति में होता रहता है। कुछ लोगों का यह तर्क हो सकता है कि जब प्रकृति द्वारा भूमि-निर्माण की प्रक्रिया स्वतः हो ही रही है तो अपरदन से क्या फर्क पड़ता है? जी नहीं, फर्क पड़ता है। अभी हाल ही में अमेरिका के **स्मिथ** और **स्टैली** नामक प्रसिद्ध मृदा-वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया है कि सामान्य अवस्था में भूमि का निर्माण प्रति वर्ष लगभग 0.2 टन प्रति हेक्टेयर के बराबर होता है, जबकि अपरदन द्वारा 2 से 10 टन के बीच भूमि की हानि होती है। अतः भूमि और उसकी उर्वराशक्ति दोनों के नष्ट होने का तात्पर्य होता है—पृथ्वी की हरीतिमा का नाश। हरीतिमा का पर्यावरण से सीधा सम्बन्ध है। पर्यावरण स्वच्छ रहे यह मनुष्य का दायित्व बनता है और इसके लिए वनस्पतियों और हरीतिमा का महत्वपूर्ण योगदान है।

भूसि-संरक्षण के लिए मुख्य प्रयास भूमि को समतल करना है, जिससे पानी के बहाव में कमी के कारण मृदा-कणों का स्थानान्तरण रुक सके। पानी के बहाव की गति भूमि ढलान की श्रेणी पर निर्भर करती है। पहाड़ियों पर टेरेसिंग की विधि से पानी के बहाव की गति पर नियन्त्रण किया जाता है। वर्षा की तीव्रता और बूंदों के आकार भूमि पर आघात पहुँचाते हैं, जिसके फलस्वरूप मुक्त-कणों की पकड़ ढीली पड़ने लगती है और पानी के बहाव के साथ वे बहते चले जाते हैं। फसल अथवा वृक्षों की उपस्थिति में वर्षा की बूंदों का प्रत्यक्ष आघात नहीं पड़ता और जड़ों द्वारा भी मृदा कणों की पकड़ रहती है, जिससे वे शीघ्रता से पानी के आघात से विचलित नहीं होते।

वृक्षारोपण, जलाशय के निर्माण-कार्य भी भूमि संरक्षण के मुख्य कार्यक्रम के अन्तर्गत आते हैं। सिंचित जल के कुप्रभाव से फसलों को बचाने के लिए जलनिकास की समुचित व्यवस्था की जाती है। फसलचक्र का प्रयोग ठीक प्रकार से करना चाहिए, ताकि अपरदन रुक सके और भूमि की रक्षा हो सके। लवणीय मृदाओं के सुधार हेतु भी समुचित व्यवस्था की जाती है।

उपर्युक्त उपायों से निश्चित रूप से भूमि-संरक्षण की दिशा में सफलता मिल सकती है। □□

मिट्टी बचाओ

दिनेश मणि

आज हम मिट्टी को जिस रूप में देख रहे हैं, वह अनगिनत वर्षों के तमाम भौतिक, रासायनिक तथा जैविक प्रभावों का प्रतिफल है। मिट्टी की ऊपरी शून्य से छः इंच की परत पर ही हम सब निर्भर हैं। इसके अतिरिक्त यह 'रत्नगर्भा' अपने अन्दर तमाम बहुमूल्य चीज़ों को समेटे हुये है। मिट्टी कृषि का आधार तो है ही, साथ ही यह हमारी सभ्यता का भी प्रतिबिम्ब है। प्रत्येक जीवधारी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध मिट्टी से है। अतः मिट्टी के प्रबन्ध के विषय में गम्भीरता से सोचने की ज़रूरत है।

आज हम "पर्यावरणीय प्रदूषण" के अन्तर्गत जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि को तो विशेष महत्त्व देते हैं, किन्तु मिट्टी-प्रदूषण को भूले हुये है, जबकि वास्तविकता यह है कि प्रायः सभी प्रकार के प्रदूषणों को आश्रय देने वाली यही मिट्टी है। अपशिष्टों को अपने अन्दर छिपा लेने वाली रत्नप्रसविनी इस मिट्टी पर आज क्या बीत रही है, आइये इस पर दृष्टि पात करें—

तमाम तरह के व्यर्थ पदार्थ मिट्टी में मिलकर उसकी उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव डाल रहे हैं। ये व्यर्थ पदार्थ प्रायः "मृदा-प्रदूषक" के रूप में जाने जाते हैं। इन व्यर्थ पदार्थों के दो प्रमुख स्रोत हैं—

(क) कृषीय स्रोत

(ख) अकृषीय स्रोत

कृषीय स्रोत

(1) यद्यपि कृषि का आधार मिट्टी ही है फिर भी कृषि से बचे हुये अंश (कृषीय अपशिष्ट) मिट्टी के प्रदूषण के कारण हो सकते हैं। ये कृषीय स्रोत कई प्रकार के हैं यथा भूमि में डाले जाने वाले कीटनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी आदि की अधिक मात्रा जो अप्रयुक्त पड़ी रहती है।

(2) कृषि से सम्बन्धित कुछ अनुचित क्रियायें एवं कृषि से सम्बन्धित कुछ व्यर्थ पदार्थ। कृषि से सम्बन्धित अनुचित क्रियाओं में खेत की अत्यधिक जुताई करना है, जिससे भूमि कटाव की सम्भावना बढ़ जाती है।

(3) रासायनिक उर्वरकों का अधिक मात्रा में तथा लगातार प्रयोग करते रहना।

(4) प्रदूषित जल यथा वाहित मल-जल या लवणीय जल द्वारा निरन्तर सिंचाई करना।

अकृषीय स्रोत

शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, व्यर्थ पदार्थ का उत्पादन, आधुनिकीकरण, रहन-सहन के तरीके में बदलाव आदि मिट्टी-प्रदूषण के अकृषीय स्रोत हैं।

इसके अतिरिक्त नाभिकीय अस्त्रों की निरन्तर वृद्धि के कारण विस्फोटों की संख्या भी बढ़ी है। इनसे जो रेडियोसक्रिय पदार्थ निकलते हैं वे मिट्टी के अवयवों के साथ क्रिया करके उसी में मिल जाते हैं। ऐसे साक्ष्य प्राप्त हैं जिनमें धूल कणों के रूप में स्ट्रान्शियम (Sr 90) मिट्टी की सतह पर संचित होता है। रेडियोसक्रिय अपशिष्टों को ग्रहण करके मिट्टियाँ लम्बे समय के लिये घातक बन सकती हैं।

हम अक्सर यह भूल जाते हैं कि अपशिष्टों को विनष्ट करने की मिट्टी की अपनी एक सीमा है। मिट्टी यह कार्य सूक्ष्मजीवों की सहायता से करती है। और इन सूक्ष्मजीवों की उचित क्रियाशीलता के लिये उचित पी० एच० मान व गैसों के उचित सान्द्रण की आवश्यकता होती है। वायुमण्डल में हो रहे वायु प्रदूषण के कारण मिट्टी के वायुमण्डल का संघटन बदल रहा है फलस्वरूप मिट्टी में होने वाली अनेक जैव-रासायनिक क्रियायें प्रभावित हो रही हैं, जिससे मिट्टी की अन्न-उत्पादन क्षमता पर विपरीत असर पड़ रहा है।

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद—2

मिट्टी प्रदूषण के अतिरिक्त उपजाऊ मिट्टी का नर्मदा घाटी जैसी बड़ी-बड़ी परियोजनाओं, औद्योगिक नगर बसाने, परमाणु ताप बिजली घर स्थापित करने, ईंटों के भट्ठे आदि में बहुत दुरुपयोग होता है। हर तरह से मिट्टी ही प्रभावित होती है। अतः मृदा-वैज्ञानिकों के साथ-साथ सामान्य जनों का भी यह कर्तव्य बनता है कि वे मिट्टी को प्रदूषित किये बिना सुनियोजित ढंग से उपयोग में लाकर पर्यावरणीय सन्तुलन को बनाये रखें। मिट्टी को केवल मिट्टी ही न समझें बल्कि मिट्टी और अपने बीच एक भावनात्मक सम्बन्ध बनाये रखें तभी हम सबका कल्याण सम्भव है। ☐☐

पृथ्वी दिवस के अवसर पर विचार-गोष्ठी

हम पृथ्वी दिवस पर संकल्प लें

प्रमोद कुमार शुक्ल

22 अप्रैल 1970 को न्यूयार्क शहर में पहली बार 'पृथ्वी दिवस' मनाया गया। 'भू-माता दिवस' 1970 में तो अमेरिका तक ही सीमित रहा, लेकिन धीरे-धीरे विश्व के सभी निर्धन एवं धनी देशों ने इस ओर ध्यान दिया। क्योंकि यदि हमारी पृथ्वी प्रदूषित है, तो पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणियों पर प्रभाव समान रूप से पड़ेगा। दिन-प्रतिदिन पृथ्वी मानव एवं अन्य प्राणियों के रहने के लिए अनपयुक्त होती जा रही है। इसलिए हमें इसको जीवन-दायिनी बनाये रखने के लिए उन सभी विरोधी शक्तियों से इसकी रक्षा करनी है, जो इसे जीवनहीन बनाने की कोशिशें कर रही हैं।

एक सराहनीय आधार मिल जाने के बाद अब 'भू-दिवस' कार्यक्रम की योजनाएँ बन रही हैं। समाज के सभी वर्गों–वैज्ञानिकों, समाजसेवियों, अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों आदि ने भू-माता के प्रति यह चिन्ता करनी शुरू कर दी है, कि कैसे इसे शुद्ध जल, स्वच्छ वायु एवं मृदा सहित सुरक्षित बनाये रखा जाये। संयुक्त राष्ट्र संघ, राष्ट्र मण्डल, गुटनिरपेक्ष सम्मेलन जैसे अनेक संगठनों ने भी पृथ्वी को प्रदूषण से मुक्त रखने के लिए योजनाएँ बनायी हैं।

आइये, आज 'पर्यावरण दशक' के शुभारम्भ पर हम यह संकल्प करें कि इस 'दशक' में ऐसे मानव-समाज का निर्माण करें, जो इस भू-मण्डल पर निवास करने वाली सभी वनस्पतियों, सभी जीव-जन्तुओं की रक्षा के साथ ही साथ साफ़ पानी, साफ़ हवा, प्रदूषण-मुक्त मिट्टी भी मुहैया कर सके। ☐☐

शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद—211002

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

ध्वनि प्रदूषण : कारण, दुष्प्रभाव एवं नियंत्रण

कु० दिव्या कुलश्रेष्ठ

ध्वनि प्रदूषण सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या है। इसका प्रभाव ज़हरीले रसायन के प्रदूषण से भी अधिक ख़तरनाक है। वर्तमान मशीनी युग से हमें जो उपहारस्वरूप प्रदूषण मिल रहा है, वह अत्यन्त कष्टदायक एवं हानिकारक है। आम तौर से हम हवा, पानी और मृदा प्रदूषण की बात तो करते हैं किन्तु ध्वनि प्रदूषण उपेक्षित रह जाता है। पर वास्तविकता तो यह है कि लगातार तेज़ होती ज़िन्दगी की रफ्तार

कला इलेक्ट्रॉनिक्स, 13 लाजपत राय लेन, बहादुरगंज, इलाहाबाद—211003

के कारण शोर प्रदूषण दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। दैनिक जीवन में अपरिहार्य साधारण आवाज़ों से अधिक ऊँची आवाज़ें शोर कहलाती हैं। अनावश्यक, असुविधाजनक और निरर्थक आवाज़ ही ध्वनि प्रदूषण है। दूसरी तरह से कहें तो शोर, ध्वनि कम्पन की वह अवस्था है जो सुनने में अप्रिय लगती है। शोर का निर्धारण व्यक्ति विशेष की मानसिक अवस्था का पैमाना होता है। 'डिस्को म्यूज़िक' के शोर में, नाचते हुए व्यक्तियों का मनोरंजन होता है जबकि सामान्य व्यक्ति के लिये यह प्रदूषण का कार्य करता है।

ध्वनि की मात्रा का निधारण डेसिबेल्स में किया जाता है। मनुष्य शून्य डेसिबेल पर भी सुन सकता है। 80 डेसिवेल के ऊपर ध्वनि अप्रिय लगती तथा 130 से 140 पर दुखदायी। किसी भी व्यक्ति के लिये ध्वनि का प्रिय या अप्रिय लगना इस बात पर निर्भर करता है कि उसका स्रोत एवं उसकी तीव्रता कितनी है। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' द्वारा निर्धारित अप्रिय आवाज़ ही ध्वनि प्रदूषण की श्रेणी में आती है। ध्वनि प्रदूषण की प्रचण्डता नापने वाले यंत्र को 'लार्म वैरोमीटर' कहते हैं।

शोर प्रदूषण के कारक

बढ़ती हुयी जनसंख्या एवं आधुनिकीकरण ध्वनि प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। विगत कुछ वर्षों में आवा गमन के साधनों, औद्योगिक संस्थानों एवं मनोरंजन के साधनों के अत्यधिक विकास के कारण मनुष्य को लाभ कम एवं हानि अधिक हुई है। इसी कारण इन सुविधाओं को ध्वनि प्रदूषण के स्रोत में भी रखा जा सकता है। ध्वनि के कारक है—

1. पंच प्रेस
2, रसोईघर के बर्तनों का टकराना
3. खराब मशीन
4. व्यस्त कार्यालय
5. न्यूमैटिक हथौड़ा
6. मोटर कार हार्न
7. मोटर साइकिल
8. भारी इंजीनियरिंग
9. बुनाई मिल
10. सेल बेड स्टिंग
11. छोटा पिस्टन वाला विमान
12 टोपोजेट इंजन
13. प्रॉपेलर विमान
14. जल विमान
15. विस्फोट
16. अंतरिक्षायान
17. श्रव्य दृश्य साधन आदि।

ध्वनि प्रदूषण के दुष्प्रभाव

मानव शरीर पर ध्वनि प्रदूषण से होने वाले कुप्रभाव के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के अध्ययन अत्यन्त ही रोचक हैं। **डॉ० ब्रिप्रिश** के अनुसार शोर आदमी को असमय ही वृद्ध बना देता है। नाइट क्लवों में जाने वालों युवापीढ़ियों की श्रवण शक्ति क्षीण हो गई और ऐसे क्षेत्रों के विद्यार्थियों में चिड़चिड़ेपन, सिरदर्द, अध्ययन विमुखता एवं स्मृति क्षीणता की शिकायतें मिलीं हैं। ध्वनि प्रदूषण के कारण अध्ययनरत् विद्या- र्थियों की एकाग्रता घट जाती है और ग्रहणशीलता भी प्रभावित होती है।

श्रवणविज्ञानी एवं मनोविज्ञानवेत्ता **डॉ० सूर्यकान्त मिश्र** ने औद्योगिक क्षेत्रों, रेलवे कालोनियों एवं शोर- शराबे वाले क्षेत्रों के पाँच से दस आयु समूह के छात्रों का विविध प्रकार से निरीक्षण किया एवं यह निष्कर्ष निकाला कि लाउडस्पीकरों पर रिकॉर्डिंग के शोर तथा रेलगाड़ी की गड़गड़ाहट के कारण 60 प्रतिशत छात्र अपनी कक्षा में ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते।

विकसित देशों में बधिरता बढ़ने का मुख्य कारण शोर है और इसका प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। डगलस स्थित 'अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन' की वाक् शाखा के निदेशक **डॉ० ग्लोरिंग** का कथन है, "सम्पूर्ण पृथ्वी शोर से ग्रसित है और इसका प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। हमें किसी न किसी रूप में इस पर नियन्त्रण करना होगा। दूसरी स्थिति यह भी हो सकती है कि शोर में रहकर हम अपनी बधिरता बढ़ाते जायें।"

ब्रिटेन के वैज्ञानिक अपने अध्ययनों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि लंदन के हवाई अड्डे के समीप रहने वालों को जेट विमान की आवाज़ के कारण मानसिक क्षति अधिक हुई है। दल के मनश्चिकित्सक **डॉ० आई० एव विकरामा** का कथन है कि इस क्षेत्र के समीप रहने वाले सर्वाधिक प्रभावित 45 वर्ष की आयु समूह से अधिक आयु की महिलायें थीं, जिन्हें 'न्यूरोटिक मेण्टल डिसऑर्डर' की शिकायत थी।

'स्टेनफोर्ड रिसर्च इंस्टीट्यूट' के **डॉ० जिरोम लुकास** ने निद्रा एवं शोर के पारस्परिक सम्बन्धों पर अध्ययन किया है। उनके अनुसार शोर के बीच रहने वाले कार्मचारी प्रातः उठने पर थकान का अनुभव करते हैं। उनके अनुसार इस थकान का मुख्य कारण शोर के बीच सोने का प्रयास करना था।

सवा दो लाख से भी अधिक नवजात शिशुओं पर परीक्षण करने के पश्चात् कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के **डॉ० नोबेल जोन्स** ने यह पाया कि लगातार शोर में जीवन व्यतीत करने वाली महिलाओं के शिशुओं में विकृतियाँ अधिक होती हैं।

शारीरिक विकृतियाँ

मानव मस्तिष्क की 12 तंत्रिकाओं में से एक सुनने की होती है, जो श्रवण-तन्त्रिका कहलाती है। इसके दो भाग होते हैं—(1) कर्णावर्त तंत्रिका एवं (2) प्रमाण तंत्रिका। इनमें कर्णावर्त तंत्रिका ध्वनि को ग्रहण करके प्रमाण तंत्रिका द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचाती है। तीव्र ध्वनि का प्रभाव कभी-कभी इतना घातक होता है कि श्रवण सामर्थ्य पूर्णतया समाप्त भी हो सकता है। प्रायः तीव्र ध्वनि के अभ्यस्त हो जाने पर मध्यम ध्वनि को ग्रहण करने की क्षमता भी कम हो जाती है।

न्यूयार्क के माउण्ड सिताई अस्पताल के **डॉ० सेमुअन रोज़ेन** के अनुसार "शोर आदमी में मानसिक तनाव उत्पन्न करता है जिसके फलस्वरूप मनुष्य उत्तेजना, उच्च रक्तचाप और हृदयरोग से ग्रसित हो जाता है।" सूडान देश की मवान जाति पर किये गये अध्ययनों से यह तथ्य उजागर हुआ है कि अत्यन्त शान्त वातावरण में जीवन व्यतीत करने के फलस्वरूप उन्हें किसी भी प्रकार का मानसिक तनाव नही महसूस होता और बड़ी आयु के लोग भी साफ़ सुनते हैं। अत्यधिक शोर से उत्पन्न उद्विग्नता से रक्त में **कोलेस्टेरॉल** की मात्रा बढ़ जाती है। स्नायु-तंत्रिका के साथ-साथ शोर हृदय, पाचन तंत्र एवं अन्य तंत्रों को भी प्रभावित करता है। इन तंत्रों की कार्य-प्रणाली में विकृति उत्पन्न होने से रक्त-वाहिनियों के संकुचन पर खराब प्रभाव पड़ता है अतएव हृदय रोग तथा अन्य बीमारियाँ शरीर में डेरा डाल लेती हैं। अधिक शोर के कारण नेत्र गोलकों पर भी तनाव उत्पन्न होता है, जिससे आँखें बारीक् काम करने पर केन्द्रित नहीं हो पातीं।

शोर का अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों पर प्रभाव पड़ता है। शोर के प्रभाव मनुष्य के रहन-सहन की परिस्थिति एवं मनोवृत्ति पर भी निर्भर होता है इसलिये इसकी सहनशीलता के स्तर के लिये यथासंभव मापदण्ड का निर्धारण नहीं किया जा सकता।

निष्कर्ष रूप में ध्वनि प्रदूषण सिर्फ़ बहरेपन को ही निमंत्रण नहीं देता, बल्कि मानसिक तनाव भी उत्पन्न करता है। इससे **रक्तचाप**, की बीमारी हो सकती है।

नियंत्रण एवं निराकरण

विकासशील देशों में शोर नियंत्रण एक दुरूह कार्य है, क्योंकि औद्योगिक विकास को रोकने का तात्पर्य है देश की आर्थिक हानि। देश के विकास एवं प्रगति को गतिशील बनाये रखने के लिये इनकी आवश्यकता निर्विवाद है इसलिये इस पर नियंत्रण का स्वरूप ऐसा होना चाहिये जो प्रगति में बाधक न हो। शोर नियंत्रण, सुरक्षा कार्य में प्रथम वरीयता युक्त अनिवार्य क़दम है। प्रदूषण की स्थिति को और अधिक न बिगड़ने देने के लिये कुछ बुनियादी क़दम उठाने होंगे। विगत कुछ वर्षों में शोर नियंत्रण के सम्बन्ध में काफी

जानकारी बढ़ी है और मनुष्य जागरूक भी हो गया है। अनेक सामाजिक एवं व्यावसायिक संगठन तथा सरकारें शोर नियंत्रण के लिये कुछ कठोर क़दम उठा भी रही हैं।

न्यूयार्क के शोर प्रदूषण के 'टॉस्क फोर्स' के **श्री नील एच० एण्डरसन** ने विभिन्न प्रदूषित क्षेत्रों के लोगों को किसी लक्ष्य विशेष को समक्ष रखकर एक-जुट होने के लिये प्रेरित किया। श्री एण्डरसन का कहना है कि इस प्रकार से इस समस्या के प्रति कुछ राज्यों में जागरूकता आयी है और न्यूयार्क शहर में इस दिशा में कुछ सामाजिक संस्थायें प्रयासरत भी हैं। फ्रांस सरकार ने अपनी पुलिस को यह अधिकार दे रखा है कि उन मोटर-गाड़ियों पर जुर्माना किया जाये जो शोर प्रतिबन्ध कानून का उल्लंघन करती हैं। ध्वनि प्रदूषण पर नियंत्रण के लिये कई सरकारी कानून बने हैं, पर उनका कड़ाई से पालन नहीं हो पाता है।

मेम्फिस नगर में प्रेस ने इस दिशा में सराहनीय सहयोग दिया है, जिसके फलस्वरूप वहाँ मोटर-वाहनों के हार्न अति व्यस्त क्षेत्रों में बजाने में कमी आयी है और प्रदूषण उत्पन्न करने वाले वाहनों के लिये अन्य मार्ग निर्धारित किये गए हैं।

शहर के कुछ क्षेत्र ऐसे भी होते हैं जहाँ प्रशासन शोर नियंत्रण कानूनों का पालन समुचित ढंग से नहीं कर पाता जैसे रेलवे लाइन व हवाई अड्डा। शोर नियंत्रण के लिये औद्योगिक संस्थानों का सहयोग भी आवश्यक होता है। ऐसी अनेक मशीनें हैं जिनकी मोटरों एवं कम्प्रेसरों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। ये मशीनें प्रायः 110 डेसिबेल पर शोर उत्पन्न करती हैं, जिसके फलस्वरूप इनके चालक प्रायः बहरे हो जाते हैं। इस सन्दर्भ में श्री एण्डरसन एवं उनके विभाग के इंजीनियरों ने मशीनों के कलपुर्जों का अध्ययन प्रारम्भ किया और उनके सहयोग से एक ऐसा कम्प्रेसर बनाया जो पहले की अपेक्षा 70% शोर कम करता है। श्री एण्डरसन के अनुसार शहर के व्यस्त क्षेत्रों के शोर के कुछ विशिष्ट बिन्दु हैं—याता-यात, उद्योग, गृह निर्माण, वेन्टिलेशन, एअर कंडीशनर एवं हीटिंग। इन सभी क्षेत्रों में शोर नियंत्रण के लिये योजनाबद्ध नीति अपनायी जानी चाहिये।

इस दिशा में ध्वनि प्रदूषण के स्तर का एक मापक निर्धारित किया जाना चाहिये जिससे कि उन नियमों का सुचारु रूप से पालन किया जा सके और ऐसे सचल दस्ते गठित किये जाने चाहिये जो इन नियमों के उल्लंघन करने वालों को समुचित दण्ड दे सकें।

शोर नियंत्रण के कुछ प्रयास हैं, जिनका प्रशासनिक एवं सामान्य सामाजिक स्तर पर पालन किया जा सकता है। ज़ोर से बजने वाले लाउडस्पीकर एवं ग्रामोफोन सेटों पर नियंत्रण होना चाहिये। मोटर हार्नों के तेज़ बजाये जाने पर प्रतिबन्ध होना चाहिये। कारखानों या औद्योगिक संस्थानों में कार्य करने वालों को इयर प्लग, इयर मफ्स, हेलमेट आदि की सुविधायें प्रदान की जानी चाहिये।

शोर नियंत्रण के लिये सड़कों के किनारे वृक्षा-रोपण किया जाना चाहिये। कुछ वृक्ष ऐसे भी हैं जिनकी उपस्थिति मात्र से 10 से 15 डेसिबेल शोर कम किया जा सकता है। ये पेड़ आम, इमली, नारियल, ताड़, नीम, यूकेलिप्टस आदि के हैं।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि शोर पर नियंत्रण अति आवश्यक है अन्यथा एक गम्भीर संकट उत्पन्न हो जायेगा। कुल मिलाकर यदि दैनिक जीवन में तनिक सा प्रयास व कुछ सावधानियाँ बरती जायें तो 75 डेसिबेल से अधिक तीव्रता की ध्वनि से उत्पन्न होने वाले घातक प्रभाव से बचा जा सकता है। इस दिशा में सभी का सहयोग अपेक्षित है। □□

पौष्टिक आँवला

दर्शनानन्द

आँवला अत्यंत ही पौष्टिक और उपयोगी फल है। इसकी उपयोगिता विशेषकर इसमें उपलब्ध विटामिन-सी की प्रचुर मात्रा के कारण ही है। वैसे तो सबसे ज़्यादा विटामिन-सी वारेबेडाज चेरी के फल में पाया जाता है, परन्तु भारतवर्ष में प्रायः उगने और प्रयोग होने वाले फलों में सबसे ज़्यादा विटामिन-सी आँवले के फल से ही उपलब्ध होता है। प्रति 100 ग्राम आँवले के गूदे में 600 से 700 मिलीग्राम तक विटामिन-सी विद्यमान रहता है।

एक व्यक्ति को एक दिन में 30 से लेकर 75 मिलीग्राम तक विटामिन-सी की आवश्यकता पड़ती है। आँवले के फल का प्रयोग कर के इस आवश्यकता की पूर्ति भली भाँति की जा सकती है। आँवले के फल में अन्य पौष्टिक तत्त्व भी पाए जाते हैं। प्रति 100 ग्राम गूदे में विटामिन-ए 59 अंतर्राष्ट्रीय इकाई, विटामिन बी-1 30 मिलीग्राम, निकोटिनिक एसिड 0.2 मिलीग्राम और लोहा 1.2 मिलीग्राम पाया जाता है।

आँवले का फल खटासयुक्त, कषाय होता है। आँवले के सूखे फल भी समान रूप से उपयोगी होते हैं। कच्चे सुखाए फलों में टैनिक एसिड 36 प्रतिशत होता है जबकि पके फलों को सुखाने पर इसकी मात्रा कम हो जाती है। आँवले का फल हरे रंग का होता है, परन्तु पकने पर इसमें पीलापन आ जाता है।

यद्यपि विटासिन सी आमतौर से ताप से नष्ट हो जाता है, परन्तु आँवले के फल की यह विशेषता है कि फल को उबालने और सुखाने से भी इसका विटामिन-सी नष्ट नहीं होता। आँवले में उपलब्ध अम्ल गुण और कषाय गुण (टैनिन) के ही कारण फल को उबालने और सुखाने के बीच विटामिन-सी व अन्य पोषक तत्त्व भी पूर्ववत् सुरक्षित रहते हैं।

आँवले का मुरब्बा बहुत ही स्वादिष्ट और स्वास्थ्य वर्धक होता है। यह शीतलता भी प्रदान करता है। बनारसी आँवला, चकैया और कृष्णा किस्मों के आँवले मुरब्बा बनाने के लिए ज़्यादा उपयुक्त होते हैं। आँवला केश तेल, च्यवन प्राश और मुरब्बा उद्योग में अधिक उपयोगी होने के कारण इसका महत्त्व और अधिक बढ़ गया है। शर्बत, स्क्वाश, टॉफी और कैण्डी, अचार, चटनी, जेली, जैम, चिप्स और चूर्ण आँवले के अन्य महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी उत्पाद हैं।

नाश्ते पर सुबह रोज़ दूध पीने के बीच दो ताज़े पके आँवले दाँत से काट कर और चबाकर खाते रहने से दूध का स्वाद भी बढ़ जाता है और फायदा भी होता है। भोजन करने के समय भी दो ताज़े आँवले चबा कर खाना उपयोगी होता है। भोजन करने के पाँच मिनट पूर्व आँवला खाने से पेट के पाचक रसों को आँवला उत्तेजित कर के भूख बढ़ाता है। भोजन करने के मध्य या अंत में आँवला खाने से खाया हुआ भोजन पचाने में सहायता मिलती है।

खाँसी जुकाम या अन्य रोगों में भी आँवले के प्रयोग से बड़ी राहत मिलती है। आँवले के ताज़े फल से दाँत मज़बूत होते हैं। इसके अलावा अगर दाँत में कीड़े लगे हों तो कीड़े भी खत्म हो जाते हैं।

विटामिन-सी की आवश्यकता भोजन में अन्य विटामिनों की अपेक्षा सब से ज़्यादा होती है। इसकी कमी से शरीर में जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं उनसे बचाव केवल आँवले के प्रयोग से हो सकता है। विटामिन-सी की कमी से एक भयंकर रोग प्रशोताद (स्कर्वी) हो जाता है। इसके प्रकोप से मसूढ़ों में सूजन आ जाती है, मसूढ़ों और नाक से खून बहने लगता है, कमज़ोरी आ जाती है और साँस में दुर्गंध आने लगती

उपनिदेशक उद्यान, इलाहाबाद मण्डल (अवकाशप्राप्त) सी—67, गुरु तेग बहादुर नगर (करेली हाउसिंग स्कीम), इलाहाबाद (उ० प्र०)—211016

है। स्कर्वी रोग में शरीर पर नीले चकत्ते भी पड़ जाते हैं।

विटामिन-सी की कमी से गठिया, शरीर के जोड़ों में दर्द, हाथ-पैर में सूजन तथा हड्डियाँ कमज़ोर होने जैसे रोग हो जाते हैं। इसकी कमी से मनुष्य के शरीर में घाव भरने की गति बहुत धीमी पड़ जाती है। शरीर की त्वचा में खुश्की, बाल टूटने की बीमारी बच्चों की बढ़वार रुक जाना, पित्त के रोग को बल मिलना आदि अन्य रोग भी हैं जो विटामिन-सी की कमी से पैदा होते हैं। इन सभी रोगों और कमियों का सामना आँवले के प्रयोग से किया जा सकता है। आँवला, त्रिफला (आँवला, हर्ड़, बहेड़ा) का एक प्रमुख व महत्त्वपूर्ण घटक भी है।

आँवले का फल अम्लरसयुक्त होते हुए भी पित्त शांत करता है जबकि कच्चा आम, इमली, करौंदा आदि खट्टे फल पित्त को बढ़ाते हैं। कैंथा जैसे अम्लरसयुक्त फल के प्रयोग से कब्ज़ हो जाता है। परन्तु आँवला मल-बंधनाशक होता है और कब्ज़ पास नहीं आने देता।

आँवले के इन्हीं चमत्कारी गुणों के ही कारण इसे 'अमृतफल' कहते हैं, जिसका अर्थ यह है कि यह अमृत के समान है। इन्हीं कारणों से आँवले को 'धात्रीफल' अर्थात् माता की तरह रक्षा करने वाला तथा 'वयस्था' अर्थात् आयु को स्थिर करने वाला भी कहते हैं।

धार्मिक दृष्टिकोण से भी आँवले का बड़ा महत्त्व है। विभिन्न पर्वों पर आँवले के वृक्ष की पूजा की जाती है। आँवले के वृक्ष के नीचे बैठ कर भोजन करना शुभ माना जाता है।

आँवला (**एमब्लिका ऑफिसिनैलिस**—***Emblica officinalis***) यूफॉरबिऐसी कुल का पौधा है। अंग्रेज़ी में इसे एमब्लिक, माइरॉबलॉन या गूजबेरी कहते हैं।

जलवायु—आँवला उपोष्ण जलवायु का फल है। फिर भी उष्ण जलवायु में भी यह पूरी सफलता के साथ चलता है। आँवला भारतवर्ष के उष्ण जलवायु वाले वनों तथा पहाड़ी ढालों पर 1200 मीटर की ऊँचाई तक वाले स्थानों पर पैदा होता है। शुष्क वातावरण आँवले की बागबानी के लिए अधिक उपयुक्त होता है। लू और पाले से भी आँवले पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

फरवरी के महीने में आँवले की पत्तियाँ और लघु टहनियाँ वृक्ष पर से झड़ने लगती हैं तथा मार्च के अंत तक वृक्ष पत्रहीन हो जाता है। इसी बीच फरवरी के अंत से आँवले के वृक्ष नवीन फुटाव भी लेने लगते हैं।

विस्तार—भारतवर्ष में आँवला उत्तर प्रदेश, कश्मीर, बंगाल, पंजाब व अन्य प्रदेशों में भी पैदा होता है। उत्तर प्रदेश में प्रतापगढ़, वाराणसी, सुल्तानपुर, फैजाबाद, रायबरेली, गोण्डा, बस्ती, आज़मगढ़, जौनपुर, इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा, मथुरा, अलीगढ़, सहारनपुर तथा अन्य जनपदों में भी आँवला उगाया जाता है। इस प्रदेश में आँवले के अंतर्गत जो क्षेत्रफल हैं उसमें अधिकांश भाग जनपद प्रतापगढ़ में है, जहाँ लगभग 400 हेक्टेयर भूमि में आँवले की बागवानी की जाती है।

मिट्टी—आँवला कंकरीली, पथरीली, मटियार, दोमट तथा करीब-करीब सभी किस्म की मिट्टी में वन्य रूप में या उद्यान के रूप में चल जाता है। फिर भी कंकरीली और पथरीली मिट्टी में आँवले का बाग लगाना बचाना चाहिए।

कुछ कम उपजाऊ और पर्ती भूमि जिसमें अन्य फल न चल पाते हों, यहाँ तक कि क्षारीय तथा उसरीली और बंजर व बीहड़ भूमि जिसका पी० एच० मान 9.5 तक हो, में भी आँवला अच्छा चल जाता है। परन्तु दोमट या बलुई दोमट मिट्टी, जिसमें जल निकास की पूर्व व्यवस्था हो, आँवला उगाने के लिए ज़्यादा अच्छा होता है।

किस्में—बनारसी, फ्रान्सिस, चकइया, कंचन व कृष्णा आँवले की प्रमुख किस्में हैं।

बनारसी आँवला गुण में सर्वश्रेष्ठ होता है। इसका फल एक छोटे गेंद के बराबर सफेद रंग का चमकदार व अर्धपारदर्शक होता है। यह किस्म बनारस

(वाराणसी) से विकसित हुई। फल में रेशा नहीं होता। एक फल का भार करीब 70 ग्राम होता है जो माप में 4.6×4.7 सेमी० होता है। मुरब्बा बनाने की दृष्टि से यह सर्वश्रेष्ठ किस्म है परन्तु फलन कम होता है।

फ्रान्सिस (किला, हाथीझूल या राजबाग) किस्म प्रतापगढ़ नगर में स्थित किले से विकसित हुई। फल बड़ा, गोल, हल्का पीलापन सहित हरे रंग का अर्ध-पारदर्शक होता है। फल पर सफ़ेदी लिए छोटी-छोड़ी बिन्दियाँ होती हैं। फल छः गहरी व सफेद धारियों द्वारा लम्बाई में विभक्त रहता है। फल का भार 65 ग्राम और माप में 4.44×5.11 सेमी० होता है। इसमें रेशा नहीं होता और मुरब्बा बनाने के लिए अच्छी किस्म है।

चकइया किस्म भी प्रतापगढ़ से विकसित हुई। इस किस्म का फल गोल व चपटा तथा अपेक्षाकृत कुछ छोटा, हरियालीयुक्त चिकना चमकदार और अर्ध-पारदर्शक होता है। इसमें रेशा बिल्कुल ही नहीं होता है। फल की धारियाँ खड़ी, सफेद और पतली होती हैं। फल का भार 36.43 ग्राम और माप 4.3×4.95 सेमी० होता है। इसमें फलन खूब और गुच्छों में होता है।

कंचन किस्म उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद से ही ग्राम पटहुजिया से विकसित हुई। फल कुछ लम्बाईयुक्त, गोलाकार, हरियालीयुक्त कुछ मटमैले रंग का अर्धपारदर्शक होता है। एक फल का भार 20 ग्राम और माप में 3.3×3.2 सेमी० होता है। फलन अच्छा होता है।

कृष्णा भी प्रतापगढ़ के ग्राम पटहटिया से ही विकसित हुआ। फल गोलाकार और शिखा ढालूनुमा होती है। शरीर चमकदार अर्धपारदर्शक, हरे रंग का अंश लिए पीलापन सहित सफेद रंग का होता है। पकने पर फल की धारियों के पास सुर्खी आ जाती है। फल का भार 50 ग्राम और माप 4.6×4.7 सेमी० होता है।

प्रसारण—आँवले का वानस्पतिक प्रसारण भेंट-कलम और चश्मा बाँध कर किया जाता है। चश्मा बाँधने में शील्ड, आई और पैबन्द (पैच बडिंग) वाली विधियाँ अपनाई जाती हैं। चश्मा बाँधने (बडिंग) के लिए मार्च-अप्रैल, जून और अगस्त-सितम्बर उपयुक्त समय होता है। भेंटकलम जुलाई-अगस्त में बाँधना चाहिए। बड या कली का पैबन्द मूलवृन्त की लकड़ी से 2 सप्ताह में जुड़ जाता है, जिसके बाद सुषुप्तावस्था में पड़ी हुई कलियों (आँखों) में फुटाव होने लगता है।

भेंटकलम की अपेक्षा चश्मा द्वारा पौधे तैयार करना अधिक सरल और कम खर्चीला होता है। मुख्य स्थान पर अर्थात् बाग लगाने के स्थान पर ही उचित दूरी पर आँवले के बीज बोकर या बीजू पौधे लगाकर तैयार किए गए मूलवृन्त में मौके पर ही चश्मा बाँध देने से कलमी पौधे की जड़ें अधिक मज़बूत होती हैं और आँवले का बाग जल्दी तैयार भी हो जाता है। इस प्रकार मूलवृन्त के एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रतिरोपण करने का कार्य कम हो जाता है। इस प्रकार पौधे के सूखने की सम्भावना भी नहीं रह जाती। मूलवृन्त के लिए चुने गए पौधे की आयु एक वर्ष की होनी चाहिए।

अफलन की समस्या—आँवले की लघुटहनियों (ब्रान्चलेट्स) में नर और मादा—दोनों प्रकार के फूल लगते हैं। यदि चश्मा बाँधने या भेंटकलम करने के लिए ऐसी लकड़ी (सायन) का चयन किया गया जिसमें कि केवल नर फूल ज़्यादा और मादा फूल कम लगे हों, तो उनसे तैयार किए गए पौधों में अफलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

आँवले में विशेषकर बनारसी किस्म में अफलन की समस्या एक गम्भीर रूप धारण कर लेती है। यह समस्या नर फूलों वाली टहनी प्रयोग करने से ही उत्पन्न होती है। अतः कलम तैयार करते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि चयन की गई लकड़ी (डण्ठल या सायन) की लघु टहनियों में अधिकांश संख्या मादा फूलों की रही हो। इसके अतिरिक्त इस

बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि लकड़ी या सायन केवल उन्हीं वृक्षों से चयन की जाय, जो लगातार 4-5 वर्ष तक नियमित रूप से अच्छी फसल दे चुके हों।

अफलन की समस्या परागकण की स्वयं-बंध्यता, फलों के गिराव, परागण के समय दवाओं का छिड़काव, खाद-पानी एवं अन्य कर्षण क्रियाओं तथा जंगली व घटिया किस्मों के कारण भी उत्पन्न होती है।

बनारसी किस्म के फूलों के परागण में स्वयं वन्ध्यता होती है। इस कारण इसके परागण इसी के मादा फूल के लिए उपयोगी नहीं हो पाते। इस कारण फलन नहीं हो पाता। अतः स्वयंवन्ध्यता किस्म वाले आँवले के बागों में अगर 5 प्रतिशत परागकर्ता किस्म के पौधे लगा दिए जाएँ या स्वयंबन्ध्य किस्म की एक शाखा पर परागकर्ता किस्म का शीर्ष रोपण (टॉप वर्किंग) कर दिया जाय तो वृक्ष में फलन की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। इनके अतिरिक्त केवल परागकर्ता किस्म के बाग लगाने से भी इस समस्या का समाधान हो जाता है। देशी, चकइया, फ्रान्सिस कंचन और कृष्णा-ये सभी आँवला की परागकर्ता किस्में हैं।

मादा फूलों में गर्भाधान के बाद 4 से 4½ मास तक की अवधि पर ही फलों का विकास होता है। इसके पूर्व ये फल सपुप्तावस्था में ही रहते हैं। इस बीच इनके भीतर वृद्धि निरोधक नियामक उत्पन्न हो जाते हैं। इन्हीं के कारण फलों में गिराव आरम्भ हो जाता है। इससे बचाव के लिए गर्भित फलों पर 100 से 200 पी० पी० एम० जिबरेलिक एसिड का (100 से 200 ग्राम जिबेरेलिक अम्ल एक लिटर पानी में घोल कर) छिड़काव करना चाहिए। परागण के समय किसी दवा का छिड़काव नहीं करना चाहिए।

नस्ल सुधार—वन्य रूप में या उद्यान में उगते बीजू या घटिया किस्म के वृक्ष से, जो अच्छा फलन न देते हों, वृक्ष की नस्ल सुधार कर अच्छा व सन्तोषजनक फलन लिया जा सकता है। यह नस्ल सुधार उच्च कोटि की परागकर्ता किस्मों का इन वृक्षों पर शीर्ष रोपण कर के किया जा सकता है।

शीर्ष रोपण करने के लिए आँवले के वृक्ष के मुख्य तने को भूमि से करीब 120 सेमी० की ऊँचाई पर मध्य फरवरी में काट देना चाहिए। फिर वृक्ष के कटे हुए भाग पर कोल्टार लगा देना चाहिए। जब इनमें नए फुटाव आने लगें तो केवल 3-4 टहनियाँ चारों ओर बढ़ने दें। जब ये 3-4 महीने की हो जाएँ तब इनमें चयनित किस्मों का चश्मा (पैंच, आई या शील्ड बडिंग) बाँध दें। इन कलियों के फुटाव आने पर जो वृक्ष तैयार होंगे वे उच्च कोटि का तथा अच्छा फलन देने लगेंगे।

रोपण खाद—आँवले का बाग लगाने के लिए मई जून में 1 × 1 मीटर की दूरी पर 10 × 10 × 10 सेमी० माप के गड्ढे खोद लेना चहिए। फिर हर गड्ढे को सतह वाली मिट्टी और 40 किग्रा० गोबर सड़ी खाद मिला कर ज़मीन के 15 सेमी० ऊपर तक भर देना चाहिए। भरे हुए गड्ढे में 25 ग्राम फॉस-फोरिक अम्ल और 50 ग्राम एल्ड्रेक्स (दीमक से बचाव के लिये) मिट्टी के ऊपरी भाग में मिला देना चाहिए। इस प्रकार एक हेक्टेयर भूमि में 120 गड्ढे तैयार होते हैं। वर्षा से गड्ढे दब कर भूमि धरातल के बराबर आ जाने पर आँवला के पौधों को इनके बीचो बीच लगा देना चाहिए। रोपण का कार्य शाम को करना ठीक रहता है। रोपाई के बाद अगर बारिश होने की आशा न हो तो इनकी सिंचाई कर देनी चाहिए।

रोपण के एक वर्ष पर प्रति पौधा गोबर की सड़ी खाद 20 किग्रा० तथा नाइट्रोजन, फॉस्फोरिक अम्ल और पोटाश क्रमशः 30, 15 और 30 ग्राम प्रदान करना चाहिए। दस वर्ष की आयु तक गोबर की खाद की मात्रा पूर्ववत् रखनी चाहिए। इसके बाद यह मात्रा 40 किग्रा० कर देनी चाहिए। परन्तु नाइट्रोजन, फॉस्फोरिक अम्ल और पोटाश की ये मात्राएँ हर वर्ष दस वर्ष तक बढ़ाते रहना चाहिए। इस तरह 10 वर्ष की आयु वाले आँवले के एक वृक्ष को गोबर की खाद 10 किग्रा०, नाइट्रोजन 300 ग्राम प्रदान करना चाहिए।

दस वर्ष से ऊपर तक की आयु वाले वृक्ष के लिए हर साल गोबर की खाद 40 किग्रा०, नाइट्रोजन 700-900 ग्राम, फॉस्फोरिक अम्ल 200 ग्राम और पोटाश 700 ग्राम कर देना चाहिए।

गोबर के खाद की सम्पूर्ण मात्रा तथा शेष खादों की आधी मात्रा सितम्बर-अक्टूबर में प्रदान करना चाहिए। इन खादों की बची हुई आधी मात्रा अप्रैल-मई में प्रदान करना चाहिए। खाद वृक्ष के छाये के बाहरी घेरे के नीचे देना चाहिए, जिससे भोजन प्राप्त करने वाली जड़ें इन्हें ग्रहण कर सकें।

सिंचाई—खाद प्रयोग के बाद पौधों/वृक्षों में तुरन्त पानी चला देना चाहिए। नवीन रोपित उद्यानों में तथा इनके पूर्ण रूप से स्थापित होने के पूर्व तक गर्मी के दिनों में 15-15 दिन पर और सर्दियों में 20-20 दिन पर सिंचाई करनी चाहिए। फलने वाले पुराने उद्यानों में अप्रैल से जून तक 15-15 दिन पर तथा वर्षा ऋतु के बाद समय-समय पर निराई-गुड़ाई भी करते रहना चाहिए।

सधाई व काट-छाँट—पौध रोपण के पश्चात् इसके मुख्य तने को ज़मीन से 70 सेमी० की ऊँचाई पर काट देना चाहिए। शिखा के आस-पास से निकलने वाली चार शाखाएँ इस प्रकार चयन करना चाहिए कि वे अधिक कोण बनाती हुई चारों ओर फैल रही हों। शेष शाखों को निकाल देना चाहिए। इन चार शाखाओं को चयन करने के ही साथ एक अतिरिक्त शाख ऐसी चयन करनी चाहिए जो सीधे ऊपर की ओर बढ़ रही हो। अगले वर्ष इस शाख की शिखा को ज़मीन से 140 सेमी० की ऊँचाई पर काट देना चाहिए। इसकी शिखा के आस-पास से भी पूर्व की भाँति चार शाखें वृद्धि करने देना चाहिए। इस प्रकार वृक्ष पर 70 सेमी० की ऊँचाई पर शाखों का एक छत्र और फिर उसके ऊपर 140 सेमी० की ऊँचाई पर 4 शाखों का दूसरा छत्र वन जाता है। वृक्ष की सधाई की इस प्रणाली को 'सम्परिवर्तित खुला केन्द्र' (मॉडीफाइड ओपेन सेण्टर या मॉडीफाइड सेन्ट्रल लीडर) कहते हैं।

पुष्पण-फलन—आँवले के फूल और फल वृक्ष की लघु टहनियों (ब्रान्चलेट्स) पर स्थित पत्तियों के कक्ष में लगते हैं। आँवले की पत्तियाँ देखने में कम्पाउण्ड मालूम पड़ती हैं और ऐसा लगता है कि इमली की पत्ती की तरह जिन पतली-पतली टहनियों पर पर छोटी-छोटी पत्तियाँ लगती हैं, वह कम्पाण्ड पत्तियों के बीच की नाड़ी (रैकिस) हैं परन्तु वास्तव में यह पतली टहनियाँ रैकिस नहीं होतीं बल्कि लघु-टहनियाँ (ब्रान्चलेट्स) होती हैं। इन लघु टहनियों पर लगी हुई पत्तियाँ सादी पत्तियाँ होती हैं, जिनके ही कक्ष में फूल निकलते हैं और फल लगने पर मालूम पड़ता है कि पत्तियों पर ही फल लगे हैं।

कलमी आँवले के वृक्ष 8-9 वर्ष में फलने लगते हैं। वृक्ष की पिछले वर्ष की पत्तियाँ और लघु टहनियाँ गिरने के बीच ही फरवरी के अन्त से वृक्ष में नए फुटाव आने लगते हैं। फूल मार्च के पहले सप्ताह में लग जाते हैं। इनकी कलियाँ अप्रैल के पहले सप्ताह या कभी-कभी अंतिम मार्च से खिलने लगती हैं। फूलों के खिलने का यह क्रम लगभग तीन सप्ताह तक जारी रहता है।

आँवले का पुष्प एकलिंगी होता है। नर फूल की कलियाँ सभी लघु टहनियों पर झुण्डों में लगती हैं। परन्तु मादा फूलों की कलियाँ कुछ ही लघुटहनियों पर आधार की ओर प्रायः अकेले लगती हैं। नर फूलों की कलियाँ इन्हीं लघुटहनियों की चोटी की की ओर लगती हैं।

फूल खिलने के चार या साढ़े चार मास के बाद लगभग मध्य अगस्त में छोटे-छोटे हरे रंग के दाने (फल) दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे ये फल वृद्धि करने लगते हैं, जो जनवरी मास में पक कर तोड़ने लायक हो जाते हैं।

फलों की तुड़ाई, उपज, आय-व्यय—पकने पर आँवले के फल में पीलापन आ जाता है। जनवरी में तथा आवश्यकतानुसार फरवरी तक फलों को अवश्य तोड़ लेना चाहिए। तोड़ने के बीच ध्यान रखना चाहिए कि फलों में घाव न लगने पाएँ तथा सम्भाल कर हाथ से या खोते से तोड़ना चाहिए। इसके लिए

स्टूल-सीढ़ी आदि का प्रयोग करना अच्छा रहता है।

आँवले के 9-10 वर्ष और उससे ऊपर की आयु के फलने वाले एक वृक्ष से लगभग 2 क्विन्टल फल पैदा होता है। इस प्रकार एक हेक्टेयर के बाग में 120 वृक्षों से प्रति वर्ष 240 क्विन्टल आँवले की उपज ली जा सकती है।

प्रति हेक्टेयर आँवला उद्यान रोपण में लगभग रु० 1640 =का आरम्भिक व्यय हो जाता है। रोपण से फलने के बीच के बाग के रिक्त स्थानों में मौसमी साग सब्जी उगा कर आमदनी लेनी चाहिए।

नौ दस साल पर आँवले का वृक्ष जब फल देने लगे तब उस समय से प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष लगभग रु० 6000 =का व्यय कर के रु० 1,20,00/=की आय की जा सकती है। इस प्रकार एक हेक्टेयर आँवले के बाग से हर साल लगभग 1,14,000= का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

रोग और कीट—आँवले में आंतरिक ऊतक क्षय, फल सड़न और रतुआ रोग के अतिरिक्त गाँठ बनाने वाले कीट, छाल खाने वाली इल्ली, शल्क कीट, पत्ती खाने वाले कीट और माहू का प्रकोप होता है। इनसे समय-समय पर बचाव करते रहना चाहिए।

आँवले के **'आंतरिक ऊतक क्षय'** (इन्टरनल नेक्रोसिस रोग के प्रकोप से फल का गूदा भीतर से काला हो जाता है। बचाव के लिए प्रति वृक्ष 125 ग्राम सुहागा (बोरेक्स) खाद की तरह प्रयोग करना चाहिए। इसके अलावा प्रति लीटर पानी में छः ग्राम सुहागा का घोल बना कर फल लगने पर सितम्बर के आरम्भ में छिड़काव करने से शीघ्र लाभ होता है। इसके बाद दो-दो हफ्ते पर दो छिड़काव और करने चाहिए।

रस्ट या रतुआ रोग के प्रकोप से पत्तियों और फलों पर भूरे रंग के उभरे हुए धब्बे पड़ जाते हैं। यह रोग **रेंवैनेलिया एम्बलिकी** नामक फफूंदी के कारण उत्पन्न होता है। बचाव के लिए 2 ग्राम डाइथेन ज़ेड —78 को एक लीटर पानी में घोल कर इसी दर से 15-15 दिन पर 3-4 छिड़काव अगस्त से सितम्बर तक करना चाहिए।

फल सड़न के प्रकोप से फल पर भूरे रंग के गहरे धब्बे पड़ जाते हैं। धीरे-धीरे फल सड़ने लगते हैं और फिर गिर जाते हैं। यह रोग **पेनिसिलियम आइलैन्डिकम, पेनिसिलियम ऑक्सैलिकम** तथा **ऐसपर्जिलस नाइगर** नामक फफूंदियों द्वारा फैलता है। सुहागा या सोडियम क्लोराइड का हल्का घोल छिड़कने और फलों के भण्डारण के बीच सफाई रखने से बचाव रहता है। इसके अलावा एक लीटर पानी में 2 ग्राम फोल्टाक या **केप्टाफाल'** नामक फफूंदी नाशक दवा घोल कर सितम्बर के मध्य से नवम्बर के अंत तक के बीच एक-एक महीने के अंतराल पर तीन बार छिड़काव करना चाहिए।

कीटों में **'गाँठ बनाने वाले कीट'** (**शट गॉल मेकर—बेटूसा स्टाइलोफ्लोरा**) नामक कीट का प्रकोप प्रायः दिखाई देता है। इस कीट की गिडार छोटी व काली होती है जो टहनी की शिखा में छेद कर के घुस कर बैठ जाती है। इसके फलस्वरूप प्रभावित भाग फूल कर गाँठ बन कर मोटा हो जाता है। इससे टहनी की बढ़वार रुक जाती है। प्रभावित टहनी की गाँठ को काट कर नष्ट कर देना चाहिए।

छाल खाने वाली इल्ली (इन्डरबेला टेट्राऑनी) की सूँड़ियाँ छाल खाती हुई वृक्ष के तने और शाखों में सुरंग बना कर भीतर घुस जाती हैं और गूदा खाने लगती हैं। प्रकोप अधिक होने पर प्रभावित भाग सूखने लगते हैं। बचाव के लिए सूराख में तीली डाल कर कीट को मार डालना चाहिए। फिर जला कर साफ रूई को क्लोरोफॉर्म, पेट्रोल फॉरमैलीन या मिट्टी के तेल में भिगो कर सूराख में ठूंस देना चाहिए। फिर सूराख के ऊपर चिकनी गीली मिट्टी लेप देना चाहिए।

शल्क कीट से बचाव के लिये 0.02 से 0.04 प्रतिशत रोगर—40 या डाइमेक्रान—100 का छिड़काव करना चाहिए। **पत्ती खाने वाले कीट** से बचाव के लिये मिथाइल पैराथियान (मेटासिड) एक मिली लीटर को एक लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करना चाहिए।

माहू नवीन वृद्धियों के रस चूस लेते हैं। बचाव के लिये एक मिली लीटर मॉनोक्रोटोफॉस को एक लीटर पानी में घोल कर 15-15 दिन पर छिड़कना चाहिए। ☐☐

तृतीय विश्व पर कीटनाशकों का हमला

प्रेम प्रकाश व्यास

हरित क्रांति तृतीय विश्व को भूख से मुक्ति दिला पाई या नहीं, यह एक विवाद का विषय हो सकता है, परन्तु इसमें कोई दो राय नहीं कि इसने विकासशील देशों में कीटनाशकों का वैनाशिक प्रवेश अवश्य करा दिया है। कीटनाशकों के निरन्तर दुरुपयोग से जहाँ एक ओर पारिस्थितिकी सम्बन्धी असंतुलन उत्पन्न हुए वहीं महामारी की तरह जनहानि भी हुई है। 'भोपाल गैस दुर्घटना' तो उस विनाशलीला का मात्र एक हिस्सा है जो कीटनाशकों के दुरुपयोग पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

'विश्व स्वास्थ्य संगठन' की हाल ही में प्रकाशित रिपोर्ट जहाँ एक ओर एक भीषण आसन्न संकट से साक्षात्कार करवाती है वहीं विकसित देशों की लोलुप व घिनौनी नीतियों का पर्दाफ़ाश करने की हिम्मत भी करती प्रतीत होती है। उस लम्बी सूची में ग्वेटेमाला भी एक है जिसे इस रिपोर्ट में कीटनाशकों से सर्वाधिक प्रभावित देशों का दर्जा दिया गया है। वहाँ पर माताओं के दूध तक में डी० डी० टी० की मात्रा मापी गई है. जो सम्भवतया मानव के शरीर में पाई जाने वाली कीटनाशकों की सर्वाधिक मात्रा है। यह सूचना निरी भ्रामक नहीं है बल्कि विकासशील देशों के लिए एक चेतावनी है कि कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से कीटों के समाप्त होने के साथ-साथ क्या मानव जाति के समाप्त होने का ख़तरा तो उत्पन्न नहीं हो गया है? वैसे भी कीटनाशकों से प्रभावित होने अथवा मरने वालों की सही संख्या किसी भी देश में उपलब्ध नहीं हो पाती हैं क्योंकि अकसर ऐसे मौकों पर केवल सरकारी अस्पतालों में दर्ज मृत व्यक्तियों के आँकड़ों पर ही भरोसा कर लिया जाता है और वे मृतक गिने ही नहीं जा सकते हैं जो सीधे कब्रिस्तान पहुँचा दिए जाते हैं। 'न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता **एलान राइडिंग** जो 9 नवम्बर 1977 को ग्वेटेमाला में हुई भीषण दुर्घटना के समय उपस्थित थे, मरने वालों व सरकारी आँकड़ों के अन्तर को देख कर अत्यन्त चकित रह गए थे। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने बीस देशों से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि 1982 में कीटनाशकों से प्रभावित होने वाले ढाई लाख लोग थे और मरने वाले लगभग साढ़े छह हज़ार।

कीटनाशकों का ग़लत तरीके से परिवहन भी मौत का कारण बन सकता है यह तब ही पता चला जब दोहा (कातार) और हफ़ूफ़ (सं० अरब अमीरात) में 1980 के मार्च माह में पाँच सौ मरीज़ दाखिल किए गए जिन्हें पेट में दर्द, उल्टियाँ व चक्कर आने की शिकायत थी, उनमें से तीस व्यक्ति तो तत्काल ही मर गए। परीक्षणों से पता चला कि उनके शरीर में एक कार्बोक्लोरीन कीटनाशक "एण्ड्रीन" पहुँच गया है जबकि आश्चर्य की बात तो यह थी कि एण्ड्रीन का उपयोग दोनों ही देशों में नहीं होता। खोज-बीन करने पर निष्कर्ष यह निकला कि जिस जहाज़ में आटा लाया जा रहा था, उसी में "एण्ड्रीन" की बोरियाँ रखी थीं और 'एण्ड्रीन' के उन पर गिर जाने से यह दुर्घटना घटी। इसी प्रकार ही पाकिस्तान में 1976 के जुलाई माह में "मेलाथियोन" के छिड़काव करने वाले सभी कर्मचारी इसके शिकार हुए जिनमें से दस तो चल भी बसे। ऐलाथियोजन और पेराथियोजन न केवल कीटनाशक हैं बल्कि रासायनिक युद्ध के भीषण हथियार भी हैं।

वैसे कीटनाशकों से सर्वाधिक प्रभावित देशों में मिस्र का नाम भी लिया जा सकता है जहाँ कपास की

प्रधानाध्यापक, राजकीय माध्यमिक विद्यालय, जसाई, बाड़मेर–344001

अधिकाधिक फ़सल प्राप्त करने की होड़ में लाखों टन कीटनाशकों का उपयोग प्रति वर्ष होता है। इस सूची में सूडान व ब्राज़ील भी हैं। ब्राज़ील को ही लें जहाँ एमेज़न के जंगलों को साफ़ करने के लिए व पत्तियों को गिराने के लिए विशिष्ट रसायन "एजेंट ऑरेन्ज" का उपयोग किया जाता है। इसका छिड़काव करने वाले अधिकांश कर्मचारियों में नज़र कमज़ोर होना, उल्टी होना व पेट सम्बन्धी गड़बड़ियों का होना जैसे लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं। यह वही कुख्यात रसायन है जिसका उपयोग अमेरिकी सेना ने वियतकांग गुरिल्लाओं के विरुद्ध किया था। दरअसल विकासशील देशों में इन कीटनाशकों से होने वाली मौतों का कारण इनकी बिक्री पर नियन्त्रण का अभाव है। अज्ञानतावश या ग़लत विज्ञापनों से ही सही, पर 1975 में "एल्ड्रीन" के प्रयोग से सौ व्यक्ति मारे गए जो ब्राज़ील की सर्वप्रथम दुर्घटना थी। प्राणघातक कीटनाशकों की खुली बिक्री आसानी से सुलभ होना और उसके गुणों का ज्ञान न होना, वे कारण हैं जो निरपराध व निर्दोष लोगों को काल का ग्रास बनाते हैं। ट्यूनिशिया का उदाहरण लें जो अपने आप में विचित्र है। इस छोटे से मुस्लिम देश में, जहाँ इस्लाम धर्म के अनुसार आत्महत्या पाप माना जाता है, बढ़ती हुई आत्महत्याएँ एक चौकाने वाला चिंतनीय विषय है। परन्तु इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि वहाँ पर "पेराथियोजन" नामक घातक कीटनाशक बैंगनी रंग के पाउडर के रूप में हर दुकान पर खुला बिकता है जिसके किसी भी खाद्य पदार्थ में आसानी से न मिल पाने तथा किसी भी बच्चे तक को न बेचे जाने की भला गारंटी कैसे ली जा सकती है? ट्यूनिशिया के वरिष्ठ चिकित्सा विज्ञानी डॉ० **वाई० मोकरनी** के अनुसार पेराथियोजन से श्वास रुकना, खाँसी और मानसिक गड़बड़ी जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं और अधिक मात्रा में लेने पर मृत्यु। आश्चर्य तो इस बात का है कि इस छोटे से देश में वर्ष 1985 में 140 टन "पेराथियोजन" की खपत हो गई।

ईराक में 1982 में फैली महामारी ने भी हज़ारों की जान ली, जो कीटनाशकों के अन्न में मिल जाने और एक फफूंदनाशकयुक्त मक्का खाने से हुई और जिसका कुप्रभाव वर्षों तक रहा। बगदाद की चिकित्सा अकादमी के **एफ० बाकिर** के अनुसार ये मौतें अधिकतर उन लोगों की हुईं जिन्हें कीटनाशकों से कोई सरोकार नहीं था। कीटनाशकों का स्वयं का प्रभाव तो रहता है ही, इसके लिए उपयोग में आने वाले बर्तनों, डिब्बों, पैकेटों व बोतलों में भी इसका दुष्प्रभाव लम्बे समय तक रहता है। 1985 के मार्च माह में जिम्बाब्वे के एक कैम्प में पचास छात्र भोजन करते ही मर गए क्योंकि उन्होंने ऐसे डिब्बों में खाना डालकर खा लिया था जो कीटनाशकों के थे। कीटनाशकों के खाली डिब्बों को बाज़ार में आसानी से सस्ते में खरीदा जा सकता है। ये ही क्यों न्युगिनी में "ग्रेमेक्सोव" नामक कीटनाशक की खाली बोतलें हर दुकान पर मिल जाती हैं, जिसमें लोग पीने का पानी भरते हैं और उनको उपयोग से पहले अच्छी तरह साफ़ किया ही गया हो इसकी संभावना नहीं के बराबर होती है। तुर्की में फैली "मंकी डिजीज़" भी इसी प्रकार के खाली डिब्बों के प्रयोग से ही उत्पन्न हुई। हुआ यों कि 1955 से 1961 के बीच "हैक्साक्लोरोबेंज़ीन" (एच० सी० बी०) को मकई के बीजों को फफूंदरोधक बनाने के लिए उपयोग में लाया गया। इसमें लाखों टन "एच० सी० बी०" की खपत हुई और उसके खाली डिब्बे पूरे देश में बिके। हालाँकि पाँच-छः सौ लोग मरे भी, परन्तु उसका सीधा सम्बन्ध इस रसायन से जोड़े जाने का विचार उत्पन्न तक न हो पाया। तीस वर्ष बाद ल्योन में आयोजित एक संगोष्ठी में "एच० सी० बी०" के कुप्रभावों पर प्रकाश डाला गया और 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने एक सर्वेक्षण भी किया। प्रभावित क्षेत्रों में एक बीमारी "मंकी डिज़ीज़" (जिसमें व्यक्ति का पूरा शरीर लाल हो जाता है और बालों से भर जाता है, बंदर की तरह) का दुष्प्रभाव देखा गया। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' की रिपोर्ट बताती है कि इस रसायन से त्वचा पर चकत्ते उभरना व धीरे-धीरे लाल पड़ जाना, पेट दर्द, भूख न लगना,

मूत्र आना, और दुर्बलता जैसे लक्षण पाए गए। 'एच० बी० सी०" गर्भस्थ शिशु तक भी पहुँच जाता है और माता के दूध में भी। अंकारा विश्वविद्यालय के चिकित्सा संकाय के **प्रो० एहसान गोक्मेन** ने पाया कि इस रसायन से रक्त कैंसर, तथा मस्तिष्क की कोशिकाओं का ह्रास प्रारम्भ हो जाता है। दुर्भाग्यपूर्ण सत्य तो यह है कि एच० सी० बी० का उपयोग तुर्की में अभी तक हो रहा है।

विकसित देश पर्यावरण की चिन्ता व कीटनाशकों से होने वाली मानव हत्याओं पर कितने ही घड़ियाली आँसू बहा लें, अभी भी उनकी शोषण करने की नीतियाँ वैसी की वैसी हैं। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' की रिपोर्ट यह शर्मनाक तथ्य भी उद्घाटित करती है। मिस्र का उदाहरण देकर यदि इसे और स्पष्ट करें तो अमेरिका की पर्यावरण के प्रति झूठे प्रेम की कलई खुल जाती है। मिस्र कपास का प्रमुख उत्पादक है और वहाँ पर कीटनाशकों की खपत तृतीय विश्व के अन्य देशों से कम नहीं। कपास के लिए उपयोगी कीटनाशकों में "फोसवोल" या "लेप्टोफोस" प्रमुख हैं। बे-पोर्ट, टेक्सास (सं० रा० अ०) की फर्म वेल्सीकोल का यह उत्पाद ओर्ग्रेसीफॉस्फेट की श्रेणी में आता है। इसके छिड़काव वाले क्षेत्र में इससे मरने वालों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। मज़े की बात तो यह है कि अमेरिका में "फोसवोल" के लाखों टन के उत्पादन के बावजूद, इसके प्रयोग पर पाबंदी है और इसे तृतीय विश्व में मानव व पर्यावरण हत्या हेतु निर्यात किया जाता हे। प्रति वर्ष 15 लाख टन बिकने वाला "फोसवोल" तृतीय विश्व में सर्वाधिक उपयोग में लिया जाता है। "एनवायरमेंट" पत्रिका में **केविन शिया** लिखते हैं कि मिस्र ने इस दुर्घटना से कोई सबक लिया ही नहीं लगता क्योंकि फोसवोल का आयात वहाँ बढ़ ही रहा है। यही नहीं, ब्रिटिश कोलम्बिया के एक अखबार को तो वेल्सीकोल की ओर से कोर्ट से धमकी भी मिल चुकी है कि वह उसके उत्पादों के बारे में उलूल-जुलूल न छापे। इन सबके रहते इसका प्रयोग नाईजीरिया, एंटीगुआ और इण्डोनेशिया में हो रहा है। और दुर्घटनाएँ भी। हाँ, फिलीपींस व मेक्सिको में इस पर प्रतिबन्ध है और वह इसलिए कि वहाँ पर सर्वाधिक खाद्य पदार्थ अमेरिका को ही भेजे जते हैं।

कॉर्नेल विश्वविद्यालय के **प्रो० डेविड पिमेंटले** ने अधिकांश कीटनाशकों का अध्ययन कर उनके दुष्प्रभावों की एक तालिका प्रस्तुत की है। उनके अनुसार कीटनाशकों का सर्वाधिक प्रभाव स्नायुतन्त्र पर पड़ता है और मस्तिष्क की नियमित क्रियाप्रणाली प्रभावित हो जाती है। कई व्यक्तियों में "पार्किसन डिजीज़" (मस्तिष्क की पिरामीडीय कोशाओं का ह्रास) रोग भी पाया गया, वहीं कुछ रोगी यकृत की गड़बड़ियों, तनाव व नपुंसकता के शिकार भी पाए गए। मानव पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों और मौतों को तो गंभीरता से ले लिया ही जाना है, परन्तु उससे भी गंभीर मसला है कीटनाशकों के दुरुपयोग से प्रकृति का पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी असंतुलन का। वैसे भी प्रकृति का नियम है कि जब एक जीव प्रजाति बलपूर्वक हटा ली जाती है अथवा मार दी जाती है तो उस निर्वात को भरने वाली नई प्रजाति उससे अधिक सक्षम और कीटनाशक प्रतिरोधी होगी। नार्वे का एक छोटा सा उदाहरण काफी होगा। नार्वे में 1958 से लगातार चूहों को मारने का अभियान जारी है, लेकिन तीस वर्ष बाद स्थिति यह है कि चूहों की एक प्रजाति **रैटस नार्वेजिकस** या **नार्वेरैट** सभी रसायनों से प्रतिरोधी शक्ति उत्पन्न कर चुकी है और अधिक घातक साबित हो रही है। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' की रिपोर्ट में ऐसे कीटों के उदाहरण भरे पड़े हैं जो प्रचलित कीटनाशकों के प्रभावों से मुक्त हो रहे हैं।

कीटनाशकों से बचाव का एकमात्र रास्ता, जो अत्यंत कठिन है वह इनके उपयोग पर तत्कालीन प्रतिबन्ध लगाने का है, परन्तु यह रास्ता इतना सीधा हो ऐसा नहीं है, क्योंकि अधिकाधिक फ़सल प्राप्त करने व ज़्यादा से ज़्यादा लाभ कमाने की मंशा के रहते इसे अपनाया जाएगा इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। लेकिन आशा की किरण न बची हो ऐसा

नहीं है, यह आश्वासन 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' की रिपोर्ट देती है। चीन में प्रयुक्त विधियों की जानकारी इसमें दी गई है जहाँ कीटनाशकों के उपयोग पर लगभग प्रतिबन्ध सा है। वहाँ पर कपास की फ़सल उतरने के बाद इन्हें हाथों से अलग किया जाता है। फली में पाए जाने वाले कीड़ों को कुचलकर मारा जाता है या उन्हें पक्षियों को खाने को डाल देते हैं। बीमार पौधे जला दिए जाते हैं। प्रत्येक वर्ष लाखों श्रमिक इसी काम में जुटे रहते हैं। चीन की तत्कालीन व्यवस्था, सस्ता मानव-श्रम और अन्य कारणों के रहते यह प्रयोग काफ़ी सफ़ल रहा है। इसी प्रकार मिस्र में "फेरामोन" (हार्मोन की तरह के ही जैव-रसायन जो कीटों में पाए जाते हैं) के उपयोग से इस दिशा में नया कदम रखा गया है।

उपरोक्त बातों से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि तृतीय विश्व में कीटनाशकों का उपयोग कितना खर्चीला व जोखिम भरा काम होता जा रहा है और इसके लिए अन्य उपायों को किए जाने की भी आवश्यकता है। इस दिशा में सर्वाधिक नवीनतम उपाय 'संयुक्त राष्ट्र संघ' की संस्था "एफ० ए० ओ०" ने किया है और नवम्बर 1989 में कीटनाशकों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्ध हेतु कोड का निर्माण किया है। इसमें कीटनाशकों के प्रयोग पर सावधानी तथा उसके पैकेजिंग व रख-रखाव पर अत्यधिक ध्यान देने की बात की गई है। **आर० वानडेन बॉश्च** अपनी पुस्तक "द पेस्टीसाइड कांस्पिरेसी" में लिखते हैं कि तृतीय विश्व के देश अपने यहाँ बिनबुलाई मौत को आमंत्रण दे रहे हैं, कीटनाशकों के रूप में। उन्होंने कीटनाशकों के ख़तरों को स्थानीय भाषाओं में विज्ञापित करने पर भी ज़ोर दिया। इन्हीं की समसामयिक पुस्तक "पिल्स, पेस्टीसाइड्स एण्ड प्रॉफिट', में **आर० नोरिस** ने आशा व्यक्त की है कि यदि कुछ सुरक्षात्मक उपाय ढूँढ़ लिए जायें व उन पर कड़ाई से अमल किया जाए तो तृतीय विश्व में बढ़ती दुर्घटनाओं पर और पर्यावरण के विषैलेपन पर रोक लग जाएगी, अन्यथा, इसे विकसित देशों का सुनियोजित व सुसंगठित आक्रमण ही कहा जाएगा, तृतीय विश्व के पर्यावरण पर। ☐☐

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

मानव जाति की हैवानियत का प्रतीक—डोडो

रवि कृष्ण गुप्ता

मानवीय अतिक्रमण के शिकार होकर संसार से अब तक जो बहुत से पक्षी लुप्त हो चुके हैं, उनमें से डोडो नामक पक्षी सर्वाधिक चर्चित है। मारीशस में 16वीं शताब्दी में कबूतर जाति का यह पक्षी डोडो अत्यधिक संख्या में पाया जाता था। जब मारीशस पर हालैण्डवासियों का आधिपत्य हुआ तो उन्होंने डोडो का शिकार करना प्रारम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि 17वीं शताब्दी के अन्त तक इस पक्षी का मारीशस से एकदम लोप हो गया। आज डोडो का इस धरती पर कहीं कोई अता-पता नहीं है।

लगभग 1950 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का यह द्वीप मारीशस लाखों वर्षों तक मनुष्य की छाया तक से कोसों दूर था। चारों ओर घना जंगल था और यहीं डोडो रहता था। इसका शारीरिक विकास भी खूब हुआ था। हंस की तरह दिखने वाले इस पक्षी डोडो का वज़न लगभग 22-23 किलोग्राम तक होता था। इसका सीना फूला हुआ पर पंख नाम मात्र के थे। इसकी पूँछ का भाग नग्न था, परन्तु उसके थोड़ा ऊपर पीठ पर आगे की ओर 8-10 सफ़ेद बड़े-बड़े पंख होते थे। शरीर का शेष भाग सलेटी रंग का था। डोडो

62 चक, इलाहाबाद—211003 (उत्तर प्रदेश)

की चोंच काफी लम्बी थी और इसकी आँखों के पीछे तक खुलती थी। इसकी चोंच का ऊपरी हिस्सा नीचे की ओर मुड़ा होता था जो देखने में ऐसा लगता था मानो अलग से जोड़ दिया गया हो। इस शक्तिशाली चोंच की मदद से डोडो गूदेदार फलों को आसानी से कुतरता था, मछलियाँ पकड़ता था। किन्तु इसके पैर शरीर की तुलना में काफी छोटे होते थे और मुश्किल से ही शरीर का भार सहन कर सकते थे।

1505 ई० में जब पुर्तगालियों ने मारीशस की धरती पर कदम रखा तो इस सरल सीधे पक्षी की ओर उनका ध्यान गया और उन्होंने इसे 'डोडो' नाम दे दिया। पुर्तगाली भाषा में डोडो का अर्थ 'बुद्धू' होता है। वास्तव में भयभीत रहने वाला और शत्रु से अपने बचाव के तरीके से सर्वथा अनभिज्ञ यह पक्षी डोडो बुद्धू तो था ही। इस कारण पुर्तगाली आसानी से एक डंडे मात्र से ही इसका शिकार कर लेते थे। और तो और शिकारी को एक ही पक्षी के शिकार से लगभग 18-20 किलोग्राम स्वादिष्ट मांस आसानी से मिल जाता था। अतः वे डोडो को मार-मार कर खाने लगे।

पुर्तगालियों के बाद इस द्वीप पर आये डच और फ्रांसीसी और अपने साथ लाये कुत्ते, बिल्ली, बन्दर जैसे जानवर और साथ में बंदूकें। इस तरह इन्होंने डोडो पर पूरी तरह से धावा बोल दिया। आदमियों और उनके साथ आये जानवरों ने डोडो के अण्डों को भी खाना शुरू कर दिया। परिणामतः डोडो की संख्या निरन्तर कम होने लगीं, क्योंकि मादा डोडो एक बार में एक ही अण्डा देती थी इसलिए धीरे-धीरे इनकी संख्या इतनी कम होने लगी कि इनके अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया। और देखते-देखते ही डोडो विलुप्त हो गया।

वैज्ञानिकों को डोडो के बारे में अध्ययन करने या उसके बचाव का उपाय करने का अवसर ही नहीं मिला और डोडो विलुप्त हो गया। जानवरों के प्रति मानव के अत्याचार का यह अनूठा उदाहरण है। मात्र 175 वर्षों की अवधि में मानव ने एक प्राणी को अपनी भूख मिटाने के प्रयास में सदा-सर्वदा के लिए धरती से ही मिटा दिया।

अन्तिम जीवित डोडो को पक्षी प्रेमी **बेंजामिन हैरी** ने 1681 में देखा था। डोडो का सर्वप्रथम विवरण एवं चित्र 1601 में **डिवेरी** ने प्रस्तुत किया था। इनके बाद **सेबरी** ने डोडो के कई चित्र बनाए जिनमें से एक आज भी ब्रिटिश म्यूज़ियम में रखा हुआ है।

सोजियर नामक वैज्ञानिक को 1836 में कीचड़ में दबे पड़े डोडो के शरीर को कुछ हिस्से मिले। फिर तो इन हिस्सों की मदद से ही इसका अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के निष्कर्षों और सत्रहवीं सदी के चित्रों एवं विवरणों के आधार पर डोडो के चित्र का पुनः निर्माण किया गया। इस प्रकार डोडो को उसका वैज्ञानिक नाम —**रैफस क्यूकूलेटस** मरणोपरान्त मिला।

यहाँ एक बात और ध्यान देने की है और वह यह कि डोडो पक्षी **कालबेरिया** नामक वृक्षों के घने जंगलों में निवास करते थे और उनके बीजों को खाते थे। कालबेरिया के बीजों का बाह्य कवच अत्यधिक कड़ा होता था। इतना कड़ा कि आमतौर से वे अंकुरित नहीं होते थे। किन्तु डोडो के पेट में इन कड़े बीजों का उपचार हो जाता था और छिलका मुलायम हो जाता था। फिर मल के साथ जब ये उपचारित बीज बाहर आते थे उनका अंकुरण आसानी से हो जाता था।

जैसे-जैसे डोडो की संख्या कम होने लगी, **कालबेरिया** के वृक्षों की संख्या भी कम होने लगी, और अन्ततः डोडो के साथ ही **कालबेरिया** के वृक्ष भी समाप्त हो गये। यह बात दूसरी है कि वैज्ञानिकों ने **कालबेरिया** का एक बचा हुआ वृक्ष ढूंढ लिया है, पर यह वृक्ष भी कब तक जीवित रह सकेगा?

इस प्रकार जंगल और वन्यजीव एक दूसरे पर निर्भर हैं। एक के प्रभावित होने पर दूसरा भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। निर्णय हमें लेना है कि क्या हम अपनी प्रकृति और इसकी संपदा को सुरक्षित रखेंगे या अपनी लोलुप दृष्टि का शिकार हो जाने देंगे? आज यह वास्तविकता पूरी तरह से स्पष्ट हो चुकी है कि प्रकृति के साथ ही मानव का अपना अस्तित्व भी जुड़ा हुआ है। आइए अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए पशु-पक्षियों और वृक्षों-वनस्पतियों की रक्षा करें। □□

गंगा | अनिल श्रीवास्तव

गंगा !
वही भगीरथ वाली
एकदम निर्मल, पूज्य, पवित्र ।
निकली थी जो कभी
कठिन तपस्या से,
छोड़ा था जिसे ब्रह्मा ने
अपने कमण्डल से,
और रोककर शंकर ने जटा पर
उतारी थी धरती पर बूँद-बूँद;
भस्म होकर पड़े
भगीरथ के पुरखों को,
तर कर स्वर्ग जाने के लिए ।
देखा है तुमने उसे ?
उसी हिमालय की गोद से
आज भी निकलती है भागीरथी
एकदम स्वच्छ, पवित्र और तारने वाली ।
चलती है,
हँसती–खिलखिलाती
अपने कल-कल निनाद से,
चतुर्दिक संगीत भरती,
पर चीख़ पड़ती है
मैदानी क्षेत्र में उतरते ही,
जर्जर हो बिखर जाती है
उसकी सम्पूर्ण काया,
बदल कर एक मलिन नाले के रूप में,
नहीं रह जाता उसमें
कीचड़ के अलावा कुछ ।
तमाम शहरों के कूड़ा-कचरों से
संकीर्ण हो जाती है उसकी धारा
नहीं रह जाती बची
उसके अपने अस्तित्व की
एक भी बूंद ।
उसका वजूद बाकी रह जाता है सिर्फ़
कागज, चमड़ा, मदिरा मिलों के त्यागे गये
मैलों के रूप में ।
इसलिए आज
चिल्ला-चिल्लाकर रो रही है गंगा
और कह रही हैं
आज उसी भगीरथ से
हे भगीरथ !
कभी मैंने तेरे पुरखों को तारा था
आज तू मुझे तार
तपस्या कर पहुँचा दे वापस
इस सड़ियल, नरक भरे धरती के जीवन से
ब्रह्मा के कमण्डल में ।

डी-27, सेक्टर-20 नोएडा, गाज़ियाबाद–201301

यूरेनियम का विद्युत्-उत्पादन में योगदान | दिलीप भाटिया

भारत में यूरेनियम के प्रचुर भण्डार हैं । हमारे पास 70,000 टन यूरेनियम उपलब्ध है । इसका सबसे अच्छा, लाभकारी व शांतिमय उपयोग है— विद्युत-उत्पादन । परमाणु बिजलीघरों में यूरेनियम को यूरेनियम डाइऑक्साइड ईंधन रूप में काम में लाकर विद्युत-उत्पादन किया जाता है । यूरेनियम के तीन

अभियंता-एस ई० राजस्थान परमाणु बिजलीघर, अणुशक्ति–323303 (कोटा) राजस्थान

आइसोटोप होते हैं—यूरेनियम-234, यूरेनियम-235 यूरेनियम-238। प्राकृतिक यूरेनियम में 0.7 प्रतिशत यूरेनियम 235 होता है जो नाभिकीय प्रक्रिया में भाग लेकर विखण्डन क्रिया द्वारा उष्मा देता है व विद्युत-उत्पादन में निरन्तर काम में आता है। तारापुर राजस्थान, मद्रास व नरोरा परमाणु बिजलीघरों से 1465 मेगावाट विद्युत उत्पादन हो रहा है। भविष्य में 10,000 मेगावाट का लक्ष्य है, जो इस योगदान को सन् 2000 तक 10 प्रतिशत कर सकेगा। कम ईंधन, अधिक सुरक्षा, संतुलित व दोषहीन पर्यावरण, आत्मनिर्भरता व तकनीकी क्षमता, में कुछ ऐसे गुण हैं जो इस बहुमूल्य नाभिकीय ईंधन को हमारे लिए वरदान सिद्ध करते हैं व नाभिकीय ऊर्जा के महत्व को प्रभावशाली बनाते हैं।

ताप बिजलीघर की अपनी सीमाएँ व समस्याएँ हैं। सीमित भण्डार हैं कोयले के व एक सीमित क्षेत्र में ही स्थित हैं। ईंधन की मात्रा अधिक चाहिए। 3000 मेगावाट बिजली बनाने के लिए प्रतिदिन 20,000 टन कोयला चाहिए। इससे हानिकारक गैसें, प्रतिवर्ष 150,000 टन सल्फर डाइ ऑक्साइड, 75,000 टन नाइट्रोजन डाइऑक्साइड व असीमित मात्रा में कार्बन डाइ ऑक्साइड निकलेगी।

पन-बिजलीघर भी दोषरहित नहीं हैं। इसके लिए ईंधन की आवश्यकता प्रकृति पर निर्भर है। पन-बिजलीघर लगाने के लिए लोगों को विस्थापित करना होता है व पानी एक जगह भरा होने से बाढ़ का ख़तरा तो है ही मलेरिया व अन्य बीमारियाँ भी फैलती हैं।

बढ़ती हुई बिजली की आवश्यकता पूरी करने के लिए आज सर्वश्रेष्ठ व अत्यधिक सुरक्षित विकल्प यूरेनियम है। यूरेनियम का यह सर्वश्रेष्ठ सदुपयोग है। विकिरण, रेडियोधर्मिता व अन्य पहलुओं का पूरा ध्यान रखा जाता है व किसी भी परिस्थिति को सही करने के लिए आपात्कालीन प्रावधान व योजनाएँ हैं। पर्यावरण प्रयोगशाला व स्वास्थ्य भौतिकी विभाग इस बात का बराबर ध्याय रखता है कि पर्यावरण दूषित न हो व जनता व कर्मचारियों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर न हो। अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी द्वारा निर्धारित मापदण्डों का पालन किया जाता है।

विद्युत-उत्पादन के बाद अपशिष्ट ईंधन का भी उपयोग होता है। इस अपशिष्ट यूरेनियम से प्लूटोनियम निकालकर कई क्षेत्रों में काम में लिया जाता है। यूरेनियम के साथ प्लूटोनियम मिलाकर बनाया गया मिश्र ईंधन पुन: परमाणु बिजलीघर में काम में लाकर अधिक विद्युत-शक्ति प्राप्त की जा सकती है। फास्ट ब्रीडर रिएक्टर के लिए अनुसंधान व अन्य कार्यक्रमों के लिए भी इस प्लूटोनियम का उपयोग होता है। इस प्रकार यह यूरेनियम विद्युत-उत्पादन के बाद भी कई लाभकारी कार्यों में काम आता है।

यूरेनियम बहुत महत्वपूर्ण पदार्थ है। हमारी योजनाओं के लिए हमारे पास पर्याप्त यूरेनियम उपलब्ध है। मितव्ययिता से इसका उपयोग करके अधिकतम लक्ष्य को प्राप्त करना है व अपशिष्ट यूरेनियम का भी उपयोग करना है। हम आश्वस्त हैं, कि यूरेनियम विद्युत-उत्पादत में अपना योगदान देकर राष्ट्र की प्रगति में, देशवासियों के जीवन स्तर को उन्नत बनाने में **भाभा, नेहरू** के सपनों को साकार करने में समर्थ होगा व इस वैज्ञानिक उपलब्धि द्वारा विश्व में हम एक गौरवशाली कीर्ति स्थापित कर सकने में सफल होंगे।

□□

परिषद् का पृष्ठ

(1) विज्ञान परिषद् में 'विश्व स्वास्थ्य-दिवस' पर विचार-गोष्ठी

7 अप्रैल को विज्ञान परिषद् के व्याख्यान कक्ष में 'विश्व स्वास्थ्य दिवस' के अवसर पर एक विचार संगोष्ठी सम्पन्न हुई। वक्ताओं ने निरन्तर बिगड़ते पर्यावरण, संदूषित जल, विषैली वायु, भोज्य पदार्थों में मिलावट के कारण बढ़ते रोगों और स्वास्थ्य में गिरावट पर गहरी चिंता व्यक्त की।

विषय प्रवर्तन करते हुए 'विज्ञान' पत्रिका के संपादक **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** ने बढ़ते रोगों और गिरते स्वास्थ्य की एक झलक प्रस्तुत की और 'विज्ञान' के उन विभिन्न अंकों की चर्चा की जिनके माध्यम से

परिषद् ने समय-समय पर जन मानस में स्वास्थ्य के विषय में आम जानकारी देने का प्रयत्न किया है।

डॉ० सुप्रभात मुकर्जी ने धूम्रपान से होने वाले कैंसर और फेफड़े के रोगों की चर्चा की और इस बात पर बल दिया कि धूम्रपानियों को समझा-बुझा कर इस आदत को छोड़ने को प्रेरित किया जाये। **श्री मोहन पाण्डेय** ने दूध में पानी, काली मिर्च में पपीते के बीज, सरसों के बीजों में भरभंडा के बीज, हल्दी में घोड़े की लीद आदि मिलावटों की चर्चा की और लोगों को इससे सावधान रहने की अपील की।

डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने अपने अध्यक्षीय भाषण में खाँसी-बुखार से लेकर कैंसर जैसे जानलेवा रोगों की चर्चा की और इससे बचने के उपाय बताये। श्री मिश्र ने पानी उबाल कर और साफ़ कपड़े से छानकर पीने, सुबह शाम खुली हवा में टहलने, धूम्रपान और मदिरा के सेवन से बचने और साधारण व्यायाम पर ज़ोर दिया। ऐसा करके हम बिना लागत के स्वस्थ रह सकते हैं। आवश्यकता है इस बात को समझने और समझाने की।

इनके अतिरिक्त **डॉ० अशोक कुमार गुप्ता, श्री पुष्पेश कुमार पुजारी, श्री राजेश कुमार केसरी** ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

अन्त में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने उपस्थित सभी श्रोताओं को धन्यवाद दिया और आशा प्रगट की कि इस दिशा में सामूहिक प्रयासों के अतिरिक्त व्यक्तिगत स्तर पर भी हम बहुत कुछ कर सकते हैं।

(2) विज्ञान परिषद् में 'विश्व पृथ्वी दिवस' पर विचार-गोष्ठी

विज्ञान परिषद् में 22 अप्रैल को 'विश्व पृथ्वी-दिवस' के अवसर पर 'पृथ्वी बचाओ' विषय पर एक विचार-गोष्ठी सम्पन्न हुई। लगभग तीन घण्टे तक चलने वाली इस विचार गोष्ठी में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, शिक्षा विभाग और परिषद् के अन्तरंगियों सहित 25 वैज्ञानिकों ने भाग लिया। इसकी अध्यक्षता **डॉ० चन्द्र विजय चतुर्वेदी,** संचालन **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** और धन्यवाद ज्ञापन परिषद् के प्रधानमंत्री **डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी** ने किया। विचार-गोष्ठी का विषय प्रवेश करते हुए **प्रेमचन्द्र** श्रीवास्तव ने 'पृथ्वी दिवस' का इतिहास बताते यह कहा कि मानव के लिए धरती नहीं वरन् धरती के लिए मानव है। बोलने का काम बहुत हुआ, अब कुछ करके दिखाना चाहिए। समस्यायें जो रेखांकित हो चुकी हैं उनके समाधान स्थानीय स्तर पर मिलजुल कर ढूंढने चाहिए। **प्रो० पूर्णचन्द्र गुप्ता** ने बड़ी शक्तियों की साज़िश बताते हुए समस्याओं से बिना भयभीत हुए अपनी ज़रूरतों को सीमित करने पर ज़ोर दिया। **डॉ० शिवगोपाल मिश्र** ने बताया कि रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैव उर्वरकों को खेतों में डालना चाहिए। **डॉ० मुरारी मोहन वर्मा** ने भूमि के कटाव को रोककर भूमि संरक्षण पर बल दिया। **श्री दिनेशमणि** ने मिट्टी से भावनात्मक रूप से जुड़ने पर जोर दिया। **श्री अनिल कुमार शुक्ल** ने कहा कि छोटे-छोटे समूहों में गाँवों में जाकर कार्यक्रम करना चाहिए। व्यक्तिगत रूप से इस सम्बन्ध में हम जो भी कर सकते हैं उसे अवश्य करना चाहिए। **डॉ० सुप्रभात मुकर्जी** ने एक ऐसे प्रबन्धतन्त्र की आवश्यकता बताई जो भविष्य की विकास की योजनायें पर्यावरण को ध्यान में रखकर बनाये। **डॉ० चन्द्र विजय चतुर्वेदी** ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भारत की प्राचीन संस्कृति के पुनर्प्रतिष्ठापन पर बल देते हुए कहा कि अपने यहाँ खाद्यान्नों की पहले लगभग 700 किस्में थीं। अब लगभग 200 ही बची हैं। हमें खाद्यान्नों के बीजों के 'जर्म प्लाज़्म' को संरक्षित करने की आवश्यकता है। हमें लोक संस्कृति को बचाने का भी प्रयास करना होगा। उन्होंने यह भी कहा कि बुद्धिजीवियों को अपने प्रकोष्ठों से बाहर जाकर जनसामान्य से जुड़ना होगा जैसा **राजा जनक** ने हल चलाकर किया था।

इस संगोष्ठी में इन सबके अतिरिक्त **डॉ० आर० एस० डी० दुबे, सर्वश्री रमाशंकर शुक्ल, वीरेन्द्र कुमार सिंह, राजेश कुमार केसरी, अशोक कुमार, प्रमोद कुमार शुक्ल, पुष्पेश कुमार पुजारी, शैलेन्द्र कुमार** आदि ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए। □□

—प्रस्तुति : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान वार्ता | संकलन : डॉ० अरुण आर्य

(1) ट्यूबोपॉनिक्स : एक बहुमंजिला बग़ीचा

ऊसर कृषि के समान यह कम पानी में उगाया जाने वाला बग़ीचा है। इसमें पौधों को एक नली में उगाया जाता है। नली को मिट्टी से भरा जाता है और किनारों से काट कर छेद बनाये जाते हैं। हर छेद में एक पेड़ लगाया जाता है। इज्ररायली कृषि अनुसंधान के वोल्केनिक केन्द्र ने नली को अल्यूमिनियम की नली में बदल कर प्रयोग किये हैं।

1.2 से 2.4 मीटर लम्बी नली को पीट और ज्वालामुखी के लावा से भरा जाता है। जल एवं खाद को ऊपर से धीरे-धीरे गिराया जाता है। इसमें एक सुविधा यह भी है कि जो पानी एवं लवण ऊपर के पौधों को ज़रूरी नहीं होते, नीचे के पौधों को मिलते रहते हैं। वोल्केनिक केन्द्र, इज्ररायल में इस विधि से ककड़ियाँ, स्ट्राबेरी, बन्दगोभी आदि को उगाया गया है। टमाटर की उपज तो अत्यधिक संतोषप्रद हुयी है।

(2) ·········और वे घोंसला कैसे बनाती हैं ?

कहावत है कि जितनी तरह की चिड़ियाँ उतनी तरह के घोसले। जहाँ कुछ चिड़ियाँ खाली चट्टानों के ऊपर ही अपने अण्डे देती हैं वहीं दूसरी ओर है सफ़ाई के साथ बुना गया बया का घोसला। चिड़ियों पर पुस्तकें लिखने वालों ने हमें बताया है कि चिड़ियों में भी बुनकर, बढ़ई, सिलाई करने वाली, खुदाई करने वाली एवं डाकू चिड़ियाँ होती हैं।

बया हज़ारों घास या पाम (ताड़-खजूर) की पत्ती के टुकड़ों को चोंच और पैर की सहायता से बुनती हैं। टेलर चिड़ियाँ (**ओरथोटोमस सुटोरियस**) चौड़े पत्तों को एक सिरे से दूसरे सिरे तक जोड़ती है। हार्नबिल (**ब्यूसिरोटाइडी**) मादा चिड़िया किसी पेड़ के एक बड़े छेद में घुसती है, अपना घर बनाती है और छेद को बन्द कर लेती है, केवल एक छोटा सा सीधा छेद रहता है जहाँ से नर उसे खाना इत्यादि देता है।

कुछ चिड़ियाँ ऐसी होती हैं जो सदा दूसरों के छोड़े हुये घोसलों को अपना घर बनाती हैं। विभिन्न प्रकार की मैना (स्टूरनाइडी), कठफोड़वा के छोड़े घरों को वे अपना लेती हैं। कोयल (कुकूलाइडी) और कुछ दूसरी परजीवी चिड़ियाँ कभी अपना घर नहीं बनाती हैं, सदा दूसरों के घरों में अपने अण्डे देती हैं।

(3) पत्थर : धूम्रपान रोकने में सहायक

क्या आप धूम्रपान छोड़ने में सहायक पत्थर को प्राप्त करना चाहते हैं ? तो यह हालैण्ड के स्वास्थ्य विभाग द्वारा अनेक होटलों में प्रचलित है और आप इसे मात्र 12 रु० में प्राप्त कर सकते हैं।

स्वास्थ्य विभाग के अनुसार धूम्रपान करने वालों के दो समूह हैं—ओरल टाइप और टेक्टाइल टाइप। पत्थर केवल टेक्टाइल टाइपों के लोगों पर असर करता है। यह जब उनके हाथों में जाता है तो उनकी अंगुलियों को उसमें व्यस्त रखता है और आदमी को सिगरेट हाथ में लेने का समय ही नहीं मिलता। यह विधि सर्वप्रथम एक पुरातत्वशास्त्री ने खोजी, जिसे अपने कार्यस्थल पर एक विशेष आकृति वाला पत्थर मिला। इस पत्थर को वह हर समय अपने साथ रखता था। धीरे-धीरे उसकी सिगरेट पीने की आदत बहुत कम हो गई। देखने वाली बात यह है कि ये पत्थर दूसरे लोगों को कितना आकर्षित कर पाते हैं ?

(4) एफ्लाटॉक्सिन

कवक द्वारा उत्पन्न होने वाले ज़हरीले पदार्थों में आज एफ्लाटॉक्सिन्स का विशेष महत्व है। सर्वप्रथम 1960 में इंग्लैंड में टर्कियों (पक्षी) में एक बीमारी तीव्ररूप से फैली, जिससे लन्दन के 100 मील के घेरे में रहने

प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, एम० एस० विश्वविद्यालय, बड़ौदा, पिन—390002 (गुजरात)

वाली लगभग एक लाख टन टर्कियाँ मारी गईं। खोज करने पर ज्ञात हुआ कि मूँगफली के दाने, जो कि उन्हें खाने को दिये जाते थे, कुछ कवकों से प्रभावित थे। इसमें से मुख्य था, **एसपरजिलस फ्लेवस** नामक कवक। इसी से इस विषाक्त पदार्थ का नाम पड़ा एफ्लाटॉक्सिन (**एसपरजिलस फ्लेवस टॉक्सिन**)। इस पदार्थ को उत्पन्न करने वाले कवक हैं—**एसपरजिलस फ्लेवस**, **ए० पैरासिटिकस** और अन्य **एसपरजिलस** जातियाँ तथा अनेक **पेनिसिलियम** एवं **राइजोपस** जातियाँ।

अनेक कृषि उत्पाद तथा मूँगफली, बिनौला, मक्का, चावल, गेहूँ, सोयाबीन, नारियल, जौ, जई, ज्वार इत्यादि इस एफ्लाटॉक्सिन से दूषित पाये गये हैं। वस्तुतः विषाक्त पदार्थ उत्पन्न करने वाले कवक **एसपरजिलस फ्लेवस** एवं **ए० पैरासिटिकस**, जब भी परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं, अनेक पदार्थों पर वृद्धि की शक्ति रखते हैं।

(5) वायु-प्रदूषक पौधों को छोटा करते हैं

मनुष्य के समान पौधों पर भी प्रदूषण का विपरीत प्रभाव पड़ता है। यद्यपि कभी-कभी यह प्रभाव बाह्य रूप से दृष्टिगत नहीं होता, लेकिन यह पौधों की वृद्धि एवं चयापचय को प्रभावित करता है।

इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑव साइन्स, बम्बई के **डॉ० चाफेकर** एवं उनके सहयोगियों द्वारा किये गये प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि वायुमण्डल में गन्धक के ऑक्सीकारकों की उपस्थित से पौधों की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ा। उनका आकार छोटा हो गया, पत्तियाँ भी छोटी हो गईं एवं उनका भार भी कम हो गया। □□

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

ख़तरनाक है पान मसाला

रमेश दत्त शर्मा

[वैज्ञानिक परीक्षणों से यह भली-भाँति सिद्ध हो चुका है कि पान मसाला खाने की लत ख़तरनाक है और दिन भर में चार ग्राम से ज्यादा पान मसाला खाने से मुँह और गले का कैंसर हो सकता है। इसीलिए केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री **श्री नीलमणि राउत राय** ने फ़ैसला किया है कि पान मसालों के हर पैकेट पर चेतावनी छापना ज़रूरी होगा। —**संपादक**]

"कल्लू भाई की पसंद, मम्मी डैडी की पसंद, भइया-भाभी की पसंद, बच्चों की पसंद, दादा जी की पसंद, मास्टर जी की पसंद" जैसे विज्ञापन के अलावा अशोक कुमार, शम्मी कपूर और सईद जाफ़री तथा जलाल आगा जैसे कलाकारों के साथ रेडियो, दूरदर्शन और समाचार पत्रों में पान मसालों के विज्ञापनों ने हर घर में मुख-शुद्धि के इस जायक़ेदार तरीके को पहुँचा दिया है। एक मोटे अंदाज़ के मुताबिक पान मसाला करीब दो करोड़ लोगों के मुँह लग चुका है। हर साल करीब 300 करोड़ रुपये का पान मसाला बिक रहा है और खाड़ी के देशों में निर्यात किया जाता है।

पूरे देश में 20 से ज्यादा कंपनियाँ अलग-अलग नामों से पान मसाला बना-बेच रही हैं। इनमें से कुछ किस्म के मसाले मीठे हैं और कुछ सादे। संसद में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री नीलमणि राउत राय ने जानकारी दी कि पान मसाले के 255 नमूने जगह-जगह से लेकर जाँचे गए तो उनमें से 93 में मिलावट पाई गई। कुछ पान मसालों में मीठापन लाने के लिए सूखे छुहारों का चूरा मिलाया जाता है, जो हानिरहित है। लेकिन कई निर्माता इस मँहगी मिठास की जगह सैकेरिन मिलाकर मीठे पान मसाले बेचते हैं। कुछ पान मसालों में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक रंगों की मिलावट पकड़ी गई। चाँदी के वर्क का धोखा देने के लिए अल्युमिनियम की पत्तियाँ मिलाना तो आम

बी-38, कृषि विहार, नई दिल्ली—110048

है। यहाँ तक कि कुछ नमूनों में रंगी हुयी रेत भी पान मसाला कहकर बेची जा रही थी।

यों प्रयोगशाला में किए गए विश्लेषणों से पता चला है कि सादे पान मसालों में 80 प्रतिशत पिसी हुई सुपारी होती है और मीठे में 10 प्रतिशत। मीठे पान मसाले में सूखे छुहारों का चूरा 70 प्रतिशत तक मिलाया जाता है। कत्था दोनों में ही 10-10 प्रतिशत मिलाया जाता है और चूना एक-एक प्रतिशत। इसके अलावा 9 प्रतिशत सामग्री खुशबू और स्वाद के लिए मिलाई जाती है। इसमें दालचीनी, लौंग, इलायची और मेंथोल वगैरह हो सकते हैं।

मेंथोल मिलाते हैं मुँह में ठंडक-सी घोलने के लिए। अनुमान है कि मेंथोल मिलाने और पान मसाले की लत लग जाने में कोई सम्बन्ध हो सकता है। खराब गले को ठीक करने की तमाम गोलियों में और खाँसी के शर्बतों में मेंथोल मिलाया जाता है। पश्चिमी देशों में शरीर के प्रति किलोग्राम वज़न पर 0.02 मिलीग्राम मेंथोल खाद्य-पेय और दवाओं में मिलाने की अनुमति है जो 'अमेरिकी खाद्य विभाग' और 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' दोनों की सिफारिशों के अनुसार तय की गई है।

पान-तम्बाकू से पान मसाले तक कैंसर का जाल

इस तरह पान की पत्ती और तम्बाकू के सिवा पान मसाले में वे सब चीज़ें मिलाई जाती हैं जो पान के बीड़े में होती हैं। सुपारी चबाने और पान-तम्बाकू खाने के स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रभाव को लेकर हमारे देश में बम्बई के **डॉ० खनोलकर** के नेतृत्व में सन् 1944 से ही अनुसंधान किए जा रहे हैं। मुख के कैंसर से सुपारी और तम्बाकू का गहरा सम्बन्ध डॉ० खनोलकर के अलावा बम्बई की कैंसर अनुसंधानशाला की **डॉ० कमल रणदिवे** ने 1976 में और **डॉ० भिड़े** ने 1979 में भलीभाँति सिद्ध किया। मैनपुरी तम्बाकू और मुख-कैंसर के परस्पर-सम्बन्ध को आगरा में एस० एन० मेडिकल कॉलेज के **डॉ० पी० एन० वही** और **डॉ० उषा लूथरा** ने स्पष्ट किया था। कैंसर अनुसंधान की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था—आई० ए० आर० सी० ने भी इस बारे में सभी अनुसंधानों की समीक्षा करके वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाले हैं। पान-तम्बाकू खाने की आदतों का व्यापक सर्वेक्षण भी किया गया और मुँह और गले के कैंसर से पान-तम्बाकू चबाने की आदत का गहरा सम्बन्ध पाया गया। **डॉ० गिरि** और उनके सहयोगियों ने सन् 1987 में अपने प्रयोगों के नतीजे "कैंसर लेटर" नामक अनुसंधान पत्रिका में प्रकाशित किए। इनमें सिद्ध किया गया कि कत्था भी कैंसर पैदा करने का ख़तरा लिए हुए है।

आखिरकार ये पता कैसे चलता है कि कोई चीज़ कैंसरजनक होती है? इसके लिए चूहे और हैम्स्टर जैसे प्रयोगशालीय प्राणियों पर प्रयोग किए जाते हैं। कैंसर के रोगी में प्रभावित अंग की कोशिकाएँ बागी होकर बढ़ती चली जाती हैं, उनकी वृद्धि को रोकने वाली **जीन** काम करना बन्द कर देती है। सन् 1989 में "इंडियन जर्नल ऑव **मेडिकल** रिसर्च" के 90वें खण्ड के 131 वें पन्ने पर **डॉ० अध्वार्यु** और सहयोगियों का शोध-पत्र प्रकाशित हुआ है, जिसमें पान मसाले से मादा चीनी हैम्स्टर प्राणी की डिंबाशय-कोशिकाओं में गुणसूत्रों पर विपरीत प्रभाव पड़ने का विवरण है। केवल 1.11 मिलीग्राम पान मसाले ने, 3 घंटे में ही यह "जीनोटॉक्सिक" असर दिखाया। यह असर कत्था और सुपारी के "जीनोटॉक्सिक" प्रभाव से मिलता-जुलता है।

एक और प्रयोग चंडीगढ़ में "पोस्ट ग्रेजुएट इन्स्टीट्यूट ऑव मेडिकल साइंसेज़" के कान, नाक और गला विभाग में किया गया। यहाँ छः महीने तक एक दिन छोड़कर चूहों के मुँह के अन्दर पान मसाले का लेप किया गया। दो महीने बाद 21 चूहों में से तीन के मुँह के अन्दर की झिल्ली में कड़ी असामान्य परत पनप आई। 4 महीने बाद यह स्थिति और भी स्पष्ट हो गई और छः महीने बाद ज़्यादातर चूहों के मुँह के अंदर कैंसर से पहले की अवस्था पैदा हो गई थी।

पिछले कुछ वर्षों में मुँह के अंदर की झिल्ली के नीचे कैंसर पूर्व की परत बन जाने (सब म्यूकोसल फाइब्रोसिस) की घटनाओं में 10 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी

के बाद वैज्ञानिकों के कान खड़े हुए। सन् 1989 में **डॉ० बाली** और उनके सहयोगियों ने पान मसाला खाने वाले व्यक्तियों में सर्वेक्षण किए। उन्होंने उन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा। हल्की मात्रा में पान मसाला सेवन करने वाले, मध्यम और बेहद पान मसाला खाने वाले। मध्यम और भारी मात्रा में पान मसाला खाने वालों के मुँह में कैंसरपूर्व की विविध अवस्थाओं के लक्षण स्पष्ट रूप से पाए गए।

"नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑव न्यूट्रीशन", हैदराबाद में **डॉ० कल्पगम** और साथियों ने पान मसाला और सुपारी को अलग-अलग पानी में घोलकर **साल्मोनेला टाइफीमिनियम** नामक जीवाणु की कोशिकाओं पर इनका असर देखा। इससे नतीजा निकाला गया कि पान मसाला और सुपारी दोनों ही जीवाणु-कोशिकाओं में उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) पैदा करते हैं। सैकेरिन और कैंसर के परस्पर संबंध का सन्देह पैदा होते ही खाने-पीने की चीज़ों में पश्चिमी देशों में सैकेरिन मिलाने पर पाबंदी लगा दी गई थी। लेकिन हमारे देश में विविध खाद्य और पेय सामग्री में अवैध रूप से सैकेरिन का दुरुपयोग धड़ल्ले से हो रहा है। मीठे पान मसालों में भी कुछ निर्माता सैकेरिन मिला रहे हैं।

हालाँकि अभी अनुसंधान जारी है, लेकिन इतना तो तय है कि पान मसाला ज़्यादा खाने वाले कैंसर के चंगुल में फँस सकते हैं। इसलिए केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने तुरन्त कदम उठाकर सही समय पर सही फैसला किया है कि पान मसाले के हर डिब्बे पर ख़तरे की चेतावनी छापी जाय। दूरदर्शन पर पान मसालों के लुभावने विज्ञापनों पर पाबन्दी लगाई जाय। यह बताया जाय कि जो छोड़ न पाएँ वे दिन भर में ज़्यादा से ज़्यादा 4 ग्राम पान मसाला खायें, इससे ज़्यादा नहीं। पान मसाला खाने के बजाय सौंफ या इलायची खाने की आदतें डालें। सुपारी की ऐसी किस्में विकसित करने का भी सुझाव दिया गया है, जिसमें नुकसानदेह यौगिक "अरेकोलिन" की मात्रा कम हो। जब पौध-प्रजनक बिना कैफीन वाली कॉफी विकसित कर सकते हैं तो बिना "अरेकोलिन" वाली सुपारी और बिना निकोटिन वाली तम्बाकू भी निकाल सकते हैं।

क्या पान मसाला पर पूरी पाबंदी लगा दी जाय? यह व्यावहारिक नहीं होगा। बढ़ी कीमतों पर चोरी-छुपे बिकेगा। फिलहाल यही बेहतर होगा कि पान मसाले के ख़तरे लोगों को बताए जायें और समझाये जायें।

अब कोई मित्र या सम्बन्धी पान मसाले का डिब्बा आपकी तरफ बढ़ाकर लखनवी अन्दाज़ में कहे कि "शौक फरमाइए" तो आप मुस्कराकर हाथ जोड़ लीजिए, "माफ कीजिए, मैं पान मसाला नहीं खाता।" जानबूझकर ख़तरा क्यों मोल लिया जाय।

[इस्वा फीचर्स] □□

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

मलेरिया : जैव-पर्यावरण पद्धति द्वारा रोक-थाम

डॉ० आर० एन० यादव

मलेरिया संसार के सभी गरम देशों व उनके पास के क्षेत्रों के लिये एक चिंता का विषय बना हुआ है। इसमें सर्दी के साथ बुखार, कमज़ोरी, तिल्ली का बढ़ जाना, सिर दर्द, उल्टी आना इत्यादि लक्षण पाये जाते जाते हैं। मलेरिया इटैलियन भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है। मल+एरिया। इसका अर्थ है गंदी वायु। इस बुखार की प्रायः तीन अवस्थायें होती हैं। (1) सर्दी लगना, (2) तेज़ बुखार और (3) पसीना आना। मलेरिया **प्लैज्मोडियम** नामक परजीवी के मनुष्य के शरीर में प्रवेश के कारण होता है। यह

मलेरिया रिसर्च सेण्टर, शंकरगढ़, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

परजीवी, फाइलम प्रोटोज़ोआ, क्लास स्पोरोज़ोआ, ऑर्डर कोक्सीडाइडी, फैमिली प्लाज़्मोडिडी, जीनस **प्लैज्मोडियम** का है। इसकी चार प्रजातियाँ **वाइवेक्स, फेल्सीपेरम, मलेरी** व **ओवेल** होती हैं। **वाइवेक्स** से टरसियन, **फेल्सीपेरम** से मैलिगनेन्ट, **मलेरी** से क्वार्सन व **ओवेल** से ओवेल म्लेरिया होता है।

यह परजीवी एक मनुष्य से दूसरे में, मच्छर की एक जाति **एनाफिलीज़** के मादा मच्छर द्वारा रक्त चूसते समय जाता है। इसका सम्पूर्ण जीवन-चक्र दो मेज़बानों (होस्टों) पर पूरा होता है, जिनमें से एक मनुष्य और दूसरा मच्छर है। या फिर यों कहिये कि इसका अलैंगिक प्रजनन मनुष्य में और लैंगिक प्रजनन मच्छर में होता है। इस प्रकार लैंगिक और अलैंगिक प्रजनन का पीढ़ी दर पीढ़ी एकान्तरण होता है। इसे पीढ़ियों का एकान्तरण कहते हैं।

मलेरिया का इतिहास सत्तरहवीं सदी से प्रारम्भ होता है, एक यूरोपियन डॉक्टर ने दक्षिण अमेरिका के एक पेड़ की छाल को मलेरिया बुखार के उपचार के लिये प्रयोग किया। सन् 1638 में **काउन्टेस सिनकोना** इसी पेड़ की छाल से ठीक हुयीं और वह इसको अपने देश पेरू में ले गईं। उन्हीं के नाम पर इस पेड़ का नाम **सिनकोना** रखा गया। सन् 1820 में फ्रांस के औषधिविज्ञानियों **प्लेटियर व केवेन्चू** ने सिनकोना की छाल से दो एल्कोलाइड (क्यूनेन व सिनकोनिन) निकाले, जिनका मलेरिया में बहुत महत्व है। सन् 1881 में **लेवरन** ने **प्लैज्मोडियन मलेरी**, 1890 में **ग्रासी व फ्लेटी** ने **प्लैज्मोडियम वाइवेक्स,** 1897 में **वेल्च** ने **प्लैज्मोडियम फेल्सीपेरम** व सन् 1922 में **स्टीफेन** ने **प्लैज्मोडियम ओवेल** की खोज की। सन् 1897 में **रोनाल्ड रॉस** ने सिकन्दराबाद में सर्वप्रथम मलेरिया परजीवी को मादा **एनाफिलीज़** के पेट की दीवार पर सिस्ट के रूप में पनपते देखा। सन् 1898 में उन्होंने इसके जीवन-चक्र का अध्ययन किया और परजीवी को स्पोरोज्वाइट के रूप में मच्छर की लार-ग्रन्थि में दिखाया।

पोलमुलर के द्वारा सन् 1939 में डी० डी० टी० (डाइक्लोरो डाइफिनायल ट्राइक्लोरोइथेन) कीट नाशक खोजने के बाद मलेरिया नियन्त्रण का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। इसके काफ़ी अच्छे परिणाम निकले और सन् 1945 में सर्वप्रथम राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम (एन० एम० इ० पी०) वेनेज़ुयेला में शुरू हुआ। भारत में सन् 1953 में मलेरिया की रोकथाम के लिये एक कार्यक्रम चलाया गया, जिसे 'राष्ट्रीय मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम' कहा गया। इस कार्यक्रम के अच्छे परिणाम निकले। सन् 1955 में 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने इसे पूरे संसार में लागू करने की सलाह पर भारत सरकार ने सन् 1958 में 'राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम' की शुरुआत की। इसमें डी० डी० टी०, बी० एच० सी०, मैलाथियान के छिड़काव द्वारा मलेरिया की रोकथाम की गई। अतः धीरे-धीरे सन् 1965 तक मलेरिया लगभग समाप्त सा हो गया। उस वर्ष पूरे देश में लगभग एक लाख व्यक्ति ही मलेरिया के रोगी थे और एक भी मनुष्य की मृत्यु मलेरिया से नहीं हुयी। उस समय यह सोचा जाने लगा कि अब मलेरिया जन-स्वास्थ्य की चिंताजनक समस्या नहीं है परन्तु बाद में यह रोग फिर से बढ़ना शुरू हुआ और उपरोक्त कार्यक्रम को 'मोडीफाइड प्लान ऑव ऑपरेशन' (एम० पी० ओ०) के रूप में एक अप्रैल सन् 1977 में बदल दिया गया, जिसके तहत आज तक मलेरिया नियन्त्रण सरकार द्वारा कराया जा रहा है। मलेरिया फिर से क्यों बढ़ा इसके मुख्य कारण इस प्रकार हैं—

(1) मच्छरों में कीटनाशक दवाओं के विरुद्ध प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती जा रही है और कीटनाशक औषधियाँ मच्छरों को मारने में असफल होती जा रही हैं।

(2) तीन दशकों से चले आ रहे कीटनाशी दवाओं के छिड़काव से लोग तंग आ गये तथा इसके प्रति संदेह व सामाजिक अस्वीकृति बढ़ने लगी।

(3) मलेरिया परजीवी में भी मलेरिया नियन्त्रक दवाओं के विरुद्ध प्रतिरोधक शक्ति बढ़ने लगी है।

(4) मच्छरों की आदतों में बदलाव।

अब मलेरिया नियन्त्रण की समस्या के लिये उपरोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुये कुछ नये तरीकों की तलाश की गई है। ऐसे तरीके जिनसे हमारा पर्यावरण भी सुरक्षित रहे, रोकथाम के उपाय सस्ते हों, समाज द्वारा स्वीकार्य हों, सरलता से लागू हो सकें, सब जगह उपयोगी हों, सामाजिक स्थिति से जुड़े हों और उपाय स्थानीय तौर पर उपलब्ध व उपयुक्त हों। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये मलेरिया अनुसंधान केन्द्र के निदेशक **डॉ० वी० पी० शर्मा** ने एक ऐसी रणनीति तैयार की है, जिसमें उन सभी सम्भव उपायों को एकत्र किया गया है, जो मलेरिया नियंत्रण में सहायक हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में भी उपयोगी हैं। यह नई पद्धति जैव-पर्यावरण नियन्त्रण पद्धति कहलाती है। इसमें सुझाये गये उपाय इस प्रकार हैं—

(1) मच्छरों के उत्पत्ति स्रोतों को कम करना—मच्छर की उत्पत्ति पानी में होती है। मच्छर पानी में ही अण्डे देते हैं। अण्डे से लारवा, लारवा से प्यूपा और प्यूपा से मच्छर बनता है। इसकी प्यूपा तक की अवस्थायें पानी में ही होती है। अतः पानी के अनावश्यक संचय को दूर करने से मच्छरों की संख्या में कमी होती है। इसके लिये नियमित रूप से जल-पात्रों को खाली करना, रुके हुये पानी की निकासी करना, पानी की टंकियों को ठीक प्रकार से बन्द रखना तथा इसके अलावा पृथ्वी को समतल करना, अनावश्यक पानी को गलियों में बहने से रोकने के लिये सोकपिट (शोषक-गर्त) बनाना, पाइप से पानी रिसने या निकलने से रोकने के लिये उसकी मरम्मत करना इत्यादि इसी के अन्तर्गत आते हैं। उन स्थानों पर जहाँ यह सब सम्भव न हो (प्रयोग न किये जाने वाले कुँओं), वहाँ पर पॉलिस्टाइरिन के दानों का प्रयोग करना चाहिये। इसके प्रयोग से मच्छर पानी के सम्पर्क में नहीं पहुँच पाते हैं, जिसके फलस्वरूप वह अण्डे नहीं दे पाते और लारवा इत्यादि मर जाते हैं।

(2) जैव-नियन्त्रण—इस विधि में मच्छरों को उनके प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा नष्ट कराया जाता है। मच्छरों के प्राकृतिक शत्रु तीन प्रकार के होते हैं, जिन्हें पैरासाइट, प्रिडेटर व पैथोजेन कहते हैं। इसमें मछलियाँ, फफूँदी और बग का प्रयोग किया जाता है। कुछ विशेष प्रकार की मछलियाँ जैसे **गप्पी, गम्बूसिया और कोलिसा** मच्छरों के लार्वों का बड़ी तीव्रता से भक्षण करती हैं। **बैसिलस स्फेरीकस** और **बैसिलस थूरिंजिसिस** जीवाणु मच्छरों की संख्या में वृद्धि को रोकने में काफ़ी सहायक हैं।

(3) रोगियों का पता लगाकर उनका उपचार-रोग का पता लगाने के लिये खून की जाँच आवश्यक है इसलिये रोगियों का पता लगाकर उनकी रक्त पट्टियाँ बनाकर जाँच करना तथा रोगियों का तत्काल उपचार करना चाहिये। इससे मरीज़ को आराम मिलता है तथा मलेरिया परजीवी का नाश तथा स्रोत समाप्त होता है। मलेरिया उपचार के कई तरीके हैं, जिन्हें प्रिज़म्टिव, रेडीकल, सप्रेसिव, एन्टीरिलैप्स तथा क्लीनीकल (क्यूरेटिव) कहते हैं। इसमें क्लोरोक्यून, पेरीमिथामाइन, क्यूनैन, मेपाकाइन, प्राइमाक्यून तथा मेटाकेल्फिन इत्यादि दवाइयों का प्रयोग किया जाता है।

(4) स्वास्थ्य शिक्षा—यह अज्ञान और किसी रोग के प्रति अंधविश्वास को दूर करता है और वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास करता है। इससे रोग के प्रति उदासीनता दूर होती है। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता आती है और सामुदायिक सहयोग मिलता है। इसलिये स्वास्थ्य शिक्षा इसका एक प्रमुख अंग है। इससे स्वास्थ्य के साथ-साथ पर्यावरण में भी सुधार आता है। बीमारियाँ कम होती हैं और खुशहाली आती है।

(5) पर्यावरण में सुधार—किसी समुदाय के स्वास्थ्य पर उसके पर्यावरण का बहुत असर पड़ता है। स्वच्छ और प्रदूषण रहित वातावरण स्थाई और सुदीर्घकाल तक लाभ देने वाले निवेश हैं। ग्रामीण जीवन के स्तर में सुधार करने के लिये शोषक गर्त (सोक पिट), धूम रहित चूल्हे, बायोगैस संयन्त्र तथा

सूर्य की ऊष्मा वाले कुकर के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया जाता है। गाँव वालों को दलदली या जलयुक्त भूमि में **यूकेलिप्टस** जैसे पेड़ लगाने के लिये प्रेरित करना चाहिये, जिससे पेड़ों की जड़ें पानी सोख लें। पेड़ों से वातावरण स्वच्छ रहता है और हरियाली छाई रहती है। इसके अतिरिक्त सामुदायिक शौचालय, गन्दे पानी की नालियों द्वारा निकासी करने से पर्यावरण में निश्चित रूप से सुधार होता है।

(6) सामुदायिक सहयोग—स्वास्थ्य कार्यक्रम के संचालन में जनता द्वारा सक्रिय भाग लेना बहुत ज़रूरी है, क्योंकि यह कार्यक्रम जनसमुदाय के लिये होते हैं। जनशक्ति के द्वारा और आर्थिक साधनों का प्रयोग करके मच्छरों की रोकथाम आसानी से की जा सकती है। पर्यावरण में सुधार, मच्छरों के उत्पत्ति स्थानों को कम करना, जैव-नियंत्रण, श्रमदान, सामाजिक वानिकी में श्रमदान जैसे उपाय कार्यक्रम में बहुत कुछ मदद कर सकते हैं। आर्थिक सहायता देकर, रक्त की जाँच कराने में सामने आकर, अपने चारों तरफ सफाई रखकर वातावरण को शुद्ध बना सकते हैं।

(7) अन्तर्विभागीय समन्वय—किसी कार्यक्रम की सफलता का मूल-मंत्र सामूहिक रूप से कार्य करना है। मत्स्य विभाग लार्वाभक्षी मछली का पालन कर, वन विभाग दलदली व जलयुक्त भूमि में पेड़ लगवाकर, गैर परम्परागत ऊर्जा विभाग धूमरहित चूल्हा, सोलर कुकर व बायोगैस संयंत्र लगाकर, सिंचाई विभाग व्यवस्थित नालियाँ बनवाकर अनावश्यक पानी को रोककर, रेडियो और दूर-दर्शन विभाग स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा मलेरिया की रोकथाम में काफ़ी मदद कर सकते हैं।

(8) आय बढ़ाने की परियोजनायें—किसी कार्य-क्रम को चलाने के लिये धन की आवश्यकता होती है। धन के अभाव में बहुत-सी योजनायें सफल नहीं हो पाती हैं और लोगों में उदासीनता आ जाती है। इस कार्यक्रम में आय उत्पन्न करने वाली परियोजनाओं को भी बढ़ावा दिया गया है, जिससे लोगों में इसके प्रति रुचि बनी रहे साथ ही उन्हें आर्थिक प्रोत्साहन भी मिलता रहे। इसमें मछली उत्पादन, वृक्षारोपण और हथकरघा उद्योग को भी प्रोत्साहन दिया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त तरीकों के द्वारा मलेरिया की रोकथाम, ग्रामीण विकास, पर्यावरण में सुधार किया जा सकता है। यह विधि बहुत ही सस्ती व सरल, पर्यावरण के प्रदूषण से दूर, स्थाई, ग्रामीण विकास में बढ़ावा देने वाली, रोज़गार के अवसर सुलभ कराने वाली, समाज द्वारा स्वीकार्य, वातावरण को स्वस्थ व रमणीक बनाने वाली है। □□

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

भारतीय मुद्राओं में वन्य प्राणी

सतीश कुमार शर्मा

भारत में अनेकानेक वन्य प्राणी सदियों से मुद्रा कमाने के स्रोत के रूप में विख्यात रहे हैं। कस्तूरी, हाथीदाँत, मृगछाला, बाघम्बर, गैंडे के सींग आदि ऐसे उत्पाद हैं जो वन्य प्राणियों से प्राप्त किये जाते रहे हैं तथा बहुत ऊँचे दामों पर बेचे जाते रहे हैं। वन्य प्राणियों का एक रूप 'मुद्रा' उत्पादक रहा है तो दूसरा स्वयं 'मुद्रा' या 'मुद्रा चिह्न' भी रहा है।

भारतीय इतिहास में चमड़े के सिक्कों का ज़िक्र आता है। चमड़ा एक प्राणि-उत्पाद है। लेकिन आश्चर्य-जनक बात तो यह है कि प्राचीन भारत में एक ऐसा भी प्राणी रहा है जो सिक्कों के रूप में प्रचलन में रहा है। यह प्राणी है – कौड़ी, जिसे अंग्रेज़ी भाषा में साय-प्रिया (**Cypraea**) कहा जाता है। यह अपृष्ठवंशी प्राणी मोलास्का (**Mollusca**) समुदाय का है। इस

आर्बोरीकल्चरिस्ट, विश्ववानिकी उद्यान, झालना डूंगरी, जयपुर—302004, राजस्थान

समुदाय के तीन प्राणी—कौड़ी, शंख तथा सीपी का सदियों से धार्मिक, आर्थिक व औषधीय महत्त्व रहा है। सीपियों की कुछ प्रजातियाँ अपने मोती-उत्पादक गुण के कारण तथा शंख एक वाद्य उपकरण की तरह भारतीय मन्दिरों में उपयोग होते रहे हैं। प्राचीन भारत में युद्धों की शुरुआत शंख फूँकने के साथ की जाती थी। 'महाभारत' के धर्म-युद्ध में शंख का उपयोग किसी से छुपा हुआ नहीं है।

कौड़ी मौलस्का समुदाय के गैस्टोपोडा वर्ग का समुद्री वन्य प्राणी है। इस प्राणी की कई प्रजातियाँ वैज्ञानिकों को ज्ञात हो चुकी हैं। ये प्राणी भारतीय तथा पैसिफिक समुद्रों के कोरल रीफ (**Coral reefs**) के बीच पाये जाते हैं। इसका कैल्शियम कार्बोनेट का बना कवच चक्करदार होता है, जिसकी सतह चिकनी तथा चमकीली होती है। कौड़ी का कवच न केवल शृंगार कार्यों में बल्कि प्राचीन काल में भारतवर्ष में मुद्रा के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता था। 'प्राणि-मुद्रा' (**Animal Coin**) का यह सुन्दर उदाहरण है।

कालान्तर में कौड़ी का मुद्रा के रूप में व्यापारिक चलन बंद हो गया, लेकिन धार्मिक कार्यों में चलन ज्यों का त्यों बना रहा। हिन्दू परिवारों में विवाह-शादियों व अन्य धार्मिक कार्यों के अवसर पर आज भी कौड़ी का सांस्कारिक लेन-देन (**Ritual payment**) होता है। हालाँकि आज समाज में कौड़ी का व्यापारिक लेन देन बन्द है तथापि 'दो कौड़ी का होना'; 'कौड़ी के मौल', कौड़ी-कौड़ी कर जोड़ना', 'कौड़ी-कौड़ी को तरसना' आदि अनेक मुहावरे समाज तथा साहित्य में सदियों से चले आ रहे हैं जो कौड़ी के मुद्रा रूप को अनायास ही उजागर करते हैं।

आधुनिक युग धातु मुद्रा का युग है। आज भी वन्य-प्राणियों का मुद्रा रूप परिवर्तित रूप में बरकरार है। वर्तमान में वन्य प्राणियों को 'मुद्रा चिह्नों' के रूप में मुद्राओं पर अंकित किया जाता है। उदाहरणस्वरूप कुछ भारतीय दस रूपये के काग़ज़ी नोटों पर मोर तथा हरिण अंकित किये जाते हैं। ये दोनों ही वन्यप्राणी 'वन्य-जीव अधिनियम 1972' की अनुसूची प्रथम में दर्ज हैं। सरकार द्वारा मोर को हमारा 'राष्ट्रीय पक्षी' भी घोषित किया जा चुका है।

अशोक चिन्ह, जो हमारा राष्ट्रीय चिन्ह भी है, में भारतीय सिंह की त्रिमूर्ति अंकित दृष्टिगोचर होती है। यह चिन्ह सभी भारतीय नोटों तथा सिक्कों पर अंकित किया जाता है। सिंह भी वन्य प्राणियों की प्रथम अनुसूची का जीव है। एक ज़माना था जब इस चिन्ह में अंकित सिंह भारत में दूर-दूर तक घास के मैदानों में निवास करता था। कालान्तर में इस प्राणी को बुरी तरह नष्ट किया गया जिसका नतीजा यह निकला कि यह सिमटता हुआ गुजरात प्रान्त के गिर वनों तक ही सीमित रह गया। आज यह एशिया में एशियाई सिंह का अंतिम निवास शेष रह गया है।

भारतीय रिजर्व बैंक ने अपने 'लोगो' में एक ताड़ के पास खड़े बाघ को चुना है। रिजर्व बैंक के जारी सभी भारतीय काग़ज़ी नोटों में यह 'लोगो' अंकित किया जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक की स्वर्ण जयन्ती (1935-85) के अवसर पर जारी 50 पैसे के सिक्के में भी 'लोगो' को अंकित किया गया है। कुछ भारतीय दो रुपये के कागज़ी नोटों पर भी बाघ को विशेष रूप से चित्रित किया गया है। स्मरण रहे बाघ न केवल हमारा राष्ट्रीय पशु है बल्कि वन्य प्राणी अधिनियम की अनुसूची प्रथम का सदस्य भी है। विलुप्तीकरण के ख़तरे से घिरे इस प्राणी को बचाने के लिये 16 प्रमुख बाघ आवासों में 'बाघ परियोजना' चलाई जा रही है।

हाल ही में 50 पैसे के सिक्के में भारतीय गैंडे (**Rhinoceros unicornis**) को भी प्रदर्शित किया गया है। **काज़ीरंगा** तथा **मानस** अभ्यारण्यों की यह सुन्दर धरोहर भी प्रथम अनुसूची में स्थान पा चुकी है। यह निरीह प्राणी अपनी नाक पर स्थित 'सींग' के कथित महत्त्व के कारण मारा जाता रहा है। एक ज़माना था जब यह प्राणी भारत में दूर-दूर तक पाया जाता था। **शहंशाह बाबर** द्वारा उत्तरी भारत में गैंडे मारने के प्रमाण हैं लेकिन आज यह प्राणी पूर्वी भारत में बहुत छोटे से क्षेत्र में सिमट कर रह गया है।

आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस प्राणी को बचाने की मुहिम छिड़ी हुई है।

सरकार द्वारा अभी तक अनुसूची प्रथम के कुछ ही वन्य प्राणियों को मुद्राओं में चित्रित किया गया है। जनसाधारण को मुद्राओं पर वन्य प्राणियों के चित्रांकन का उद्देश्य समझना चाहिये। वन्य प्राणियों के महत्त्व को समझ कर इनके संरक्षण तथा संवर्धन हेतु सकारात्मक भूमिका निभाते रहें ताकि हमारा प्राकृतिक संतुलन सुदूर भविष्य तक कायम रह सके एवं इस देश की भावी पीढ़ियाँ ही नहीं, सारे संसार में मानव सुखपूर्वक रह सकें। □□

कैंसर और कैंसरकारी पदार्थ

डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय

कैंसर अथवा अर्बुद कोई नवीन व्याधि नहीं है। इसका सम्बन्ध मानव के साथ पुराकाल से ही रहा है तथा इस संबंध में प्राचीन मिस्र के सम्राटों और उनके संबंधियों के शवों (ममी) का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि कुछ की मृत्यु "ब्रेन ट्यूमर" के हो जाने के कारण हुयी थी।

कैंसर शब्द ग्रीक भाषा का है और इसका अर्थ केकड़ा होता है। कैंसर के, केकड़े की भाँति धीरे-धीरे शरीर में बढ़ने अथवा गतिमान होने के कारण ही इस व्याधि का नाम कैंसर पड़ा है। यह तथ्य इस बात से और भी स्पष्ट हो जाता है, जब प्राचीन ग्रीक (यूनानी) चिकित्साचार्यों के प्रचलित नुस्खे "इस रोग में केकड़े का सूप प्रभावशाली उपचार है" की चर्चा की ओर ध्यान जाता है इसी भाँति की अवधारणा ईरान में भी प्रचलित थी और यह निश्चित रूप से यूनानियों के संपर्क में, ईरानियों के आने के कारण हुयी होगी। पर इन सभी वर्णनों में कैंसर का कोई वैज्ञानिक वर्णन अथवा विवरण प्राप्त नहीं होता।

भारत की प्राचीन शल्य-चिकित्सा-पद्धति के आचार्य सुश्रुत की संहिता के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कैंसर के वैज्ञानिक अध्ययन का श्रेय महर्षि सुश्रुत को दिया जाना चाहिए। प्रस्तुत हैं उनके कुछ श्लोक—

"गात्र प्रदेशे क्व त्रिदेव दोषः, सम्मूर्च्छिता मांसमभिप्रदूष्य। वृतं स्थिर मन्दरुजं महान्तमनल्प मूलं चिर वृद्धय पाकम।। कुर्वन्त मांसोपचयं तु शोकं, तदर्बुद' शास्त्रविदो वदन्ति। वातेन पित्तेन कफेन चापि, रक्तेन मांसेन च मेदसा च।।

[सु० स० नि० 13, 14]

"शरीर के किसी भी प्रदेश में बढ़े हुये वातादि दोष मांस को दूषित करके गोल, स्थिर, अल्पपीड़ायुक्त, बड़ा गम्भीर धातुओं में फैला हुआ, धीरे-धीरे बनने वाला, कभी न पकने वाला, और मांस के उपचय (वृद्धि) से युक्त ऐसे शोक को पैदा करते हैं। आयुर्वेदशास्त्र के ज्ञाता विद्वान इस रोग को अर्बुद कहते हैं।"

इसी प्रकार उन्होंने रक्तार्बुद (रक्त-कैंसर), अध्य अर्बुद (मेटास्टेसिस), द्विर अर्बुद (मेटास्टेसिस के परिणाम स्वरूप शरीर में उसी प्रकार के ट्यूमर का उत्पन्न होना) तथा नासिका के कैंसर की भी चर्चा की है।

आज यह मान्य तथ्य है कि कैंसर अथवा "नियोप्लाज़्मा" शरीर के किसी भाग में उत्पन्न हुये प्रारम्भिक अवस्था के ट्यूमर की अनियंत्रित वृद्धि का परिणाम है। कोशिकायें अपनी वृद्धि का नियंत्रण खो बैठती हैं और इस जैव रसायनिक प्रक्रिया के फलस्वरूप ट्यूमर लगातार बढ़ता जाता है। कैंसर की प्रारम्भिक अवस्था में कोई बाह्य लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते और न

संपादक, 'इण्डियन जनरल ऑफ कैंसर एण्ड बायलोजिकल रिसर्च", "विज्ञान", परिसर कोठी काके बाबू, देवकाली मार्ग, फैज़ाबाद—224001, उत्तर प्रदेश

कोई पीड़ा ही होती है। इसी कारण प्रारम्भिक अवस्था में इसका परीक्षण कठिन होता है।

कैंसर की वृद्धि हमारी सामाजिक व्यवस्था और पर्यावरण से जुड़ी है। जब खाद्य पदार्थों में परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से अनेक रंग आदि मिलाये जाते हैं तथा कारखानों द्वारा वातावरण को प्रदूषित किया जा रहा है, तब कैंसर ऐसे रोग की वृद्धि का होना सहज है। यदि संक्षेप में, और दूसरे शब्दों में कहा जाये तो कैंसर की वृद्धि आधुनिकता की वृद्धि से संयुक्त है।

कैंसर-वैज्ञानिकों की शब्दावली के अनुसार वे पदार्थ जो स्वतः कैंसर को शरीर में उत्पन्न करने में सक्षम हैं, उन्हें **"स्वतः कैंसरकारी" (सालेटरी कारसिनोजेन)** तथा जो स्वतः इस कार्य को संपादित करने में सक्षम नहीं है पर एक **"स्वतः कैंसरकारी"** रसायन की अति सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित होने पर कैंसर उत्पन्न करते हैं, उन्हें **सह-कैंसरकारी (को-कारसिनोजन)** कहा जाता है।

दोनों प्रकार के कैंसरकारी तत्व "मानव निर्मित" और "प्रकृति-निर्मित" हो सकते हैं। पर मानव के शरीर में उत्पन्न होने वाले अन्तःस्रावी हारमोन्स और अन्य रसायन भी कैंसर उत्पन्न करते हैं।

मानव शरीर में कैंसर अधिकांशतः बाह्य "मानव निर्मित" तथा "प्रकृति-निर्मित" कैंसरकारी पदार्थों के प्रभाव से होता है। इस संदर्भ में फेफड़े का कैंसर और "धूम्रपान", चाहे वह सिगरेट, बीड़ी, सिगार, चुरुट या अन्य किसी भाँति से हो, का घनिष्ट संबंध है। यहाँ तक कि सिगरेट आदि पीने वालों के अगल-बगल बैठे लोग भी इसके कुप्रभाव से मुक्त नहीं रह सकते। गर्भिणी मातायें यदि सिगरेट बीड़ी आदि पीती हैं तो इसका दुष्प्रभाव उनके गर्भस्थ शिशुओं पर भी पड़ता है, यह वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा सिद्ध हो चुका है। आज यह सर्वमान्य तथ्य है कि 80% फेफड़े का कैंसर "धूम्रपान" के दुष्प्रभाव का परिणाम है।

द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान के दो नगरों— हिरोशिमा एवं नागासाकी पर गिराये गये अणुबमों द्वारा उत्पन्न विकिरण (रेडिऐशन) का परिणाम है कि आज भी जापानियों में अन्य प्रकार के कैंसरों की अपेक्षा पेट का कैंसर सर्वाधिक पाया जाता है। इस प्रकार के कैंसर की अधिकता बाह्य पदार्थों (विकिरण) द्वारा शरीर में कैंसर उत्पन्न करने का एक अन्य उदाहरण है।

दक्षिणी एशिया के देश जिनमें, थाईलैण्ड, इन्डोनेशिया और फिलीपीन्स प्रमुख हैं, में मुख्य रूप से चावल मुख्य आहार है। इस चावल में वर्षा काल में एक विशेष प्रकार की फफूँदी, जो **एस्परजिलस** परिवार की है, आक्रमण करती है तथा कैंसरकारी रसायन "ऐफ्लाटाक्सिनों" को उत्पन्न करती है। ये "ऐफ्लाटाक्सिन" अनेक स्वरूपों तथा किसमों की होती हैं और उन देशों के वासियों के यकृत को प्रभावित कर इसी अंग का कैंसर उत्पन्न करती हैं। भारत के मुख्य रूप से चावल का आहार करने वाले क्षेत्र भी इस फफूँदी के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। यह फफूँदी, मात्र चावल ही नहीं वरन्, काजू, मूँगफली तथा बादाम को भी प्रभावित करती है। अनेक देशों में इस फफूँदी के दुष्प्रभावों का (मानव एवं पशुओं पर) विस्तृत अध्ययन हुआ है। कैंसरकारी पदार्थों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी में वे **भौतिक कैंसरकारी तत्व** हैं, जो मानव के अंगों में इस रोग की उत्पत्ति करते हैं। इसी वर्ग में पराकासनी किरणें, एक्सरे तथा अन्य प्रकार के रेडियेशन्स अथवा रेडियोधर्मी तत्व आते हैं। इन तत्वों के कारखानों में कार्यरत मजदूर अधिकांशतः कैंसर के ग्रास होते हैं।

नाक का कैंसर भी व्यवसायजन्य होता है— इसका कारण है बुरादा। इसके नाक में जाकर वहाँ की त्वचा पर उत्पन्न प्रभाव के कारण ही नाक का कैंसर होता है।

इसी प्रकार "मोनाजाइट" सैण्ड तथा "एस्बेसटॉस" के उत्पादन में लगे कार्मिकों को रक्त का कैंसर एवं फेफड़े का कैंसर होने की संभावना अधिक रहती है।

द्वितीय श्रेणी में आने वाले **रासायनिक-कैंसरकारी** पदार्थों की यदि गणना की जाये तो इनकी संख्या

निश्चित रूप से 300 से कहीं अधिक होगी। ये कैंसरकारी पदार्थ कारखानों, प्रयोगशालाओं में तो निर्मित होते ही हैं, प्रकृति में भी इनका निर्माण होता है। सर्वप्रथम यहाँ पर कारखानों, फैक्ट्रियों में निर्मित होने वाले **स्वतः कैंसरकारी पदार्थों** की चर्चा की जायेगी। इस वर्ग में अनेक प्रकार के नाइट्रेट्स, सल्फ़ेट्स सलफर-मस्टर्ड, सलफोनेट्स, अनेक प्रकार की ऐली-फैटिक/एरोमेटिक अमीन्स, एमाइड्स, ऐजो-डाइज, पाली एरोमैटिने हाइड्रो कार्बन्स, नाइट्रो-कम्पाउण्ड्स, हैलोजिनेटेड पदार्थ, यूरिया, थायोयूरिया, अनेकानेक प्रकार के स्वीटनर्स (सैकरीन), साइक्लामेट्स, पेनिसिलीन, इन्सेक्टीसाइड्स, हर्वीसाइड्स तथा दवायें जैसे क्षय-रोग के उपचार में आने वाली "आइसोनिया जिड" आदि आती हैं।

कारखानों में उत्पन्न होने वाले **सह-कैंसरकारी पदार्थों** में डिटर्जेन्ट्स, ट्वीन-60 एन्थ्रालीन, कुछ विशेष प्रकार की वैक्स तथा फ़ेनॉल और उनके अनेक यौगिक आते हैं। यहीं पर कारबोलिक सोपों के अत्यधिक प्रयोग और इनके कैंसरकारी गुणों का ध्यान जब आता है तो एक प्रश्न सहज ही उठता है कि इस प्रकार के साबुनों को प्रयोग में लाने का क्या औचित्य है? प्रकृति में व्याप्त अनेक वनस्पतियों से स्वतः कैंसरकारी एल्केलायड्स तो प्राप्त हुये ही हैं, यह सूची बिना एफ्लाटाक्सिन्स की चर्चा के अधूरी रहती। इन्हीं एफ्लाटाक्सिन्स के घातक प्रभाव के कारण मुर्गियों में प्रसिद्ध "टर्की डिज़ीज" हुयी थी।

"**सह-कैंसरकारी**" पदार्थों का सर्वप्रथम प्रभाव "क्रोटॉन ऑयल" में पाया गया था। धीरे-धीरे जब यह स्पष्ट हो गया कि क्रोटॉन ऑयल जो कि भारत और अफ्रीका में उत्पन्न होने वाले **क्रोटॉन टिगलियस यूफोरबिया** परिवार में "फोरवोल" नामक डाइटरपीन के अनेक फैटी एसिड डिरेवेटिवों के कारण है, तो **यूफोरबिया** परिवार का विस्तृत अध्ययन आरम्भ हुआ। परिणाम था कि फोरवोल-टेटरा डेकानोइल-एसीटेट, तथा इसके अन्य प्रतिरूप, इनोनॉल, रेजेनीफ़ेरॉल आदि अनेक को-कारसिनोजेन इस समूह के पौधों से रासायनिक एवं जैव-विधि द्वारा प्राप्त किये गये। ये सभी डाइटरपीन्स "**इनीशियेशन-प्रमोशन**" विधि में चूहों की त्वचा पर ट्यूमर उत्पन्न करते हैं।

ईरान में इस लेखक के छात्रों द्वारा यह प्रथम बार दर्शाया गया था कि शहद की मक्खियाँ जब इन **यूफोरबिया** के फूलों का रस शहद बनाने के लिये लेती हैं, तो परागों में उपस्थित सह-कैंसरकारी रसायन इस मधु में परोक्ष में आ जाते हैं। यह शहद तब सामान्य रूप से मीठी नहीं रह जाती वरन् खाने के बाद मुख में जलन पैदा करती है, जो पानी पीने पर बढ़ती जाती है। इस प्रकार इस मधु का अधिक उपयोग करने वाले पहाड़ों पर वास करने वाले ईरानियों में गले के कैंसर की सम्भावना बढ़ जाती है।

भारत में अभी इस दिशा में बहुत कुछ करना बाकी है। अपने देश में **यूफोरबिया** के पौधों का आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में बहुविधि उपयोग वर्णित है तथा ग्रामीण जन इसके पौधों के सफेद दूध को घाव पर, मछली पकड़ने तथा खून रोकने के लिये प्रयोग करते हैं। इतना ही नहीं, शहरों में इस परिवार के पौधे बागीचों में सजावटी पौधों के रूप में उगाये जाते हैं। कैंसर की बढ़ती समस्या को ध्यान में रखकर इस परिवार के पौधों का किसी भी प्रकार उपयोग उचित नहीं है।

विषाणुओं (वाइरसों) के द्वारा उत्पन्न "वरकिट लिम्फोमा" तथा स्त्री जननांगों में कैंसर उत्पन्न करना कैंसर और वाइरसों के संबंध को दर्शाते हैं। इस प्रकार संक्षेप में बाह्य कैंसरकारी पदार्थ मानवों में विभिन्न प्रकार के कैंसर उत्पन्न करने में सक्षम हैं अतः आवश्यक है कि इन पदार्थों की मात्रा में (वातावरण में) नियंत्रण तथा इन्हें बनाने की इकाइयों पर भी नियंत्रण रखा जाये। अन्यथा यदि ये पदार्थ विकास की गति के साथ वातावरण में बढ़ते गये तो कैंसर की वृद्धि भी उसी अनुपात में होती रहेगी और तब मानव स्वतः "भस्मासुर" की भाँति हो जायेगा।

□□

पर्यावरण की कीमत पर यह कैसा विकास ?

विजय जी

आज़ादी के चार दशक बाद इतना तो स्पष्ट ही हो गया है कि हमने देश के विकास के लिये जो नीति अपनायी उसमें अनेक मूलभूत खामियाँ थीं। इन एकांगी विकास परिणामों से देश में ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी तो बढ़ी ही लेकिन सबसे बड़ा नुकसान पर्यावरण का हुआ है। विशाल पनबिजली योजनाओं, दैत्याकार कारखानों, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने देश के सम्पूर्ण प्राकृतिक संतुलन को चौपट कर दिया है। जंगल उजड़ गये, हवा साँस लेने लायक नहीं रह गयी, पानी पीने लायक नहीं रह गया, खाद्य पदार्थ ज़हरीले हो गये।

कुछ माह पूर्व प्रसिद्ध चिपको आंदोलन के नेता **सुन्दर लाल बहुगुणा** ने टेहरी बाँध के विरोध में आंदोलन किया था। कुछ समय तक रुके रहने के बाद यद्यपि बाँध का निर्माण पुन: शुरू हो गया लेकिन श्री बहुगुणा के अनशन से देश भर में बड़े बाँधों पर बड़ी सार्थक बहस शुरू हो गयी। बाँधों के दुष्परिणामों के सम्बन्ध में यद्यपि काफी पहले से चेतावनियाँ दी जाती रही हैं, लेकिन जैसे-जैसे बड़े बाँधों की संख्या और आयु बढ़ती जा रही है वैसे-वैसे जनता का विरोधी स्तर और भी तीखा होता जा रहा है।

बड़े बाँधों के निर्माण के पूर्व जनता को बड़े ही लुभावने सपने दिखाये जाते हैं। जनता को बिजली, सिंचाई और उद्योगीकरण का लालच दिया जाता है। लेकिन ज़्यादातर सपने झूठे साबित होते हैं। बड़े बाँधों के निर्माण में राजनेताओं, इंजीनियरों, ठेकेदारों की चाँदी ही चाँदी होती है। ये वर्ग हमेशा ऐसी योजनाओं का स्वागत करते हैं।

बड़ी पनबिजली योजनाओं के निर्माण में बहुत बड़ा क्षेत्र डूब जाता है जिससे वहाँ स्थित हरा-भरा जंगल भी डूब जाता है। जंगल नष्ट होने से वन्य जीव, जड़ी-बूटियाँ और पेड़-पौधे भी नष्ट हो जाते हैं। यही नहीं, क्षेत्र के अनेक गाँव जो अधिकतर आदिवासी ही होते हैं, उजाड़ दिये जाते हैं। कहने को तो वहाँ के निवासियों को अन्यत्र ज़मीन देकर पुनर्वसित किया जाता है, लेकिन व्यवहार में सही-सही पुनर्वास कहीं होता नहीं है।

उदाहरणस्वरूप टिहरी बाँध को ही लीजिये, इस बाँध के पूरा होने पर पूरा टिहरी कस्बा तो डूब ही जायेगा साथ-साथ 42 गाँव भी जल-समाधि ले लेंगे। 100 गाँवों को आंशिक नुकसान होगा। इस बाँध के निर्माण से 5200 हे० भूमि, जिसमें 1600 हे० कृष्य-भूमि होगी, भी जलप्लावित हो जायेगी। अन्य निर्माणाधीन बाँधों की स्थिति तो और भी भयावह है। एक अनुमान के अनुसार नर्मदा घाटी परियोजना में एक लाख लोग उजाड़े जायेंगे। देश में 1874 से 1975 के बीच 433 बाँध बनाये गये हैं, जिनमें 40 बड़े बाँध हैं। इन सभी बड़े बाँधों से विस्थापित लोगों की स्थिति का सर्वेक्षण करने पर जो तस्वीर सामने आयी है वह भयावह है।

विशाल बाँधों के निर्माण क्षेत्र से तो विस्थापित आदिवासियों की संख्या ज्ञात भी हो जाती है। लेकिन अनेक अन्य विकास योजनाओं के कारण कितने लोग विस्थापित हो रहे हैं इसका तो कभी लेखा-जोखा ही नहीं रखा जाता। अकेले मिर्ज़ापुर में ही जंगलों और आदिवासियों को उजाड़कर सैकड़ों कारखाने स्थापित किये गये हैं। चुनार सीमेंट फैक्ट्री, चुर्क सीमेंट, डाला सीमेंट, ओबरा थर्मल पावर, हिंडालको, कनौड़िया केमिकल, रेनूसागर थर्मल पावर, अनपरा थर्मल पावर, बीजपुर थर्मल पावर जैसे कारखानों से उजड़ने के

जवाहर कॉलेज, जारी, इलाहाबाद–212106

बाद आदिवासी कहाँ गये इसका कहीं लेखा-जोखा नहीं है। यही नहीं, इन विकास योजनाओं के कारण कभी-कभी ये आदिवासी कई-कई बार उजाड़े जाते हैं। फिर अन्त में शहरों में जाकर झुग्गी डालकर दर-दर भटकने के लिये बाध्य हो जाते हैं।

इन विशाल बाँधों से लागत के अनुसार फ़ायदा होता हो ऐसा भी नहीं है। 1985 तक सिंचाई परियोजनाओं में सार्वजनिक परिव्यय 20 हज़ार करोड़ तक जा पहुँचा था। ताज़ा जानकारी के अनुसार निज़ाम सागर बाँध आज चावल और गन्ने के खेतों की सिंचाई कर पाने में असमर्थ है, जबकि इसका निर्माण इसी उद्देश्य के लिये किया गया था। तथा बाँध से फ़सलों का उत्पादन बढ़ने के बजाय घट गया है। बड़े बाँध सिंचाई कर पाने में असमर्थ हैं, जबकि इसका निर्माण इसी उद्देश्य के लिये किया गया था। तवा बाँध से फ़सलों का उत्पादन बढ़ने के बजाय घट गया है। बड़े बाँधों से सिंचाई के लिये जो नहरें निकाली जाती हैं उनके दोनों तरफ़ काफ़ी बड़े क्षेत्र में भूगर्भ जल की सतह ऊपर आ जाती है, जिससे ज़मीन दलदल में बदल जाती हैं तथा लवणीकरण की प्रक्रिया तेज़ हो जाती है।

पर्यावरण की कीमत पर विकास की प्रक्रिया अन्य क्षेत्रों में भी बड़ी तेज़ी से चल रही है। पहले तो माना जाता था कि ऐसे स्थान जहाँ न बाँध बनने की सम्भावना है और न नगरीकरण-उद्योगीकरण की, वे सुरक्षित रहेंगे। लेकिन भूगर्भ खनिजों की लालच ने अब ऐसे पहाड़ी क्षेत्रों का विध्वंस शुरू कर दिया है। उत्तराखण्ड में अनेक स्थानों पर चूने की खदानों के लिये हरी-भरी पहाड़ियाँ उजाड़ी गयीं और वहाँ का पर्यावरण चौपट किया गया। उड़ीसा के प्रसिद्ध गंधमार्दन क्षेत्र पर आज भी वाल्को (भारत एल्यूमिनियम कंपनी) की तलवार लटक रही है। यह बाल्को इसके पूर्व म० प्र० के फुटका और अमरकंटक नामक स्थानों से बाक्साइट का दोहन कर चुकी है। यद्यपि स्थानीय लोगों के विरोध के चलते गंधमार्दन में अभी खुदायी बंद है, लेकिन यदि यहाँ स्थित 90 वर्ग किमी० के क्षेत्र का पर्यावरण पूरी तरह तहस-नहस हो जायेगा तो यहाँ उपस्थित 150 किस्म की जड़ी-बूटियाँ; 2500 किस्म के फूल, 25 नस्लों के जंगली जानवर लुप्त हो जायेंगे। इस समय यहाँ स्थित 22 झरनों द्वारा करीब एक लाख एकड़ ज़मीन की सिंचाई होती है, लेकिन खुदायी के बाद ये सभी झरने सूख जायेंगे तथा इन पर आधारित 50 हज़ार आदिवासी भुखमरी के कगार पर पहुँच जायेंगे।

जल प्रदूषण के क्षेत्र में स्थिति और भी भयावह है। देश की लगभग सम्पूर्ण नदियाँ बुरी तरह प्रदूषित हो चुकी हैं, खासकर उत्तरी भारत की नदियाँ क्योंकि इन नदियों के किनारे ही विकास के अनगिनत स्तम्भ-रूपी कारखाने और शहर विकसित किये गये। ये सभी कारखाने और शहर नदियों का शुद्ध जल तो अपने प्रयोग के लिये लिया करते हैं अपना प्रदूषित जल और कचरा लगातार नदियों डालते जा रहे हैं। गंगा नदी को प्रदूषणमुक्त करने के लिये कुछ वर्ष पूर्व ढाई अरब रुपये की लागत से विशाल 'गंगा विकास प्राधिकरण बनाया गया है। प्राधिकरण द्वारा बहुत सारा काम किय' जा चुका है लेकिन गंगा के पूर्ण प्रदूषणमुक्त होने का कोई संकेत नहीं है, क्योंकि प्रदूषण सम्बन्धी कानूनों का कड़ाई से पालन नहीं किया जा रहा है। शहरों का मल-जल अब भी गंगा में डाला जा रहा है तथा कारखानों का ज़हरीला पानी भी देर सबेर गंगा में प्रवाहित ही कर दिया जाता है।

यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि वायु प्रदूषण के क्षेत्र में दुनिया की सबसे भयावह दुर्घटना 'भोपाल गैस काण्ड' को अपनी आँखों से देखने के बावजूद हम अपने को संभाल नहीं पाये हैं। 3 दिसम्बर 1984 की रात घटी इस दुर्घटना में तीन हज़ार लोग यूनियन काबाईड कंपनी की ज़हरीली गैस के रिसने के कारण कीड़े-मकोड़ों की तरह तड़प-तड़प कर मर गये थे। उस हत्यारी कंपनी को दंड देने और देश निकाला को कौन कहे, हमारी सरकार आखिर तक कंपनी से दया की भीख माँगती रही और उसी की शर्तों पर समझौता किया।

पर्यावरण के मामले में सबसे सकारात्मक पहलू जनचेतना है। देर से ही सही लेकिन सरकार की इन विकास नीतियों की खामियाँ अब जनता भली भाँति समझने लगी है। इसीलिये इस तरह के हर कदम का अब लगभग हर जगह विरोध होना शुरू हो गया है। जनचेतना जागृत करने में **सुन्दरलाल बहुगुणा, चण्डी प्रसाद भट्ट** जैसे पर्यावरणविदों ने समय-समय पर पर्यावरण के लिये आंदोलन किया।

पर्यावरण के लिये चलाये गये आंदोलनों से कई कामयाबियाँ हासिल की जा चुकी हैं। 'चिपको आंदोलन' से उत्तराखण्ड का पेड़ कटान रुका है। 'केरल शास्त्र साहित्य परिषद्' द्वारा 'साइलेंट वैली बचाओ' आंदोलन से वहाँ बन रहे बाँध का निर्माण रुक गया जिससे विश्व प्रसिद्ध 'मूक घाटी' का प्राचीनतम् जंगल बच सका। इसी तरह कर्नाटक में काली नदी पर बन रहा बाँध भी जनांदोलन द्वारा ही रोका गया। कैगार नामक स्थान पर बनने वाले परमाणु संयंत्र से संभावित विभीषिका को ध्यान में रखकर यह आंदोलन चलाया गया।

विशाल बाँधों के बनने या न बनने पर बहस इस समय पूरे देश में हो रही है। इस सम्बन्ध में गत वर्ष 28 सितम्बर को हरसूद (म० प्र०) में एक ऐतिहासिक सम्मेलन हो चुका है। इस सम्मेलन में पहली बार देश भर के पर्यावरणविद्, वैज्ञानिक, आंदोलनकारी और विस्थापितों ने हिस्सा लिया।

विकास के इन प्रतिमानों के विरोध को कभी-कभी बड़े गलत अर्थ में लिया जाता है। खासकर सरकार तो यही प्रचारित करती है कि आन्दोलनकारी विकास के विरोधी हैं। वास्तव में कोई भी जनांदोलन विकास विरोधी तो हो ही नहीं सकता। लोग उसी मुद्दे पर एकत्र होते हैं जो उनकी मूलभूत समस्याओं से जुड़ा हो। किसी स्थान पर बन रहे बाँध से विस्थापित होने वालों से कहा जाता है कि वे राष्ट्रहित के लिये त्याग करें और वहाँ से स्थानान्तरित हो जायें। लेकिन सवाल उठता है कि राष्ट्रहित के लिये बार-बार आदिवासियों से ही त्याग करने के लिये क्यों कहा जाता है? जो लोग हमेशा-हमेशा से सुख-सुविधा का उपयोग करते रहे हैं वे त्याग का रास्ता क्यों नहीं अपनाते?

एक सवाल और उठाया जाता है कि इन विशाल परियोजनाओं का विकल्प क्या है? इसके जवाब के लिये चीन का उदाहरण दिया जा सकता है जहाँ के योजनाकारों ने अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार छोटी-छोटी योजनाओं पर अमल करके हमसे भी अधिक विकास कर लिया है। पिछले दिनों **उपप्रधानमंत्री देवीलाल** चीन गये थे। वहाँ वे एक गाँव भी देखने गये। गाँव में 12 हार्सपावर का छोटा ट्रैक्टर देखकर वे रोमांचित हो उठे। क्या ही अच्छा होता जो यह छोटा ट्रैक्टर अपने देश में भी होता जिसे आसानी से छोटा काश्तकार भी खरीद सकता। चीन में 1980 तक 88 हज़ार से अधिक लघु पनबिजलीघर काम कर रहे थे जिनकी कुल क्षमता 6929 मेगावाट थी, जो उस देश की ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली खपत की एक तिहाई थी। क्या अपने देश में ऐसे छोटे-छोटे संयंत्र नहीं बनाये जा सकते? अपने ही देश में ग्रामीण विकास के लिये जमनालाल बजाज पुरस्कार' पाने वाले **प्रेम भाई** (मिर्ज़ापुर) के स्वैच्छिक प्रयास से क्षेत्र में अब तक लगभग साढ़े सात सौ बंधियाँ बन चुकी हैं। इन छोटे बाँधों से आदिवासी लोगों और किसानों को बड़ा फायदा पहुँचा है। खास बात तो यह कि इन छोटे बाँधों से न तो पर्यावरण को कोई क्षति हुई और न किसी का विस्थापन हुआ। □□

महान सोवियत वैज्ञानिक : व्लादीमीर वेर्नाद्स्की

राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप

महान सोवियत वैज्ञानिक अकादमीशियन **व्लादीमीर वेर्नाद्स्की** का जन्म 1863 ई० में सेण्ट पीटर्सबर्ग (पेत्रोग्राद) में हुआ था। उनके पिता इवान वेर्नाद्स्की भी प्रसिद्ध रूसी अर्थशास्त्री थे और मात्र अट्ठाइस वर्ष

प्रवक्ता (शिक्षा), ए० पी० एन० महाविद्यालय, बस्ती वेर्नाद्स्की–272001 (उत्तर प्रदेश)

की आयु में किएव विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हो गये थे। सैंतालिस वर्ष की आयु में हृदय के दौरे के कारण उनकी वाक्शक्ति विकृत हो गयी और उन्हें विश्वविद्यालय छोड़कर खारकोव जाना पड़ा। व्लादीमीर का जन्म इसी अवधि में हुआ था।

व्लादीमीर वेर्नाद्स्की को बाल्यावस्था से ही अध्ययन में रुचि उत्पन्न हो गयी थी। इसका एक मनोरंजक उदाहरण उनकी सत्रहवीं वर्षगाँठ पर अपने पिता से उपहार के रूप में **चार्ल्स डार्विन** की कृतियाँ देने का अनुरोध था। 1881 में उन्होंने सेण्ट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय के प्राकृतिक विज्ञान विभाग में गणित और भौतिक विषयों में प्रवेश लिया। उनके अध्यापकों में आवर्तसारिणी के निर्माता **मेंडलीव** और प्रसिद्ध भू-वैज्ञानिक **डोकुचायेव** भी थे। वे **लेनिन** के बड़े भाई **अलेक्सान्द्र उल्यानोव** से भी परिचित थे और **लेव तोलसताय** ने भी उन्हें प्रभावित किया था। 1885 में उन्होंने स्नातक उपाधि प्राप्त की।

1887 में अपने लोकतांत्रिक विचारों के कारण उन्हें मास्को जाना पड़ा। वहाँ उन्होंने अध्ययन जारी रखा और मार्च 1906 में वे खनिज-विज्ञान के सह-प्राध्यापक नियुक्त हुए। यह क्रम 1911 तक चला जब शासन द्वारा मास्को विश्वविद्यालय की स्वायत्तता समाप्त किये जाने के विरोध में उन्होंने अपने साथियों **एन० उमोव, डी० पेत्रूशेव्स्की, एन० तिमिर्याज़ेव, पी० लेबेदेव एन० जेलिन्स्की** के साथ त्यागपत्र दे दिया और एकेडेमी ऑव साईंसेज द्वारा ट्रांसकाकेशिया, मध्य एशिया और उराल पर्वतों में रेडियमधर्मी खनिजों के अध्ययन के लिये भेजे गए। 1921 में वेर्नाद्स्की पुन: एकेडेमी ऑव साइंसेज में भूगर्भ विज्ञान और खनिज विज्ञान के संग्रहालय के निदेशक के रूप में मास्को आए और उसके पश्चात् सेण्ट पीटर्सबर्ग में रूस के प्राकृतिक उत्पादक बलों के आयोग-मण्डल के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने लगे। 1922 में रेडियम संस्थान की स्थापना के पश्चात् वे इस संस्थान के निदेशक हो गये। यहाँ उन्होंने अयस्कों और खनिजों के प्राकृतिक भंडारों में प्राप्त होने वाले रेडियमधर्मी तत्वों के भू-रसायन संबंधी अनुसंधान का प्रारम्भ किया जिसका उद्देश्य भूतल की रेडियमधर्मिता का एक विश्वमान-चित्र तैयार करना था।

वेर्नाद्स्की के शिष्य **कांस्तैंतिन फ्लोरेंस्की** ने अपने अध्यापक की वैज्ञानिक रुचि का विकास निम्न क्रम में प्रदर्शित किया है :

अवधि	अनुसंधान के विषय	क्षेत्र
1890-1908	मणिभ	मणि विज्ञान
	खनिज	खनिज विज्ञान
1908-1924	भू-पटल	भू-रसायन
1910-1937	ग्रह-पृथ्वी	रेडियम-भू-रसायन
1916-1943	जैवमण्डल	जैविक भू-रसायन
1925, 1938-1945	सौमनस्य-वलय (नू स्फियर)	सौमनस्य-वलय सिद्धान्त

1885 में जब वेर्नाद्स्की ने खनिज-विज्ञान को मुख्य विषय के रूप में लेकर स्नातक उपाधि प्राप्त की तो उनके शोध-प्रबन्ध का विषय था, समाकृतिक मिश्रणों के भौतिक गुण (ऑन द फ़िजिकल प्रापर्टीज ऑव आइसोमार्फिक मिक्सचर्स)। 1900 में मणिभ-विज्ञान के संबंध में जितनी जानकारी उपलब्ध थी उसे समावेशित करते हुए उन्होंने 'मणि-विज्ञान के आधार-भूत सिद्धान्त' पुस्तक की रचना की। वास्तविकता तो यह है कि वेर्नाद्स्की स्वयं इस क्षेत्र में **ये० फ्योदोरोव** और **ए० शेन्फीलस** द्वारा मणिभों की आंतरिक संरचना और स्वरूप संबंधी कार्य से प्रभावित होकर आये थे परन्तु उन्होंने स्वयं मणिभों की भौतिकी और रसायनिकी को अपने अनुसंधान का विषय बनाया। अपने डाक्टोरल शोध-प्रबन्ध 'मणिभ पदार्थों में स्लिप की घटना' (फेनामिना ऑव द स्लिप इन क्रिस्टलाइन सब्सटेंस, 1887) में वेर्नाद्स्की ने मणिभों की संरचनात्मक अनवरतता को विरूपित न करने वाली स्लिप विकृतियों के सम्बन्ध में उपलब्ध प्रायोगिक प्रदत्तों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया। 1895 में वेर्नाद्स्की ने भौतिक-मणिभ-विज्ञान के संबंध में एक लेखमाला

प्रस्तुत की जिसमें पहली बार अंतर्परमाण्विक आकर्षण बलों द्वारा उत्पन्न की गयी मणिभ-ऊर्जा की संकल्पना पर विचार किया गया था। उन्होंने मणिभों की आंतरिक और तलीय ऊर्जा में विभेदन करने का प्रयास किया और इसी संकल्पना के आधार पर एक साथ निर्मित हो रहे मणिभीय-पदार्थों और 'यमज-मणिभों' की व्याख्या की।

इसी चिंतन-क्रम में वेर्नाद्स्की ने मणिभों द्वारा उनके भिन्न अक्षों पर प्रदर्शित भिन्न गुणों (एनिसोट्रॉपी) का अध्ययन करते हुए एक विशेष प्रकार की सदिश ऊर्जा (वेक्टोरल एनर्जी) की अवधारणा भी प्रस्तुत की। मणिभ-रसायन के क्षेत्र में वेर्नाद्स्की की एक महत्वपूर्ण देन बहुरूपता (पालीमारफिज्म) के सम्बन्ध में है। एक ही पदार्थ के विभिन्न रूप प्रकृति की सनक या नियमहीनता के फलस्वरूप नहीं निर्मित होते—"वास्तव में कोई विशेष मणिभ-संरचना किसी विशेष तापक्रम और दाब की परिस्थितियों में उत्पन्न होती है और परिस्थितियाँ बदलने पर यह संरचना भी परिवर्तित हो जाती है।"

खनिजों में वेर्नाद्स्की का ध्यान समाकृतित्व (आइसोमारफिज्म) पर केन्द्रित था। विशेष रूप से उन्होने सिलिकेट यौगिकों के विभिन्न प्रकारों का विशद और व्यापक अध्ययन किया। उनका निष्कर्ष था कि समरूपता का गुण तत्वों में नहीं वरन् यौगिकों में प्राप्त होता है और समाकृतिक स्थानापन्नता (आइसोमार्फिक सब्सीट्यूशन), जिसमें स्वीकार किया जाता है कि एक तत्व दूसरे तत्व को स्थानापन्न कर देता है, एक भ्रम है। आज तो समाकृति सिद्धान्त की गणितीय-पुष्टि भी की जा चुकी है और हम जानते हैं कि तामड़ा (गार्नेट) में त्रिसंयोजी लौह द्वारा एल्युमिनियम को स्थानापन्न करना अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि वास्तव में ऑक्साइड ही स्थानापन्न होते हैं।

मास्को विश्वविद्यालय के मणिभ-विज्ञान और मणिभ-रसायन विभाग के प्रमुख **वी० उरुसोव** के अनुसार वेर्नाद्स्की का मणिभ-विज्ञान के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण योगदान उनकी 'काओलिन नाभिक' परिकल्पना है। वेर्नाद्स्की ने यह परिकल्पना 1890 के दशक में सिमिमैनाइट-वर्ग के खनिजों का अध्ययन करते हुए प्रस्तुत की थी। उन्होंने अनेक खनिजों के लिये एक ही नाभिकीय संरचना प्रस्तुत की जिनमें एल्युमिनियम और सिलिकॉन की भूमिका समान थी। इस परिकल्पना को एल्युमिनो-सिलिकेटों के एक्स-रे अध्ययनों द्वारा पुष्ट भी किया जा चुका है।

वेर्नाद्स्की की अनुसंधान-रुचि का एक अन्य क्षेत्र दिक' और 'काल' की अवधारणा से सम्बन्धित है। बाइस वर्ष की आयु में ही 11 जनवरी 1885 को वेर्नाद्स्की ने अपनी दैनंदिनी में लिखा था : 'दिक् और काल क्या है? यह प्रश्न युगों से मानव-जाति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधियों को चुनौती देता रहा है। सम्भवतया हमें कुछ सकारात्मक परिणाम भी मिल गए होते यदि हमने आधुनिक दर्शन में स्वीकृत दिक्-काल की अवधारणा, जो मानवीय अनुभवों, सामान्य ज्ञान और भौतिक अनुभवों के जटिल क्षेत्र में खो गयी है, को त्याग दिया होता और अपनी खोज को अपेक्षाकृत निरपेक्ष क्षेत्र में स्थानापन्न करते। दिक और काल प्रकृति में अलग-अलग नहीं रहते और यह निर्विवाद है कि वे अविभाज्य हैं। हमें कोई ऐसी घटना ज्ञात नहीं है जो दिक और काल के किसी खण्ड में घटित होती हो। यह दोनों अपृथक्करणीय अंश कहाँ सम्बन्धित हैं? निश्चय ही उससे जो वास्तव में अस्तित्व में है—पदार्थ—जिसे हम दिक और काल की चौखट में अवस्थित मानते हैं।"

1522 में वेर्नाद्स्की सारबोन विश्वविद्यालय में आमंत्रित किये गये। उस समय पेरिस के वैज्ञानिक क्षेत्रों में **आइंस्टीन** के 'सापेक्षता सिद्धान्त' पर वाद-विवाद हो रहा था। **बर्गसाँ** का प्रश्न था कि संपूर्ण गति को एक वस्तु के एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक जाने की प्रक्रिया मान लेने पर चिंतन-प्रक्रिया को प्रयत्न और संकल्प द्वारा प्रेरित गति स्वीकार करना होगा। उस स्थिति में प्रत्येक मनुष्य के लिये एक आंतरिक समय की अवधारणा अवश्य होगी।

बर्गसाँ के विचारों से न तो लोग सहमत हो सके

और न उन्होंने अपने विचारों की पुष्टि करने का प्रयास ही किया। परन्तु वेर्नाद्स्की ने समय की भिन्नता पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया कि समय की एक अवधारणा-न्यूटनी या आइंस्टीनी—नहीं हो सकती क्योंकि गति का नूतन जैव-भू-रसायनिक रूप जो जीवित पदार्थ द्वारा आरम्भ किया जाता है, भी उस सम्बन्ध का ऊर्जाशील रूप है जिसे काल कहा जाता है।

यू० मित्रोपोल्स्की और **एम० क्राल्को** के एक लेख के अनुसार 'उन्होंने (वेर्नाद्स्की) स्पष्ट किया कि जिस सीमा तक दिक और काल एक अकेली पूर्णता के भाग हैं, किसी एक के सम्बन्ध में, बिना दूसरे पर विचार किये हुए कोई निष्कर्ष देना त्रुटिपूर्ण होगा। दिक की विषमांगता काल की विषमांगता में प्रतिबिंबित होती है। परन्तु दिक-काल के दिशा-आधारित गुणधर्म (एनिसोट्रॉपी) की समस्या कैसे सुलझाई जाये? वेर्नाद्स्की का उत्तर था—"गणितीय पदों में इसे सममिति (सिमिट्री) की अवधारणा की सहायता से ही प्राप्त किया जा सकता है।"

दिक-काल सम्बन्धी चिंतन के साथ-साथ वेर्नाद्स्की का चिंतन अन्य क्षेत्रों में भी सक्रिय था। 1908 में उनके द्वारा लिखे पत्र से ज्ञात होता है कि वे पृथ्वी पर जीवित पदार्थ की मात्रा और अजीवित पदार्थों से उसके अनुपात के प्रश्न पर विचार करने का प्रयत्न कर रहे थे। इस नवीन ज्ञान-क्षेत्र को उन्होंने जैव-भू-रसायन (बायोजियोकेमेस्ट्री) का नाम दिया। 1916-1920 की अवधि में जब रूस में भयानक गृह युद्ध की स्थिति थी तब उन्होंने जीवित पदार्थ का सिद्धान्त निर्मित किया। जीवित पदार्थ के नियमों का प्रस्तुतीकरण 1922 में हुआ। ये नियम न्यूटनीय गति नियमों के समान ही थे परन्तु उनमें जड़त्व-बलों के स्थान पर जीवित प्राणियों के पुनरुत्पाद बलों का उपयोग किया गया था। वेर्नाद्स्की के अनुसार "यहाँ प्रस्तुत संख्याएँ पीढ़ियों की संख्या, समूह के सदस्यों की संख्या, एक बार के अंडे देने की प्रक्रिया में अंडों और बच्चों की संख्या, उनके आधार पर प्राप्त स्थिरांक जो एक दूसरे से गणितीय रूप में सम्बन्धित होती है—निश्चित संख्याएँ हैं। वैसी ही शुद्ध और अपरिवर्तनीय जैसी पदार्थ के भौतिक गुणों, परमाणुओं या खगोलीय स्थिरांकों से सम्बन्धित संख्याएँ होती हैं······कोई भी गति प्रतिभागी कणों की मात्रा और उनके द्वारा तय की गयी दूरी से ज्ञात की जा सकती है। इसी प्रकार प्राणियों की पुनरुत्पादक गति भी इस पुनरुत्पादन की प्रक्रिया के अनुरूप होती है क्योंकि यह भूतल पर प्राणियों द्वारा जीवित रहने के लिये आवश्यक क्षेत्र का फलन होती है। पुनरुत्पादन की प्रक्रिया प्राणी-समूहों की गति से अधिक शक्तिशाली और व्यवस्थित होती है।"

इसी सम्बन्ध में **बोरिस लिचकोव** को लिखे गये एक पत्र में वेर्नाद्स्की ने लिखा था कि 'जैवमंडल जीवित पदार्थों के दाब की गणना मेरे जीवन का योग-दान है। इस स्थिरांक की गणना के पश्चात् मैं बी-स्थिरांक की गणना के कार्य में लगा हुआ हूँ जो पुन-रुत्पादन में कार्यरत जीवित पदार्थ के दाब की गणना मात्रा की इकाइयों का अनुमान प्रदान करेगा।"

यह आश्चर्यपूर्ण तथ्य है कि अधुनातन पारिस्थि-तिक चिंतन के लिये सैद्धांतिक आधार प्रदान करने का कार्य वेर्नाद्स्की के जैवमण्डल के सिद्धांत (थियरी ऑव द बायोस्फीयर) द्वारा सम्भव हो सका है।

अकादमीशियन **अलेक्जान्दर यासिन** के अनुसार "वेर्नाद्स्की ने पृथ्वी के पर्यावरण का वर्णन जैवमण्डल के रूप में किया जिसमें जीवन उपस्थित है। उनकी व्याख्या के अनुसार, जैवमण्डल की परिधि में विश्व-महासागरों की सर्वाधिक गहराई, दो से तीन कि०मी० की गहराई तक स्थल मण्डल (लिथोस्फीयर) जहाँ आज भी जीव पाए जा सकते हैं, तथा वायुमण्डल के निचले भाग, कम से कम सम्पूर्ण ट्रोपोस्फीयर जहाँ निचले भाग की तरह पक्षी और कीट-पतंग उड़ते हैं और जहाँ ऊँची परतों में सूक्ष्मजीव पाए जाते है, शामिल हैं।" वेर्नाद्स्की ने पृथ्वी पर जीवन के वित-रण क्षेत्र को 'जीवित पदार्थ' की संज्ञा दी और गण-नाओं के आधार पर इसकी मात्रा $10^{20}-10^{21}$ ग्राम प्राप्त की।

सौर-मंडल के अनेक ग्रहों के ऊर्जा-संतुलन का अध्ययन करके उन्होंने पृथ्वी द्वारा सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊष्मा और विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा का परिमाण 170×10^{12} किलोवाट निर्धारित किया। उनके कुछ जीव-वैज्ञानिक निष्कर्ष और भी महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिये जीवन-प्रक्रियाओं में गैसों की भूमिका के अध्ययन के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि "जैव मंडल जीवित प्राणियों के अस्तित्व का संघर्ष-स्थल है। न केवल भोजन के लिये वरन् आवश्यक गैसों के लिये भी जो पुनरुत्पादन की दर निर्धारित करती हैं। श्वास-क्रिया प्रति हेक्टेयर भू-भौतिक ऊर्जा की अधिकतम संभावना निश्चित करती है।"

वेर्नाद्स्की की गणनाओं के अनुसार यद्यपि पृथ्वी का तल-क्षेत्र सूर्य के तल-क्षेत्र का .0001 (दस हजारवां) भाग है परन्तु पृथ्वी के रूपांतरण-उपकरण का हरा भाग (पत्तियाँ, घासें, फफूँदी, इत्यादि) मौसम के अनुसार 86 से 4.2 प्रतिशत (सूर्य के तल का) होता है। स्विस वैज्ञानिक **आर्हेनियस** ने महाद्वीपों की हरी वनस्पति के ज्वलनशील यौगिकों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा का परिमाण 1.6×10^{17} किलोकैलारी प्राप्त किया था। वेर्नाद्स्की ने संपूर्ण जीव मंडल के लिये यह ऊर्जा-राशि 10^{18}-10^{19} किलो कैलारी प्राप्त की। उन्होंने यह भी ज्ञात किया कि सूर्य द्वारा पृथ्वी को प्रदान की गई ऊर्जा का बीस हजारवें से चालीस हजारवाँ, भाग ही हरित पदार्थों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। 'जीवित-पदार्थ' की ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण भाग जैव मंडल में नवीन बडोज खनिज के निर्माण और शेष अंश कार्बनिक पदार्थों के रूप में संरक्षित हो जाता है।

अकादमीशियन **बोरिस लास्कोरिन** के अनुसार "वेर्नाद्स्की पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मनुष्य की उपस्थिति के परिणामस्वरूप जैव मंडल की नवीन गुणात्मक स्थिति पर ध्यान दिया।......हमारा जैव मंडल एक फोटो सिंथेटिक कारखाने की तरह है जो गैर-अपशिष्ट प्रविधि के सिद्धांतों पर चल रहा है। भूमंडल की हरियाली बड़ी मात्रा में लवणों, जल और कार्बन डाइऑक्साइड की खपत करती है तथा सौर ऊर्जा की सहायता से इस कच्ची सामग्री को ऑक्सीजन तथा जीव-वैज्ञानिक द्रव्यमान में बदल देती है। इनमें से प्रत्येक की मात्रा करीब 10,000 करोड़ टन प्रति-वर्ष होती है। हमारे भूमंडल पर सभी जीवधारियों के बने रहने का श्रेय इन्हीं उत्पादों को है। इस उत्पादन प्रक्रिया में अपशिष्ट भाग नहीं होता। न ही इसमें ऐसा हो सकता है।"

वेर्नाद्स्की की विचारधारा के अनुसार मनुष्य जैवमंडल को ऐसे क्षेत्र में परिवर्तित कर सकता है जो तर्क, विवेक और मानव-मस्तिष्क द्वारा नियन्त्रित हो। सौमनस्य वलय (नूस्फियर) मूलभूत रूप से जैवमंडल के विकास का ही नया पक्ष है—नयी प्रावस्था है। इसका अर्थ मनुष्य और उसकी पारिस्थितिकी में सुसंगति है, प्रदूषण का अंत है और प्राकृतिक संस्रोतों का इस प्रकार उपयोग है जो प्रकृति के लिये हानिरहित हो तथा पर्यावरणीय प्रणालियों का वैज्ञानिक नियमन है। सौमनस्य वलय के निर्माण की पूर्वापेक्षाएँ निम्न हैं—

1. मनुष्य जाति एक समेकित पूर्णता है। पृथ्वी पर ऐसा कोई खण्ड नहीं जहाँ यदि आवश्यक हो तो मनुष्य जीवित न रह सके।
2. संप्रेषण के साधनों का रूपांतरण और विनिमय
3· नवीन ऊर्जा स्रोतों की खोज
4 कार्यरत मनुष्यों के जीवन-स्तर में सुधार
5. सम्पूर्ण मानवों की समानता
6 मानव-समाज से युद्धों की समाप्ति

अपने अंतिम लेख 'सौमनस्य-वलय के सम्बन्ध में कतिपय टिप्पणियाँ' (1944) में वेर्नाद्स्की की यह उक्ति मानव-जाति के लिये आशावादिता का संदेश मानी जा सकती है।

"आजकल हम जैवमंडल के एक नवीन भू-वैज्ञानिक विकासात्मक परिवर्तन को घटित होता हुआ देख रहे हैं। हम सौमनस्य-वलय में प्रविष्ट हो रहे हैं—एक विध्वंसक विश्व-युद्ध के भयानक समय में हम नवीन स्वतः स्फूर्त भू-वैज्ञानिक प्रक्रिया में प्रवेश कर रहे हैं। परन्तु हमारे लिये यह महत्वपूर्ण है कि हमारे

प्रजातांत्रिक आदर्श स्वतः स्फूर्त भू-वैज्ञानिक प्रक्रिया से तालमेल बनाए रखें।

हम इस प्रकार भविष्य की ओर आत्मविश्वास पूर्ण दृष्टि से देख सकते हैं। यह हमारे हाथों में है।"

चौदह भाषाओं में निष्णात इस वैज्ञानिक की प्रसिद्धि उनके जीवन काल में ही हो गयी थी। मात्र छब्बीस वर्ष की आयु में वे 'ब्रिटिश एसोसियेशन फॉर एडवांसमेंट ऑव साइंस' के सदस्य चुने गये थे। परवर्ती काल में फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया और यूगोस्लाविया की राष्ट्रीय विज्ञान परिषदों, फ्रांस और बेल्जियम की भू-वैज्ञानिक परिषदों, भारत की जैव-रासायनिक परिषद् तथा अमेरिका की खनिज विज्ञान परिषद् ने उन्हें सदस्यता प्रदान कर सम्मानित किया।

1943 में सोवियत सरकार ने उन्हें दो लाख रूबल का पुरस्कार प्रदान किया था परन्तु इस राशि का आधा अंश उन्होंने देश के सुरक्षात्मक कार्यों के लिये और शेष अभावग्रस्त व्यक्तियों के लिये समर्पित कर दिया।

भारतीय दर्शन की मुख्य धाराओं, **अरस्तू, कन्फ्यूशियस, केपलर, देकार्ते, न्यूटन, कोमोनोसोव, गेटे** और **कांट** की रचनाओं के अध्येता वेर्नाद्स्की की मृत्यु 1945 में हुयी। उनकी स्मृति में भू-रसायन, जैव भू-रसायन और अंतरिक्ष रसायन के क्षेत्र में विशिष्ट अनुसंधानों के लिये सोवियत सरकार प्रतिवर्ष 'वेर्नाद्स्की पुरस्कार' और 'वेर्नाद्स्की पदक' प्रदान करती है। □□

पारंपरिक भोजन ही मधुमेह को रोक सकता है

रणबीर सिंह

आरोग्यकर आहार अपनाकर मधुमेह से छुटकारा पाने का उपाय असरदार और साधारण तो प्रतीत होता है परन्तु व्यवहार में लाना आसान नहीं है। शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले अध्ययनों की वजह से सारी दुनिया के चिकित्सक अब यह तो जानते हैं कि रेशे से भरपूर फलीदार सब्ज़ियाँ, छिलके समेत साबुत दालें और पारंपरिक भोजन खाने से मधुमेह के रोगियों को काफी आराम पहुँचना संभव है। भारत जापान, आस्ट्रेलिया और मध्यअफ्रीका तथा वेस्ट इंडीज जैसे इलाकों में लोगों की खुराक़ में आज भी रेशेदार भोजन का बाहुल्य है। इसके विपरीत पश्चिम के देशों में मांस को छोड़कर नियमित मिलने वाले भोजन में रेशा ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल पायेगा। कुछ ऐसी बातों पर गौर करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है जिनकी वजह से लोगों की जीवनशैली बदल जाती है। जीवनशैली में लोगों की खान,पान की आदतें भी शामिल होती हैं। अमेरिका में वे दुकानें बड़ी लोकप्रिय बनती जा रही हैं जहाँ ऐसे फल और सब्जियाँ उपलब्ध कराने का दावा किया जाता है जिनकी पैदावार लेने में रसायनिक खाद और कीटनाशकों का रत्तीभर भी इस्तेमाल न हुआ हो। पश्चिमी देशों के लोग अधिकतर कारखाने में तैयार प्रोसेस्ड फूड का ही इस्तेमाल करने पर मजबूर हैं। भारत और अन्य उष्णकटिबंधीय देशों में स्थिति अभी इतनी खराब नहीं हुई है। भारत की अधिकांश आबादी ग्रामीण जीवन शैली अपनाये हुए है। अभी हमारे अनेक शहरों में घर के बने पारंपरिक भोजन को ही पसन्द किया जाता है। भोजन की किस्म और खाने से पहले वह जिस रूप में उपलब्ध है अर्थात् उसे किस प्रकार प्रोसैस किया गया है उबला हुआ है, ताज़ा है, रेशेदार है और घर का पका हुआ है) काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। अमेरिका में तो स्थिति इतनी खराब है कि फल, सब्ज़ियों और अनाज में उपलब्ध प्राकृतिक रेशा जब प्रोसेसिंग के दौरान नष्ट हो जाता है तो उन्हें संश्लेषित किया हुआ खाद्य रेशा (सिंथेटिक

जनसंपर्क अधिकारी, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, अंसारी नगर, नई दिल्ली—110029

फूड फाइबर) खाने में मिलाना पड़ता है। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, भौगोलिक अवस्थाओं, तकनीकी का स्तर और शहरीकरण की स्थिति में काफ़ी फर्क होने की वजह से ही पश्चिमी सभ्यता और पूर्वी सभ्यता के पालक देश के लोगों में मधुमेह के प्रसार में भी काफी फर्क देखने में मिलता है। पश्चिम के देशों में या पश्चिमी जीवनशैली के हामियों में मधुमेह का प्रसार जनसंख्या में औसतन 10 से 15 प्रतिशत है। जबकि साधारण, पारंपरिक ग्राम्य अथवा आदिवासी खान-पान कायम रखने बाली जनसंख्या में मधुमेह के रोगियों की संख्या 2 से 3 प्रतिशत है।

विश्व के अनेक भौगोलिक हिस्सों में खान-पान संबंधी आदतों और मधुमेह के प्रसार के आपसी संबंध को जानने के पश्चात् जो जानकारी मिली है उसका अब अच्छा इस्तेमाल होने लगा है। प्रोसैस्ड और रेशेविहीन भोजन का रसास्वादन करन वाले पश्चिमी देश जब डॉक्टरी सलाहों को मान कर पारंपरिक भोजन की ओर लौट रहे हैं। इस प्रयास में उन्हें अस्थायी रूप में मानसिक कष्ट तो हो रहा है परन्तु सरल ज़ीवनशैली की ओर लौटने में उन्हें शारीरिक कष्टों से जो मुक्ति मिल रही है उससे प्राप्त होने वाला आनंद आधुनिक भोजन के रस से मिलने वाले आनन्द से कहीं ज़्यादा आँका गया है। यह बिडम्बना है कि अपने देश में हम पश्चिम के **बासी भोजन** अर्थात् **जंक फूड** से लोगों को बचा पाने में असमर्थ हैं। पोषण विज्ञान और पोषणज बीमारियों पर अधुसंधान करने वाले वैज्ञानिकों की हिदायतें आधुनिक सभ्यता के रंग में डूबे हुए लोगों के मन पर से चिकने घड़े की तरह फिसल जाती हैं।

आयुर्वेद के जमाने में और आधुनिक शोध के विकास से पहले यह ज्ञान गाँव-गाँव उपलब्ध था कि मधुमेह से छुटकारा पाने के लिए, कड़वी चीज़ का सेवन अच्छा रहता है। मेथी के बीज, करेला, देशी खीरा, जामुन का फल और गुठली तथा निमोलियों का तेल मधुमेह के रोगियों के लिये विशेष लाभकारी हैं। इनके अलावा किशमिश, फलीदार सब्ज़ियाँ और साबुत दालों को भी मधुमेह के रोगियों के लिये फायदेमंद बताया गया है। प्राचीनकाल में वर्षों तक सीधे ही मनुष्यों पर परीक्षण करके यह तो मालूम कर लिया गया था कि उपरोक्त सभी खाद्य पदार्थों के सेवन से मधुमेह के रोगी को आराम मिलता है परन्तु आधुनिक शोधतंत्र के विकसित होने के बाद ही यह अच्छी तरह साबित किया जा सका है कि ये खाद्यपदार्थ मनुष्य के शरीर में पहुँचकर किसी प्रकार मधुमेह जैसी चयापचयी बीमारियों की प्रवलता को कम करते हैं। तत्पश्चात् आरोग्यकर आहारों की सूची तैयार करने में वैज्ञानिकों ने तत्परता दिखायी। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् ने मधुमेह के लिये आरोग्यकर आहारों के निर्धारण और मनुष्यों पर इनके प्रभाव की जाँच करने के लिये बड़े पैमाने पर काम किया है। इन शोधों का ज़्यादा प्रचार होना चाहिये था ताकि पश्चिमी जीवनशैली की ओर झुकने वाले व्यक्तियों को यह मालूम रहता कि जिस रास्ते पर वे जा रहे हैं उससे मधुमेह जैसी कई चयापचयी बीमारियों और कैंसर तक के वे शिकार हो सकते हैं।

चंडीगढ़ में पी० जी० आई० में गैस्ट्रोएंटेरोलॉजी विभाग में डॉक्टर **जे० बी० दिलावरी** ने दस साल तक कठोर मेहनत करके यह सिद्ध किया है कि राजमा, चना, दालों के साबुत बीज और फलीदार हरी सब्ज़ियों के सेवन से मधुमेह के रोगियों के शरीर में शर्करा की अधिक मात्रा को कम करके सामान्य स्तर तक लाया जा सकता है। परन्तु अफसोस कि उनकी यह महत्वपूर्ण खोज शोधपत्रिकाओं के अलावा केवल 'द स्टेट्समैन' में बीच के पन्नों में एक कालम में छोटी-सी खबर बन कर रह गई। इसलिये कि उस रोज खबरनवीस को कोई तगड़ी खबर नहीं मिल पायी और खानापूर्ति के लिये डॉक्टर दिलावरी बाली खबर भेज दी गई। खैर, डॉक्टर दिलावरी के शोध से इस बात की पुष्टि हुई है कि आरोग्यकर आहार में 'गैलेक्टोमेनस' नाम का एक खास रेशा होता है। इस रेशे की मौजूदगी में आँतों में शर्करा अवचूषण (एबजार्प्शन)

काफी धीमा हो जाता है। शर्करा, भोजन में मौजूद कार्बोहाइड्रेटों का विघटन होने से पाचनक्रिया से तैयार होती है। धीमा अवचूषण होने से रक्त में शर्करा की मात्रा सामान्य व सह्यस्तर से कभी ऊपर नहीं जाती है। यह आश्चर्यजनक है कि कुछ लोग इस महत्वपूर्ण और सादा बात को उम्र भर नहीं समझ पाते। वे यह भी नहीं समझते कि इस बात को समझने के लिये वैज्ञानिकों ने जीवन भर का समय और समाज से प्राप्त हुए करोड़ों रुपये लगा दिये हैं।

डॉक्टर दिलावरी के अलावा एक और अध्ययन जयपुर विश्वविद्यालय की प्लांट फिजियोलॉजी और बायोकेमिस्ट्री प्रयोगशाला में डॉक्टर **पुष्पा खन्ना** ने किया है। डॉक्टर पुष्पा ने **करेले** में मौजूद उस सक्रिय यौगिक को पृथक करने में सफलता हासिल की है जिसकी वजह से मधुमेह के रोगियों में रक्तशर्करा का बढ़ा हुआ स्तर सामान्य स्तर तक आ जाता है। यह यौगिक **पॉलीपेप्टाइड-पी** है। यह कई अमीनो अम्लों से मिलकर बना हुआ बड़े आकार का एक प्रोटीन अणु है। करेले के रस के सेवन से या करेले को उबाल कर खाने से मधुमेह के रोगियों को आराम पहुँचता है। टिशू-संवर्द्धन तकनीक से इस प्रोटीन को काफी मात्रा में तैयार किया जा सकता है। इसकी कम खुराक ही काफी असरदार होती है। इस अवस्था में इससे तैयार दवा सस्ती भी होगी। हालाँकि 'नवभारत टाइम्स' में 13 मई 1985 को छपी खबर में पॉलीपेप्टाइड-पी की मधुमेह से पीड़ित जानवरों और मनुष्यों पर सफलतापूर्वक आजमाइश की खबर छपी है परन्तु यह निश्चय नहीं हो पाया कि डॉक्टर खन्ना और उनके सहयोगियों द्वारा किए गये इस लाभकारी अध्ययन की अन्य वैज्ञानिकों ने पुष्टि की या नहीं और उनका यह अध्ययन किसी ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक पत्रिका में छपा या नहीं। इस अध्ययन पर शक की गुंजाइश तो नहीं परन्तु परम्परा के अनुसार 'पीयर रिव्यू' के बाद शोध पत्रिका में छपे अध्ययन को आमतौर पर वैज्ञानिक समुदाय ठीक मान लेता है।

मेथी के बीजों के सेवन से रक्त शर्करा में कमी लाने वाले दावे की सत्यता पर सन्देह की एक भी परत नहीं है। चूँकि यह अध्ययन विख्यात 'राष्ट्रीय पोषण संस्थान' के वैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। संस्थान की पत्रिका 'न्यूट्रीशन न्यूज' के मई, 1987 अंक में मेथी के बीजों के सेवन से मधुमेह के उपचार पर विस्तार से चर्चा की गई है। यह कहा गया है कि 25 से 100 मेथी के दानों के सेवन से **इंसुलिन** पर पूरी तरह निर्भर रहने वाले रोगी (इंसुलिन डिपेन्डेंट डायबीटिक) और इंसुलिन न लेने वाले रोगी (नॉन इंसुलिन डिपेन्डेंट डायबीटिक) को काफी फायदा पहुँचता है। मेथी के बीजों के सेवन से रक्त में कोलेस्टेरॉल और शर्करा दोनों की मात्रा में काफी हद तक गिरावट आ जाती है। इंसुलिन का सेवन रक्त में कोलेस्टेरॉल की मात्रा को बढ़ाये रखता है इसलिये मधुमेह के रोगियों में सूक्ष्मरक्तवाहिकाओं के रोग और हृदयवाहिकीय (कार्डियोवास्कुलर) विकारों के रूप में इसका दुष्प्रभाव प्रकट होता है। आमतौर पर होने वाले दुष्प्रभाव हैं आँखों की सूक्ष्मरक्तवाहिकाओं का विकृत होना, एथीरोकाठिन्य और गैन्ग्रीन। लेकिन मेथी के दानों का सेवन करने वाले मधुमेह के रोगियों में काफी समय बाद तक भी किसी दुष्प्रभाव का पता नहीं चला। एथीरोकाठिन्य, रेटीनोपैथी और गैन्ग्रीन होना तो दूर की बात रही। मेथी के बीजों की उचित मात्रा में ली गई खुराक से मधुमेह के रोगियों के मूत्र में आने वाली शर्करा काफी हद तक कम हो जाती है। इसके लिए 25 ग्राम मेथी के दाने 21 दिन लगातार खाने पड़ते हैं। अपने देश में मेथी की कमी नहीं है। आदिकाल से मेथी हमारे भोजन का अंग है। आयुर्वेद विधि से मधुमेह का उपचार करने वाले वैद्य एवं आचार्य मेथी के बीजों का मुक्त रूप से प्रयोग करते हैं। इस विश्वास को स्थापित करने में महान आयुर्वेदाचार्यों **सुश्रुत** और **चरक** के वे हमेशा ऋणी हैं। आधुनिक एलौपैथी चिकित्सक भी मेथी के गुणों की वजह से मधुमेह के मरीजों को इसके नियमित सेवन की सलाह देने लगे हैं। आयुवेद में पश्चिमी वैज्ञानिकों की दिलचस्पी अब इस कदर बढ़ चुकी है वे न केवल

'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के जरिये अपितु स्वयं भी सीधे तौर पर भारत में उपलब्ध आयुर्वैदिक ज्ञान ओषधीय पौधों और पारंपरिक, देशी तथा आदिवासियों में प्रचलित चिकित्सा पद्यतियों की खोज के पीछे बावले हैं। इसका प्रमाण है 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' में वर्षों से सक्रिय पारम्पिरिक चिकित्सा प्रभाग और भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय के पास आने वाले अनगिनत विदेशी अनुरोध।

यह ठीक है कि मधुमेह के उपचार में इस्तेमाल होने वाले आरोग्यकर आहार एक प्रकार से औषधीय गुणों की वजह से इस्तेमाल किये जाते हैं और इनका असर उतना नहीं जितना एलौपैथी-पद्धति की रासायनिक ओषधियों में होता है, फिर भी इनकी प्रभावोत्पादकता और दुष्प्रभावों की गैर मौजूदगी इन्हें सुरक्षित करार देती है। इसलिये आरोग्य आहारों के सेवन के लिए रोगी व्यक्ति को किसी अतिरिक्त प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं। न ही इनकी सलाह देने वालों को गलाकाट विज्ञापन प्रचार में अपना सिर खपाने की ज़रूरत महसूस होती है। क्योंकि भारत के घर घर में पारम्परिक रूप से यह ज्ञान मौजूद है। मधुमेह के रोगियों के लिये सुझाये गये आरोग्यकर आहारों की प्रभावोत्पादकता और रोगियों द्वारा इन आहारों के सेवन में नियमितता आदि वरतने सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर काफी समय से उपयोगी बहस जारी है। इसी बहस से निकले परिणामों का आकलन विख्यात चिकित्सा पत्रिका 'न्यू इंग्लैंड जरनल ऑव मेडिसिन' के 6 नवम्बर 1968 के अंक के एक लेख में विस्तार से किया गया है। इस लेख—**इज डाइट द कॉरनरस्टोन इन मैनेजमेंट ऑव डायोबीटीज'** में यूनीवर्सिटी ऑव वाशिंगटन स्कूल ऑव मेडिसिन के **फ्रांसिस सी वूड जूनियर** और **एडविन एल बियरमैन** ने आरोग्यकर आहारों की सिफारिश करते हुए जिस महत्वपूर्ण बात को दोहराया है वह यही है कि आरोग्यकर आहारों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनके इस्तेमाल से गुर्दे, आँख और हृदयवाहिकीय बीमारियों की विकटता से रोगी काफी समय तक बचा रहता है। 'अमेरिकन हार्ट एसोसिएशन', 'अमेरिकन डायबीटिक एसोसिएशन' और 'भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्' ने मधुमेह से रोगियों के लिए आरोग्यकर आहारों की जो सूची तैयार की है उनका भरपूर उपयोग होना चाहिए। बीयरमैन और वूड ने अपने लेख में आरोग्यकर आहारों की सिफारिश के साथ यह भी कहा है कि अभी मधुमेह और आरोग्यकर आहारों से आपसी सम्बन्ध पर पोषण वैज्ञानिकों द्वारा कुछ और शोध करना ज़रूरी है ताकि यह मालूम हो सके कि क्या केवल निर्धारित आरोग्यकर आहार अपनाने भर से मधुमेह को पनपने से रोकने या मधुमेह से पूरी तरह छुटकारा पाने में सफलता हासिल हो सकती है। आशा है इस दिशा में होने वाला नवीन शोध इन प्रश्नों का कोई तसल्लीबख्श जवाब ढूँढ लेगा। ☐☐

(इस्वा फीचर्स)

भेद खोलते ये दाँत

संगीता भार्गव

कहते हैं कि ज्योतिषी मस्तिष्क की रेखाओं से भूत-भविष्य की कई महत्वपूर्ण घटनाओं का पता लगा लेते हैं। चिकित्सा का क्षेत्र भी कम चमत्कारिक नहीं है। अब तो यह भी संभव हो गया है कि दाँतों की बनावट, उनका आकार और उनके गठन के आधार पर मनुष्यों की आयु और लिंग का निर्धारण किया जा सके। कभी-कभी तो ये दाँत मनुष्य प्रजातियों का भी रहस्य खोल देते हैं। उपर्युक्त लक्षण रोगोपचार करने के लिए तो महत्वपूर्ण हैं ही, अपराधिक मामले सुलझाने में भी वरदान साबित होते हैं।

चिकित्सा विज्ञान में दाँतों के विभिन्न लक्षणों से निम्न कार्यों में सहायता मिल सकती है—1. प्रजनन क्षमता, 2. भ्रूण के विकास और उनके आधार पर लिंग निर्धारण, 3. प्रजाति विशेष का पता लगाकर उस प्रजाति में फैले सामूहिक रोग का निदान।

79 स्टेट बैंक कॉलोनी, जी० टी० रोड, दिल्ली–9

इसी प्रकार न्याय विज्ञान में ये निम्न कार्यों के लिए कारगर हो सकते हैं—1. विवाह की आयु का निर्धारण 2. प्रजाति विशेष का पता लगाकर अपराधियों की खोज, 3. बलात्कार या यौन अपराधों का निबटान।

दाँतों के विकास का एक निश्चित क्रम है। यह विकास क्रम गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है और लगभग 20 वर्ष की आयु तक चलता रहता है। कभी-कभी यह क्रम तीस वर्ष की आयु तक भी चलता रहता है अपवाद के रूप में यह भी देखा गया है कि किसी व्यक्ति की "अचल दाढ़" चालीस वर्ष की आयु में भी निकलती है। परन्तु हर स्थिति में दाँतों का यह विकास क्रम तीन चरणों में पूरा होता है :—1. एक साथ बहुत से दाँत निकलना, 2. जड़ों तथा ऊपर के भाग पर कैल्शियम जमना यानी कैल्सीकरण, 3. दाँतों का मसूड़ों से बाहर फूटना।

आज से लगभग पचास वर्ष पहले महान दंत चिकित्सा विज्ञानियों **शोवर और मेसलर** ने रेडियोग्राफी विश्लेषण द्वारा दाँतों के विकास का एक चार्ट तैयार किया। यह चार्ट आज भी इतना महत्वपूर्ण है कि आयु निर्धारण के लिए आज भी अपराध विज्ञानी इस चार्ट के आधार पर, दाँतों की संरचना का अध्ययन करते हैं। चार्ट की सहायता से प्रत्येक दाँत के विकाम क्रम का अध्ययन किया जाता है और दूध के दाँत टूटने के बाद दंतमूल बनने की प्रक्रिया का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है। सूक्ष्म विश्लेषण इसलिए कि कभी-कभी इस विकास-क्रम और प्रक्रिया में अस्थिर प्रवृत्ति भी नज़र आती है। 1957 में प्रसिद्ध दंत-विज्ञानी भूकाला द्वारा तैयार किए गए आँकड़े इस अस्थिर प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं। आँकड़ों से पता चलता है कि अगर इस अस्थिर प्रवृत्ति का गहन निरीक्षण न किया जाए तो आयु निर्धारण में एक माह से लेकर एक वर्ष तक का अंतर आ सकता है।

12 वर्ष से लेकर 20 वर्ष तक की आयु के लोगों में दूसरी दाढ़ का विकास क्रम समान और स्थिर प्रवृत्ति वाला परिलक्षित होती है, अतः इस आयु वर्ग के लोगों की आयु का निर्धारण करने में दूसरी दाढ़ ही उपयोगी आधार प्रदान करती है।

दाँतों के निकलने और उनके विकास-क्रम को आधार मानकर आयु का सही निर्धारण तभी संभव है जबकि दाँतों में खनिजों के आने के लक्षण, शिखरों तथा दंतमूल के उद्भेदन एवं परिपक्वता आदि का निरीक्षण और विश्लेषण भी किया जाए, इन प्रक्रियाओं का निरीक्षण और विश्लेषण रेडियोग्राफी एवं ऊतकीय अध्ययन की सहायता से किया जा सकता है।

लिंग निर्धारण

सर्वविदित है कि परिपक्व दाँतों में लिंग के आधार पर दो प्रकार की संरचनाएँ होती हैं। परिपक्व दाँतों के विकास के सभी चरणों में लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट विकास होने की प्रवृत्ति होती है। दाँतों के कैल्सीकरण और उनके निकलने की सभी अवस्थाओं में भी यही प्रवृत्ति रहती है। जबड़े के दाँतों के निकलने में स्त्रियों और पुरुषों में अधिकतम भेद होता है। दाँतों के आकार में भी प्रायः अंतर पाया जाता है।

1962 में अपने अनुसंधान के दौरान दंत विज्ञानी **क्रागमैन** ने पाया कि पुरुषों के दाँत स्त्रियों के दाँत की अपेक्षा अधिक लम्बे होते हैं साथ ही पुरुषों में नीचे की ओर प्रायः पाँच दाढ़ें बाहर की ओर निकली होती हैं जबकि स्त्रियों में प्रायः चार ही दाढ़ें बाहर की ओर निकली होती हैं।

जाति निर्धारण

हालाँकि प्रत्येक जाति में दाँतों में एकरूपता का कोई स्पष्ट आधार तो अब तक निर्धारित नहीं किया जा सका और न ही इन्हें प्रामाणिक मानकर कोई निष्कर्ष ही निकाला जा सकता है, परन्तु फिर भी कुछ स्थान विशेष की प्रजातियों के दाँतों में कुछ समरूप लक्षण पाए जाते हैं।

बेलचानुमा ऊपरी कृंतक दाँत चीनी, जापानी, मंगोल, भारतीय और एस्कीमो का विशेष लक्षण है। इन आबादियों में यह लक्षण यूँ तो अधिकतम देखा जाता है फिर भी यह लक्षण उत्तरी पश्चिमी यूरोपीय

पूर्वजों में ऊपरी जबड़े के मध्य कृंतक दाँतों में प्रायः देखा जाता है। जापानियों, चीनियों और मंगोलों में जहाँ बेलचेनुमा कृंतक दाँत बहुतायत से पाए जाते हैं, वहीं ऊपरी जबड़े के दाँतों में कैराबेली (**Carabelli**) लक्षण तुलनात्मक रूप से अनुपस्थित होते हैं। अमेरिकी भारतीयों में प्रायः निचली दाढ़ों का अग्रसर (**Protostycid**) पाया जाता है और काले लोगों के जबड़े में दो नोक वाले दाढ़ पूर्व पहले दाँत और तीन नोक वाले दाढ़ पूर्व दूसरे दाँत खूब होते हैं।

क्राउस एवं **फर** नामक दो वैज्ञानिकों ने 1965 में पूर्व दंत-संरचना पर किए गए अपने अनुसंधान के आधार पर 16 ऐसे लक्षणों का उल्लेख किया है जो प्रजाति विशेष के लिए पहचान चिह्न के रूप में इस्तेमाल किए जा सकते हैं। दाँत निकलने के समय पर जलवायु का भी असर पड़ता है। उदाहरण के लिए गर्म प्रदेशों की आबादी के बच्चों में ठंडे प्रदेशों की अपेक्षा जल्दी दाँत निकलते हैं। देहाती माँ-बाप के खान-पान का असर भी बच्चों के दाँत निकलने पर पड़ता है। प्रायः देखा गया है कि धनी लोगों में बच्चों के दाँत गरीब लोगों के बच्चों के दाँतों की अपेक्षा जल्दी निकलते हैं। यहाँ तक कि शहरी बच्चों के दाँत भी देहाती बच्चों की अपेक्षा जल्दी उगते पाए गए हैं। कैल्सीकरण की दर भी गर्म प्रदेशों में भिन्न-भिन्न होती है।

इस प्रकार मुँह में बंद ये दाँत भी मनुष्य के बारे में अनेक रहस्य खोलने में सक्षम हैं। □□

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

प्रदूषणमुक्त फसल : सुरक्षा का नवीन उत्तम साधन

डॉ० मो० मकसूद खाँ

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए संसार में सदैव ही प्रयास होते रहे और आधुनिक वैज्ञानिक खेती ने तो देश में हरित क्रान्ति लाकर फ़सल को कई गुना तक बढ़ा दिया है। लेकिन कृषि उत्पादन बढ़ाने के अब तक के सारे प्रयासों में सबसे जटिल समस्या फ़सल सुरक्षा की है। खेतों से लेकर अनाज भण्डारण तक हज़ारों प्रकार के कीटों द्वारा हमारी कुल उपज का लगभग 20% हिस्सा नष्ट कर दिया जाता है। यदि इतनी बड़ी क्षति को बचा लिया जाए तो देश की खाद्य समस्या बहुत कुछ दूर हो सकती है। अब तक इनकी रोकथाम के लिए तरह-तरह के उपयोग किये गये लेकिन सबसे सफल प्रयास कीटनाशक दवाइयों का पाया गया और आज संसार में बड़े पैमाने पर यह दवायें प्रयोग की जाती हैं। इनसे जहाँ एक ओर कीटों पर नियंत्रण होता है वहीं दूसरी ओर आज इनका प्रदूषण इतना अधिक हो गया है कि पूरे मानव जाति के लिये खतरा बढ़ता जा रहा है। यह कीटनाशक रसायन मानव जाति के लिये कितने घातक सिद्ध हो रहे हैं यह समय-समय पर दी गयी वैज्ञानिक रिपोर्टों से सामने आ रहे हैं। 1962 में डी० डी० टी० का प्रयोग पूरे संसार में बड़े पैमाने पर किया गया और इसने चौंका देने वाली सफलता भी प्राप्त की लेकिन धीरे-धीरे कुछ कीट इसको पचाने के आदी (रेजिस्टेन्ट) हो गए और तभी **रैशल कार्सन** नामक एक महिला शोधकर्ता ने यह चेतावनी दी थी कि इस दवा का एक छोटा सा कण भी मानव जिगर को क्षति पहुँचा सकता है। इस दवा में संचयी गुण होने के कारण यह मानव वसा में धीरे-धीरे एकत्र होती रहती है और अधिक मात्रा में एकत्र होने से इसका प्रभाव घातक होने लगता है। दिल्ली में किये गये सर्वेक्षण की एक रिपोर्ट के अनुसार वहाँ के मनुष्यों की वसा में 98 पी० पी० एम० तक डी० डी० टी० पायी गयी जो संसार में सबसे अधिक है। आज पश्चिमी जगत में डी०डी० टी० पूर्ण प्रतिबन्धित है। लेकिन भारत में प्रतिबन्ध होने

कीट विज्ञान विभाग, कुलभास्कर आश्रम डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद

के बावजूद आज भी यह दवा प्रयोग हो रही है। इसके अरिक्त बी० एच० सी०, सोडियम सायनाइड एवं डायेलड्रिन ऐसी दवायें अमेरिका में बिल्कुल प्रयोग से बाहर हैं और यूरोप में बहुत ही सीमित तथा सावधानी से प्रयोग हो रही हैं, लेकिन भारत में सामान्य प्रयोग के लिए यह दवावें अभी भी अधिकारिक तौर पर स्वीकृत हैं।

एक रिपोर्ट के अनुसार पंजाब में जून-जुलाई (1986) के महीने में आग्रेनोफॉस्फेट रसायन से 12 मौतें हुईं और यह सभी किसान तथा कृषि मज़दूर थे। बी० एच० ए० आई० की रिपोर्ट में कहा गया है कि विकासशील देशों में उन कीटनाशकों के, जिन पर विकसित देशों में पहले ही प्रतिबन्ध लगाया जा चुका है, इस्तेमाल से हर वर्ष विषाक्तता के 35.75 लाख मामले होते हैं जिनमें 10 हज़ार मामले जानलेवा होते हैं। कुछ समय पूर्व आई० टी० आर० सी० लखनऊ ने वहाँ के मेडिकल कॉलेज के न्यूरोलॉजी विभाग में किये गये एक अध्ययन में पाया कि 20 प्रतिशत कृषि मज़दूरों की आँखें कीटनाशक दवाइयों के प्रभाव से क्षतिग्रस्त हो गयी थीं

पिछले तीन दशकों में भारत में कृषि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई साथ ही कीटनाशक दवाइयों की खपत 2300 टन वार्षिक से बढ़कर 66000 टन वार्षिक हो गयी है। लेकिन इनके प्रयोग में अति सावधानी न बरतने से यह मानवजाति के लिये हानिकारक सिद्ध हो रही हैं। भारत में इनके दुष्परिणाम किसानों में साक्षरता की कमी से भी अधिक हो रहे हैं। तीसरी दुनिया में कीटविषों की विषाक्तता के कुल मामलों में से एक तिहाई मामले अकेले भारत में होते हैं और कृषि मजदूर इसके सर्वाधिक शिकार होते हैं।

बचाव का एक नया प्रयास

किसानों में साक्षरता लाकर और कीट विषों का उचित ढँग से प्रयोग और सावधानियों तथा बचाव के सभी नियमों का पूर्ण पालन करने का प्रदूषण को बहुत कुछ कम किया जा सकता है, लेकिन इनका मानवजाति के लिये घातक प्रभाव पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता। कीट विष तैयार करने वाली फैक्ट्रियों से लेकर कृषि उपज के उपभोक्ताओं तक यह विष किसी न किसी रूप में हानि अवश्य पहुँचा रहे हैं। इससे पूरी तरह से रोक-थाम के लिये या तो जैविक नियंत्रण (बायोलाजिकल कण्ट्रोल) पूरी तरह से अपनाया जाए जो कि असम्भव है या फिर कोई ऐसा रसायन तैयार किया जाए जिसका घातक प्रभाव केवल कीटवर्ग के लिये ही हो तथा मानव जाति के लिये किसी भी प्रकार से हानिकारक न हो।

इसके लिये कीट वैज्ञानिक लगातार प्रयास में लगे हैं और तरह-तरह के रसायन विकसित कर रहे हैं। इन रसायनों में जिनका कुप्रभाव मानवजाति पर न पड़ कर केवल कीट वर्ग पर ही हो, इसी तरह का एक चमत्कारिक रसायन सामने आया है, जिसे कीट वृद्धि अवरोधक (इनसेक्ट ग्रोथ इनहिबिटर) कहते हैं और वैज्ञानिकों का मत है कि भविष्य में इसका प्रयोग कीट विषों के प्रदूषण से बचाव में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

कीट वृद्धि अवरोधक

सन् 1970 के लगभग फिलिप दूफर के वैज्ञानिकों को इस प्रकार के रसायनों का आकस्मिक पता लगा। इसके उपरान्त लगातार शोधकार्य होता रहा। सर्वप्रथम बेन्जोइल फिनाइल यूरिया वर्ग के रसायनों पर कार्य हुआ, उल्लेखनीय सफलता मिली तत्पश्चात् दूसरे ग्रुप के रसायन जैसे पालिक्सीन तथा निकोमाइसीन, कैप्टन एवं सल्फेनीसाइड, ट्राईएजीन, फिनाइल कार्बामेंट, कीटाजीन, टूनिकामाइसिन एवं एवरमेक्टीन को भी कीट वृद्धि अवरोधक के रूप में प्रयोग किया गया तथा विभिन्न प्रकार के कीट विष तैयार किये गये जैसे पेन्फ्लूरान, डाइफ्लूबेन्जरान, बीसाजीर, डाई एमीनो फूरिल ट्राइएजीन, काइरोमेजीन तथा एवरमेक्टीन-बी 1 इत्यादि। इन रसायनों की अनेक विशेषताएँ हैं जो आमतौर पर प्रयोग होने वाले रसायनों में नहीं मिलतीं। साधारणतया प्रयोग होने वाले कीटविष प्राय: कीटों को मार तो देते हैं लेकिन बचे हुये कीटों की प्रजनन शक्ति अगले चक्र में बढ़ा भी देते हैं, ऐसा

शोध कार्य में पाया गया है। इस प्रकार अण्डों की संख्या बढ़ जाने से दिन प्रति दिन कीटों की समस्या बढ़ती जाती है। लेकिन कीट वृद्धि अवसेधक के प्रयोग से यह समस्या आसानी से हल हो सकती है। इसके अतिरिक्त इस वर्ग के रसायनों का कीटों पर बहुमुखी प्रभाव होता है। पहले तो इसके घातक प्रभाव से अधिकतर कीट मर जाते हैं और जो कीट वच जाते हैं उनके अन्दर शारीरिक विकार उत्पन्न होने लगता है। कीटों में मोलटिंग के समय रसायनों के प्रभाव से जैविक क्रियायें बिगड़ जाती है, जिनसे कीटों की सुचारू रूप से वृद्धि नहीं हो पाती और कीटों का रूप बदलने लगता है तथा इनके मुखांग भी कमजोर हो जाते हैं जिससे यह भोजन नहीं कर पाते तथा सुचारू रूप से जैविक परिवर्तन या क्रियाएँ न होने से कीटों के जीवन की अवधि शिशुओं में कम और प्रौढ़ में अधिक हो जाती है जिससे इनका जीवन-चक्र बिगड़ जाता है तथा इन सब अवस्थाओं को झेल कर जो वचे हुये कीट प्रौढ़ हो जाते हैं उनकी प्रजनन शक्ति कम हो जाती है जिससे अण्डों की संख्या कम हो जाती है तथा अधिकतर अण्डों से बच्चे पैदा नहीं होते। वे नपुंसक (स्टेराइल) हो जाते हैं जिसे कीटों का वन्ध्यकरण कहा जा सकता है। शोधकार्य में यह भी पाया गया कि जिन अण्डों से डिम्ब पैदा हो जाते हैं उनके अन्दर भी रसायनों के प्रभाव से नपुंसकता पैदा हो जाती है तथा अण्डों की संख्या में कमी तथा कुछ अण्डे स्टेराइल हो जाते हैं। इस प्रकार इन रसायनों के बहुमुखी प्रभाव से खेतों में सफल कीट नियंत्रण हो सकता है। अभी इस वर्ग के रसायन शोध के अन्दर ही हैं लेकिन इस ग्रुप का एक रसायन डिमिलिन पिछले कुछ दिनों से खेतों में प्रयोग हो रहा है तथा सफल परिणाम भी मिल रहे हैं।

मानव के लिए सुरक्षित

उदाहरण के लिये तितली वर्ग के तीन कीटों पर पेन्फ्लूरान नामक रसायन के घातक प्रभाव का संक्षिप्त विवरण तालिका—1 में दर्शाया गया है, जिससे पता चलता है कि इस रसायन का 50 प्रतिशत कीटों को मारने के लिये एल० डी० 50 (लीथल डोज 50) घोल 0.000006 से 0.000009 प्रतिशत तथा 0.0001 प्रतिशत तक का ही है। यह मात्रा इतनी कम है कि मनुष्यों पर इसका कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि इस वर्ग के रसायन से मनुष्य सुरक्षित है। इसका घातक प्रभाव केवल कीटों तक ही है, लेकिन कुछ वैज्ञानिकों ने इस वर्ग के रसायनों का मनुष्य पर कुप्रभाव पाया। लेकिन इसकी मात्रा खेतों में प्रयोग होने वाली मात्रा से अधिक है इसलिये इसे मनुष्यों के लिये सुरक्षित कहा जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि इस वर्ग के कीटविषों के प्रयोग से फसल सुरक्षा के क्षेत्र में चमत्कारी सफलता के साथ-साथ मानव-जति को होने वाली हानि से भी बचाया जा सकता है। इस प्रकार कीट-रसायनों के प्रदूषण (जो एक गम्भीर समस्या है) से बचने में सफलता पायी जा सकती है।

तालिका—1

तितली वर्ग के बिभिन्न कीटों पर पेन्फ्लूरान का उदर विष के रूप में शारीरिक विकार तथा घातक प्रभाव

घोल%	पेरीकेलिया रिसीनी		यूपराक्टिस इसीलिया		अटेवा फैबरीसियेला	
	मृत्यु दर (%)	शारीरिक विकार (%)	मृत्यु दर (%)	शारीरिक विकार (%)	मृत्यु दर (%)	शारीरिक विकार (%)
0.000001	50	4	36	—	40	4
0 00001	64	8	50	8	44	10
0.0001	70	8	70	10	50	6
0.001	80	6	10	8	80	2
0.01	100	—	100	—	100	—

एल० डी० 50 :—पेरकेलिया रिसीनी=0.000006
यूपराक्टिस इसीलिया=0.000009
अटेवा फेबरीसियेला=0.0001

□□

शरीर में ज़्यादा लोहा भी ठीक नहीं

कन्हैयालाल मंगलानी

अमेरिका के ब्रांक्स वेटेरन एडमिनिस्ट्रेशन मेडिकल सेंटर नाम का अस्पताल। इस अस्पताल में ले जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को "मेटल डिटेक्टर" लगे दरवाज़े से होकर निकलना होता है। यह व्यवस्था एक डॉक्टर पर एक चिड़चिड़े रोगी द्वारा गोली चलाने के बाद प्रारम्भ की गई थी। लेकिन यही "मेटल डिटेक्टर" एक दिन लोगों के कौतूहल का केंद्र बन गया। इस कौतूहल का कारण था 47 वर्ष का एक रोगी।

अच्छी तरह से तलाशी लेने, यहाँ तक कि बेल्ट तक उतार देने, के बाद भी जब रोगी को "मेटल डिटेक्टर" से होकर गुजारा गया तो भी अलार्म बज उठा। सुरक्षाकर्मियों के साथ-साथ सभी लोग परेशान। सबकी परेशानी और जिज्ञासा को शांत किया रोगी के चिकित्सक **डॉ० विक्टर हर्बर्ट** ने। डॉ० हर्बर्ट के अनुसार उस रोगी के शरीर में मौजूद लोहे की मात्रा ही डिटेक्टर का अलार्म बजाने के लिए पर्याप्त थी।

वैज्ञानिकों के अनुसार एक स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में लगभग 4 ग्राम लौह तत्व पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर को प्रतिदिन लगभग 2.2 मिलीग्राम लौह तत्वों की ज़रूरत पड़ती है। साधारण दशाओं में आँत हमारे भोजन में मौजूद लौह तत्वों में से केवल दस प्रतिशत भाग को ही ग्रहण कर पाती है और इतना ही पर्याप्त भी होता है।

लेकिन जब यह संतुलन बिगड़ जाता है तब आँतें अधिक मात्रा में लौह तत्वों का अवशोषण करने लगती हैं। यह बढ़ी हुई मात्रा खर्च न होकर शरीर के विभिन्न अंगों में जमा होने लगती है। अग्न्याशय, यकृत, हृदय, और हाथ-पैरों के जोड़ इससे सबसे पहले प्रभावित होते हैं। इस बीमारी को **"हीमोक्रोमेटोसिस"** के नाम से जाना जाता है। आजकल ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस, स्वीडेन, ब्रिटेन और अमेरिका में प्रति हज़ार 2 से 3 व्यक्ति इसके शिकार होते हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार **हीमोक्रोमेटोसिस एक** आनुवंशिक रोग है, जो संतान को अपने माता-पिता से प्राप्त होता है। इस रोग को जन्म देने वाली जीन माता-पिता दोनों से ही प्राप्त होने पर व्यक्ति रोग का शिकार होता है। लौह तत्व धीरे-धीरे शरीर में जमा होते रहते हैं और बीमारी का पता लगने में 20 से 40 वर्ष लग जाते हैं।

इस बीमारी में अग्न्याशय और यकृत में लौह तत्वों की मात्रा 50-100 गुना, और हृदय में 10-15 गुना बढ़ जाती है। लौह तत्वों की बढ़ी हुई मात्रा से प्रारंभ में शरीर पर कोई प्रभाव नही पड़ता, लेकिन जब मात्रा 20–40 ग्राम तक पहुँच जाय, तब बीमारी के लक्षण पता चलते हैं। लौह तत्व की इतनी मात्रा "मेटल डिक्टेटर" के अलार्म को बजा सकने के लिए पर्याप्त है।

जिन अंगों में लौह तत्व जमा हो जाते हैं, उन्हें क्षति पहुँचती है। सबसे पहले अग्न्याशय की कोशिकाओं के क्षतिग्रस्त हो जाने से व्यक्ति को मधुमेह हो जाता है। हीमोक्रोमेटोसिस के 80 प्रतिशत रोगी मधुमेह का शिकार हो जाते हैं। बाद में त्वचा का रंग बदल कर गहरा भूरा हो जाता है। यकृत की कोशिकाओं के क्षतिग्रस्त हो जाने से यकृत सिरोसिस हो जाता है, जो बाद में कैंसर जैसे भयानक रोग को जन्म देता है। हृदय में लौह तत्वों की बढ़ी हुई मात्रा मांसपेशियों को नुकसान पहुँचाती है, जिससे हृदय गति बंद हो सकती है। हाथ-पैरों के जोड़ों में अधिक लौह तत्व जमा हो जाने से गठिया हो सकता है और वृषभों (टेस्टिस) में जमा लौह तत्व नपुंसकता को जन्म दे सकता है।

385/3, कस्तूरबा नगर, सारस्वत भवन के पीछे, रतलाम—457001 (म० प्र०)

यह रोग विशेष रूप से पुरुषों को ही होता है। महिलाओं को यह रोग ऋतुचक्र की समाप्ति के बाद ही होता है। हीमोक्रोमेटोसिस का संदेह होते ही रक्त की जाँच बहुत आवश्यक होती है। मधुमेह, यकृत और हृदय रोगों से पीड़ित ऐसे लोगों को, जिनमें बीमारी का कारण स्पष्ट न हो, हीमोक्रोमेटोसिस की पुष्टि के लिए रक्त की जाँच अवश्य करा लेनी चाहिए।

इस रोग से बचने के लिए समय पर उपचार बहुत आवश्यक है। इसके उपचार में प्रारम्भ में तो शरीर में जमा अतिरिक्त लौह भंडार को कम करने वाले पदार्थों का इंजेक्शन दिया जाता है, लेकिन यदि स्थिति थोड़ी गंभीर हो गई है तो कम से कम साल दो साल तक प्रति सप्ताह या दो सप्ताह में एक बार एक यूनिट खून निकलवाने की सलाह दी जाती है।

लेकिन ध्यान रखें उपचार से लाभ तभी तक होता है जब तक लौह तत्वों से शरीर के ऊतकों को कोई हानि न पहुँची हो।

हाँ, हीमोक्रोमेटोसिस के रोगियों को बिना लौह तत्व वाले भोजन की सलाह कभी नहीं दी जाती, क्योंकि भोजन में लौह तत्व बहुत थोड़ी मात्रा में ही पाए जाते हैं, जो शरीर की दैनिक आवश्यकता भर के लिए ही होते हैं। परन्तु यह ध्यान रहे कि जिन व्यक्तियों के शरीर में लौह तत्व की कमी है उन्हें शरीर में लौह शक्ति प्राप्त करने के लिये लौह तत्व की गोलियाँ या लौह संपूरित विटामिन कभी नहीं खाने चाहिए, अन्यथा वे लौह शक्ति प्राप्त करने के वजाय हीमोक्रोमेटोसिस का शिकार हो जाएँगे। बिना चिकित्सक की सलाह लिए कभी कुछ नहीं करना चाहिए। □□

तत्वों के अल्पांश का पता लगाने के लिए न्यूट्रॉन सक्रियकरण विश्लेषण

वीरेन्द्र शर्मा

सबसे हल्के तत्त्व हाइड्रोजन को छोड़कर न्यूट्रॉन सभी तत्त्वों का एक आवश्यक घटक है। जैसे-जैसे हाइड्रोजन से आरंभ करके हम यूरेनियम तक पहुँचते हैं हम देखते हैं कि पारमाण्विक नाभिक में न्यूट्रॉनों की कुल संख्या बढ़ती जाती है। नाभिक के अन्दर बंधनयुक्त अवस्था में न्यूट्रॉन, प्रोटॉन के सहोदर (सिबलिंग) की तरह व्यवहार करता है वास्तव में प्रोटॉन व न्यूट्रॉन नाभिक के अन्दर एक ही कण की अलग-अलग नाभिकीय अवस्थायें हैं। इनके बीच में मीज़ॉन कणों (कण त्रयी) की अदला-बदली होती रहती है। नाभिक के अन्दर इनके प्रबल आकर्षण का कारण यही मीज़ॉनिक डोरी है, मीज़ॉनों का बादल है।

यूँ न्यूट्रॉन एक आवेशहीन कण है जबकि प्रोटॉन पर उतना ही धनात्मक आवेश है जितना इलेक्ट्रॉन पर रिणात्मक आवेश है। परन्तु नाभिक के बाहर, मुक्त अवस्था में न्यूट्रॉन न सिर्फ़ एक विखण्डनशील कण हैं, भेदनशील भी हैं। विद्युत् व चुम्बकीय बलों से गुजरने पर यह अपने मार्ग से विचलित नहीं होता अलबत्ता हाइड्रोजन बहुल पदार्थ में दाखिल होने पर यह प्रोटॉन से टकराकर धीमा ज़रूर हो जाता है, रुक भी जाता है।

बला की भेदन क्षमता के कारण एक नया नाभिक इसे आसानी से ग्रहण कर लेता है। इस घटना को 'न्यूट्रॉन कैप्चर' कहते हैं। परन्तु 'न्यूट्रॉन कैप्चर' के बाद वह नाभिक जिसने न्यूट्रॉन का अभिग्रहण किया है, रेडियोधर्मी हो जाता है।

तत्त्वों के स्थायी बने रहने के लिए ज़रूरी है कि न्यूट्रॉन-प्रोटॉन अनुपात उनके नाभिकों में एक क्रान्तिक सीमा के नीचे बना रहे। लेड (सीसा) के बाद तत्त्वों

व्याख्याता, 882/29, कमल कॉलोनी, रोहतक—124001 (हरियाणा)

की सारणी के सभी तत्त्व इसीलिए रेडियोधर्मी हैं, क्योंकि इनमें न्यूट्रॉन-प्रोटॉन अनुपात एक क्रान्तिक मान से ज़्यादा है। न्यूट्रॉन-प्रोटॉन का अनुपात 1.47 से ज़्यादा होने पर तत्त्व रेडियोधर्मी हो जाता है। उत्तर-यूरेनियम तत्त्व इसीलिए रेडियोधर्मी हैं। यह भी तथ्य है कि यदि हम प्राकृतिक रूप से उपलब्ध रासायनिक तत्त्वों के लिए एक आरेख न्यूट्रॉन संख्या व प्रोटॉन संख्या के बीच तैयार करें, तब एक ऐसी पट्टी प्राप्त होती है जिस पर पड़ने वाले सभी तत्त्व (नाभिक) अपेक्षतया स्थिर होते हैं। अपने पड़ोमी नाभिकों की तुलना में इनसे न्यूट्रॉन या प्रोटॉन बिलगाना बहुत अधिक ऊर्जा की अपेक्षा रखता है जबकि इस पट्टी (आइलैण्ड ऑव स्टेबिलिटी) के दोनों ओर जो तत्त्व या नाभिक हैं वे या तो अस्थिर हैं या रेडियोधर्मी। इन अपेक्षतया अस्थिर नाभिकों पर यदि भेदनशील न्यूट्रॉनों की बौछार की जाये तब ये नाभिक एकदम से रेडियो-धर्मी हो उठते हैं।

हमारी विषयवस्तु का आधार तत्त्वों की यही अर्जित या न्यूट्रॉन अभिप्रेरित रेडियोधर्मिता है। 'न्यूट्रॉन ऐक्टिवेशन एनालिसिस' की नींव है यही रेडियोधर्मिता।

विषाणु-जीवाणु, हार्मोन, किण्वक, विटामिन जैसी सूक्ष्म प्रणालियों में आवश्यक घटक के रूप में जिन तत्त्वों का अल्पांश मौजूद होता है उन्हें ट्रेस एलिमेन्ट्स कहा जाता है। जन्तु ऊतकों में ट्रेस एलिमेन्ट्स की कमीबेशी का रोगों से सीधा सम्बन्ध है। न्यूट्रॉन ऐक्टि-वेशन एनालिसिस रोग निदान का आधार बन सकती है।

इस पद्धति में जन्तु ऊतक का इस्तेमाल एक टाग्-इट या सैम्पॅल के रूप में किया जाता है। अकेला तंत्राणु तन्तु (नस तन्तु या नॅर्व फ़ाइबॅर) भी टाग्इट बन सकता है—बालों की अकेली लट भी। बस एक न्यू-ट्रॉन बहुल स्रोत चाहिये, जिससे अविरल रूप में न्यूट्रॉन निकलते रहें। कैलीफ़ोर्नियम-252 एक ऐसा ही न्यूट्रॉन प्रचुर स्रोत है जिसके प्रति मिलीग्राम से स्वतः स्फूर्त विखंडन के फलस्वरूप दो अरब चौंतीस करोड़ न्यूट्रॉन निकलते हैं, प्रति सैकेण्ड, अविरल रूप से।

पॉवर रिएक्टॅर (एटमी भट्टी) भी एक बेहतरीन न्यूट्रॉन स्रोत के रूप में काम में लाई जाती है जिसमें न्यूट्रॉन-प्रवाह एक लाख खरब प्रति वर्ग मीटर प्रति सेकेण्ड से लेकर एक करोड़ खरब प्रति वर्ग मीटर प्रति सेकेण्ड तक बना रहता है। इकाई क्षेत्र से प्रवाहित प्रति सेकेण्ड न्यूट्रॉनों की संख्या को न्यूट्रॉन फ़्लक्स कहा जाता है। यूँ इकाई आयतन में मौजूद न्यूट्रॉनों की संख्या व उनकी औसत चाल के गुणनफल को भी न्यू-ट्रॉन फ़्लक्स कहा जाता है।

न्यूट्रॉन ऐक्टिवेशन एनालिसिस में टाग्इट पर एटमी भट्टी से निकलने वाले न्यूट्रॉनों की पहले तो बौछार की जाती है फिर रेडियो-रासायनिक विधि से उन तत्त्वों के सूक्ष्मांश (जो एक माइक्रोग्राम से लेकर एक पाइक्रोग्राम या उससे भी कम हो सकता है) को बिलगाया जाता है जो रेडियोधर्मिता ग्रहण कर चुके हैं। एक ग्राम के दस खरब-वें भाग का भी पता इस विधि से लगाया जा सकता है।

किसी भी जैविक या यान्त्रिक प्रणाली, जीव, सूक्ष्म-आवयविक संगठन, माइक्रोब जैसी सूक्ष्म संरच-नाओं में विभिन्न तत्त्वों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश का पता लगाने के लिए दो पद्धतियाँ काम में लाई जाती हैं।

इनमें "ऐब्सॅलूट मेथॅड" खासा पेचीला है, क्योंकि इसमें ट्रेस एलिमेन्ट्स का परिष्कृत व शुद्धेतर आकलन तभी संभव है जब न्यूट्रॉन फ़्लक्स (स्रोत से प्रति सैकेण्ड निकलने वाले न्यूट्रॉनों की सही जानकारी हो) का सही मान मालूम हो। यानी इकाई क्षेत्र से प्रति सेकेण्ड गुजरने वाले न्यूट्रॉनों की कुल संख्या मालूम होनी चाहिये। न्यूट्रॉन स्रोत का क्रॉस सेक्शन मालूम हो (न्यूक्लियर क्रॉस सेक्शन)। नाभीकीय प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बनने वाले रेडियो नाभिकों (रेडियो-न्यू-क्लिआइड) की हाफ़ लाइफ़ (अर्द्ध-आयु या अर्द्ध जीवन अवधि) की सही जानकारी के अलावा यह जानना भी एकदम से ज़रूरी है कि प्रॉडक्ट-न्यूक्लियस की एक्टि-विटी कितनी है यानी प्रति सेकेण्ड उसके कितने

नाभिक लगातार टूट रहे हैं और उनसे कितना रेडियो विकिरण निकल रहा है।

सहज काम में ली जाने लायक (सहज प्रयोज्य) दूसरी पद्धति में विश्लेष्य 'टार्गेट' में न्यूट्रॉन द्वारा अभिप्रेरित रेडियोसक्रियता (रेडियोएक्टिविटी) की तुलना उस मानक टार्गेट द्वारा ग्रहण की गई रेडियोधर्मिता (रेडियो एक्टिविटी) से की जाती है जिसमें विश्लेष्य तत्त्व की ज्ञात मात्रा पहले से ही मौजूद होती है।

अव्वल दर्जे की सुग्राहिता व सूक्ष्मग्राहिता के अलावा न्यूट्रॉन एक्टिवेशन एनालिसिस प्रचलित अन्य रासायनिक पद्धतियों से कई मायने में मौजूद पदार्थों की रासायनिक अवस्था से जरा भी प्रभावित नहीं होती क्योंकि यह पद्धति नाभिकीय प्रतिक्रियाओं (न्यूक्लियॅर रिएक्शन्स) पर आधारित है।

स्पेसिफ़िसिटी (विशिष्टता) इस पद्धति की दूसरी खूबी है। हम जानते हैं कि दो रेडियो समस्थानिकों के सभी नाभिकीय गुण कभी भी एक जैसे नहीं हो सकते लेकिन इस विधि में रेडियो समस्थानिकों की विशिष्ट रेडियोसक्रियता, उनकी अर्द्ध आयु आदि का शुद्धतम् आकलन किया जाता है।

अलग-अलग तत्त्वों की शिनाख्त करने के लिए टार्गेट पर एक ही बार न्यूट्रॉन विकिरण डालना यथेष्ट रहता है।

हाल के वर्षों में न्यूट्रॉन एक्टिवेशन एनालिसिस खासी चर्चित रही है। चाँद की मिट्टी में मौजूद कम से कम 72 तत्त्वों की शिनाख्त इस पद्धति से विश्वसनीय तरीके से की गई है। दुनिया-भर की उन अठ्टाइस प्रयोगशालाओं में से तेरह ने चाँद से लाई गई मिट्टी की जाँच के लिए इसी पद्धति को ज्यादा भरोसेमन्द पाया है।

नेपोलियन बोनापार्ट की मृत्यु के रहस्य को न्यूट्रॉन एक्टिवेशन एनालिसिस ने सुलझाया है। एक टापू पर बन्दीगृह से बदतर एकान्तवास के दौर में उन्हें हल्का विष (आर्सेनिक) दिया गया। बालों की एक लट ने उनकी मृत्यु के रहस्य को मृत्यु के एकसौ चालीस वर्ष बाद सुलझाया।

पुरातात्त्विक महत्त्व की वस्तुओं की दुनिया भर में होने वाली चोरी-चकोरी से रहस्य का पर्दा इस विधि ने कई बार उठाया है। वास्तव में चोरी गई कलाकृतियों को ट्रेस एलीमेंन्ट प्रोफाइल से पहचाना जाता है। तत्त्वों की 'रूपरेखा व रेखाचित्र' उनकी अंगुलियों के निशान होते हैं, उनके स्पैक्ट्रम की मानिन्द। मृत व्यक्ति की शिनाख्त उसके बालों की एक लट से भी हो सकती है। किन्हीं भी दो व्यक्तियों के बालों का गामा स्पैक्ट्रम कभी भी एक जैसा नहीं होता।

अपराध व न्यायिक विज्ञान ने न्यूट्रॉन एक्टिवेशन एनालिसिस को निरन्तर अपनाया है।

तेल निगमों के लिए तेल की खुदाई एक खर्चिला व अनुमान आश्रित काम रहा है। अब एक विश्लेषक एक फ़ास्ट न्यूट्रॉन स्रोत के जरिये "न्यूक्लियर-वेल-डिग्गि" के अन्तरगत कार्बन व ऑक्सीजन परमाणुओं के अनुपात से तेल की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है।

खुदाई में निकले सिक्के, ठीकरों, कालपात्रों व सांस्कृतिक अवशेषों का कालनिर्धारण व युगानुरूप वर्गीकरण करने में इस पद्धति से बड़ी मदद मिली है।

अर्द्ध-चालकों की परिशुद्धता की जाँच में इस पद्धति को बहुत कारगर पाया गया है।

जरा सी अशुद्धि से इन अर्द्ध-चालकों की वैद्युत चालकता लाखों गुणा बढ़ कर पूरे इलेक्ट्रॉनिक परिपथ को बेकार बना सकती है। यूँ नियन्त्रित तरीके से अशुद्धि का अल्पांश शुद्ध अर्द्ध-चालकों में उनकी वैद्युत चालकता को बढ़ाने के लिए मिलाया जाता है। लेकिन कौन सी अशुद्धि किस अर्द्ध-चालक में मिलानी है यह पूर्व निर्धारित होता है। निस्सन्देह न्यूट्रॉन एक्टिवेशन एनालिसिस ने संभावनाओं के नये क्षितिज खोले हैं। लेकिन इस पद्धति की अपनी सीमाएँ भी हैं। अपेक्षतया भारी तत्त्वों की शिनाख्त ही इस विधि से भरोसेमन्द तरीके से हो सकती है, पर अपेक्षतया हल्के तत्त्वों का विश्लेषण इससे कर पाना मुमकिन नहीं है। □□

विज्ञान को आम आदमी के लिए कैसे मोड़ें ?

हरीश अग्रवाल

भारतीय विज्ञान कांग्रेस का 77वां अधिवेशन इस बार अनेक बातों में पहले के अधिवेशनों से भिन्न रहा। इसमें उपस्थिति सबसे ज्यादा रही, अनेक क्षेत्रों में काम करने का संकल्प लिया गया और विभिन्न योजनाओं को निर्धारित समय पर समाप्त करने का निश्चय किया गया।

केरल में कोचीन में हुए इस अधिवेशन में अपने उद्‌घाटन भाषण में प्रधानमंत्री ने कुछ स्पष्ट बातें कहीं। उनका कहना था विज्ञान तो आगे जा रहा है, लेकिन आदमी उसका उपयोग करने में समाज की भलाई की बात नहीं सोचता। बड़े देशों में उद्योगों का विस्तार हुआ है, वे वहुत आगे बढ़े हैं, लेकिन छोटे गरीब देशों को नई टेक्नोलॉजी का लाभ नहीं मिला है। उन्होंने प्रश्न उठाया—ऐसी प्रगति या औद्योगीकरण का क्या लाभ है जो आदमी को ही नष्ट कर दे ? क्या हम ऐसा स्वस्थ पर्यावरण नहीं दे सकते जो आदमी को आराम से रहने दे ?

प्रधानमन्त्री ने ऊर्जा के नए स्रोतों के इस्तेमाल की भी वात उठाई। उनका कहना था कि हमें स्थानीय रूप से उपलब्ध ऊर्जा तथा अन्य साधनों का लाभ उठाना होगा। उनकी मान्यता थी कि विज्ञान खराब नहीं है। उसका इस्तेमाल करने वाले खराब हो सकते हैं। उनके भाषण का सार था कि 'वे आक्रामक विज्ञान की बजाय मानवतावादी विज्ञान के समर्थक हैं।"

विज्ञान कांग्रेस में भाग लेने वाले कुछ वैज्ञानिकों का कहना था कि प्रधानमन्त्री के भाषण में कुछ बातें बहुत नई तथा भारतीय विज्ञान को आगे बढ़ाने वाली थीं। उनके दार्शनिक दृष्टिकोण से सभी प्रभावित हुए। कुछ वैज्ञानिकों का कहना था कि प्रधानमन्त्री ने विज्ञान नीति के बारे में कुछ नहीं कहा। प्रधानमन्त्री ने अभी कार्यभार संभाला है, इसलिए उन्होंने नीति सम्बन्धी कुछ कहना शायद ठीक नहीं समझा।

ऐसी बात नहीं है कि नीति सम्बन्धी कोई बात इस विज्ञान कांग्रेस में नहीं हुई। वैज्ञानिकों तथा प्रशासकों ने देश के विज्ञान के बारे में विस्तार से चर्चा की। विज्ञान और टेक्नोलॉजी विभाग ने सम्मेलन में पेश की गई रिपोर्ट में सिफारिश की कि आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक अनुसंधान और विकास पर खर्च दो गुना किया जाए। विभाग के सचिव ने यह भी भविष्यवाणी की कि चार महीने बाद मानसून बढ़िया होगा। शायद संसार में पहली बार यह दीर्घकालीन भविष्यवाणी की गई है। पहले भी दो बार भारतीय वैज्ञानिकों की भविष्यवाणियाँ सही हुई थीं, लेकिन वे एक मास पहले की गई थीं।

श्रीलंका के वैज्ञानिक डॉक्टर **सिरिल पूनमपेरूमा** का कहना था कि पृथ्वी के अलावा अन्य ग्रहों पर भी जीवन के चिह्न हैं। उनकी मान्यता थी कि हमारे ब्रह्माण्ड का स्वरूप विचित्र है। इसमें अब भी जीवन का निर्माण हो रहा है। शायद नब्बे के इस दशक में हमें इस बारे में प्रमाण भी मिल सकते हैं।

एक महत्वपूर्ण चर्चा इस विषय पर हुई कि हम कैसे पृथ्वी को विनाश से बचा सकते हैं। प्राकृतिक तथा मानव-निर्मित आपदाएँ हमें घेरे हुए हैं। क्या हम उनका मुकाबला कर सकते हैं और इस पृथ्वी को रहने योग्य बनाए रख सकते हैं ? वैज्ञानिकों ने अपील की कि पृथ्वी की रक्षा का एक कार्यक्रम बनाया जाए। ओज़ोन ह्रास, ग्रीनहाउस प्रभाव, जलवायु परिवर्तन, वनों का विनाश तथा घटते साधन आदमी को ही नहीं सारे ग्रह को बर्बाद कर देंगे। यदि हम अभी से कुछ नहीं करेंगे और पृथ्वी की रक्षा की चिन्ता नहीं करेंगे

तो बहुत देर हो जाएगी और हमारे सारे प्रयत्न बेकार जायँगे।

प्रसिद्ध जीवनशास्त्री **डॉ० पुष्प भार्गव** ने चेतावनी दी कि भविष्य में जैविक तथा रासायनिक हथियार, परमाणु हथियारों से अधिक विनाशकारी सिद्ध होंगे। उन्होंने कहा कि भारतीय वैज्ञानिक ये विनाशकारी हथियार बना सकते हैं, लेकिन हमारा ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं हैं। उनका कहना था कि हमें आधुनिक विज्ञान पर ज़ोर देना होगा, नहीं तो विज्ञान कांग्रेस की कोई सार्थकता नहीं रहेगी। उन्होंने विज्ञान कांग्रेस में युवा वैज्ञानिकों की अनुपस्थिति की भी शिकायत की। उनका कहना था कि 70 प्रतिशत अनुसंधान जीवन विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, रसायनशास्त्र तथा परमाणु विज्ञान में हो रहा है, लेकिन विज्ञान कांग्रेस में इन विज्ञानों पर कोई विचार-विमर्श नहीं हुआ।

इस बार की विज्ञान कांग्रेस को इस अर्थ में महत्वपूर्ण कहा जाएगा कि इसने विज्ञान को एक नई दिशा दी है। इसने देश की स्वतन्त्रता तथा गुटनिरपेक्षता को कायम रखने के लिए वैज्ञानिक खोज को बढ़ावा देने पर बल दिया है। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष **प्रोफेसर यशपाल** का कहना था कि यदि विकसित देश कापीराइट तथा पेटेंट कानूनों में "घुसपैठ" करेंगे तो देशों में आविष्कारों की रक्षा करना मुश्किल हो जाएगा। उनका कहना था कि पश्चिमी बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार इन्हीं देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सुरक्षा के लिए है।

विज्ञान कांग्रेस की एक और उपलब्धि वैज्ञानिकों तथा सामाजिक वैज्ञानिकों में सम्पर्क स्थापित करवाने में रही। आशा प्रकट की गई कि कोचीन में जो विचार-विमर्श हुआ उसका प्रभाव राष्ट्रीय नीतियों पर पड़ेगा। अब विज्ञान, शिक्षा तथा टेक्नोलॉजी के लिए समर्थन बढ़ाना होगा। हम विज्ञान और टेक्नोलॉजी को केवल शिक्षा का एक अंग बनाकर चुप नहीं बैठ सकते। विज्ञान कांग्रेस ने "समाज में विज्ञान" के विचार को पूरी तरह सार्थक बनाया है। □□

(इस्वा फीचर्स)

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

समुद्री पर्यावरण : समस्यायें एवं समाधान

राजेश कुमार केसरी

समुद्र हमारे पृथ्वी के लगभग 70 प्रतिशत भाग को घेरे हुए है। समुद्र पर्यावरण से जुड़ी हुई समस्यायें पिछले दशक की नई समस्या नहीं है। समुद्र हमसे हज़ारों मील दूर क्यों न हो, प्रकृति को इस विशाल धरोहर में हम अमृत घोलें या विष, परिणाम तो हमें भुगतने ही पड़ेंगे। पिछले कुछेक वर्षों में समुद्री पर्यावरण काफी प्रदूषित हुआ है। तेल, हथियार तथा दूसरे मालवाहक जहाज़ों की दुर्घटनाओं से समुद्र-जल दिन-प्रतिदिन प्रदूषित होता जा रहा है।

प्राचीन कथाओं में समुद्र को 'रत्नाकर' भी कहा गया है। समुद्र अपने गर्भ में हमारे लिए बहुमूल्य और उपयोगी वस्तुएँ छिपाये हुए है। समुद्री जीव-जन्तुओं से विविध प्रकार की ओषधियाँ, कीटनाशक दवाएँ, औद्योगिक रसायन, उर्वरक आदि प्राप्त किये जाते हैं। हमारे निकटवर्ती समुद्री क्षेत्र में भी ऐसे जीव-जन्तु पाए जाते हैं। भारत और अमेरिका की संयुक्त 'भारत-अमेरिका परियोजना' के अंतर्गत वैज्ञानिकों ने लगभग 500 से भी अधिक ऐसे रसायन समुद्री जीव-जन्तुओं से निष्कर्षित किये हैं, जिन्हें गर्भरोधी, विषाणुरोधी आदि के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

समुद्र में पाये जाने वाले जीव-जन्तुओं से कुछ बहुत ही उपयोगी दवाएँ निकाली जा चुकी हैं, जैसे-कैटेबियाई स्पंजों से प्राप्त '**किस्टोसीन एराजसिनोसाइड**'। इसका उपयोग ट्यूमररोधी ओषधि में होता है। सार्दानिया के निकट मिलने वाले सूक्ष्मजीवों से '**सेफो**लो-

बी० एस-सी० तृतीय वर्ष (जीव विज्ञान); सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद–211002

स्पॉरिन' का संश्लेषण किया गया है। इससे हृदय-प्रत्यारोपण जैसी शल्य-चिकित्सा आसानी से हो जाती है। घेघा रोग (Goiter) में बहुत से शैवालों का उपयोग करते हैं, जिससे आयोडीन की कमी पूरी होती है। एड्स (AIDS) की सर्वाधिक प्रचलित औषधि **'एजीडोथाईमीर्डीन'** एक विशेष प्रकार की समुद्री मछली के शुक्राणुओं से प्राप्त होती है। समुद्र में बहुत प्रकार के पॉलीकीट निवास करते हैं। इनमें से कुछ पॉलीकीटों की विशेष जाति **थिबोपस सिटोसस** से '**थिलेपिन**' नामक पदार्थ निकाला जाता है जो एक शक्तिशाली फफूँदी-प्रतिरोधी पदार्थ है। कुछ विषैले पदार्थ यथा **टेट्रोडोटॉक्सिन**' वफर मछली तथा समुद्री मछली से प्राप्त किया जाता है।

समुद्री जल के प्रदूषित होने के मुख्य कारण हैं, नदी से लाई हुई विभिन्न प्रकार की गन्दगियाँ, उद्योगों के अवांछित पदार्थ एवं मल-जल का विसर्जन, समुद्र में तेल-वाहक जहाजों का दुर्घटनाग्रस्त होना आदि। इसके साथ ही हमारा समुद्रतटीय पर्यावरण मनुष्य की बढ़ती हुई आबादी, बन्दरगाह, बड़े पैमाने पर यांत्रिक प्रक्रिया तथा औद्योगिकीकरण एवं पर्यटन से प्रदूषित हो रहा है।

भूगर्भीय तेल की खोज में लगे जहाज़ समुद्र के प्रदूषण का सबसे प्रमुख कारण हैं। तेल का पता लगाने में बहुत सा तेल जो हानिकारक पदार्थों से युक्त होता है, समुद्र जल में मिल जाता है। सारी नदियाँ अपना अस्तित्व समुद्र में ही खोती हैं, जो साथ में गन्दगियाँ तथा बहुत से हानिकारक पदार्थ समुद्र में विसर्जित करती हैं। ज़्यादातर उद्योग-धंधे नदी और समुद्र के किनारे ही स्थापित किये जाते हैं। उद्योगों से निकलने वाले उत्सर्जित पदार्थ जिसमें कच्चा तेल, कैडमियम, जस्ता, सीसा, आर्सेनिक आदि, समुद्र जल में मिल कर उसे प्रदूषित करते जा रहे हैं। मल-जल के भी लगातार समुद्र में विसर्जन से समुद्र-जल प्रदूषित हो जाता है। स्वीडेन से प्रकाशित 'एम्बायो' नामक पत्रिका के एक अंक में तो यह सूचना प्रकाशित है कि इस गंदे समुद्री जल में स्नान करने से बहुत सी घातक बीमारियाँ जैसे टी० बी० (यक्ष्मा), कालरा आदि घर कर जाती हैं।

समुद्र के बिना हमारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अधूरा रह जाता है। इधर कुछ वर्षों में तेल, कीटनाशक तथा प्रदूषण फैलाने वाले पदार्थों से लदे माल-वाहक जहाज़ तेज़ी से दुर्घटनाग्रस्त हुए हैं, जिससे दुनिया में चिंता की लहर दौड़ गई है। पिछले वर्ष 7 अप्रैल को नार्वे के तट के पास एक रूसी 'माइक' पनडूब्बी डूब गई थी, जिसमें 42 लोग मर गये थे। 26 जून तथा 16 जुलाई को नार्वे के ही समुद्र तट के पास एक रूसी पनडुब्बी की अणु भट्टी खराब हो गई थी तथा एक रूसी पनडुब्बी में आग लग गई थी। दिसम्बर 1989 में रूसी नौसेना की एक आणविक पनडुब्बी दुर्घटना का शिकार हो गई थी। यद्यपि दुर्घटना में कोई मरा नहीं परन्तु आस-पास का बड़ा समुद्री क्षेत्र प्रभावित हो गया था। मई 1990 में ब्रिटेन की एक मछली पकड़ने वाली नौका लेबनान में पंजीकृत एक तेल टैंकर, जो कारम की खाड़ी से कोरडम जा रहा था, के बीच इंग्लिश चैनेल में टक्कर हो गई जिससे करीब एक हज़ार टन तेल समुद्र में बिखर गया। समुद्र की सतह पर तेल फैल जाने से बाहरी वातावरण से सीधे सम्पर्क टूट जाता है फलस्वरूप उस क्षेत्र में निवास करने वाले जीव-जन्तुओं की मृत्यु होने लगती है।

समुद्री जल खारा (नमकीन) होता है। शुद्ध जल की अपेक्षा इसमें 3.5% ज़्यादा खारापन होता है। समुद्र-जल में मुख्य रूप से क्लोराइड, सल्फेट, बाइकार्बोनेट, कार्बोनेट, ब्रोमाइड, सोडियम, मैग्नीशियम, कैल्सियम, पोटैशियम लवण मिलते हैं। इसमें सोडियम क्लोराइड बहुत ज़्यादे मात्रा में होता है। मुख्य रूप से इसी की वजह से समुद्र का जल खारा होता है। समुद्र जल से ही हम नमक का निर्माण विभिन्न विधियों द्वारा करते हैं। समुद्र के इस विशाल क्षेत्र को हम दो मुख्य भागों में विभाजित करते हैं—

(1) पेलाजिक क्षेत्र (**Pelagic zone**)—पूरा बाहरी पानी का भाग।

(2) बेन्थिक क्षेत्र (**Benthic zone**)—तलहटी का भाग।

पेलाजिक क्षेत्र में बेन्थिक क्षेत्र की अपेक्षा ज्यादा जीव-जन्तु पाये जाते है। इस क्षेत्र में शैवाल, कुछ जीवाणु (बैक्टिरिया) तथा कभी-कभी कवक (फंजाई) भी पाये जाते हैं। इसके ऊपर वाले विकसित पादप समूहों—ब्रायोफाइटा, टेरिडोफाइटा, जिम्नोस्पर्म (नग्नबीजी तथा एन्जियोस्पर्म (आवृतबीजी) के सदस्य इस क्षेत्र में नहीं मिलते हैं। पेलांजिक क्षेत्र में फाइटोप्लेंक्टान (अति सूक्ष्म तैरने वाले पादप) जैसे—डाइएटम, डाइनोफ्लैजलेट्स तथा इसके अतिरिक्त सुनहले-भूरे शैवाल, हरी शैवालें आदि मिलती हैं, जो कार्बनिक कार्बन तथा ऑक्सीजन बहुत ज्यादा मात्रा में उत्पन्न करती हैं। इसी से जीव-जन्तु अपनी ऑक्सीजन की आवश्यकता पूरी करते हैं। कुछ समुद्री खर-पतवारें (**Sea weeds**) यथा **सारगासम** भी तैरती अवस्था में मिलती हैं। समुद्र के ऊपरी भाग में समुद्री कशेरुक जैसे—बोनी फिश, शार्क, समुद्री कछुआ तथा व्हेल आदि जन्तु मिलते हैं। साँस लेने वाले जन्तुओं में कछुआ और व्हेल वहाँ बहुतायत में मिलते हैं जहाँ प्रकाश आसानी से पहुँच जाता है। इसके अलावा मछलियाँ ऊपरी भाग से नीचे तक तैरती हुई मिलती हैं। समुद्र की निचली सतह (बेन्थिक क्षेत्र) में काफी अँधेरा होता है और इस क्षेत्र में रह रहे जन्तु ऊपरी सतह के मृत्य अवशेष पदार्थों (कार्बनिक पदार्थों) को अपने उपयोग में लाते हैं। इसके अतिरिक्त समुद्र में लगभग एक लाख मोलस्क (**Mollusk**) की जातियाँ जैसे—सीप, घोंघे, ऑक्टोपस आदि, सीलेन्ट्रेटा वर्ग के जन्तुओं में मूँगा (कोरल), जेलीफिश और सी-एनीमोन की लगभग ग्यारह हज़ार विभिन्न जातियाँ पाई जाती हैं। अगर हमारा समुद्री पर्यावरण इसी तरह निरन्तर प्रदूषित होता रहा तो वह समय दूर नहीं जब इन जीव-जन्तुओं का अस्तित्व ख़तरे में पड़ जायेगा।

समुद्री पर्यावरण की सुरक्षा में समुद्र प्रदूषण से जूझती दो संस्थाओं का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एक '**ग्रीन पीस**' (हरित शांति) एवं दूसरी '**आई० एम० ओ०**' (विश्व सामुद्रिक संगठन)। 'आई० एम० ओ०' संयुक्त राष्ट्र की एक संस्था है। इसकी स्थापना 1948 में समुद्र में बढ़ते हुए प्रदूषण को रोकने के लिए की गई थी। इस संस्था का मुख्य काम है समुद्र प्रदूषण से उत्पन्न ख़तरे बताने वाली प्रचार सामग्री तथा जानकारी उपलब्ध करना, विभिन्न देशों की सरकारों के बीच सामंजस्य स्थापित करना, परिप्रेक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीय समझौते कराना आदि। इस संगठन ने सन् 1980 में दो समझौते कराये जिसमें समुद्र में जीवन सुरक्षा के लिए प्रतिज्ञापन तथा समुद्री मुठभेड़ों पर प्रतिबंध है।

12 राष्ट्रों का संगठन 'ग्रीन पीस' एक और समुद्र प्रदूषण से जूझती संस्था है। इसकी स्थापना दो दशक पूर्व 1970 में हुई थी। 'ग्रीन पीस' भी समुद्र को परमाण्विक प्रदूषण से बचाने की पूरी कोशिश कर रहा है। 'ग्रीन पीस' अटलांटिक और प्रशांत महासागरों में विषैले पदार्थों के फेंके जाने पर अपना सख्त विरोध दर्ज करता रहा है। इसके आर्थिक स्रोत सीमित होने के बावजूद भी यह विश्व भर का ध्यान अपनी ओर खींचने में सफल रहा है। गत वर्ष यूरोप में 'ग्रीन पीस' ने रिपोर्ट दी थी कि किसी अन्य देश के मुकाबले रूसी नौसेना में सबसे ज्यादा दुर्घटनाएँ हुई हैं। 'आई० एम० ओ०' तथा 'ग्रीन पीस' ने अब तक 250 से अधिक समुद्र प्रदूषण विरोधी प्रस्तावों को प्रसारित कर विश्व को अगाह कर दिया है। इसके अतिरिक्त समुद्र प्रदूषण को कम करने के लिए देश विशेष जो भी नियम बनाये वे नियम उस देश के तटीय क्षेत्रों में रह रहे लोगों की सहमति से बनाये। समुद्रों में चलने वाले जहाज़ों पर एक निश्चित मीट्रिक प्रणाली वाले भार से ज्यादा माल न ढोये जायें, कुछ मानक संकेत और शब्दावली का प्रयोग करें जिससे ज़हाज़ों में आपस में टक्कर न हो।

समुद्र की समस्या सारे विश्व की समस्या है। इसका समाधान विश्व स्तर पर होना चाहिए, क्योंकि समुद्र नहीं तो वर्षा नहीं, वर्षा नहीं तो जीवन नहीं। लेकिन समुद्र है तो हमारा जीवन है। यदि इस संपदा का उपयोग मानव हित में न किया गया तो परिणाम बुरे होंगे। हमें अपने किए पर पछताने के सिवा और कुछ हाथ न लगेगा। आइए आज 5 जून विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर हम संकल्प लें कि हम अपने समुद्रों को और अधिक प्रदूषित न होने देंगे वरन् आज समुद्र जिस प्रदूषित अवस्था में हैं उससे मुक्त भी करेंगे। इतिहास साक्षी है कि मानव ने अपने संकल्प से पहले भी बड़े-बड़े काम किए हैं और आज भी मानव में कुछ करने का अदम्य साहस और अनन्त ऊर्जा है। ☐☐

विज्ञान वक्तव्य

सुधी पाठकजन !

आपके हाथों में 'विज्ञान' का जून-जुलाई अंक देते हुए मुझे एक बात की प्रसन्नता है कि अंक आपके पास समय से पहुँच रहा है, वरना इलाहाबाद की गर्मियों में प्रेस जिस तरह खस्ताहाल रहते हैं उसमें मुद्रण समय से हो जाना आश्चर्य ही है। इस अंक के लेखों में पर्यावरण सम्बन्धी लेखों के साथ ही साथ आपको अन्य वैज्ञानिक विषयों पर भी लेख पढ़ने को मिलेंगे।

पर्यावरण की बात चली तो हाल ही में वाशिंगटन में विश्व पर्यावरण पर हुई गोष्ठी की याद ताज़ा हो आई, जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट ने स्पांसर किया था। इस संगोष्ठी को संबोधित करते हुए प्रसिद्ध वैज्ञानिक **कार्ल सागन** ने चिन्ता व्यक्त की कि यदि विश्व के बढ़ते तापक्रम पर नियंत्रण नहीं किया गया तो इसके परिणाम बुरे होंगे। यदि हम वातावरण में कार्बन डाइ ऑक्साइड की लगातार बढ़ती मात्रा नहीं घटायेंगे तो अत्यधिक संख्या में 'पर्यावरणीय शरणार्थी' उत्पन्न हो जायेंगे। कार्बन डाइ ऑक्साइड से उत्पन्न 'हरित पौध गृह प्रभाव' (ग्रीन हाउस इफेक्ट) और क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स से 'ओज़ोन की चादर के झीने होने' से ताप में वृद्धि होगी। डॉ० सागन ने चेतावनी दी कि ऐसे देखने में तो ताप थोड़ा ही बढ़ा लगता है, किन्तु परिणाम खतरनाक होंगे। अगली शताब्दी, जो निकट ही है, में ध्रुवों की बर्फ़ पिघलेगी, समुद्रों का जल स्तर ऊपर उठेगा, समुद्रतटीय क्षेत्र डूब जायेंगे, कृष्य भूमि मरुस्थलों में बदल जायेगी और घातक पराबैंगनी किरणें पेड़-पौधों-वनस्पतियों तथा जीव-जन्तुओं सहित मनुष्यों को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहेंगी। डॉ० सागन ने कहा कि मनुष्य की सफलता का रहस्य है उसकी बुद्धि, उसका विवेक। और इन्हीं के सहारे मानव निश्चय ही समस्याओं के समाधान ढूँढ़ निकलेगा।

30 मई को विज्ञान परिषद् प्रयाग के विशाल सभागार में 'डॉ० आत्माराम स्मृति व्याख्यान' का तृतीय व्याख्यान सम्पन्न हो गया। यह व्याख्यान देश के चोटी के रसायनज्ञ और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति **डॉ० रघुनाथ प्रसाद रस्तोगी** ने दिया। डॉ० रस्तोगी के व्याख्यान का विषय था—'अनियंत्रित तंत्रों में भी व्यवस्था—विज्ञान की नई दृष्टि।'

समारोह के प्रारम्भ में परिषद् के प्रधान मन्त्री **प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी** ने मुख्य अतिथि प्रो० रस्तोगी, **सभाध्यक्ष श्री राम सहाय**, पूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, **प्रो० चन्द्रिका प्रसाद एवं** अन्य गण्यमान्य अभ्यागतों का स्वागत करते हुए इस व्याख्यानमाला के इतिहास और **डॉ० आत्माराम के** जीवन पर प्रकाश डाला। इसके बाद डॉ० रस्तोगी ने स्वर्गीय डॉ० आत्माराम को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

डॉ० रस्तोगी ने बताया कि उनके व्याख्यान से सम्बन्धित अनुसंधान बीसवीं शती के उत्तरार्ध में प्रारंभ हुए हैं और अब इस विषय पर विश्व के अनेक देशों में शोध हो रहा है।

डॉ० रस्तोगी ने अपने विद्वतापूर्ण व्याख्यान में नये और प्राचीन अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का उल्लेख किया और बताया कि बादल, आसमान में चमकने वाली बिजली और लंदन के समुद्रतट अनियंत्रित तन्त्रों के उदाहरण हैं। किन्तु सूक्ष्म अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि अनियंत्रित तंत्रों में भी एक प्रकार की व्यवस्था होती है। डॉ० रस्तोगी ने यह विचार व्यक्त किया कि हिन्दी समृद्ध भाषा है और हिन्दी के माध्यम से जटिल से जटिल वैज्ञानिक विषयों को भी समझाया जा सकता है। बिजली गुल थी फिर भी डॉ० रस्तोगी का व्याख्यान एक घन्टे तक चला और श्रोता मन्त्रमुग्ध से सुनते रहे। इस समारोह की अध्यक्षता श्रीराम सहाय जी ने और कृतज्ञता ज्ञापन डॉ० चन्द्रिका प्रसाद ने किया।

पिछले दिनों लखनऊ में 'आर्य समाज' की एक सभा को सम्बोधित करते हुए 'आर्य समाज' के प्रचारक, वेदों के प्रकाण्ड विद्वान और प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती ने यह इच्छा व्यक्त की कि उनके देहावसान के बाद उनके शरीर की अस्थियाँ अनुसंधान के लिए किसी मेडिकल कॉलेज को दे दी जायें। विज्ञान की ऐसी सेवा बिरले ही कर पाते हैं। आज के युग के इस 'दधीचि' को शत-शत प्रणाम।

पिछले लगभग दो माह 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के लिए अच्छे सिद्ध हुए। 7 अप्रैल को 'विश्व स्वास्थ्य दिवस', 22 अप्रैल को 'विश्व पृथ्वी दिवस' और 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर विचार-गोष्ठियाँ सम्पन्न हुईं। 30 मई को 'डॉ० आत्माराम स्मृति व्याख्यान माला' का तृतीय व्याख्यान सम्पन्न हुआ। इस प्रकार कुल मिलाकर पिछले दो माह का समय सन्तोषप्रद रहा।

शुभ कामनाओं सहित

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय
विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1990

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख को 500 रु० पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।
(3) लेख किसी भी हिंदी पत्रिका में छपा हो सकता है।
(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1990 से दिसम्बर 1990 माह के बीच प्रकाशित हो।
(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।
(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

विज्ञान विस्तार

5 जून 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर

पर्यावरणीय मुद्दों में बढ़ती रुचि

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

माननीय अध्यक्ष जी, विद्वज्जन एवं युवा मित्रो !

आज 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' के अवसर पर पर्यावरण के हितचिंतन के ध्येय से परिषद् पुस्तकालय कक्ष में पधारे आप सभी का मैं 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की ओर से और अपनी ओर से हार्दिक स्वागत करता हूँ। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

अभी गत माह 7 अप्रैल को 'विश्व स्वास्थ्य दिवस' और 22 अप्रैल को 'विश्व पृथ्वी दिवस' पर इसी कक्ष में हम पर्यावरण को लेकर विचारों का आदान-प्रदान कर चुके हैं। आज आपसे मेरा विनम्र निवेदन है कि आप पर्यावरण संबंधी किसी एक समस्या को लें और संक्षेप में, 5-6 मिनट में, अपने विचार रखने की अनुकम्पा करें। इससे जहाँ एक ओर विषय में विविधता आयेगी वहीं दूसरी ओर हमें आपके विचारों को लेख के रूप में प्रकाशित करने में भी सुविधा होगी। इस प्रकार की विचार-गोष्ठियों में हमारा सदैव यह प्रयास रहता है कि अधिक से अधिक लोग अपने विचारों को व्यक्त करें।

पर्यावरण अब अगली पीढ़ी के लिए भविष्य का मुद्दा नहीं रहा। पर्यावरण अचानक ही सभी की चिंता का विषय हो गया है। निर्वनीकरण, अम्लवर्षा, हरित पौधगृह प्रभाव से पृथ्वी का गर्म होना, क्लोरोफ्लोरो-कार्बन्स के कारण ओज़ोन की छतरी में छेद होना जैसे संकट ऐसे हैं जिनसे विश्वव्यापी परिवर्तन होंगे। अतएव अब ये समस्यायें शोध-पत्रिकाओं के पन्नों से निकल कर सारे संसार में वैज्ञानिक संगोष्ठियों, विधेयकों और जन-आन्दोलनों का रूप ले चुकी हैं। पर्यावरण आम बाज़ारों से लेकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय राज-नीति का मुख्य मुद्दा बन चुका है।

कुछ क्षेत्रों में तो पर्यावरण की इतनी अधिक क्षति हुई है कि क्षतिपूर्ति हेतु युद्ध–स्तर का आर्थिक व्यय करना पड़ेगा। वास्तविकता यह है कि कहीं-कहीं स्थिति इतनी नाजुक है कि सैनिक कार्यवाही की आवश्यकता प्रतीत होती है। किन्तु जनसंख्या विस्फोट, रेगिस्तानीकरण, मृदा-क्षरण, भोजन और जल का अभाव, ग़रीबी और महामारियों जैसे संकटों के समाधान सेना के पास निश्चय ही नहीं हैं। इन समस्याओं का समाधान तो तब है जब सरकारें अपनी कार्य-प्रणाली में सुधार लायें, आपसी संघर्ष के मार्ग को त्यागकर शांति का वरण करें ताकि सार्वजनिक पर्या-वरणीय समस्याओं के समाधान को सर्वोच्च वरीयता प्राप्त हो सके। अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान विश्वस्तर पर ही संभव है। प्रकृति अपना कार्य कैसे संपादित करती है इससे संबन्धित सभी प्रश्नों के उत्तर हमारे पास नहीं हैं। अतः हमारी सबसे बड़ी ज़रूरत है प्रकृति को समझने की। हमारी समस्त योजनायें ऐसी होनी चाहिए जिससे पारिस्थितिक तंत्र को क्षति न पहुँचे और प्रकृति का संतुलन बना रहे। माना जाता है कि यह युग विज्ञान का युग है। किन्तु आज भी विज्ञान और समाज के बीच गहरी खाई है। हमें इस खाई को पाटना होगा। जब तक विज्ञान का प्रकाश आम लोगों तक नहीं पहुँचेगा तब तक आदि-वासियों से यह आशा करना कि वे जंगल नहीं कटने देगें, व्यर्थ है। जंगलों के कटने से वर्षा के अभाव में कहीं सूखा पड़ता है, कहीं मरुभूमि का विस्तार होता है, तो कहीं अतिवृष्टि भूमि की ऊपरी पोषक पर्त अपने साथ बहा ले जाती है, इसका ज्ञान उन्हें कैसे होगा ? मोटर वाहनों और कोयले तथा लकड़ी के दहन से वायु में कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड; सल्फर डाइऑक्साइड जैसी विषैली गैसें छोड़ी जाती हैं जो अनेक रोगों को जन्म देती हैं, इस ख़तरे की गंभीरता वे भला कैसे समझ पायेंगे ?

आज मानवता के सम्मुख जो सबसे बड़ा संकट है वह निरंतर बढ़ती जनसंख्या का है। यदि मनुष्यों की आबादी इसी गति से बढ़ती रही तो आने वाले 40-50 वर्षों में विश्व जनसंख्या 5 बिलियन से बढ़कर 10

बिलियन हो जायेगी। इसमें 90 प्रतिशत तीसरी दुनिया के लोग होंगे और उसके 90 प्रतिशत शहरों के निवासी। फिर शहरों में कैसी भीड़ होगी, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। जरा सोचिए हम किधर जा रहे हैं? प्रगति की ओर अथवा विनाश की ओर? इस नैराश्य में कहीं आशा की भी कोई किरण है क्या?

मेरा निश्चित मत है कि आशा है? आज पर्यावरण को लेकर सारे संसार में लोग जितने चिंतित हैं, उससे ऐसा लगता है कि हमें—मानव जाति को—अपनी भूल का एहसास हो चुका है और भूल सुधार के लिए हम कृत संकल्प हैं। आवश्यकता है एक नये सोच की, एक नये दर्शन की, जिसमें हम समस्त जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधौं-वनस्पतियों, वायु-जल के साथ तालमेल बिठा कर रहें।

इन शब्दों के साथ एक बार मैं पुनः आपका स्वागत करते हुए आपसे निवेदन करूँगा कि आप अपने विचार अवश्य व्यक्त करें। अध्यक्षजी की अनुमति से मैं पहले वक्ता को अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित कर रहा हूँ······ □□

5 जून 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता

दिनेश मणि

पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या अब एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन चुकी है। अभी तक हम विकसित देशों को इसके लिये दोषी ठहराते रहे हैं, किन्तु विकासशील देश भी इस समस्या को भयावह रूप देने में पीछे नहीं हैं। हमने विकसित देशों को अपना आदर्श माना है और विकास की दौड़ में शामिल होकर पर्यावरण को होने वाले नुकसान की अनदेखी की है। फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की समस्यायें हमारे सामने खड़ी हो गयी हैं।

शुरुआत मिट्टी से ही करते हैं। समस्त वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं के जीवन का आधार यह मिट्टी आज तेजी से अपनी उर्वरा-शक्ति खो रही है। 26 करोड़ 60 लाख हेक्टेयर क्षेत्र का एक तिहाई भाग वनों की कटाई, जल के जमाव या मिट्टी के खारेपन के कारण उपजाऊ नहीं रह गया है और अन्य एक तिहाई हिस्सा कुछ अन्य कारणों से केवल आंशिक तौर पर ही उपजाऊ है। अतः शेष बचे क्षेत्रफल को नुकसान से बचाना और भी अनिवार्य हो जाता है। पर्यावरण विभाग के अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष छह अरब टन ऊपरी मिट्टी बहकर समुद्र में चली जाती है। बाढ़ और सूखे की आशंका वाले क्षेत्रों में भी लगातार वृद्धि हो रही है।

मिट्टी में कूड़े-कचरे एवं अन्य अपशिष्ट पदार्थों के मिलने से 'मिट्टी-प्रदूषण' की समस्या उत्पन्न हो गयी है। आजकल सघन खेती कार्यक्रम के अन्तर्गत रासायनिक उर्वरकों, पेस्टीसाइड्स आदि का बहुतायत से प्रयोग हो रहा है। इनके अवशेष पदार्थ बहते हुये नालों आदि से जलस्रोतों में मिलकर उन्हें प्रदूषित करते हैं। शहरों के गन्दे नालों में बहने वाले मल पदार्थ युक्त जल (सीवेज-स्लज) से सिंचाई करने पर मिट्टी में कैडमियम, क्रोमियम, निकिल, मरकरी, जस्ता, लैड अदि विषैली भारी वस्तुओं की मात्रा बढ़ जाती है जो मिट्टी की भौतिक दशा, फसलोत्पादन और अन्ततः मनुष्यों एवं जानवरों द्वारा ऐसी फसलों के उपभोग करने पर उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।

जल भी एक महत्वपूर्ण संसाधन है, किन्तु विभिन्न उद्योग जैसे कि राजस्थान की कपड़ा छपाई और रंगाई मिलों से, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में चमड़ा उद्योग और केरल में नारियल के रेशे की प्रोसेसिंग का

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद—2

काम जल को प्रदूषित कर रहे हैं। एक सर्वेक्षण से पता चला है कि देश का लगभग 70% भूगर्भीय जल मानव उपयोग के लिये अनुपयुक्त हो चुका है। देश में 36 करोड़ व्यक्तियों को पीने का साफ़ पानी उपलब्ध नहीं है।

जहाँ तक वनों की स्थिति है, इनका सर्वनाश जारी है। छः योजनाओं की अवधि में विकास से हमें जो बड़ा नुकसान हुआ है वह हमारी वन सम्पदा का नुकसान है। साथ ही सातवीं योजना का जो प्रारूप है वह भी त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि इसमें कहा गया है कि देश के भौगोलिक क्षेत्र का 23% (सत्तर करोड़ हेक्टेयर) वनों से आच्छादित है और विना समय तय किये 33% क्षेत्र (10 करोड़ हेक्टेयर) के वन आच्छदन का लक्ष्य रखा गया है। अंतरिक्ष विभाग की राष्ट्रीय रिमोट सेंसिंग एजेन्सी के अनुसार अच्छे वनों का 1.5 लाख हेक्टेयर वार्षिक ह्रास हुआ, जिससे हमारा वास्तविक वन क्षेत्र 3 करोड़ 30 लाख हेक्टेयर रह गया है। 30 वर्ष के योजना काल में वन रोपण की दर एक लाख 20 हज़ार हेक्टेयर रही है। यानि हर वर्ष 13 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र की कमी हो रही है।

पर्यावरण की बात करते समय वन्य जन्तुओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि ये भी पर्यावरण के ही घटक हैं और इसे स्वच्छ रखने में इनकी भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। ये कई तरह के प्रदूषण को समाप्त करते हैं। परन्तु स्वतन्त्रता के पूर्व इनका मानव द्वारा स्वार्थवश बड़ी संख्या में वध किया गया। फलस्वरूप भारतीय चीता जैसी तीव्रगामी प्रजाति तो विलुप्त हो चुकी है, जिसे भावी पीढ़ियाँ कभी नहीं देख सकेंगी।

अतः स्पष्ट है कि स्वच्छ पर्यावरण हेतु पारिस्थितिकीय संतुलन भी आवश्यक है। इसके लिये वैज्ञानिक विकास का लाभ उठाते हुये ऐसे उपाय किये जाने की आवश्यकता है जिससे पर्यावरण भी स्वच्छ होता रहे। पर्यावरण संरक्षण के सन्दर्भ में घरेलू सफाई, जनसंख्या नियंत्रण, कल-कारखानों में प्रदूषण नियंत्रक संयन्त्र लगाना, ऊर्जा के प्रदूषण रहित वैकल्पिक स्रोतों को विकसित करना आवश्यक है। किन्तु सबसे प्रभावशाली, सस्ता, सुलभ तथा स्थायी उपाय वर्तमान वनों की सुरक्षा और वृक्षारोपण कार्य हैं। हालाँकि वनों के कटान पर पूर्ण प्रतिवन्ध लगाना व्यावहारिक नहीं है, फिर भी मनुष्य को अपनी प्रवृत्ति में बदलाव लाकर नैतिकता, दूरदर्शिता, संयम तथा नागरिक भावना से वन सम्पदा का प्रयोग करना चाहिये। यह हमारे संविधान के अनुच्छेद 51 (क) : भाग 4 (क) के अनुसार नागरिकों के मूल कर्तव्यों में से एक है। □□

5 जून 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर

आज का प्रदूषित पर्यावरण

प्रमोद कुमार शुक्ल

पर्यावरण और प्रदूषण आजकल एक दूसरे के पर्याय वन गये हैं। पर्यावरण में प्रदूषण इतना वढ़ गया है कि पर्यावरण का नाम लेते ही एक हानिकारक वातावरण हमारे दिमाग़ में आ जाता है। पर्यावरण स्वस्थ या अस्वस्थ होता है। स्वस्थ पर्यावरण वह है जिसमें शुद्ध वायु का संचार हो, नदियाँ, तालाब, झरने, कुएँ आदि शुद्ध जल से भरपूर हों, मौसम नियमित हो और प्रकृति अपने घटकों से परिपूर्ण हो। कभी-कभी प्राकृतिक असन्तुलन से भी पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है, जैसे—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, भूस्खलन आदि। परन्तु इस प्रकार के प्रदूषण को प्रकृति स्वयं शुद्ध भी कर लेती है।

मानव ने अपने वहुमुखी विकास के लिए प्रकृति का भरपूर उपयोग किया है और इस सीमा तक कि अव प्रकृति स्वयं अपना संतुलन रख पाने में असमर्थ हो गयी। पर्यावरण प्रदूषण के लिए पूर्णरूप से मानव

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद—211002

ही ज़िम्मेदार है। परन्तु कितनी बड़ी विडम्बना है कि निरन्तर आगे बढ़ने की होड़ में जहाँ उसने विवेक का परिचय दिया है, वहीं दूसरी ओर निरन्तर प्रदूषण बढ़ा कर पृथ्वी पर जीवन के लिए ख़तरा पैदाकर अपने अविवेक का परिचय भी दिया है।

सरल जीवन बनाने के लिए भौतिक साधनों की उपलब्धि तथा औद्योगिक विकास किसी भी देश के लिए गौरव की बात है। लेकिन इन सब के साथ पर्यावरण का स्वच्छ होना भी अत्यन्त जरूरी है। आजकल जिस गति से मानव उन्नति हो रही है उसी गति से पर्यावरण प्रदूषण भी हो रहा है। प्रकृति में अत्यधिक हस्तक्षेप और परमाणु विस्फोट आदि के परिणामस्वरूप अनेक बीमारियाँ हो रही हैं। विभिन्न प्रदूषण कारकों से होने वाला पर्यावरण प्रदूषण मुख्यतः निम्न रूपों में समझा जा सकता है—

वायु प्रदूषण—कारखानों एवं मोटर वाहनों से निकला हुआ धुँआ जिसमें सल्फर डाइऑक्साइड तथा मोनोऑक्साइड जैसी विषैली गैसें होती हैं, वायु को प्रदूषित करती हैं।

हमारे देश में दिल्ली और बम्बई सर्वाधिक प्रदूषित शहर हैं। दिल्ली को तो विश्व का चौथे नम्बर का प्रदूषित शहर का खिताब मिल चुका है। कलकत्ता की भी लगभग 60% जनसंख्या वायु-प्रदूषण के कारण विभिन्न रोगों से ग्रस्त है। वायु प्रदूषण के कारण चर्म तथा नेत्र रोग, सिर दर्द तथा चक्कर आना, शिथिलता तथा श्वास रोग हो रहे हैं।

ध्वनि प्रदूषण—जल तथा वायु प्रदूषण का प्रभाव तत्काल दिखायी देता है, किन्तु ध्वनि प्रदूषण दूरगामी तथा व्यापक होता है। यह वैज्ञानिक सत्य है कि 120 डेसीबिल की ध्वनि कान और सिर दर्द पैदा करती है तथा 150 या इससे अधिक डेसीबिल की ध्वनि मानव को बहरा बना सकती है। एक कार के हार्न से 90-95 डेसीबिल, मोटरसाइकिल से 120 डेसीबिल और अन्तरिक्षयान से 140-170 डेसीबिल तक ध्वनि होती है। इससे आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि मानव के ऊपर तेज़ ध्वनि का कितना बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

जल प्रदूषण—जल ही जीवन है। जल के प्रमुख स्रोत नदियाँ तथा वर्षा है। अत्यधिक शहरीकरण, परमाणु संयंत्र, तेल-शोधक, चमड़ा, उर्वरक, इस्पात आदि के कारखानों से निकले अवशिष्ट पदार्थ के बहुत बड़ी मात्रा में नदियों में प्रतिदिन विसर्जन से नदियों के पानी में लगातार विषैले पदार्थों की वृद्धि हो रही है। ये विषाक्त पदार्थ जलीय जीवों के लिए ही नहीं अपितु स्थलीय जीवों के लिए भी ख़तरा बन गये हैं।

मृदा प्रदूषण—मृदा में अत्यधिक कीटनाशकों, उर्वरकों तथा प्रदूषित जल के प्रयोग से विषैले कार्बनिक तथा अकार्बनिक तत्वों जैसे—कैडमियम, लेड, क्रोमियम, मरकरी, ज़िंक आदि की मात्रा मृदा में दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जिससे मृदा प्रदूषित तो होती ही है साथ ही उससे उत्पादित खाद्यान्न भी प्रदूषित हो जाते हैं। ये खाद्यान्न उपयोग किये जाने पर बीमारियाँ पैदा करते हैं।

यदि हमने बढ़ते प्रदूषण पर नियन्त्रण न किया तो वह दिन दूर नहीं जब मानव-जीवन पृथ्वी पर दूभर हो जायेगा। □□

5 जून 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर

पर्यावरण और धूम्रपान

दर्शना नन्द

धूम्रपान के कुप्रभावों को दृष्टिगत रखते हुए धूम्रपान को विषपान कहना अनुचित न होगा। धूम्र पान करने वाले व्यक्ति को प्राय. हृदय और कैंसर जैसे घातक रोगों का शिकार होना पड़ता है। परिणाम-स्वरूप उसकी आयु कम हो जाती है और वह मृत्यु की कगार पर भी पहुँच जाता है।

उपनिदेशक, उद्यान, इलाहाबाद मण्डल (अ० प्रा०), सी-67, गुरुतेग बहादुर नगर (करेली हाउसिंग स्कीम), इलाहाबाद-211016

धूम्रपान करके मनुष्य स्वयं अपने शरीर को तो क्षति पहुँचाता ही है, साथ ही अपने मुँह से इसका ज़हरीला धुँआ निकाल कर वह वायुमण्डल को भी प्रदूषित करता है। सिगरेट पीने वाला व्यक्ति अगर रोगी है तो इसके धुँए के साथ वह वायु में रोगाणु भी छोड़ता है।

इस बीच वह केवल सिगरेट की कश का आनन्द लेने में मस्त रहता है। धूम्रपान न करने वाले व्यक्ति के लिए वायुमण्डल में छोड़े हुए इस धुँए को अपनी साँस के साथ खींचने पर वह सिगरेट पीने वाले की अपेक्षा अधिक हानिकारक होता है। फिर भी सिगरेट पीने वाले को इस बात की कतई चिन्ता नहीं होती कि यह धुँआ किसके मुँह पर जा रहा है। धूम्रपान न करने वाले कैसा महसूस कर रहे होंगे—उसे इस बात से भी कोई मतलब नहीं रहता।

इसका परिणाम यह होता है कि इस रोगयुक्त कीटाणुओं से भरे हुए ज़हरीले धुँए को वह अपने परिवार के सदस्यों को अपनी साँस के साथ खींचने के लिए विवश करता है।

लगातार धूम्रपान करने से धुँए के अवयव विटामिन-सी को नष्ट कर देते हैं। प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध हो चुका है कि एक सिगरेट पीने से ही शरीर का करीब 25 मिलीग्राम विटामिन-सी निष्क्रिय हो जाता है।

प्रतिदिन 20 सिगरेट पीने वाले के सिरम में विटामिन-सी की 25% तथा 20 से अधिक पीने वाले के सिरम में 40% तक की कमी हो जाती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में सिगरेट न पीने वालों के मुँह से छोड़े गए धुँए को साँस के साथ खींचने के कारण प्रतिवर्ष 3000 से 5000 फेफड़े के कैन्सर के ऐसे मरीज़ होते हैं, जिनकी मृत्यु हो जाती है।

पुनः धूम्रपान करने वालों के मुँह से छोड़ा हुआ धुँआ धूम्रपान न करने वालों द्वारा श्वास के साथ खींचते रहने से हृदय रोग तथा अन्य प्रकार के कैंसर के रोगों के कारण हुई मृत्यु सहित कुल संख्या उपरोक्त की लगभग दस गुनी हो जाती है।

इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका के कार्यस्थलों और घरों में तम्बाकू का धुँआ, धूम्रपान न करने वाले कुल 46000 व्यक्तियों को प्रति वर्ष मार डालता है। इसमें 3000 फेफड़े के कैन्सर से, 11000 अन्य अंगों के कैन्सर से तथा 3200 व्यक्तियों की हृदय रोग से मृत्यु होती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के एक फर्म के स्वास्थ्य सम्बन्धी अध्यक्ष **डॉ० डेविस वीक्स** के अनुसार एक आदर्श कार्यालय, जिसमें हवा के आवागमन हेतु झरोखे या रोशनदान भी बने रहते हैं, में 100000 कार्य करने वालों के बीच धूम्रपान द्वारा छोड़े गए धुँए को साँस के साथ खींचने से उत्पन्न फेफड़े के कैन्सर से 250 व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। परन्तु जिस कार्यालय में झरोखे या रोशनदान की व्यवस्था नहीं रहती उसमें यह संख्या दूनी हो जाती है।

इस प्रकार कार्य स्थलों, सामाजिक स्थानों, सिनेमाघरों, बसों, रेलगाड़ियों और रास्ता चलते वायुमण्डल में उड़ाए गए बीड़ी, सिगरेट के धुँए धूम्रपान न करने वालों के श्वास के साथ खींचने पर उनकी क्या दुर्दशा होती होगी—इसका अनुमान भली-भाँति लगाया जा सकता है।

क्यों न इस विषपान और बीड़ी-सिगरेट व अन्य नशीले पदार्थों के निर्माण पर कानूनी प्रतिबन्ध लगा दिया जाय? क्यों न निषिद्ध स्थानों पर धूम्रपान को कड़ाई के साथ रोकने का अभियान चलाया जाय? अभी 31 मई 1990 को तम्बाकू निषेध दिवस मनाया गया। यह निषेध दिवस के रूप में ही क्यों रहे? क्यों न इसे जड़ से समाप्त कर दिया जाय?

प्रयोगों द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रतिदिन 2 ग्राम विटामिन-सी ग्रहण करने से धूम्रपान करने वालों के शरीर में इसकी मात्रा लगभग स्थिर हो जाती है। पुनः प्रतिदिन 40 मिलीग्राम विटामिन-सी लेने से गम्भीर व चिरकालीन कार्बन मोनोऑक्साइड के ज़हरीले प्रभाव से बचाव हो सकता है।

विटामिन-सी प्राप्त करने के लिए आँवले का फल एक सर्वोत्तम स्रोत है। प्रायः प्रयोग किए जाने वाले

फलों में आँवला ही एक ऐसा फल है जिसमें सबसे ज़्यादा और अपेक्षाकृत बहुत ज़्यादा भी, विटामिन-सी पाया जाता है। आँवले का प्रति 100 ग्राम गूदा 600 मिलीग्राम विटामिन-सी प्रदान करता है। फिर भी विटामिन-सी की मात्रा आँवले के फल में 750 मिलीग्राम तक भी पाई गई है।

सुखाए हुए आँवले के फल भी समान रूप से उपयोगी होते हैं। विटामिन-सी की उपलब्धता की दृष्टि से आँवले के बाद अमरूद के फल की गणना की जाती है। अमरूद के प्रति 100 ग्राम गूदे में 299 मिलीग्राम विटामिन-सी उपलब्ध रहता है।

अतः आँवले और अमरूद की पैदावार बढ़ाने के लिए अधिक से अधिक इनके बाग और वृक्ष लगाएँ। आँवला और अमरूद के वृक्ष घटिया से घटिया और 9.5 पी० एच० तक वाली उसरीली भूमि में भी भली-भाँति फल-फूल सकते हैं। ये वृक्ष सूखा भी सहन कर लेते हैं। अमरूद के बाग़ तो जलमग्न और बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों और नदियों की तलहटियों में भी खूब फल देते हैं।

इस प्रकार आँवला और अमरूद के फलों द्वारा विटामिन-सी उपलब्ध होने तथा इनके वृक्षों द्वारा प्राण वायु ऑक्सीजन निर्माण होने से, प्रदूषित वातावरण में पर्याप्त सीमा तक सुधार लाया जा सकता है। □ □

5 जून 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर

ओज़ोन और पर्यावरण

कु० स्मृति दुबे

आदरणीय सभाध्यक्ष जी और उपस्थित सज्जनो !

मैं आपके समक्ष, आज 5 जून, 'विश्व पर्यावरण दिवस' के अवसर पर इस विचार गोष्ठी में अपना आलेख 'ओज़ोन और पर्यावरण' प्रस्तुत कर रही हूँ।

ओज़ोन ऑक्सीजन के तीन अणुओं से बनी जीवन-रक्षक गैस है, जो पृथ्वी को एक नाज़ुक पर्दे की भाँति लपेटे हुये है, और इस ग्रह की तथा इसके वासियों की सूर्य की घातक पराबैंगनी किरणों से सुरक्षा कर रही है। इसे जीवन-सहायक इसीलिये माना जाता है क्योंकि इसमें कम तरंगदैर्ध्य (वेव लेन्थ) का प्रकाश, जो कि 300 नैनोमीटर से कम हो, को अपने में अवशोषित करने की अद्भुत क्षमता है। जहाँ पर वातावरण में ओज़ोन उपस्थित नहीं होगी, वहाँ सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर पहुँचने लगेंगी। ये किरणें मनुष्य सहित समस्त जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों के लिये हानिकारक हैं। ओज़ोन पृथ्वी से 60 किलोमीटर की ऊँचाई पर पायी जाती है। पृथ्वी से दूरी स्ट्रैटोस्फीयर कहलाती है। यह 8 किलोमीटर ध्रुवों से लेकर 17 किलोमीटर विषुवत् रेखा तक फैली हुयी है। अगर यह सारी ओज़ोन पृथ्वी की सतह पर एकत्र की जाय तो हमें मात्र 3 मिलीमीटर मोटी ओज़ोन की एक पर्त प्राप्त होगी। परन्तु इस पतली पर्त का पृथ्वी के निकट होने पर, प्रभाव निश्चित रूप से हानिकारक होगा।

जब पराबैंगनी किरणें ऑक्सीजन के एक अणु पर प्रहार करती हैं तो फोटॉन उस अणु को दो अत्यधिक क्रियाशील भागों में विभक्त कर देता है। ये भाग शीघ्रता से ऑक्सीजन के एक सम्पूर्ण अणु से संयोग कर के ओज़ोन की रचना करते हैं, अतः हम कह कहते हैं कि ओज़ोन की रचना ऑक्सीजन के **प्रकाश-रासायनिक परिवर्तन** से होती है, तथा यह क्रिया जितनी अधिक तीव्रता से होगी उतनी ही अधिक मात्रा में ओज़ोन गैस का निर्माण होगा। परन्तु बहुत से रसायन जो हमारे उद्योगों के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं, ओज़ोन बनाने की क्रिया को कम करते हैं, तथा इसके अणुओं के टूटने का कारण बनते हैं। इनमें **क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स**

बी० एस-सी० तृतीय वर्ष, सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद—211002

की विशेष भूमिका है। इसे संक्षिप्त रूप में सी० एफ० सीज़ भी कहते हैं। इसका प्रयोग मुख्यतः रेफ्रिजरेटरों में ठंडक पैदा करने आदि की तकनीकों में होता है। दूसरी गैसें जो काफ़ी हद तक ओज़ोन के क्षय के लिये ज़िम्मेदार हैं, उनमें नाइट्रस ऑक्साइड सहित वे सभी गैसें हैं जिनमें क्लोरीन, ब्रोमीन और फ्लोरीन विद्यमान् होती हैं।

आजकल **'ओज़ोन छिद्र'** अथवा ओज़ोन की चादर का झीना होते जाना अखबारों की सुर्खियों में है और उन सभी लोगों की चिन्ता का विषय बना हुआ है, जो लगातार खराब होते पर्यावरण को सुधारना चाहते हैं। वैज्ञानिक परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि पिछले 10 वर्षों में **आर्कटिक** या उत्तरी ध्रुव और **अन्टार्कटिका** या दक्षिणी ध्रुव में इस सुरक्षा कवच की मोटाई में कमी पायी गयी है। वास्तविकता तो यह है कि यही शनैः शनैः बढ़ता झीनापन हमें आगे आने वाले ख़तरे की चेतावनी देता है। **जब पृथ्वी और सूर्य से यह सुरक्षा** पर्त हट जायेगी, ग्रह के जीव-जन्तु तथा वनस्पतियाँ हानिकारक पराबैंगनी किरणों के सीधे सम्पर्क में आ जायेंगी, तब स्थिति कितनी भयावह होगी इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

कुछ सिरफिरे लोगों का ऐसा मानना है कि ओज़ोन की परत तो अन्टार्कटिका में झीनी हो रही है और वहाँ पर मनुष्यों का निवास तो है नहीं, अतएव यह 'ओज़ोन छिद्र' किसी भी प्रकार से चिन्ता का विषय नहीं है। परन्तु ऐसा विचार तो स्वयं को भ्रमित रखने का प्रयास मात्र ही कहा जा सकता है, क्योंकि अनुसंधानों द्वारा अब यह पता चल चुका है कि ओज़ोन की कमी से होने वाले अनिष्टकारी प्रभाव अन्टार्कटिका से काफ़ी दूर-दूर के क्षेत्रों को भी अपनी लपेट में ले लेंगे। एक अनुमान के अनुसार सात प्रतिशत ओज़ोन की कमी पृथ्वी पर करीब 15 प्रतिशत पराबैंगनी किरणों की मात्रा बढ़ा देगी। और वास्तव में यही कारण है कि आज विश्व की सरकारें, तकनीकी विशेषज्ञ तथा उद्योग नीतियों का निर्धारण करने वाले ओज़ोन रूपी पृथ्वी के सुरक्षा कवच को बनाये रखने के लिये न केवल चिन्तित हैं वरन् प्रयत्नशील भी।

पराबैंगनी किरणों का विकिरण कई घातक बीमारियों के लिये ज़िम्मेदार है यथा—1 शरीर की त्वचा का काला पड़ जाना, 2 हिम अंधता, 3 आँख की रोशनी का प्रभावित होना, 4 चर्म कैंसर, 5 असमय शरीर पर झुर्रियों का पड़ना, 6 बुढ़ापा आदि।

ये किरणें वनस्पतियों की वृद्धि पर भी कुप्रभाव डालती हैं जैसे प्रकाश संश्लेषण का कम हो जाना; बहुत से पौधों तथा फसलों में बीजों का अंकुरण देर से होना आदि। पानी वाले पौधों में शैवालें पराबैंगनी किरणों से अधिक प्रभावित होती हैं। ऐसी आशंका है कि ओज़ोन की पर्त को होने वाली क्षति से जलीय पारिस्थितिकी, विशेष रूप से मछलियाँ प्रभावित होंगी।

अतएव हमारा यह कर्तव्य है कि हम पृथ्वी के जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों की सुरक्षा के लिए ऐसे रसायनों का प्रयोग कम से कम करें जो ओज़ोन के सुरक्षा कवच को कमज़ोर कर रहे हैं। और साथ ही हम ऐसी नई तकनीकें खोजें जो पर्यावरण को क्षति न पहुँचायें। मुझे विश्वास है कि विश्व के समस्त हित-चिन्तक समय रहते ही समस्त जीवधारियों के लिये वरदान ओज़ोन परत को बचाने की कार्यवाही करने में कोई कमी नहीं करेंगे। □□

5 जून 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर

भारत में पर्यावरण सुरक्षा : प्रदूषण नियंत्रण

राजेश कुमार केसरी

प्रदूषण की समस्या किसी विशेष स्थान या देश की समस्या नहीं है, बल्कि पूरे विश्व की समस्या है। भारत जैसे विकासशील देश में यह स्वयंसिद्ध है कि ग़रीबी, वनों की लगातार कटाई और मनुष्य की लालच के कारण देश के अनेक भू-खण्ड निर्जन होते जा रहे हैं। इसका हमारे देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। स्वतंत्रता के बाद से तो औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण हमारा पारिस्थितिक तन्त्र काफ़ी प्रभावित हुआ है। हमारे देश की आधी जनसंख्या ग़रीबी रेखा के नीचे रह रही है। देश की 14 प्रमुख नदियाँ, जिनमें गंगा भी है, हमारे देश में 85% पीने का पानी उपलब्ध कराती हैं। ये नदियाँ बुरी तरह से प्रदूषित हो चुकी हैं। शहरों का वातावरण इतना विषाक्त हो चुका है कि वहाँ के निवासी प्रातः मात्र दो घण्टे ही शुद्ध हवा ले पाते हैं। प्रदूषित भोजन को ग्रहण करने के कारण मनुष्यों में तरह-तरह के असाध्य रोग घर करते जा रहे हैं। इन रोगों की संख्या पिछले 30 सालों में दुगनी हो गयी है। भारत के अस्पतालों में जो रोगी भर्ती किये जाते हैं, उनमें से 80% से अधिक रोगी प्रदूषण से पीड़ित होते हैं।

लगभग एक दर्जन मुख्य कारक हैं, जो हमारी भूमि, जल और हवा को प्रदूषित कर रहे हैं।

(1) औद्योगिक और घरेलू ईंधन के दहन से निकला कार्बन डाइऑक्साइड।

(2) मोटर वाहनों और उद्योगों द्वारा अधजले ईंधन से निकला हुआ कार्बन मोनोऑक्साइड।

(3) जंगलों की लगातार कटाई से जंगली जीव और वृक्षों के नीचे उगने वाली वनस्पतियाँ प्रभावित होती हैं। अनेक जीव-वनस्पति जातियाँ लुप्त होती जा रही हैं।

(4) पेट्रोल व डीज़ल से निकला विषाक्त सीसा।

(5) रंग और पेन्ट उद्योग में इस्तेमाल होने वाला पारा।

(6) हवाई जहाज़ से और ज़्यादा मात्रा में खाद का उपयोग आदि से उत्सर्जित कचरे में नाइट्रोजन ऑक्साइड।

(7) तेल का पता लगाते समय तेल का रिस कर समुद्र के बहुत बड़े क्षेत्र में फैल जाना।

(8) रासायनिक उद्योगों द्वारा निकलने वाले कार्बनिक और विषैले प्रदूषक।

(9) नाभिकीय ईंधन निर्माण उद्योग, परमाणु अस्त्रों के परीक्षण आदि से निकलने वाले रेडियोधर्मी तत्व।

(10) उद्योगों से निकला कचरा और मल-जल जिसका विसर्जन नदियों में होता रहता है।

(11) कोयले के दहन और मोटर गाड़ियों से निकले धूँये में सल्फर डाइऑक्साइड।

उपर्युक्त प्रदूषण भारत के पर्यावरण को बुरी तरह से प्रभावित किये हुए हैं और करते जा रहे हैं। खनिज पदार्थ जैसे—कोयला आदि की खुदाई से ज़मीन के बड़े-बड़े भूभाग बेकार होते जा रहे हैं। भारत में देहरादून के पास ज़मीन का बहुत बड़ा भाग चूने-पत्थर की लगातार खुदाई के कारण क्षरित होता जा रहा है। नदियों का करीब 90% प्रदूषण घरेलू अवशिष्ट पदार्थों के विसर्जन से तथा बाकी बचा 10% प्रदूषण उद्योगों के अवांछित पदार्थों के विसर्जन से होता है। अतः घरेलू और उद्योगों से प्रदूषित पानी जिनमें ख़तरनाक रोगों के वाहक जीवाणु होते हैं को नदी में उत्सर्जित करने से पहले परिशोधित कर लेना चाहिए।

बी० एम-सी० तृतीय वर्ष (जीव विज्ञान), सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद–211002

भारत के समुद्र तटीय क्षेत्रों के मुख्य प्रदूषक कच्चा तेल ओर इसके व्युत्पन्न, रेडियोधर्मी तत्व, बिजली घरों का कचरा आदि हैं। प्रदूषकों का प्रभाव कुछ मछलियों और अन्य समुद्री जीवों के लिए अत्यधिक विषाक्त होता है।

भारत देश की हवा, कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी कुछ गैसों से काफ़ी हद तक प्रदूषित हो चुकी है। नये कानून के अन्तर्गत वायु प्रदूषण के लिए दण्ड को बढ़ा कर 7 वर्ष तक के कारावास में बदल दिया गया है। कारखानों और उद्योगों के द्वारा नये कानूनों का उल्लंघन करने पर दण्ड के रूप में 5000 रु० तक की राशि प्रतिदिन के हिसाब से दोषी उद्योगों से वसूल की जा सकती है।

भारत में प्रदूषण से सम्बन्धित लगभग तीन दर्जन कानून राज्य और केन्द्र द्वारा लागू किये गये हैं। अनेक भारतीय न्यायालयों ने दोषी उद्योगों के विरुद्ध अपने निर्णय दिये हैं। लेकिन मात्र कानून हमारी पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान नहीं हैं। इसके लिए लोगों की जागरूकता और उनकी साझेदारी आवश्यक है।

प्रसन्नता की बात है कि हम कुछ नई तकनीकें विकसित करने में सफल हुए हैं, जो प्रदूषण से लड़ने में सक्षम हैं। इस सम्बन्ध में यहाँ मात्र एक-दो उदाहरण देना चाहूँगा। पहला—आनुवंशिक इंजीनियरी के क्षेत्र में **डॉ० आनन्द एम० चक्रवर्ती** ने कुछ ऐसे विचित्र सूक्ष्मजीवों को खोज निकाला है जो प्रदूषण से लड़ने में सक्षम हैं। ये सूक्ष्मजीव हाइड्रोकार्बन को पचा कर प्रोटीनयुक्त खाद्य पदार्थ में बदल देते हैं। यह भोजन समुद्री जीवों द्वारा खाया जाता है। और दूसरा उदाहरण है—केरल विश्वविद्यालय के **डॉ० पी० ज्राय** ने एक ऐसे जलीय कीट की खोज की है जो **साल्वीनिया मोलेस्टा** नामक एक जलीय पादप का इस कदर तेज़ी से भक्षण करता है कि इस पानी के पौधे की समस्या से छुटकारा मिल सकता है।

अतः पर्यावरणीय समस्याओं से हमें निराश नहीं होना चाहिए।

मनुष्य ने यदि पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ा है तो आज यह भी सिद्ध कर दिया है कि पर्यावरण को लेकर आज का मानव चिंतित है और प्रदूषण-मुक्त तकनीकों को विकसित करने की मानव में क्षमता भी विद्यमान है। आवश्यकता है इस क्षमता को सही दिशा देने की। □□

'आर एच फैक्टर' है क्या ?

उदय ठाकुर

मनुष्य के रक्त को मुख्यत. 'ए', 'बी', 'ए बी', 'ओ' व 'आर एच' वर्गों में बाँटा गया है। इनमें से प्रथम चार वर्गों में से माता का रक्त वर्ग कोई भी हो, उसका होने वाले शिशु पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। यदि कोई गम्भीर स्थिति आती है तो वह पाँचवें अर्थात् 'आर एच' वर्ग से उत्पन्न होती है। 'आर एच' वर्ग अतिरिक्त वर्ग के रूप में शरीर में उपस्थित होता है। जिन लोगों में यह वर्ग रहता है, उन्हें 'आर एच पोज़िटिव' व जिनमें नहीं होता उन्हें 'आर एच नेगेटिव' कहते हैं।

'आर एच' बीमारी तब होती है जब पति 'आर एच पोज़िटिव' व पत्नी 'आर एच नेगेटिव' हो और गर्भ में स्थित बच्चे का रक्त वर्ग 'आर एच पोज़िटिव' हो। अधिकतर मामलों में यदि पिता का रक्त वर्ग 'आर एच पोज़िटिव' है तो वही बच्चे में भी आ जाता है।

साधारणतः 'आर एच नेगेटिव' माता जब प्रथम बार गर्भधारण करती है तो जन्म लेने वाला पहला बच्चा सामान्य होता है, चाहे उसका रक्त वर्ग 'आर एच पोज़िटिव' हो। परन्तु इसके बाद जितनी संतानें होती हैं, उनमें **पीलिया व एनीमिया** (शरीर में रक्त की कमी) की निश्चित संभावना रहती है और यह

प्रधानाचार्य, पवित्रधाम, रोटरी स्कूल फॉर डेफ, रामबाग रोड, अम्बाला छावनी—133001, दिल्ली

स्थिति प्रत्येक गर्भ के साथ-साथ बढ़ती ही जाती है, यहाँ तक कि बच्चे की मृत्यु गर्भ में ही हो सकती है।

इसका कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्य के शरीर में किसी भी बाह्य तत्त्व या किसी भी नए पदार्थ को, जो शरीर के भीतर पहुँच गया हो, नष्ट करने की क्षमता होती है जिसके लिए शरीर में तुरन्त एक विशेष प्रकार के तत्त्व उत्पन्न हो जाते हैं। इन्हें 'ऐंटीबाडीज़' कहते हैं।

गर्भावस्था के अंतिम चरण में बच्चे का कुछ रक्त माता के रक्त में आ मिलता है। चूँकि बच्चा 'आर एच पोज़िटिव' है, इसलिए उसके रक्त में 'आर एच फैक्टर' मौजूद होगा, जो माता के रक्त में नहीं है। इसीलिए यह माता के शरीर के लिए बाह्य अथवा नई वस्तु के सामान है। इसी वजह से माता के शरीर में इनको नष्ट करने के लिए तुरन्त ऐंटीबाडीज़ बनता है। ये ऐंटीबाडीज़ माता के शरीर में आई समस्त रक्त-कोशिकाओं को नष्ट कर देती हैं।

पहला बच्चा इसलिए सामान्य होता है कि उस समय तक माता के शरीर में केवल इतनी संख्या में ऐंटीबाडीज़ उत्पन्न हो पाते हैं जो केवल माता के रक्त में पहुँची बच्चे की रक्त कोशिकाओं को ही नष्ट कर पाते हैं। परन्तु प्रत्येक गर्भधारण के साथ-साथ माता के शरीर में इनकी संख्या इतनी बढ़ जाती है कि ये अब बच्चे के शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं और वहाँ उसकी रक्त कोशिकाओं को समाप्त करने लगते हैं। इससे बच्चे के शरीर में रक्त की कमी हो जाती है। यह कमी इतनी अधिक हो जाती है कि बच्चे के बचने की संभावना बहुत कम रहती है। इन्हीं रक्त कोशिकाओं के नष्ट होने के फलस्वरूप ही बच्चे को पीलिया भी हो जाता है।

यह ज़रूरी नहीं कि बच्चा गर्भ में ही मर जाए या जन्म के तुरन्त बाद ही मर जाए। ऐसा भी देखा गया है कि बच्चा एक-डेढ़ महीने बाद तक जीवित रहता है, परन्तु वह दिन पर दिन कमज़ोर होता जाता है। उसका ज़िगर बढ़ जाता है और अन्त में वह मर जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि बच्चा न मरे परन्तु ऐसे में बच्चा मानसिक रूप से विकलांग हो सकता है।

आज विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि इस प्रकार के बच्चों को बचाया जा सकता है। इस दिशा में पहला कदम तो यह होना चाहिए कि जैसे ही स्त्री गर्भधारण करे, वह अपना व अपने पति के रक्त की जाँच कराए। यदि पति-पत्नी दोनों 'आर एच पोज़िटिव' या दोनों 'आर एच नेगेटिव' हैं या पति 'आर एच नेगेटिव' और पत्नी 'आर एच पोज़िटिव' है तो भी होने वाली संतान को कोई ख़तरा नहीं है।

ऐसे में केवल 'आर एच नेगेटिव' पत्नी को अपने चिकित्सक को इसकी जानकारी दे देनी चाहिए जिससे यदि प्रसूति के समय माता को रक्त देने की आवश्यकता पड़े तो उसे जल्दी ही 'आर एच नेगेटिव' रक्त ही दिया जाए।

इसके अलावा अब 'आर एच नेगेटिव' माता से पैदा बच्चे का रक्त जन्म होते ही बदल दिया जाता है। बच्चे के शरीर से 'आर एच पोज़िटिव' रक्त को पूर्णतया निकाल कर उसमें 'आर एच नेगेटिव' रक्त कुछ समय तक भेजा जाता है। यदि गर्भस्थित बच्चा गंभीर रूप से प्रभावित है तो ऐसे में समय से पहले ही ऑपरेशन क्रिया द्वारा बच्चे के बचने की संभावना बढ़ जाती है।

इस प्रकार के मामले में 'ऐंटी आर एच' टीका बहुत सहायक होता है। पहला बच्चा होने के 48 घंटों के भीतर माता को यह टीका लगा देना चाहिए। इससे माता के शरीर में बच्चे से पहुँची हुई रक्त कोशिकाएँ तीन से आठ सप्ताह के भीतर नष्ट हो जाएँगी और जब वे ही नहीं होंगी तो ऐंटीबाडीज़ बनने का प्रश्न ही नहीं उठता और दूसरे बच्चे के जीवन को अधिक ख़तरा नहीं रहता। किसी कारण यदि 'आर एच नेगेटिव' स्त्री का गर्भपात हो जाए, तब भी यह टीका लगवा लेना चाहिए।

□ □

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

खसेरी दाल का मानव एवं पशुओं पर प्रभाव

प्रेम प्रकाश व्यास

भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ पर भुखमरी गरीबी और बढ़ती जनसंख्या के साथ-साथ प्राकृतिक प्रकोप भी कुपोषण की आग में घी का काम करते हैं, उन पदार्थों की सूचि अत्यन्त ही लम्बी है जो अपनी तमाम विषाक्तता के बावजूद लोगों के द्वारा खाए जा रहे हैं, और उन तमाम कानूनों का मजाक उड़ा रहे हैं जो स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए बनाए गए हैं। इनमें से ही एक है **खसेरी दाल**। लैग्युमिनेसी कुल का यह फलीदार पौधा **लैथाइरस सटाइवस**, मातरा, खसेरी, टेउड़ा, बातरा या खेसरी के नाम से जाना जाता है। यह एकवर्षीय शाक है जो 45 से 60 से. मी. तक लम्बा होता है तथा इस पर रोमयुक्त फलियाँ लगती हैं। इसके बीज भूरे या काले होते हैं। इसमें तीन रंग के पुष्प उगते हैं। श्वेत रंग के पुष्प "एल्बस" कहलाते हैं, गुलाबी पुष्प "रोलेशियस" कहलाते हैं और नीले-पुष्प "साएनियस" कहलाते हैं।

भारत में खसेरी दाल से सर्वाधिक प्रभावित राज्य मध्यप्रदेश है। इस राज्य के रींवा, दुर्ग, सतना और राजस्थान से सटी रतलाम क्षेत्र के सीमा में लकवे के शिकार लोगों का प्रतिशत सर्वाधिक कहा जाता है। इस क्षेत्र में लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है ' मातरा की रोटी, मातरा की दार, मातरा की स्त्री राखन हार"। लगातार पड़ने वाले अकाल, भूमि की उर्वरता में निरन्तर कमी और सिंचाई के साधनों की कमी से इस क्षेत्र में अन्य फ़सलें न के बराबर होती हैं। परन्तु खसेरी ऐसी विपरीति परिस्थितियों में भी फलती-फूलती है। यह रबी की फसल है, जो गेहूँ, जौ, चने के साथ बोयी जाती है। बाकी उक्त फ़सलों के नष्ट हो जाने पर भी खसेरी के उगने की संभावना शत प्रतिशत रहती है। खसेरी की चपाती बनाकर, चावल के साथ उबाल कर या दाल पकाकर खाया जाता है। लेकिन इन तमाम संयोगों से यह दाल गरीब वर्ग में लोकप्रिय तो है ही पर इसके दुष्परिणाम बड़े भयंकर हुए हैं। इस क्षेत्र में लकवा महामारी की तरह फैलता है। यहाँ तक कि पूरे गाँव ही लकवे के शिकार हो जाते हैं।

खसेरी दाल का प्रयोग कब प्रारम्भ हुआ इसका कोई वैज्ञानिक विवरण उपलब्ध नहीं है, परन्तु सर्व-प्रथम इसका पूर्ण विवरण प्रस्तुत करने का श्रेय **जनरल स्लीमैन** को है। मध्यभारत में ठगी प्रथा समाप्त करने वाले इस अंग्रेज अधिकारी की पुस्तक **"रैम्बल्स एण्ड रिकलेक्शन ऑव एन इण्डियन ऑफिसिएल्स"** में खसेरी दाल की जानकारी विस्तृत ढंग से दी गई है। 1884 में प्रकाशिकत इस पुस्तक में **स्लीमैन** लिखते हैं कि 1829 से 1833 तक सागर जिले के आसपास के क्षेत्र में भीषण अकाल पड़ा और गेहूँ, जौ व बाजरा की सम्पूर्ण फसलें नष्ट हो गईं, परन्तु खसेरी पर इसका कोई असर न पड़ा और गाँवों में खसेरी दाल से गोदाम भर गए। फलस्वरूप लोगों को मजबूरन यह दाल खानी पड़ी। 1834 में लकवे का पहला प्रकोप दिखाई दिया। घोड़े लकवे से ग्रस्त होकर विकलांग हो गए। बैलों में चलने की क्षमता न रही और लोगों के पाँवों पर लकवे का असर हुआ। और घिसट-घिसट कर चलने वालों की संख्या में बढ़ोत्तरी होने लगी। स्लीमैम ने अपनी पुस्तक में तत्कालीन अंग्रेज सरकार को खसेरी दाल के उगाने पर रोक लगाने की सलाह दी। पर उस सलाह पर आज भी अमल नहीं हो पाया और उसका प्रमाण है लकवाग्रस्त लोगों की भीड़। भारत के अलावा खसेरी दाल सीरिया, ईरान, अल्जीरिया, इथियोपिया, पाकिस्तान व बंगलादेश में भी उगाई जाती है और वहाँ पर भी लकवाग्रस्त लोगों की अच्छी संख्या है। यूरोप में

खसेरी दाल के उत्पादन पर कठोर प्रतिबन्ध होने के कारण लकवाग्रस्त लोगों का प्रतिशत अत्यन्त न्यून है। भारत में यह दाल मध्यप्रदेश के अतिरिक्त जम्मू व काश्मीर, पंजाब, बिहार व पश्चिमी बंगाल में उगाई जाती है। मध्यप्रदेश खसेरी दाल से सर्वाधिक त्रस्त क्षेत्र है। यहाँ कृष्य भूमि का 15% इसकी चपेट में है। ग़रीबी, बढ़ती जनसंख्या व अन्य खाद्य पदार्थों के उपलब्ध न होने के कारण इसका प्रयोग बढ़ा ही है।

खसेरी दाल से उत्पन्न लकवा रोग अत्यन्त ही विचित्र व अप्रत्याशित रूप से आक्रमण करता है। खेत में काम करने वाले मज़दूर-किसान, जिनका प्रमुख भोजन खसेरी दाल है, इसके शिकार बनते हैं। पीठ में तीव्र दर्द तथा हाथ या पाँव में अकड़न जैसे प्राथमिक लक्षण दो या तीन दिन में रोगी को लकवे का शिकार बना देते हैं। रोगी के हाथ या पाँव या शरीर का आधा भाग लकवाग्रस्त हो जाता है और वह या तो घिसट-घिसट कर चलता है या फिर लकड़ी के साथ। जो मवेशी खसेरी दाल खाते हैं वे भी चलते-चलते अचानक गिर जाते हैं और उनके लकवाग्रस्त पैर उन्हें जीवन भर उठने नहीं देते हैं। स्त्रियों में यह रोग कम पाया जाता है। संभवतया यह उनमें पाये जाने वाले हार्मोन एस्ट्रोजन के कारण होता है। कई बार रोगी के पाँव में ऐंठन उत्पन्न होती है, पाँव मुड़ जाते हैं व लकवा उस पर आक्रमण कर चुका होता है।

मवेशियों में खसेरी दाल से एक अन्य रोग भी उत्पन्न हो जाता है। इसे **डिप्थोनिया** कहते हैं, जो पशु के श्वसन-तंत्र पर लकवे के कारण होता है। इसके कारण पशु को श्वास लेने में कठिनाई होने लगती है। अन्य दालों की तरह खसेरी दाल भी प्रोटीन का एक स्त्रोत ही है परन्तु इसमें पाए जाने वाले विषैले रासायनिक पदार्थों के कारण इसका दुष्प्रभाव अत्यन्त घातक होता है। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑव न्युट्रिशन' हैदराबाद के वैज्ञानिकों ने खंसेरी दाल में पाए जाने वाले लकवा उत्पन्न करने वाले तत्वों को खोज निकाला है। अध्ययन के अनुसार इसमें **"बीटा एन ऑक्सेलिल एमिनो एल एलेनिन"** पाया जाता है। यह साधारणतया **"बी० ओ० ए० ए०"** के नाम से जाना जाता है। यह पदार्थ मस्तिष्क में तंत्रिका-तंत्र को नष्ट करने में सक्षम है। एक अन्य रसायन **बीटा एन ऑक्सेलिल एल्फा बीटा डाई एमीनो प्रोपियोनिक एसिड (ओडेप)** भी लकवा रोग उत्पन्न करने में सक्षम है। ये पदार्थ खंसेरी दाल के बीजपत्र में पाए जाते हैं तथा ये जल में विलेय हैं। ये सभी पदार्थ तंत्रिका-तंत्र को बुरी तरह प्रभावित करते हैं।

एक लम्बे समय से खसेरी दाल के दुष्प्रभाव प्रकट होते रहने के बावजूद भी सरकार ने अभी तक इसकी रोकथाम के लिए कुछ भी नहीं किया है। 1960 में मध्यप्रदेश के सतना व रींवा जिले के भागलखण्ड क्षेत्र में लकवा महामारी की तरह फैला, और **इंडियन कौंसिल ऑव मेडिकल रिसर्च** ने एक दल इसका पता लगाने भेजा। दल ने पाया कि खसेरी दाल मज़दूरों को भोजन के रूप में दी गई है। यह सस्ती भी थी तथा इसका प्रचलन भी खूब था। इस दल ने इसके उपयोग पर तत्काल प्रतिबन्ध लगाने की मांग की, परन्तु उस पर कोई अमल नहीं किया गया। 1978 में पुणे की **'मेडिको फ्रेंड्स सर्कल** ने भी इस क्षेत्र का दौरा किया तथा सरकार को खसेरी दाल के कुप्रभावों से अवगत कराया। पर नतीजा शून्य ही रहा।

इस समय भी खसेरी दाल का उपयोग धड़ल्ले से हो रहा है। इसे अरहर की दाल में मिलाकर बेचा जा रहा है। लकवाग्रस्त लोगों की संख्या में निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है। आवश्यकता इस बात की है कि उत्पादन पर कठोर प्रतिबन्ध लगाया जाय। किसी वैकल्पिक सस्ते खाद्य स्त्रोत को उपलब्ध कराया जाय। और जब तक विकल्प न ढूंढ़ लिया जाये तब तक कम विषैली **किस्म पूसा** 24 (जो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा जाय। विकसित की गई है) को सीमित मात्रा में ही उगाया जाय। खसेरी दाल को प्रेशर कुकर में उबालने पर इसके 70-80% विषैले तत्व निकल जाते हैं। पर भारत जैसे ग़रीब देश में जहाँ खाने के ही लाले पड़े हैं, प्रेशर कुकर की कल्पना भी बेकार है। यदि खसेरी दाल का उपयोग रोका न गया तो लकवाग्रस्त लोगों की संख्या में निरन्तर बढ़ोतरी होती रहेगी। □□

खाद्य पदार्थों में कृत्रिम रंग कितने हानिकारक

डॉ० डी० डी० ओझा

मानव शरीर का रंगों से गहरा सम्बन्ध है। मन-मोहक रंगों के वशीभूत होकर ही मनुष्य ने इन्हें किसी न किसी प्रकार अपने दैनिक जीवन में उपयोग करने का प्रयत्न किया। हमारे देश में विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्रों में उन्नति के साथ मानव जीवन भी जटिलतम होने लगा है। इसमें अन्य कारणों के अतिरिक्त शुद्ध भोजन एवं पानी का न मिलना भी सम्मिलित है। आजकल खाद्य पदार्थों में संश्लेषित रंगों का सम्मिश्रण आम बात सी हो गई है।

वर्ष 1956 में वैज्ञानिक **परकिन** ने सर्वप्रथम 'माव' नामक रंग का संश्लेषण किया। उसके बाद तो संसार में अनेक प्रकार के कृत्रिम रंग प्रयुक्त किये जाने लगे। इस समय विश्व में कुल 8 लाख मिट्रिक टन से भी अधिक संश्लेषित रंगों का उत्पादन किया जाता है। इनमें से लगभग 56 प्रतिशत कपड़ा उद्योग, 15 प्रतिशत कागज़ तथा चमड़ा उद्योग, 23 प्रतिशत कार्बनिक रंग तथा 6 प्रतिशत अन्य वस्तुओं के रंगने में प्रयुक्त किये जाते है, जिनमें खाद्य पदार्थ भी शामिल है। इस समय विश्व में 65 तरह के संश्लेषित रंगों का उपयोग किया जाता है, इनमें से डेनमार्क में 33, ब्रिटेन में 20, जापान में 11, भारत में 11; कनाडा में 10, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में 9 तथा रूस में 3 रंग खाद्य पदार्थों में उपयोग करने हेतु वैध हैं। नार्वे तथा ग्रीस दो ऐसे देश हैं जहाँ कोई संश्लेषित रंग उपयोग नहीं किया जाता है।

भारत में प्रयुक्त होने वाले संश्लेषित खाद्य रंग

हमारे देश में खाद्य मिलावट निवारक अधिनियम (Prevention of Food Adulteration Act) 1954 के तहत 13 संश्लेषित रंग खाद्य पदार्थों में उपयोग करने के लिए वैध किए गए थे। 1968 में 5 रंग विषाक्ता के कारण निकाल दिये थे तथा 3 नए रंग पुनः जोड़ दिये थे। इस प्रकार अब कुल 11 रंगों का उपयोग वैध है। इनके नाम हैं– अमरन्थ, ब्रिलिएन्ट ब्लू एफ सी एफ, कारमोइसीन, इरिथ्रोसीन, फास्टग्रीन एफ सी एफ, फास्ट रेड ई, ग्रीन एस, इंडिगो कार्मोन, पोंसियू चार चार, सनसेट येलो एफ सी एफ तथा टारट्राजीन।

इसके अतिरिक्त कई वर्जित रंग भी उपयोग किए जाते हैं, जिनमें औरामीन, बटर येलो (पीला), ब्लू बी आर एम (नीला), कांगो रेड, सूडान दो तथा तीन (लाल), मेलाकाइट ग्रीन (हरा), मेटानिल येलो या गऊ मार्का पीला रंग, ओरेन्ज दो एवं रोडामीन बी प्रमुख हैं।

ये वर्जित रंग बाजार में आसानी से उपलब्ध होते हैं तथा इनका मूल्य भी वैध रंगों की तुलना में कम होता है। ये रंग जटिल स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देते हैं। कृत्रिम रंगों का प्रयोग करने से कोई लाभ नहीं होता है, क्योंकि न तो इनमें कुछ पोषकता होती है और न ही ये सुरक्षित होते हैं।

रंगों की विषाक्तता

यद्यपि भारत सरकार के 'खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम' द्वारा मेटानिल येलो का निषेध कर रखा है, क्योंकि इसके सेवन से पुरुषों के शुक्राणुओं का निर्माण रुक जाता है तथा अन्य रोग हो जाते हैं, फिर भी इसका प्रयोग जलेबी, बर्फी, लड्डू, हिंग, कैशर सुपारी, अरहर की दाल तथा सुनहरे चावल बनाने में किया जाता है। इसका कारण यह है, कि ये रंग खाद्य पदार्थों को अत्यधिक आकर्षक एवं लुभावने बना देते हैं। कृत्रिम रंगों का खाद्य पदार्थों में सेवन करने से पाचन-क्रिया प्रभावित होती है। और तो और कम-

ब्रह्मपुरी, हज़ारी चबूतरा; जोधपुर–342001 (राजस्थान)

ज़ोरी, जोड़ों की बीमारी, लकवा, कैन्सर जैसे घातक रोग भी हो जाते हैं। यही नहीं, गर्भवती महिलाओं में तो शिशु पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाते हैं। ऐसे रंगों का प्रयोग करने से रक्त में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। पोंसियू के खाद्य पदार्थों में लगातार प्रयोग से रक्त में हीमोग्लोबीन की मात्रा कम हो जाती है। इसी प्रकार एरीथ्रोसीन रंग जीन्स में आधारभूत परिवर्तन करने में सक्षम होता है। कांगो रेड नामक रंग से खरगोश के भ्रूण में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। टारट्राजीन के खाने से चूहों में पेचिश हो जाती है तथा यह रंग एलर्जी भी उत्पन्न कर देता है।

'केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान', मैसूर ने संश्लेषित कोलतार रंगों की अपेक्षा प्राकृतिक रंगों की, जो कि फूलों की पंखुड़ियों (Petals), नीले अंगूर इत्यादि से बनाये जाते हैं, की उपादेयता प्रतिपादित की है।

कृत्रिम रंगों के प्रयोग से बचने के उपाय

(1) प्राकृतिक रंग, जो कि ज़्यादा शुद्ध एवं सुरक्षित होते हैं, उन्हें ज़्यादा उपयोग में लाना चाहिये।

(2) उपभोक्ताओं को संश्लेषित रंग युक्त तथा रंगहीन पेय पदाथ दोनों में जो अन्तर है उसे समझना चाहिये। इस दिशा में विभिन्न रंगों से होने वाले शारीरिक विकारों के सम्बन्ध में समय-समय पर शिक्षा देनी चाहिये। डेनमार्क ने हाल ही में उपभोक्ताओं के लिये दो तरह के रंगदार (केरामल युक्त) तथा रंगहीन पेय पदार्थ तैयार किये हैं।

(3) फलों के रसों को, जो कि टेट्रापेक्स में पैक होते हैं, उन्हें भी बिना रंग से मिश्रित किये बेचना चाहिये।

परीक्षण विधि

यदि हम मेटानिल येलो या लेड क्रोमेट की खाद्य पदार्थों में उपस्थिति जानना चाहते हैं, तो घर पर ही यह परीक्षण किया जा सकता है।

(i) यदि मेटानिल येलो को हल्दी में परीक्षण करना है तो इसकी थोड़ी सी मात्रा को परखनली में लेकर कुछ बूंदें सान्द्र नमक के अम्ल की डालनी चाहिए। यदि तुरन्त बैंगनी रंग आ जाय, जो चिर काल तक रहे, तो मेटानिल येलो मिश्रित है और यदि यह रंग जल डालने पर समाप्त हो जाय तो हल्दी है।

(ii) मेटानिल येलो को मिठाई में ज्ञात करने हेतु हल्के गर्म पानी से खाद्य पदार्थों से रंग को एकत्रित कर नमक के अम्ल की कुछ बूंदें डालनी चाहिए। यदि मैगनेटा (Magneta) रंग आ जाय तो हानिकारक रंग की उपस्थिति निश्चित है।

(iii) दाल में लेड क्रोमेट की उपस्थिति जानने हेतु 5 ग्राम दाल में कुछ बूंदे नमक के अम्ल की डालनी चाहिए तथा कुछ पानी मिलाकर हिलाना चाहिए। यदि गुलाबी रंग आ जाये तो समझना चाहिए कि लेड क्रोमेट मिलाया गया है।

यदि हम इस ओर ध्यान दें कि आजकल कितने रंगों का हम विभिन्न खाद्य पदार्थों में उपयोग करते हैं तो हमें इनका स्वतः अन्दाज़ हो जायेगा जैसे बेकरी उत्पाद, जैम, सौस, कैचप, जेली, वेफर्स, टाफी, आइसक्रीम तथा चाकलेट आदि। इन सभी में हानिकारक संश्लेषित रंगों का समावेश होता है। गाँवों की अपेक्षा शहरी जनता कृत्रिम रंगों का खाद पदार्थ में अधिक प्रयोग करती है।

अतः इस दिशा में यह कारगर उपाय होगा कि उपभोक्ताओं को इन कृत्रिम रंगों के प्रयोग के बारे में पूर्ण जानकारी दी जाये, जिससे वे हानिकारक रंगों से मिश्रित खाद्य पदार्थों के सेवन से बचें तथा बीमारी से बचें। इस प्रकार प्रचार व प्रसार माध्यम से हमारे देश में पौष्टिकता स्तर बढ़ाने में सहायता मिल सकती है। संश्लेषित रंगों के विकल्पस्वरूप प्राकृतिक रंगों के विकास की ओर भी ध्नान देना ज़रूरी है। प्राकृतिक स्रोतों से रंगों को प्राप्त करने सम्बन्धी शोध कार्य औद्योगिक विष विज्ञान अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ, राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, पूना; केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान मैसूर तथा चर्म अनुसंधान संस्थान, मद्रास में हो रहे हैं। प्राकृतिक रंगों में बीटा कैरोटिन, क्लोरोफिल, हल्दी, केसर, फ्लेवनोएड आदि

हैं जो विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधों आदि से प्राप्त किए जाते हैं।

खाद्य पदार्थों में रंगों के इस्तेमाल को रोकने के लिए, खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम 1954' के नियमों का पालन कराने हेतु सामाजिक कार्यकर्ताओं वैज्ञानिकों एवं जागरूक नागरिकों को आम लोगों में जागृति लाने के लिए एकजुट होकर कार्य करना होगा। □□

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

धरती डूबेगी बढ़ते जलस्तर से

डी० एन० भटनागर

फॉसिल ईंधनों पर दौड़ती मोटर व रेल गाड़ियाँ, वायुयान और अन्य वाहन भले ही आज मनुष्य की आधुनिकता का प्रतीक बन गये हैं, उनसे निकलने वाला बेहिसाब धुँआ पर्यावरण को जो हानि पहुँचा रहा है उसके कुप्रभाव से शायद धरती का कोई भी प्राणी अछूता नहीं बचेगा।

धुँए की गैसों—कार्बन डाइऑक्साइड, मिथेन, क्लोरोफ्लोरोकार्बन आदि—ने वायुमण्डल में मिलकर उसे ऐसा बना दिया है कि सूर्य से पृथ्वी पर आने वाली किरणें पृथ्वी से परावर्तित होकर उसमें फँस जाती हैं। परिणामस्वरूप वायुमंडल धीरे-धीरे गरम होता जा रहा है। इसे "ग्रीन हाउस प्रभाव" कहते हैं। इसके प्रभाव से हमारी पृथ्वी पर गरमी का असर दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

यद्यपि अभी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि हरित गृह प्रभाव से पृथ्वी पर सबसे अधिक गरमी कब पड़ने की संभावना है, अनुमान है कि यह स्थिति अगली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आयेगी। अधिक गरमी के कारण ध्रुव प्रदेशों तथा पर्वतों के ग्लेशियर पिघलेंगे, पानी गर्म होकर अधिक स्थान घेरेगा और जलस्तर 0.5 से 2.5 मीटर बढ़ जायेगा और तटवर्ती प्रदेशों की लगभग 10 करोड़ आबादी को सीधे प्रभावित करेगा।

विशेषज्ञों का अनुमान है कि अगली शताब्दी के अन्त तक समुद्री जलस्तर में होने वाली 1 मीटर की भी बढ़ोतरी बंगलादेश, इन्डोनेशिया और दक्षिण पूर्वी एशिया के बड़े भूभागों को जलमग्न कर देगी। हमारा देश भी इससे अछूता नहीं बचेगा। गुजरात, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश और बंगाल के बड़े क्षेत्र इसकी चपेट की लपेट में हैं। ये कृषि उपज की दृष्टि से महत्वपूर्ण और सघन आबादी वाले भूभाग हैं।

दुनिया के "वैज्ञानिक पृथ्वी पर हरित गृह के प्रभाव से चिन्तित हैं और इसके असर को कम हुआ देखना चाहते हैं लेकिन वे इसे कम करने में आने वाली कठिनाइयों, जैसे विशेषकर फॉसिल ईंधनों पर हमारी निर्भरता, से भी भली-भाँति वाकिफ हैं। यह भी समझा जा रहा है कि हरित गृह के प्रभाव के लिए जिम्मेवार गैसों का अब तक उत्पादित संग्रह हमारे सब उपायों के बावजूद पृथ्वी के मौसम को अगली कई शताब्दियों तक प्रभावित करता रहेगा।

इसीसे आज अधिकतर वैज्ञानिक इस पक्ष में हैं कि एक ओर तो पर्यावरण को धुँए से प्रदूषित होने से बचाने के प्रभावी प्रयत्न तुरन्त शुरू कर दिये जाने चाहिए और दूसरी ओर पर्यावरण में संग्रहीत धुँए के दीर्घकालीन प्रभावों से बचने के उपाय ढूँढ़े जाने चाहिए।

यही कारण है कि आज जहाँ दुनिया के मौसम विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों, समाज शास्त्रियों, योजनाकारों और सरकारी क्षेत्रों में समुद्रों के बढ़ते जलस्तर को लेकर विशेष हलचल है, कृषि वैज्ञानिक शुष्क खेती के लिए उपयुक्त पौधों की विशेषतः तापसह नस्लों के विकास की ओर ध्यान दे रहे हैं। वे पौधों की ऐसी नस्लों का विकास कर लेना चाहते हैं जो मौसम के

डी 720, सरस्वती विहार, दिल्ली—110034

इस बदलाव को झेल कर भी हमारी झोली में अपनी सौगात डालते रहने में सक्षम हों।

दुनिया के 300 से अधिक अग्रणी समुद्र वैज्ञानिक इस पक्ष में हैं कि इस स्थिति से निपटने की तैयारी अभी से शुरू कर देनी चाहिए। उन्होंने इसके लिए एक अंतरराष्ट्रीय संगठन बनाए जाने की अपील की है। विशेषज्ञों के अनुसार जिन क्षेत्रों में समुद्री पानी के फैलाव को रोका जाना है उनकी पहचान और सर्वेक्षण तुरन्त प्रारम्भ किया जाना चाहिए। जिन क्षेत्रों के जलमग्न होने में कोई संदेह न हो वहाँ से आबादी को सुनियोजित ढंग से हटाने के उपाय करने चाहिए। इसी प्रकार प्रभावित समुद्र तटों को नष्ट होने से बचाने के तरीके भी खोजे जाने चाहिए। पीने के पानी को खारे पानी से संदूषित होने से बचाने के उपाय करने की भी आवश्यकता पड़ेगी।

यही नहीं, इन सब उपायों को करने के लिए अनेक कम्प्यूटरों पर अनेक प्रकार के ढेरों आँकड़ों को लेकर अनेक तरह के अध्ययन आवश्यक होंगे जिन्हें अभी तुरन्त प्रारम्भ कर देना तेज़ी से बदलते मौसम के कारण उत्पन्न होने वाली स्थिति से निपटने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। □□

[सम्प्रेषण]

ट्रीशियम (हाइड्रोजन-3)

दिलीप भाटिया

परमाणु बिजलीघर विद्युत्-उत्पादन करते हैं। दाबित भारी पानी किस्म के परमाणु बिजलीघरों में जिनमें प्राकृतिक यूरेयिनम ईंधन व भारी पानी शीतलक व मंदक के रूप में काम में आता है, वहाँ पर ट्रीशियम उत्पन्न होती है व भारत में राजस्थान, मद्रास व नरोरा रिएक्टरों में इससे बचाव के लिए, बिजलीघर के संचालन व अनुरक्षण के समय इसके कारण अत्यधिक सावधानी रखने की आवश्यकता होती है। आइए, इसके बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करें।

ट्रीशियम हाइड्रोजन का आइसोटोप है। इसका रासायनिक संकेत H^3 है। इसके एक परमाणु का भार हाइड्रोजन के एक परमाणु के भार से तीन गुना होता है। ट्रीशियम के एक परमाणु में एक प्रोटॉन, एक इलेक्ट्रॉन व दो न्यूट्रॉन होते हैं। ट्रीशियम से बीटा विकिरण निकलता है जिसकी अधिकतम ऊर्जा 18 **Kev** होती है। ट्रीशियम का विकिरण अर्धकाल (रेडियोएक्टिव हाफ-लाइफ) लगभग 12·4 वर्ष है।

अनेक रासायनिक व नाभिकीय क्रियाओं द्वारा ट्रीशियम बनती है। यह वातावरण में विभिन्न प्रकार से पहुँचती है। प्राकृतिक रूप में कॉस्मिक किरणों से ट्रीशियम उत्पन्न होती है। कॉस्मिक किरणों में उपस्थित न्यूट्रॉन वायु में स्थित नाइट्रोजन से प्रक्रिया करके ट्रीशियम बनाते हैं व तारों से भी विकिरण द्वारा ट्रीशियम की उत्पत्ति होती है। हवा में स्थित हाइड्रोजन के प्रत्येक परमाणु के अनुपात में 4 × 10–12 परमाणु ट्रीशियम होती है तथा धरातल पर वर्तमान पानी के प्रत्येक हाइड्रोजन परमाणु के लिए 10–18 होती है।

एक मेगाटन परमाणु परीक्षण से 0.7 किलोग्राम ट्रीशियम निकलती है। एक ग्राम ट्रीशियम में 9600 क्यूरी रेडियोधर्मिता होती है। साधारण जल प्रयोग करने वाली परमाणु भट्टी में (जैसी भारत में तारापुर में है) बोरॉन व लीथियम की न्यूट्रॉन से होने वाली प्रक्रिया में ट्रीशियम निकलती है, लेकिन इसकी मात्रा नगण्य होती है। परन्तु भारी पानी प्रयोग होने वाले बिजलीघरों में (राजस्थान, मद्रास, नरोरा) भारी पानी के सक्रियकरण से ट्रीशियम अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होती है। भारी पानी में हाइड्रोजन का दूसरा आइसोटोप ड्यूट्रियम होता है, जिसका भार हाइड्रोजन परमाणु से दुगुना होता है। D^2 में एक प्रोटॉन, एक

अभियन्ता-एस० ई०, राजस्थान परमाणु बिजलीघर, अणुशक्ति (कोटा), राजस्थान, टाइप 4/6-सी, अणुकिरण कॉलोनी, भाभानगर—323307 (कोटा, राजस्थान)

इलेक्ट्रॉन व एक न्यूट्रॉन वं ड्यूट्रियम की प्रक्रिया द्वारा ट्रीशियम उत्पन्न होती है व इस प्रकार के बिजलीघरों में विद्युत्-उत्पादन के साथ ट्रीशियम की मात्रा भी बढ़ती जाती है।

ट्रीशियम से निकलने वाली बीटा विकिरण कम ऊर्जा की होने के कारण हमारे शरीर की चमड़ी की बाहरी परत को भी पार नहीं कर सकती, जिसे पार करने के लिए बीटा विकिरण की ऊर्जा कम से कम 70 **Kev** होनी चाहिए। हमारे शरीर की बाह्य मृत चमड़ी 0.07 मिलीमीटर मोटी होती है, जबकि ट्रीशियम बीटा विकिरण केवल 0.005 मिलीमीटर चमड़ी में से प्रवेश कर सकती है। इस प्रकार ट्रीशियम जब तक शरीर के बाहर है, इससे हमें किसी प्रकार की हानि नहीं होती है।

शरीर के अन्दर स्थित मांसपेशियों पर किसी प्रकार की मृत परत नहीं है, जो उसकी ट्रीशियम से रक्षा कर सके। शरीर में ट्रीशियम अंगों और पेशियों के सीधे सम्पर्क में आती है और मांस के अन्दर प्रवेश करती है। अपनी ऊर्जा इन्हें स्थानान्तरित कर इन्हें हानि पहुँचाकर जीवाणु सेल को नष्ट कर देती है। इसलिए ऐसी सावधानी रखना आवश्यक है, जिससे ट्रीशियम शरीर के अन्दर न पहुँच सके।

गैसीय ट्रीशियम मानव शरीर में नहीं रह सकती, परन्तु वाष्प व पानी के रूप में यह शारीरिक जल में घुलमिल कर शरीर के अन्दर रहती है। परमाणु बिजलीघरों से यह वाष्प या जल के रूप में निकलती है। मानव शरीर में यह साँस, भोजन व चर्म द्वारा प्रवेश करती है। शरीर में जाने पर रक्त-प्रवाह द्वारा यह सभी अंगों में फैल जाती है। जलीय रूप होने के कारण शारीरिक तरल द्रव्यों में अपना स्थान बना लेती है। शरीर में ट्रीशियम की उपस्थिति का अनुमान मूत्र, रक्त व मुखलार के परीक्षण से लगाया जा सकता है। सरलता से उपलब्ध होने के कारण मूत्र का विश्लेषण करके ट्रीशियम की मात्रा जानी जाती है। शरीर में स्थित जल की आधी मात्रा 6 से 10 दिनों में नये जल में परिवर्तित हो जाती है, इस प्रकार ट्रीशियम की आधी मात्रा भी इस अवधि में निकल जाती है व ट्रीशियम का प्रभावी अर्धकाल 6 से 10 दिन माना जाता है। तरल पदार्थों के अधिक सेवन (पानी, चाय, कॉफी, कोल्ड ड्रिंक) से इस अवधि को और कम किया जा सकता है। ट्रीशियम से मिलने वाली विकिरण मात्रा को कम करने के लिए यह सरलतम, सुविधाजनक श्रेष्ठ उपाय है। जब तक पूरी ट्रीशियम शरीर से निकल नहीं जाती है, यह अंगों व जीवाणुओं को हानि पहुँचाती रहती है। मनुष्य के ट्रीशियम संदूषित क्षेत्र में काम समाप्त कर देने के पश्चात् भी शरीर में स्थित रहने के कारण यह हमें हानि पहुँचाती रहती है। इस प्रकार से मिलने वाली विकिरण मात्रा उस बाह्य विकिरण से अलग होती है जो हमें मात्र विकिरण क्षेत्र में काम करने पर ही मिलती है, अन्यथा नहीं। ट्रीशियम की 2000 माइक्रोक्यूरी शरीर में हमेशा रहकर मनुष्य को 5 रैम (विकिरण मापन इकाई) प्रतिवर्ष की अधिकतम प्राप्त मात्रा देती है।

भोजन व साँस द्वारा रेडियोधर्मी पदार्थ शरीर के अन्दर प्रवेश करते हैं। इन्हें शरीर में कम से कम मात्रा में प्रवेश पाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मापदंड हैं। वायु व जल में विकिरणधर्मी पदार्थों की अधिकतम मात्रा निश्चित की जाती है। एक अधिकतम मान्य सांद्रण के वातावरण में 2000 घंटे काम करने से 5 रैम विकिरण-मात्रा मिलती है। एक अधिकतम मान्य सांद्रण (मैक्सिमम् परमिसिबल कन्सेन्ट्रेशन) प्रति घंटा 2.5 मिलीरैम, (1 रैम=1000 मिलीरैम) विकिरण-मात्रा देगा।

मूत्र-विश्लेषण द्वारा शरीर में ट्रीशियम की मात्रा जानी जा सकती है। मूत्र का नमूना कार्य समाप्ति के दो घंटे पश्चात् देना चाहिए। कार्य समाप्ति के तुरन्त बाद मूत्राशय पूरा खाली करके दो घंटे बाद नमूना देना चाहिए। नमूना देने में अधिकतम् विलम्ब एक दिन से अधिक नहीं होना चाहिए। जितना शीघ्र नमूना देंगे, उतना ही सही विश्लेषण का परिणाम मिलेगा।

मानव शरीर में 40 लीटर तरल पदार्थ होता है व एक एम पी बी बी (अधिकतम अनुमेय मात्रा) का मूल्य 2000 माइक्रोक्यूरी है। इस प्रकार 50 माइक्रोक्यूरी प्रति लीटर ट्रीशियम एक एम पी बी बी बतलाता है। यदि यह मात्रा शरीर में बनी रहे, तो मनुष्य को 100 मिलीरैम प्रति सप्ताह या 5 रैम प्रति वर्ष विकिरण मात्रा मिलती है। यदि मानव शरीर में 2000 माइक्रोक्यूरी ट्रीशियम पहुँच जाता है तो उसे विकिरण क्षेत्र में काम करने से रोक दिया जाता है। एक प्रभावी अर्धकाल (6 से 10 दिन) के बाद यह मात्रा 1000 माइक्रोक्यूरी रह जाती है। मात्रा कम होने पर मनुष्य पुनः विकिरण क्षेत्र में कार्य कर सकता है। सिंटीलेटर स्पेक्ट्रोमीटर द्वारा ट्रीशियम की मात्रा का विश्लेषण किया जाता है।

ट्रीशियम से सुरक्षा के लिए कई सावधानियाँ रखी जाती हैं। भारी पानी को बहने व फैलने से रोका जाता है। रबर के दस्ताने व प्लास्टिक सूट का प्रयोग किया जाता है। ट्रीशियम वातावरण में काम करते समय साँस लेने के लिए शुद्ध हवा, एयर लाइन रेस्पिरेटर द्वारा, ली जाती है। प्लास्टिक सूट का प्रयोग करके चमड़ी द्वारा शोषण रोका जाता है। खुले घाव हों, तो इस वातावरण में काम करना निषिद्ध होता है। इस प्रकार सुरक्षा के साधन अपनाने व कार्य सही ढँग से योजनाबद्ध तरीके से करके शरीर में प्रवेश करने वाली ट्रीशियम की मात्रा को कम से कम रखा जा सकता है।

भारत के सभी परमाणु बिजलीघरों में ट्रीशियम मापन व सुरक्षा प्रावधानों की पूर्ण व्यवस्था है व एक स्वतः निर्भर स्वास्थ्य भौतिकी विभाग द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मापदंडों का कड़ाई से पालन करके इन्हें सुरक्षित नियंत्रित मात्रा में रखा जाता है। □□

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

नये पर्यावरण की तलाश

डॉ॰ शिवगोपाल मिश्र

अब कान से कम सुनाई पडता है और आँखों से कम दिखता है। दाँतों में गड्ढे बन चुके हैं और हाथ पाँव के पोर-पोर दर्द करते हैं। दिमाग़ में अजीब तनाव बना रहता है। शायद यह उम्र का तक़ाज़ा है। लेकिन 60 वर्ष की आयु कोई बहुत बड़ी आयु नहीं। पश्येम शरदः शतम् के अनुसार 40 वर्ष और जीना होगा। लेकिन 2000 ई० तक तो बड़ी उथल पुथल की कल्पनाएँ की जा रही हैं। विशेषतया पर्यावरण को लेकर जन-जन चिन्तित है। पर्यावरण का यह 'हौवा' क्या सचमुच कोई समस्या है या केवल अनुमान है—सम्भावना है?

विगत 20 वर्षों में पर्यावरण के विषय में अजीबो-ग़रीब बातें सुनने में आई हैं—कुछ आन्दोलन भी चले हैं। कुछेक में तो तथ्य जान पड़ता है लेकिन गंगा की सफाई का जो शंखनाद हुआ उसमें गहराई कम जान पड़ी। बारम्बार जलमार्गों की सफाई कराने की बात उठाई जाती है और फिर ठप हो जाती है।

पर्यावरण सन्तुलन कई बातों पर निर्भर करता है। कोई भी तन्त्र तरह-तरह के कारकों द्वारा नियन्त्रित होता है। कारकों में परिवर्तन के साथ ही तन्त्र में क्षोभ आता है। कुछ काल तक वह बाहरी दाव को आत्मसात करता है किन्तु अन्त में टूटने लगता है। विश्व पर्यावरण आज ऐसी ही टूटन की स्थिति में है। वैज्ञानिकों ने कई समस्याएँ चुनकर उन्हें पर्यावरण में उथल-पुथल के लिए उत्तरदायी बताया है—पौधघर प्रभाव, ओज़ोन स्तर का विघटन, अम्ल वर्षा तथा वन विनाश।

इन बातों पर काफी लिखा-पढ़ा जा चुका है। हम उनसे आतंकित हैं। सबसे बड़ी आशंका है नाभिकीय विस्फोट से उत्पन्न अवपात की। यह तो राजनीतिक-

निदेशक, शीलाधर मृदा विज्ञान अनुसंधान संस्थान, इलाहाबाद—211002

सन्तुलन पर निर्भर करेगा कि कौन देश शिकार बनेगा पहले। एक बार नागासाकी तथा हिरोशिमा में जो हो चुका है उसकी पुनरावृत्ति न हो—यह सभी लोग चाहते हैं। यह शुभ लक्षण है।

किन्तु दो बातें मुख्य हैं जिनसे पर्यावरण संतुलन डगमगा सकता है—ऊर्जा की समस्या तथा जनसंख्या विस्फोट। ऊर्जा के जो स्रोत प्रदूषण को बढ़ाने वाले हैं, क्या उनका परित्याग किया जा सकता है? क्या गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का दक्षतापूर्वक दोहन सम्भव है? प्राकृतिक गैस तथा बायोगैस के उपयोग से गृहणियों को राहत मिली है, किन्तु बड़े-बड़े शहरों में शायद पेट्रोल राशनिंग के बाद ही कुछ सुधार नज़र आवे। सौर या पवन ऊर्जा या जल-विद्युत् का प्रयोग ख़र्चीला तो है किन्तु प्रदूषण रहित है। देश के कर्णधारों को इसी दिशा में बढ़ना चाहिए और नागरिकों को इसका पोषण करना चाहिए।

जनसंख्या विस्फोट अब मनुष्य के वश में तो है किन्तु परिवार-नियोजन से उपलब्ध परिणाम तनिक भी उत्साहवर्धक नहीं जान पड़ते। ग़रीबी रेखा के नीचे लोगों की संख्या बहुत बड़ी है और इसी जनता-जनार्दन के हाथ में पर्यावरण को बदल देने की शक्ति भी छिपी है। ईंधन की समस्या ने इस वर्ग को ऐसा तबाह कर रखा है कि चोरी छिपे जंगलों का सफाया हो रहा है—चरवाहे भेड़-बकरियाँ चरा कर हरियाली का विनाश करते हैं। लेकिन उनके समक्ष कोई विकल्प भी तो नहीं है। वृक्षारोपण के जितने उत्सव हैं उनमें उनकी भूमिका क्या है? क्या उन्हें पीड़ा नहीं होनी चाहिए कि वृक्ष न काटे जायें? शायद नहीं। उनमें यह विवेक आवेगा भी नहीं। अतः पर्यावरण सुरक्षा का भार उन लोगों पर है जो ग़रीबी रेखा से ऊपर हैं। किन्तु ये लोग सोचते हैं कि पर्यावरण से उन्हें क्या लेना देना।

वास्तव में पर्यावरण का दर्शन अत्यन्त जटिल एवं गम्भीर है। न केवल विचारकों के विचार करने से, न केवल योजना बनाने वालों की योजना से काम चलने वाला है—इसके लिए समग्र सामूहिक विचार विमर्श तो हो ही, सामूहिक ज़िम्मेदारी के साथ व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी सौंपी जाय।

यदि 5000 वर्षों से हमारे पूर्वज पर्यावरण को संतुलित रखते आये हैं तो प्रौद्योगिकी और विज्ञान की असीम उपलब्धियों के इस युग में क्या हम उसे पूर्ववत् बनाये नहीं रख सकते? अवश्य! किन्तु···किन्तु ही तो वह सोच है -- वह कर्तव्य निष्ठा है जिसकी हमसे आशा की जाती है।

नारेबाजी बन्द हो। बच्चे से लेकर बूढ़े तक के लिए पर्यावरण विषयक कोई न कोई ज़िम्मेदारी सौंपी जाय। कोई वनस्पतियों की सूची बनावे, कोई पशुओं की। कोई नदियों में पाये जाने वाले जलचरों की संख्या पर नज़र रखे, कोई पक्षियों पर। कूड़ा-करकट का निपटान, पेय जल की शुद्धता, खाद्यों में मिलावट—नई बस्तियों की सफाई, ग्रामीण इलाकों में पर्यावरण दर्शन का प्रचार, वन्य जातियों की गतिविधियों पर नज़र—वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त किये परिणामों का विवेचन, नई समस्याओं से राजनीतिज्ञों तथा वैज्ञानिकों को अवगत कराना—सामाजिक कार्य के लिए, अवैतनिक सेवा कार्य के लिए तैयार रहना—ये तमाम बातें हैं जिन्हें अगले 10 वर्षों तक करके देखा जाय। परिणाम तुरत-फुरत नहीं मिलेंगे लेकिन इक्कीसवीं शती में प्रवेश करते हुए सुरक्षित पर्यावरण के प्रति आश्वस्त हुआ जा सकता है। पर्यावरण सुधार को आगामी पंचवर्षीय योजनाओं का भी अभिन्न अंग बन जाना चाहिए।

□□

'विश्व पर्यावरण दिवस' पर विचार गोष्ठी

5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' के अवसर पर 'पर्यावरण सुरक्षा' विषय पर विचार गोष्ठी सम्पन्न हुई। विषय प्रवर्तन करते हुए 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** ने परिषद् की गतिविधियों पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए आज की पर्यावरणीय समस्याओं—जनसंख्या विस्फोट, निर्वनीकरण, सूखा-बाढ़, ओज़ोन की चादर का झीना होना, ताप में वृद्धि, अम्लवर्षा को रेखांकित करते हुए वक्ताओं को एक-एक समस्या पर विचार व्यक्त करने के लिए आमंत्रित किया। इस अवसर पर 'विज्ञान' पत्रिका के जून-जुलाई अंक का विमोचन **डॉ० जे० पी० श्रीवास्तव** ने किया।

श्री दिनेश मणि ने पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर बोलते हुए मिट्टी को बचाने पर विशेष बल दिया। **श्री राजेशकुमार केसरी** ने भारत के पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले कारकों की चर्चा करते हुए कुछ तकनीकों यथा जेनेटिक इंजीनियरी द्वारा प्रदूषण निवारण पर ज़ोर दिया। **कु० स्मृति दुबे** ने ओज़ोन छिद्र के कारण सूर्य की पराबैंगनी घातक किरणों द्वारा मनुष्यों सहित जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों को होने वाली बीमारियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया। **श्री दर्शनानन्द** ने धूम्रपान से स्वास्थ्य को होने वाले ख़तरों के प्रति आगाह किया। **श्री प्रमोद कुमार शुक्ल** ने विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों पर प्रकाश डाला। **प्रो० शिवगोपाल मिश्र** ने प्रदूषण और बुढ़ापे के संबंधों को स्पष्ट किया और 'नये पर्यावरण की तलाश' पर बल दिया। **डॉ० सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव** ने पर्यावरण और आर्थिक विकास में सन्तुलन बनाने और जनजागरण अभियान की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। **डॉ० पूर्ण चन्द्र गुप्ता** ने अपनी उत्तराखण्ड की यात्रा के दौरान वहाँ के छिन्न-भिन्न होते पर्यावरण को जिस रूप में देखा उसका रोमांचक वर्णन किया और सुरक्षा के उपाय सुझाये। **श्री टी० एन० श्रीवास्तव** ने स्वतंत्रतापूर्व के भारतीय पर्यावरण और आज के प्रदूषित पर्यावरण की तुलना करते हुए अपने स्वयं के अनुभव को प्रस्तुत किया। **डॉ० चन्द्रविजय चतुर्वेदी** ने प्राचीन परम्पराओं में आस्था, प्राचीन भारतीय ऋषि मुनियों के दर्शन में आस्था और किसी सीमा तक 'बैक टु नेचर' पर बल दिया।

इन वक्ताओं के अतिरिक्त इस विचारगोष्ठी में **डॉ० जे० पी० श्रीवास्तव डॉ० व्यासजी द्विवेदी, डॉ० सुप्रभात मुकर्जी, सर्व श्री बिनय कुमार, प्रभात रंजन बाँके बिहारी** आदि ने भी भाग लिया।

अपने अध्यक्षीय भाषण में **प्रो० वाचस्पति** ने स्थानीय स्तर पर, लोगों के सहयोग, विशेषकर युवा-वर्ग और विद्यार्थियों के छोटे-छोटे दल बनाकर कार्य, करने का सुझाव दिया और परिषद् द्वारा किए जा रहे कार्य की सराहना की।

विचार-गोष्ठी का समापन **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** के कृतज्ञता ज्ञापन से हुआ।

प्रस्तुति : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

तीन पुस्तकें

1. **तत्व नये पुराने**
2. **राकेट एक परिचय**
3. **फोनोग्राफ से स्टारियो तक**

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा 'पढ़े और सीखें योजना' के अन्तर्गत प्रकाशित तीनों पुस्तकें भाषा की सरलता, रोचकता एवं विषय-वस्तु की प्रधानता की दृष्टि से उत्तम हैं,

"**तत्व-नये पुराने** नामक पहली पुस्तक, जिसके लेखक **प्रो० रामचरण मेहरोत्रा** एवं **रमाशंकर राय** हैं, में तत्वों की परमाणु संख्या, संक्षिप्त संकेत, नाम, गवेषणा वर्ष और नाम के स्रोत के विवरण को बड़े ही ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है (पृष्ठ 18-29)। तत्वों की परमाणु संरचना एवं रेडियो एक्टिविटी नामक अध्यायों को नये ढंग से प्रस्तुत करने के अतिरिक्त लेखक द्वय ने एक ओर जहाँ आवर्त तालिका में कुछ लुप्त तत्वों को अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देकर खोज निकाला, वहीं दूसरी ओर कृत्रिम तत्व बनाने के यन्त्र और, रचना विधियों को प्रस्तुत करके पुस्तक को नवीनता प्रदान की है। पुस्तक में एक्टीनियम सदृश कृत्रिम तत्व, आवर्त तालिका में भारी तत्वों का स्थान, कृत्रिम तत्वों के परमाणु आयुध एवं शान्तिपूर्वक उपयोग नामक अध्यायों में खोजपरक सामग्री की बहुलता है। पुस्तक अपने उद्देश्य में सफल एवं हर दृष्टि से उत्तम कहने योग्य है।

दूसरी पुस्तक का नाम **राकेट एक परिचय** है, जिसके लेखक श्री **मणीश चन्द्र उत्तम** हैं। इस पुस्तक में राकेट के इतिहास से लेकर ईंधन के आधार पर राकेट के वर्गीकरण तथा आधुनिक राकेट-विज्ञान की भारत में प्रगति तक का विहंगावलोकन लेखक ने बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ किया है। विषय-प्रवेश में लेखक ने जहाज और राकेट के अन्तर को स्पष्ट करके बच्चों की ही नहीं बल्कि बड़ों की भी शंका का समाधान किया है। पुस्तक में विभिन्न नोदकों वाले राकेटों के योग्यता परीक्षण के अतिरिक्त **न्यूटन** के गति सम्बन्धी नियमों के आधार पर राकेट नोदन को गणितीय ढंग से समझाने का सफल प्रयास किया गया है।

तीसरी पुस्तक **फोनोग्राफ से स्टीरियो तक** के लेखक **डॉ वीरेन्द्र भटनागर** हैं। रंगीन चित्रों से युक्त इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में ध्वनि के स्तर, विभिन्न ध्वनियों में अन्तर एवं ध्वनि अंकन की विधियों का जो रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है, उसी से पूरी पुस्तक की विशेषता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। डेसीबेल को परिभाषित करने के अतिरिक्त दैनिक जीवन में काम आने वाले विभिन्न ध्वनि स्तरों को सारणीबद्ध रूप में प्रस्तुत करके लेखक ने अपनी लेखन क्षमता का उत्कृष्ट परिचय दिया है। **एडीसन** के फोनोग्राफ, रिकार्ड बनाने और बजाने में बिजली के उपयोग नामक अध्यायों में पुराने समय से नये समय में ध्वनि-विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति का ब्यौरा दिया गया है। ध्वनि अंकन की चुंबकीय विधि, सिनेमा फिल्मों पर ध्वनि अंकन जैसे अध्यायों में बोलती फिल्मों के निर्माण की रूपरेखा को प्रस्तुत किया गया है। स्टीरियो ध्वनि, माइक, एम्प्लीफायर, और स्पीकर आदि सभी उपकरणों के बारे में रोचक जानकारी अन्तिम अध्याय 'नई खोजें, नई बातें' के साथ पूर्ण होती है। □□

—**दिनेश मणि**

शीलाधर मृदा विज्ञान अनुसंधान संस्थान
इलाहाबाद—2

विज्ञान

ओऽम ऋषि भारद्वाज

यह युग विज्ञान ज्ञान का युग, वैज्ञानिकता ही सत्य,
वैज्ञानिक दृष्टि अभीष्ट बने, हम पढ़ते सुनते नित्य।
लेकिन है यह 'विज्ञान' कौन ? क्या कोई मारक अस्त्र ?
अथवा यह कोई प्रहरी है, सीमा पर खड़ा सशस्त्र ?
क्या यह पृथ्वीतर मानव है ? अथवा आकाशी पक्षी ?
क्या जलचर या दानव है ? या शायद मानवताभक्षी ?
पर नहीं आप गलती पर हैं, इक गलत धारणा पाली,
विज्ञान शब्द की मर्यादा पर धूल स्वयं ही डाली।
वैज्ञानिक चिंतन ही विवेक की हमको राह दिखाए,
जीवन, नभ, धरती, तारों के सारे रहस्य समझाए।
क्या अंतरिक्ष में होता है ? क्या होता सागरतल पर ?
कितने विचित्र पौधे-प्राणी बिखरे हैं भूमण्डल पर ?
रोगों का है आवास कहाँ ? है कौन जनक या वाहक ?
हो कैसे उनसे मुक्ति ? न ये बन सकें जान के ग्राहक।
विज्ञान जगत के समाचार कोने-कोने से लाकर,
हम तक पहुँचाती शीघ्र, भरे ज्यों गागर में रत्नाकर।
है ऐसी एक पत्रिका जो हर माह प्रकाशित होती,
जनमानस रूपी खेतों में वह बीज ज्ञान के बोती।
कहते उसको 'विज्ञान' कार्य परजनहिताय वह करती,
प्रत्येक मास इक नया ज्ञान भंडार प्रकाशित करती।
परिषद् विज्ञान जीवियों की इक, यह उसकी संतान,
पचहत्तर वर्षों से इसकी आभा न हुई है म्लान।
'विज्ञान' रूढ़ियों, अंधे विश्वासों की जड़ता तोड़े,
हैं धन्य सभी वे लोग जिन्होंने इससे रिश्ते जोड़े।
ऐसा वैज्ञानिक ज्ञान नहीं हो सके न इससे प्राप्त,
हतभाग्य सभी वे नारी-नर 'विज्ञान' जिन्हें अज्ञात।

□□

ग्राम-भरतपुर, पो०-डेंगरी, जिला-एटा (उ० प्र०) 205241

हिन्दी की त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका "वैज्ञानिक" के शुल्क में वृद्धि

छपाई में हुई तीव्र वृद्धि के कारण दिनांक 1.4.1990 से वैज्ञानिक की एक प्रति का मूल्य 5.00 रू० होगा। पत्रिका के नियमित ग्राहकों के लिए शुल्क दरें इस प्रकार हैं :

व्यक्तिगत : 15 रू० (एक वर्ष), 40 रू० (तीन वर्ष)
संस्थागत : 25 रू० (एक वर्ष), 70 रू० (तीन वर्ष)

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद् का सदस्यता शुल्क 1.4.1990 से निम्नलिखित होगा।

व्यक्तिगत : 15 रू० (एक वर्ष), 100 रू० (आजीवन)
संस्थागत : 25 रू० (एक वर्ष), 250 रू० (आजीवन)
प्रवेश शुल्क रू० 1.00 अलग

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद् के सदस्यों को वर्तमान नियमों के अनुसार 'वैज्ञानिक' निःशुल्क भेजी जाती है।

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल काम्पलेक्स, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई—400085

समय के साथ बढ़िए **'आविष्कार'** पढ़िए

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिकी जो सिर्फ 3 रुपए में आप तक लाती है—

0 वैज्ञानिक अनुसंधानों 0 प्रौद्योगिक विकासों 0 नए आविष्कारों 0 नई स्वदेशी प्रौद्योगिक विधियों 0 नए विचारों0 नए उत्पादों 0 नई तकनीकों तथा विज्ञान के अनेक पहलुओं पर

रोचक जानकारी—ढेर सारी।
हर माह विशेष आकर्षण : हम सुझाएँ आप बनाएँ

विज्ञान में रुचि रखने वाले सभी जागरूक पाठकों, विद्यार्थियों, अध्यापकों, आविष्कारकों, वैज्ञानिकों, इंजीनियरों और निजी उद्योग लगाने वालों के लिए समान रूप से उपयोगी

वार्षिक मूल्य 30 रुपए, सदस्यता शुल्क मनीआर्डर/पो० आर्डर/बैंक ड्राफ्ट से भेजें।

प्रबन्ध निदेशक
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (भारत सरकार का उपक्रम)
'अनुसंधान विकास' 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र
कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली—110048

वन्य प्राणियों को बचाइये सड़क दुर्घटनाओं से

सतीश कुमार शर्मा

आवागमन के साधनों में सड़क परिवहन अपना विशेष महत्व रखना है। आज़ादी के बाद सड़कों की लंबाई तथा उस पर चलने वाले वाहनों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है तथा उसी अनुपात में सड़क मार्ग से यात्रा करने वालों की न केवल संख्या बढ़ी है अपितु सड़क दुर्घटनाओं में मरने वाले एवं अपंग होने वालों की संख्या में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई है।

सड़कों पर केवल आदमी ही मर रहे हों, यह बात भी नहीं है। सच तो यह है कि हज़ारों वन्य प्राणी एवं पालतू पशु भी वाहनों से कुचल कर मारे जा रहे हैं। यह तथ्य हाल ही में प्रकाशित एक अध्ययन रिपोर्ट से उजागर हुआ है। अध्ययन से ज़ाहिर हुआ है कि राष्ट्रीय उच्च मार्ग संख्या 11 पर वर्ष 1980-81 के दौरान मात्र 5 कि. मी. की दूरी पर 363 वन्य प्राणियों, 26 पालतू पशुओं तथा 50 अवारा एवं अर्द्ध पालतू पशुओं सहित 439 प्राणियों का सड़क दुर्घटनाओं में विनाश हुआ। उभयचारी प्राणियों—मेंढ़क, सरीसृपों में विभिन्न किस्मों के साँप, पक्षियों में फाख़्ता तथा स्तनधारियों में कुत्ते सर्वाधिक मरने वाले प्राणी रहे। पक्षियों में फाख़्ता के बाद दूसरे स्थान पर कौवा, तीसरे स्थान पर देशी मैना, चौथे स्थान पर गिद्ध और तोता तथा पाँचवें स्थान पर मोर मरने वालों में रहे।

अध्ययन में पाया गया कि उभयचारी तथा सरीसृप वर्ग के प्राणी सर्वाधिक वर्षा ऋतु में मरते हैं। वर्ष के शेष समय यानी सर्दी तथा गर्मी में ये प्राणी कम संख्या में मारे जाते हैं क्योंकि अनियमित तापी होने के कारण ये प्राणी सर्दी के कम ताप तथा गर्मी के अधिक ताप में अपने आपको क्रियाशील बनाये रखने में असमर्थ पाते हैं। अतः ये इन विपरीत मौसमी परिस्थितियों में अपने छुपाव स्थलों पर निष्क्रिय पड़े रहते हैं। इन मौसमों में इनकी गतिशीलता काफी घट जाती है तथा ये सड़कों पर कम ही आ पाते हैं एवं कम दुर्घटनाग्रस्त होते हैं।

वर्षा ऋतु आते ही अधिकांश उभयचारी तथा सरीसृप सक्रिय हो उठते हैं। इस समय इनमें से अनेक प्रजनन भी करते हैं साथ ही पिछली निष्क्रियता के उपवास में खर्च हुए शारीरिक जमा खाद्य की न केवल क्षतिपूर्ति करते हैं बल्कि अगली निष्क्रियता में जीवित रहने हेतु अतिरिक्त खाद्य पदार्थ जमा करने हेतु भोजन की सरगर्मी से तलाश करने में जुट जाते हैं। इस सबसे इनकी गतिशीलता बढ़ जाती है तथा ये इधर-उधर आते-जाते सड़क पार करते समय वाहनों की चपेट में आकर मारे जाते हैं। शीत रक्त वाले प्राणी डामर निर्मित काली सड़क द्वारा दिन में शोषित गर्मी के ताप का आनन्द लेने रात्रि की ठंड में कई बार सड़क पर आकर ठहर जाते हैं तथा वाहनों के टायरों के नीचे दब कर मारे जाते हैं।

पक्षी तथा स्तनी गर्म रक्त वाले प्राणी होने के कारण सालभर क्रियाशील बने रहते हैं। यही कारण है इन दोनों वर्गों के प्राणी पूरे साल मरते रहते हैं। पक्षी तो विशेष रूप से बहुत अधिक संख्या में मारे जाते हैं। एक साल में मारे गये 439 प्राणियों में 42 उभयचारी, 82 सरीसृप, 219 पक्षी, तथा 96 स्तनधारी थे। यानि मरने वाले प्राणियों में 49.88% तो केवल पक्षी ही थे। स्तनी 21.8% थे। पक्षियों के इतनी ज़्यादा संख्या में मरने का कारण उनके पास गति के दो साधन होना भी है। पक्षी न केवल पैरों से चलन गति, बल्कि डैनों से उड़न गति भी करते हैं। एक पक्षी अन्य किसी भी गैर पक्षी वन्य प्राणी के मुकाबले प्रतिदिन अधिक किलोमीटर गति करता है। यही कारण है कि पक्षियों के वाहनों से टकराकर मरने

की संभावना अधिक रहयी है। सड़क पर बैठा, खड़ा या चलता हुआ पक्षी सरीसृपों व उभयचारियों की तरह टायरों के नीचे दब कर मरता है जबकि नीची उड़ान लेता हुआ पक्षी वाहन के किसी भी भाग, विशेषकर अगले हिस्से से टकरा कर मारा जाता है।

अलग-अलग जातियों के पक्षियों के दुर्घटना में मरने के कारण अलग-अलग होते हैं। गिद्ध जैसे मृत-भोजी पक्षी सड़क पर पहले से दुर्घटनाग्रस्त किसी प्राणी पर दावत उड़ाते समय स्वयं मारे जाते हैं। कौवों में युवा कौवे, जो हाल ही में घोंसला छोड़कर निकले होते हैं, सड़क से अनभिज्ञ होने के कारण प्रौढ़ कौवों के मुकाबले ज़्यादा मरते हैं। चलता हुआ नर मोर अपनी लंबी पूंछ के कारण अपने पूरे शरीर को सड़क से पार निकलने में अपेक्षाकृत अधिक समय लेता है जो इसकी मौत के लिये कारण बन सकता है। अनेक पक्षी सड़कों पर परिवहन के दौरान बिखरे दानें व अन्य खाद्य पदार्थ खाने के लालच में सड़कों पर आते हैं तथा उनमें से कुछ दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ है कि रात्रिचर तथा जलचर पक्षियों की तुलना में दिनचर पक्षी अधिक संख्या में दुर्घटनाग्रस्त होकर मारे जाते हैं।

सड़कों पर मरने वाले स्तनधारियों में गिलहरी, नेवला, गीदड़, चमगादड़, जंगली बिल्ली, खरगोश आदि हैं। अध्ययन में पाया गया है कि गिलहरी तथा नेवला प्रायः इसलिए मारे जाते हैं क्योंकि ये सड़क पार करते समय अचानक रुक कर पिछले पैरों पर लम्बवत खड़े होकर कुछ देर इधर-उधर का नज़ारा देखने में समय बर्बाद करते हैं, तब तक कोई भागता हुआ वाहन आ चुका होता है। कई बार ये प्राणी सड़क पार करते समय अचानक बीच सड़क वापिस मुड़ कर गति की दिशा बदल कर स्वयं ख़तरा मोल ले लेते हैं। कुत्तों में सर्वाधिक मृत्युदर संभोगकाल एवं बच्चे उत्पन्न करते समय पायी गई है। उष्मा काल में अनेक नर कुत्ते आपस में लड़ते हुये मादाओं का पीछा करते हैं तथा दिशाहीन दौड़ लगाते रहते हैं एवं वाहनों से टकराते रहते हैं। कुछ कुत्ते तो बकायदा भौंकते हुये अगले वाहन का पीछा करते हैं तथा पीछे से आ रहे वाहन के नीचे दबकर मर जाते हैं। प्रजनन के बाद पिल्लों के पैदा होने के कारण कुत्तों की संख्या में अचानक वृद्धि हो जाती है। पिल्ले मन्द गति से इधर-इधर गति करते रहते हैं तथा सड़कों पर भारी संख्या में मारे जाते हैं। इस तरह कुत्तों की संख्या काफ़ी हद तक सड़क दुर्घटनाओं द्वारा नियन्त्रित कर दी जाती है। उड़ानहीन होने के कारण स्तनधारियों की मृत्यु टायरों के नीचे दबने या वाहनों के निचले हिस्सों से ठोकर लगने के कारण होती है।

भारत में वन्य प्राणियों की सड़क दुर्घटनाओं की विपुलता

अध्ययन में बताया गया है कि वर्ष 1978 में राष्ट्रीय उच्च मार्गों की लंबाई 28870 कि०मी० तथा राज्य उच्च मार्गों की लंबाई 57000 किमी० थी। अन्य सड़कें यथा स्थानीय 155000 किमी० एवं ग्रामीण 360000 कि० मी० लंबी थीं। उस समय लगभग 2100000 वाहन सड़कों पर दौड़ रहे थे। अध्ययन में माना गया है कि राष्ट्रीय तथा राज्य उच्च मार्गों पर लगभग समान मात्रा में वन्य प्राणियों एवं पशुओं की दुर्घटनाओं में मृत्यु हो रही है। अध्ययन के अनुसार दोनों तरह के उच्च मार्गों पर ही प्रतिवर्ष लगभग 7540000 वन्य प्राणी एवं पशु मारे जाते हैं। अन्य सड़कों पर मारे जाने वाले प्राणियों की संख्या इसमें शामिल नहीं है। आज जबकि सड़कों की लंबाई तथा वाहनों की संख्या में आशातीत बढ़ोतरी हो चुकी है, प्रति वर्ष मरने वाले प्राणियों की संख्या बहुत ज़्यादा पहुँचने की सम्भावना है।

प्राणियों का महत्व

इन मरने वाले प्राणियों में अनेकानेक उपयोगी किस्में भी नष्ट हो जाती हैं जो हमारे पारिस्थितिकी तन्त्र में प्राकृतिक संतुलन के लिये ज़िम्मेदार हैं। मरने वाला कोई वन्य प्राणी व्यर्थ की वस्तु नहीं है। उभयचारी बड़ी संख्या में कीट-पतंगों का सफाया कर कृषि-पारिस्थितिकी तन्त्र को विघटित होने से बचाते हैं तो साँप, चूहों, मूषकों, गिलहरियों जैसे नाशक रोडेन्टों को

नष्ट कर कृषि की अमूल्य सेवा करते हैं। मरने वाले पक्षी यदि जीवित रहें तो वे कीट नियन्त्रण, परागण, प्रकीर्णन जैसी कृषि उपयोगी क्रियायें संपादित करने के अलावा कई तरह के आर्थिक उत्पादन देने हेतु भी उपलब्ध रह सकते हैं। हायना, गिद्ध, गीदड़ जैसे प्राणी मृत जीवों को खाकर निःशुल्क सफाई अभियान चलाकर मानव को दुर्गन्ध एवं जीवाणुमुक्त वातावरण उपलब्ध करते हैं।

कैसे बचायें वन्य प्राणियों को सड़क दुर्घटनाओं से ?

हालाँकि ऐसा कोई तरीका नहीं हैं, जिससे हम वन्य प्राणियों की दुर्घटनाओं को शतप्रतिशत रोक सकें। फिर भी कुछ उपायों को प्रयोग में लाकर दुर्घटनाओं में कमी लाई जा सकती है। चूँकि प्राणियों की गति पर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं होता है न ही उनकी उपस्थिति का हर समय हमे ज्ञान रहता है अतः इन प्राणियों को बचाने में और भी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। वन्य प्राणियों को सड़क दुर्घटना में बचाना यद्यपि कुछ कठिन ज़रूर है तथापि हमे इन प्राणियों को बचाने की तरफ सावधानीपूर्वक पर्याप्त ध्यान देना चाहिये। रात को वाहन की रोशनी की चकाचौंध में अनेक प्राणी अपनी दिशा व रास्ते से भटक जाते हैं। वाहन चालक को दयाभाव दिखाते हुए "डिपर" का उपयोग करना चाहिये तथा फँसे हुए वन्य प्राणियों को बचने का रास्ता एवं समय दे देना चाहिये। कुछ चालक जान-बूझकर भागते वन्य प्राणी को वाहन की मारक रेंज में लाते हैं। साँपों को तो जान-बूझकर कुचला जाता है। लोगों में अंधविश्वास है कि साँप चूकि पेट के बल गति करता है अतः वह अपने जन्म से दुःखी है। यदि उसे मार दिया जावे तो मारने वाले को पुण्य मिलता है तथा साँप को पेट के बल चलने के दुःख से मुक्ति। हमें ऐसे आधारहीन अन्धविश्वासों को छोड़कर सर्प संरक्षण करना चाहिए। मार्गी वाहन के सामने सड़क पर उपस्थित पक्षी या पक्षियों के झुण्ड को बचाने के लिये हल्के हार्न का उपयोग कुछ दूरी रहते करने से पक्षियों को हटने की जानकारी व समय मिल जाता है तथा पक्षी तुरन्त सड़क छोड़ देते हैं। यदि कोई प्राणी वाहन से टकरा कर मर चुका हो तो उसे स्वयं ही खींच कर सड़क से दूर हटा देना चाहिये ताकि गिद्ध, हायना, कौवे, आदि को बचाया जा सके। इसके अतिरिक्त बचाये जा सकने योग्य घायल प्राणियों का इलाज कर उनका पुनर्वास किया जाना चाहिये या उन्हें चिड़ियाघरों में रखवा दिया जाना चाहिये। वन्य प्रणियों की सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधान मोटर वाहन अधिनियम में रखा जाना भी उचित होगा। न केवल चालकों को बल्कि जन साधारण को भी वन्य प्राणियों के संरक्षण में शामिल करते हेतु, जन-चेतना हेतु जगह-जगह उचित डिज़ायन किये बोर्ड, बस स्टैण्ड, रेलवे स्टेशन, सड़कों के किनारे व अन्य स्थानों पर प्रदर्शित किये जाने चाहिये तथा इस विषय को प्रचार माध्यमों पर भी महत्व देना चाहिये। इस तरह की भी कोई विशेष व्यवस्था की जानी चाहिये कि वन्य प्राणी (सुरक्षा) अधिनियम 1972 की अनुसूची 1 से 4 विशेषकर 1 व 2 अनुसूची के प्राणियों की सड़क पर विशेष रूप से सुरक्षा की जावे। यदि सड़कें अभयारण्यों एवं राष्ट्रीय पार्कों में से गुजरती हैं तो वन्य प्राणियों की सुरक्षा सम्बन्धी कड़े प्रावधान रखे जाने चाहिये तथा उनका पालन कराया जाना चाहिये।

आइये हम सब मिलकर सड़कों पर नष्ट हो रही हमारी बहुमूल्य वन्य प्राणी संपदा को बचाने में जुट जायें। □□

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

काफ़ी कुछ हो रहा है पर्यावरण के लिए

मनोज कुमार पटैरिया

[**पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार के सचिव श्री महेश प्रसाद से श्री मनोज कुमार पटैरिया की बातचीत**

—सम्पादक]

दुनिया भर में पिछले दो दशकों से बढ़ रही पर्यावरण समस्याओं ने निर्णायकों, वैज्ञानिकों, तथा अन्य जागरुक लोगों के सामने अनेक प्रश्न खड़े कर दिए हैं, जिनके उत्तर आसानी से नहीं मिलते, और जिससे इस ग्रह पर जीवन तक को ख़तरा उत्पन्न हो सकता है। ग्रीन हाउस प्रभाव से विश्व ताप में बढ़ोत्तरी, वायुमण्डल की ओज़ोन परत में छेद होना, तेजाबी वर्षा, अनवरत सूखा, बाढ़, ईंधन जलाऊ लकड़ी और चारे की कमी, हवा और पानी में प्रदूषण, हानिकारी रसायनों और विकिरणों के दुष्प्रभाव आदि, आधुनिकीकरण, और अनियमित औद्योगीकरण से उत्पन्न हुए प्रेत आज तीसरी दुनिया को अपने अन्दर समेटने के लिए मुँह बाए खड़े हैं। इन्हीं सब प्रश्नों पर श्री महेश प्रसाद से भारतीय परिप्रेक्ष्य में जब बात की गई, तो काफी उपयोगी जानकारी सामने आई।

प्रश्न : आज पूरी दुनिया पर पर्यावरण संकट गहराता जा रहा है, जिससे कई हानिकारक प्रभाव पैदा हो रहे हैं, भारत में इसकी क्या स्थिति है ?

उत्तर : देश में पर्यावरण की स्थिति अच्छी नहीं है। इसे सुधारने के लिए काफी काम की ज़रुरत है। हमने अपनी असीमित ज़रुरतों को पूरा करने के लिए लगातार प्रकृति का दोहन किया है, जिससे पर्यावरण में असंतुलन पैदा हुआ है। वनों का अनवरत कटाव, मनमाना औद्योगीकरण, और पर्यावरण के बारे में अज्ञानता, के कारण स्थिति इतनी खराब हुई है। पर अब इस ओर गम्भीरतापूर्वक ध्यान दिया जा रहा है। अभी भी यदि हम चेत जाएँ, तो पर्यावरण से तालमेल करके संकट से बच सकते हैं।

प्रश्न : देश में पर्यावरण संरक्षण और उसके विकास के लिए क्या किया जा रहा है ?

उत्तर : हिमालय की चोटियों से लेकर केरल के समुद्री तटों तक हमारा पर्यावरण विविध रूपों में फैला हुआ है। इसके संरक्षण और विकास के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। प्राकृतिक साधनों का संरक्षण, पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन, प्रदूषण नियंत्रण, पुनरुद्धार और विकास, अनुसंधान और विकास, पर्यावरण शिक्षा और सूचना, पर्यावरण कानूनों आदि कार्यक्रमों के माध्यम से पर्यावरण को सुधारने और बचाने की पूरी कोशिशें विभिन्न स्तरों पर की जा रही हैं।

प्रश्न : क्या कानून बना देने से स्थिति सुधर जाएगी, प्रायः कहा जाता है कि पर्यावरण से सम्बन्धित कुछ कानूनों में बड़ी शिथिलताएँ हैं, यह कहाँ तक सच है ?

उत्तर : पर्यावरण कानूनों में व्याप्त खामियों को देखते हुए ही 'पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम 1986' पारित किया गया था, जिससे स्थिति काफी सुधरी है। इधर 'वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1981', तथा 'जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974, में भी संशोधन करके इन्हें और कठोर बनाया गया है। 'वन (संरक्षण) अधिनियम 1980' में भी संशोधन करके उल्लंघन-

वरिष्ठ सम्पादन सहायक, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी० एस० आई० आर०, हिल साइड रोड, नई दिल्ली—12

कर्ताओं के विरुद्ध कड़ी दण्ड की व्यवस्था की गई है। अब पर्यावरण कानूनों को दृढ़तापूर्वक लागू करने के लिए कड़े कदम उठाए जा रहे हैं।

प्रश्न : पिछले दिनों गंगा कार्य योजना की काफी चर्चा रही, यह योजना क्या है ?

उत्तर : उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल के 16 से अधिक नगरों को जीवनदान देने वाली देश की एक बड़ी नदी गंगा, आज अत्यधिक प्रदूषित हो गई है, इसे प्रदूषण मुक्त करने के लिए 14 जून 1986 को वाराणसी में गंगा कार्य योजना का आरम्भ हुआ। 252.80 करोड़ रुपये की इस योजना में 262 कार्य-क्रम चलाए जा रहे हैं। अनेक शहरों में पुरानी मल निकासी नातियों का नवीनीकरण और विस्तार किया जा रहा है। पंपिंग स्टेशनों की क्षमता बढ़ाई जा रही है। जहाँ गन्दे नाले नदी की ओर जाते हैं, उन्हें वहाँ से हटा कर दूसरी ओर किया जा रहा है। आधुनिक सीवेज उपचार संयंत्र कानपुर, वाराणसी, और इलाहाबाद में लगाए जा रहे हैं। इसके साथ ही शुष्क शौचालय परिवर्तन, सुलभ शौचालय, विद्युत् शवदाहगृह उपलब्ध कराने और तटों के सुधार कार्य भी हो रहे हैं। लगभग कार्य पूरे हो चुके हैं, बाकी मई 1991 तक पूरा होने का लक्ष्य है।

प्रश्न : प्रदूषण की रोकथाम के लिए और क्या योजनाएँ हैं ?

उत्तर : जल और वायु को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए उनकी गुणवत्ता का विभिन्न स्तरों पर मूल्यांकन किया जाता है, ताकि मानक स्तर में वृद्धि होने पर उचित कदम उठाए जा सकें। 306 केन्द्र पानी की गुणवत्ता पर नज़र रखते हैं। गन्दे पानी को साफ़ कर के पुन: उपयोग में लाने की युक्तियों का विकास किया गया है। नागपुर, ग्वालियर और बड़ौदा में यह प्रणाली लगाई गई है। 140 केन्द्र वायु की गुणवत्ता पर निगरानी रखते हैं। औद्योगिक प्रदूषण रोकने हेतु रिफाइनिंग, फाउण्ड्री, कीटनाशी दवाओं, औषधि, पेट्रोरसायन और प्लास्टिक जैसे 6 उद्योगों के लिए प्रदूषण मानक तैयार किए गए हैं। फाइबर ग्लास, सीसा, सिरेमिक, टिरजेंट, विस्फोटक, अम्ल, क्षार, बूचड़खानों, मांस आदि उद्योगों द्वारा फैलाए जा रहे प्रदूषण को भी रोका जा रहा। बड़े उद्योगों को प्रदूषण रोकने संबंधी निर्देश दिए जाते हैं, न मानने पर कानूनी कार्यवाही व जुर्माना तथा उद्योग को बन्द तक किया जा सकता है।

प्रश्न : देश में पर्यावरण अनुसंधानों की क्या दशा और दिशा है ?

उत्तर : देश की ज़रूरतों के अनुसार विभिन्न अनु-संधान और विकास कार्य किए जा रहे हैं जिनमें मौलिक और व्यावहारोपयोगी दोनों प्रकार के अनुसंधान शामिल हैं। अनेक वनस्पतियाँ ऐसी हैं, जो आदिवासियों द्वारा प्रयोग में लाई जाती हैं, पर हमें उनकी जानकारी नहीं होती। ऐसी 300 प्रजातियाँ खोजी गई हैं और उनके औषधीय व खाद्य महत्व पर अनुसंधान किया जा रहा है। अनेक पादप प्रजातियाँ नष्ट होने को हैं, उन्हें ऊतक संवर्धन तकतीक द्वारा पुन: प्रवर्धित किया जाता है। इसके अतिरिक्त वायु और जल की निगरानी और नियंत्रण औद्योगिक उत्सर्जन, कृषि रसायन, इंजीनि-यरी, वनस्पति जातियों और प्राणि जातियों के संरक्षण, प्रदूषण का प्रभाव आदि क्षेत्रों पर अनुसंधान किया जा रहा है। राष्ट्रीय पर्यावरणीय इंजीनियरी अनु-संधान संस्थान, नागपुर, भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर, गोविंद बल्लभ पंत हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान, अल्मोड़ा, भारतीय वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून, आदि संस्थाएँ पर्यावरण विषयों पर अनुसंधान कर रही हैं। कुल वार्षिक बजट 182 करोड़ रुपए है।

प्रश्न : प्रदूषण नियंत्रण और अनुसंधान परियोज-नाओं पर जो धन खर्च किया जा रहा है, तो क्या इन परियोजनाओं के बाद में उपयोगी या अनुपयोगी होने के मूल्यांकन की भी कोई योजना है ?

उत्तर : पर्यावरण के प्रभाव दूरगामी होते हैं, अभी कुछ नहीं कहा जा सकता कि हमारी पर्यावरण संरक्षण परियोजनाएँ कितनी सफल होती हैं, या कितनी असफल ! अभी तो हमने शुरुआत की है, परि-

णाम तो आने वाला समय बताएगा। वैसे सभी परियोजनाओं/पूर्व योजनाओं पर पूरा विचार विमर्श करके ही उन्हें लागू किया जाता है, और आगे भी उन पर नजर रखी जाती है।

प्रश्न : प्रकृति और मानव का साहचर्य शुरु से है, इस साहचर्य को बनाए रखने के लिए प्रकृति और वन्य जीवन के संरक्षण हेतु क्या कार्यक्रम हैं ?

उत्तर : प्राकृतिक समृद्धि ही हमें पर्यावरण संकट से उबार सकती है। अत: सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के अन्तर्गत जनता का सहयोग लेकर पेड़ लगाने पर महत्वपूर्ण कार्य किया गया है। साथ ही काटे गए वनों के बदले में वनरोपण कार्यक्रम में भी सफलता मिली है। दावानल नियंत्रण परियोजना के तहत वनों में आग लगने से होने वाली क्षति को रोका जा रहा है। भारत में आज 67 राष्ट्रीय उद्यान और 394 अभ्यारण्य हैं, जिनमें विभिन्न वनस्पतियों व प्राणियों को सुरक्षित रखा गया है। 'बाघ परियोजना' के तहत बाघों को संरक्षण प्रदान करने हेतु राष्ट्रव्यापी योजना चलाई गई। नमभूमि वनस्पति तथा कच्छ वनस्पति संरक्षण हेतु विशेष कदम उठाए गए हैं।

प्रश्न : हमारे देश में पर्यावरण को सर्वाधिक ख़तरा किस बात से हैं ?

उत्तर : बढ़ती हुई जनसंख्या से, लेकिन इसका नियंत्रण पर्यावरण मंत्रालय के दायरे में नहीं आता।

प्रश्न : पर्यावरण संरक्षण के प्रति लोगों में जागरुकता व अभिरुचि पैदा करने व इस विषय में जानकारी देने के लिए क्या किया जा रहा है ?

उत्तर : लोगो में पर्यावरण के प्रति चेतना पैदा करना, पर्यावरण कार्यक्रमों का महत्वपूर्ण अंग है। राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, नई दिल्ली, पर्यावरण शिक्षा केन्द्र, अहमदाबाद, सी० पी० रामास्वामी अय्यर पर्यावरण केन्द्र, मद्रास आदि संस्थाएँ विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा पर्यावरण प्रचार-प्रसार का कार्य करती हैं। अभी विभिन्न प्रांतों के 2000 बच्चों को पर्यावरण किट प्रदान की गई है। राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय ने सचल पर्यावरण प्रदर्शनी आरम्भ की है, जो घूम-घूम कर लोगों को पर्यावरण की जानकारी देती है। इसके अलावा विभिन्न प्रतियोगिताओं, व्याख्यानों, सम्मेलनों और प्रदर्शनियों के माध्यम से पर्यावरण सूचनाओं का प्रचार-प्रसार किया जाता है।

प्रश्न : आप ग्रीन हाउस प्रभाव पर कुछ प्रकाश डालेंगे ?

उत्तर : उद्योगों के धुंये, ईंधन के जलने और वाहनों के, धुंये से जो गर्म गैसें निकलती हैं, उनमें कार्बन डाइऑक्साइड और कार्बन मोनोऑक्साइड गैसें होती हैं। ये गैसें वायुमण्डल में लगातार इकट्ठी होकर एक चैम्बर सा बना लेती हैं। इस तरह पृथ्वी के चारों ओर एक आचरण सा बन जाता है। ऐसा आवरण जिसके भीतर सूर्य से आने वाली गर्मी तो पहुँच सकती है, पर पृथ्वी की अनुपयोगी गर्मी वापस अंतरिक्ष में नहीं लौट सकती। इस तरह पृथ्वी का ताप लगातार बढ़ सकता है। इसे ही ग्रीन हाउस प्रभाव कहते हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है, कि यदि लगातार ताप बढ़ता रहा हो ध्रुवों की बर्फ पिघल कर धरती को भी डुबो सकती है। इसलिए समय रहते इस तबाही से बचने के उपाय हैं—प्राकृतिक साधनों का संतुलित दोहन, नियंत्रित औद्योगीकरण और विकास तथा अधिकाधिक वृक्षारोपण।

प्रश्न : पाठकों के लिए कोई संदेश !

उत्तर : हमारी प्राकृतिक संपदा, वायु, भूमि और जल हमारी पूँजी है। इस पूँजी को हमें अक्षुण्ण रखना है, और केवल ब्याज से काम चलाना है। यदि हम इस पूँजी में से कुछ लेते हैं, तो उसे पूरा करना भी हमारा कर्त्तव्य है। और इसका एक ही उपाय है—वृक्षारोपण, तभी हम आने वाली पीढ़ियों के लिए इस पूँजी को बचा कर रख सकेंगे।

□□

जस्ता और पर्यावरण

श्रीमती मीनाक्षी

शरीर को स्वस्थ एवं निरोग रखने के लिए हमें कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन व जल के अलावा अनेक खनिज लवणों की भी आवश्यकता होती है, जिनमें जस्त (जस्ता) भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। मानव शरीर में जस्ता यद्यपि अल्प मात्रा में ही पाया जाता है, फिर भी शारीरिक क्रियाओं के लिए इसकी उपस्थिति अति आवश्यक है।

पृथ्वी पर जस्ता मुख्यतया ब्रिटिश कोलम्बिया, कनाडा, वर्मा, भारत, ओक्लाहोमा आदि स्थानों में पाया जाता है। इसका मुख्य अयस्क ज़िक-सल्फाइड ब्लेण्ड हैं। इसके अतिरिक्त ज़िंक कार्बोनेट (केलेमाइन), सिलिकेट विलीमाईट ज़िंक ऑक्साइड, ज़िंकाइट या लाल ज़िंक अयस्क के रूप में भी पाया जाता है।

ज़िंक ताँबे की अपेक्षा अधिक विद्युत् धनात्मकता वाली धातु है, अतः यह सरलता से अपचयित नहीं होता व यह मैंगनीशियम को प्रतिस्थापित करता है। प्रकृति में जस्ता द्वि-संयोजक रूप में पाया जाता है। यह ताँबे की अपेक्षा अधिक गतिशील है। यह अपने द्विगुण आवेश को उच्च पी० एच० पर भी बनाये रख सकता है, अतः इसे ताँबे की अपेक्षा अधिक दृढ़ता से अधिशोषित होना चाहिए, किन्तु क्षीणतर सह-संयोजक बन्ध बनाता है, जिसके फलस्वरूप ताम्र धातु की अपेक्षा कम दृढ़ता से अधिशोषित होता है।

भू-मण्डल में जस्ते की मात्रा 80 अंश बतायी गई है। मिट्टी में 100-300 अंश भी पाया जाता है।

समुद्री जल में हेलोजनों के अतिरिक्त जस्ता ताँबा, लोहा आदि अनेक तत्त्व भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। समुद्री जल में सूक्ष्म-तत्त्व जस्ते का संघटन (प्रतिशत भार के अनुसार) $1 \cdot 5 \times 10-7$ है। कुछ समुद्री जीव (विशेषतया शैवाल) समुद्री जल में से तत्त्वों का संचय करने की अपार क्षमता रखते हैं। काइयों में जस्ते की सर्वाधिक मात्रा 1,000 10,000 अंश प्रति दश लक्षांश पाई जाती है।

पौधों में जस्ते की मात्रा मैंगनीज की तुलना में कम रहती है। एक ही जाति के पौधों में जस्ते की मात्रा में अन्तर देखा गया है। कम मात्रा में जस्ते की उपस्थिति पौधों की वृद्धि के लिए ज़रूरी है, परन्तु ज्यादा मात्रा में इसकी उपस्थिति हानिकारक होती है। नींबू की पत्तियों में सामान्यतया 25-50 अंश अंश तक जस्ता पाया जाता है, किन्तु न्यूनाग्रस्त पत्तियों में 10 अंश से भी कम मात्रा में जस्ता पाया जाता है, जबकि साधारणतया अन्य पौधों में प्रायः 50 अंश से कम जस्ता पाया जाता है गेहूँ, जौ, फली, सूर्यमुखी आदि पौधों में अच्छी वृद्धि के लिए जस्ता आवश्यक तत्त्व हैं, इसके विपरीत टमाटर के पौधों, फलयुक्त वृक्षों व अथ आदि के पौधों पर जस्ते का हानिकारक प्रभाव देखा गया है। सूखे चारों में भी जस्ते की मात्रा 15-37 अंश पाई गई है। गोबर की खाद जस्ते का सर्वोत्कृष्ट (12-1850 अंश जस्त प्रति दशलक्षांश) साधन है।

कुछ खाद्य पदार्थों में भी जस्ता पाया गया है, जैसे दालों में 85 प्रतिशत, पत्तेदार सब्जियों में 1.2 प्रतिशत, समुद्री उत्पादनों में 3.7 प्रतिशत एवं माँस, अंडे, दूध आदि उत्पादनों में लगभग 1.5 प्रतिशत मात्रा पाई गई है।

मनुष्य के संतुलित आहार में साधारण रूप से जस्ता अल्प मात्रा में उपस्थित रहता है। मानव शरीर में इसकी दैनिक आवश्यकता लगभग 12 मिलीग्राम होती है। ऊतकों में भी अल्प मात्रा में इसका वितरण पाया जाता है वयस्क मनुष्य में खाद्य पदार्थों द्वारा शरीर में जाने वाली जस्ते की मात्रा 0.0161 ग्राम प्रतिलीटर प्रतिदिन है। प्रति-

कनिष्ठ वैज्ञानिक सहायक, रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर, राजस्थान

दिन ही पीने के पानी द्वारा शरीर में जाने वाली जस्ते की मात्रा न्यूनतम 0.008 मिलीग्राम प्रति लीटर व अधिकतम 1.19 मिलिग्राम प्रतिलीटर है जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पीने के पानी में जस्ते की मात्रा 5 मिलीग्राम प्रतिलीटर से 15 मिलीग्राम प्रति लीटर तक रखी गई है।

जस्ता मानव शरीर में ताम्र धातु से अधिक मात्रा में पाया जाता है। यकृत, पित्ताशय व अग्न्याशय में जस्ते की सर्वाधिक मात्रा पाई गई है। छोटे बच्चों की अपेक्षा वयस्क शरीर के यकृत में जस्ते की मात्रा अधिक पायी गई है, जबकि स्तनधारियों के यकृत में जस्ते की मात्रा इसकी अपेक्षा कम पाई गई हैं। इसी तरह मानव दूध में भी जस्ते की मात्रा गाय के दूध को अपेक्षा कम पाई गई है। मनुष्य के बालों, नाखूनों व दाँतों में भी जस्ता पाया गया है।

शरीर की वृद्धि के लिये जस्ता एक आवश्यक धातु है। यह मानव रुधिर की लाल रक्त कणिकाओं में पाया जाता है। कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को शरीर से बाहर निकालने में जस्ता बड़ी मदद करता है। जस्ता धातु शरीर में इन्सुलिन व अन्य एंज़ाइम्स के क्रिया-वेग को भी तेजी से बढ़ाता है। इसलिए ये एंज़ाइम सक्रिय कारक भी कहे जाते हैं। इन्सुलिन ज़िक-यौगिकों के साथ शीघ्र ही रवादार हो जाता है व इंसुलिन की क्रिया को बढ़ाता है और संभवत: यह अग्न्याशय में इंसुलिन को संग्रह करने में मदद करता है। इसी कारण अग्न्याशय में जस्ते की सर्वाधिक मात्रा पाई जाती है।

जस्तायुक्त डिहाइड्रोजिनेज—कई डिहाइड्रोजिनेज़ों (फ्लेवो प्रोटीन रहित) में विशेष रूप से एल्कोहॉल डिहाइड्रोजिनेज एवं ग्लूटॉमेट डि-हाइड्रोजिनेज में ज़िंक की उपस्थिति दर्शायी गई है। ज़िंक एंज़ाइमी संरचना का एक समाकल अंश है और प्रत्येक सक्रिय केन्द्र में एक-एक ज़िंक परमाणु होता है, इस कारण प्रति एंज़ाइम अणु से परिबद्ध एन० ए० डी० अणु की संख्या उसमें ज़िंक परमाणुओं की संख्या के बराबर होती है।

यीस्ट एल्कोहॉल डिहाइड्रोजिनेज़ (अणु भार 151,000) प्रति अणु चार ज़िंक परमाणु होते हैं, और इसलिये चार एन० एन० डी० अणु संलग्न होते हैं, जब कि यकृत के एंज़ाइम (अणु भार 84,000) में दो ज़िंक परमाणु होते हैं और दो एन० ए० डी० अणु संलग्न होते हैं। दोनों एल्कोहॉल एवं ग्लूटॉमेट एंजाइमों से ज़िंक संस्करण कारकों की अभिक्रिया के द्वारा ज़िंक का अपचयन करने पर न केवल निष्क्रियण होता है 'वरन् एंज़ाइमी प्रोटीन का उप इकाइयों में वियोजन भी हो जाता है।

ज़िंक की क्रिया की व्याख्या करने के लिए कई सम्भावनाएँ बतलाई गयी हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि ज़िंक, ए० ए० डी० से प्रोटीन में थायोल समूहों से तथा अन्य कई पदार्थों से जो एंज़ाइमों के आधार रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं, बन्ध स्थापित कर सकता है। इन डिहाइड्रोजिनेज़ों में ज़िंक का कार्य निःसन्देह ही बंध स्थापित करना है, या तो सक्रिय केन्द्र से प्रति-कारकों का अथवा प्रोटीन उप-इकाईयों का एक दूसरे से।

मानव शरीर के अलावा अनेक पशु-पक्षियों में भी सूक्ष्ममात्रिक तत्त्व 'जस्ते' की अनिवार्यता की खोज (सर्वप्रथम चूहों पर) की गई। निम्नलिखित सारणी में विभिन्न प्राणियों में सूक्ष्ममात्रिक तत्त्व (जस्ता) का संघटन मिलीग्राम प्रति किलोग्राम दर्शाया गया है।

प्राणी	मुर्गी	मनुष्य	सुअर	बिल्ली	खरगोश	चूहा
शरीर भार (कि ग्रा.)	2·0	65	125	4·0	2·6	0·35
जस्तसंघटन मिलीग्राम	0·35	28	25	23	50	30

साधारणतया डि-ज़िंकीफिकेशन द्वारा भी पानी के पाइप (लोहा, पीतल आदि धातु के) खराब हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप यह धातु पीने के पानी में प्रवेश कर जाता है। जस्ता पानी में कार्बोनेट व सल्फेट के रूप में रहता है, क्योंकि ये लवण पानी में घुलनशील हैं। जस्ते की घुलनशीलता क्षारीयता व अम्लीयता पर निर्भर करती है। शुद्ध जस्ते पर पानी की क्रिया

शून्य रहती है, जबकि अशुद्ध जस्ता पानी को भाप तथा हाइड्रोजन गैस में परिवर्तित कर देता है।

अधिक मात्रा में जस्ते के सेवन से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पाँच मिलीग्राम प्रतिलीटर से अधिक मात्रा में होने पर क्षारीय पानी में कसैला स्वाद पैदा होता है। इसकी अधिक सांद्रता से शरीर में मिचलापन व धुंधलापन का कारण हो सकता है। गैस्ट्रोइन्टेस्टाइनल व चिड़चिड़ापन जैसे ज़हरीले प्रभाव भी अधिक मात्रा में जस्ते को ग्रहण करने से उत्पन्न होते हैं।

विश्व में जस्ता ही एकमात्र छिद्रमय धातु (Porous Metal) है। इस विशिष्ट गुण के कारण ही भारत में अनेक लोग पीने के पानी को ठंडा रखने के लिए जस्त धातु के पात्र (Water Bottle) को प्रयोग में लाते हैं जिन्हें बोलचाल की भाषा में 'बादला' कहते हैं। जस्ते की चद्दर के बड़े-बड़े पात्र बनाकर उसके ऊपर ऊनी कपड़े (नमदा) का खोल चढ़ा देते हैं। इस ऊनी खाल को पानी से गीला रखते हैं। हवा लगने पर पानी का वाष्पीकरण होता रहता है, जिससे जस्ते के पात्र में रखा पानी ठंडा होता रहता है।

जस्ते का उपयोग विभिन्न प्रकार की दवाइयाँ, रसायन, टूथपेस्ट पैकिंग एवं मिश्र धातुओं के निर्माण में भी किया जाता है। □□

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर

पर्यावरण एवं विकास : सन्तुलन की कसौटी

अमरनाथ श्रीवास्तव

आज से कुछ दशक पूर्व ही पर्यावरण के मुद्दों पर चिन्तन तीसरी दुनिया के देशों के लिये 'बिलासिता' की बात मानी जाती थी। इस समय इन देशों में विकास कार्य अपनी अपेक्षित गति प्राप्त कर रहा था, सामान्य नागरिकों की औसत आय में वृद्धि जीवन की बुनियादी ज़रूरतें उपलब्ध कराना ही विकास का उद्देश्य माना जाता था। प्राथमिक आवश्यकता यह होती थी कि गरीबी दूर करने के लिये आर्थिक वृद्धि को गति प्रदान की जाय। इसके हो जाने के बाद ही हम इससे उत्पन्न प्रदूषण या अन्य सम्भावित असुरक्षा जैसे नकारात्मक सह-प्रभावों के बारे में सोचते थे।

विश्व में पर्यावरण आन्दोलन स्टाकहोम पर्यावरण सम्मेलन 1972 के बाद से शुरू हुआ। इस सम्मेलन को बीते 18 वर्ष होने के बाद भी पर्यावरण दोहन-शोषण रोकने की दिशा में कोई चमत्कारिक परिवर्तन होता तो नहीं दिख रहा है। किन्तु इस बात में दम है कि इस अवधि में पर्यावरणीय चेतना का जन-सामान्य में व्यापक प्रसार हुआ है।

भारत जैसे प्राकृतिक संसाधनों वाले देश में भी पर्यावरणीय आन्दोलन काफी सशक्त हो रहा है, जो भारत को पर्यावरण संकट से बचाने के लिये काफी प्रभावकारी हो सकता है।

स्टाकहोम पर्यावरण सम्मेलन के ठीक एक वर्ष बाद सन् 1973 में **सुन्दरलाल बहुगुणा** द्वारा चलाये गये 'चिपको आन्दोलन' के बाद भारत में पर्यावरण आंदोलन इतना अधिक व्यापक और सशक्त हुआ कि भारत विश्व के सर्वाधिक प्रभावशाली पर्यावरण आन्दोलन का केन्द्र माना जाने लगा। चिपको आन्दोलन की तर्ज पर ही दक्षिण भारत में प्रसिद्ध पश्चिमी घाट को बचाये रखने के लिये "अपिक्को आन्दोलन" 1982 के बाद से उभर कर सामने आया। भारतीय पर्यावरण की इस विकास यात्रा में यह मील का पत्थर माना जाता है।

छात्र पत्रकारिता एवं जनसम्प्रेषण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5

पर्यावरण और विकास में पूरक सम्बन्ध है। क्या वही विकास है—जो प्रकृति के शोषण एवं दोहन करके अस्थाई समृद्धि प्राप्त करने के लिये होता है? आज प्रकृति के साथ मनुष्य के बुनियादी रिश्तों में परिवर्तन हुआ है। मनुष्य अपने को प्रकृति-पुत्र कहलाने के बजाय उसका स्वामी एवं शोषक कहलाना अधिक पसन्द करता है। प्रकृति माँ की बजाए शोषण की वस्तु बन गयी है।

पर्यावरण और विकास के बीच सन्तुलन बनाये रखने के लिये सबसे ज़रूरी बात यह है कि प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग विकास की उसी सीमा तक किया जाय जहाँ तक वे पुनः उसी रूप में विकसित हो सके। दुर्भाग्य से इन प्राकृतिक संसाधनों का यह सोच कर शोषण किया गया कि ये 'कामधेनु' (गाय) है, जितना दुह सकोगे उतना ही बढ़ेगा। आज इसके दुष्परिणाम को देखने के लिये वैज्ञानिक आँकड़ों की जरूरत नहीं है।

कुछ प्राकृतिक एवं औद्योगिक दुर्घटनाओं के बाद यह प्रश्न सभी लोगों को झकझोर रहा है कि क्या मानव की ग़लती से उत्पन्न इन गिने-चुने दुर्घटनाओं के कारण विकास कार्य या कल-कारखानों को स्थापित करने पर रोक लगा दें? जबकि सच्चाई यह है कि देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिये, महाशक्तियों के दबाव से मुक्ति पाने के लिये एवं विश्व के औद्योगिक दौड़ में स्वयं को शामिल करने के लिये समुन्नत प्रौद्योगिकी एवं औद्योगिकी कार्य निरन्तर चलाये जाने की आवश्यकता है। इसके साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इन विकास कार्यों से पर्यावरण के स्तर में सुधार हो न कि ह्रास। विकास की इस यात्रा में हमें विकास और पर्यावरण में सामंजस्य बनाये रखे जाने हेतु कोई रास्ता निकालने की आवश्यकता है।

इस बात को आज बड़े दावे के साथ कहा जाता है कि पर्यावरण की बात अनेक मंचों से उठाने वाले लोग विकास नहीं चाहते हैं या पर्यावरण को बहुत अधिक महत्व दिया गया तो देश का विकास रुक जायेगा। इस वर्ग के पक्षधरों ने अनावश्यक ग़लतफहमी पैदा कर रखी है कि पर्यावरण ओर विकास एक दूसरे के विरोधी हैं। इस प्रकार की बहस से पर्यावरण चेतना और विकास को काफी हानि पहुँची है। वास्तविकता तो यह है कि पर्यावरण और विकास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, विरोधी नहीं। विकास के द्वारा हम पर्यावरण को बनाए रख सकते हैं। विकास की योजनाओं को क्रियान्वित करते समय हमें पर्यावरण सम्बन्धी अनेक पहलुओं पर ध्यान देना चाहिये। ऐसा करके हम इन योजनाओं का दीर्घकालिक लाभ उठा सकते हैं।

भारत में पर्यावरण की समस्या पश्चिमी देशों से बिल्कुल भिन्न है। भारतीय पर्यावरण आन्दोलन के सामने इसके अलावा कोई दूसरा विकल्प शेष नहीं बचता है कि वह अस्तित्व रक्षा और जीविका संसाधन के रूप में प्रकृति के महत्व तथा आर्थिक पुनर्वितरण की आवश्यकता पर बल दे। पर्यावरण और विकास के सम्बन्ध में भारतीय संस्कृति के संदेश को देश की विकास नीति का उद्देश्य ज़रूरतमन्दों को ज़िन्दगी की बुनियादी जरूरतों जैसे रोजी-रोटी और आवास के साथ-साथ उसे प्रदूषण रहित, स्वच्छ एवं सुन्दर पर्यावरण उपलब्ध कराना, होना चाहिये। मानव को प्रकृति पर विजय का सपना छोड़कर उसके साथ तालमेल रखते हुये जीना होगा।

पर्यावरण के संरक्षण एवं सुधार की ज्वलन्त समस्या इस समय हमारे लिये एक बहुत बड़ी चुनौती है। यदि समय रहते हम इस चुनौती को स्वीकार करके इसके निराकरण के लिये आवश्यक कदम नहीं उठायेंगे तो आने वाले वर्षों में ज़हरीले एवं विषाक्त वातावरण में कठिनाइयाँ और बढ़ जायेंगी। यह सत्य है कि आज हम पर्यावरण के प्रति पहले से अधिक जागरूक हैं, परन्तु यह जागरूकता अभी बहुत कम लोगों तक सीमित है। भारत एक विकासशील देश है। ग़रीबी की समस्या अत्यन्त जटिल है। हमें जन-सामान्य के लिये रोटी, कपड़ा एवं मकान की व्यवस्था के लिये विकास की नयी योजनाएँ बनानी हैं। परन्तु इसके साथ ही पर्यावरण सम्बन्धी अनेक समस्याओं पर विजय श्री भी प्राप्त करनी है। विकास और पर्यावरण के बीच समन्वय एवं तालमेल बनाये रखना हमारा कर्त्तव्य है। □□

ग्रामीण पर्यावरण : समस्यायें एवं समाधान

डॉ० देवेन्द्र नाथ सिनहा

भारत की तीन चौथाई जनसंख्या आज भी गाँवों में निवास करती है। खेतों से अन्न उपजाकर मानव के लिये भोजन प्रदान करना ग्रामीण अंचलों का प्रमुख कार्य है। जीवन की तीन बुनियादी जरूरतों—रोटी, कपड़ा एवं मकान की ज़रूरतों को पूरा करना है। शहरों की दशा दिन पर दिन पर्यावरण प्रदूषण के कारण बिगड़ती जा रही है। किसी क्षेत्र विशेष की उन्नति उसके आस-पास स्थित औद्योगिक कल-कारखानों से आँकी जाती है। लेकिन समय ने यह साबित कर दिया है कि इसकी होड़ में आज जो नगर बने वे दुःख के आँसू बहा रहे हैं। सुबह से शाम तक कोलाहल, वातावरण में धुँये से भरे बादल। लगता है साँस लेने के लिये हवा नहीं मिलेगी। पानी की समस्या धीरे-धीरे बढ़ती ही जा रही है। इस मशीनी युग में मानव स्वयं मशीन होकर रह गया है। ये सभी समस्यायें तकनीकी प्रगति की देन हैं। हमारी औद्योगिक नीति ऐसी रही कि लोगों को रोज़गार के अधिक से अधिक अवसर मिले। और इस तरह धीरे-धीरे देश में उद्योगों का जाल बिछ गया। लोग देहातों से शहरों की ओर काम की तलाश में भागने लगे। शहरों की आबादी बढ़ने लगी। इसका यह परिणाम हुआ कि शहरों में गंदी बस्तियों का विस्तार तेज़ी से होने लगा। अब स्थिति ऐसी हो गई है कि गाँवों का शहरीकरण होने से गाँवों का पर्यावरण दूषित हो गया है और शहरों में गाँवों के लोगों के आने से मलिन बस्तियों के बढ़ने से शहरों का पर्यावरण भी चौपट हो गया है। यदि यही स्थिति रही तो ग्रामीण एवं शहरी सभ्यता का अन्तर ही समाप्त हो जायेगा।

अब समय आ गया है जब हमें अपनी औद्योगिक नीति में यह प्रयास करना पड़ेगा कि कोई ऐसा उद्योग गाँवों में न लगे जो गाँव की प्राकृतिक छटा को नष्ट कर दे। कल-कारखानों की धुँआ उगलने वाली चिमनियों से वायु में प्रदूषण होगा, वृक्ष नष्ट होंगे एवं कल-कारखानों से निकलने वाले कचरों को गाँवों के समीप नदी-नालों में डालकर जल को प्रदूषित कर देंगे। आज भी पानी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिये ग्रामीण इन्ही ताल-पोखरों, नालों, नदियों के पानी का उपयोग करते हैं तथा पशु भी इन्हीं स्रोतों से पानी प्राप्त करते हैं। यदि इसे रोका नहीं गया तो गाँवों में लोगों का जीवन दूभर हो जायेगा।

परियोजनायें बनाते समय यह अवश्य ध्यान देना होगा कि गाँवों में जो भी लघु उद्योग व कुटीर उद्योग लगें, वे ग्रामीण अंचलों के कार्यकलापों का पूरक बन-कर रहें तथा ग्रामीण साधनों पर ही विकसित हों। उसमें ग्रामीणों के श्रम का पूर्ण उपयोग हो तथा रोज-गार के अवसर बढ़ें। इससे ग्रामीण युवकों का पलायन नगरों की ओर रूकेगा तथा ग्रामीण अंचलों को उनकी क्षमताओं का पूरा लाभ मिलेगा।

गाँवों में 75% रोगों का कारण दूषित जल है। लेकिन वैज्ञानिक विकास द्वारा ग्रामीण अंचलों को जल प्रदूषण से मुक्त किया जा सकता है। ग्रामीण विकास को प्राकृतिक रूप में ही देखना पड़ेगा। वैज्ञानिक उपलब्धियों का ग्रामीणीकरण करके ही कार्य में लाना पड़ेगा अन्यथा ग्रामीण पर्यावरण में असंतुलन उत्पन्न होगा ही।

जनसंख्या वृद्धि गाँवों को अधिक दिनों तक प्रभा-वित नहीं कर पायेगी। पहले यह धारणा थी कि श्रम के लिये जनसंख्या अधिक हो ताकी कृषि कार्य समुचित रूप से हो सके। इसी कारण ग्रामीण शिक्षा की तरफ न ध्यान देकर पूरा समय कृषि की तरफ

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, एनाटॉमी विभाग, बी० आर० डी० मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर-273013

लगाते थे। ग्रामीण कार्य आज भी मानव श्रम की ओर केन्द्रित है। किन्तु विज्ञान की प्रगति के साथ कृषि के विकसित उपकरणों व उन्नत बीजों आदि के उपयोग से उपज बढ़ानी है ताकि गाँवों के लोग समझ सकें कि कम मानव श्रम से खेतों में अधिक उपज ली जा सकती है। इससे उन्हें खेतों में काम करने के लिए अधिक बच्चों की जरूरत न होगी। उन्हें छोटे परिवार के महत्व को समझना चाहिए।

पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने के लिये यह आवश्यक हो गया है की पेड़-पौधों को अधिक से अधिक संख्या में लगाया जाये। यह वृक्षारोपण कार्यक्रमों को ग्रामीण अंचलों में प्रमुखता देनी होगी। इससे ऊर्जा के साधन भी उपलब्ध होंगे, पशुओं को चारा मिलेगा और जंगलों पर दबाव कम होगा।

खेतों में उपज बढ़ाने के लिये रासायनिक उर्वरकों का उपयोग अधिक होने लगा है। और तो और फ़सल को रोगों से मुक्त करने के लिये कीटनाशकों का भी उपयोग अधिक होने लगा है। इसके अधिक प्रयोग से या आवश्यकता से अधिक प्रयोग से मिट्टी और आस-पास के जल-स्रोत दूषित हो जाते हैं। अतः कीटनाशकों का उपयोग वैज्ञानिक आधारों पर सीमित मात्रा में ही होना चाहिये। क्योंकि इससे मनुष्यों, पशुओं और फ़सलों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

ग्रामीण पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिये शिक्षा का विशेष महत्व है। अतः ग्रामीण अंचलों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करनी होगी ताकी प्रदूषण के अभिशाप से ग्रामीणों को बचाया जा सके। गाँव को गाँव ही रहने दिया जाये, शहर न बनाया जाये, यही श्रेयस्कर है।

□□

129वें जन्म दिन पर

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रे

डॉ० अजय कुमार चतुर्वेदी

रे भारत के उन अग्रणी वैज्ञानिकों में से एक हैं, जिन्होंने भारत में विज्ञान को स्थापित कर जीवन पर्यन्त उसके प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारत में आज विज्ञान और टेकनोलॉजी की उन्नति का श्रेय इस महान वैज्ञानिक की उपलब्धियों का ही परिणाम है। अतः आप केवल वैज्ञानिक ही नहीं अपितु एक प्रमुख राष्ट्र निर्माता भी थे।

भारत में वैज्ञानिक क्रान्ति लाने में अग्रणी वैज्ञानिक होने के साथ ही आपने औद्योगिक स्तर को उठाने में भी महत्बपूर्ण योगदान दिया। आपने रसायनिक उद्योगों की शुरुआत की।

इस अनोखी, विलक्षण विशिष्ट प्रतिभा को **आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रे** के नाम से जाना जाता है। **आचार्य रे का जन्म 2 अगस्त 1861 को बंगाल प्रान्त के खुलना जिले में ररुली कतिपारा नामक गाँव में हुआ था।** आचार्य रे का परिवार सुख-सुविधाओं से सम्पन्न कायस्थ जमीनदार परिवार था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के स्कूल में ही हुई। आगे की शिक्षा आपने कलकत्ता में पायी। सबसे पहले 1870 में हारे स्कूल में दाखिल हुए। चार साल बाद बीमारी के कारण स्कूल छोड़ना पड़ा।

स्वस्थ होने पर प्रफुल्लचन्द्र को एलवर्ट स्कूल में दाखिल कराया गया। वहाँ राष्ट्रीयता के पुजारी **श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी** के सम्पर्क में आये जिससे आजीवन राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत रहे। 1879 में एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास करने के बाद प्रफुल्ल चन्द्र ने मेट्रोपोलिटन इन्स्टीट्यूट में दाखिला लिया। वह विद्यासागर कॉलेज में पढ़ना चाहते थे, परन्तु दाखिला नही मिला। फिर भी **श्री सुरेन्द्र बनर्जी** के भाषण सुनने जाया करते थे। 1882 तक इस इन्सटीट्यूट में अध्ययन करते रहे।

उन दिनों मेट्रोपोलिटन इन्सटीट्यूट में विज्ञान की

रसायन विभाग, धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़

शिक्षा का प्रबन्ध न था। अतः वह विज्ञान पढ़ने प्रेसीडेसी कॉलेज जाते थे। प्रफुल्लचन्द्र विज्ञान की ओर आकर्षित हो चुके थे। **एलेक्जेन्डर वेडलर** से प्रभावित होकर रसायन विज्ञान में आप विशेष रुचि लेने लगे। 1882 में 'गिलक्राइस्ट छात्रवृत्ति' प्राप्त कर इंग्लैण्ड अध्ययन करने गये। 1885 में एडिनवर्ग विश्वविद्यालय से बी० एस-सी० की डिग्री प्राप्त की। वहाँ आपने भौतिक, रसायन, वनस्पति व जन्तु विज्ञान विषय पढ़े। रसायनाचार्यों के सत्संग से प्रफुल्लचन्द्र ने रसायन विज्ञान का विशेष रूप से अध्ययन किया। उनकी रुचि भी थी।

बी० एस-सी० की परीक्षा से पूर्व एडिनवर्ग विश्वविद्यालय के रेक्टर ने एक निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया। निबन्ध का विषय 'गदर के पूर्व और बाद का भारत' था। प्रफुल्लचन्द्र ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया। निर्णायकों ने आपके निबन्ध की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और उच्चकोटि का बतलाया। फिर भी पारितोषिक नहीं मिला। 1886 में यह निबन्ध प्रकाशित हुआ, जिसकी अत्यधिक सराहना हुई। यह उनकी उत्कृष्ट साहित्यिक प्रतिभा का उदाहरण था।

1887 में प्रफुल्लचद्र ने डी० एस-सी० की डिग्री सम्मानपूर्वक प्राप्त की। आपने रसायन विज्ञान में विशेष योग्यता प्रदर्शित की जिसके लिए 'होप' छात्रवृत्ति मिली। डी० एस-सी० के मौलिक निबन्ध की प्रशंसा हुई। आपके कार्य से प्रभावित होकर आप को विश्वविद्यालय की केमीकल सोसायटी के उपसभापति पद पर चुना गया। लन्दन के इण्डिया ऑफिस में इण्डियन एड्यूकेशनल सर्विस में आने की कोशिश की परन्तु सफलता नहीं मिली, क्योंकि आप काले हिन्दुस्तानी थे, जो गोरों की दृप्टि में हीन थे।

डी० एस-सी० को प्राप्त कर डॉ० प्रफुल्लचन्द्र रे 1888 में भारत लौट आए। नौकरी के लिए एक वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ी। 1889 में प्रेसीडेन्सी कॉलेज में असिस्टेण्ट प्रोफेसर ऑव केमिस्ट्री के पद पर 250 रु० मासिक वेतन पर नियुक्त हुए। 28 वर्ष तक आप कॉलेज की सेवा करते रहे। यहाँ पर भी आपको ब्रिटिश सरकार की काली भेदनीति का शिकार बनना पड़ा। इसका विरोध करने के लिए आप डाइरेक्टर से मिले। डाइरेक्टर आपके विरोध को सह नहीं सके और व्यंग भरे शब्दों में बोले 'यदि आप अपने को इतना योग्य केमिस्ट समझते हैं तो स्वयं कोई व्यवसाय क्यों नहीं चलाते।" डाइरेक्टर का तीखा व्यंग उनके जीवन में नया रंग लाया। उन्होंने उद्योग लगाने का विचार किया और उसी के प्रबन्ध में लग गये। अपने प्रयासों से उन्होंने एक उद्योग खोला जिसका नाम 'बंगाल केमीकल्स वर्क्स' रखा। ओ आज भी विद्यमान है। यह उद्योग अपनी तरह का पहला उद्योग था। 1892 में आपने एक दवाई बनाने का कारखाना 'बंगाल केमीकल एण्ड फार्मास्यूटीकल वर्क्स' नाम से स्थापित किया। आज यह बहुत बड़ा उद्योग है। इस औद्योगिक क्रांति के साथ ही राष्ट्रीयता भी जुड़ी हुई थी। आपने स्वदेशी लोगों को काम देकर सामाजिक उत्थान का भी कार्य किया।

डॉ० रे ने प्रेसीडेन्सी कॉलेज में अध्यापन के साथ अन्वेषण कार्य का भी सूत्रपात किया। अध्यापक के रूप में तो आपने बहुत सफलता प्राप्त की साथ ही आप एक उच्च श्रेणी के अनुसंधानकर्ता भी थे।

डॉ० रे ने 'हिन्दू रसायन का इतिहास' नामक ग्रन्थ लिखकर प्रसिद्धि पाई। यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ ने पाश्चात्य वैज्ञानिकों में तहलका मचा दिया। इसका प्रथम भाग 1902 में प्रकाशित हुआ था।

1886 में डॉ० रे ने पारे और उसके मिश्रण से बने हुए पदार्थों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम खोज कर धूम मचा दी। मरक्यूरस नाइट्राइट पदार्थ संसार में सबसे पहले आपने बनाकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। आपने फिर एक अमीन नाइट्राइट का भी निर्माण किया। ओर्गेनो-मेटेलिक यौगिकों का निर्माण भी आपके द्वारा ही हुआ। आपने पारा, गन्धक और आयोडीन के संयोग से एक नवीन यौगिक बनाया। यह यौगिक प्रकाश में रंग बदलता है।

डॉ॰ रे ने 'वाष्प घनत्व' पर भी शोध किया। आपके शोधों का स्तर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का था। संभवत: इसी कारण डॉ रे को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली।

डॉ॰ रे की ख्याति व प्रतिभा से प्रभावित होकर **बंगाल** सरकार ने आपको योरोप भेजा। योरोप में आपका बड़ा सम्मान हुआ। फ्रांस की 'एकेडेमी ऑव साइन्स' ने आपके सम्मान में उत्सवों का आयोजन किया। लंदन की केमीकल सोसायटी ने आपको सम्मानित कर अपनी संस्था का 'फेलो' बना लिया। उन दिनों ऐसा सम्मान प्राप्त करना गौरव की बात थी। यह गौरव देश का गौरव था। इससे भारत वैज्ञानिक पटल पर आया।

1912 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में डॉ॰ रे इंग्लैण्ड गये। केमीकल सोसायटी के अधिवेशन में आपने अपना शोध पत्र 'अमोनियम नाइट्राइट का वाष्प घनत्व' प्रस्तुत किया। इस शोध की प्रशंसा हुई। इंग्लैण्ड के महान वैज्ञानिक **रामजे** ने आपको इस शोध पर बधाई दी। **डॉ॰ वेल** ने तो आपको महान विद्वान बताया। **डॉ॰ आर्मस्टोन** ने तो डॉ॰ रे को 'मास्टर ऑव नाइट्राइट' के नाम से सम्बोधित किया। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आपकी ख्याति का प्रमाण है। ड्यूर हाम विश्वविद्यालय ने आपको डी॰ एस-सी॰ की मानद उपाधि से सम्मानित किया। ब्रिटिश सरकार ने भी आपकी प्रतिभा और ख्याति से प्रभावित होकर आपको 'सी॰ आई॰ ई॰' की पदवी सम्मानस्वरूप भेंट की। यह अपने आपमें एक बड़ी उपलब्धि थी।

1916 में प्रेसीडेंसी कॉलेज से सेवा निवृत्त हुए। कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति **सर आशुतोष मुकर्जी** के अनुरोध पर आपने विज्ञान कॉलेज में 'पालित प्रोफेसर ऑव केकिस्ट्री' के पद पर कार्य किया। आपकी बहुमुखी प्रतिभा से कॉलेज का नाम हुआ और आपको 'आचार्य' के नाम से जाना जाने लगा। अत: आप आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रे बन गए। 1919 में आपको 'सर' की उपाधि से सुशोभित किया गया। 1920 में आप 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' के सभापति बनाये गये। 1924 में आपने 'इन्डियन केमीकल सोसायटी' नामक नई संस्था को जन्म दिया। यह संस्था आज भी अपना कार्य कुशलता से कर रही है। आप इस संस्था के दो साल फाउण्डर प्रेसीडेन्ट भी रहे। आचार्य रे को भारत में रसायन विज्ञान के विकास का जनक माना जाता है।

आचार्य रे ने रसायन विभाग में दो छात्रवृत्तियाँ अपने पास से दीं। इतना ही नहीं, 1922 में आपने 'नागार्जुन शोध पुरस्कार' भी अपने पास से दिया। सर आशुतोष के नाम से जन्तु विज्ञान व वनस्पति विज्ञान में शोध पर पुरस्कार अपने पास से दिये। रसायन विज्ञान के प्रसार में भी आपने आर्थिक सहयोग दिया। 1936 में साइन्स कॉलेज से सेवा निवृत्त हुए। आपकी सेवाओं, ख्याति व प्रतिभा, से प्रभावित होकर आपको सम्मानीय अवकाशप्राप्त आचार्य नियुक्त किया गया।

आचार्य रे को अनेक अन्तर्राष्ट्रीय एवम् राष्ट्रीय सम्मान मिले। 'डच एकेडेमी ऑव म्यूनिख' व 'लन्दन केमीकल सोसायटी' ने अपको सम्मानित फेलो चुना। कलकत्ता, ढाका, बनारस विश्वविद्यालयों ने आपको मानद डी॰ एस-सी॰ की उपाधियों से अलंकृत किया।

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रे ने सामाजिक बुराइयों को दूर करने में भी अहम भूमिका निभाई। प्राकृतिक आपदाओं के समय भी डॉ॰ रे ने मानवता के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये।

जब आचार्य रे को अन्वेषणों व अन्य उत्कृष्ट कार्यों से ख्याति मिल रही थी तभी ईश्वर ने 16 जून, 1944 को हमसे उन्हें सदा के लिए अलग कर दिया। परन्तु आज भी आपके उच्चस्तरीय शोधों, अन्वेषण, व अन्य कार्य हमारे सामने मेहनत-लगन के उदाहरण और प्रेरणास्रोत हैं, जो कभी भी हमें आचार्य जी से अलग नहीं कर सकते। आप आज भी अपने उच्चस्तरीय शोधों में जीवित हैं।

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रे लोकप्रिय अध्यापक, महान वैज्ञानिक, रसायन उद्योगों के जनक, समाज सेवी, राष्ट्र निर्माता थे। हमें अपने इस महान वैज्ञानिक पर गर्व है। आचार्य रे के चरणचिह्नों पर चलना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। □□

विज्ञान वार्ता | संकलन : डॉ० अरुण आर्य

(1) समुद्र तल के किसान

जी हाँ ! समुद्र तल में भी किसान पाये जाते हैं। यह न तो किसी कवि की कोरी कल्पना है और न ही विज्ञान रूपक का कोई अंश, जिसमें समुद्र तल पर पायी जाने वाली किसी पुरातन सभ्यता का वर्णन किया गया हो। यह है संयुक्त राज्य अमेरिका के दो भूवैज्ञानिकों **डॉ० नेलसन** एवं **डॉ० जानसन** ('साइन्टिफिक अमेरिकन, फ़रवरी 1987) का विचार।

इन भूवैज्ञानिकों के अनुसार कैलीफोर्निया की भूरी ह्वेल मछलियाँ तथा प्रशान्त महासागर के वालरस (समुद्री सिंह) ही वे किसान हैं जो समुद्र तल को अपने खाने की तलाश में खोदते हैं। इस कार्य में वे न केवल अनेक छोटे जानवरों को खा जाते हैं, बल्कि बहुत सी मिट्टी भी कुरेदते हैं जो कि समुद्री जानवरों एवं वहाँ के पर्यावरण के लिये अनुपयोगी है। ये प्रति वर्ष उससे अधिक मिट्टी खोदते हैं जितनी कि कोई नदी अपने पानी के साथ वर्ष भर में समुद्र में गिराती है। प्रकृति विभिन्न प्रकार से जीव-जन्तुओं में संतुलन बनाये रखती है, यह भी उसका एक उदाहरण है।

असामान्य गड्ढे एवं नालियाँ, समुद्र तल पर **डॉ० नेल्सन** को तब नज़र आये जब वे समुद्र तल का निरीक्षण किन्हीं भूविज्ञान सम्बन्धी ख़तरों हेतु कर रहे थे। उस क्षेत्र में ह्वेल मछलियाँ बहुतायत से आती थीं। उनके पेट में मिट्टी भी पायी गई है। विस्तृत अध्यनों से ज्ञात हुआ है कि ये ग्रे ह्वेल मछलियाँ अपने प्रिय भोजन पर्पटीय जीवों के लिए समुद्र तल तक जाती हैं। यहाँ पर पाई जाने वाली लम्बी नालियों को बनाने वाला 'वालरस' है। यह इस बात से ज्ञात हुआ कि बहुत सी सीपियों के आवरण इनके किनारों पर पाये गये।

ह्वेल मछलियाँ जब अपना शिकार करती हैं तो बहुत से अण्डे एवं छोटे भ्रूण तथा कुछ भोजन भी नीचे गिर जाता है। इस भोजन को खाकर छोटे कीड़े बड़े होते हैं और बड़े जानवरों का भोजन बनते हैं। जब अगले मौसम में भूरी ह्वेल मछलियाँ वहाँ आती हैं तो ये बड़े जानवर उनका भोजन बनते हैं। यह बिलकुल वैसा ही है जैसे कोई किसान अपनी ज़मीन को खोदता है, बीज बोता है और पकने पर फसल काट लेता है।

(2) केले के पेड़ : जानवरों का अच्छा चारा

बी० बी० सी० रेडियो की विश्व सेवा को दिये गये अपने नवीन साक्षात्कार में 'पाकिस्तान कृषि शोध संस्थान, के महानिदेशक **डॉ० अमानत अली** ने पाकिस्तान में विकसित कुछ नये चारों के बारे में बताया।

फल आने के पश्चात् केले के पेड़ों को काट लिया जाता है, उसमें खाद मिलाई जाती है जो कि सूखी होनी चाहिये क्योंकि केले में 90 प्रतिशत पानी होता है जब कि साइलो संरक्षण (सिलेज) हेतु 30 प्रतिशत सूखा पदार्थ होना चाहिये। पूरा केले का वृक्ष इस कार्य में उपयोगी है। इस मिश्रण में तीन प्रतिशत शीरा (मोलेसेज़) मिला देते हैं। कभी-कभी गेहूँ का भूसा भी मिलाया जाता है। डॉ० अली के अनुसार खाद के इस मिश्रण में किसी प्रकार की बीमारी फैलने का कोई अंदेशा नहीं है क्योंकि सम्पूर्ण प्रक्रिया अनाक्सीकारक श्वसन द्वारा होता है। यह एक लैक्टिक अम्ल किण्वन प्रक्रिया है जिसमें सभी सूक्ष्म जीवाणु मर जाते हैं और सिलेज को बिना किसी डर के जानवरों को खिलाया जा सकता है। यह हरे चारे के समान ही पोषक है।

(3) यूरोकाइनेज़ : हृदय रोगियों के लिए वरदान

रक्त के थक्के बनना हृदय रोगियों के लिए एक समस्या है। ये रक्त के थक्के धमनियों में रक्त प्रवाह की रोक देते हैं, जो मृत्यु का कारण भी हो सकता है। ये रक्त के थक्के यूरोकाइनेज़ एन्ज़ाइम में घुल सकते हैं,

---

प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, एम० एस० विश्वविद्यालय, बड़ौदा—390002, गुजरात

यूरोकाइनेज़ आजकल या तो मनुष्य के मूत्र अथवा वृक्क की कुछ कोशाओं को कृत्रिम रूप से उगाकर प्राप्त किया जाता है। लेकिन यह विधि खर्चीली एवं कुछ कठिन भी है। यह एन्ज़ाइम कुछ दूसरे प्रोटीनों के साथ बनता है जिसे बाद में अलग किया जाता है।

एक अमेरिकी दवा बनाने वाली कम्पनी के वैज्ञानिकों ने कृत्रिम रूप से अणु जैविकी विधियों को अपना कर यूरोकाइनेज़ का निर्माण किया है। उन्होंने पहले मनुष्य की वृक्क कोशाओं से रिवर्स ट्रांसक्रिपटेज एन्ज़ाइम के द्वारा मेसेन्जर (वाहक) आर एन ए (RNA) को अलग किया फिर उससे डी एन ए (DNA) का निर्माण किया जो यूरोकाइनेज़ एन्ज़ाइम बनाने का 'जीन' रखता है। फिर इसे **इसकेरेसिया कोलाई** नामक जीवाणु में रोपित किया। यह जीवाणु यूरोकाइनेज़ बनाने में सक्षम है। अब इसे और अधिक एन्ज़ाइम बनाने में प्रयुक्त किया जा रहा है।

(4) शैवाल का भोज्य सामग्री के रूप में प्रयोग

इस समय लगभग 40 से अधिक भूरी, लाल, हरित तथा नील-हरित शैवालों का प्रयोग भोज्य सामग्री के रूप में किया जा रहा है। जिन देशों में इनका प्रयोग बहुतायत से होता है उनमें जापान, चीन, फिलीपीन्स, इण्डोचीन आदि सम्मिलित हैं।

खाद्य शैवालों में **पोरफाइरा टॅनेरा** विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो कि समुद्र में उगने वाला बड़े आकार का एक रक्तिम शैवाल है। इसकी खेती से जापान को लगभग 880 लाख अमेरिकी डॉलर का लाभ होता है। इसे जापानी अपनी भाषा में 'आसा कुसानोरी' कहते हैं। इसके अतिरिक्त जिन अन्य शैवालों का उपयोग वे करते हैं उसमें **नॉस्टॉक लैमीनेरिया** (काम्बो) आदि प्रमुख हैं।

जापानी खेतिहर **पोरफाइरा** को किनारे के उथले समुद्र में फ़सल के रूप में उगाते हैं। पहले वे समुद्र के पास छोटी-छोटी क्यारियों में इसके बीजाणुओं को उगाते हैं। पौध तैयार हो जाने पर वे बाँस के खम्भों में बँधे रस्सों पर, जो थोड़े पानी में डूबे हुये होते हैं, इन्हें लगा देते हैं। पौधों की कुछ वृद्धि के उपरांत बाँस के टुकड़ों को नदियों के मुहाने पर ले जाया जाता है, जहाँ उन्हें पानी में घुले हुये पदार्थ अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। □□

पेड़-पौधों का अद्भुत संसार

डॉ० विजय कुमार श्रीवास्तव

[हाल ही में नई दिल्ली के "पुस्तक महल" से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है—"विश्व प्रसिद्ध मांसाहारी तथा अन्य विचित्र पेड़-पौधे।" इसे विज्ञान लेखक **डॉ० जगदीप सक्सेना** ने लिखा है। पुस्तक में पेड़-पौधों से जुड़े अनेक आश्चर्यजनक तथ्यों का वैज्ञानिक खुलासा किया गया है। प्रस्तुत है पुस्तक का संक्षिप्त परिचय **डॉ० विजय कुमार श्रीवास्तव** की कमल से। डॉ० श्रीवास्तव भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् (आई० सी० एम० आर०) के प्रकाशन एवं सूचना विभाग में वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी के पद पर कार्यरत हैं और पिछले दस सालों से लोकप्रिय विज्ञान लेखन से जुड़े हैं।

—**सम्पादक**]

पुस्तक के प्रारम्भ में पौराणिक महत्व के वृक्षों की जानकारी दी गयी है। **सोम, कल्पवृक्ष** और **रुद्राक्ष** के वृक्ष अनेकानेक मनगढ़न्त कहानियों से घिरे हुए हैं। आम आदमी इन्हें चमत्कारिक वृक्षों के रूप में जानता है। जबकि इनमें ऐसा कुछ नहीं है। लेखक ने इन तीनों पौधों के वैज्ञानिक और ओषधीय पक्षों पर प्रकाश डाला है।

इसके अलावा पुस्तक में और भी विचित्र, रहस्यमय और अजीबो-ग़रीब पेड़-पौधों का ज़िक्र है। पुस्तक में कुल 17 अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय पेड़-पौधों की एक नई दुनिया को हमारे समाने उजागर करता है। "मांसाहारी पेड़-पौधे" शीर्षक के अंतर्गत एक ऐसे पौधे के बारे में बताया गया है, जो कबूतर और चूहा भी खा सकता है। छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े खाने वाले तो ढेरों पौधे हैं। एक ऐसे शिकारी पौधे

'सम्प्रेषण' फीचर, सम्पर्क सूत्र : डी 720, सरस्वती विहार, दिल्ली—110034

के बारे में भी बताया गया है, जो देखने में फन फैलाये नाग जैसा दिखता है।

पेड़-पौधे दोस्त और दुश्मन के बीच फ़र्क कर लेते हैं। उन्हें भी हमारी तरह सुख और दुःख का आभास होता है। वे हमारे मन की बात ताड़ लेते हैं संगीत सुनने से फ़सलों की पैदावार बढ़ जाती है। बेलें अपने सहारे को देखकर उससे लिपटती हैं। पेड़-पौधों के जीवन से जुड़े इन आश्चर्यजनक तथ्यों के बारे में सम्भवतया हिन्दी में पहली बार वैज्ञानिक खुलासा किया गया है।

विशाल पेड़ों के बारे में दिलचस्प जानकारी जुटायी गई है। अमेरिका में पाये जाने वाले **सिकोया** के एक पेड़ का तना इतना चौड़ा है कि उसके अन्दर से कार गुजरने लायक रास्ता बनाया गया है। कमल-कुल के पौधे के एक विशाल पत्ते पर बच्चे को बैठाया जा सकता है। जंगलों में मौजूद पेड़ वहाँ से आदिवासियों की ज़रूरत पूरी करने में समर्थ हैं। खाना, पानी, दूध, जूते, टोपी वगैरह सभी कुछ। ऐसे पेड़-पौधों की जानकारी, "दुकानदारी करते पेड़-पौधे," अध्याय में दी गई है।

बहुत से लुभावने पौधे बेहद ज़हरीले हैं। इनमें से कुछ के ज़हर का उपयोग हत्या करने के लिए किया गया। "प्रमुख ज़हरीले पेड़-पौधे" अध्याय में ऐसे आठ पौधों के बारे में बताया गया है। एक अध्याय में लेखक ने बताया है कि पेड़-पौधे रेडियो और टी० वी० के एंटिना का काम कर सकते हैं। पेड़-पौधों से रेडियो सिगनल भी प्राप्त किया जा चुका है।

कहा जाता है चीन का **जिन्सेंग** नामक पौधा आदमी के हर रोग के लिए 'रामबाण' है। यही कारण है कि इसे दुनिया के सबसे चमत्कारी पौधे की संज्ञा दी गई है। इसके इतिहास और विकास के बारे में पूरा अध्याय है। इसी प्रकार रहस्यमय **ड्रैगन** के पेड़ पर भी एक अध्याय लिखा गया है। पहले कहा जाता था कि ड्रैगन के पेड़ से खून टपकता है। इस रहस्य का पर्दाफ़ाश किया गया है।

कुछ फफूंदें सूक्ष्म प्राणियों का शिकार करती हैं, जबकि कुछ कीड़े फफूंदों का बाग़ लगाते हैं। इनके बारे में अलग-अलग अध्याय हैं। **कुकुरमुत्ते** आदिकाल से मानव-मन में कुतूहल पैदा करते रहे हैं। इनके बारे में तरह-तरह की रहस्यमय कहानियाँ प्रचलित थीं। अध्याय "अद्भुत कुकुरमुत्ते" ऐसी ही रोचक जानकारी से भरा पड़ा है। कुछ अजीबो-ग़रीब पेड़-पौधों का भी ज़िक्र है जैसे बूढ़ा होने पर एक पेड़ की कमर झुक जाती है, एक पेड़ की लकड़ी लोहे से भारी है, कुछ पेड़ आत्महत्या करते हैं, एक पौधा मौसम की भविष्य-वाणी करता है, आदि।

जीवाणुओं के बारे में "सबसे अद्भुत सबसे निराले जीवाणु" अध्याय के अंतर्गत बेहद दिलचस्प जानकारी जुटायी गई है। जानकर ताज्जुब होता है कि जीवाणु एक मिनट में अपनी लम्बाई का चार हज़ार गुना फासला तय कर लेता है। कई उद्योग-धन्धे जीवाणुओं के दम पर ही चल रहे हैं। प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखने में जीवाणुओं का बड़ा हाथ है।

पुस्तक के अन्त में भारत के कुछ प्रसिद्ध प्राचीन वृक्षों की जानकारी दी गई है, जैसे कलकत्ता का विराट **वट वृक्ष**, बिहार का **बोधि वृक्ष**, **कबीर बड़**, आदि।

वैज्ञानिक तथ्यों के साथ रोचक जानकारी देकर लेखक ने पुस्तक को आदि से अन्त तक पठनीय बना दिया है। पेड़-पौधों में ज़रा-सी भी रुचि रखने वाले हर व्यक्ति के लिए यह पुस्तक संग्रहणीय है। सुन्दर चित्रों और साफ़ छपाई के कारण पुस्तक आकर्षक दिखती है। मुख पृष्ठ भी मनोहर है। और पुस्तक का मूल्य है केवल 18 रुपये। □□

(सम्प्रेषण)

विज्ञान वक्तव्य

आपके हाथों 'विज्ञान' का यह अंक क्षमा याचना के साथ दे रहा हूँ। 'विज्ञान' का अगस्त अंक समय से प्रकाशित न हो पाया और विवश होकर यह अंक भी संयुक्तांक निकालना पड़ा।

कुछ लेखों के साथ आपको इस अंक में विज्ञान विषयक नये साहित्य की भी जानकारी मिलेगी।

5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया था। (देखें पृष्ठ 20)।

पर्यावरण निदेशालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश सरकार के आर्थिक सहयोग से पर्यावरण पर हम एक पुस्तक भी शीघ्र प्रकाशित करने जा रहे हैं। पुस्तक मुद्रणाधीन है। यह आप सबके सहयोग से ही संभव हो सका हैं।

यह दशक निश्चित रूप से पर्यावरण का दशक है। सभी ओर से पर्यावरण का संदेश मिलता है। पत्र-पत्रिकायें, पुस्तकें, रेडियो, टेलीविज़न आदि माध्यमों के द्वारा स्वस्थ पर्यावरण की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए पर्यावरण विज्ञानियों की बातें बार-बार प्रचारित की जाती हैं। पर्यावरण की अवहेलना करने वाले उद्योगों अथवा पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वालों के बिरुद्ध कड़े कदम उठाये जाते हैं।

पर्यावरण की सुरक्षा के मामले में भारत विश्व के उन्नत देशों की भाँति हीं क़दम से क़दम मिलाकर चल रहा है। आज हम अपने जंगलों, नदियों, शहरों और सागरों को प्रदूषित होने से बचाने में लगे हुए हैं। गाँवों के निकट कल-कारखाने और बड़े-बड़े बाँध बनाने की छूट नहीं रही। गाँवों के लोगों का शहरों में आना और शहरों में मलिन बस्तियों के विस्तार के प्रति हम सचेत हैं। टेहरी और नर्मदा बाँध परियोजनाओं के प्रति आम लोगों की जागरूकता शुभ लक्षण है।

मैं एक बात बार-बार कहता हूँ और फिर कह रहा हूँ—मेरी मनुष्य की बुद्धि, उसके विवेक पर पूरी आस्था है। मानव इस धरती को पुनः 'सुजला, सुफला, शस्य-श्यामला' बनाने में सक्षम है। अपेक्षित है दृढ़ निश्चय और संकल्प। □□

नया साहित्य

1. प्रदूषण-रोधी वृक्ष—विष्णु दत्त शर्मा
   प्रकाशक : किताबघर, 24/4866 शीलतारा हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली—110002
   प्रथम संस्करण 1989; मूल्य पचास रुपये
   मुद्रक : कौशिक प्रिंटिंग प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032
2. प्रदूषण और रामचरित मानस—विष्णु दत्त शर्मा
   प्रकाशक : शोध प्रकाशन अकादमी 23, लक्ष्मी विहार, गाजियाबाद
   (हिन्दी अकादमी, दिल्ली के आर्थिक सहयोग से)
   प्रथम संस्करण : 1990 ; मूल्य 70 रुपये
   वितरक : किताबघर, मेन रोड, गाँधी नगर, दिल्ली—110031
   मुद्रक : अरिहन्ता प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली—110032
3. हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता—मनोज कुमार पटैरिया
   प्रकाशक : तक्षशिला प्रकाशन, 24/4762, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली—110002
   प्रथम संस्करण : 1990 ; मूल्य दो सौ रुपये मात्र
   आवरण : करुणानिधान
   मुद्रक : साहित्य कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा अनिल प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली—110032
4. भयानक रोगों पर विजय की कहानियाँ—जगदीप सक्सेना एवं साधना सक्सेना
   प्रकाशक : फैमिली बुक्स प्रा० लिमिटेड, एफ–2/16 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली—110002
   प्रथम संस्करण जून 1990 ; मूल्य पेपर बैक 18 रु० सजिल्द लायब्रेरी संस्करण 30 रु०
   मुद्रक : क्वालिटी ऑफसेट प्रिंटिंग प्रेस, नारायणा, नई दिल्ली—110028
5. कोऽहम् (कौन हूँ मैं)—डॉ० चन्द्र विजय चतुर्वेदी
   प्रकाशक : संतोष कुमार चतुर्वेदी, शिल्पी प्रकाशन, 374/117 सी/7 मीरापुर, इलाहाबाद
   प्रथम संस्करण 1990 ; मूल्य पच्चीस रुपये
   मुद्रक : मीना प्रेस, 1036, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद
6. आर्थिक वनस्पति विज्ञान—रघुनाथ प्रसाद
   प्रकाशक : सरस्वती प्रकाशन, विण्ढमगंज—232221, मिर्ज़ापुर, उत्तर प्रदेश
   प्रथम संस्करण 1990 ; मूल्य 20 रुपये
   प्रमुख वितरक : नन्द किशोर इण्टरप्राइज़ेज़ विण्ढमगंज, 232221, मिर्ज़ापुर, उत्तर प्रदेश
   मुद्रक : कमल किशोर, पुष्पा प्रिंटिंग प्रेस, विण्ढमगंज, मिर्ज़ापुर, उ० प्र०
7. स्नातक वनस्पति विज्ञान—रघुनाथ प्रसाद
   प्रकाशक : सरस्वती प्रकाशन, विण्ढमगंज—232221, मिर्ज़ापुर, उत्तर प्रदेश
   प्रथम संस्करण 1989-90 ; मूल्य 30 रुपये

लेडी इव बैलफर

डॉ० मुरारी मोहन वर्मा

इंग्लैंड निवासी **लेडी इव बैलफर** को विश्व की प्रथम महिला कृषि वैज्ञानिक होने का श्रेय प्राप्त है। उन्होंने कृषि-क्षेत्र में उत्पादकता, मृदा उर्वरता एवं मानव स्वास्थ्य के सुधार के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किए हैं।

लेडी इव बैलफर ने 'जैविक-क्रांति' का नारा दिया और परम्परागत कृषि के लिए जैविक पदार्थों के उपयोग पर बल दिया। ब्रिटिश सरकार ने लेडी इव बैलफर के महत्वपूर्ण कार्यों के आधार पर उनकी संस्तुति को अध्यादेश के रूप में घोषित किया, जिसमें किसानों को जैविक खादों के उपयोग के लिए समुचित अनुदान देने का प्रावधान किया गया था।

इव बैलफर का जन्म से आज लगभग 91 वर्ष पूर्व ईंग्लैंड के प्रसिद्ध बैलफर परिवार में हुआ था। **वे सर ए० जे० बैलफर** की भांजी थीं, जिन्होंने कंजर्वेटिव दल के नेता एवं इंग्लैंड के प्रधानमन्त्री के रूप में ख्याति अर्जित की थी।

इव बैलफर बचपन से ही कृषि और बागवानी में विशेष रुचि लेती थीं। खेतों में जाकर विभिन्न फसलों की बुआई, उनकी देखभाल, सिंचाई आदि देखती और जानकारी प्राप्त करती थीं। बारह वर्ष की छोटी वय में ही इस बालिका ने कृषि वैज्ञानिक बनने का सपना संजो लिया था। सत्रह वर्ष की उम्र में इव बैलफर ने रीडिंग विश्वविद्यालय से कृषि-शिक्षा में डिप्लोमा प्राप्त किया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान 'महिला आर्मी' की ट्रेनिंग सफलतापूर्वक पूरी की। उन्होंने वायुयान चलाने का भी प्रशिक्षण प्राप्त किया और विभिन्न एयरक्राफ्टों को उड़ाने में दक्षता हासिल की।

लेडी इव बैलफर की कृषि-जीवन की प्रगाढ़ इच्छा ने उन्हें एक 'प्रायोगिक फार्म' को विकसित करने को विवश कर दिया। अतः 1919 में 'हाग्ले प्रायोगिक फार्म' को इव बैलफर ने खरीदकर कृषि की उन्नति के लिए वैज्ञानिक परीक्षण प्रारम्भ कर दिए। लगभग 200 एकड़ के क्षेत्रफल वाले इस प्रायोगिक फार्म को उन्होंने तीन भागों में विभाजित करके अलग-अलग प्रयोग शुरू कर दिए। ये प्रयोग निम्न प्रकार से थे—

- 0एक भाग में तो जैविक पदार्थों के उपयोग पर आधारित प्रयोग प्रारम्भ किया,
- 0दूसरे भाग में पूर्ण रूप से रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया और
- 0तीसरे भाग में जैविक तथा पशु-पालन सम्बन्धी प्रयोग।

इव बैफलर के प्रयोगों के परिणामों से अनुप्राणित होकर किसानों ने रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग तेज़ी से प्रारम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप फसलों के उत्पादन में वृद्धि होने लगी। उर्वरकों की लोकप्रियता इतनी बढ़ गयी कि अधिकांश कृषि-वैज्ञानिकों एवं किसानों ने जैविक खादों के उपयोग को उपेक्षित-सा कर दिया। कुछ वैज्ञानिकों ने प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि रासायनिक उर्वरकों के लगातार उपयोग से मृदा की उर्वरता धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है। फलस्वरूप फसलों की उत्पादकता भी कम होने लगती है।

इव बैलफर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द लिविंग स्वायल' में अपनी अवधारणाओं की पुष्टि निम्न वाक्यों में करने का प्रयास किया है—

"मेरा विषय भोजन है, जिसका सम्बन्ध प्रत्येक प्राणी मात्र से है। इस पर उनका स्वास्थ्य एवं जीवन निर्भर करता है। भोजन के लिए फ़सलों और फलों का उपयोग होता है, जो मृदा से उत्पन्न होते हैं। कोई व्यक्ति अगर इस प्रकार निर्मित त्रिकोण, मृदा-भोजन-

रीडर, शीलाधर मृदा विज्ञान अनुसंधान संस्थान, इलाहाबाद—211002

स्वास्थ्य के पारस्परिक सम्बन्धों को नहीं मानता तो निश्चित रूप से हम कह सकते हैं कि वह वैज्ञानिक अनुसन्धानों पर आधारित तथ्यों की अवहेलना करता है।"

अत इस व्याख्या से स्पष्ट होता है कि मृदा का महत्व प्राणीमात्र के लिए है। मृदा उसके जीवन के लिए अन्न, फल आदि जैसे पदार्थ उत्पन्न करती है। इस प्रकार मनुष्य का पुनीत कर्तव्य बनता है कि वह मृदा की हर तरह से सुरक्षा करे।

लेडी बैलफर ने जैविक पदार्थों के उपयोग को महत्व देते हुए अपने 'हाग्ले प्रायोगिक फार्म' पर कई दीर्घकालीन क्षेत्र-प्रयोगों को कार्यान्वित किया। इसी प्रकार का कार्य उन दिनों भारत में सर एलवर्ट हावर्ड कर रहे थे। हावर्ड ने कार्बनिक पदार्थों के द्वारा कम्पोस्ट बनाकर किसानों को प्रयोग के लिए उपलब्ध कराया और किसानों को प्रशिक्षित भी किया। डॉ॰ नीलरतन धर ने भी कार्बनिक पदार्थों के उपयोग से भारतीय मृदाओं के नाइट्रोजन की कमी की पूर्ति के लिए फॉस्फेट की उपस्थिति में नाइट्रोजन स्थिरीकरण के द्वारा स्थायी उर्वरता वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया। परिणामस्वरूप विश्व के अनेक देशों में वैज्ञानिकों ने इस प्रकार के शोधों में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया। इव वैफलर के शोधों का परिणाम विश्व-व्यापी रहा।

लेडी बैलफर ने सन् 1943 ई॰ में स्काट विलियम्सन तथा इन्स पीयर्स के सहयोग से 'स्वायल एसोसियेशन' नामक संस्था की स्थापना की जिसका उद्देश्य था जैविक तथा कार्बनिक पदार्थों के प्रयोग से मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता की वृद्धि के लिए वैज्ञानिक अनुसंधानों को कार्यान्वित करना तथा किसानों तक उन तथ्यों को पहुँचाना। इस संस्था द्वारा 'साइंस, सिंथेसिस एण्ड सैनिटी' 'ए स्टडी ऑव द लिविंग स्ट्रक्चर ऑव द सोसायटी,' 'द लिविंग स्वायल' जैसे अनेक महत्वपूर्ण प्रकाशन किए गये। कृषि क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिक, कार्यकर्ताओं एवं किसानों ने इन प्रकाशनों का भरपूर लाभ उठाया।

मनुष्य तथा प्रकृति के सह-सम्बन्धों को वैज्ञानिक विश्लेषणों द्वारा प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण योगदान इस संस्था की सार्थक उपलब्धि कही जा सकती है। परम्परागत कृषि के द्वारा प्रकृति के सन्तुलन में यदि मनुष्य क्षणिक लाभ के लिए किसी प्रकार की गड़बड़ी उत्पन्न करता है तो कालान्तर में किसी समस्या का पैदा होना अवश्यम्भावी है। उदाहरण के लिए यह देखा गया है कि रासायनिक उर्वरकों का धुँआधार प्रयोग, कीटनाशी रसायनों का छिड़काव आदि के दीर्घकालीन प्रभाव मृदा और उसके सूक्ष्मजीवों पर, फसलों पर तथा अन्ततोगत्वा मनुष्यों एवं अन्य प्राणियों पर अपना कुप्रभाव छोड़ जाते हैं। डी डी टी का प्रयोग कुछ वर्षों से स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होने के कारण जिस प्रकार समाप्त करना पड़ा उसी प्रकार अम्लीय मृदाओं में अमोनियम सल्फेट जैसे उर्वरकों का प्रयोग, अम्लजनक होने के कारण, बन्द करना पड़ा। कुछ विषाक्त पदार्थों से युक्त, उर्वरकों का प्रयोग स्थगित करना पड़ा जैसे बाइयूरेट, फ्लोराइड आदि।

बैफलर में एक बड़ा गुण यह था कि वह अन्य वैज्ञानिकों के अनुसंधानों की कद्र करती थीं। भारतीय कृषि वैज्ञानिक प्रोफ़ेसर धर के अनुसंधानों की ओर उनका ध्यान गया। लेडी इव बैफलर ने अपने 'न्यू वेल्स फार्म' पर वर्ष 1957-58 में डॉ॰ धर के प्रयोग को क्षेत्र-परीक्षण के लिए संचालित किया। उन्होंने लगभग साढ़े पाँच एकड़ (5.42 एकड़) के भूभाग पर जौ उगाकर जैविक पदार्थ एवं बेसिक स्लैग के प्रभाव का अध्ययन किया और तुलना के लिए एक प्लाट में अमोनियम सल्फेट डाला। जैविक पदार्थ तथा बेसिक स्लैग मिलाये गये प्लाटों में फसल की उपज अमोनियम सल्फेट से अधिक पाई गयी। मृदा में उपलब्ध नाइट्रोजन की वृद्धि भी जैविक पदार्थ वाले प्लाटों में प्रेक्षित की गई। डॉ॰ धर के प्रयोगों के सफल परीक्षण के परिणामस्वरूप डॉ॰ धर के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए लेडी इव बैफलर ने डॉ॰ धर को अपनी संस्था 'स्वायल एसोसियेशन' का उपाध्यक्ष मनोनीत किया। डॉ॰ धर इस पद पर अनेक वर्षों तक रहे।

यहाँ के प्रयोगिक फार्म पर मृदा के भौतिक गुणों पर आधारित कई क्षेत्र प्रयोगों को कार्यान्वित किया गया। जल-धारण-क्षमता, मृदा-संरचना, सरन्ध्रता आदि महत्वपूर्ण विषयों पर विशद अध्ययन करके किसानों को इस प्रकार के ज्ञान से अवगत कराया गया। किसानों के लिए समय-समय पर अल्पकालीन प्रशिक्षण देकर उन्हें जैविक पदार्थों से प्राप्य लाभों के विषय में शिक्षित करना इस संस्था का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

'स्वायल एसोसियेशन' द्वारा सन् 1952 में एक त्रैमासिक पत्रिका 'मदर अर्थ' का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया गया परन्तु बाद में इस पत्रिका का नाम बदलकर 'द लिविंग अर्थ' रख दिया गया। इस पत्रिका का उद्देश्य विश्व में 'जैविक क्रांति' से सम्बन्धित लेखों को प्रकाशित करके जनसामान्य में उसके महत्व के प्रति जागरूकता पैदा करना है। लेडी इव बैफलर इस पत्रिका के मुख्य सम्पादक के कठिन दायित्व का निर्वाह एक लम्बे अरसे तक करती रहीं। इस पत्रिका की लोकप्रियता का सहज अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि आज इस पत्रिका के, विश्व के 42 राष्ट्रों में, 3000 से अधिक स्थाई सदस्य हैं।

प्रारम्भिक वर्षों में 'स्वायल एसोसियेशन' के कार्यक्रमों को संपादित करने में लेडी बैफलर ने विकट आर्थिक समस्याओं का सामना किया, जो उनके संघर्षमय एवं साहसपूर्ण जीवन का परिचायक है। शोधकार्य के लिए क्षेत्र-परीक्षणों को कार्यान्वित करने में विशेष रूप से आर्थिक व्यवस्था का अतिरिक्त प्रावधान करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में लेडी बैफलर ने प्रयास करके कुछ संस्थाओं के सहयोग एवं अनुदान के द्वारा क्षेत्र-परीक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों को सम्पन्न करने में सतत प्रयत्नशील रहीं। वे 'स्वायल एसोसियेशन' की प्रथम अध्यक्ष रहीं। **डेविड को** इस संस्था के प्रथम निदेशक थे। पत्रिका और पुस्तकों के सम्पादन कार्य के लिए **डॉ० नाइजेल उइले** का योगदान सराहनीय है। लेडी बैफलर 'हाग्ले प्रायोगिक फार्म' के प्रबन्धक के पद पर भी एक लम्बे अरसे तक कार्यरत रहीं।

लेडी इव बैफलर को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त विशिष्ट सम्मान 'ओ० बी० ई० एवार्ड' भी प्राप्त हुआ। इनके कार्यों के आधार पर जैविक-कृषि अपनाने वाले किसानों को अतिरिक्त अनुदान देने की घोषणा भी सरकार ने की। 'स्वायल एसोसियेशन' ने 'जैविक कृषि अभियान' को सन् 2000 ई० तक सम्पूर्ण ब्रिटिश राज्य में कुल कृषि क्षेत्र के पाँचवें भू-भाग तक विस्तार देने की योजना बनाई है। जैविक कृषि जो परम्परागत कृषि की आधुनिक प्रणाली के रूप में यदि आज वैज्ञानिक अनुसंधानों के समन्वय के साथ विश्व में प्रचलित हो रही है तो इसके पीछे निसंदेह लेडी इव बैफलर जैसे कर्मठ व्यक्तियों के सतत् प्रयासों के हाथ हैं।

इसी वर्ष इस जुझारू महिला वैज्ञानिक का निधन हो गया। लेडी इव बैफलर का पार्थिव शरीर नहीं रहा पर अपने अनुसंधानों में वे सदा जीवित रहेंगी। विश्व की भुखमरी की समस्या के निदान के लिए किए गए उनके वैज्ञानिक कार्य आने वाली पीढ़ियों के वैज्ञानिकों सदा अनुप्राणित करते रहेंगे। □□

भुसावली केला

दर्शनानन्द

केला अत्यंत पौष्टिक और उपयोगी फल है। इसे बच्चों से लेकर वृद्धों तक सभी पसंद करते हैं। खाते समय केले का मधुर स्वाद और सुवास चित्त को प्रसन्न कर देता है। इसका पका फल बहुत पाचक होता है। ऐसा इसमें उपलब्ध शर्करा की प्रचुरता तथा मण्ड (स्टार्च) की न्यूनता के कारण होता है। कच्चे (हरे) केले के गूदे में शर्करा की उपलब्धता केवल नाम मात्र अर्थात् 1 से 2 प्रतिशत तथा मण्ड की अधिक (लगभग 20 प्रतिशत) होती है। इसी कारण कच्चा केला कठिनाई के साथ पचता है।

उपनिदेशक उद्यान (अ० प्रा०) इलाहाबाद मण्डल, सी-67, गुरु तेगबहादुर नगर (करेली हाउसिंग स्कीम), इलाहाबाद—211016 (उ० प्र०)

पकने के बीच गूदे में मण्ड की मात्रा लगभग समाप्त हो जाती है, जो घटकर या 2 प्रतिशत तक रह जाती है। गूदे में मण्ड की मात्रा घटने के साथ-साथ शर्करा की मात्रा बढ़कर 20 प्रतिशत तक पहुँच जाती है। इसी कारण पके केले का परिपाचन बड़ी सुगमतापूर्वक होता है।

पके केले में शर्करा प्रहासन (रीड्यूसिंग शुगर अर्थात् ग्लूकोज व फ्रक्टोज) की मात्रा शर्करा अप्रहासन (नॉन रीड्यूसिग शुगर अर्थात् शुक्रोज) से अधिक रहती है, जो अधिक उपयोगी तथा स्फूर्तिदायक होती है। आँतों के रोगियों के लिये पुष्टई के रूप में प्रायः केले का प्रयोग किया जाता है। बच्चों के उदर-गुहीय (Coeliac) रोगों में, जब कि कार्बोहाइड्रेट का प्रयोग असहनीय होता है, केला आसानी के साथ हज़म हो जाता है। सब्ज़ी वाली किस्मों (**Plantain**) की फलियों में पकने पर भी लगभग 6 प्रतिशत मण्ड रह जाता है।

पका कर खाने वाले केले (Banana) के गूदे में जल 70 प्रतिशत, रीड्यूसिग शुगर 4 से 11 प्रतिशत, नॉन रीड्यूसिग शुगर 6 से 16 प्रतिशत, मण्ड 3 से 7 प्रतिशत, कुल कार्बोहाइड्रेट 36.4 प्रतिशत, खटास 4.5 प्रतिशत, प्रोटीन 1.3 प्रतिशत, वसा 0.2 प्रतिशत, राख 0 7 प्रतिशत और पेक्टिन 0.7 प्रतिशत उपलब्ध होती है। पके केले के गूदे का टी० एस० एस० (कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) 18.16 प्रतिशत होता है।

केले के गूदे में उपर्युक्त के अलावा कैल्शियम 0.1 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.05 प्रतिशत, लोहा 0.4 मिली ग्राम प्रति 100 ग्राम गूदा, विटामिन-ए (केरोटीन) 2.4 पी० पी० एम० (2.4 भाग प्रति 10 लाख भार), विटामिन बी-1 (थायमिन) 0.5, विटामिन बी-2 (राइबोफ्लैविन) 0.5, विटामिन-सी (ऐस्कॉर्बिक एसिड) 120 तथा नियासिन (निकोटिनिक एसिड) 7 0 पी० पी० एम० उपलब्ध होते हैं। पके केले के प्रति 100 ग्राम ताज़े गूदे में 153 कैलॉरी ऊष्मा की शक्ति भी उपलब्ध होती है। अतः केले का फल क्षुधापूर्ति के लिये भी बड़ा उपयोगी होता है। इसे भोजन के रूप में बड़ी आसानी के साथ प्रयोग कर सकते हैं। दिन भर की पूर्ण ऊष्मा शक्ति प्राप्त करने हेतु कार्य करने वाले एक पुरुष तथा एक स्त्री के लिये प्रतिदिन क्रमशः 1.96 किग्रा० एवं 1.63 किग्रा० केला खाने की आवश्यकता होती है। अगर इसके साथ कुछ दूध पी लिया जाय तो यह पूर्ण भोजन का काम करता है।

चीनी चम्पा, पूवन, मालभोग वगैरह केले की बहुत सी किस्मे हैं, जो पका कर खाई जाती हैं। इनमें से एक किस्म भुसावली केला भी है, जो भुसावल में पैदा होता है। इसी को बसरइ ड्वार्फ (**Basral dwaf**) भी कहते हैं। इसकी फलियों का छिलका हरा-पीला होता है और फलियाँ लम्बी, मोटी और कुछ घुमावदार होती हैं। इसका गूदा मीठा, सुवासयुक्त और बहुत ही स्वादिष्ट होता है। बाज़ार में प्रायः यही केला उपलब्ध होता रहता है। कुछ लोग इसे हरी छाल का केला कह देते हैं परन्तु वास्तव में हरी छाल एक अलग ही किस्म है जिसका छिलका पकने पर भी हरा होता है।

बसरइ ड्वार्फ केले की एक बौनी किस्म है। इसके पौधे 2 मीटर की ऊँचाई तक वृद्धि करते हैं और पत्ते क्षैतिज दशा में फैले हुए चौड़े और कम लम्बाई के होते हैं। इसकी धार या घौद में 150 से 200 फलियाँ निकलती हैं।

केले की बागवानी के लिए गर्म, आर्द्र और अधिक वर्षा युक्त जलवायु सर्वोत्तम होता है। पाला, लू और ठंडी हवा से पौधों को बचाना बहुत आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त उत्तम जलोत्सारणा वाली उपजाऊ और भुरभुरी दोमट मिट्टी, जो जैविक पदार्थों से भरपूर हो, अधिक उपयुक्त होती है। भारत वर्ष के उत्तरी मैदानी क्षेत्रों के बस्ती, गोरखपुर, गोण्डा, बहराइच, सीतापुर आदि जैसे तराई वाले भागों के अतिरिक्त कानपुर, फतेहपुर और इलाहाबाद जैसे सूखे वातावरण वाले क्षेत्रों में भी भुसावली केले की बागवानी बड़े पैमाने पर की जा रही है। फतेहपुर में जमरांवां, ग्राम मीतनपुर व बड़ा गाँव और इलाहाबाद

में सुलेमसराय बसरइ ड्वार्फ की पैदावार के लिए प्रमुख क्षेत्र हैं।

केले का प्रसारण बगल से निकलने वाली तलवार पुत्ती द्वारा किया जाता है। इसकी पत्ती तलवार की भाँति लम्बी, नुकीली और सकरी होती है। तलवार पुत्ती का तना नीचे की ओर मोटा और भारी तथा ऊपर की ओर पतला होता है। मातृ पौधों के बगल से सम्भाल कर खोद कर अलग कर लेना चाहिए। आम तौर से रोपण के लिए 70 से 90 सेमी० ऊँचाई की पुत्तियाँ उपयुक्त होती हैं। जो पुत्ती चौड़ी पत्ती वाली और समान मोटाई की पतले और कमजोर तने वाली हो उसका रोपण के लिए चयन नहीं करना चाहिए। इस किस्म की पुत्तियाँ वाटर सकर (जल पुत्ती) कहलाती हैं।

पुत्तियों का रोपण जून-जुलाई से करना चाहिए। इसके पहले अप्रैल-मई में 1 8 × 1.8 मीटर की दूरी पर 60 × 60 × 60 सेमी० के गड्ढे खोदना चाहिए। एक मास बाद प्रति गड्ढा 20 किग्रा० गोबर की सड़ी खाद और ऊपर की मिट्टी मिलाकर भर देना चाहिए। इसी के साथ प्रति गड्ढा 90 ग्राम फॉस्फेट ऊपरी भाग में मिला देना चाहिए। रोपण के पूर्व हर पुत्ती की चोटी का 1/3 भाग तेज चाकू से काट देना चाहिए और भूमिगत तने के कटे भाग को सेरेसान या एगलाल के 0.25 प्रतिशत घोल में 1/2 से 1 मिनट तक डुबाना चाहिए। उपर्युक्त दूरी पर एक हेक्टेयर में 3025 पौधे लगाये जा सकते हैं।

फॉस्फेट की उपरोक्त मात्रा (90 ग्राम) के अतिरिक्त पौधे के जीवन काल में प्रति पौधा 200 ग्राम नाइट्रोजन और 170 ग्राम पोटाश की भी आवश्यकता होती है। केले का जीवन काल लगभग एक वर्ष का होता है। पौधा लगाने के एक मास पर नाइट्रोजन का 1/4 भाग और पोटाश का 1/2 भाग प्रयोग करना चाहिए। रोपड़ के तीन और पांच महीने पर तथा पुनः छठे महीने में पोटाश का शेष आधा भाग भी प्रयोग कर देना चाहिए। उर्वरकों का प्रयोग तने के चारों ओर 30 सेमी० स्थान छोड़कर पौधे के पूरे फैलाव तक 5 से 10 सेमी की गहराई में करना चाहिए। सभी उर्वरकों का प्रयोग रोपण के छः मास के भीतर कर डालना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु में एक सप्ताह पर और शरद ऋतु में 2 सप्ताह पर सिंचाई करनी चाहिए। शुरू में समय-समय पर निराई व हल्की गुड़ाई भी करनी चाहिए।

रोपाई करने से लगभग एक वर्ष में केले फूल फल देने लगते हैं। फूलने के तीन सप्ताह में फलियाँ 3-4 महीने में विकसित हो जाती हैं। पूर्ण विकसित होने पर फलियों के कोने गोल हो जाते हैं और छिलके के हरे रंग में कुछ हल्कापन आ जाता है। ऐसी अवस्था आ जाने पर धार को काट लेना चाहिए। धार काटने के 20 दिन बाद केले का एक तिहाई तना कूट स्तम्भ) काट देना चाहिए। पौधे के बगल से जो फालतू पुत्तियाँ निकलती दिखाई दें उन्हें हटा देना चाहिए। धार लग जाने पर पौधे में नीचे की ओर लटकते हुए नरफूल को काट देना चाहिए। अगर केले की धार के भार से पौधा झुक रहा हो तो उसे लकड़ी का सहारा देना चाहिए।

समय-समय पर बनाना बीटल, बंची टॉप, तना छेदक, भुनगा, एन्थ्रैक्नोज व फिंगर टिप रॉट जैसे रोगों व कीटों से फसल का उपचार करते रहना चाहिए। बसरइ ड्वार्फ की एक धार में 150 से 200 तक फलियाँ लगती हैं। कैम्पियरगंज, कोठिया, बलिया, हजारा व मॉन्थन जैसी सब्जी पकाने वाली किस्मों में 200 से 250 फलियाँ आसानी के साथ लग जाती हैं। एक पौधे से एक धार निकलती है अतः एक हेक्टेयर केले के बाग से 3025 धारें निकलती हैं। बसरइ ड्वार्फ की एक धार से औसतन 100 फलियों की दर से एक हेक्टेयर से कम से कम तीन लाख फलियाँ प्राप्त कर अच्छी आमदनी की जा सकती है।

□□

सौर ऊर्जा पादप रोग-निदान में सहायक

डॉ० अरुण आर्य्य

आप माने या न माने बहुत प्राचीनकाल में ही प्रतिदिन काफ़ी बड़ी मात्रा में बेकार जा रही सौर ऊर्जा के उपयोग का विचार वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में आ चुका था। प्रमाण बताते है कि भारतवर्ष में प्राचीन काल में किये जाने वाले यज्ञों के लिए अग्नि, अवतल दर्पणों के द्वारा, सूर्य रश्मियों को एक स्थान पर केन्द्रित करके उत्पन्न की जाती थी।

सन् 214 ईसा पूर्व में यूनान के प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्कीमिडीज् ने कई बार पालिश किए हुये 'दर्पणों' की सहायता से संकेन्द्रित सूर्य-रश्मियों को साइराकूज पर आक्रमण कर देने वाले रोमन जहाजी बेड़े पर परावर्तित करके उसे 200 फुट की दूरी से जलाकर राख कर दिया था। इस दाहक कांच को आवश्यकतानुसार प्रत्येक दिशा में घुमाया जा सकता था। सौर ऊर्जा का उपयोग युद्धास्त्र के रूप में किये जाने का इतिहास में यह शायद सर्वप्रथम अवसर था।

सुर्य, ऊर्जा का एक असीम और महत्वपूर्ण स्रोत है। व्यवहारिक स्तर पर सौर किरणों को सीधे विद्युत् में परिवर्तन के प्रयास पिछले तीन दशकों से हो रहे हैं। प्रकाश वोल्टीय सेल, सौर ऊर्जा को सीधे विद्युत् में परिवर्तित करता है। अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यों में सौर सेल का व्यापक उपयोग हो रहा है। पश्चिमी देशों में इसकी लागत को कम कर इसे आर्थिक दृष्टि से अन्य ऊर्जा स्रोतों की तुलना में सस्ता बनाने के लिये अनुसंधान कार्य युद्धस्तर पर हो रहा है।

सौर ऊर्जा का एक अन्य महत्वपूर्ण उपयोग किया है इज़राइल के वैज्ञानिक डॉ० जे० काटन (1981) ने। मृदाजन्य बीमारियों द्वारा प्रतिवर्ष बहुत नुकसान होता है। कृषि की फ़सलों को जब लगातार एक ही खेत में बोया जाता है तो सूक्ष्मजीवाणुओं एवं कवकों की संख्या में कई गुना वृद्धि हो जाती है, जिससे बचने के लिए या तो फ़सल को बदलना होता हैं या फिर खेत को।

खेतों को प्लास्टिक शीटों से ढँक कर, सौर ऊर्जा द्वारा माल्चिग की विधि से मिट्टी के तापक्रम को वायुमण्डल से 6-9° से० (सेन्टीग्रेड) तक बढ़ा दिया जाता है। इसके साथ साथ खेतों में पानी दिया जाता है। वाष्पन के द्वारा छोटी-छोटी पानी की बूँदें प्लास्टिक शीट की निचली सतह पर जमा हो जाती हैं और वे सूर्य किरणों को वापस नहीं जाने देतीं। बूंदों द्वारा अवशोषित की गई यह ऊर्जा मिट्टी का तापमान 5 से 10 सेमी० गहराई तक कई डिग्री सेलिसयस बढ़ा देती है। परिणामस्वरूप तमाम रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं का अंत हो जाता है और मृदा में रहने वाले सभी जीवाणुओं की संख्या में बहुत कमी होती है।

एम० एस० वि० वि०, बडोदरा में जब इस प्रकार के प्रयोग किये गये तो यह पाया गया कि प्लास्टिक की पतली चादरों (0.03 मि० मी०) से मिट्टी के भीतर (5 सेमी० नीचे) का तापमान 6° से० बढ़ गया। अप्रैल-मई (1989) के महीनों में 45 दिनों तक यह प्रयोग किया गया जिससे न केवल मिट्टी में रहने वाले जीवाणुओं व सूक्ष्म कवकों की संख्या में कमी हुयी बल्कि अरहर (*Cajanus indicus*) की फ़सल में विल्ट जैसी बीमारियों को उत्पन्न करने वाले **फ्यूजेरियम उडम** (***Fusarium udum***) नामक कवक का अन्त हुआ।

पारदर्शी पोलीइथलीन (पोलीथीन) अन्य प्रकार की चद्दरों से अधिक उपयोगी पायी गई है। जब विभिन्न रंगों की पोलिथीन को प्रयोग में लाया गया तो लाल रंग कुछ ही दिनों में उड़ गया। काला पोलीथीन स्वयं तो काफी गरम हो गया परन्तु मिट्टी का तापक्रम नहीं

वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, एम० एस० विश्वविद्यालय, बड़ौदा—590005

बढ़ा। नीले एवं हरे रंग में नीला रंग अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ।

मिट्टी को पहले भी भाप के द्वारा 60° से 100° से० तक गर्म करके जीवाणुओं की संख्या एवं उनकी किस्मों में कमी पायी गई, परन्तु वर्तमान विधि अधिक उपयोगी है, क्योंकि इससे "जैविक वैक्यूम" नहीं होता जिसके कारण जब तापमान फिर वापस आता है तो थोड़े ही समय में सूक्ष्मजीवों की संख्या में बहुत वृद्धि नहीं होती।

इस विधि से आलू एवं कपास की फ़सलों में **वर्टीसीलियम डहेलिआई** (*Verticillium dahelii*) के कारण होने वाली व्याधियों में 20 से 60 प्रतिशत तक कमी आई। इसी प्रकार अन्य फसलों में भी सूर्य द्वारा मल्चिग के कारण संतोषजनक परिणाम पाये गये हैं। इस विधि के द्वारा खरपतवारों की संख्या में भी भारी कमी हुयी है।

इस विधि की सफलता तभी होगी जब हमें कम दाम पर अधिक समय तक ठीक रहने वाली पोलिथीन उपलब्ध होगी। हमारे यहाँ जबकि सौर ऊर्जा की बहुतायत है, सरकार द्वारा इस दिशा में प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

□□

ब्रह्माण्ड का स्वरूप क्या है ?

श्याम लाल धीमान

प्राचीन काल में मनुष्य को ब्रह्माण्ड के विषय में बहुत कम ज्ञान था। स्वयं पृथ्वी के सम्बन्ध में भी उसे भ्रान्ति थी कि यह चपटी है और सूर्य इसकी परिक्रमा करता है। कालान्तर में पृथ्वी के गोलाकार होने का पता चला। 1543 में **कॉपरनिकस** की मृत्यु के समय उनकी पुस्तक "ऑन द रिवोल्यूशन ऑव द सेलेसियल स्फीयर" प्रकाश में आई, जिसमें पृथ्वी और अन्य ग्रहों के सूर्य के चारों ओर परिक्रमण करने की अवधारणा प्रतिपादित की गयी थी। समय के साथ-साथ ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में भी हमें अनेक तथ्यों का पता लगता रहा है। ब्रह्माण्ड सम्बन्धी अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये। इनमें 'महाविस्फोट सिद्धान्त' (बिग बैंग थ्योरी) प्रमुख है।

'महाविस्फोट सिद्धान्त' के अनुसार प्रारम्भ में ब्रह्माण्ड का सारा पदार्थ एक आदिम विशाल गोले में समाहित था। चूंकि पदार्थ की उपस्थित में ही गुरुत्वाकर्षण होता है और पदार्थ आधिक्य के कारण इसका मान भी अकल्पनीय रहा होगा, अतः आदिम विशाल गोले में पदार्थ अधिक घनीभूत रहा होगा। यह गुणों में 'ब्लैक होल की' तरह रहा होगा। सिद्धान्त के अनुसार माना जाता है कि 15-20 अरब वर्ष पूर्व पूर्व किसी कारणवश पदार्थ का यह गोला फट गया और इसका पदार्थ समय के साथ-साथ बिखरता गया। बिखरे पदार्थ के संघनन के फलस्वरूप ही ग्रहों एवं तारों का निर्माण हुआ। गुरुत्वाकर्षण के कारण तारा समूह और नीहारिकायें भी अस्तित्व में आयीं।

एक अन्य सिद्धान्त जिसे स्थिर अवस्था सिद्धान्त (स्टीडी स्टेट थ्योरी) कहते हैं, के अनुसार इस ब्रह्माण्ड का न कोई आदि है और न अन्त। इसका स्वरूप सदैव एकसा ही रहता है। परन्तु प्रसार करते ब्रह्माण्ड का स्वरूप एक सम्मान तभी रह सकता है जब इसका घनत्व न बदले। घनत्व को स्थिर रखने के लिए सिद्धान्त में व्यवस्था दी गयी है कि ब्रह्माण्ड में पदार्थ उत्पन्न होता रहता है। यह पदार्थ और कहीं से नहीं बल्कि शून्य से उत्पन्न होता है। आज 'महाविस्फोट सिद्धान्त' ही अधिक मान्य है।

ब्रह्माण्ड प्रसार करता है—इस बात का पता आस्ट्रिया के गणितज्ञ एवं भौतिक विज्ञानी **क्रिश्चियन डाप्लर** द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त से लगाया जाता है। उनके नाम पर ही इसको 'डाप्लर सिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि कोई तारा हमसे दूर जा रहा है तो उसका वर्णक्रम वेग के

प्रवक्ता भौतिकी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोट द्वार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तर प्रदेश-246149

अनुसार लाल रंग की ओर विस्थापित हो जाता है। वर्णक्रम के इस विस्थापन को 'लाल-विस्थापन' कहते हैं। यह विस्थापन वेग के अधिक होने पर अधिक और कम होने पर कम होता है। प्रेक्षणों से सुदूरस्थ तारों के वर्णक्रम में 'लाल-विस्थापन' देखा गया है। अतः स्पष्ट है कि सुदूर स्थित तारे हमसे दूर हटते जा रहे हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हमारा ब्रह्माण्ड प्रसार करता जा रहा है। परन्तु हम यहाँ प्रसार करने का अर्थ यह नहीं लगा सकते कि सूर्य हमसे दूर भागता जा रहा है। पृथ्वी अन्य ग्रहों की तरह गुरुत्वाकर्षण बल के कारण सूर्य से सम्बद्ध है। इसी प्रकार, हमारी आकाशगंगा के अनेकानेक तारे भी हमसे दूर नहीं जा सकते। वे भी आकाशगंगा के केन्द्र से सम्बद्ध हैं। तब फिर हमसे कौन तारे दूर हटते जा रहे हैं? वे तारे जो दूसरी नीहारिकाओं में उपस्थित हैं। ज्ञातव्य है कि ब्रह्माण्ड में लगभग दो खरब नीहारिकायें हैं। वास्तव में ये नीहारिकायें ही परस्पर दूर हटती जा रही हैं। जिस नीहारिका में हम रहते हैं उसे ही आकाशगंगा कहा जाता है।

नीहारिकाओं का वेग ज्ञात हो जाने पर हम 'हब्बल के नियम' से नीहारिकाओं की दूरी को भी ज्ञात कर सकते हैं। इस नियम के अनुसार, किसी नीहारिका में स्थित तारे का वेग, हब्बल नियतांक और तारे की दूरी के गुणनफल से प्राप्त होता है। इस प्रकार, इससे तारे की दूरी की गणना की जा सकती है। हब्बल के नियतांक का मान 55 – 75 किलोमीटर प्रति सेकण्ड प्रति मेगापारसेक होता है। एक मेगापारसेक 3×10^{19} किलोमीटर के तुल्य होता है। ब्रह्माण्ड में ऐसी नीहारिकाओं का पता लगाया जा चुका, है जो हमसे अरबों प्रकाश वर्ष दूर हैं। नियमानुसार अधिक दूरी पर स्थित नीहारिकाओं का वेग भी अधिक होता है। इन नीहारिकाओं का वेग प्रकाश वेग के समतुल्य प्राप्त होता है। उक्त नियम का पता अमेरिकन वैज्ञानिक **एडविन पी० हब्बल** ने 1929 में लगाया था।

अब आप प्रश्न कर सकते हैं कि प्रसार करता हुआ ब्रह्माण्ड कहाँ समाता जा रहा है? क्या इसके बाहर भी व्योम (स्पेस) है जहाँ यह घुसता जा रहा है? यदि ब्रह्माण्ड के बाहर व्योम है तो फिर इस व्योम के परे क्या है? चूँकि किसी भी परिघटना को समझने के लिए एक प्रतिरूप (मॉडल) की आवश्यकता होती है अतः हम यहाँ ब्रह्माण्ड के प्रतिरूप की परिकल्पना करेंगे। परन्तु परिकल्पना विद्यमान सिद्धान्तों के अन्तर्गत ही होनी चाहिये। सौभाग्य से हमारे पास ऐसा सिद्धान्त है जो ब्रह्माण्ड सम्बन्धी परिघटनाओं की व्याख्या करने में सक्षम है। यह है **आइंसटीन** का 'अपेक्षिकता का व्यापक सिद्धान्त।' यह सिद्धान्त इतना व्यापक है कि एक ओर तो यह **न्यूटन** की कण भौतिकी से जुड़ा है और दूसरी ओर यह स्थूल भौतिकी से सम्बन्धित घटनाओं की भी व्याख्या करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार हमारे ब्रह्माण्ड के प्रतिरूप में निम्नलिखित गुण होने चाहिये—

(1) ब्रह्माण्ड में स्थित प्रत्येक बिन्दु समान रूप से महत्वपूर्ण होना चाहिये। अर्थात इसमें कहीं पर भी स्थित प्रेक्षक एक ही प्रकार के परिणाम प्राप्त करेगा।

(2) यह प्रसारी होना चाहिये, क्योंकि यह प्रेक्षणों की माँग है।

(3) इसका कोई छोर नहीं होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होगा तो ब्रह्माण्ड में स्थित बिन्दु समान रूप से महत्वपूर्ण नहीं होंगे।

(4) वह सान्त अर्थात् अनन्त नहीं होना चाहिये, क्योंकि यह प्रेक्षणों की माँग है।

(5) उसे संवृत अर्थात् द्विविमीय सतह से बन्द होना चाहिये, क्योंकि उसके खुला होने पर भी ब्रह्माण्ड के स्वरूप में समरूपता का दोष रहेगा। संवृत ब्रह्माण्ड सीमाहीन भी होता है और हम उसके अनुपस्थित किनारे पर कभी भी नहीं पहुँच सकते।

उपरोक्त शर्तों के अनुसार हमारे ब्रह्माण्ड का स्वरूप बहुत कुछ प्रसार करते गोलाकार गुब्बारे की तरह होगा। गोलाकार गुब्बारा सान्त होता है। इसकी द्विविमीय सतह पर स्थित प्रत्येक बिन्दु समान रूप से

उपयोगी है अर्थात् सतह पर स्थित किसी भी बिन्दु की कोई विशिष्ट स्थिति नहीं होती है। न ही इसका कोई कोना ही होता है। यदि हम ब्रह्माण्ड रूपी गुब्बारे पर चींटियो के झुंड के झुंड बिखरे हुए मान लें तो प्रसार की अवस्था में ये नीहारिकाओं के सदृश चींटियों के झुंड परस्पर दूर हटते जायेंगे। इस दृष्टान्त से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि यदि कोई प्रेक्षक ब्रह्माण्ड के किसी बिन्दु से एक ही दिशा में चलता जाये तो वह पुनः अपने ही मूल स्थान पर लौट आता है। इसी प्रकार, हम यह भी कह सकते हैं कि यदि कोई प्रेक्षक सुदूर ब्रह्माण्ड में देख सकने में समर्थ है तो उसे अपना सिर ही दिखाई पड़ेगा।

अभी भी हमें अपने प्रश्नों के उत्तर नहीं मिल पाये हैं। इसके लिए हम आइंसटीन के व्यापक सिद्धान्त में निहित **दिक्-काल की अवधारणा** पर लौट चलते हैं। क्या यह अवधारणा ब्रह्माण्ड पर लागू हो सकती है? परन्तु हमें अपने प्रश्न को और स्पष्ट करना होगा। क्योंकि दिक्-काल दो प्रकार से घटित हो सकता है—ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर। इसको हम एक प्रश्न के आधार पर समझ सकते हैं—क्या समय के रुकने अथवा समाप्त होने पर ब्रह्माण्ड समाप्त हो जायेगा? वास्तव में समय की अवधारणा ब्रह्माण्ड में घटित होने वाली घटनाओं के लिए ही है। न तो यह समूचे ब्रह्माण्ड पर ही लागू हो सकती है और न उसके बाहर। अतः हम कह सकते हैं कि समय का अस्तित्व ब्रह्माण्ड में है न कि समय का अस्तित्व समय में।

चूंकि आईंसटीन के उक्त सिद्धान्त से दिक्-काल में अन्तर्सम्बन्ध होता है अतः दिक् अर्थात् व्योम का अस्तित्व भी काल अर्थात् समय की तरह ब्रह्माण्ड के के अन्दर है, न कि ब्रह्माण्ड का अस्तिव व्योम में। अतः कहा जा सकता है कि समय और व्योम ब्रह्माण्ड के अन्दर हैं, उसके बाहर नहीं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के परे कुछ भी नहीं है।

हमारे इस रहस्यमय ब्रह्माण्ड की अन्तिम परिणति क्या है? क्या यह इसी प्रकार सदैव प्रसार ही करता रहेगा? अथवा क्या भविष्य में यह प्रसार रुक जायेगा और गुरुत्वाकर्षण के कारण संकुचन आरम्भ हो जायेगा? वैज्ञानिकों के अनुसार इन प्रश्नों के उत्तर ब्रह्माण्ड में उपस्थित द्रव्यमान में निहित हैं। यदि उसके पदार्थ का यह द्रव्यमान एक निश्चित द्रव्यमान से अधिक है तो समयानुसार ब्रह्माण्ड की प्रसारगति कम होती जायेगी और तब एक ऐसा समय आयेगा कि प्रसार रुक जायेगा। इसके पश्चात् संकुचन प्रारम्भ होगा। संकुचन गति प्रारम्भ में कम होगी और फिर बढ़ती जायेगी। अन्त में सारा पदार्थ एक ही जगह संघनित हो जायेगा। तब फिर महाविस्फोट होगा और सारी प्रक्रियायें पुनः दोहराई जायेंगी। इस प्रकार यह दोलनी ब्रह्माण्ड होगा।

परन्तु यदि ब्रह्माण्ड का कुल द्रव्यमान निश्चित द्रव्यमान से कम हुआ तो ब्रह्माण्ड का प्रसार अनन्त काल तक होता रहेगा। तब ये नीहारिकायें अलग-थलग हो जायेंगी। अभी भी वैज्ञानिक उक्त निश्चित द्रव्यमान का पता नहीं लगा पाये हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि पदार्थ की अपनी निश्चित आयु होती है। उनके अनन्तर यह नष्ट हो जाता है। यह अवधारणा 'प्रोटॉन-क्षय' नामक परिकल्पना पर आधारित है। प्रोटॉन की आयु 10^{30} वर्ष अथवा इससे अधिक आँकी गयी है। इस अवधारणा के अनुसार ब्रह्माण्ड नष्ट होकर प्रकाश में रूपांतरित हो जायेगा। 'प्रोटॉन-क्षय परिकल्पना' को सिद्ध करने के लिए वैज्ञानिक अपने प्रयोगों को जारी रखे हुए हैं। ☐☐

हम अकेले ही नहीं ब्रह्माण्ड में

विनीता शुक्ला

हमारी आकाशगंगा में 50 अरब तारे हैं तथा वैज्ञानिकों के अनुसार इन मौजूदा पचास अरब तारों में से प्रत्येक 100 वें तारे में जीवन मौजूद हो सकता है। शक्तिशाली वेधशालाओं, अंतरिक्ष की ओर दृष्टि गड़ाये कृत्रिम उपग्रहों, गहन अंतरिक्ष की खोज में निकले अंतरिक्षयानों से प्राप्त जानकारी के अनुसार

ए-6, यूनिवर्सिटी फ्लैट्स, चैथम लाइंस, इलाहाबाद—2

हमारी आकाशगंगा में कम से कम 150 ग्रह ऐसे हैं, जिन पर सिर्फ जीवन ही नहीं, उच्चकोटि की सभ्यता विद्यमान है। उनमें से कुछ की सभ्यतायें तो इतनी उन्नत हैं कि पृथ्वी का सारा विज्ञान बचकाना कहा जा सकता है तथा 21वीं सदी की ओर क़दम बढ़ाती इस सभ्यता को आदिवासी सभ्यता।

महाकवि कालिदास के विश्वप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में आकाश से आने वाली एक ऐसी रोशनी की चर्चा है, जो व्यक्ति को उठाकर अंतर्ध्यान हो जाती है। इसी नाटक में एक ऐसे आकाशयान का उल्लेख है जिसमें **इन्द्र** का सारथि राजा को बैठाकर गायब हो जाता है। 'बाइबिल' की एक कथा के अनुसार; उत्तरी दिशा से एक बवंडर आया और साथ ही एक प्रकाशयुक्त विमान जिसमें चार मुख और चार पंख वाले चार मनुष्य जैसे ही सजीव प्राणी थे। **ईसा** से 218 वर्ष पूर्व के रोमन इतिहास में भी अंतरिक्ष से आने वाले यानों की चर्चा है। 'महाभारत' के युद्ध में **भीम पुत्र घटोत्कच** जिस यान से आया वह 12,000 घनफीट का था। उसमें आठ पहिये थे साथ ही वह दृश्य और अदृश्य होने की क्षमता रखता था। उसके आने से दिन में ही अंधकार छा गया और आकाश से पत्थरों की वर्षा होने लगी। कुछ इसी से मिलती-जुलती घटनाओं से चीन, यूनान, मिस्र, बेबीलोन के ग्रंथ भरे पड़े हैं। इन कथाओं की सत्यता को प्रमाणित करने के लिये कुछ स्थानों पर खुदाई भी की गई। पेरू में की गई खुदाई में 'नाजिका' नामक नगर के अत्यंत प्राचीन अवशेष प्राप्त हुये, जिसमें 50 मील लम्बी और 2 मील चौड़ी एक समतल भूमि भी है, जिसमें हवाई अड्डे के समान पट्टियाँ बनी हैं। ऑस्ट्रेलिया में सिडनी के पास एक प्राचीन गुफा में शिला पर खुदा हुआ एक अंतरिक्षयात्री का चित्र मिला है, जो अंतरिक्ष सूट पहने है और उसके सिर पर एरियल की सलाखें लगी हैं। मैक्सिको के एक अन्य खंडहर में भी विमान जैसी किसी वस्तु का चित्र मिला है, जिसमें एक अंतरिक्षयात्री बैठा है। **डॉ० पीटर कोलासियो** की प्रसिद्ध पुस्तक, 'नॉट ऑव दिस वर्ल्ड' में एक अमेरिकी पर्यटक के संस्मरण का उल्लेख इस प्रकार है, "वह एक मठ में कुछ दिन रुका था। एक दिन संयोगवश उसने अपेक्षाकृत गुप्त व सुनसान जगह पर कुछ शव रखे देखे जिनमें एक शव ऐसे व्यक्ति का था, जिसने अंतरिक्ष सूट पहन रखा था और उसके सिर के स्थान पर गेंद जैसा बड़ा गोला और आँखों की जगह केवल छेद थे। मसाले का लेप होने के कारण सभी शव सुरक्षित थे। हालाँकि इन तथ्यों को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता परन्तु फिर भी ये हमें कुछ सोचने को बाध्य अवश्य करते हैं।

पश्चिम जर्मनी के एक वैज्ञानिक **एरिकवॉन हैनिकैन** ने हाल में ही सिद्ध किया है कि 134 ईसवीं पूर्व तक पृथ्वी की कुछ जातियों का सुदूर अंतरिक्ष में रहने वाले समुन्नत सभ्य लोगों से संपर्क रहा है। संपूर्ण विश्व का सर्वेक्षण कर उन्होंने चार ऐसे स्थान भी निर्धारित किये जहाँ अंतरिक्षवासी उतरते थे। उनमें से एक तिब्बत, दूसरा कश्मीर, तीसरा अफ्रीका तथा चौथा दक्षिणी अमेरिका में स्थित थे।

अब तक 135 देशों में 65,000 से भी अधिक बार उड़नतश्तरियाँ देखी गई हैं। ये अंतरिक्षवासी आखिर बार-बार इस पृथ्वी पर क्या करने आते हैं? जाहिर है कि वे पृथ्वी के बारे में जानकारी एकत्र करने का प्रयास करते हैं, परन्तु उन्होंने कभी किसी से सम्पर्क बनाने का प्रयास नहीं किया, शायद डरते हों, या सम्पर्क बनाने का माध्यम तलाश कर रहे हों। जब कभी भी इन उड़नतश्तरियों का पीछा किया गया तो ये तीव्र गति से लुप्त हो गईं। जब अंतरिक्षयान अपोलो' चंद्रमा पर उतरा तो उसमें सवार अंतरिक्षयात्रियों ने उड़नतश्तरियों को अपने आस-पास मंडराते देखा था।

सन् 1940 में अमेरिका के पश्चिमी तट के निकट मोटरबोट में बैठे-बैठे समुद्र तट रक्षक **एच० ए० डहल** तथा **एफ० एल० क्रैसवेल** ने आकाश में 2000 फ़ुट की ऊँचाई पर गोल आकृति के छह अंतरिक्षयान देखे, जिनमें से तेज़ प्रकाश निकल रहा था। पाँच यान एक मुख्य यान के चारों ओर परिक्रमा कर रहे थे।

इसी तरह परिक्रमा करते हुये वे 500 फुट की दूरी पर रुक गये। डहल ने कैमरा निकालकर फोटो लेना चाहा परन्तु तभी बीच वाले यान में विस्फोट हुआ और वह फट गया। दोनों तट रक्षकों ने तो एक गुफा की शरण ले ली, परन्तु उनके साथ का कुत्ता मारा गया। थोड़ी देर बाद वे बाहर निकल कर आये। तट पर फटे यान के टुकड़े बिखरे पड़े थे, जो अत्यधिक चमकीले व गर्म थे। निरीक्षण दल ने कई टन वज़न के टुकड़े एकत्र किए और उनका विश्लेषण करने पर पाया कि उस यान का निर्माण सोलह विविध धातुओं के मिश्रण से बनी धातु से किया गया था, जिसमें से एक भी धातु पृथ्वी पर ज्ञात नहीं है। जाहिर है इन धातुओं का नाम नहीं बताया जा सका और अभी तक इन धातुओं का रासायनिक विश्लेषण सम्भव नहीं हुआ है और ये टुकड़े आज भी अमेरिका के यू० एफ० ओ० (अनआइडेंटीफाइड फ्लाइंग ऑब्जेक्ट) विभाग में रखे हुए हैं।

इसी तरह 24 अक्टूबर सन् 1978 को ऑस्ट्रेलिया के 20 वर्षीय **फ्रेडरिक वाकेच** ने उड़ान भरने के थोड़ी ही देर बाद रेडियो संदेशा भेजा कि विमान 137 मीटर की ऊँचाई पर है और पास ही एक उड़नतश्तरी है, जिससे हरा प्रकाश निकल रहा है। कुछ देर बाद फिर संदेश मिला कि वह विचित्र वस्तु यान के ठीक ऊपर है और इंजिन में खराबी आ रही है। इसके बाद रेडियों पर धातु के टकराने का तेज़ स्वर सुनाई पड़ा और विमान से संपर्क टूट गया। तुरंत ही मेलबोर्न हवाई अड्डे से कई जहाज़ फ्रेडरिक की खोज के लिये उड़े पर वह तो विमान सहित ही गायब हो गया था।

ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं, जब उड़नतश्तरी दिखाई दी, पर कोई खोज शुरू होने से पहले ही गायब हो गई और वैज्ञानिक काफी माथापच्ची करने के बाद भी इस रहस्य को नहीं समझ पाये हैं। परन्तु इस कथन की सत्यता में संदेह है। क्या वास्तव में अमेरिका, रूस, ब्रिटेन और फ्रांस जैसे देशों को इस बारे में कोई जानकारी नहीं है? कुछ विश्वस्त पश्चिमी सूत्रों के अनुसार यह चारों देश जानबूझकर सारी दुनिया को गुमराह कर रहे हैं। उदाहरणार्थ फ्रांस में एक ऐसी हवाई पट्टी है जहाँ पर आज तक कोई हवाई जहाज़ नहीं उतरा परन्तु फिर भी यह रात-दिन नीली रोशनी में नहाई रहती है, जैसे किसी चीज के उतरने का इंतजार कर रही हो। क्या वह चीज उड़न तश्तरी नहीं हो सकती? इस इलाके में कई बार आम नागरिकों द्वारा उड़नतश्तरियाँ देखी गई हैं।

इसी प्रकार कुछ गैरसरकारी रिपोर्टों के अनुसार 7 जुलाई सन् 1947 को अमेरिका के रोसवेल नामक शहर में (जो परमाणु नगर के नाम से भी जाना जाता था, क्योंकि यहाँ परमाणु बम संबंधी अनेक शोध-कार्य किये जाते थे अतः आम लोगों के लिए यह एक वर्जित क्षेत्र था) एक उड़नतश्तरी दुर्घटनाग्रस्त होकर गिर गई परन्तु तत्कालीन अमेरिकी सरकार की ओर से इस घटना पर पर्दा डालने का भरसक प्रयास किया गया। अपुष्ट सूत्रों के अनुसार दुर्घटनाग्रस्त उड़नतश्तरी के मलबे से चार जीवित अंतरिक्षयात्री भी बरामद हुये, जिनकी लम्बाई लगभग चार फुट और अंगुलियाँ झिल्लियों द्वारा आपस में जुड़ी थीं।

यह सब घटनायें क्या यह इंगित नहीं करतीं कि ब्रह्माण्ड में हम अकेले ही नहीं हैं? हो सकता है कि निकट भविष्य में हमारा अन्य ग्रहों की विकसित सभ्यताओं से संपर्क स्थापित हो जाये, क्योंकि पेरू देश के एक द्वीप में इकेनारा स्थान पर मिले कुछ पत्थरों पर अज्ञात लिपि में कुछ लिखा हुआ है और कुछ चित्र बने मिलें हैं, जिनमें एक उड़नतश्तरी आती दिखाई गई है, जिसका स्वागत पृथ्वीवासी हाथ उठा कर रहे हैं साथ ही किनारे पर बनी त्रिभुज आकृति यह स्पष्ट संकेत दे रही है कि अंतरिक्षवासी पिरामिडों के देश मिस्र में पहला कदम रखेंगे। एक अन्य पत्थर पर अंकित गणितीय लिपि को एक पादरी **डॉ० पेरियो एरिस** पढ़ने में सफल हो गये हैं, जिसने संपूर्ण विश्व के निवासियों के दिल की धड़कनें बढ़ा दी हैं। उनके अनुसार सन् 1990 में अंतरिक्षवासी पृथ्वी पर उतरेंगे। यह पत्थर दो लाख वर्ष पुराने तथा लिपि दस हज़ार

वर्ष पुरानी है। यह अद्भुत पत्थर पानी पर नाव की तरह तैरते हैं। ईस्टर द्वीप और फिलीपीन्स के मिडनाओं द्वीपों में भी कुछ इसी प्रकार के प्रमाण मिले हैं, जो साफ-साफ संकेत दे रहे हैं कि निकट भविष्य में अंतरिक्षवासी पृथ्वी पर आने वाले हैं।

तो अब आप भी हो जाइये तैयार अपने धड़कते दिलों को थामकर अंतरिक्षवासियों का स्वागत करने के लिये। □□

रग-रग में रेंगता एड्स का ज़हर

रमेशदत्त शर्मा

दिनों दिन पूरे देश में "एड्स" का आतंक फैलता जा रहा है। बम्बई और मद्रास के बाद अब दिल्ली इसकी चपेट में है। वेश्याओं के अलावा खून की बोतलों से भी एड्स पनप रहा है। क्या ऐसे में सरकार और संचार माध्यम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे कि चेतेंगे? समय रहते नहीं चेते तो सन् दो हज़ार तक एड्स सबसे विकट नर-संहारक बन जाएगा।

"मैं तो अपने खेत बेचकर खाड़ी के देशों में नौकरी के लिए बम्बई आया था", उस राजस्थानी नौजवान ने रुआसे स्वर में अपनी करुण-कथा बयान की। "दुबई के लिए टिकट कटाया। सुबह जाना था। रात को कुछ दोस्त बोले कि चलो मौज मजा कर लें। मेरी जिन्दगी की पहली गलती थी वह। दुबई पहुँचा तो हवाई अड्डे से ही वापस कर दिया।" इस भारतीय नौजवान का खून जाँचा गया तो उसमें "एड्स" का विषाणु मौजूद था। इसीलिए उसे दुबई में प्रवेश नहीं करने दिया गया। अपने परिवार का एकमात्र कमाऊ सदस्य यह भोलाभाला ग्रामीण युवक अब मौत की घड़ियाँ गिन रहा है। क्योंकि एड्स का अभी तक न तो कोई टीका निकला है और न कोई दवा। एक बार रोग लग गया तो बस मौत ही उससे छुटकारा दिला सकती है।

इस नौजवान ने तो खैर, कोठे पर जाने का कुकर्म किया था। परन्तु पाँच दिन की बेबी तो बिलकुल बेकसूर थी। 8 जून 1990 को जब उसे दिल्ली के कलावती सरन शिशु चिकित्सालय में लाया गया तो बेबी बिलकुल पीली पड़ी हुई थी। उसे एक किस्म का पीलिया हो गया था—हाइपरबिलिरुबिनिमिया। इस रोग में पित्त (बाइल) में बनने वाला "विलिरूबिन" प्रोटीन ज्यादा मात्रा में बनकर खून में जमा हो जाता है और हीमोग्लोबिन बनने में बाधा डालता है। पाँच दिन की बेबी को इस रोग से मुक्त करने का एक ही उपचार था कि उसकी देह का तमाम खून बदल डाला जाय। केवल दो यूनिट खून चाहिए था। लेकिन मूर्ख माता-पिता में से कोई भी अपनी बच्ची को बचाने के लिए खून देने को तैयार नहीं हुए। उस भूल के लिए वे जीवन भर पछताएंगे। क्योंकि बाजार से जो खून खरीदा उसे चढ़ाने के बाद जाँचा गया तो उसमें "एड्स" का विषाणु पल रहा था।

भारत में जिस पहले एड्स रोगी की मौत हुई वह भी खून चढ़वाने से रोगी बना था। वह सेठ अमेरिका से अपने दिल की बाईपास सर्जरी कराके लौटा था और वहीं से रोग लगा बैठा। एड्स—यानी "एक्वायर्ड इम्यूनोडेफिसिएंसी सिण्ड्रोम," "एच० आई० वी०" अर्थात् 'ह्यूमन इम्यूनोडेफिसिएंसी वाइरस' से फैलता है। यह विषाणु मुख्य रूप से लैंगिक सहवास से फैलता है। मर्द इसे फैलाने में औरतों से आठ गुना ज्यादा समर्थ हैं। एड्स ग्रस्त खून चढ़वाने, एड्स ग्रस्त खून से बनी दवाएँ लेने और एड्स ग्रस्त रोगी की इस्तेमाल की गई सिरिंज इस्तेमाल करने से तथा माँ से बच्चे में भी एड्स आ सकता है।

इस समय पूरे भारत में कुल 720 ब्लड बैंक हैं जो हर साल करीब 15 लाख यूनिट खून जमा करते हैं। इनमें से सरकारी अस्पतालों में तो अब सभी रक्तदाताओं का खून लेने से पहले उसकी जाँच की जाती है कि उसमें एड्स विषाणु तो नहीं हैं। कायदे

बी-38, कृषि विहार, नई दिल्ली–110048

से निजी ब्लड-बैंकों को भी करनी चाहिए। लेकिन एलाइसा-टेस्ट करने वाली मशीन दो लाख रुपये में आती हैं। हर बार टेस्ट करने पर भी काफी खर्च आता है। इस खर्च को भला खून बेचने वाले दुकानदार क्यों उठाने लगे ? दिल्ली में बड़े-छोटे करीब 30 ब्लड बैंक है। इनमें छः निजी ब्लडबैंकों में से चार हर साल करीब 10 हजार यूनिट खून बेचते हैं। दिल्ली के मेडिकल इन्स्टीट्यूट में हर साल 5 हज़ार यूनिट खून कम पड़ता है। सफदरगंज अस्पताल को 17,800 यूनिट खून हर साल चाहिए और इकट्ठा हो पाता है, केवल 4250 यूनिट। भारतीय रेड क्रास सोसायटी केवल 2250 यूनिट खून दे पाती है। पिछले साल सोसायटी ने साल भर में कुल 27 हज़ार यूनिट खून जमा किया था। बाकी खून मरीज़ों के सगे-संबंधियों को जहाँ-तहाँ से जुटाना पड़ता है। सफदरगंज अस्पताल को ही पिछले साल 11 हज़ार यूनिट खून खरीदना पड़ा।

खून बेचने वाले गरीब, भिखमंगे लोग खून बेच-कर कोठों पर जाते हैं और वहीं से एड्स लगा बैठते हैं। जैसे ही उनके खून में एड्स के विषाणु पकड़े गए वे उस अस्पताल या ब्लड बैंक की जगह कहीं और बेचना शुरू कर देते हैं। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान की एड्स अनुसंधानशाला के युवा वैज्ञानिक **डॉ० वाई० एन० सिंह** ने पाँच बड़े ब्लडबैंकों के सर्वे-क्षण से पता लगाया कि वहाँ खून बेचने वाले पेशेवर लोगों में दस एड्स के रोगी थे। तलाशने पर मालूम हुआ कि लालकिले के पीछे और चाँदनी चौक की गलियों के गरीब लोग थे। ये सब कोठों पर जाते थे। पता चलते ही रक्तदाता दिल्ली से गायब हो गए और आस-पास के शहरों-कस्बों में खून बेचने लगे। खूनी धंधे के साथ ही संक्रमित खून से एड्स फैलने का खतरा बढ़ता जा रहा है। एक अप्रैल 1989 से 31 मार्च 1990 के बीच महानगरों में स्थित जाँच केन्द्रों में साढ़े तीन लाख से ज्यादा बोतल खून की जाँच की तो करीब 3600 नमूनों में "एच० आई० वी०" मौजूद था।

अक्टूबर 1985 से 31 मार्च 1990 तक 4 लाख 61 हज़ार के करीब स्त्री-पुरुषों की जाँच की गई, तो 2100 से अधिक में 'एड्स' का विषाणु पल रहा था। इस तरह संक्रमण-दर 4.7 प्रति हज़ार बैठती है। एड्स का वाइरस खून में पूरी तरह सक्रिय होने में चंद महीनों से लेकर 5-7 या 10 साल तक ले सकता है। औसतन 7 सात लगते हैं। इस बीच बिना खून की जाँच के पता ही नहीं चलेगा कि सामने वाला एड्स वाहक है या नहीं। एक बार उग्र रूप धारण करते ही एड्स का वाइरस खून में मौजूद रोगरक्षक सफेद कोशिकाओं में से खासतौर से टी-कोशिकाओं पर अपना कब्जा जमा लेता है। इस तरह मामूली निमो-निया भी एड्स रोगी की जान ले लेता है, क्योंकि फिर किसी भी दवा का कोई असर नहीं होता।

पिछले दिनों आकाशवाणी के लिए 'एड्स' पर राष्ट्रीय कार्यक्रम के सिलसिले में, जब मैं भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद के महानिदेशक डॉ० **अवतार सिंह पेंटल** से मिला तो उन्होंने बड़े दर्द से कहा था—"बड़ी देर कर दी है आपने। अब तो वक्त निकल गया। एड्स हर तरफ से हमला बोल रहा है, इस देश पर।" डॉ० पेंटल के अनुसार "बंबई में इस समय करीब एक लाख वेश्यायें हैं। हर वेश्या प्रतिदिन कम से कम दस ग्राहक निपटाती है। इनमें से 36 प्रतिशत यानी लगभग 26 हज़ार वेश्याएँ एड्स की शिकार हैं। अंदाज लगाइए कि बंबई में यह रोग कितनी तेज़ी से फैल रहा होगा।"

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सन् 1996 तक बंबई की हर तीसरी गृहिणी 'एड्स' का शिकार होने लगेगी। यह स्थिति सचमुच बड़ी भयावह है। उस समय सारी दुनिया में एड्स विषाणु को खून में पालने वाले 80 लाख से 100 लाख स्त्री-पुरुष कूते गए हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के एड्स-नियन्त्रण कार्य-क्रम के अध्यक्ष **डॉ० माइकेल मर्सन** के अनुसार विकास-शील देशों में यह रोग बड़ी तेज़ी से फैल रहा है। अफ्रीका के सहारा से नीचे के इलाके में सन् 1987 में 25 लाख एड्स-वाहक बताये गये थे। अब यह

संख्या 51 लाख से ऊपर जा पहुँची है। पहले '50 वयस्क स्त्री-पुरुष में 1' रोगी का अनुपात था, जबकि अब '40 में एक' तक बढ़ गया है। इसी तरह दो साल पहले एशिया में जहाँ-तहाँ इक्का-दुक्का एड्स रोगी सुना जाता था, वहीं अब एशिया में भी एड्स का वाइरस 5 लाख के करीब स्त्री-पुरुषों की नस-नस में दौड़ रहा है। अगर ठोस कदम नहीं उठाये गये तो सन् दो हज़ार तक एड्स विश्व की सबसे भयंकर महा-मारी का रूप धारण कर लेगा। लैंगिक संबंधों से रोग के फैलाव में इस दशक में छह गुनी वृद्धि होने की आशंका है और कम से कम 30 लाख स्त्रियाँ और बच्चे इस दशक के अंत तक एड्स की एड़ियों तले कुचलकर दम तोड़ देंगे।

बहुत से लोग सोचते हैं कि हम तो किसी कुकर्म में फँसे नहीं हैं, फिर हमें क्यों एड्स' हो जाएगा? क्या उन्हें पता है कि कल वे किसी चोट या दुर्घटना के कारण अस्पताल जाकर जब खून चढ़वाएँगे तो क्या पता उस खून में 'एच आई वी' छुपा बैठा हो? इसलिए केवल इस्तेमाल के बाद फेंकने वाली सिरिंज से खून निकलवाएँ या इंजेक्शन लगवाएँ। खून से बनने वाली दवाएँ अब भारत में बनाने पर पाबन्दी है, क्योंकि बहुतों में 'एच आई वी' पाया गया था। ऐसी सभी दवाएँ कड़ी जाँच-पड़ताल के बाद बाहर से आ रही हैं। रक्तदान कीजिए ताकि अस्पतालों को खून खरीदना न पड़े। हाल में ही सरकार ने 50 करोड़ रुपये के प्रावधान से एड्स-नियन्त्रण कार्यक्रम शुरू किया है। पूरे देश में 48 निगरानी और जाँच केन्द्र तथा पाँच सन्दर्भ केन्द्र कार्यरत हैं। एड्स रोगियों के प्रति सामाजिक बहिष्कार की जगह सहानुभूति जगानी होगी और जिन्हें एड्स के प्रकोप का सामना करना पड़ रहा है, उनके लिए एड्स क्लिनिक खुलने चाहिए। एड्स ग्रस्त वेश्याओं को 1500 रुपए प्रति माह पेंशन देकर धँधा छुड़ाने का प्रस्ताव भी अभी कागज़ों में अटका है। सभी संचार माध्यम भी एड्स के प्रति जन चेतना जगाने का काम भूलकर बेसुध पड़े हैं। उधर एड्स देश की नस-नस में ज़हर फैला रहा है।

□□

(इस्वा फीचर्स)

सुपोषण के लिए रोटी और चावल के साथ दाल भी ज़रूरी

डॉ० वाई पी० गुप्ता

आप भरपेट भोजन करने के बाद भी भूखे हो सकते हैं—यह छुपी भूख है कुपोषण। रोटी और चावल के साथ दाल भी खायी जाय तो प्रोटीन की ज़रूरत पूरी हो जाती है। पर गरीबों के मुँह से दाल छिनती जा रही है। प्रस्तुत है इस राष्ट्रीय विडम्बना पर पूसा इन्स्टीट्यूट के अवकाशप्राप्त वैज्ञानिक के विचार।

इस दुनिया में जीने के लिए भोजन चाहिए। ऐसा भोजन जो हमें स्वस्थ रखे। विश्व के विभिन्न भागों में लोग जीवित रहने के लिए भोजन जुटाने में लगे हैं। अमेरिका, कनाडा और पश्चिम यूरोपीय देशों को छोड़कर दुनिया की आधी से ज़्यादा आबादी अज्ञा-नता, गरीबी, कुपोषण और रोगों से जकड़ी हुई है। किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व और समृद्धि कृषि और सुपोषण पर निर्भर करती है। लोग कितना और किस प्रकार का भोजन करते हैं और उनका जीवन स्तर कितना ऊँचा और नीचा है, यह कृषि उपज पर निर्भर करता है।

अपर्याप्त भोजन को कुपोषण कहा जाता है। लेकिन पर्याप्त भोजन मिलते रहने पर भी कई तरह के रोग हो सकते हैं। इसलिए भोजन का मिलना ही काफी नहीं। ज़रूरी बात यह भी है कि भोजन में जिन तत्वों की हमें आवश्यकता है वे नियमित रूप से

द्वारा श्री हरीश अग्रवाल, डी–40, गुलमुहर पार्क, नई दिल्ली–110049

मिलते रहें। उदाहरण के लिए भरपेट भोजन मिलने के बावजूद प्रोटीन की कमी हो सकती है। खून की कमी सम्बन्धी रोग (रक्ताभाव हो सकता है। विशेषत: माताओं और छोटे बच्चों को। इसके अलावा विटामिन "ए" और "बी" की कमी भी हो सकती है, जो कई बीमारियों को जन्म दे सकती है।

भोजन तीन काम करता है। पहला शारीरिक अर्थात् शक्ति देता है। जब भोजन पुष्टकर हो, उसमें चिकनाई, विटामिन और खनिज भी हों, तो वह हमारी क्षतिग्रस्त कोशिकाओं और तन्तुओं को ठीक-ठाक करता है।

भोजन का दूसरा काम है सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना। परिवार के सदस्यों या मित्रों, सम्बन्धियों और अतिथियों के साथ मिलकर बैठकर हम भोजन करते हैं और इससे आपसी रिश्ते मज़बूत होते हैं।

भोजन का तीसरा काम मनोवैज्ञानिक है। अर्थात् भोजन हमें प्रसन्नता देता है, सन्तुष्ट करता है और इससे आनन्द की प्राप्ति होती है।

कुपोषण की जड़ में गरीबी

कोई व्यक्ति कैसा भोजन करता है, यह कई बातों पर निर्भर करता है। जैसे धर्म देश, काल और भोजन के प्रति उसकी रुचि और अरुचि पर। खैर, कोई कुछ भी खाता है, ज़रूरी बात यह है कि भोजन में ऐसे सभी तत्व होने चाहिए जो शरीर को शक्ति दें और क्षतिग्रस्त तन्तुओं की मरम्मत करते रहें।

इस उद्देश्य को सामने रखकर आहार विशेषज्ञों ने बताया है कि कब, किसे कैसा भोजन करना चाहिए। कोई कितना और कैसा भोजन करे यह इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति कितनी आयु का है, कितना शारीरिक और मानसिक श्रम करता है, किस देश का है, वहाँ की जलवायु क्या है? उदाहरण के लिए यदि किसी देश में स्त्रियाँ और पुरुष शारीरिक श्रम अधिक करते हैं तो उन्हें ऐसे भोजन की आवश्यकता अधिक है, जिसमें कैलरी अधिक हो। कम शारीरिक श्रम करने वालों को कम कैलरी वाला भोजन चाहिए। भोजन कितनी शक्ति प्रदान करता है, यह कैलरी के रूप में नापा जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान (वाशिंगटन, अमेरिका द्वारा किये गये एक अनुसंधान के अनुसार एक औसत भारतीय को उसके दैनिक भोजन में मुश्किल से 1900 कैलरी मिलती है। करोड़ों लोगों को इतनी कैलरी वाला भोजन भी नहीं मिल पाता, जबकि न्यूनतम आवश्यकता 2200 कैलरी है। अमेरिका और पश्चिम यूरोपीय देशों में एक औसत व्यक्ति के भोजन में 3000 कैलरी होती है। इस प्रकार भारतीय भोजन अपर्याप्त है और इसका कुप्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है।

भारतीय सुपोषण सलाहकार समिति ने बताया कि स्वस्थ रहने के लिए जो सन्तुलित भोजन किया जाय, इसमें क्या होना चाहिए। किन्तु जिसे सन्तुलित भोजन कहा जाता है, वह बहुत मँहगा है। इसलिए अधिसंख्य लोग असंतुलित भोजन खाकर ही किसी तरह जी रहे हैं। यानी कुपोषण का एक बड़ा कारण गरीबी है।

भारत में अधिसंख्य लोग शाकाहारी हैं। उनका मुख्य भोजन अनाज और दालें हैं, जो प्रोटीन और कैलरी के मुख्य स्रोत हैं। एक सर्वेक्षण से पता चला है कि विकासशील देशों में डेढ़ से दो अरब लोग अनाज खाकर गुजारा करते हैं। आधी दुनिया का मुख्य भोजन चावल है। चावल से एशियाई देशों के लोगों को उनकी ज़रूरत की 80 प्रतिशत कैलरी मिलती है। दुनिया में गेहूँ का नम्बर दूसरा है। मक्के का प्रयोग केन्द्रीय और दक्षिण अमेरिका में अधिक है।

संसार की अधिकतर जनसंख्या के लिए अनाज शक्ति का मुख्य स्रोत है। इसमें विटामिन "ए", "सी" और कैल्शियम को छोड़कर भोजन के अधिकांश तत्व विद्यमान हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि अधिकतर खनिज लोहा, फासफोरस और विटामिन-बी काम्पलेक्स, चोकर या छाछ में पाये जाते हैं। यदि अनाज को तेज़ी से चलने वाली चक्कियों में पीसा जाय तो

इसमें से ज़्यादातर तत्व नष्ट हो जाते हैं। जनता के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए विकसित देशों में अनाजों और रोटी में बी० जाति के विटामिन और कैल्शियम एवं लोहा जैसे खनिज मिलाये जाते हैं।

दालें

दालें प्रोटीन का उत्तम स्रोत हैं। दालों में भरपूर प्रोटीन होता है और इससे हमारे देश में अधिसंख्य लोगों की विशेषतः गरीबों की खाद्य संबंधी आवश्यकता की पूर्ति होती है, क्योंकि वे मँहगे खाद्य पदार्थ नहीं खरीद सकते। आमतौर पर दालों में 20-30 प्रतिशत प्रोटीन होता है, 60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट और विटामिन्-बी तथा कैल्शियम व लोहा। दालों के कार्बोहाइड्रेट में उनके वज़न के बराबर कलैरी होती है।

भारत में खाद्य समस्या को अनाज व दालों की माँग और आपूर्ति को सामने रखकर देखा जाता है और फिर अब कुपोषण की समस्या के प्रति जागरूकता भी है। औसत भारतीय भोजन, कैलरी की दृष्टि से न केवल अपर्याप्त है, बल्कि असंतुलित भी है। हमारे देश के बहुत से लोग प्रोटीन की कमी से उत्पन्न कुपोषण के शिकार हैं, कुछ तो इसलिए कि भरपेट भोजन नहीं और जिन्हें मिलता भी है उनके भोजन में प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में नहीं होता। यह समस्या बड़े बच्चों में अधिक है। प्रोटीन और कैलरी की कमी से उत्पन्न कुपोषण आज भारत की एक बहुत बड़ी समस्या है। भोजन के आवश्यक तत्वों की पूर्ति अनाजों और दालों से ही होती है, लेकिन इनसे मिलने वाला प्रोटीन इतना बढ़िया नहीं होता जितना मांसाहारी भोजन का होता है।

अनाजों और दालों में प्रोटीन के तत्वों में लायसीन और मैथिओनाइज जैसे अमाइनोएसिडों का अभाव रहता है। इस कमी से कई गम्भीर रोग हो सकते हैं। विशेषकर बच्चों को। उनका विकास रुक जाता है। कभी-कभी अकाल मृत्यु तक हो जाती है।

भोजन में प्रोटीन की कमी कुपोषण का बहुत बड़ा कारण तो है ही, लेकित पर्याप्त कैलरी का अभाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों में अधिक है। खासकर गर्भवती और दूध पिलाने वाली माताओं में। इसका प्रभाव राष्ट्र के भविष्य पर भी पड़ सकता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि दालों से हम प्रोटीन की कमी दूर कर सकते हैं। अनाज और दाल को मिलाकर खाने से भोजन के कई आवश्यक तत्वों की पूर्ति हो जाती है। इस तरह के भोजन से कई तरह के अमाइनोएसिड शरीर में पहुँचते हैं और प्रोटीन की गुणता बढ़ जाती है। दालों को बढ़िया तरीकों से वैज्ञानिक ढँग से उगाकर हम अपने देश के ज़्यादातर लोगों के भोजन के आवश्यक तत्वों की पूर्ति एक बड़ी सीमा तक कर सकते हैं। □□

(इस्वा फीचर्स)

सौर ऊर्जा से मोमबत्ती बनाइए

डॉ० एन० भटनागर

सौर ऊर्जा से मोमवत्ती बनाने की विधि का उपयोग करके ग्रामीण अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं। प्रदूषण रहित यह विधि ग्रामीण इलाकों में बेरोज़गारी दूर करने का एक कारगर तरीक़ा है। —सम्पादक

हमारे देहातों में ऊर्जा के साधनों के सर्वमुलभ न होने के कारण केवल ऐसे ही उद्योग चलाए जा सकते हैं जिन्हें मनुष्य स्वयं अपनी ऊर्जा से या अपने पालतू पशुओं की ऊर्जा के उपयोग से चला सकते हों, और ऐसे उद्योग गिने चुने ही हैं।

हमारे वैज्ञानिक देहातों की इस समस्या से अनजान नहीं हैं। तभी तो अक्सर कोई न कोई ऐसी विधि लेकर सामने आते ही रहते हैं जिनका उपयोग देहातों में ग्रामीण अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने

डी—720, सरस्वती विहार, दिल्ली—110034

के लिए बखूबी कर सकते हैं। किंतु अधिकतर ग्रामीण इनके बारे में नहीं जान पाते और इनका लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं।

हाल ही में केन्द्रीय मरु अनुसन्धानशाला, जोधपुर के एक वैज्ञानिक **डॉ० प्रमोद बिहारी लाल चौरसिया** ने मोमबत्ती बनाने की एक ऐसी मशीन का विकास किया है जो सौर ऊर्जा पर आधारित है। यह नई मशीन एक ऐसी युक्ति है जो मोम को पिघलाने के लिए सूर्य की ऊर्जा का उपयोग करती है।

मोमबत्ती पैराफीन मोम से बनाई जाती है। इसके लिए सबसे पहले मोम को गर्म करके पिघलाया जाता है, फिर पिघले मोम को साँचे में डाल कर विभिन्न आकार व आकृतियों की मोमबत्तियों की शक्ल में ठण्डा कर लिया जाता है। बाद में इन्हें साँचे से अलग करके पैकेटों में भर लिया जाता है।

मोम को पिघलाने के लिए लकड़ी, कोयला, मिट्टी का तेल, गैस या बिजली कोई भी ईंधन जो आसानी से मिलता हो इस्तेमाल में ले आया जा सकता है। इस ईंधन पर होने वाला खर्च मोमबत्ती बनाने पर लगने वाली लागत का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। इसी पर मोमबत्ती की कीमत निर्भर करती है। ईंधन पर होने वाले खर्च को घटा कर मोमबत्ती का लागत मूल्य कम किया जा सकता है।

इसीलिए मोम को गलाने के लिए सौर ऊर्जा का उपयोग कर सकने वाली नई मशीन का विकास महत्वपूर्ण है। सौर ऊर्जा हम सबको सुलभ मुफ्त में उपलब्ध ऊर्जा है। यही नहीं इसे ईंधन के रूप में उपयोग करने पर किसी प्रकार का प्रदूषण भी नहीं होता। इस मशीन की खूबियों को देखते हुए इसके विकास पर **'नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन** ने डॉ० चौरसिया को 25,000 रु० का नक़द पुरस्कार देकर सम्मानित किया है।

नई मशीन

नई मशीन एक प्रकार की सौर संचायक युक्ति है। इसमें सूर्य से एक समतल लोहे की प्लेट पर सीधे किरणें पड़ने पर वे अवशोषित होकर ताप में बदल जाती हैं। अवशोषक का क्षेत्रफल लगभग आधा वर्ग मीटर है।

सौर संचायक लोहे की चद्दर का बना चौकोर आकृति का एक बक्सा है, इसकी सबसे ऊपरी समतल सतह काले रंग की होती है। इसमें ताप को रोके रखने के लिए इसे लोहे के एक अन्य चौकोर बक्से में रखा जाता है। इसकी ऊपरी सतह पर एक समतल काँच और दूसरी तरफ ताप कुचालक ग्लास वूल लगे होते हैं। इसके ऊपर की ओर लगा समतल काँच सूर्य की किरणों को बक्से में अंदर तो जाने देता है, लेकिन अंदर के ताप को बाहर नहीं निकलने देता, जिससे अन्दर उपयुक्त तापमान बना रहता है। इसे लोहे के एक स्टूल पर इस प्रकार जड़ दिया जाता है कि इसे सूर्य की दिशा में आसानी से घुमाया जा सके।

कार्य प्रणाली

इस सौर युक्ति से मोमबत्ती बनाना बहुत सरल है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी थोड़े से प्रशिक्षण से इसका उपयोग करके आसानी से मोमबत्ती बना सकता है। इसमें दिन में कभी भी एक बार सुबह या शाम ठोस मोम भरा जा सकता है। शाम को मोम भरना और मोमबत्ती बनाना अपेक्षाकृत सुविधाजनक है। पट्टी (स्लैब) के आकार में ठोस मोम बाजार में मिलता है। इस मोम-पट्टी को तोड़कर छोटे-छोटे टुकड़े करके सौर युक्ति में भरा जाता है। एक छोटे आकार की सौर मशीन में एक बार में लगभग 12-14 किलोग्राम मोम भरा जा सकता है। मोमबत्ती बनाने के लिए शाम का लगभग दो घण्टे का समय काफी होता है।

मोमबत्ती बनाने के लिए सौर मशीन में ठोस मोम शाम को भर दी जाती है, फिर इस मशीन के सौर संचायक को सूर्य की दिशा में मोड़कर छोड़ दिया जाता है। यह मोम दूसरे दिन सूर्य की गर्मी से पिघल जाता है। सौर मशीन में दिन के समय मोम पिघलने के दौरान किसी भी प्रकार की देख-रेख की जरूरत नहीं पड़ती। पिघले मोम को सौर मशीन से निकालकर इच्छानुसार साँचे में डाल दिया जाता है। ठण्डा होने पर मोमबत्तियाँ साँचों से अलग कर ली जाती हैं।

सौर मशीन से पिघला हुआ मोम एक बर्तन में इकट्ठा कर लिया जाता है। सौर मशीन से पिघला हुआ मोम निकालने के बाद उसमें उसी वक्त ठोस मोम फिर भर दिया जाता है। यह मोम अगले दिन सूर्य की गर्मी से पिघलता है। इस प्रकार मोमबत्ती बनाने की प्रक्रिया को दोहराया जाता है और सौर मशीन से मोमबत्तियों का रोज़ उत्पादन किया जाता है।

मोमबत्ती उत्पादन

इस युक्ति से मोमबत्ती उत्पादित करने की क्षमता मौसम और धूप की तेज़ी पर निर्भर करती है। इस मशीन की क्षमता 12-14 किलोग्राम है। सर्दी में जब सौर ऊर्जा में कमी हो जाती है, इस मशीन से 6-10 किलोग्राम तक मोमबत्तियाँ बनाई जा सकती हैं। इस छोटी सौर मोमबत्ती मशीन की कीमत लगभग 1200 रुपये आने का अनुमान है। इसमें साँचों की क़ीमत शामिल नहीं है।

सौर मोमबत्ती मशीन की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए बड़ी सौर मशीन बनाई जा सकती है। बड़ी सौर मशीन में सूर्य की किरणों को अवशोषित करने वाला क्षेत्र बढ़ जाएगा जिससे अधिक मोम पिघलाई जा सकेगी। अधिक मोमबत्ती उत्पादित करने के लिए एक साथ कई सौर मशीनों का उपयोग भी किया जा सकता है।

सौर मशीन के फ़ायदे

इस मशीन की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें मोम को पिघलाने के लिए पूर्ण रूप से सौर ऊर्जा का ही उपयोग किया जाता है। इस विधि से मोमबत्ती बनाना परम्परागत तरीके से मोमबत्ती बनाने की तुलना में कई तरह से लाभकारी है, जैसे, (1) ईंधन की पूरी बचत, (2) नई विधि सरल, आसान और सुरक्षित, (3) श्रम की किफ़ायत, (4) मोम के पिघलते वक्त देख-रेख की ज़रूरत नहीं, (5) वाष्पीकरण से होने वाले मोम के नुक़सान में कमी, (6) धुँआ आदि न होने के कारण आसपास के वातावरण का प्रदूषण से बचाव, (7) रख-रखाव के खर्चे में कमी, और (8) मोमबत्ती बनाने की लागत में कमी जिससे अधिक लाभ की गुंजाइश।

इस मशीन का एक और लाभ यह है कि मोम के पिघलने पर अपनी इच्छा से मोमबत्ती बनाई जा सकती है, क्योंकि पिघला मोम इस मशीन में काफ़ी देर तक द्रव अवस्था में रहता है और किसी तरह का वाष्पीकरण नहीं होता। नई विधि से मोमबत्ती बनाने में लागत कम लगती है अतः उद्यमकर्ता को शुद्ध लाभ भी अधिक होता है।

इस नई विकसित मशीन को शिक्षित, अर्द्ध-शिक्षित, बेरोज़गार और ग्रामीण धंधे के रूप में अपना कर अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं। एक व्यक्ति इस छोटी सी सौर मोमबत्ती मशीन की सहायता से प्रतिदिन 20 से 40 रुपये तक आसानी से कमा सकता है। मोमबत्ती का उत्पादन बढ़ाकर आय को और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है।

इस प्रकार यह मशीन रेगिस्तानी अथवा अन्य ऐसे इलाकों के लोगों के लिए, विशेषकर जहाँ प्रचुर सौर ऊर्जा उपलब्ध है, रोज़गार का अच्छा साधन बन सकती है। हमारे देश के अधिकांश किसान भी जो अपनी फ़सल लेने के बाद कुछ समय के लिए खाली रहते हैं, इस अवधि में इस मशीन के द्वारा मोमबत्ती बना कर अपने समय का सदुपयोग करते हुए अच्छी आय भी प्राप्त कर सकते हैं।

इस मशीन से संबंधित और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए निदेशक, केन्द्रीय मरु अनुसंधानशाला, जोधपुर से सीधे सम्पर्क किया जा सकता है।

□□

(सम्प्रेषण)

(1) विज्ञान परिषद् प्रयाग में 'हिन्दी दिवस' समारोह सम्पन्न

14 सितम्बर को विज्ञान परिषद् द्वारा हिन्दी दिवस' का आयोजन किया गया, जिसमें नगर के गण्यमान्य विज्ञान प्रेमी उपस्थित हुए। अध्यक्ष पद से बोलते हुए इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति **रामसहाय जी** ने हिन्दी वालों को यह सलाह दी कि वे न केवल अपने प्रान्त में हिन्दी प्रचार का कार्य करें अपितु पूरे देश में जायें और इस पर बल दें कि सारे प्रांत अपनी-अपनी भाषा में कार्य करें जिससे अंग्रेज़ी को इक्कीसवीं सदी तक विस्थापित किया जा सके। अन्य वक्ताओं में **डॉ० सुप्रभात मुकर्जी** ने कहा कि अंग्रेज़ी से रोष उत्पन्न करने का कार्य लिया जाता है किन्तु हिन्दी माध्यम अपनाने से यह रोष जल्दी समाप्त हो सकता है। 'शीलाधर मृदा अनुसंधान संस्थान' के **डॉ० मुरारी मोहन वर्मा** ने गाँधी जी के उन वाक्यों को पढ़कर सुनाया जिनमें बच्चों को विदेशी भाषा के सीखने के लिए कितना अधिक श्रम करना पड़ता है, पर प्रकाश डाला गया है। **डॉ० जगदीश सिंह चौहान** ने बतलाया कि अब तो आई. ए. एस. की प्रतियोगिता में भी हिन्दी का प्रवेश हो चुका है। रसायन विभाग के ही अवकाशप्राप्त अध्यक्ष **डॉ० पूर्ण चन्द्र गुप्ता** ने कहा कि हिन्दी संस्थानों को सभी प्रकार का आर्थिक सहयोग सरकार से मिलना चाहिए। उन्हें डटकर काम करना चाहिए। 'अंग्रेज़ी हटाओ' का नारा लगाने से कार्य सिद्धि नहीं होगी। विज्ञान परिषद् विगत् 77 वर्षों से हिन्दी में ही काम करती रही है। लोगों को अपनी मानसिकता बदलनी होगी। बाहर से आये **डॉ० यू. डी. एन. बाजपेयी** ने बतलाया कि दक्षिण भारत में हिन्दी दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर **श्री दिनेशमणि** ने एक कविता सुनाई। परिषद् के ही अन्तरंगी **डॉ० शिवगोपाल मिश्र** ने बतलाया कि परिषद् के समक्ष जो आर्थिक संकट है, उसके लिए आज 'हिन्दी दिवस' के अवसर पर हम सभी यह व्रत लें कि जैसे भी हो धन संचय करके आत्म निर्भर बना जाय। सरकार पर आश्रित रहना ठीक न होगा।

अन्त में परिषद् के प्रधानमन्त्री **प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी** ने सभी को धन्यवाद दिया।

—प्रस्तुति : डॉ० शिवगोपाल मिश्र

(2) विज्ञान परिषद् की वाराणसी शाखा से

परिषद् द्वारा दिनांक 27-7-90 को भू-भौतिक विभाग में एक अत्यन्त रोचक व्याख्यान आयोजित किया गया। व्याख्यान का विषय था "जीव जगत् पर चन्द्रमा का प्रभाव" और व्याख्याता थे प्रसिद्ध भौतिकीविद **प्रो० देवेन्द्र कुमार राय**। आरम्भ में परिषद् के सचिव **डॉ० श्रवण कुमार** तिवारी ने बताया कि यह व्याख्यान चन्द्र तल पर मानव के पदार्पण की स्मृति में, उस घटना की बीसवीं वर्षगाँठ पर आयोजित किया गया है। स्मरणीय है कि 20 जुलाई सन् 1969 ई० को अपोलो 11 के तीन अंतरिक्षयात्री चन्द्रमा पर पहली बार उतरे थे।

प्रो० देवेन्द्र कुमार राय ने सरल उदाहरण द्वारा यह बताया कि हमारी पृथ्वी एक विशाल चुम्बक जैसा गुण प्रदर्शित करती है। इस गुण के अनेक कारण बताए जाते हैं। इसे समझने के लिए वाल्टर एल्सोसर नामक वैज्ञानिक ने "डायनैमो" सिद्धांत की परिकल्पना की थी, जिसके अनुसार पृथ्वी के अंतस्थल में विद्युत् धारायें प्रवाहित होती हैं जिनके कारण पृथ्वी पर चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है। यहाँ यह स्वाभाविक प्रश्न उठा कि ये धारायें कैसे उत्पन्न होती हैं? और किस माध्यम में चलती हैं। इसके समाधान में कहा गया कि पृथ्वी के भीतर 1800 मील से 3200 मील तक का भाग द्रव-धातुओं के रूप में है। इसे बाह्य क्रोड कहते हैं। इससे आगे भीतरी क्रोड उच्च दाब के

कारण ठोस रूप में है। तापमान के अंतर के कारण बाह्य क्रोड में भँवरें बनती हैं जिनके चलते विद्युत धारायें उत्पन्न हो सकती हैं जो बाह्य क्रोड के सुचालक भाग में गतिमान हो सकता है। परन्तु यह भी तो सम्भव है कि विभिन्न स्थानों पर उठने वाली भँवरें भिन्न दिशा में होंगी अतः उनका परिणामी प्रभाव नगण्य या शून्य हो जायगा। अतः पृथ्वी के चुम्बकत्व का कारण स्पष्ट नहीं होता है। इसका समाधान करने के लिए पृथ्वी की घूर्णन गति पर विचार किया गया। इस घूर्णन के कारण बाह्य क्रोड का द्रव भी घूर्णन करता है। इस घूर्णन के कारण इसमें बनने वाली सभी भँवरें विलीन हो जाती हैं और पूरा द्रव एक समान गति से गतिशील हो जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पृथ्वी का चुम्बकत्व उसकी घूर्णन गति तथा उसके आंतरिक द्रवीय क्रोड के कारण होता है।

सूर्य की परिक्रमा करने वाले सभी ग्रहों में द्रवीय क्रोड तथा अक्षीय घूर्णन पाया जाता है। यदि चुम्बकत्व का उपर्युक्त सिद्धांत सच है तो सभी ग्रहों पर भी चुम्बकत्व पाया जाना चाहिए। पर इनमें से अब तक जिसकी जानकारी प्राप्त है, मंगल और शुक्र किसी पर भी चुम्बकत्व नहीं पाया जाता है। अतः भू-चुम्बकत्व के अस्तित्व का कारण कुछ और भी हो सकता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि चन्द्रमा कक्षीय गति पृथ्वी की घूर्णन-गति को प्रभावित करता है। इतना ही नहीं, चन्द्रमा के कारण पृथ्वी के महासागरों में उठने वाले ज्वार-भाटा तथा सागर तल के वाष्पीकरण से उत्पन्न होने वाली विशाल मेघ-राशि भी पृथ्वी के घूर्णन को प्रभावित करता है। चन्द्रमा के प्रभाव के कारण पृथ्वी की घूर्णन गति कम होती जा रही है। इससे वर्ष में दिनों की संख्या कम होती जा रही है। अनुमान है कि 20 करोड़ वर्ष पूर्व यह संख्या 385 रही होगी। इस तथ्य के प्रागैतिहासिक प्रमाण भी प्राप्त किए गए हैं।

चन्द्रमा की यह भूमिका पृथ्वी एवं उस पर उत्पन्न जीव जगत् को युगों से प्रभावित करती आ रही है। चन्द्रमा ही भू-चुम्बकत्व के डायनैमो सिद्धांत को आधार प्रदान करता है। चन्द्रमा के कारण भू-चुम्बकत्व की तीव्रता और दिशा परिवर्तित हो सकती है। यहाँ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य पर ध्यान जाता है। सूर्य तथा अंतरिक्ष से चलकर पृथ्वी के वायुमंडल तक अनेक प्रकार के आवेशित कण एवं विकिरण पहुँचते रहते हैं। भू-चुम्बकत्व आवेशित कणों की दिशा बदल देता है, वे सीधे धरती पर नहीं आ पाते हैं। कार्बन तथा प्रोटॉन-कण पृथ्वी के जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों के जैव-परिवर्तन को बहुत अधिक प्रभावित करते है। इनके कारण किसी एक प्रकार के जीवों का सफाया हो सकता है या किसी दूसरी प्रजाति का विकास हो सकता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि कुछ ऐसे ही कारणों से किसी युग में "डायनोसॉर" जैसे विशाल जीव उत्पन्न हुए थे और कालान्तर में उनका समूल नाश हो गया। इन तथ्यों की पुष्टि में अनेक उदाहरण पाए गए हैं और इनकी खोज भी जारी है। इस प्रकार चन्द्रमा भू-चुम्बकत्व को प्रभावित करके धरती के जीव-जगत् पर ऐतिहासिक प्रभाव डाल सकता है।

विद्वान वक्ता महोदय ने अनेक उदाहरण देकर जीव-जगत् पर चन्द्रमा के इस प्रभाव को अत्यन्त सरल ढंग से समझाया। □□

—प्रस्तुति : डॉ० श्रवण कुमार तिवारी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी—5

पुस्तक–हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता

लेखक—मनोज कुमार पटैरिया

प्रकाशन वर्ष—1990; **पृष्ठ संख्या**—256

मूल्य—दो सौ रुपये

प्रकाशक—तक्षशिला प्रकाशन, 23/4762, अन्सारी रोड, नयी दिल्ली—2

युवा विज्ञान लेखक और पत्रकार **श्री मनोज कुमार पटैरिया** द्वारा हिन्दी विज्ञान लेखन के इतिहास और शिल्प जैसे अछूते विषय पर लिखी गई इस पुस्तक ने हिन्दी साहित्येतिहास के एक अधूरे अध्याय को पूरा करने के लिये प्रामाणिक स्रोत सामग्री जुटाने का श्लाघनीय कार्य किया है। आज तक हिन्दी साहित्य के इतिहास पर जितने भी ग्रन्थ लिखे गये हैं, उनमें से अधिकांश में हिन्दी में रचे गये विपुल वैज्ञानिक साहित्य की कोई चर्चा नहीं है। इसी प्रकार हिन्दी विज्ञान लेखकों को भी प्रायः हिन्दी साहित्यकारों की बिरादरी (सूची) में शामिल (सम्मिलित) नहीं किया जाता। इसका सर्वप्रमुख कारण सम्भवतः वैज्ञानिक साहित्य की विशिष्ट प्रकृति है। इन कृतियों की वैज्ञानिक विषय सामग्री के कारण इनमें गैर बैज्ञानिक पृष्ठभूमि वाले 'शुद्ध' हिन्दी साहित्यकारों की गति सम्भव न हो सकी। फलतः वैज्ञानिक कृतियाँ, हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा में अपना उचित स्थान पाने से वंचित होती रही हैं। परन्तु 'हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता' नामक इस प्रामाणिक पुस्तक के प्रकाशन से इस दिशा में एक बड़ी बाधा दूर हो गई है। उम्मीद की जानी चाहिए कि हिन्दी साहित्य के इतिहासकार अपनी पुस्तकों के नए संस्करण निकालते समय इस किताब में उपलब्ध सूचनाओं एवं सन्दर्भ सामग्री का भरपूर उपयोग करेंगे।

श्री पटैरिया द्वारा रचित यह पुस्तक पाँच भाग में विभक्त है। इनके अतिरिक्त एक अनौपचारिक किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग 'परिशिष्ट' के रूप में है जिसमें विज्ञान प्रसार में लगी संस्थाओं, पत्रिकाओं, फीचर सेवाओं एवं लेखक-पत्रकारों की सूची (पता सहित) दी गई है। पुस्तक के अंत में 'सन्दर्भ सूची' और अनुक्रमणिका' तथा प्रारम्भ में 'प्राक्कथन', 'कृतज्ञता ज्ञापन' एवं 'प्रस्तावना' में दी गई सामग्री भी पुस्तक की विषयवस्तु को सही परिप्रेक्ष्य में समझने में सहायक है।

पुस्तक का पहला एवं दूसरा भाग क्रमशः विज्ञान पत्रकारिता के 'परिचय व पृष्ठभूमि' तथा 'विविध आयामों' से सम्बन्धित हैं। पहले भाग में चार एवं दूसरे भाग में छः अध्याय हैं। **पहले भाग** में हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के अर्थ, उद्देश्य एवं महत्व को परिभाषित करने के पश्चात् उसके उद्भव और विकास की चर्चा की गई है तथा वर्तमान की समीक्षा और भविष्य का आकलन है। इसी भाग में क्षेत्रीय भाषाओं की विज्ञान पत्रकारिता का एक सर्वेक्षण भी है जो हिन्दी विज्ञान लेखन की स्थिति के सापेक्ष मूल्यांकन हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। **दूसरे भाग** में हिन्दी की विज्ञान विषयक सामान्य पत्रिकाओं, शोध पत्रिकाओं, गृह-पत्रिकाओं, सन्दर्भग्रन्थों, पुस्तकों तथा शब्दावली के विषय पर अलग-अलग अध्यायों में विस्तार से चर्चा है। प्रत्येक अध्याय सम्बन्धित विषय के अतीत का ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए वर्तमान की कठिनाइयों का जिक्र करता है और उनके समाधान के लिए सकारात्मक सुझाव भी देता है। इसी क्रम में विज्ञान पत्रकारिता की विभिन्न विधाओं को अपने कलेवर में समेटे **चौथे भाग** की चर्चा कर लेना उचित होगा, क्योंकि पहले और दूसरे भाग की तरह यह भी हिन्दी विज्ञान साहित्य के इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस भाग में भी छः अध्याय हैं जो क्रमशः (i) विज्ञान समाचार, रिपोर्ताज और लेख (ii) विज्ञान कथा, उपन्यास और कविता (iii) विज्ञान नाटक और

रूपक (iv) विज्ञान चित्रकथा, व्यंग्यचित्र, हास्यव्यंग्य (v) वैज्ञानिक समीक्षा तथा (vi) वैज्ञानिक साक्षात्कार, भेंटवार्ता, परिचर्चा शीर्षक से पुस्तक में समाहित किए गये हैं। प्रत्येक अध्याय में सम्बन्धित विधा की प्रकृति को परिभाषित करते हुए उसके महत्व को उजागर किया गया है और उस विधा की कुछ रचनाओं/रचनाकारों का उदाहरण देकर नए लेखकों के मार्गदर्शन का अभिनन्दनीय प्रयास किया गया है।

पुस्तक के तीसरे एवं पाँचवें भाग तो विज्ञान के प्रतिष्ठित एवं नवोदित दोनों ही प्रकार के लेखकों के लिए केन्द्रीय महत्व के हैं। चार अध्यायों में विभक्त **तीसरा भाग** जहाँ विज्ञान पत्रकारिता के शिल्प एवं प्रविधि के बारे में उपयोगी जानकारी एवं मार्गदर्शन प्रदान करता है, वहीं **पाँचवें भाग** के पांच अध्याय विविध विषयों जैसे लेखकीय आचार संहिता, पत्रकारिता सम्बन्धी कानून, पत्रकारिता में प्रशिक्षण, रोजगार एवं पुरस्कार आदि जानकारी उपलब्ध कराते हैं। इसी भाग में लेखक ने हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के क्षेत्र में महसूस की जा रही बाधाओं की चर्चा करते हुए अपने समाधान भी सुझाए हैं।

पूरी पुस्तक अत्यन्त रोचक, सूचनाप्रदा एवं ज्ञानवर्द्धक है। भाषा एवं प्रूफ सम्बन्धी भूलें नहीं के बराबर हैं। कहीं-कहीं एक अध्याय में दी गई जानकारी दूसरे अध्याय में दुहरा दी गई है, पर पुस्तक की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए ऐसे दुहराव से बच पाना कठिन है। विरामचिह्नों, विशेषकर अल्पविराम के प्रयोग में अंग्रेज़ी का प्रभाव यत्र-तत्र झलकता है। एक बात और ! पुस्तक में वर्णित विषय सामग्री की विविधता/व्यापकता को देखते हुए पुस्तक का शीर्षक 'हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता' कुछ कमजोर जान पड़ता है। विशेषकर, पुस्तक के चौथे भाग में वर्णित अधिकांश विधाएँ मेरी दृष्टि में 'पत्रकारिता' की सीमा में न आकर 'साहित्य' के व्यापक अर्थ में ही समाहित की जा सकती हैं।

बहरहाल, इन छोटी-छोटी कमियों के बावजूद इस 'बड़ी' पुस्तक का महत्व कम नहीं होता। अत्यन्त लगन और परिश्रम से लिखी तथा आकर्षक रूप में छपी इस पठनीय और संग्रहणीय पुस्तक के लिए लेखक और प्रकाशक को कोटिशः बधाई ! हाँ, यदि प्रकाशक इस ऐतिहासिक महत्व की पुस्तक का सस्ता पेपर बैक संस्करण भी बाज़ार में उपलब्ध करा सके तो नवोदित लेखकों और हिन्दी भाषा का बहुत भला हो।

□□

—अनिल कुमार शुक्ल

डॉ० जगदीप सक्सेना की पुस्तक पुरस्कृत

डॉ० जगदीप सक्सेना को भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने हिन्दी में मौलिक विज्ञान लेखन के लिए पाँच हज़ार रुपये के तीसरे पुरस्कार से सम्मानित किया है। यह पुरस्कार उनकी कृति 'विश्व प्रसिद्ध मांसाहारी तथा अन्य विचित्र पेड़-पौधे' के लिए दिया गया है (पुस्तक परिचय के लिए 'विज्ञान' अगस्त-सितम्बर, 1990 अंक देखें)। यह पुरस्कार गत 17 सितम्बर को भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी राज्य मंत्री श्री म० गो० कु० मेनन ने प्रदान किया।

डॉ० सक्सेना इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र रहे हैं। वह पिछले 10 वर्षों से हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान लेखन में रत हैं। राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अब तक उनके 300 से ज़्यादा लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उपर्युक्त कृति के अलावा डॉ० सक्सेना ने दो पुस्तकें और भी लिखी हैं। विज्ञान परिषद् से डॉ० सक्सेना का पुराना सम्बन्ध है। उन्होंने विज्ञान लेखन की शुरुआत 'विज्ञान' पत्रिका के माध्यम से की थी। वे विज्ञान परिषद् की दिल्ली शाखा के कार्यकारिणी के सदस्य हैं। वर्तमान में भारत कृषि अनुसंधान परिषद् में सहायक संचालक (हिन्दी) के पद पर कार्यरत हैं। विज्ञान परिषद् की ओर से उन्हें शुभकामनाएँ।

प्रिय पाठकगण !

'विज्ञान' का अक्टूबर 1990 अंक आपके सामने है। अक्टूबर माह की अपनी विशेषता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसका बहुत महत्व है। 2 अक्टूबर को ही विश्व की दो महान् विभूतियों—**राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी** और देश के लाडले **प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री** का जन्म हुआ था। ये दोनों ही महान आत्माएँ हमारी प्रेरणा स्रोत हैं। अक्टूबर माह का प्रथम सप्ताह 'वन्य जीवन संरक्षण सप्ताह' और 9 अक्टूबर 'विश्व डाक टिकट दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

वन्य जीवन संरक्षण के लिए जो सबसे बड़ी आवश्यकता है, वह है वनों की सुरक्षा, क्योंकि बिना वनों के वन्य जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

'वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980' में वनीकरण पर विशेष बल दिया गया है। 'नयी राष्ट्रीय वन नीति' के अन्तर्गत पर्यावरण में स्थिरता बनाये रखने, पारिस्थितिक तन्त्र के विभिन्न घटकों में संतुलन कायम रखने और नैसर्गिक वनों को सुरक्षित रखने का प्रावधान है। इसमें आदिवासियों और जंगलों में 'सहजीवी' (Symbiotic) सम्बन्ध का ध्यान रखा गया है ताकि आदिवासियों के दैनन्दिन जीवन की आवश्यकताएँ जंगलों से पूरी होती रहें। अतएव वनीकरण और वृक्षारोपण 'नयी राष्ट्रीय वन नीति' की विशेषता है। यही नहीं, 1980 के 'वन संरक्षण अधिनियम' के कठोरता से पालन के लिए इसमें आवश्यक संशोधन भी किए गए हैं।

1972 के वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम में भी, बदलती परिस्थितियों के अनुरूप, परिवर्त्तन किए गए हैं। आज देश में 67 'राष्ट्रीय पार्क' और 394 'अभयारण्य' हैं। 'स्नो-लेपर्ड (साह) कंजरवेशन प्रोजेक्ट' के तहत हिमालय क्षेत्र में 12 'स्नो-लेपर्ड रिजर्व' निर्मित करने का निश्चय किया गया है।

भारत में हाथियों की संख्या में लगातार गिरावट आ रही है। इसका कारण मुख्य रूप से हाथी-दाँत के लिए हाथियों का शिकार है। नर-मादा की सानुपातिक संख्या में असंतुलन के कारण लैंगिक-प्रजनन भी प्रभावित हुआ है। यह निश्चय ही चिन्ता का विषय है। इसी कारण 'बाघ परियोजना' की ही भाँति 'हाथी परियोजना' प्रारम्भ करने का भी सरकार ने हाल ही में निश्चय किया है। इस नयी परियोजना का श्रीगणेश कर्नाटक राज्य से प्रारम्भ होगा।

कुछ लोगों का मानना है कि हमारी सरकार बड़े वन्य जीवों के संरक्षण पर बल दे रही है, पर छोटे जानवरों का संरक्षण उपेक्षित रह गया है। पर वास्तविकता यह नहीं है। जब बाघ और हाथी जैसे बड़े जीवों का संरक्षण होगा तो इनके आवास-जंगलों-का भी संरक्षण होगा और यदि इन बड़े जानवरों के नैसर्गिक आवास सुरक्षित रहेंगे तो इन आवासों में नाना प्रकार की जीव जातियाँ अपने आप पनपेंगी। किन्तु नैसर्गिक वन अपने वन्य जीवन के साथ तभी सुरक्षित रह सकते हैं जब हम वनों से मात्र उतना ही लें जितना देने के बाद वनों के जीवन को ख़तरा न हो। वन सम्पदा का दोहन विवेकपूर्ण होना चाहिए और वनों को सुरक्षित रखने का सबसे कारगर तरीका है 'सामाजिक वानिकी'। नैसर्गिक वनों के बाहर के क्षेत्र में सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों की विशेष भूमिका है, महत्ता है, आवश्यकता है।

किन्तु इसी अक्टूबर माह में देश को एक बड़ी अपूरणीय क्षति भी सहनी पड़ी। देश के वयोवृद्ध नेता, स्वतन्त्रता सेनानी, देशभक्त, साहित्यकार, पत्रकार **पं० कमलापति त्रिपाठी** का 7-8 अक्टूबर की रात्रि में स्वर्गवास हो गया। इसके पूर्व 5 अक्टूबर को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अवकाशप्राप्त हिन्दी विभागाध्यक्ष **डॉ० रामकुमार वर्मा** का भी निधन हो गया। डॉ० वर्मा स्वतन्त्रता सेनानी, नाटककार, कवि और प्रख्यात समीक्षक थे। इन दोनों ही महानुभावों के संसार से विदा लेने से देश को और हिन्दी जगत् को जो क्षति हुई है वह पूरी नहीं हो सकती। अपने कृतित्व में अवश्य ही ये अमर रहेंगे सदियों तक और आने वाली पीढ़ियों को अनुप्राणित करते रहेंगे। इन्हें विज्ञान परिषद् परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है।

आपका
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

वन्य जीव संरक्षण : विचार गोष्ठी की आवश्यकता

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मित्रो ! आज की विचार गोष्ठी में मैं आप सभी का हृदय से स्वागत करता हूँ। जैसा कि आप सब को विदित है, हम यहाँ वन्य जीव संरक्षण' विषय पर विचार-विमर्श के लिए एकत्र हुए हैं। वन्य जीव संरक्षण सप्ताह चल रहा है। आज हमारे देश में वन्य जीवों के संरक्षण के लिए 67 राष्ट्रीय उद्यान और 394 अभयारण्य हैं। इनकी सहायता से अनेक ऐसी जीव जातियों की संख्या में वृद्धि भी हुई, जो विलुप्तिकरण के कगार पर पहुँच गयी थीं। बाघ और घड़ियाल तो मात्र प्रतीक हैं। जानवरों के आवास सुरक्षित होने से छोटे-बड़े अनेक जीव-जन्तु और वनस्पतियों को इन नैसर्गिक आवासों में जीवनदान मिला है। पर क्या हमारे कर्तव्य की इतिश्री हो गई ? क्या जनमानस में इनके प्रति दया या ममता का भाव उदय हो सका ? क्या तात्कालिक लाभ के लिए हम आज भी अवैध शिकार नहीं कर रहे हैं ? और यदि इन प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक हैं तो आज भी वन्य जीवों के संरक्षण पर जगह-जगह विचार-गोष्ठियाँ आयोजित करके वन्य जीव संरक्षण के प्रति लोगों में चेतना जाग्रत करने की आवश्यकता बनी हुई है। और इसी उद्देश्य से आज की इस विचार गोष्ठी का आयोजन भी किया गया है। मेरा आपसे विनम्र निवेदन है कि आप अपने विचार अवश्य ही सामने रखें। कहावत है "बूँद-बूँद से घट भरे"। □□

पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं वन्य जीव

प्रमोद कुमार शुक्ल

किसी भी स्थान विशेष के पर्यावरण, वहाँ की पारिस्थितिकी एवं वहाँ निवास करने वाले वन्यजीवों के स्वभाव, रूप एवं क्रिया-कलापों में पारस्परिक सामंजस्य होता है। जीव वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि किसी भी जीव प्रजाति को काफ़ी लम्बे समय तक पृथ्वी पर अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए स्थान विशेष की बदलती जलवायु तथा पर्यावरण के परिवर्तन के अनुरूप अपने को ढालना पड़ता है। क्योंकि ऐसा न कर पाने से जीव प्रजाति अन्ततः विलुप्त हो जाती है।

पर्यावरण पारिस्थितिकी के अलावा अन्य कारण भी वन्य जीवों के वंशनाश अथवा विलोपीकरण के लिए उत्तरदायी हैं, जिसमें प्रमुख अनियन्त्रित एवं निष्प्रयोजित शिकार, खेती का विस्तार तथा वनों का विनाश है। हालाँकि वन्य जीवों की हत्या हमारी प्राचीन कमज़ोरी है लेकिन इसकी वर्तमान में स्थिति जितनी चिन्तनीय है उतनी कभी भी नहीं थी। इस बात का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि हमारे वन्य जीवों का गौरव शेर सिर्फ गिरि वन के जंगलों में ही सीमित रह गया है। इसके अलावा नीलगाय, गैंडा, सफ़ेद शेर, जंगली भैंसा, कस्तूरी मृग, गोडावण पक्षी आदि का सर्वाधिक विनाश हुआ है, जिसके परिणाम स्वरूप स्थानीय पारिस्थितिकी तन्त्र असन्तुलित हो गया है। इससे वन्य जीवों का संरक्षण आवश्यक हो गया है, ताकि प्रकृति में सन्तुलन बनाये रखा जा सके।

वन्य जीव संरक्षण के लिए विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 'प्रकृति संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय

शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद—211002

एकता' तथा राष्ट्रीय स्तर पर 'भारत वन्य प्राणी बोर्ड' की स्थापना की गई है । इसके अलावा अनेक सरकारी व गैर सरकारी संस्थाएँ इस क्षेत्र में कार्य कर रही हैं । 'राष्ट्रीय वन्य जीव कार्य योजना' 'प्रकृति शिक्षा कार्यक्रम', 'चिपको आन्दोलन', 'वन महोत्सव', प्रोजेक्ट टाईगर, मृदा जल और वृक्ष सम्बन्धी योजना' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इससे जन-साधारण में वन्य जीवों, दुर्लभ वनस्पतियों एवं वनों की रक्षा हेतु जागृति उत्पन्न हुई है तथा पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन में निश्चित रूप से सहायता मिली है ।

सरकार ने इसके अतिरिक्त भारतीय वन्य जीव संरक्षण कानून, 1972 में पारित कर इनके शिकार पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया है । साथ ही वन्य जीवों के संरक्षण, स्वछन्द विचरण के लिए देश के विभिन्न भागों में राष्ट्रीय उद्यान तथा अभ्यारण बनाये गये हैं । □□

बाघ परियोजना

राजेश कुमार केसरी

अक्टूबर माह का प्रथम सप्ताह हम वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए हर वर्ष वन्य जीव संरक्षण' सप्ताह के रूप में मानते हैं । यह हम सभी जानते हैं कि बाघ राष्ट्रीय पशु है । यह भारत के जंगलों में पाया जाता रहा है । इसमें विभिन्न प्रकार के वातावरण के अनुरूप अपने आप को ढाल लेने की विशेष क्षमता होती है । जहाँ तक बाघों की संख्या का सवाल है, एक ब्रिटिश वैज्ञानिक के अनुसार भारत में बाघों की संख्या इस शती के प्रारंभ में लगभग 40,000 थी । उस समय बाघों का शिकार प्रतिष्ठा की बात तो थी ही, शौर्य का प्रतीक भी था ।

सन् 1969 में दिल्ली में प्रकृति व प्राकृतिक संपदा की अंतर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा एक विचार गोष्ठी सम्पन्न हुई जिसमें एक चौंकाने वाला तथ्य उभर कर सामने आया कि भारत में बाघों के निरन्तर शिकार से बाघों की संख्या 2500 के लगभग ही रह गयी है । इस स्थिति को देख कर बाघों को (आई० यू० सी० एन० I. U. C. N.) की 'लाल पुस्तक' की लुप्त जन्तुओं की सूची में शामिल कर लिया गया । इसका परिणाम यह हुआ कि भारत सरकार ने 1970 में बाघों के शिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया । शिकार पर बावजूद प्रतिबंध के, 1972 में इनकी संख्या घट-कर 1827 ही रह गई ।

बाघों की निरन्तर घटती संख्या से चिंतित पर्या-वरणविदों और भारत सरकार के सत् प्रयासों के परि-णामस्वरूप ऐसे अभयारण्यों की स्थापना का विचार आकार ग्रहण करने लगा जिसमें संकटापन्न जीव प्रजा-तियों का संरक्षण हो सके ।

संकटापन्न प्रजातियों, विशेष रूप से बाघों, के संरक्षण हेतु 'बाघ परियोजना' (प्रोजेक्ट टाइगर) शुरू की गयी जो बहुत सफल रही ।

इस परियोजना का श्रीगणेश 1973 में पहली अप्रैल को कार्बेट अभयारण्य में प्रारम्भ किया गया । इस समय देश के 13 राज्यों के 18 अभ्यारण्यों में 'बाघ परियोजना' सफलतापूर्वक चल रही है । ये अभ-यारण्य निम्नवत् हैं ।

1. कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान
2. कान्हा राष्ट्रीय उद्यान
3. इन्द्रावती राष्ट्रीय उद्यान
4. रणथम्भोर राष्ट्रीय उद्यान
5. सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान
6. मेलाघाट अभयारण्य
7. पलामू बाघ परियोजना
8. उत्तर सिमलीपाल राष्ट्रीय उद्यान
9. बक्सा अभयारण्य
10. सुन्दरवन राष्ट्रीय उद्यान
11. मानस अभयारण्य
12. नामदफा राष्ट्रीय उद्यान

बी. एस-सी. तृतीय वर्ष (जीव विज्ञान), सी. एम. पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद—211002

13. नागार्जुन सागर श्रीशैलम अभयारण्य
14. बाँदी राष्ट्रीय उद्यान
15. पेरियार राष्ट्रीय उद्यान
16. दुधवा राष्ट्रीय उद्यान
17. कलाकंड तथा मुंडनथुरई वन्य प्राणी अभयारण्य
18. बाल्मीकि बाघ परियोजना

अभयारण्यों के भीतर वृक्षों को काटना, मवेशियों को चराना निषिद्ध कर दिया गया है। पर्यटकों को भी केवल एक निश्चित क्षेत्र में ही घूमने की आज़ादी होती है, जिससे जीव-जन्तुओं को कोई नुकसान न हो।

सन् 1986 में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार बाघों की कुल संख्या 4000 थी। प्रत्येक अभयारण्य में बाघों की संख्या की गिनती भी की जाती है।

'बाघ परियोजना' को शुरू हुये 16 वर्ष हो चुके हैं। 'बाघ परियोजना' से सिर्फ़ बाघों का संरक्षण ही नहीं हुआ है बल्कि अन्य वन्य जीवों का भी संरक्षण हुआ है। बाघ तो मात्र एक प्रतीक है। बाघ के संरक्षण के लिए जंगलों की आवश्यकता होती है और जंगलों में बाघों के साथ अन्य जीवों को भी आवास मिल जाता है। जंगल जानवरों का नैसर्गिक आवास है। कई प्रकार के जीव जैसे गैंडा, बन्दर, मृग, हाथी आदि का भी संरक्षण वनों में स्वतः हो जाता है। इससे बाघों को भोजन भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाता है। वनों का न केवल जानवरों के लिए वरन् मानवों के लिए भी विशेष महत्त्व है। वनों से, वनों के निकट रहने वालों की रोज़ाना की तमाम ज़रूरतें भी पूरी होती रहती हैं।

'बाघ परियोजना' से न सिर्फ़ बाघ बल्कि देश के विभिन्न प्रकार के वन्य जीवों और वनस्पतियों का भी संरक्षण हुआ है। □□

वन एवं वन्य जीव संरक्षण

विनय कुमार

पिछले कुछेक दशकों से पर्यावरण के प्रति मानवीय चेतना में ज़बरदस्त बदलाव आया है। वैसे पर्यावरण सदैव परिवर्तनशील रहा है। विकास-क्रम में असंख्य जीव-जन्तु और वनस्पतियों की जातियों का इस धरती पर जन्म हुआ, जिनमें से बहुत सी अपने को बदलते पर्यावरण में अनुकूलित न कर सकने के कारण विलुप्त हो गईं। मीसोज़ोइक काल के विशाल-काय डाइनोसोरों का धरती से विलुप्त होना इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। अतएव यदि हमने शीघ्र ही प्रयास न किये तो अनेक जीव जातियों का इस धरती से लोप हो जायेगा।

पर्यावरण में स्थिरता बनाये रखने के लिए वनों की प्रमुख भूमिका होती है। स्वतन्त्रता के बाद सर्व-प्रथम 'राष्ट्रीय वन नीति' 1952 में अपनायी गई, जिसका उद्देश्य देश के कुल भूमि-क्षेत्र के एक तिहाई भाग को वन क्षेत्र के अन्तर्गत लाना था। इससे जहाँ एक ओर मनुष्य के उपभोग के लिए वन-उत्पादों की उपलब्धता बढ़ाना मुख्य उद्देश्य था, वहीं दूसरी ओर इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव वन्य जीवों के संरक्षण पर भी पड़ा। परन्तु भारत सरकार ने सर्वप्रथम वन्य जीवों के संरक्षण के लिए वर्ष 1972 में संविधान में वन्य जीव (सुरक्षा) अधिनियम पास करके उनके संरक्षण के लिए अपनी चिन्ता व्यक्त की। अधिनियम में वन्य जीव-जन्तुओं को चार अनुसूचियों में विभाजित किया गया, जिसके अनुसार प्रथम अनुसूची वाले समस्त प्राणियों को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुरक्षा प्रदान करने का प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। प्रथम अनुसूची में कुछ जीव-जन्तु हैं जैसे—सोनालू, मोनल, बाघ, हाथी, तेंदुआ, सिंह, कार्सर तथा हॉर्नबिल। जो प्राणी 2 से 4 तक की अनुसूचियों में दर्ज हैं वे हालाँकि विलुप्तिकरण के ख़तरे से अपेक्षाकृत कुछ दूर हैं, तथापि उनकी सुरक्षा सुनिश्चित की जानी चाहिए। जैसे—नीलकंठ, कठफोड़ा, आदि। इसके लिए भारत सरकार ने जन चेतना विकसित

शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद—211002

करने के लिए वन्य प्राणियों तथा उससे जुड़ी संस्थाओं पर टिकट जारी किये, पोस्ट कार्डों पर भी बाघ, हाथी तथा मोर जैसे प्राणियों को चित्रित किया। परन्तु यह प्रयास स्तनी तथा पक्षी वर्ग के प्राणियों तक ही सीमित रहा है।

'वन्य जीव (सुरक्षा) अधिनियम 1972' को संशोधित कर उन प्रजातियों के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, जिनके अस्तित्व के लिए अब ख़तरा पैदा हो गया है। बाघों की आबादी बचाये रखने के उद्देश्य से "बाघ परियोजना" का प्रारम्भ वर्ष 1970 में बाघ के प्रमुख आवास वाले देशों— भारत, नेपाल, भूटान तथा बांग्लादेश में प्रारम्भ की गई हैं, जो भारत में अब तक 26·643 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 13 राज्यों में बाघ सुरक्षित क्षेत्र, 67 राष्ट्रीय उद्यान तथा 394 अभयारण्यों में काम कर रही है। वर्तमान में भारत में 18 बाघ आवासों को 'बाघ परियोजना' में शामिल किया जा चुका है। बाघ की महत्ता को नेपाली जनता को जताने के लिए 1975 में नेपाल सरकार ने भी 2 पैसे का डाक टिकट, 'हुलाक टिकट' नाम से जारी किया।

बाघ की तरह ही हाथियों की संख्या, विशेष कर दंतैल नरों की संख्या, तेजी से घट रही है। जंगलों में मादा हाथी तथा मखनों (हाथी दाँत रहित नर) की संख्या बढ़ रही है। दंतैल नरों के अवैध शिकार से दंतैल नर तथा मादा हाथियों का लैंगिक अनुपात गड़बड़ा गया है। भारत में हाथियों की बिगड़ती हालत की ओर यू० सी० एन० द्वारा भी रूस में आयोजित अपने सम्मेलन में चिन्ता व्यक्त की गई थी, तथा इससे भारत सरकार को भी अवगत कराया गया। परिणामस्वरूप देश में 'हाथी सुरक्षा अधिनियम' लागू कर दिया गया है।

अगर आज भी हम मानव स्वार्थ के आगे घुटने टेकते रहे तो **डोडो, चित्तीदार हिरनों, सफेद हाथी** आदि विलुप्त जानवरों के क्रम में **हाथी, शेर, बाघ** जैसे जानवरों के नाम जुड़ते जायेंगे। शायद भविष्य में हम आगामी पीढ़ी को, इन जानवरों के विलुप्त होने पर, चित्रों द्वारा ही इनके बारे में जानकारी दे सकें। जैसे आज डाइनोसोरों के विषय में करते हैं। परन्तु भारत सरकार द्वारा व अन्य संस्थाओं द्वारा किये जा रहे प्रयास भविष्य में आशा का संचार करते हैं। आज इस अवसर पर हम वन्य प्राणियों के बारे में, विशेषकर बच्चों में, उनके प्रति आकर्षण पैदा करके उन प्राणियों के भविष्य को सुरक्षित करने का सार्थक प्रयास कर सकते हैं। इसके लिए शिक्षाशास्त्री, बच्चों के पाठ्यक्रम में वन्य जीवों के बारे से रुचिपूर्ण जान-जानकारी शामिल करके, महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं। □□

आँसू घड़ियाल के : मगर नकली नहीं असली

डॉ० विजय कुमार श्रीवास्तव

घड़ियाल को आमतौर पर लोग नकली "घड़ियाली आँसुओं" के लिए जानते हैं। पर यह अपनी सुन्दर और मजबूत खाल के लिए भी कम लोकप्रिय नहीं। इसी के चलते घड़ियाल का खूब संहार भी हुआ है। सौभाग्य से सरकारी प्रयासों ने इसे काफी हद तक बचा लिया है। संकट फिर भी पूरी तौर पर टला नहीं है।

"घड़ियाली आँसू" कहावत बहुत पुरानी है। मतलब है नकली आँसू। शायद घड़ियाल के नकली आँसुओं का तात्पर्य उसकी आँख के पास स्थित लवण ग्रन्थियों द्वारा स्रावित होने वाले रंगहीन द्रव से है। इस प्रक्रिया द्वारा यह अपने शरीर में उपस्थित अधिक लवण को शरीर से बाहर निकालता है।

परन्तु समय के साथ-साथ अनेक परिवर्तन होते

सम्पर्क सूत्र—720 सरस्वती विहार, दिल्ली—110034

देखे गये हैं। कल की कहावतें आज सच्चाई बन गई है। यही हुआ है इस "घड़ियाली आँसू" के साथ। वर्तमान परिवेश में घड़ियाल के आँसू नकली नहीं है वरन् आज यह अपने विनाश पर वास्तव में रो रहा है। कुछ वर्षों पूर्व तो यह विलुप्ति के कगार पर पहुँच कर अपने अस्तित्व के लिए ही जूझ रहा था। एक सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1974 में भारत में केवल 60 घड़ियाल बचे थे। शेष विश्व में तो स्थिति और भी खराब थी। जहाँ पहले घड़ियाल की अनेक प्रजातियाँ पायी जाती थीं वहाँ अब इनकी केवल तीन ही प्रजातियाँ पायी जाती हैं। शेष इस धरा से विलुप्त हो चुकी हैं।

इनके विनाश का भी मुख्य कारण आज का स्वार्थी मनुष्य ही है जो स्वयं को सबसे अधिक सभ्य बता कर चन्द चाँदी के टुकड़ों की लालच में अन्य सभी जन्तुओं को अन्धाधुन्ध मारता जा रहा है। घड़ियाल की सुन्दर खाल ही इसकी सबसे बड़ी शत्रु है। विदेशों में यह सोने के भाव बिकती है। इससे अनेक वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। कुछ आदिवासी जातियाँ इसके अण्डों को खाती हैं और जब अण्डे ही नहीं रहेंगे तो बच्चे कहाँ से आएँगे ?

सौभाग्य से भारत सरकार का ध्यान समय रहते इस गम्भीर समस्या की ओर आकर्षित हुआ और इनकी सुरक्षा की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए प्रसिद्ध आस्ट्रेलियाई वैज्ञानिक **श्री बस्टर्ड** को भारत निमन्त्रित किया गया। श्री बस्टर्ड ने इस समस्या का गहन अध्ययन किया। उन्होंने अपनी विस्तृत रिपोर्ट में बताया कि इनके अस्तित्व की रक्षा तो हो सकती है, आवश्यकता है बिना किसी अतिरिक्त विलम्ब के तुरन्त युद्धस्तरीय प्रयास की। उनका परिश्रम व्यर्थ नहीं गया और 'संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम' के अन्तर्गत 'खाद्य एवं कृषि संगठन' द्वारा घड़ियालों की सुरक्षा के लिए एक परियोजना प्रारम्भ की गयी। इसमें भारतीय वन्य जीव अधिकारियों द्वारा विशेषज्ञों की सहायता लेने की व्यवस्था थी।

फिर क्या था, भारत सरकार के अनुरोध पर श्री बस्टर्ड ने कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने हैदराबाद स्थित 'केन्द्रीय क्रोकोडायल प्रजनन एवं प्रबन्ध संस्थान' को अपना केन्द्र बनाया और जुट गये तन-मन से अपने काम में। सर्वप्रथम उन्होंने घड़ियालों की पुनः प्रतिष्ठा के लिए अभयारण्य बनाने की सलाह दी।

पहले बना **कुकरैल अभयारण्य**, जो लखनऊ से 13 किमी० दूर है। यह तो शुरुआत थी, जिसमें उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश की सीमा पर बहने वाली चम्बल नदी के तट से घड़ियाल के 28 अण्डे लाकर इनका पालन-पोषण शुरू हुआ और आज तो वहाँ छोटे से लेकर बड़े तक हजारों की संख्या में घड़ियाल हैं। इसकी सफलता से प्रभावित होकर फिर तो कुछ ही वर्षों में अनेक अभयारण्यों की स्थापना हुई। इनमें प्रमुख हैं : उत्तर प्रदेश की उत्तरी सीमा पर बहराइच के पास कर्तनियाघाट में, राजस्थान में रानाप्रताप सागर बाँध के समीप, उड़ीसा में नन्दन कानन अभयारण्य तथा मध्यप्रदेश में चम्बल नदी के तट पर चम्बल राष्ट्रीय अभयारण्य।

भारतवर्ष में घड़ियाल की तीन प्रजातियाँ पायी जाती हैं।

1—मगर (**क्रोकोडायलस पलुस्ट्रिस**)

2—घड़ियाल (**गेवियालिस गैंजेटिकस**)

3—नदियों के मुहानों पर पाया जाने वाला घड़ियाल (**क्रोकोडायलस नोरोसस**)

उड़ीसा के **नन्दन कानन अभयारण्य** की स्थापना तीसरी प्रजाति के घड़ियाल के लिए की गई थी। इसकी स्थापना दो मादा तथा एक नर घड़ियाल को लेकर हुई थी। इसकी सफलता से प्रभावित होकर उड़ीसा सरकार ने राज्य में तीन अन्य परियोजनाएँ प्रारम्भ की हैं। सतकोसिया जार्ज में घड़ियाल, भिटारकेनका में क्रोकोडायलस नोरोसस तथा सिमलीपाल में मगर के लिए।

"घड़ियाल बचाओ अभियान" बहुत अधिक खर्चीला भी नहीं है। अब तक 20-30 लाख रुपये इस अभियान में संलग्न कर्मचारियों एवं उनकी आवास व्यवस्था पर खर्च हुए हैं। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष

लगभग 4-5 लाख रुपये इनके रख-रखाव पर खर्च होते हैं। इसका अधिकांश इनके खाने पर खर्च होता है।

प्रत्येक वर्ष फरवरी माह में "घड़ियाल बचाओ अभियान" अपने कर्मचारियों को सुदूरवर्ती नदी तटों पर इनके अण्डों की तलाश में भेजता है। अण्डों को लकड़ी के डिब्बों में रेत के साथ रख कर लाया जाता है तथा अभयारण्यों में लाकर इनको रेत से भरे हुए कक्षों में रख दिया जाता है। यहाँ पर अण्डों के विकास के लिए आवश्यक उचित तापक्रम एवं नमी बनाये रखने के हर सम्भव प्रयास किए जाते हैं। लगभग 8-10 सप्ताह में अण्डों से बच्चे निकल आते हैं।

घड़ियाल के बच्चों को उनकी आयु के अनुसार विभिन्न प्रकार के बाड़ों में रखा जाता है। ये बाड़े बाहर से देखने में पौध घर के समान होते हैं। ये ऊपर से तार की जाली से ढँके रहते हैं, जिसके अन्दर कई छोटे-छोटे तालाब बने होते हैं। प्रत्येक तालाब में कई बच्चे एक साथ रखे जाते हैं। निश्चित समयान्तराल पर तालाबों का पानी बदलते रह कर उसे साफ़ रखने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार इन प्राणियों के स्वास्थ्य के प्रति विशेष ध्यान दिया जाता है।

वन्य-प्राणी प्रेमियों एवं भारत के अथक प्रयास से एक समय तेज़ी से विलुप्त होने वाले घड़ियाल के ऊपर से संकट के बादल अब छँट गये हैं। वर्तमान समय में तो विभिन्न अभयारण्यों में ये हज़ारों की संख्या में पल रहे हैं। इस समय इनकी संख्या इतनी हो गई है कि सरकार अब इनका निर्यात करने की सोच रही है। परन्तु निर्यात के लिए कोई भी नीति तैयार करते समय इस बात को ध्यान में रखना होगा कि इनका अस्तित्व फिर से संकट में न पड़ जाए। □□

कैसे होते हैं जुड़वा बच्चे

प्रो० सीताराम सिंह 'पंकज'

गाँव-देहातों या शहरों में जुड़वा बच्चों का होना एक आम घटना है। कभी-कभी तो दो की जगह चार-पाँच बच्चे भी एक ही साथ जन्म लेते हैं। प्रायः ऐसे बच्चों का जन्म किसी दैवी घटना का परिणाम बताया जाता है। किन्तु, इसके विपरीत जुड़वा या अनेक बच्चों के जन्म के पीछे ठोस वैज्ञानिक कारण होते हैं। कहते हैं, आस्ट्रेलिया में एक महिला ने छः बार के प्रसवों में 32 बच्चों को जन्म दिया था। मनुष्यों में मुख्यतः तीन प्रकार के यमज पाए जाते हैं—

1. असमरूपी यमज (Unidentical Twins),
2. समरूपी यमज (Identical Twins)
3. स्यामीज़ यमज (Siamese Twins)

1. असमरूपी यमज (Unidentical Twins)

वयस्क स्त्रियों में साधारणतः प्रतिमाह एक अंडाणु परिपक्व होते हैं। यह क्रम चालीस वर्ष की आयु तक चलता रहता है। किन्तु अपवादस्वरूप कभी-कभी एक ही समय में दो अंडाणु (Ova) परिपक्व हो जाते हैं। अगर इनका निषेचन (Fertilization) दो शुक्राणुओं (Sperms) से होता है, तो दो युग्मनज Zygotes) बन जाते हैं। इनके क्रमिक विकास से दो बच्चे बनते हैं। ये दोनों बच्चे लड़के या लड़कियाँ या एक लड़का और एक दूसरा लड़की होती है। चूँकि ऐसे यमज दो अलग-अलग युग्मनजों से बनते हैं, अतः इन्हें असमरूपी यमज या द्विअण्डज यमज (Dizygotic or Fraternal Twins) कहते हैं। दोनों युग्मनजों में जीन की भिन्नता के कारण ऐसे बच्चों में भिन्नता होती है। ऐसे बच्चों के स्वभाव, रंग-रूप आदि में भी भिन्नता होती है। साधारणतः ये एक ही पिता की संतानें होती हैं। किन्तु इसके विपरीत यह देखा गया है कि ये दो पिताओं की संतान भी हो सकती हैं।

2. समरूपी यमज (Identical Twins)

समरूपी यमज का अर्थ है समान जुड़वा। ऐसे

अध्यक्ष, जन्तुविज्ञान विभाग, के० एस० आर० कॉलेज, सरायरंजन, समस्तीपुर, बिहार

जुड़वा दोनों लड़की या दोनों लड़के होते हैं। ग़रज यह कि ऐसे जुड़वा बच्चों का लिंग समान होता है। दर-असल होता यह कि एक निषेचित अंडा (Fertilized egg) जब दो भागों में बँटता है, तब ये दोनों अर्द्धभाग अलग होकर एक-एक भ्रूण (embryo) बनाते हैं। चूंकि ऐसे यमज एक ही अंडे से विकसित होते हैं, अतः इन्हें समरूपी यमज (Monozygotic Twins) कहते हैं। ऐसे यमजों का रूप-रंग, आकार-प्रकार, व्यवहार, मानसिक क्षमताएँ, इच्छायें समान होती हैं। ऐसे यमजों का जीनी-संगठन (Genetic Constitution) समान होता है।

आनुवंशिक विज्ञान में ऐसे समरूपी यमजों का बड़ा महत्व है। इन्हें विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उनके आनुवंशिक लक्षणों पर वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। ऐसे यमजों पर किए गए शोध कार्यों से ज्ञात होता है कि जीवों के शारीरिक, मानसिक एवं अन्य लक्षण उनकी जीनी संरचना तथा पर्यावरण की पारस्परिक क्रिया का परिणाम है।

3. स्यामीज़ यमज (Siamese Twins)

ऐसे यमज समरूपी यमज के ही विशिष्ट प्रकार होते हैं। इस प्रकार के जुड़वा बच्चों के शरीर एक दूसरे से कहीं न कहीं जुड़े रहते हैं। ये जुड़वा सदैव समलिंगी होते हैं क्योंकि इनका विकास एक ही निषेचित डिम्ब के अपूर्ण विभाजन (Incomplete division) से होता है। चूंकि ऐसे यमज सर्वप्रथम स्याम देश (अब जिसे थाइलैण्ड कहते हैं) में देखे गए थे, अतः इन्हें स्यामीज यमज कहते हैं। ऐसे यमज प्रायः अल्प जीवी होते हैं। किंतु असमरूपी या समरूपी यमज सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं। स्यामीज़ यमज जन्म के समय या कुछ दिनों बाद मर जाते हैं। वैसे कभी-कभी ये वर्षों जीवित भी रहते हैं।

जुड़वा बच्चों का महत्व (Importance of Human Twins)

आनुवंशिक विज्ञान के अध्ययन में यमजों का विशेष महत्व है। पाल पॉपेनओ तथा न्यूमैन (Paul Popeneo & Newmann) ने यमजों पर अनेक महत्वपूर्ण प्रयोग किए हैं। उन्होंने दो मादा यमजों को दो अलग-अलग घरों में पाला-पोसा। दोनों का घर एक दूसरे से काफी दूर था और दोनों के वातावरण में भी काफी अंतर था। वर्षों बाद दोनों यमजों को एक दूसरे से मिलाया गया तथा उनके गुणों का अध्ययन करने पर देखा गया कि दोनों यमजों के रंग का चयन एक जैसा था। दोनों एक ही प्रकार के कपड़े पहनना पसंद करती थीं, यद्यपि दोनों के पहनने के ढंग में अंतर था। दोनों के मित्र भी लगभग समान प्रकृति के थे। दोनों बहनों की अभिरुचियों में भी समानता थी।

इन समानताओं के बावजूद दोनों बहनों के I. Q (आई० क्यू०) में अंतर था। दोनों के व्यक्तित्व में भी अंतर था। इस उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि जीवों के अधिकांश लक्षण उनकी जीनी संरचना तथा वातावरण की पारस्परिक क्रिया का परिणाम है।

दो से अधिक बच्चे

कभी-कभी एक स्त्री को एक से अधिक यानी तीन-चार बच्चे भी होते हैं। जब तीन बच्चे एक साथ पैदा होते हैं तो उन्हें तीर्यक (Triplet) कहते हैं। इस परिस्थिति में एक साथ दो डिम्ब परिपक्व होते हैं। ये अलग-अलग शुक्राणुओं से निषेचित होते हैं। इनमें से एक डिम्ब विभाजित होकर दो भ्रूणों का निर्माण करता है। इस प्रकार एक ही समय तीन भ्रूण विकसित होते हैं, जो क्रमशः तीन बच्चों को जन्म देते हैं।

जब चार बच्चे एक साथ पैदा होते हैं तो, उन्हें क्वार्ड्प्लेट (Quardruplet) कहते हैं। इस स्थिति में तीन डिम्ब एक ही साथ परिपक्व होते हैं। एक डिम्ब से दो भ्रूण तथा बचे दो डिम्बों से एक-एक भ्रूण बनते हैं। इस प्रकार चार भ्रूणों से चार बच्चे बनते हैं। साधारणतः मनुष्य तथा अन्य जंतुओं में बहुजनन के लिए एक से अधिक डिम्बों की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु आर्मडिलो में एक ही डिम्ब से चार भ्रूण विकसित हो सकते हैं। जाहिर है कि जुड़वा या एक से अधिक बच्चों का एक साथ जन्म होना कोई दैवी घटना नहीं है। इनके स्पष्ट वैज्ञानिक आधार होते हैं। □□

तकनीकी गुरु बनता जा रहा है भारत

विज्ञानवेत्ता

इस समय ब्रिटेन और यूरोपीय देशों की वैज्ञानिक संस्थाओं में तो यह हाल है कि यदि आप किसी वैज्ञानिक से उसके काम के बारे में या किसी वैज्ञानिक समस्या के बारे में बात करें तो वह बात खत्म होते ही वकील या डॉक्टर की तरह अपना बिल पकड़ा देगा। वैज्ञानिक जानकारी और सलाह का यह महत्व विकासशील देश भी पहचानें, इसमें भारत ने पहल की है। प्रस्तुत है हमारे "विज्ञानवेत्ता" जी की क़लम से यह सामयिक जानकारी।

अब यह बात सच है कि इंजीनियरी तथा तकनीकी प्रगति में भारत यूरोपीय देशों के बराबर है। जिस तरह का तकनीकी ज्ञान आज विकासशील देशों को चाहिए वह सब भारत में उपलब्ध है। भारत यही ज्ञान इन देशों को बाँट रहा है और स्वयं इस प्रयत्न में है कि वह इस क्षेत्र में और आगे बढ़े। दिल्ली में तीन दिन की एक क्षेत्रीय कार्यशाला सम्पन्न हुई जिसका विषय था—'टैक्नोलॉजी हस्तांतरण में सलाहकारों का योगदान।" इसमें एशिया तथा प्रशान्त क्षेत्र के लगभग तीस देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस वर्कशाप की एक महत्त्वपूर्ण सिफारिश यह भी थी कि तकनीकी हस्तांतरण बढ़ाने के लिए एशियाई देशों में ज़्यादा सहयोग हो। कुछ और ऐसे केन्द्र स्थापित किये जायँ, जिससे जिन देशों को तकनीकी जानकारी उपलब्ध नहीं है वह उन्हें मुहैया कराई जा सके। विज्ञान तथा टेक्नोलॉजी राज्यमन्त्री **प्रोफेसर एम० जी० के० मेनन** का कहना था कि भारत में तकनीकी ज्ञान के प्रसार के लिए सलाहकारों का सम्पूर्ण ढाँचा उपलब्ध है। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान विभाग के अन्तर्गत एक सलाहकार विकास केन्द्र पिछले सात साल से काम कर रहा है, जिसने विभिन्न क्षेत्रों में अनेक इंजीनियर सलाहकार तैयार किये हैं। प्रो० मेनन का कहना था कि "भारत सरकार के प्रौद्योगिकी-नीति सम्बन्धी वक्तव्य के आने के बाद से उस पर पूरी तरह अमल किया जा रहा है। हमने डिज़ाइन इंजीनियरी के योग को पूरी तरह समझा है।"

प्रश्न उठाया जा सकता है कि आज तकनीकी प्रगति के लिए सलाहकारों का ढाँचा बनाने की क्या ज़रूरत है? क्यों सब इतना तामझाम इकट्ठा किया जाय? क्यों इतना धन खर्च किया जाय? लेकिन यह सब इसलिए ज़रूरी है कि तकनीकी प्रगति बड़ी तेज़ी से हो रही है और किसी भी देश के लिए यह संभव नहीं है कि जिन देशों के पास तकनीक उपलब्ध है, उन्हें वह स्वयं विकसित कर ले। सलाह तथा जानकारी तो लेनी होगी। इस दशक में सारा यूरोप एक समूह बन रहा है तो यशियाई देश ही क्यों पिछड़े रहें? सारे संसार में तकनीकी प्रगति के लिए तेज़ी से परिवर्तन हो रहे हैं। कहते हैं कि आज से दस-बीस साल में ही संसार एकदम भिन्न होगा। कम्प्यूटर तथा दूरसंचार के सहयोग से दुनिया सिकुड़ गयी है। अब कहा जाने लगा है कि हमारा ग्रह एक गाँव बन गया है। सुपर कम्प्यूटरों के कारण तकनीकी प्रगति में एक अलग क्रांति आई है। जैव तकनीकी तथा नयी सामग्री के क्षेत्रों में नित नये आविष्कार हो रहे हैं। विकासशील देशों के लिए नये अवसर हैं।

यह ठीक है कि नया तकनीकी ज्ञान देश में हो रहे अनुसंधान तथा विकास से प्राप्त होता है। लेकिन इसके साथ-साथ बाहर से भी तकनीकी जानकारी लेनी होती है। इसलिए यह ज़रूरी है कि बाहरी तकनीकी ज्ञान का तालमेल हम अपने ज्ञान से बैठायें।

संपर्कसूत्र : श्री हरीश अग्रवाल, D-40, गुलमुहर पार्क, नई दिल्ली—110049, फोन : 669820

फिर हमें देखना होगा कि हमारे देश में सामाजिक परिस्थितियाँ कैसी हैं? रोज़गार की स्थिति अच्छी नहीं है। हमारी जनसंख्या ज्यादा है। तो कैसे हम ज्यादा से ज़्यादा लोगों के लिए सुविधाएँ उपलब्ध करा सकते हैं।

तकनीकी हस्तांतरण के लिए बंगलौर में एक एशियाई तथा प्रशान्त क्षेत्र केन्द्र काम कर रहा है, जिसके प्रतिनिधियों ने वर्कशाप में भाग लिया। केन्द्र के निदेशक का कहना था कि तकनीकी हस्तांतरण कोई आसान काम नहीं है।

पिछले कुछ वर्षों में केन्द्र ने तकनीकी कार्य प्रणालियाँ विकसित की हैं। ये एशियाई देशों में बहुत लोकप्रिय हैं। इनका उद्देश्य विकासशील देशों को नयी तकनीक अपनाने में क्षमता प्रदान करना है। यह अच्छा ही है कि भारत ने तकनीकी सलाह का महत्व बहुत पहले ही समझ लिया था। यह हमारी आयोजन प्रक्रिया का आवश्यक अंग बन गया है। दिल्ली के सलाहकार विकास केन्द्र ने ऊर्जा, रेलवे, सड़कों, हवाई यातायात, बंदरगाहों, दूरसंचार आदि के क्षेत्रों में शुरू से आख़िर तक तकनीकी जानकारी देने का काम किया है। पिछले 40 सालों में हमारा ऊर्जा उत्पादन 55 हज़ार मेगावाट हो गया है, जो 1995 तक बढ़कर एक लाख चार हज़ार मेगावाट हो जायेगा। विद्युत्-उत्पादन तथा प्रसार में भारत ने कई क्षेत्रों को सहायता दी है। परिवहन, जल संसाधन, निर्माण कार्य, समुद्री व नगरीय इंजीनियरिंग तथा इलेक्ट्रॉनिक डेटा प्रोसेसिंग अब ऐसे क्षेत्र हैं, जिनके बिना किसी देश का विकास नहीं हो सकता। इन्हें ऐसी नींव कहा जा सकता है, जिनके ऊपर हमारा विकास टिका रह सकता है।

विकासशील देशों का तकनीकी गुरु

इस समय निजी तथा सरकारी क्षेत्रों में भारत में सात सौ से अधिक सलाहकार संगठन हैं। यह खुशी की बात है कि ये संगठन निर्माण तथा विकास सेवाओं के विभिन्न क्षेत्रों में उच्च तकनीकी सलाह देते हैं। इनमें लघु उद्योगों से लेकर करोड़ों की परियोजनाएँ स्थापित करना शामिल है। इन संगठनों में लगभग 75 हज़ार इंजीनियर तथा विशेषज्ञ काम कर रहे हैं। इस समय वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की 42 राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ तथा बारह राष्ट्रीय औद्योगिक अनुसंधान संस्थान काम कर रहे हैं। ये सब विज्ञान, इंजीनियरी तथा टैक्नोलॉजी के हर पहलू में औद्योगिक अनुसंधान कर रहे हैं। इसीलिए आज इस क्षेत्र में देश आत्मनिर्भर हो गया है। कृषि-तकनीक में तो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के कारण पहले से ही आत्मनिर्भर था।

विदेशों से भी काफ़ी तकनीक लाई जा रही है। इसे भी देश की आवश्यकता के अनुसार ढाला जाता है। यही नहीं, इन विदेशी टैक्नोलॉजी में आगे सुधार किया जाता है। कई टैक्नोलॉजी का खर्चा घटाकर और उनकी किस्म को ज्यों का त्यों बनाकर, इन्हें अन्य विकासशील देशों को सस्ते दामों पर दिया जाता है। यही भारतीय सलाहकार संगठनों की खूबी है। इसी के कारण भारतीय संगठनों को विदेशों में ठेके मिले हैं। वहाँ उन्होंने औद्योगिक इकाइयाँ, बस्तियाँ, हवाई अड्डे, रेलवे लाइन आदि स्थापित की हैं। यही कारण है कि भारत की सलाहकार सेवाओं से होने वाली आय पिछले पाँच साल में ढाई गुना बढ़ गयी है और यह सब अब एक अरब रुपये तक पहुँच गयी है।

भारतीय सलाहकार तकनीक में एक नया रुख देखने में आया है। हमारे सलाहकार अब विकसित देशों के सलाहकारों से अनुबन्ध कर रहे हैं। और या तो भारत में या तीसरे देशों में परियोजनाएँ स्थापित कर रहे हैं। इससे भारतीय सलाहकारों की क्षमता का और विस्तार हुआ है। इससे निर्यात के नये अवसर सामने आये हैं। दिल्ली की कार्यशाला में विभिन्न विकासशील देशों के प्रतिनिधियों ने भारतीय टैक्नोलॉजी तथा इंजीनियरी में दिलचस्पी ज़ाहिर की। इसमें शक नहीं कि इस कार्यशाला ने एशियाई तथा प्रशान्त क्षेत्रों के देशों के लिए बहुत उपयोगी काम किया है। अब पता चला है कि किस देश को

किस परियोजना की जरूरत है और भारत उनकी स्थापना में कहाँ तक मदद कर सकता है। जैसा कि हमने बताया सी० एस० आई० आर० की अनेक प्रयोगशालाएँ तो हैं हीं, इनके अलावा देश के आई० आई० टी०, चिकित्सा परिषद्, कृषि अनुसंधान परिषद्, रक्षा अनुसंधान प्रतिष्ठान, भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, सहकारी अनुसंधान संस्थान आदि हैं, जो देश में अनुसंधान और विकास के बड़े साधन हैं। यहाँ बराबर नई तकनीकें पैदा हो रही हैं। इन संगठनों के अनेक वैज्ञानिक अवकाश प्राप्त करने के बाद वैज्ञानिक सलाहकार बनकर सेवाकालीन वेतन से चौगुनी कमाई कर रहे हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र में गत 37 साल से राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम कार्य कर रहा है जिसने देशी टैक्नोलॉजी के व्यापारीकरण में महत्वपूर्ण योग दिया है। अब भारत में या विदेशों में कोई भी उद्योग-पति या सरकारी प्रतिष्ठान विभिन्न औद्योगिक पायलट प्लांट लगाकर उद्योगों को बढ़ावा दे सकता है।

बंगलूर के एशियाई तकनीकी केन्द्र ने गत पन्द्रह साल में उपयोगी टैक्नोलॉजी का काफ़ी विस्तार किया है। इसने सदस्य देशों में संस्थागत तथा नीति ढांचे को शक्तिशाली बनाया है। इसने तकनीकी सलाहकार सहायता दी है। इसने क्षेत्रीय देशों के इंजीनियरों को प्रशिक्षण दिया है।

भारतीय इंजीनियरों की एक बड़ी सफलता यह है कि वे पूरी की पूरी टैक्नोलॉजी "टर्न की' आधार पर हस्तांतरण कर सकते हैं। अब पुणे की राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, हैदराबाद का रसायन संस्थान तथा मैसूर का खाद्य प्रौद्योगिकी संस्थान जैसे अनेक संस्थान इस हस्तांतरण के लिए पूरी तरह तैयार हैं। अब "विद्यादान" का जमाना गया, अब तो इस हाथ पैसा दे और उस हाथ तकनीक ले का जमाना है। □

[इस्वा फीचर्स]

भारतीय ओषधि उद्योग और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

विजय जी

आज आम तौर पर यह कहा जाने लगा है कि हमारा देश आत्मनिर्भर है। लेकिन देश के अर्थतंत्र और बाजार पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का जिस तरह कब्जा बना हुआ है उससे आत्मनिर्भरता की बात एक दम हास्यास्पद लगती है। देश का सारा बाजार बहु-राष्ट्रीय निगमों के उत्पादनों से भरा पड़ा है। हमारे देश के दवा उद्योग में तो इन कम्पनियों का लगभग एकाधिकार ही है क्योंकि यहाँ बेची जाने वाली 90 प्रतिशत दवाएँ (अंग्रेजी) बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ही बनाती हैं।

अंग्रेजी दवाएँ अपने कुप्रभाव (साइड इफेक्ट्स) के लिये बदनाम रही हैं। अनेक दवाएँ अपने इन्हीं कुप्रभावों के कारण प्रतिबंधित की जाती रही हैं। चूंकि पश्चिमी देशों में शोध की बेहतर सुविधाएँ और वातावरण मौजूद हैं, इसलिए इस तरह के शोध ज्यादा तर वहीं होते रहे हैं। याने जिन देशों के वैज्ञानिक दवाओं का निर्माण करते हैं उन्हीं देशों के वैज्ञानिक बाद में दवाओं के कुप्रभाव भी बताते हैं। इस तरह पश्चिमी देशों में उन दवाओं पर रोक लगा दी जाती है। लेकिन बहुराष्ट्रीय कंपनियों की चालाकी तथा शासन की उदासीनता से ही ये दवाएँ हमारे देश में बेरोक-टोक जारी रहती हैं।

भारत में इस समय लगभग 515 दवाएँ (जो बाजारों में 3000 विभिन्न नामों से बिक रहीं हैं) ऐसी हैं जिन पर विदेशों में प्रतिबन्ध लगाया जा चुका है। लेकिन ये दवाएँ यहाँ वैध रूप में खुले आम बिक

जवाहर कॉलेज, जारी, इलाहाबाद—212106 (उ० प्र०)

रही हैं। इन दवाओं में अधिकांश को स्विटज़रलैंड की सीबा गायगी, अमेरिका की पार्क डेनिस, ज्योफ्रीमैनर्स, फाइजर, पश्चिमी जर्मनी की हेक्स्ट, स्विटज़रलैण्ड के सहयोग से चलने वाली ए० जी० फार्मास्युटिकल, ब्रिटेन की बूट्स, ईस्ट इण्डिया फार्मास्युटिकल तथा इंफार इंडिया आदि बनाती हैं। प्रतिबन्धित दवाओं के सम्बन्ध में डॉक्टरों और वैज्ञानिकों का कहना है कि ये दवाएँ प्राणघातक हैं, आदमी के रक्त को दूषित कर देती हैं, कैंसर, लकवा, अन्धापन विकलांगता जैसी बीमारियाँ पैदा करती हैं तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता समाप्त कर देती है। दुनिया के अनेक देशों में इन्हें ज़हर घोषित किया जा चुका है।

प्रतिबन्धित दवाएं जिन पर भारत में कोई प्रतिबन्ध नहीं

सीबा गायगी द्वारा निर्मित ऑक्सीफिनबूटाजोन तथा फिनाइल बूटाजोन पर ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी नार्वे, जापान इटली, स्वीडन, फिनलैण्ड, अमेरिका, बांग्लादेश, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, मलेशिया, इजरायल, जार्डन, बहरीन आदि देशों में प्रतिबन्ध है क्योंकि इन दवाओं के कारण अँतड़ियों में घाव हो जाता है तथा रक्त कैंसर का ख़तरा उत्पन्न हो जाता है। इस दवा से अब तक लगभग 1500 लोगों की मौत हो चुकी है। प्रतिबन्धित देशों में इसे 'बी' श्रेणी का ज़हर घोषित किया जा चुका है।

क्लिओक्विनाल, मेक्साफार्म पर ब्रिटेन, अमेरिका, बाग्लादेश आदि में प्रतिबन्ध है, क्योंकि इन दवाओं के उपयोग से लकवा और अन्धेपन का अंदेशा बना रहता है। इन दवाओं से जापान में 10,000 लोग अंधे और लंगड़े हो चुके हैं।

क्लोरोमाइसीन, क्लोरोस्टेप, स्टेप्टोपेराक्सिन, इन्टरोस्टेप, इन्टेस्टोस्ट्रेप, स्ट्रेप्टोमाइसिन पर बांग्ला देश सहित अनेक देशों में प्रतिबन्ध है, क्योंकि इन दवाओं के उपयोग से अस्थिमज्जा और श्वेत रक्त-कणिकाओं को बेहद नुकसान पहुँचता है और शरीर की प्रतिरोध क्षमता समाप्त हो जाती है।

एनाल्जिन, बेराल्गन, नोवल्जीन, अल्ट्राजिन, एस्जीपायरिन, ऑक्साल्जिन, जियाल्जिन, स्पेसिमिजॉल पर आस्ट्रेलिया, प० जर्मनी, डेनमार्क, मिस्र, इजराइल, इटली, मैक्सिको, नार्वे, पेरू, फिलीपींस, सउदीअरब, स्वीडन, अमेरिका, वेनेजुएला आदि में प्रतिबन्ध है। इन दवाओं के कारण अस्थिमज्जा और श्वेत रक्त कणिकाओं को नुकसान पहुँचता है। इनको लगातार सेवन करने वाले लगातार कमज़ोर और असहाय होते जाते हैं।

सुगान्टिल, परवांफोर्ट, जागरिल, जोलांडिन, बेटाफ्लाम पर अर्जेन्टीना, ब्रिटेन, आयरलैण्ड, इजरायल, फिलीपींस आदि में प्रतिबंध है। इन दवाओं से किडनी और हृदय पर खराब असर पड़ता है, रक्त दोष उत्पन्न हो जाता है।

इन्टरोक्विनॉल, इन्ट्रोजाइम, डिस्फटप्लस, एलिक्विन फोर्ट एमिस्लीन पर डेनमार्क, डामनिकन गणराज्य, इटली, नार्वे, जापान; नेपाल, फिलीपींस, सउदी अरब, स्वीडन, वेनेजुएला, साइप्रस और बांग्ला देश में प्रतिबंध है। इसके सेवन से अँधेपन और लंगड़ेपन की शिकायतें होती देखी गयी हैं। डॉक्टरों और वैज्ञानिकों ने पाया कि पेचिश आदि में दी जाने इन दवाओं का उल्टा असर भी होता देखा गया है।

एस्ट्रोजन, प्रोजेस्टोरेन, डिस्क्रान फोर्ट, ई० पी० फोर्ट, मेन्स्ट्रोजन, मिक्सोजन, ओरोसेक्रान फोर्ट, ओएस्ट्रोन पर प० जर्मनी, डेनमार्क, सउदी अरब, वेनेजुएला, बांग्ला देश, इटली, आस्ट्रिया, बेल्जियम, ब्रिटेन, यूनान, नार्वे, न्यूजीलैण्ड, सिंगापुर, थाइलैण्ड, अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका में प्रतिबन्ध है। गर्भिणी महिलाओं को दी जाने वाली ये दवाएँ गर्भस्थ शिशुओं को विकलांग कर देती हैं। बिना गर्भवती औरतों का मासिक धर्म बिगाड़ देती हैं जिससे औरतों में अनेक तरह की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। 'इण्डियन कौंसिल ऑव मेडिकल रिसर्व' ने भी (1979 में) इन दवाओं को काफी नुकसानदायक बताया है।

ओराबोलिन ड्राप्स, ड्यूराबोलिन, टिन, ज़िंक, ओराबोलिन पर ब्रिटेन और बांग्ला देश सहित तमाम देशों में प्रतिबन्ध है। बच्चों को दी जाने वाली इन

दवाओं के सम्बन्ध में ब्रिटेन की नेशनल फार्मुलरी और मेडिकल डॉक्टरों ने अनेक आलोचनाएँ की हैं।

एस्पिरिन और ब्रूफेन पर ब्रिटेन, अमेरिका सहित अनेक पश्चिमी देशों में रोक है, क्योंकि इन दवाओं के कुप्रभावों से आँतों में घाव या अल्सर की शिकायतें मिली हैं।

अब सवाल यह उठता है कि इन प्रतिबन्धित दवाओं की भारत में बेरोकटोक बिक्री की इजाज़त क्यों दी गयी है?

इस सवाल का कोई सीधा उत्तर फिलहाल नहीं दिया जा सकता। प्रतिबन्धित दवाओं की खुले आम बिक्री का बहुत बड़ा कारण तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की चालाकी, राजनीतिक प्रभाव और हमारे शासन की उदासीनता तथा उपभोक्ताओं की गैर जागरूकता है।

शोषण के अन्य तरीके

भारतीय दवा उद्योग पर एकाधिकार रखने वाली इन बहुराष्ट्रीय निगमों की निगाह सबसे ज्यादा अपने फ़ायदे पर होती है। इसीलिए ये कम्पनियाँ जीवन-रक्षक दवाओं को बनाने और बेचने में उतनी रुचि नहीं लेतीं जितनी फालतू दवाएँ बनाने और बेचने में, क्योंकि इन चीज़ों की लागत कम है तथा फ़ायदा ज़्यादा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार विटामिन, टॉनिक तथा सीरप जैसी गैर ज़रूरी दवाओं का क्रमशः 85 प्रतिशत, 65 प्रतिशत तथा 83·3 प्रतिशत इन्हीं कम्पनियों द्वारा बनाया जाता है। दवा उद्योग पर बनाई गयी 'हाथी समिति' ने 1975 में अपनी रिपोर्ट में इन कम्पनियों की लूट के अनेक दिलचस्प उदाहरण पेश किये हैं। दवा बनाने के लिए ये कम्पनियाँ जो मूल रसायन बाहर से मँगाती हैं उनका दाम कई गुना बढ़ाकर दिखाती हैं ताकि सरकारी निगाह में अपने को कम फ़ायदे में दिखा सकें। एक रिपोर्ट के मुताबिक 1969 से 1972 के बीच 36 बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने मुनाफ़े के रूप में 26 करोड़ रुपया अपने मूल देशों को भेजे।

इन निगमों की चालाकी के सम्बन्ध में **डॉ० समर राय चौधरी** ने अपनी पुस्तक **'भारतीय दवा उद्योग पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की काली छाया'** में अनेक दिलचस्प उदाहरण पेश किये हैं। एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी बच्चों के लिए बनाई जाने वाली दवा इंडोसिड की मूल वस्तु अमेरिका स्थित अपने कारखाने से मँगाती थी। 1967 से 1971 तक यह मूल वस्तु इंडोमेथिसिन 1891 किलो आयात की गयी जिसका दाम 4300 रुपये प्रति किलो के हिसाब से कुल 1 करोड़ 30 लाख रुपया होता है। लेकिन यही मूल वस्तु 1974 में हमारे स्टेट ट्रेडिंग कॉरपोरेशन ने जब पोलैण्ड से मँगाना शुरू किया तो उसका दाम मात्र 570 रुपये प्रति किलो ही था। मार्क शार्प एण्ड डोम नामक कम्पनी ने पोलैण्ड की मूलवस्तु को घटिया कहकर मँगाने से इन्कार कर दिया जबकि हमारी सेन्ट्रल ड्रग लेबोरेटरी में यह अमेरिकी मूल वस्तु से किसी भी प्रकार कम नहीं था। इसी तरह हाइपर-टेन्शन की दवा आयलडोमेट की मूल वस्तु मिथिलडोपा को जब भारत सरकार ने सस्ते दामों पर हंगरी से उपलब्ध कराया तो मार्क शार्प एण्ड डोम कम्पनी ने उसे लेना अस्वीकार कर दिया तथा दवाओं का कृत्रिम अभाव उत्पन्न कर दिया। मँहगी दवाओं के पीछे एक रहस्य यह भी है।

एलोपैथी के विकल्पों की उपेक्षा

भारत का **आयुर्वेद** दुनिया की प्राचीनतम् चिकित्सा-पद्धति है। इस पद्धति की दवाओं के लिए कहीं बाहर जाने की ज़रूरत नहीं। सारी दवाएँ अपने ही देश के पेड़-पौधों तथा जड़ी-बूटियों से बनाई जाती रही हैं। चूंकि ये सारी जड़ी-बूटियाँ और औषधीय पेड़-पौधे हमारी ही ज़मीन पर पैदा होते थे। अतः गाँव का या जंगल का आम आदमी भी इनमें से अधिकांश से परिचित था। आज से कुछ दशक पूर्व तक गाँव वालों को जड़ी-बूटियों का अच्छा ज्ञान था। कोई एक रोग हो जाने पर लोग दर्जनों दवाएँ गिना दिया करते थे। लेकिन शासन की लगातार उपेक्षा से आयुर्वेद का ज्ञान लगातार लुप्त होता गया। होमियो-पैथी जैसी सस्ती पद्धति को प्रोत्साहन की ओर भी सरकार का कोई ध्यान नहीं है।

दुनिया भर के वैज्ञानिक मानते हैं कि यदि आदमी को स्वच्छ पेय-जल तथा संतुलित भोजन मिले तो अस्सी प्रतिशत बीमारियाँ अपने आप ही समाप्त हो जायें। लेकिन दुर्भाग्य से हमारा दूरदर्शन और संचार के अन्य साधन जितना प्रचार प्रसाधन सामाग्रियों तथा अनुपयोगी दवाओं का करते हैं उसके शतांश भी सही खान-पान और रहन-सहन के लिए नहीं करते।

जनजागरण के प्रयास

आज दवा उद्योग के बाज़ार में देशी विदेशी कंपनियों द्वारा निर्मित 1.50 लाख ब्रांड नाम की दवाएँ बेंची जा रही हैं, जबकि 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने आवश्यक दवाओं की जो सूची जारी की है उनकी संख्या मात्र 248 है। इसका मतलब बाज़ार में बेंची जाने वाली अधिकांश दवाएँ गैर ज़रूरी हैं और उपभोक्ताओं को लूटने के लिये ही बनाई जाती हैं।

भारत में उपभोक्ता संगठनों का तो वैसे भी अभाव है फिर दवा उद्योग पर तो किसी का ध्यान ही नहीं है। बहुत कम संगठनों ने इस क्षेत्र की ओर उँगली उठाने का प्रयास किया है। 1980 में दवा सलाहकार समिति की एक उपसमिति ने अपने रिपोर्ट में 16 फार्मुलेटेड दवाओं पर रोक की सिफारिश की। ये दवाएँ उस समय बाज़ार में 10,000 ब्रांड नामों से बिक रही थीं। इस रिपोर्ट पर दवा तकनीकी सलाहकार बोर्ड ने पुनर्विचार किया और प्रतिबन्धित फार्मुलेटेड दवाओं की संख्या 16 से बढ़ाकर 18 कर दिया। अंततोगत्वा जुलाई 1983 में 22 फार्मुलेटेड दवाओं पर पाबंदी लगा दी गयी। लेकिन दवा कंपनियों की सशक्त लाबी पर कोई असर नहीं हुआ और प्रतिबन्धित दवाएँ बाज़ार में धड़ल्ले से बिकती रहीं। इस सिलसिले में केरल उच्च न्यायालय में एक जनहितार्थ मुकदमा दायर हुआ। इस मुकदमें में **न्यायाधीश श्री पोट्टी** ने निर्णय दिया—"सरकार प्रतिबन्धित दवाओं को बाज़ार से हटवा ले तथा ऐसी दवाओं की ब्रांड नाम सहित सूची प्रकाशित करे।" इस निर्णय का भी कुछ असर नहीं हुआ। अन्ततः 1983 में ही उच्चतम न्यायालय में एक मुकदमा दायर किया गया। इस मुकदमे के दायर होते ही अनेक दवा कंपनियों ने स्थान याचिका दाखिल कर दी। कुछ कंपनियों ने तो अपनी दवाओं की लोकप्रियता को भुनाने के लिये विचित्र हथकण्डे भी अपनाए। उदाहरणस्वरूप सिरदर्द व ज़ुकाम के लिये ली जाने वाली दवा ए० पी० सी० को ही देखिये। प्रतिबन्ध के पूर्व ए० पी० सी०, एस्प्रिन (ए), फेनासिटीन (पी) और केफीन (सी) के मिश्रण से बनाई जाती थी। प्रतिबन्ध के बाद कंपनी ने दवा का फार्मूला बदल दिया लेकिन नाम वही ए० पी० सी० ही रह गया। बाद वाली ए. पी. सी. के मिश्रण में एस्प्रिन (ए०), पैरासिटामाल (पी०) व केफीन (सी०) अवयव हो गये।

'आल इंडिया ड्रग एक्शन नेटवर्क' नामक संगठन ने भी सराहनीय काम किया है। उसने प्रतिबन्धित दवाओं की सूची, उन्हें बनाने वाली कंपनियों के नाम, दवाओं के दुष्परिणाम आदि का ब्योरा प्रस्तुत किया है जिसे 'वालंटरी हेल्थ एसोसियेशन ऑव इंडिया' ने पुस्तिका के रूप छापा है। प्रतिबंधित दवाओं की एक सूची 'गाँधी शांति एवं अध्ययन संस्थान' गाँधी भवन, इलाहाबाद विश्व विद्यालय के स्वदेशी बनाम बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ परियोजना के रिसर्च सेल ने तैयार की है। इस लेख में उपर्युक्त प्रतिबन्धित दवाओं के नाम उसी सूची से लिये गये हैं। उपर्युक्त रिसर्च सेल का सहयोगी जनसंगठन 'लोकस्वराज्य अभियान' बहुराष्ट्रीय कंपनियों के काले कारनामों सम्बन्धी जनशिक्षण में ऐतिहासिक भूमिका निभा रहा है। इस अभियान के तहत गत 19 अप्रैल 1990 को इलाहाबाद में विशाल प्रदर्शन हो चुका है। अभियान के कार्यकर्ताओं ने गत 5 जून 1990 को **केन्द्रीय वित्त मंत्री मधुदण्डवते** को एक ज्ञापन सौंपा है। ज्ञापन पर एक लाख लोगों के हस्ताक्षर एकत्र किये गये थे। ज्ञापन में अन्य माँगों के साथ-साथ विदेशों में प्रतिबन्धित दवाओं पर यहाँ भी रोक की माँग की गयी है।

आभार

लेख में दी गयी प्रतिबन्धित दवाओं की सूची गाँधी भवन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के, स्वदेशी बनाम बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ परियोजना के रिसर्च सेल द्वारा तैयार पर्चे से ली गयी है। □□

इलेक्ट्रॉन लड़ेंगे इक्कीसवीं सदी का युद्ध

डॉ० जगदीप सक्सेना

हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में इलेक्ट्रॉनिक यन्त्रों की घुसपैठ तेजी से जारी है। जिन्दगी का कोई भी पहलू ऐसा नहीं है, जहाँ ये मौजूद नहीं हैं। इस दिशा में हो रही प्रगति को देखते हुए कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी को "इलेक्ट्रॉन युग" का खिताब देना पड़ेगा। युद्ध भी इलेक्ट्रॉनिक यन्त्रों से होगा। प्रस्तुत हैं इलेक्ट्रॉनिक युद्ध की कुछ दिलचस्प सच्चाइयाँ।

आज चारों ओर इक्कीसवीं सदी की चर्चा है। ऐसी आशा की जा रही है कि आधुनिकतम प्रौद्योगिकी हमारे जीवन के हर क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला देगी। कम्प्यूटर और तरह-तरह के इलेक्ट्रॉनिक यन्त्र हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी के हिस्से बन जाएँगे। जब जीवन का हर क्षेत्र प्रभावित होगा तो युद्ध क्षेत्र कैसे अछूता रह सकता है? विशेषज्ञों का अनुमान है कि इक्कीसवीं सदी के युद्ध में इलेक्ट्रॉनिक यन्त्र अहम् भूमिका निभाएँगे। वही देश विजयी होगा जो अपने इलेक्ट्रॉनिक यन्त्रों का भरपूर उपयोग करते हुए, दुश्मन के इलेक्ट्रॉनिक यन्त्रों को ठप्प कर देगा। सेना मुख्यालय में डिप्टी मास्टर जनरल ऑव आर्डनेंस, **मेजर जनरल वी० के० मधोक** ने इक्कीसवीं सदी के युद्ध का काल्पनिक वर्णन कुछ इस प्रकार किया है।

"बाड़मेर (राजस्थान) के पश्चिमी भाग में, मुनाबाओ नामक स्थान पर 14 जनवरी, 2002 को घमासान युद्ध हुआ।······भारतीय लड़ाकू विमान स्वचालित मिसाइलों "तीर" और 'गांडीव" से लैस थे। ये मिसाइल काफ़ी फ़ासले से छोड़ी जा सकती हैं और राडार द्वारा भेजी गई तरङ्गों के सहारे लक्ष्य को स्वयं ही भेद सकती हैं। एक बार छोड़ने पर मिसाइलों को किसी अन्य निर्देश की आवश्यकता नही होती।······हमने अपने उपग्रह "ध्रुव" और अन्य निगरानी रखने वाले स्टेशनों से राडारों की स्थिति, रणनीति आदि के बारे में पहले से ही इलेक्ट्रॉनिक सूचना प्राप्त कर रखी थी।······दुश्मन को अपने जाल में फँसाने के लिए हमने युद्ध की शुरुआत चालकरहित विमान भेजकर की। भारतीय वायु सेना ने जो चालक रहित विमान भेजे थे, उनमें टी० वी० कैमरे लगे हुए थे, जिससे बाड़मेर में बैठे कमांडर को युद्ध का सारी घटनाएँ पर्दे पर दिखाई दे रही थीं। इसके अलावा आकाश में 400 कि०मी० के क्षेत्र में भारत का चेतावनी देने वाला विमान "नारद" चक्कर काट रहा काट रहा था। यह दुश्मन के किसी लड़ाकू विमान को देखते ही भारतीय विमान चालकों को चेतावनी देता था। भारतीय वायु सेना के दो हेलीकॉप्टर "गरुड़" और "चाणक्य" भी निरन्तर आकाश में चक्कर काटते रहे। इनमें ऐसे परिष्कृत उपकरण रखे थे, जो दुश्मन के लड़ाकू विमानों और पृथ्वी के स्टेशनों के बीच के संचार को ठप्प कर रहे थे।"

यह सही है कि उपरोक्त वर्णन काल्पनिक है, लेकिन इसके पीछे ठोस वैज्ञानिक तथ्य हैं। इलेक्ट्रॉनिक युद्ध एक सच्चाई है। सन् 1966 में चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण के समय रूस ने ऐसे कई इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों का इस्तेमाल किया था, जिससे उनकी सैनिक गतिविधियों का पता शत्रु को उसके राडार या संचार यंत्रों पर न लग पाए। इलेक्ट्रॉनिक युद्ध की पूरी रणनीति सन् 1973 में ही अरब-इज़रायल युद्ध के समय बन चुकी है। इसी समय अमेरीका, रूस और यूरोप की कई सेनाओं ने इलेक्ट्रॉनिक युद्ध को अपनाने का फैसला किया था। इलेक्ट्रॉनिक युद्ध को हम किरणों का युद्ध भी कह सकते हैं। इस प्रकार के युद्ध में 'सी^{3} आई" निर्णायक भूमिका निभाएगा। "सी^{3} आई" अंग्रेज़ी के चार शब्दों के प्रथम अक्षरों को लेकर बनाया गया संक्षिप्त रूप है। अंग्रेज़ी के शब्द हैं—कमाण्ड (आदेश), कम्युनिकेशन (संचार), कंट्रोल (नियंत्रण) और इन्टेलीजेन्स (खुफिया सूचनाओं की जानकारी)।

सम्पर्क सूत्र—720 सरस्वती विहार, नई दिल्ली-110034

"सी^{3} आई" यंत्र को प्रभावी बनाने के लिए कई प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक यंत्र उपयोग में जाए जाते हैं।

युद्ध क्षेत्र में सेनापति द्वारा आदेश देने का कार्य सेनाओं जितना ही पुराना है। लेकिन जैसे-जैसे सेना का स्वरूप बदलता गया, आदेश देने की प्रक्रिया में भी बदलाव आते गए। पहले सेनापति अपने आदेश इतनी ऊँची आवाज़ में देता था कि सभी सैनिक सुन सकें। बाद में ड्रम की आवाज़ों, झंडों और संकेतों का सहारा लिया जाने लगा। आज सेना के पास अपने बेतार यंत्र हैं। जल्दी ही अतिकुशल इलेक्ट्रॉनिक संचार यंत्र उपयोग में लाए जाएँगे। सेनापति का एक ओर सेना से तथा दूसरी ओर सेना मुख्यालय से निरन्तर संपर्क बना रहेगा। राडार इन्फ्रारेड और लेसर किरणों का उपयोग निगरानी रखने और लक्ष्य का पता लगाने के लिए किया जाएगा। कम्प्यूटर का सहारा भी लिया जाएगा। कम्प्यूटर से सेनापति को अपनी सेना की स्थिति आदि की पूरी जानकारी निरन्तर मिलती रहेगी। इस विस्तृत जानकारी का विश्लेषण करके कम्प्यूटर यह बताता रहेगा कि अब क्या क़दम उठाना चाहिए। यानी कम्प्यूटर की मदद से सेनापति सैनिक गतिविधियों पर अपना पूरा नियंत्रण रखने में कामयाब होगा।

युद्ध में उपयोग किए जाने वाले इलेक्ट्रॉनिक यंत्र अत्यन्त संवेदनशील होते हैं। ये विद्युत्-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम पर पूरा नियंत्रण रख कर इसका उपयोग करते हैं। यही कारण है कि इनके संवेदकों का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है। ये सागर की अथाह गहराइयों से लेकर अंतरिक्ष में चक्कर काट रहे उपग्रहों तक का पता लगा सकते हैं। कुछ इलेक्ट्रॉनिक यंत्र शत्रु के संचार माध्यमों को ठप्प करके उनके संकेतों का पता लगाते हैं और कुछ शत्रु के हथियार भण्डारों का पता लगाने में सक्षम होते हैं। शत्रु पक्ष की टोह लगाने वाले तरह-तरह के इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों का निर्माण हो चुका है। राडार तो अब पुराना पड़ गया है और इससे बचाव के कई तरीके भी ढूंढ़ लिये गये हैं। मिसाइलें राडार से बचने के लिए अपनी आकृति फटाफट बदलती रहती रहती हैं, लेकिन कम्प्यूटर इन्हें फिर भी पकड़ लेता है। लक्ष्य का पता लगाने के लिए आजकल एक ऐसी पद्धति उपयोग में लायी जा रही है, जो तापमान में मामूली परिवर्तन को भी भांप लेती है। अधिकांश सैन्य लक्ष्य गर्मी छोड़ते हैं, इसलिए पकड़ में आ जाते हैं। यह पद्धति बारिश, धुएँ तथा कुछ हद तक धुंध में भी कारगर होती है। अत्यन्त सूक्ष्म लक्ष्य को विशाल आकार देने वाली पद्धति सितारों की रोशनी में भी अपना काम बखूबी करके रात में टोह लेने में मददगार साहित होती है। इस पद्धति में बिम्ब को आठ हज़ार गुना विशाल किया जा सकता है। रात के समय शत्रु की गतिविधियों की टोह ले सकता है। इन विमानों में छोटे टेलीविज़न कैमरे तथा इन्फ्रारेड सेंसर लगे होते हैं जो कमाण्डर को पूरा दृश्य टी० वी० पर्दे पर दिखा देते हैं।

स्वयं इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों के उपयोग करने से ही जीत नहीं होगी, बल्कि शत्रु के इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों को ठप्प करने तथा नष्ट करने से जीत संभव है। जो पक्ष यह काम पहले कर देगा, जीत उसी की होगी। इसलिए इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों तथा उनके ठिकानों की जानकारी होना बहुत ज़रूरी है। इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों की मदद से शत्रु के इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों तथा हथियारों आदि की जानकारी प्राप्त करने को "इलेक्ट्रॉनिक जासूसी" कहा जाता है। सेना में यह 'एलिंट" (अंग्रेज़ी के "इलेक्ट्रॉनिक इन्टेलीजेन्स" का संक्षिप्त रूप) नाम से मशहूर है। इसके जरिए शत्रु के सैनिक तथा घरेलू और राजनीतिक संचार को भी सुना जाता है। इंग्लैंड और पश्चिमी जर्मनी में इसका उपयोग किया जा रहा है। सोवियत रूस की वायुसेना ने एक परिवहन विमान को, अत्यंत परिष्कृत इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों से सुसज्जित करके, इसी काम में लगा रखा है। "एलिंट" को केवल जासूसी उपग्रहों से ख़तरा रहता है, जो आकाश से ही टोह लगाते रहते हैं।

कुछ सहायक इलेक्ट्रॉनिक यंत्र भी हैं, जो गुप-चुप सूचनाएँ एकत्र करते रहते हैं। ये राडार जैसे बड़े यंत्रों के स्थान पर उपयोग किए जा सकते हैं। मुख्य

रूप से इनका उपयोग पनडुब्बियों या वायु सेना में किया जा सकता है। ये दुश्मन की राडार तरंगों को बहुत दूर से ही पकड़ सकते हैं। नौसेना में इनका उपयोग दिशा का पता लगाने के लिए किया जाता है। अनेक जंगी जहाज़ों पर पिंजड़े के आकार के जो "एरियल" दिखाई देते हैं, वे इन्हीं के होते हैं। कुछ ऐसे इलेक्ट्रॉनिक यंत्र भी तैयार किये गये हैं, जो दुश्मन की मिसाइल को भटका सकते हैं। यह यंत्र लड़ाकू विमानों के कृत्रिम प्रतिबिम्ब बना देता है, जिससे मिसाइल भटक जाती है और हमारी इच्छा के अनुसार ऐसी जगह मार करती है, जहाँ कोई नुकसान नहीं होता। अमेरिका के जंगी ज़हाज़ों पर "एस० एल० क्यू० 17 ए" नाम से ऐसे ही यंत्र लगाये गये हैं। इसी तरह का एक तंत्र "सी० वी० 62" अमेरिकी लड़ाकू पनडुब्बी 'इनडिपेन्डेन्स" पर भी लगाया गया है। कुछ बड़े इलेक्ट्रॉनिक यंत्र भी बनाये गये हैं, जो शत्रु के यंत्रों को कार्य नहीं करने देते। ऐसा ही एक यंत्र है "चैफ"। इसमें छोटे-छोटे करोड़ों परावर्तक लगे होते हैं जो दुश्मन के राडार को कार्य नहीं करने देते। नौसेना में उपयोग किए जाने वाले "चैफ" जंगी ज़हाज़ों को नष्ट करने वाली मिसाइलों के काम में रोड़ा बनते हैं।

इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों की बात बिना कम्प्यूटर की चर्चा पूरी नहीं हो सकती। युद्ध ने अन्य इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों की तरह कम्प्यूटर सीधे भाग नहीं लेते, लेकिन पर्दे के पीछे की इनकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संचार में कम्प्यूटर की भूमिका का ज़िक्र पहले ही किया जा चुका है। संचार के अलावा कम्प्यूटर तोपखाने की गतिविधियों में महत्त्वपूर्ण हिस्सा ले रहे हैं। तोपखाने में गोलाबारी के लिए आदेश और नियंत्रण व्यवस्था में स्वचालन की आवश्यकता काफी अर्से से महसूस की जा रही थी। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए "तोप युद्ध आदेश एवं नियंत्रण प्रणाली" विकसित की जा रही है। पूरी तरह विकसित हो जाने पर इस प्रणाली के अंतर्गत आगे की निगरानी चौकियों पर टर्मिनल कम्प्यूटर लगे होंगे और उनका संबंध मुख्यालय से होगा। तोपों के आँकड़े, लक्ष्यों का रिकार्ड आदि रखने के अलावा कम्प्यूटर कुछ कठिन कार्य भी करेंगे जैसे—लक्ष्य की स्थिति का विश्लेषण, संसाधनों का आबंटन, गोलाबारी की योजना और इस पर नियंत्रण, आदि।

आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए यह ज़रूरी है कि इन पर कार्य करने वाले व्यक्ति भी उतने ही कुशल और दक्ष हों, जितने वे यंत्र हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण में कम्प्यूटर बहुत सहायक सिद्ध हो रहे हैं। कम्प्यूटर पर आधारित कुछ युद्ध खेल मॉडल तैयार किये गये हैं। इनमें खेल-खेल में ही युद्ध का अभ्यास कराया जाता है। भारत में सन् 1981 में पहली बार युद्ध खेल मॉडल तैयार किया गया। इस संक्रियात्मक मॉडल पर वरिष्ठ अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है। सेनाध्यक्ष जनरल सुन्दर जी के निर्देशन में टैंक के विरुद्ध युद्ध खेल का गतिशील मॉडल तैयार किया जा रहा है। इन खेलों में दोनों ही पक्ष विभिन्न आदेशों के साहरे युद्ध करते हैं और दोनों पक्षों को हुए नुकसान के आधार पर हार-जीत का फ़ैसला किया जाता है। इस तरह से बिना किसी खास खर्च के युद्ध का प्रशिक्षण संभव है।

अनुरूपक उपकरण या "सिमुलेटर" इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों पर कार्य करने का प्रशिक्षण देने में सबसे अधिक कामयाब सिद्ध हुए हैं। अनुरूपक ठीक वास्तविक इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों जैसे ही होते हैं। ये उपकरण प्रशिक्षणार्थी को लगभग वास्तविक प्रदर्शन करने का अवसर प्रदान करते हैं। ठीक वैसा ही जैसा उसे समय आने पर करना पड़ेगा। प्रशिक्षण की इस सुविधा से वास्तविक यंत्रों को इस्तेमाल नहीं करना पड़ता और खर्च बच जाता है। अभी तक हम अनुरूपकों का विदेशों से आयात करते रहे हैं, लेकिन जल्दी ही देश में अनुरूपकों के निर्माण की आशा है।

ऊपर बतायी गयी प्रगति से यह साफ़ ज़ाहिर है कि इक्कीसवीं सदी का युद्ध पूरी तरह से इलेक्ट्रॉनिक

यंत्रों और कम्प्यूटर पर निर्भर होगा। इस प्रकार का युद्ध एक प्रकार से संसाधनों का युद्ध होगा। जिसके पास अधिक संसाधन होंगे, वही जीतेगा। इस युद्ध का क्षेत्र बहुत विशाल और जटिल है। इसलिए इसको अपनाने से पहले हमें स्पष्ट रणनीति बनानी होगी। नए-नए यंत्रों के निर्माण के साथ ही, सैनिकों में भी उच्च कुशलता लानी होगी, क्योंकि कितने भी परिष्कृत यंत्र क्यों न बन जाएँ, मनुष्य सदैव सर्वोपरि रहेगा।

जैसा सारा संसार जानता है, भारत एक शान्तिप्रिय देश है, इसलिए हम अपनी ओर से कभी युद्ध नहीं छेड़ेंगे। हमारी यही कामना होगी कि इक्कीसवीं सदी पूरी शान्ति से बीते और इलेक्ट्रॉनिक युद्ध का मौका ही न आए। लेकिन अगर दुर्भाग्य से ऐसा हुआ तो भारत इसका भी मुंहतोड़ जवाब देगा। □□

[**सम्प्रेषण**]

परिषद् का पृष्ठ

वन्य जीव संरक्षण पर विचार गोष्ठी

5 अक्टूबर को 'वन्य जीव संरक्षण' विषय पर विचार गोष्ठी हुई। विषय-प्रवर्तन करते हुए 'विज्ञान' पत्रिका के संपादक **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** ने 'वन एवं वन्य जीवों के संरक्षण के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि जब तक हमारा सम्बन्ध वनों एवं वन्य जीवों से 'सिम्बियाटिक' (सहजीवी) है, एक दूसरे पर आधारित है, इस बात की चेतना पूरी तरह नहीं जाग्रत होती, तब तक इस प्रकार की विचार-गोष्ठियों की आवश्यकता बार-बार होगी। **डॉ० शिवगोपाल मिश्र** ने वनों एवं वन्य जीवों पर और अधिक अनुसंधान करने पर बल दिया। जोधपुर की रक्षा प्रयोगशाला से आये **डॉ० घोष भी** इस अवसर पर उपस्थित थे। **डॉ० सुप्रभात मुकर्जी** ने 'होलिस्टिक व्यू', पूरी प्रकृति को समझने, पर बल दिया। श्री **प्रमोद कुमार शुक्ल** ने लुप्त होती जीव जातियों से उत्पन्न खतरों के प्रति चेतावनी दी। **श्री अशोक कुमार** ने चिपको, एपिको जैसे आन्दोलनों की सार्थकता पर प्रकाश डाला। **श्री विनय कुमार** ने विलोपीकरण के कगार पर खड़ी जीव जातियों की 'रेड डाटा बुक' द्वारा तैयार अनुसूचियों की चर्चा की। **श्री प्रेमनारायण त्रिपाठी** ने वन्य जीव संरक्षण संबंधी कानूनों की चर्चा करते हुए बताया कि मात्र कानून ही विकल्प नहीं, जनचेतना आवश्यक है। **श्री राजेश कुमार केसरी** ने बाँध परियोजना की विस्तृत चर्चा की। 'नेहरू इको फ्रन्ट' के **श्री कमलेश कुमा** ओझा ने गाँवों में जाकर ग्रामीणों और आदिवासियों को शिक्षित करने पर विशेष बल दिया। **डॉ० वी० के० ललोरिया** ने वन्य जीवों की विभिन्न जातियों की संख्या बढ़ाने पर ज़ोर दिया और कहा कि हमें वन्य जीवों को तो उनके प्राकृतिक आवास में अपने ढँग से रहने देना चाहिए पर मछली, मुर्गे जैसे जीव, जिनकी संख्या जंगल के बाहर भी बढ़ाई जा रही है, उन्हें खाने या उनके शिकार पर प्रतिबंध नहीं होना चाहिए।

इस विचार-गोष्ठी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि सभी वक्ताओं ने लगभग 2 घंटे तक स्वस्थ बहस भी की, पर सभी एकमत थे कि जनजागरण की अभी आवश्यकता बनी हुई है। विचार-गोष्ठी का समापन प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव के धन्यवाद ज्ञापन से हुआ।

—प्रस्तुति : प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

अपने आहार के बारे में इतना तो जानिए

डॉ० अनुराग श्रीवास्तव

आहार हमारे जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। आहार या भोजन ही मानव शरीर रूपी मशीन का ईंधन है। हमें अपने आहार से न केवल दैनिक क्रियाकलापों के निष्पादन हेतु आवश्यक ऊर्जा मिलती है अपितु विकास एवं शारीरिक टूट-फूट से निपटने के लिए आवश्यक पदार्थ भी मिलते हैं। शारीरिक आवश्कताएँ हमारे आहार से कैसे पूरी होती हैं एवं हमारे भोजन के विभिन्न अवयव क्या हैं, यह अध्ययन 'पोषण विज्ञान' कहलाता है।

भोजन के विभिन्न अवयव : हमारे भोजन के 6 प्रमुख अवयव हैं—

(1) कार्बोहाइड्रेट्स अथवा शर्करा

यह ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है।

कार्बोहाइड्रेट्स पाचन प्रक्रिया द्वारा शर्करा तथा स्टार्च-शर्करा के सरलतम रूप-ग्लूकोज-में परिवर्तित होकर, आँत द्वारा शोषित होकर रक्त में पहुँचते हैं। शरीर इनका उपयोग मुख्यतः ऊर्जा के रूप में करता है। कार्बोहाइड्रेट्स शुद्ध शर्करा (ग्लूकोज, चीनी, स्टार्च) के अतिरिक्त अन्य खाद्य पदार्थों में भी पाए जाते हैं, यथा शहद, मिठाई, चाकलेट, डबलरोटी, रोटी, अनाज, दाल इत्यादि। सब्जियों में स्टार्च आलू में अधिकतम होता है। अन्य शर्करायुक्त सब्जियाँ हैं— घुइयाँ, बण्डा, शकरकंद जिमीकंद इत्यादि।

चीनी तथा स्टार्च के अलावा भोजन में एक अन्य प्रकार का कार्बोहाइड्रेट होता है—सेल्युलोज़। आवश्यक पाचक एन्ज़ाइम की अनुपस्थिति के कारण शरीर सेल्यूलोज़ को पचा नहीं पाता तथापि यह शरीर के लिए हितकर होता है। सेल्युलोज़ पानी में फूलकर आँतों की हरकत/प्रक्रिया को बढ़ाता है, जिससे व्यक्ति कब्ज़ की शिकायत से बचा रहता है। आटे, सब्जियों, फलों तथा बेर में सेल्युलोज़ की अच्छी मात्रा विद्यमान रहती है।

(2) वसा

प्रमुखतः शरीर को ठंड के प्रभाव से बचाता है एवं शरीर के नाजुक अगों को चोट लगने से बचाता है। कार्बोहाइड्रेट्स पर्याप्त मात्रा में न मिलने पर ये भी ऊर्जा का स्रोत बन जाते हैं।

दूध, मक्खन तथा दूध से बने अन्य खाद्य पदार्थों में उपस्थित वसा स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं लाभप्रद है। वसा में घुलनशील विटामिनों के शोषण हेतु भी इन्हें आहार में लेना आवश्यक है।

खाद्य पदार्थों में उपस्थित वसा दो प्रकार की होती है—संतृप्त व असंतृप्त वसा। जन्तुओं की वसा में मुख्यतः संतृप्त वसा पाई जाती है जो विटामिन 'ए' से युक्त होती हैं एवं 20 सेल्सियस पर जम जाती है। इस प्रकार की वसा के उदाहरण हैं—देशी घी, डालडा, मक्खन, पनीर आदि। संतृप्त वसायुक्त कुछ अन्य खाद्य पदार्थ हैं—चाकलेट, अंडा, जिगर, भेजा, गुर्दे, दिल, फेफड़े, मांस-मछली इत्यादि। जन्तु वसा में कोलेस्ट्रॉल अत्यधिक मात्रा में होता है जो शरीर के लिए हानिकर है।

वनस्पति वसा में मुख्यतः असंतृप्त वसा पाई जाती है, जो विटामिन 'ई' से युक्त होती है और 20° सेल्सियस पर या ठंड के दिनों में भी पिघली हुई रहती है, यथा मूँगफली का तेल, सोयाबीन का तेल, सरसों का तेल, रेड़ी का तेल इत्यादि। वनस्पति वसा, शरीर में कोलेस्ट्रॉल को कम करता है एवं खाने के लिए उपयुक्त है।

(3) प्रोटीन्स

विकास, टूट-फूट हेतु नए ऊतकों के बनने हेतु आवश्यक है। शरीर में अत्यधिक महत्वपूर्ण हार्मोन्स एवं एन्ज़ाइम्स की संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। विपरीत परिस्थितियों में प्रोटीन्स भी ऊर्जा का स्रोत बन सकते हैं।

---

1 डी, स्ट्रीट 4ए, सेक्टर 9, भिलाई—492006 (मध्य प्रदेश)

जन्तुओं से प्राप्त भोजन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रोटीन्स पाए जाते हैं। ये खाद्य पदार्थ हैं—दूध, दही, पनीर, अंडे, मांस, मछली आदि। वनस्पति जगत् में जिन खाद्य पदार्थों में प्रोटीन्स अधिक पाए जाते हैं वे हैं—दालें (उरद, मटर, सोयाबीन, मूंगफली आदि) तथा फलीदार सब्जियाँ (गुआर, लोबिया, राजमा, चना आदि)।

(4) विटामिन

विटामिन दो प्रकार के होते हैं—(1) वसा में घुलनशील विटामिन ए, डी, ई, के और (2) जल में घुलनशील विटामिन-बी काम्पलेक्स समूह के विटामिन तथा विटामिन 'सी'।

शारीरिक विकास हेतु आवश्यक हैं एवं अनेक रोगों से बचाते हैं।

विटामिन 'ए' आँखों की ज्योति को ठीक रखकर रतौंधी, अंधेपन, बर्णान्धता(कलर ब्लाइन्डनेस)से बचाता है। यह दाँतों तथा स्वस्थ त्वचा के लिए भी आवश्यक है। इसकी कमी से त्वचा शुष्क तथा खुरदुरी हो जाती है। जिन पदार्थों को खाने से हमारे शरीर को विटामिन 'ए' प्राप्त होता है वे हैं—मछली का तेल, अंडे की जर्दी, जानवरों का जिगर तथा संतृप्त जन्तु वसा (देशी घी, डालडा, पनीर, मक्खन आदि)। इसके अतिरिक्त गाजर, सेब, आम, केला, टमाटर, हरी मटर, पालक, बन्द गोभी, कद्दू, पपीता, दूध, दही इत्यादि में उपस्थित कैरोटीन्स शरीर में पहुँचकर विटामिन 'ए' में परिवर्तित हो जाते हैं।

विटामिन 'डी' शारीरिक विकास तथा अस्थियों के विकास के लिए आवश्यक है। यह शरीर में वसा के समुचित उपयोग हेतु भी आवश्यक है। इस विटामिन की कमी से बच्चों में सूखा रोग व बड़ों में हड्डियों की कमजोरी (विशेष कर पैरों की), तथा महिलाओं में गर्भपात जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। जिन खाद्य पदार्थों को खाने से शरीर में विटामिन 'डी' का निर्माण होता है वे हैं—दूध, घी, मक्खन, पनीर, अंडा, मछली व जिगर इत्यादि। इन पदार्थों में उपस्थित वसा शरीर में पहुँचकर सूर्य की किरणों में उपस्थित पराबैंगनी किरणों द्वारा विटामिन 'डी' में बदल दिया जाता है।

विटामिन 'ई' की कमी स्त्री व पुरुष दोनों के शरीर में नपुंसकता पैदा कर सकती है। इस विटामिन के स्रोत हैं—हरी पत्तेदार सब्जियाँ, अनाज, अंकुरित अनाज, वनस्पति तेल इत्यादि।

विटामिन 'के' खून के थक्का बनने में सहायक होता है तथा इस विटामिन की कमी से देर तक रक्त-स्राव होता रहता है। यह वैसे तो मनुष्य की आँत में जीवाणु प्रक्रिया द्वारा स्वयमेव बनता रहता है, फिर भी, बंद गोभी, पालक, सोयाबीन, फल व गेहूँ की भूसी खाना लाभकर है।

विटामिन 'बी' काम्पलेक्स समूह के विभिन्न विटामिन हमें बेरी-बेरी, त्वचा, हृदय, तंत्रिका तंत्र तथा रक्त सम्बन्धी रोगों से बचाए रहते हैं। इन विटामिनों के स्रोत हैं—समस्त अनाज, दालें, रोटी, डबलरोटी, मूँगफली, हरी साग-सब्जियाँ, काजू, दूध व दूध से बनी अन्य वस्तुएँ तथा मांस, मछली, जिगर, गुर्दे इत्यादि।

विटामिन 'सी' शरीर को स्कर्वी नामक रोग से लड़ने की ताकत देता है। यह हड्डियों व दाँत के विकास के लिए भी आवश्यक है। इसकी कमी से मसूढ़ों से खून रिसने लगता है तथा शरीर के अन्य भागों से भी रक्तस्राव हो सकता है। यह विटामिन शरीर में ग्लूकोज, कोलेस्ट्रॉल व ट्राइग्लिसराइड्स को कम कर हमें मधुमेह तथा एथरोस्कलोरॉसिस तथा अन्य हृदय रोगों से बचाता है। रसदार फलों जैसे—नींबू, संतरा, मौसम्मी, आँवला में यह विटामिन अधिक मात्रा में पाया जाता है। कुछ अन्य स्रोत हैं—अमरूद, टमाटर, अनन्नास, हरी साग-सब्जियाँ व अंकुरित अनाज।

(5) खनिज

ये शारीरिक विकास एवं रोगों से बचने के लिए आवश्यक हैं। विभिन्न ऊतकों, ऊतकीय द्रवों, रक्त, एन्जाइम्स तथा हार्मोन्स की संरचना में ये महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। शरीर में अम्लता तथा क्षारता को भी संतुलित रखते हैं।

सामान्य संतुलित आहार द्वारा शरीर को समस्त आवश्यक खनिज प्राप्त हो जाते हैं। कुछ आवश्यक खनिज हैं—कैल्शियम, फॉस्फोरस, लौह तत्व, आयोडीन, सोडियम क्लोराइड, मैग्नीशियम, सल्फर, पोटेशियम, कॉपर, फ्लोरीन इत्यादि।

(6) जल

जल विभिन्न शारीरिक संरचनाओं हेतु आवश्यक है। हालाँकि विटामिन, खनिज एवं जल स्वयं ऊर्जा के स्रोत नहीं हैं तथापि प्रथम तीन अवयवों द्वारा मुक्त ऊर्जा के शरीर में समुचित उपयोग हेतु ये अत्यन्त आवश्यक हैं।

शरीर के भार का 70 प्रतिशत जल होता है। शरीर के अनेक हानिकारक तत्व पानी में घुलकर ही मल, मूत्र व पसीने के रूप में शरीर से उत्सर्जित हो जाते हैं।

भोजन में उपस्थित जल के अतिरिक्त मनुष्य को प्रतिदिन 1.5-2.0 लीटर जल पीना चाहिए। जल की कमी और अधिकता दोनों ही शरीर को विपरीत रूप से प्रभावित करती हैं।

संतुलित आहार क्या है ?

ऐसा आहार, जिसमें भोजन के विभिन्न अवयव (कार्बोहाइड्रेट्स, वसा, प्रोटीन्स, विटामिन, खनिज व जल) हमारी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुरूप उपस्थित हों एवं जो हमारे सामान्य स्वास्थ्य एवं विकास हेतु सभी आवश्यकताएँ पूरी कर सकें, संतुलित आहार कहलाता है। संतुलित आहार से हमें सभी श्रेणी के भोज्य पदार्थ प्राप्त होते हैं, ये श्रेणियाँ हैं—

(क) ऊर्जा देने वाले भोज्य पदार्थ—
जैसे अनाज, कार्बोहाइड्रेट्स, वसा आलू, चुकन्दर, गाजर इत्यादि।

(ख) शारीरिक ताकत देनेवाले भोज्य पदार्थ—
जैसे दूध, अंडा, मांस, मछली, दाल, तिलहन इत्यादि।

(ग) निरोधक भोज्य पदार्थ—
जैसे दूध, अंडा, मांस, मछली, हरी साग-सब्ज़ी फल-फूल इत्यादि।

भोजन को पकाना आवश्यक क्यों ?

भोजन को स्वादिष्ट, सुरुचिपूर्ण, सुपाच्य एवं खाने योग्य बनाने के लिए इसे पकाना आवश्यक है। भोजन को पकाने से होने वाले कुछ फ़ायदे निम्नवत् हैं—

1. अंडे को पकाने से उसमें उपस्थित हानिकारक एविडिन नष्ट हो जाता है।

2. सोयाबीन को पकाने से उसमें उपस्थित ट्रिपसिन को बेअसर करने वाला पदार्थ दूर हो जाता है। यह सुपाच्य बन जाता है।

3. पकाने से सोयाबीन का जैव रासायनिक मूल्य बढ़ जाता है।

4. इमली डाल कर पकाई गई भोजन सामग्री में विटामिन सुरक्षित रहते हैं।

जहाँ एक ओर भोजन को पकाने के उपर्युक्त लाभ हैं वहीं कुछ हानियाँ भी हैं जिन्हें ध्यान में रखना आवश्यक है यथा—

1. अत्यधिक पानी में पकाने से प्रोटीन एवं जल में घुलनशील विटामिन (विटामिन 'बी' व 'सी') खत्म हो जाते हैं।

2. अनाज/दाल को देर तक धोकर पकाने से जल में घुलनशील विटामिन एवं खनिज समाप्त हो जाते हैं।

3. सोडा डाल कर सब्ज़ी एवं दाल पकाने से विटामिन नष्ट होते हैं।

4. दूध को उबालने से विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है।

5. खुले बर्तन में (चौड़े मुँहवाले) फ्राई करने (तलने) से तेल में उपस्थित विटामिन 'ए' समाप्त हो जाता है।

भोजन का कैलोरी मूल्य एवं हमारी दैनिक आवश्यकता

कैलोरी मूल्य—किसी भोजन का कुछ कैलोरी मूल्य उस भोजन से शरीर को मिलने वाली ऊर्जा पर निर्भर करता है। इस ऊर्जा को हम कैलोरी में नापते हैं।

एक कैलोरी का मान—ऊर्जा की वह मात्रा है जो एक कि० ग्रा० जल के तापमान में 1° सेल्सियस की वृद्धि कर दे। हमारे भोजन के विभिन्न अवयव निम्नवत् ऊर्जा देते हैं—

कार्बोहाइड्रेट्स अथवा शर्करा	प्रति ग्राम	4.1 कैलोरी
वसा	प्रति ग्राम	9.2 कैलोरी
प्रोटीन्स	प्रति ग्राम	4.1 कैलोरी

हमारी दैनिक कैलोरी आवश्यकता

इस बात पर निर्भर करती है कि हम दिन भर क्या करते हैं? उदाहरण के लिए हम अपने कामकाज को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—भारी या अत्यधिक कार्य, मध्यम श्रेणी का कार्य एवं निम्न श्रेणी का कार्य। तदनुसार हमारी दैनिक आवश्यकता निम्नवत् होगी—

	वयस्क पुरुष	वयस्क महिला
(क) निम्न श्रेणी अथवा कम कार्य	2400 कैलोरी	1900 कैलोरी
(ख) मध्यम श्रेणी अथवा सामान्य कार्य	2800 कैलोरी	2200 कैलोरी
(ग) उच्च श्रेणी अथवा भारी कार्य	3900 कैलोरी	3000 कैलोरी

महिलाओं को गर्भावस्था में 300 एवं स्तनपान कराने के दौरान 700 अतिरिक्त कैलोरी प्रतिदिन लेना चाहिए।

चेतावनी - दैनिक आवश्यकता से अधिक कैलोरी मूल्य का भोजन मोटापे का कारण बनता है, जिससे विभिन्न शारीरिक जटिलताएँ पैदा होती हैं। विशेषकर वसा का अधिक प्रयोग हानिकारक है।

बच्चों एवं किशोरों की कैलोरी आवश्यकता

यदि वयस्क (मध्यम श्रेणी) पुरुष की दैनिक कैलोरी आवश्यकता को एक इकाई (1) माना जाये तो निम्न आयु वर्ग की दैनिक कैलोरी आवश्यकता का अनुमान निम्नवत् लगाया जा सकता है—

किशोर वर्ग	:	12—21 वर्ष	1.0
बालक वर्ग	:	09—12 वर्ष	0.8
		07—09 वर्ष	0.7
		05—07 वर्ष	0.6
		03—05 वर्ष	0.5
		01—03 वर्ष	0.4

(एक माह से 12 माह तक के शिशुओं हेतु 200-800 कैलोरी प्रतिदिन)

विभिन्न क्रियाकलापों हेतु कैलोरी आवश्यकता

बैठने के समय	35	कैलोरी/घंटा
खड़े रहते समय	40	कैलोरी/घंटा
लिखने, पढ़ने, सिलाई अथवा टाइपिंग करते समय	70-80	कैलोरी/घंटा
घरेलू कार्य करते समय	100-120	कैलोरी/घंटा
टहलते समय या हल्का व्यायाम/खेल खेलते समय	250	कैलोरी/घंटा
तेज चलते समय, दौड़ते समय या भारी व्यायाम (तैराकी) करते समय	300-550	कैलोरी/घंटा
सीढ़ी चढ़ते समय	1000	कैलोरी/घंटा

आहार का कैलोरी मूल्य

नाश्ता (स्वल्पाहार)		मीठा	
उडद बड़ा	181 कैलोरी	बूंदी लड्डू	285 कैलोरी
कचौरी	206 कैलोरी	बर्फी	274 कैलोरी
		बालूशाही	281 कैलोरी
मठरी	223 कैलोरी	चाय	100 कैलोरी
आलू बड़ा	179 कैलोरी	काफ़ी	125 कैलोरी

भोजन

शाकाहारी	1300 कैलोरी
मांसाहारी : अंडा	1024 कैलोरी
मछली	1026 कैलोरी
कीमा	1190 कैलोरी

अतः हम पाते हैं कि मानव शरीर के लिए संतुलित आहार उतना ही आवश्यक है कि जितना कि काम व आराम की सुव्यवस्था, व्यायाम व शारीरिक दृढ़ता।

वैसे तो युक्तिसंगत आहार के सिद्धांत हर उम्र में आवश्यक हैं तथापि 40 वर्ष या इससे अधिक आयु होने पर इन नियमों का पालन करना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

खाने पीने हेतु खाद्य सामग्री का चुनाव करते समय ध्यान रखें कि अलग-अलग खाद्य पदार्थों का कैलोरी मूल्य अलग-अलग होता है। वसा में कैलोरी सर्वाधिक होती है। 100 ग्राम वनस्पति तेल या घी में लगभग 880 कैलोरी। मांस की इतनी ही मात्रा में 165 कैलोरी, चीनी में 405 कैलोरी, अन्न में 310 से 335 कैलोरी, डबलरोटी में 190-230 कैलोरी, आलू में 65 कैलोरी व गोभी में 20 कैलोरी प्रति 100 ग्राम के हिसाब से विद्यमान रहती है।

हमें अपने आहार के चयन के समय कैलोरी नियंत्रण के साथ-साथ समस्त आवश्यक अवयवों यथा शर्करा, वसा, प्रोटीन्स, खनिज, विटामिन व जल के महत्व को ध्यान में रखते हुए ही 'संतुलित आहार' का चयन करना चाहिए।

कुछ ध्यान रखने योग्य आवश्यक बातें निम्नवत् हैं—

(1) स्टार्च पानी में अविलेय होने के कारण धीरे-धीरे पचता है।

(2) अत्यधिक मीठा (शर्करा) व मैदा खाने से व्यक्ति मोटापे का शिकार बन जाता है।

(3) रेशेदार खाद्य पदार्थों का सलाद के रूप में उपयोग लाभप्रद है।

(4) वे चीजें कम खानी चाहिए जिनमें कोलेस्ट्रॉल की मात्रा अधिक हो। अंडे की ज़र्दी में सर्वाधिक कोलेस्ट्रॉल (200 मि० ग्राम०) होता है।

(5) दही, बकरे के मांस में उपस्थित एमीनो अम्ल रक्त-वाहिनियों में कोलेस्ट्रॉल को जमने से रोक कर हृदय रोग से बचाते हैं।

(6) जंतु प्रोटीन केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को उद्दीपित करता है जबकि वनस्पति प्रोटीन इसको शांत करती हैं। वनस्पति प्रोटीन्स के सेवन से नींद भी अच्छी आती है।

(7) विटामिनों की सभी किस्में—गोली, कैप्सूल व इंजेक्शन के रूप में उपलब्ध हैं, तथापि याद रखें विटामिनों का प्राकृतिक रूप में उपयोग ही सर्वाधिक लाभकारी है।

(8) बिना चिकित्सक की सलाह के विटामिनों का उपयोग हानिकारक है—विशेषकर वसा में घुलनशील विटामिन्स का।

(9) जल में घुलनशील विटामिन्स यदि आवश्यकता से अधिक मात्रा में ले भी लिए जाएँ तो मूत्र द्वारा उत्सर्जित हो जाते हैं।

(10) आवश्यकता से अधिक नमक के सेवन से बचें।

(11) तेज़ चाय, काफ़ी का अति सेवन अनिद्रा व पेप्टिक अल्सर का कारण बनता है।

(12) दूध, फल व हरी पत्तेदार सब्जियाँ नियमित रूप से लें।

(13) स्वादिष्ट भोजन स्वस्थ वातावरण में नियमित रूप से दिन में 3-4 बार में लेना चाहिए। रात्रि का भोजन सोने से 1.5 या 2.0 घंटे पूर्व ले लेना चाहिए—विशेषकर बुजुर्गों को।

(14) रुग्णावस्था में चिकित्सक द्वारा प्रदत्त विशिष्ट हिदायतों का पालन करना चाहिए।

उपर्युक्त आँकड़ों व तथ्यों को ध्यान में रखते हुए व्यायाम के साथ-साथ आप अपने लिए 'संतुलित आहार' का चयन कर स्वस्थ व दीर्घायु हो सकते हैं। ☐☐

नया साहित्य

1. ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत—दिनेश मणि

प्रकाशक : ग्राम विकास प्रकाशन, कमिश्नर कम्पाउन्ड कालोनी, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण 1990; मूल्य 10.00 रुपये

मुद्रक : आनन्द मुद्रणालय, 185/22 पंचक्रोशी रोड, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

2. वायु जीवन और प्रदूषण—डॉ० श्याम सुन्दर पुरोहित

प्रकाशक : अजन्ता बुक्स, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 4 ई—175 जे० एन० व्यास नगर, बीकानेर—334001

द्वितीय संस्करण 1990; मूल्य 10.00 रुपये

मुद्रक : आदित्य ऑफसेट, दरियागंज, नई दिल्ली

3. पर्यावरण—डॉ० एस० एस० पुरोहित एवं कु० अर्चना

प्रकाशक : अजन्ता बुक्स, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स 4 ई—175 जे० एन० व्यास कालोनी, बीकानेर

प्रथम संस्करण 1990; मूल्य 15.00 रुपये

मुद्रक : अमर्सिया प्रिंटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली

4. ऊर्जा के स्रोत एवं संभावनाएँ—डॉ० श्याम सुन्दर पुरोहित

प्रकाशक : अजन्ता बुक्स, पाब्शिर्स एण्ड हिस्ट्रीब्यूटर्स, सेक्टर IV, 175 जे० एन० व्यास नगर, बीकानेर—334001

द्वितीय संस्करण 1990; मूल्य 10.00 रुपये

मुद्रक : आदित्य ऑफसेट-प्रेस, नई दिल्ली—11002.

5 सब्जी की खेती—दर्शनानन्द

प्रकाशक : ग्राम विकास प्रकाशन 172, कमिश्नर कम्पाउन्ड कालोनी, इलाहाबाद

तृतीय संस्करण 1986; मूल्य 7 रुपये

मुद्रक : चंदन प्रेस, इलाहाबाद

6. अमरूद की बागवानी—दर्शनानन्द

प्रकाशक : गोपाल ब्रदर्स, 105 जीरो रोड, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण 1988; मूल्य 10.00 रुपये

मुद्रक : गोपाल प्रिंटर्स, 105 जीरो रोड, इलाहाबाद

7. खामोशी भयानक है (पर्यावरण की प्रतिनिधि कविताएँ)

सम्पादक : डॉ रणजीत सिंह

प्रकाशक : विज्ञान शिक्षा केन्द्र (विज्ञान प्रौद्योगिकी संचार कार्यालय), सिविल लाइन्स, बांदा—21001

प्रथम संस्करण 1990; मूल्य 5 रुपये

मुद्रक : बांगा कम्पयू प्रिंटर्स, 11 ब, प्रथम तल, प्रिन्स कॉम्पलेक्स, हजरत गंज, लखनऊ—226001

सोना : एक भू-वैज्ञानिक अध्ययन

विजयकान्त श्रीवास्तव

सभ्यता के इतिहास के समान ही सोने का भी इतिहास माना जायेगा। मनुष्य को कोई भी धातु इतनी प्रिय नहीं थी जितना सोना। यही एक ऐसी धातु है जिसने मनुष्य को खूंखार बनाया। सोने की लालसा के कारण ही अनेक युद्ध हुए। इसी धातु के लिए कितने साम्राज्य बने, कितने साम्राज्य बिगड़े। सोने की पिपासा ने ही मनुष्य को नये स्थानों की खोज करने की प्रेरणा दी। मिस्र से लोग सोने की खोज में अफ्रीका गये। अन्वेषण की प्रेरणा मनुष्य में सोने की लालसा से ही आयी। सोने को निकालने के लिए नये-नये तरीकों का आविष्कार धातु विज्ञान एवं खदान विज्ञान के लिए वरदान साबित हुआ। रासायनिक विधि से अन्य धातुओं को सोने में बदलने की प्रक्रिया प्राप्त करते-करते गन पाउडर तथा पोर्सलीन जैसी चीज़ों का आविष्कार हुआ। आज मनुष्य अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के जिस शिखर पर बैठा है, वहाँ तक पहुँचने में सोने की भूमिका निर्विवाद है।

यह धातु पीले रंग का तथा अप्रतिम दुति वाला है। इसकी कठोरता 3 है तथा आपेक्षिक घनत्व 19.22 है। यह धातु पीट-पीट कर पतला किया जा सकता है तथा एक सेन्टीमीटर मोटे पत्र से 400000 पतले पत्र बनाये जा सकते हैं। इसको पतले तारों के रूप में खींचा जा सकता है। 1 ग्राम से 2.5 किलोमीटर लम्बा तार खींचा जा सकता है। 1063° सेन्टीग्रेड ताप पर यह पिघल जाता है। 2966° सेन्टीग्रेड पर यह उबल जाता है। यह धातु विद्युत् तथा ताप का सुचालक है। इस धातु से आसानी से मिश्र धातु बनाया जा सकता है।

सोना आवर्ती श्रेणी के 1B उपसमूह का सदस्य है। सोने का रासायनिक चिह्न **AU** है। आण्विकता संख्या 79 है, आण्विक भार 196-967 तथा आणविक आयतन 10.2 तथा इसका केवल एक स्वस्थानिक है। इसका धात्वीय व्यास 1.44**A** है। सोना हाइड्रोक्लोरिक, सल्फ्यूरिक तथा नाइट्रिक एसिड में अघुलनशील है परन्तु **एकुआ रेजिया** में घुलनशील है। इस धातु पर, अलकली, हाइड्राक्साइड, तथा सल्फर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

सोने का तौल ट्राय औंस में किया जाता है। सोने के तौल का ब्रिटिश पैमाना निम्न है—

1 ट्राय पौंड = 12 औंस = 240 पेनीवेट = 5760 कण

1 ट्राय औंस = 50 पेनीवेट = 480 कण

9 पेनीवेट = 24 कण = 0.05 औंस

9 कण = 0.042 पेनीवेट
= 0.002285 औंस

मीटरिक पद्धति में 9 ट्राय पौंड = 0.373 किलोग्राम

9 औंस = 31.103 ग्राम तथा 9 पेनीवेट = 1.555 ग्राम के।

स्वर्ण मुद्रा का प्रसार

सबसे पहले चीन में 1000 ईसा पूर्व में स्वर्ण मुद्रा का प्रसार हुआ। यूरोप में लिडिया में स्वर्ण मुद्रा का प्रसार सबसे पहले माना जाता है। भारत में आदि काल से स्वर्ण मुद्रा का प्रसार माना जाता है। मध्य काल में सभी स्थानों पर स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन आरंभ हो गया था। 1266 में फ्रांस में **लुइस नवें** ने स्वर्ण मुद्रा अपने नाम से ढलवाई। 1327-77 से **एडवर्ड तृतीय** ने स्वर्ण मुद्रा व्यापार के लिए बढ़ाई। ब्रिटिश गिनी (सावरेन : **Sovereign**) का प्रसार 1816 के बाद किया गया।

जियालोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया—एम-एम 196, सेक्टर डी, अलीगंज हाउसिंग स्कीम, लखनऊ—226020

गोल्ड स्टैंडर्ड

प्रथम विश्व युद्ध के पहले के अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा पद्धति को ही गोल्ड स्टैंडर्ड कहा जाता है। जो देश गोल्ड स्टैंडर्ड को मानते हैं उनके मुद्रा को स्वर्ण के रूप में तय किया जाता है। प्रथम विश्व युद्ध के पहले ग्रेट ब्रिटेन में बैंक ऑव इंग्लैंड में सोने का मूल्य निर्धारित था तथा इसी निर्धारित मूल्य के अनुपात में मुद्रा का प्रसार होता था। गोल्ड स्टैंडर्ड के कारण स्वर्ण मुद्रा का प्रसार होता है तथा इतनी मात्रा के बराबर मुद्रा या नोट बाजार में चलाया जाता है। व्यापार में गोल्ड स्टैंडर्ड के कारण मुद्रा के विनिमय में मदद मिलती है। प्रत्येक देश में स्वर्ण मूल्य निर्धारित किया जाता है। दो मुद्राओं का विनिमय दर इसी आधार पर तय किया जाता है। यदि बैंक ऑव इंग्लैंड में पौंड का मूल्य 112.982 कण शुद्ध सोने का है और अमेरिकी डॉलर का भाव 23.2 कण है तो स्टर्लिंग डॉलर का मूल्य 112.982/32.2 आँका जायेगा। इसी मूल्य के आधार पर गोल्ड इम्पोर्ट पाइंट तथा गोल्ड एक्सपोर्ट पाइंट तय किया जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रत्येक देश को अपनी मुद्रा का भाव स्वर्ण के रूप में तय करना आवश्यक है। वर्तमान MF कानूनों में भी पर्याप्त परिवर्तन किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय कर्ज़ों को समाप्त करने के लिए सोना ही विनिमय के रूप में प्रयोग किया जाता है।

शुद्धता

शुद्ध सोना बहुत लचीला होता है। भिन्न धातुओं से ही ज़ेवर बनाया जाता है। सोने की शुद्धता कैरेट में दी जाती है। शुद्ध सोना 24 कैरेट का होता है। **Fineness** धात्वीय शब्द है। 916.6 का अर्थ होता है 1000 में 916 भाग सोने का है तथा शेष भाग अन्य धातु का। शुद्धता का निम्न रूप ज़ेवर में प्रयोग किया जाता है।

22 कैरेट = 916.5 सोना 1000 भाग में
(24 में 22 भाग सोना)

18 कैरेट = 750 सोना 1000 भाग में
(24 में 18 भाग सोना)

14 कैरेट = 585 सोना 1000 भाग में
(24 में 14 भाग सोना)

9 कैरेट = 375 सोना 1000 भाग में
(24 में 9 भाग सोना)

सोने का उपयोग आभूषण तथा उद्योगों में किया जाता है। दाँत, औषधि, इलेक्ट्रॉनिक्स में भी प्रयोग किया जाता है।

निवेश के रूप

सोने के निवेश के अनेक रूप पाये जाते हैं।

गोल्ड बुलियन

गोल्ड बुलियन दो रूपों में पाया जाता है। उत्तम को गोल्ड डिलिवरी बार कहा जाता है। इसमें 99.5 प्रतिशत शुद्ध सोना होता है। दूसरे रूप में 99% शुद्ध सोने का छड़ बनाया जाता है।

बुलियन सर्टिफिकेट

निश्चित मात्रा में सोने के बदले सर्टिफिकेट जारी किया जाता है। वर्तमान में सिटी बैंक इस प्रकार के सर्टिफिकेट जारी करता है।

बुलियन एकाउण्ट

कुछ बैंकों में बुलियन एकाउण्ट खोलने की सुविधा होती है। इन खातों से सोने के बराबर मूल्य का धन निकाला जा सकता है।

डिलिवरी आर्डर

इस प्रकार के निवेश को पहले मोकाटा मेटल कॉरपोरेशन ने जारी किया था। इसमें सोने के बराबर धन निकाला जा सकता है।

स्वर्ण मुद्रा

स्वर्ण मुद्रा स्वर्ण की भाँति ही जारी होता है। इसमें सोने की शुद्धता प्रधान है। प्रसार में लाये जाने वाले मुद्राओं में क्रूगेरांड, नेपोलियन तथा गिन्नी सावरेन प्रधान हैं।

गोल्ड शेयर

सोने के खदानों वाली कम्पनियाँ गोल्ड शेयर जारी करती हैं। निवेश का यह तरीका अन्य शेयर की भाँति ही है परन्तु मँहगा है।

स्वर्ण के खनिज

स्वतंत्र रूप से असमान, लम्बे धागे, गुटके के रूप में पाया जाता है। यह आइसोमेट्रिक समूह में मणिभित होता है। मणिभ आक्टाहेड्रान (111), ड्रेडेकाहेड्रान (110) तथा धन (100) के रूप में पाया जाता है। इसके अन्य रूप टेट्राहेड्रान (410) (310) (520) (210) टेपजोहेड्रान (811) (411) (311) (211) हेक्साआक्टाहेड्रान (421) (321) (543) (180) पाया जाता है।

सोने के प्रमुख खनिज निम्न हैं—

1. आर्जेन्टाइन

यह **Ag** तथा **Aa** का मिश्र धातु है। इसमें 10-15% **Ag** पाया जाता है। इसका रंग स्वर्ण पीत या हल्का पीत होता है। आपेक्षिक घनत्व 12.5 से 15.5 तक होता है।

2. पेलेडियम

यह **Ag**, **Au** तथा **Pd** का मिश्रण है। 5-10% तक **Pd** पाया जाता है।

3. रोडियन

यह **Au** तथा **Rb** का मिश्रण है। आ० घ० 15.5 से 16·8 तक है। 34-43% तक **Rb** होता है।

4. क्रयूप्रियम

यह **Au** तथा **Cu** का मिश्र धातु है।

5. आरसोमिदिड

यह **Au** तथा **Os** या **Ir** का मिश्रण है।

6. आरोस्टिवाइट

यह **Ag** तथा **Sb** का मिश्रण है। 43.5 से 50.9% **Au** होता है।

7. माल्डोनाइट

यह **Au** तथा **Bi** का मिश्र धातु है।

8. आरोविसमुथनाइट

इनमें **Au**, **Bi** का सल्फाइड पाया जाता है।

9. कलावेराइट

यह **Au** का डाइटेलुराइट है तथा मोनोक्लिनिक समूह में घनीकृत होता है।

10. क्रेनेराइट

यह **Ag** का मिश्रण है। इसमें 30.7-43.9% **Au** होता है।

11. मोन्टेवेराइट

इसमें **Te** का मिश्रण पाया जाता है। 38.6 से 44.3% **Au** पाया जाता है।

12. पेंटजाइट

(यह **Ag Tu Te** का मिश्रण है। इसमें 19 से 25.2% तक **Au** पाया जाता है।

13. नेगाइट

यह **Au Pb Sb Fe Te** का मिश्रण है।

उल्कापिण्डो में सोना

उल्कापिण्डों में सिडेराइट में सोना अधिक पाया जाता है। एकोन्ड्राइट तथा टेक्टाइट में अल्प मात्रा में पाया जाता है।

मैग्मीय शिलाओं में

सोना प्राय: सभी मैग्मीय शिलाओं में पाया जाता है। इसकी मात्रा 1 से 10 ppb होता है। अवसादीय शिलाओं में सोना सैंडस्टोन, ग्रैवेल, काग्लामेरेट तथा लाइमस्टोन में पाया जाता है। कायांतरित शिलाओं में सोना कम पाया जाता है। सागर जल में तथा वनस्पतियों एवं जानवरों में स्वर्ण कण पाया जाता है।

रासायनिक रूप से सोना निष्क्रिय होता है अत: विदरित शिलाओं में भी पाया जाता है। ऑक्सीकृत क्षेत्रों में सोना स्वतंत्र रूप से पाया जाता है। कोलार स्वर्ण क्षेत्र में सोना ऑक्सीकृत क्षेत्र में 100-150 मीटर गहराई तक पाया जाता है।

निक्षेप

प्राथमिक निक्षेप स्वर्ण युक्त शिलाओं में पाया जाता है। इनमें सम्पूर्ण शिला, शिरायें स्टाकवर्क तथा प्रतिस्थापित शिलायें प्रमुख हैं। दूसरे प्रकार के निक्षेप एक स्थान से निकल कर दूसरे स्थान पर यांत्रिक रूप से जमें पाये जाते हैं।

लोड निक्षेप हाइड्रोथर्मल तथा मैग्मीय प्रक्रियाओं द्वारा बने पाये जाते हैं। गोल्डेन करी, मोनटाना तथा

गोल्डहिल के निक्षेप मैग्मीय प्रक्रियाओं वाले हैं। संस्पर्श मेटासोमेटिक प्रक्रियाओं वाले निक्षेप कम हैं। इनके उदाहरणों में मालू, मोन्टाना, हेडले निक्षेप हैं।

मैग्मीय, हाइड्रोथर्मल तथा मेटासोमेटिक निक्षेप ताप, दबाव, घोल की मात्ना घुलनशीलता तथा तत्सम्बन्धी रासायनिक क्रियायों पर निर्भर करता है। क्रीपलक्रीम कोलेराडो नेवादा तथा मेक्सिको क्षेत्र के निक्षेप इपीथर्मल प्रक्रिया वाले हैं।

कोलार निक्षेप, ब्राज़ील तथा कोचवर आदि निक्षेप हाइपोथर्मल हैं।

प्लेसर निक्षेप

मात्र शिलाओं से निकलकर स्वर्ण कण बालू में जमा पाया जाता है। विदरण की क्रिया इसमें प्रधान है। एलवियल सैंड ग्रेवेल तथा काग्लोमेरेट में स्वर्ण कण पाये जाते हैं। शिलाओं से कण निकलकर दूर-दूर तक बहकर सैंड बार, मियांडर आदि स्थानों में रुक जाता है। जल-क्रिया से स्थानान्तरित भी हो जाता है। नदी-घाटी या छोटे सरिता पुलिनों में निक्षेप पाये जाते हैं। नदी का ढाल 10-15 किलोमीटर होना चाहिए। भँवर या घुमावदार निक्षेप में स्वर्ण कणों के मिलने की सम्भावना अधिक है। इसके साथ-साथ भारी कण भी पाये जाते हैं। मैगेराइट, इल्मेनाइट, कैसीटेराइट, गारनेट आदि प्रमुख खनिज हैं। केरल के नीलाम्बूर घाटी में, ब्रह्मपुत्र घाटी में, बिहार के स्वर्ण रेखा तथा उत्तर प्रदेश के पनार नदियों में ऐसे निक्षेप पाये जाते हैं।

विश्व के प्रमुख निक्षेप

विश्व में सोना का उत्पादन 1493 से 1965 तक 219,900,0000 औंस था। 1969 तक 184886 औंस सोने का उत्पादन हुआ। सोने के निक्षेप रूस, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, कोलम्बिया, रोडेशिया, ब्राज़ील, इक्वेडोर, फिज़ी, फिलिपींस, वेनेजुएला तथा जापान में पाये जाते हैं।

दक्षिण अफ्रीका के विट वाटर स्ट्राड खदान में विश्व का 77% सोना निकाला जाता है। यहाँ स्वर्ण पट्टी 150 किलोमीटर (किमी) लम्बा तथा 40 किमी चौड़ा है। स्वर्ण कण कांग्लोमेरेट शिला में पाया जाता है। इसमें क्वार्ट्ज, चर्ट, स्लेट प्रमुख रूप से पाया जाता है। भारी खनिजों में टूरमलीन, जिरकन रूटाइल, क्रोमाइट आदि पाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के द० डकोटा का होकस्टोक खदान विश्व के उत्तम खदानों में से है। यहाँ अयस्क असमान पट्टी तथा बंध एवं शिरा के रूप में पाया जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका का मदरलोड 200 किमी लम्बा तथा 1.5 किमी चौड़ा है। यहाँ स्लेट, शिस्ट ग्रीनस्टोन आदि शिलायें पायी जाती हैं। शिलाओं में ग्रीनस्टोन, एप्लाइट, डायोराइट आदि प्रमुख हैं। क्वार्ट्ज शिराओं के साथ अयस्क पाया जाता है। केलिफोर्निया के ग्रास वेली में क्वार्ट्ज शिराओं में अयस्क पाया जाता है। क्रीपल क्रीक क्षेत्र में ज्वालामुखीय शिलाओं में बाद में क्वार्ट्ज शिराओं का अन्तरोधन हुआ है। यहाँ निक्षेप 100 मीटर गहरा पाया जाता है। इस क्षेत्र स्वर्ण अयस्क के रूप में कालवेराइट प्रमुखतया पाया जाता है। कनाडा के प्रोफूपाइन क्षेत्र में अयस्क ज्वालामुखीय शिलाओं में क्वार्ट्ज शिराओं में पाया जाता है। शिलाओं में बसाल्ट, एडेंसाइट, डेसाइट, रायोलाइट आदि पाये जाते हैं। कनाडा के विकलैण्ड क्षेत्र में अयस्क कायान्तरित शिलाओं में पाया जाता है। यहाँ सायनाइट शिला प्रधानतया पाया जाता है। शिलाओं के दरारों में अयस्क पाया जाता है। कनाडा के ही मेलोनाइड क्षेत्र में सोने की दो पट्टियाँ पायी जाती हैं। इस क्षेत्र में ग्लोराइट शिस्ट शिलाओं में बाद की अवस्था में क्वार्ट्ज शिराओं का अन्तर्भेदन पाया जाता है। इनमें स्वर्ण खनिज पाये जाते हैं।

आस्ट्रेलिया में कालगूर्ली क्षेत्र प्रमुख है। यह 10 किमी लम्बा तथा 1 किमी चौड़ा क्षेत्र है। यही पुरातन शिलाओं के कायान्तरण से अयस्कों का मणिभीकरण माना जाता है। यहाँ क्वार्ट्ज डोलेराइट आदि शिलाओं में परिवर्तन पाया जाता है। शिला क्षेत्रों में दरार भ्रंश तथा जोड़ अधिक पाये जाते हैं। इनमें स्वर्ण खनिज पाया जाता है। आस्ट्रेलिया का

विक्टोरिया स्वर्ण क्षेत्र 25 किमी लम्बा तथा 5 किमी चौड़ा है। यहाँ स्लेट तथा सैंड स्टोन प्रधान शिलायें हैं। इनमें ग्रेनाइट का उत्कोच पाया जाता है। अयस्कों के साथ क्वार्ट्ज सेरीसाइट, कैलसाइट, डोलोमाइट, आदि पाया जाता है। आस्ट्रेलिया के बालार्ट विक्टोरिया क्षेत्र में भी यही भूवैज्ञानिक संरचना पायी जाती है। यह क्षेत्र 8 किमी लम्बा तथा 5 किमी चौड़ा है। यहाँ सफ़ेद क्वार्ट्ज, फेल्डस्पार, डोलोमाइट आदि पाया जाता है। साथ में पाचराइट, आर्सोनो-पायराइट, पिरहोटाइट, मार्कासाइट, एकेलेराइट आदि पाया जाता है।

भारतीय निक्षेप

भारत में लोड तथा प्लेसर वाले कई निक्षेप पाये जाते हैं। इनमें प्रमुख निम्न है।

कोलार गोल्ड फील्ड

यह बेंगलोर से 100 किमी दूर है तथा इस क्षेत्र शिस्ट शिलायें पायी जाती हैं। यह क्षेत्र 80 किमी लम्बा तथा 3.4 किमी चौड़ा है। शिलायें कायान्तरित हैं तथा इनमें मैग्मीय शिलाओं का उत्कोच हुआ है। शिलाओं में शिस्ट एमीवोलाइट, बसाल्ट, एडेसाइट आदि प्रमुख हैं। पूर्वी तट पर चैम्पियन वाइस तथा कांग्लोमेरेट पाया जाता है। स्वर्ण अयस्क प्रमुखतया चैम्पियन क्वार्ट्ज लोड से आता है। इसमें खदान 2745 मीटर तक है। सबसे गहरी खान 3209 मीटर तक है। इस क्षेत्र में स्वर्ण के 24 लोड पाये जाते हैं। लोड प्रायः 1 मीटर तक का पाया जाता है।

हुट्टी स्वर्ण खदान

यह खदान रायचूर से 80 किमी दूर है। यह क्षेत्र 80 किमी लम्बा तथा 3 से 25 किलोमीटर चौड़ा है। यहाँ खदान 195 मीटर तक है। शिलाओं में प्रमुख शिस्ट है। बसाल्ट का अन्तर्भेदन इन शिलाओं में हुआ है। पेग्माइट, एलाइट तथा क्वार्ट्ज की शिरायें इनमें पायी जाती हैं। इस क्षेत्र में 6 प्रधान स्वर्ण बंध हैं।

अनन्तपुर (आंध्र प्रदेश) इस क्षेत्र से पहले सोना निकाला जाता रहा है। यह 5 किमी लम्बा क्षेत्र है। यहाँ प्रमुख शिस्ट शिला है। शिलाओं में सेरीसाइट, क्लोराइट शिस्ट, तथा फिलाइट आदि प्रमुख हैं। इनकी दरारों तथा इनके क्वार्ट्ज शिराओं में स्वर्ण खनिज पाया जाता है।

गड्डा क्षेत्र

इस क्षेत्र में स्वर्ण में प्राथमिक तथा प्लेसर दोनों रूपों में पाया जाता है। यह हम्पी से 45 किमी० दूर है। यहाँ ग्रीनस्टोन, कग्लोमेरेट शिस्ट आदि पाया जाता है।

वाचनद खदान

यह नीलगिरि पहाड़ियों में है। यहाँ सोना प्राथमिक तथा प्लेसर दोनों रूपों में पाया जाता है। यहाँ चार्नोकाइट शिलायें पायी जाती हैं। इनमें ग्रेनाइट तथा नाइस का अन्तर्भेदन पाया जाता हैं। शिलाओं के शियर, कटाव तथा दरार में खनिज पाया जाता है।

इन प्रमुख खदानों के अतिरिक्त भारतवर्ष में कई स्थानों पर स्वर्ण खनिज पाया है, परन्तु हर जगह से सोना नहीं निकाला जाता है। ऐसे क्षेत्र हैं—

आन्ध्र प्रदेश - अनन्तपुर में गूटी तथा वेकटमपाले क्षेत्र में स्वर्ण खनिज पाया जाता है।

चित्तूर—इस क्षेत्र में विसन्ट खान से स्वर्ण खनिज पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कर्नूल तथा वारांगल क्षेत्र में स्वर्ण खनिज पाया जाता है।

बिहार— पटना में चंदकोला तथा कनुतारा क्षेत्र में पनेसर खनिज पाया जाता है। राँची में सोनापेट क्षेत्र में सिंहभूम ज़िले में पहारडिट, सौसल, लाम्बा मायासादा, कुदरकोछा क्षेत्र में स्वर्ण खनिज पाया जाता है।

गुजरात—बड़ौदा में बरकुण्डा, छोटा उदयपुर क्षेत्र में स्वर्ण खनिज पाया जाता है।

केरल—इस प्रदेश में कोजिकोडे (नीलाम्बुर घाटी) तथा कनानोर ज़िले में प्राथमिकतया प्लेसर स्वर्ण पाया जाता है।

मध्य प्रदेश—इस प्रदेश में बिलासपुर, दुर्ग, जबलपुर तथा रायगढ़ ज़िलों में स्वर्ण खनिज पाया जाता है।

महाराष्ट्र—भंडारा जिले में स्वर्ण खनिज पाया जाता है।

कर्नाटक—इस प्रदेश में बेलारी, बीजापुर, चिकमगलूर, चित्रदुर्गा, धारवाड़ हासन जिलों में स्वर्ण खनिज पाया जाता है।

तमिलनाडु—इस प्रदेश में नीलगिरी, कोयम्बटूर तथा धरमपुरी क्षेत्र में स्वर्ण खनिज पाया जाता है।

प्लेसर स्वर्ण अयस्क

दक्षिण भारत में नीलाचुर घाटी से प्लेसर खनिज निकाला जाता है। आजकाल छनावकार्य आसाम, केरल, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, जम्मू कश्मीर तथा उत्तर प्रदेश में किया जाता है। भारत में प्लेसर निक्षेप निम्न स्थानों में पाया जाता है—

आन्ध्र प्रदेश—ईस्ट गोदावरी जिले में गोदावरी नदी में।

आसाम—सुवर्णसिरी, लोहित, डिहिंग जागलू तथा ब्रह्मपुत्र नदियों के कणों में पाया जाता है।

बिहार—छोटा नागपुर, राँची (सोनापेट) कामेरारा तथा धीवा क्षेत्रों में पाया जाता है।

गुजरात - जूनागढ़ में सुरेखा नदी में।

हिमाचल प्रदेश—विलासपुर, कागड़ा, महासू मंडी आदि स्थानों में पाया जाता है।

जम्मू कश्मीर—कठुआ, उधमपुर तथा लद्दाख क्षेत्रों में पाया जाता है।

केरल—वायनद पठारी के पास, नीलाचुर घाटी में।

महाराष्ट्र—भंडारा मारु नदी में रायचूर राजिम क्षेत्र में।

कर्नाटक—बेलगाम, तथा चिकमगलूर में।

उड़ीसा—धेकेनाल, किचोझर, कोरापुर, मयूरभंज, सम्बलपुर, सुन्दरगढ़ जिलों में।

राजस्थान—अजमेर-सुनारकरी में, जोधपुर लूनी खादी नदी में।

सिरोही—शोहिरा नदी में।

तमिलनाडु—सेलम तथा मदुराई में।

उत्तर प्रदेश—विजनौर, नगीना, सोनाबाड़ी, कालागढ़ में अलकनन्दा, गंगा, गोमती, पिंडार तथा पनार नदियों में।

पश्चिम बंगाल—बाकुंरा मिदनापुर, प्रक्षलिया जिलों में पाया जाता है।

सोने की खोज

सोने का अन्वेषण कार्य कई स्तरों पर किया जाता है। सबसे पहले स्वर्ण के पुराने विषय में ग्रंथों से जानकारी प्राप्त की जाती है। निक्षेपों के हवाई चित्रों तथा दृश्यांकन छवि से इन स्थानों का भूवैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है। भूवैज्ञानिक मान चित्रण अधिक पैमाने पर किया जाता है। संरचना से तथा शैलिरी अध्ययन से स्वर्णयुक्त खनिजों के सह जनन का पता चलता है। रासायनिक विश्लेषण से स्वर्ण खनिजों के सह जनन तथा स्थान का पता चलता है। भूभौतिकी विधियों से धनीकृत क्षेत्र का पता चलता है। प्लेसर स्वर्ण अयस्कों के लिए छनाव विधि अपनायी जाती है। भारत में अनेक स्थानों पर छनाव कार्य जारी है, जिससे स्वर्णयुक्त मृदाओं का पता चलता है। स्वर्ण खनिजों से शुद्ध स्वर्ण प्राप्त करने के लिए धात्वीय प्रक्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है। इनमें फ्राथ फ्लोटेशन, साहना-इजेशन तथा अमलगमेशन प्रक्रियायें प्रधान हैं।

□□

सारणी—1

प्रधान उल्कापिण्डों में स्वर्ण मात्रा (पीपीएम)

टेक्टाइट=	0.0074
एरियोलाइट कैल रहित	0.014
कैल बहुल	0.0037
क्रोन्ड्राइट कार्बनयुक्त	0.16
हाइपरस्थिन	0.15
ब्रांजाइट	0.21
एनस्टाइट	0.27
सिडियोराइट	1.5
सिडेराइट	
हेक्साहेड्राइट	0.67

आक्टाहेड्राइट	1.3
एटाक्साटाइट	1.2

सारणी—2

प्रमुख शिलाओं में स्वर्ण मात्रा (पीपीबी)

पेग्माटाइट	0.01
ग्रेनाइट	7.1-2.8
क्वार्ट्ज भारफरी	12.0
राचोलाइट	12.0
टुफ	5.2
डायोराइट	4.3
एण्डुसाइट	5.2
ग्रेबो	5.4
नोराइट	2.9
बसाल्ट	3.6
डनाइट	8.2
सैंडस्टोन	7.5
शैल	3.9
क्ले	17.1
लाइमस्टोन	3.5
आर्जिलाइट	8.3
फिलाइट	1.2
शिस्ट	5.0
नाइस	1.8
हार्नफेल्स	8.4
इम्लोगाइट	2.2

सारणी—3

विश्व के प्रमुख देशों में सोने की मात्रा मिलियन पाहन ट्राइ औंस में 1980

अर्जेन्टाइना	4·37
आस्ट्रेलिया	7·93
बेलजियम	34·18
ब्राज़ील	1·70
कनाडा	21·22
फ्रांस	81·85
भारत	8·56
इज़राइल	1·18
इटली	66·67
जापान	24·47
ब्रिटेन	18·76
सं० रा० अमेरिका	264·60
प० जर्मनी	95·18
टर्की	3·77
स्पेन	14·61
स्विटज़र लैण्ड	83·28

सारणी—4

भारत में विभिन्न स्वर्ण मुद्राओं में सोने की मात्रा औंस में

200 मोहर	68·73
100 मोहर	34·36
5 मोहर	1·718
2 मोहर	0·687
1 मोहर	0·344
½ मोहर	0.172
1/3 मोहर	0·115
1/4 मोहर	0·086
1/6 मोहर	0·057
1/8 मोहर	0·043
1/32 मोहर	0·011
5 रुपिया	0·115
10 रुपिया	0·230
15 रुपिया	0·235
1 पगोडा	0·077
100 कोरी	0·551
50 कोरी	0·276
25 कोरी	0·138

सारणी—5

ब्रिटेन में स्वर्ण मुद्राओं में स्वर्ण की मात्रा

	औंस में
1 नोबुल	0·251
1 ऐंजेल	0·154
1 रायल	0·400
1 सावरेन	0·384
1 जार्ज नोबुल	0·133
3 पाउँड	0·796
20 शिलिंग	0·265
2 क्राउन	0·133
5 शिलिंग	0 666
5 गिनी	1·23
2 गिनी	0·492
2 गिनी	0·246
5 पाउंड	1·:77
1/2 पाउंड	0·118

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

लघु पुच्छ वानर की चिंतनीय दशा

जीव-जंतुओं और वनस्पतियों की घटती संख्या आज सारी दुनिया में चिंता का विषय है। कुछ दूर-दर्शितापूर्ण प्रयासों के फलस्वरूप अनेक जातियों को न केवल सुरक्षित रखने वरन् उनकी संख्या बढ़ाने में भी अभूतपूर्व सफलता मिली है। किन्तु अनेक जीवजातियाँ ऐसी हैं जिनकी संख्या यदि बहुत कम हो गई तो बाद में उनकी संख्या में वृद्धि की संभावना दुराशामात्र होगी। ऐसी ही जीवजातियों में **लघु पुच्छ वानर** या **शेरपुच्छ वानर** (lion-tailed macaque) शामिल है। इसका वैज्ञानिक नाम **मैकाका साइलेनस** (*Macaca silenus*) है।

अपनी लगातार घटती संख्या के कारण भारत में लघु पुच्छ वानर केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु के वर्षा वनों तक ही सीमित हो गया है। आज इस वानर के लिए सबसे बड़ी समस्या इसके आवास की समस्या है। ये वर्षावन बड़े क्षेत्रों में न फैले होकर छोटे-छोटे खण्डों में हैं और यही वजह हैं कि लघु पुच्छ वानर छोटे-छोटे समूहों में पाये जाते हैं। इससे इनका 'जीन पूल' (Gene pool) या वंश-राशि भी छोटी है। किसी समय वर्षा-वनों के छोटे-छोटे टुकड़े एक बड़े जंगल के रूप में थे और तब लघु पुच्छ वानरों की संख्या भी अधिक थी। इस प्रकार जैसे-जैसे वनों का आकार सिमटता गया, इन वानरों की संख्या में कमी आती गई। जनसंख्या का दबाव, झूम खेती, पशुओं द्वारा चराई, लकड़ी एवं अन्य वनोत्पादों का अत्यधिक दोहन इन वनों के विनाश के मुख्य कारण हैं। आज बचे हुए इन्हीं 'टापूनुमा' छोटे वन-खण्डों में लघु पुच्छ वानर 'कैद' होकर रह गया है। जीवसंख्या का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों का निश्चित मत है कि जिन जीवजातियों की संख्या में तेजी से वृद्धि होती है उनके 'जीन पूल' में भी बढ़ोतरी होती है। लघु पुच्छ वानरों की जन्मदर अत्यन्त धीमी है इस कारण इनकी संख्या बढ़ना आसान नहीं।

आमतौर से इनकी मादा साढ़े पाँच या छः वर्ष की आयु में बच्चा जनने के योग्य हो जाती है किन्तु एक बार में एक ही संतान को जन्म दे सकती है और कई बार तो जन्म के बाद ही बच्चों की मृत्यु भी हो जाती है। कभी-कभी बच्चे दो-ढाई वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते काल के गाल में समा जाते हैं। इन सभी कारणों से इनकी संख्या की वृद्धि में बाधाएँ आती हैं।

लघु पुच्छ वानर सामाजिक प्राणी है। ये लगभग 15-15 के छोटे समूहों में रहते हैं। समूह का मुखिया नर होता है। मुखिया के अतिरिक्त इसमें आधी दर्जन मादायें और शेष बच्चे होते हैं। एक समूह में वर्ष में 2-3 बार ही बच्चे का जन्म होता है। एक तो इनकी प्रजनन-दर धीमी है और ऊपर से मनुष्यों द्वारा इनका शिकार भी किया जाता है। दूसरी समस्या भोजन की है। अनुसंधानकताओं का मानना है कि इसका मुख्य भोजन फल है। इसके अतिरिक्त कीड़े-मकोड़े और अण्डे भी इनके भोजन का अंग हैं। भारतीय वन्य जीवन संस्थान के शोधार्थी **अजित कुमार** ने तो इनकी निरंतर घटती संख्या से चिंतित होकर इन्हें 'जीवित शव' (Living dead) की संज्ञा दी है।

इसी वर्ष सैन डियागो में लघु पुच्छ वानरों पर हुए 'तृतीय विश्व संगोष्ठी' में इन वानरों को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने के विषय में भी विचार-विमर्श किया गया। मादाओं को बेहोश करके कृत्रिम गर्भाधान का भी सुझाव आया। यह बिचार भी व्यक्त किया गया कि इन पर अभी और अधिक वैज्ञानिक शोध की आवश्यकता है। लघु पुच्छ वानर और इस जैसी अनेक जीवजातियों की समस्याओं के समाधान तो निकल सकते हैं, पर आवश्यकता है लोभ संवरण और दृढ़ संकल्प की। आवश्यकता है हमारे हृदयों में वन, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों सहित इस प्रकृति के प्रति ममता और दया के उदय होने की। □□

अधिक लोहा भी शरीर को गलाता है

डॉ० विजय कुमार श्रीवास्तव

हमारे शरीर में लौह तत्वों की कमी खून की कमी यानी एनीमिया (रक्ताल्पता) रोग को जन्म देती है। लेकिन आवश्यकता से अधिक लोहा एनीमिया से भी अधिक खतरनाक बीमारी "हीमोक्रोमेटोसिस" का कारण बनती है। यह बीमारी मधुमेह, यकृत सिरोसिस, गठिया, हृदय रोग तथा पुरुष बांझपन और नपुंसकता को जन्म देती है। विडम्बना तो यह है कि एनीमिया और हीमोक्रोमेटोसिस के प्रारम्भिक बाह्य लक्षण एक जैसे होते हैं। इसलिए एनीमिया समझकर लौहतत्व युक्त गोलियाँ या लौह संपूरक विटामिन लेने से पहले खून की जाँच बहुत जरूरी है, नहीं तो एनीमिया पर काबू पाने और लौह शक्ति प्राप्त होने के स्थान पर "हीमोक्रोमेटोसिस" जैसा रोग लग जाएगा।

लोहा हमारे शरीर के लिए बहुत आवश्यक है। हमारे खून की प्रोटीन हीमोग्लोबिन की रचना लौह-अणुओं से मिलकर ही होती है। रक्त का सबसे महत्वपूर्ण काम है साँस लेने से फेफड़ों में आयी हुई ऑक्सीजन को शरीर की सारी कोशिकाओं तक पहुँचाना। ऑक्सीजन की उपस्थिति में ही कोशिकाएँ पोषक पदार्थों का ऑक्सीकरण करके शरीर के लिए आवश्यक ऊर्जा प्राप्त करती हैं। विभिन्न कोशिकाओं तक ऑक्सीजन को ढोने का काम हीमोग्लोबिन ही करती है।

शरीर में लौह तत्वों की कमी से रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा भी कम हो जाती है। इस अवस्था को अल्परक्तता या एनीमिया रोग कहा गया है और 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के अनुसार इस समय दुनिया के विकासशील देशों में लगभग 25 करोड़ महिलाएँ और लगभग इतने ही बच्चे एनीमिया के शिकार हैं। परन्तु सम्भवतः यह बहुत ही कम लोगों को मालूम है कि शरीर में आवश्यकता से अधिक मात्रा में लौह तत्वों की उपस्थिति भी एक बीमारी को जन्म देती है जो एनीमिया से कहीं अधिक खतरनाक होती है। इसे "हीमोक्रोमेटोसिस" या रक्तवर्णकता के नाम से जाना जाता है। इस रोग में व्यक्ति के शरीर में कभी-कभी तो लौह तत्वों की मात्रा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि यदि उसकी अत्यन्त संवेदनशील मेटल डिटेक्टर से जाँच की जाय तो डिटेक्टर का अलार्म बज उठेगा।

इस प्रकार की एक घटना ने एक बार अमेरिका के ब्रांक्स वेटेरंस एडमिनिस्ट्रेशन मेडिकल सेंटर के लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया था। एक बार एक बदमिजाज रोगी द्वारा डॉक्टर और नर्सों पर गोली चलाने के बाद से इस अस्पताल के प्रवेश द्वार पर मेटल डिटेक्टर लगा दिया गया था। अस्पताल में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इस मेटल डिटेक्टर से गुजरना पड़ता था। एक बार अस्पताल के रक्तविज्ञानी विक्टर हर्बर्ट के साथ आया एक रोगी जैसे ही इस मेटल डिटेक्टर युक्त दरवाजे से निकला, डिटेक्टर का अलार्म बज उठा। लोगों को इस घटना ने आश्चर्यचकित इसलिए किया क्योंकि अस्पताल के प्रवेश द्वार में प्रवेश करने से पहले रोगी के शरीर से धातु की सभी वस्तुएँ, यहाँ तक कि उसकी बेल्ट भी, अलग कर ली गयी थीं। लोगों के कुतूहल को शान्त किया डॉक्टर हर्बर्ट ने। उन्होंने बताया कि वह व्यक्ति वास्तव में हीमोक्रोमेटोसिस रोग का शिकार था, जिसके कारण उसके शरीर में 30 ग्राम से भी अधिक लोहा भरा हुआ था।

अभी कुछ वर्ष पहले तक यह रोग बहुत ही दुर्लभ समझा जाता था। यहाँ तक कि 1970 के आस-पास लिखी गयी चिकित्सा विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों तक में 20 हज़ार शिशुओं में से केवल एक को अपने माँ-बाप दोनों से इस रोग को जन्म देने वाली दोषी "जीन" प्राप्त होने की संभावना का उल्लेख होता था। परन्तु सातवें दशक के बाद हुई शोधों के बाद

सम्पर्क सूत्र : श्री हरीश अग्रवाल, डी-40, गुलमुहर पार्क, नई दिल्ली-110049 फोन : 669820

यह रोग "सामान्य" की श्रेणी में आ गया है। आस्ट्रेलिया, फ्रांस, स्वीडेन, ब्रिटेन और अमेरिका से हाल में मिली रिपोर्टों के अनुसार प्रति हज़ार 3-4 व्यक्ति इस रोग का शिकार होते हैं। भारतवर्ष में यह संख्या अभी साफ़ नहीं है। सन् 1988 में ब्रिटेन से प्रकाशित एक प्रसिद्ध शोध जर्नल 'न्यू इंगलैंड जनल ऑव मेडिसिन' में यूनिवर्सिटी ऑव ऊटा, स्कूल ऑव मेडिसिन के वैज्ञानिक **कार्बिन एडवर्ड्स** और उनके सहयोगियों का एक शोध निबन्ध प्रकाशित हुआ था। इस शोध निबन्ध के अनुसार लगभग 11 हज़ार स्वस्थ दिखने वाले रक्त दाताओं के रक्त की जाँच के आधार पर एडवर्ड्स और उनके सहयोगी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अमेरिका के लगभग 10 लाख व्यक्ति अपने शरीर में सामान्य से कहीं अधिक मात्रा में लौह तत्व जमा किये हुए घूम रहे हैं और देर सबेर इन सबमें हीमोक्रोमेटोसिस रोग के लक्षण प्रकट हो ही जाएँगे।

कितना लोहा चाहिए

लोहा पृथ्वी पर चौथा सबसे अधिक मात्रा में पाया जाने वाला तत्त्व है। एक स्वस्थ मनुष्य के शरीर में लोहे की मात्रा लगभग 4 ग्राम होती है। इसके अतिरिक्त शरीर को प्रतिदिन 2·2 मिलीग्राम तत्त्वों की जरूरत होती है, जिसे आँतें पचे हुए भोजन से प्राप्त कर लेती हैं। प्राप्त लौह तत्वों का आधा भाग हीमोग्लोबिन तथा मांसपेशियों की प्रोटीन मायोग्लोबिन के निर्माण में खर्च हो जाता है। परन्तु लौह तत्त्वों की जो मात्रा खर्च नहीं हो पाती है, वह मुख्यतः यकृत यानी जिगर में जमा होती रहती है।

सामान्य अवस्था में हमारी आँतें भोजन में जितना लोहा रहता है, उसका केवल 10 प्रतिशत ही प्राप्त कर पाती हैं। लेकिन हीमोक्रोमेटोसिस रोग में यह प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ जाता है और आँतें अधिक मात्रा में लौह तत्वों का अवशोषण करने लगती हैं। अक्सर यह अधिक मात्रा आधे से एक मिलीग्राम प्रतिदिन के आस-पास ही होती है जो पहले यकृत में और बाद में अग्न्याशय, हृदय तथा हाथ-पैरों के जोड़ों में जमा होने लगती है। रोज़ आधा से लेकर एक मिलीग्राम के हिसाब से जुड़ते-जुड़ते वर्षों में यह मात्रा काफ़ी अधिक हो जाती है। हीमोक्रोमेटोसिस रोग के लक्षण सामान्यतः 40 वर्ष की आयु के बाद ही दिखाई देते हैं, जब शरीर में लोहे की मात्रा 20 ग्राम से अधिक हो जाती है। इस अवस्था में यकृत और अग्न्याशय में लौह तत्वों की मात्रा सामान्य से 50-100 गुना, थॉयराइड ग्रंथि में 25 गुना और हृदय तथा एड्रीनल (अधिवृक्क) ग्रंथि में 10-15 गुना बढ़ जाती है।

ज़्यादा लोहा ज़हर है

शरीर के इन अत्यन्त महत्वपूर्ण अंगों में इतनी अधिक मात्रा में लौह तत्त्व जमा हो जाने से उनके ऊतकों को काफ़ी क्षति पहुँचती है। अग्न्याशय की इन्सुलिन बनाने वाली कोशिकाओं के क्षतिग्रस्त हो जाने से रोगी मधुमेह का शिकार हो जाता है। हीमोक्रोमेटोसिस के 80 प्रतिशत रोगी मधुमेह से पीड़ित होते हैं। यकृत की कोशिकाओं के क्षतिग्रस्त हो जाने से यकृत सिरोसिस हो जाता है, जो बाद में कैंसर का रूप ले लेता है। इस रोग में होने वाली अधिकांश मौतों का कारण यकृत का कैंसर ही होता है। हृदय की मांसपेशियों में लोहे की अधिक मात्रा मांसपेशियों को नुकसान पहुँचाती है, जिससे हृदय गति बन्द हो सकती है। हाथ पैरों के जोड़ों में अधिक लोहा जमा हो जाने से गठिया हो जाता है और वृषण (टेस्टिस) में जमा लोहा शुक्राणु पैदा करने वाली कोशिकाओं को नष्ट करके प्रभावित पुरुष को बच्चे पैदा करने में तो असमर्थ बना ही सकता है, साथ ही अनेक बार नपुंसकता जैसी स्थिति को भी जन्म देता है।

शुद्ध रूप में लोहा तो हमारे शरीर के लिए वैसे ही हानिकारक है। यह हमारी कोशिकाओं के लिए विष के समान होता है। इसलिए शरीर इसको रक्त में शुद्ध रूप में घूमने ही नहीं देता। आँत जैसे ही भोजन से लौह तत्व चूसती है, वैसे ही रक्त में मौजूद ट्रांसफेरिन नाम की प्रोटीन इसके साथ आकर जुड़ जाती है। फिर तो यह जहाँ भी जाता है, ट्रांसफेरिन

लोहे के विषैले प्रभाव से शरीर की रक्षा करती हैं। सामान्य अवस्था में किसी भी समय शरीर में उपस्थित केवल एक तिहाई ट्रांसफेरिन अणु ही इस्तेमाल होते हैं, लेकिन हीमोक्रोमेटोसिस रोगी के रक्त में मौजूद सारे के सारे ट्रांसफेरिन अणु लोहे से छक जाते हैं। रक्त की जाँच में यदि ऐसा दिखाई दे तो समझिए कि व्यक्ति हीमोक्रोमेटोसिस का शिकार है, चाहे रोग के लक्षण दिखाई दे रहे हों अथवा नहीं।

लगभग सौ वर्ष पूर्व एक जर्मन चिकित्सक ने लोहे के जंग के समान रंग जैसे रोगी के अंगों के आधार पर इस रोग को हीमोक्रोमेटोसिस नाम दिया था। बहुत दिनों तक इस रोग को ब्रोंज़ डायबिटीज़ (कांस्य मधुमेह) भी कहा जाता रहा, क्योंकि हीमोक्रोमेटोसिस के बहुत से रोगियों की त्वचा कांसे के रंग की हो जाती है।

पुरखों की देन

अब तक के अनुसंधानों से चिकित्सा वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि हीमोक्रोमेटोसिस एक आनुवंशिक रोग संतान को अपने माता-पिता से प्राप्त होता है। हमारे शरीर की रचना करने वाली प्रत्येक कोशिका के केन्द्रक (न्यूक्लियस) में डी एन ए के रूप में मौजूद 23 जोड़े गुणसूत्रों (क्रोमोसोम) की हर माला में मनकों के रूप में जीन (वंशाणु) पिरोए जाते हैं। गुणसूत्र के प्रत्येक जोड़े में से एक संतान को पिता से तथा दूसरा माँ से प्राप्त होता है। हर गुणसूत्र में कोई 4500 जीन होते हैं। जीव के प्रत्येक गुण-अवगुण का निर्धारण तथा उन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित करने की ज़िम्मेदारी इन्हीं जीनों पर होती है।

किसी जीन की संरचना में कोई दोष आ जाने या कोई जीन गायब ही हो जाने से उस जीन द्वारा नियंत्रित होने वाली प्रक्रिया प्रभावित होती है, जो किसी रोग के रूप में सामने आती है। अब तक 4 हज़ार के करीब ऐसे रोगों का पता चल चुका है और वैज्ञानिक इस प्रकार के रोगों के लिए ज़िम्मेदार लगभग सवादो सौ जीनों की पहचान भी कर चुके हैं। हीमोक्रोमेटोसिस भी जीनों की खराबी के कारण उत्पन्न होने वाला रोग है। लेकिन यह अपना प्रभाव तभी दिखा पाता है जब संतान को दोषी जीन माँ और बाप दोनों से ही प्राप्त होती है, न कि किसी एक से।

इतना सब कुछ जानने के बाद अब वैज्ञानिक हीमोक्रोमेटोसिस रोग को जन्म देने वाली जीन को पहचानने तथा उस जीन की रचना करने वाले सर्पिलाकार डी एन ए रसायनों की कुंडलियों की भाषा को पढ़ने के प्रयास में लगे हुए हैं। वैज्ञानिकों को आशा है कि जिस दिन उन्हें इस जीन की पूरी इबारत को पढ़ने में कामयाबी मिलेगी, उसी दिन उन्हें यह भी पता चल जाएगा कि किस प्रकार यह जीन आँत को आवश्यकता से अधिक मात्रा में लौह तत्व अवशोषित करने का आदेश देती है। इस जानकारी के बाद संभवतः इस प्रकार की ओषधि का निर्माण संभव हो जाएगा जो या तो जीन को ग़लत आदेश देने से या आँतों को उस आदेश का पालन करने से रोक देगी। इस प्रकार शरीर में आवश्यकता से अधिक लोहा इकट्ठा ही नहीं होने पाएगा।

लेकिन जब तक ऐसा नहीं हो पाता है तब तक इस बीमारी का एक ही इलाज है। कम से कम एक या दो वर्ष तक (या जब तक शरीर में लोहे की मात्रा काफ़ी कम न हो जाय तब तक) प्रति सप्ताह या 2 सप्ताह में एक बार शरीर से खून निकलवाना। बहुत प्रारंभिक अवस्था में रोगी को शरीर में जमा अतिरिक्त लोहे को कम करने वाली दवाओं का इंजेक्शन दिया जाता है। हाँ, यह याद रखना आवश्यक है कि इन सभी इलाजों से लाभ तभी तक होता है, जब तक अधिक लोहे से शरीर के ऊतकों को क्षति न पहुँची हो।

सबसे पहले तो खून की जाँच ज़रूरी है। खासतौर से दिल, जिगर और मधुमेह के रोगी तो इस बात की ज़रूर जाँच करा लें कि उनके खून में लोहा ज़रूरत से ज़्यादा तो नहीं है। सामान्य व्यक्ति इस लेख को पढ़ने के बाद, ऐसा न हो कि लोहे वाली पालक और चौलाई जैसी भाजियाँ और सेब, केला वगैरह फल

खाना बन्द कर दें। हमारे भोजन में लौहधारी खाद्य-पदार्थ यों ही कम होते हैं। अगर खून में लोहे की कमी है, तो लोहे वाले टॉनिक या लौहधारी विटामिन की गोलियाँ तभी लें और उतनी ही लें, जितना डॉक्टर बताये। बहुत थका-थका महसूस करने और किसी काम में मन न लगने की शिकायत पैदा होते ही खून की जाँच कराइए। यह खून में लोहे की कमी का भी लक्षण हो सकता है और लोहे की अधिकता का भी। लोहे के आधिक्य से पुरुष अधिक सावधान रहें, क्योंकि हीमोक्रोमेटोसिस की जीन मर्दों में आये, इसकी संभावना दुगनी है। □□

[इस्वा फीचर्स]

ओज़ोन परत की सुरक्षा : कुछ नये विकल्प

सुधीर अवस्थी

क्लोरोफ्लोरोकार्बन या सी० एफ० सी० यौगिक धरती को सूर्य की खतरनाक पराबैंगनी विकिरणों से बचाने वाली ओज़ोन परत की विनाशक है, यह बात अब सारी दुनिया को मालूम हो गई है। हमारी धरती के चारों और ओज़ोन की इस छतरी में जगह-जगह छेद हो गये हैं। अगर यह छेद बढ़ते रहे तो धरती पर गरमी बढ़ेगी और पराबैंगनी विकिरण समस्त प्राणियों को मुश्किल में डाल देंगे। ध्रुवों की बर्फ पिघल जायेगी, जिसके कारण समुद्रों का पानी ऊपर चढ़कर अनेक तटवर्ती क्षेत्रों को प्रलयंकारी बाढ़ की चपेट में ले लेगा।

सी० एफ० सी० यौगिकों का घरेलू और औद्योगिक क्षेत्र में इतना ज्यादा इस्तेमाल हो रहा है कि उनकी जगह दूसरे रसायनों का इस्तेमाल वैज्ञानिकों के लिए बहुत बड़ी चुनौती बन गया है। अभी तक कोई विकल्प नहीं खोजा जा सका है और अकेले यूरोपीय समुदाय के देशों में ही हर साल डेढ़ लाख टन सी० एफ० सी० यौगिकों का इस्तेमाल हो रहा है। ये यौगिक वातानुकूलन और प्रशीतन के उपकरणों के अलावा ऐरोसॉल में प्रणोदक यौगिकों की तरह से तथा पैकेजिंग और इन्सुलेटिंग बोर्ड बनाने में फोम पैदा करने के यौगिकों के रूप में इस्तेमाल हो रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक उद्योग में विलायक के रूप में और इलाज के काम आने वाली दवाओं में जीवाणुरोधक के रूप में सी० एफ० सी० यौगिकों का इस्तेमाल हो रहा है।

मसालों और मेवा तैयार करते समय भी ये यौगिक काम आते हैं और बिजली पैदा करने में भी तथा आग बुझाने के उपकरणों में तथा अनेक रसायन बनाने में व पॉलीमर यौगिकों के फ्लोरीनेशन में भी इनका इस्तेमाल हो रहा है। वैज्ञानिक अनुसंधानों में तरल पदार्थों के बहाव सम्बन्धी अध्ययनों में ये यौगिक काम आ रहे हैं। प्रयोगों से पता चला है कि ध्रुवीय बर्फ़ को पिघलाने में वायुमण्डल के चारों ओर की ओज़ोन परत के घटने का जो असर पड़ा है, उसमें सी० एफ० सी० का बहुत बड़ा योग है।

अच्छा रहेगा एच० एफ० सी०

सी० एफ० सी० का विकल्प खोजते समय हमें यह ध्यान में रखना होगा कि जिस तरह सी० एफ० सी० यौगिकों में आग नहीं लग सकती, किसी दूसरे रसायन से वे क्रिया भी नहीं करते, उसी तरह ये खूबियाँ उसके वैकल्पिक यौगिकों में भी होनी चाहिए इसके साथ ही वैकल्पिक यौगिकों में ओज़ोन में कमी लाने का दुर्गुण या तो बिल्कुल न हो या बेहद कम हो।

अनुसंधान से पता चला है कि ओज़ोन की परत नष्ट करने में दो बातें असर डालती हैं। एक तो यौगिक में मौजूद क्लोरीन का अनुपात और दूसरा वायुमण्डल में तरल यौगिक के सक्रिय बने रहने का समय। इस आधार पर जो मूल सी० एफ० सी० यौगिक खोजे गए थे, उनका ओज़ोन विनाशक अंक 1 था और आग बुझाने वाले उपकरणों में मौजूद सी० एफ० सी० यौगिकों में यह अंक 3 से 10 तक पाया गया। इस आधार पर ऐसे यौगिक खोजे जा रहे हैं,

जूनियर रिसर्च फेलो, पर्यावरण अध्ययन केन्द्र, कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर—208024

जो वायुमण्डल में बहुत तेजी से फैल जाएँ और ज्यादा देर तक टिके न रहें।

ऐसे यौगिकों की खोज करते-करते वैज्ञानिक हाइड्रोफ्लोरोकार्बन (एच० एफ० सी०) यौगिकों तक पहुँचे। ये बहुत कम टिकाऊ हैं और वायुमण्डल की ऊपरी परत तक पहुँचते-पहुँचते ये लगभग नष्ट हो जाते हैं। पर्यावरण की दृष्टि से सी० एफ० सी० यौगिकों की अपेक्षा एच० एफ० सी० यौगिक अधिक स्वीकार्य हैं। इनका ओज़ोन विनाशक अंक शून्य से 0.05 है जो सी० एफ० सी० यौगिकों की तुलना में बहुत कम है। लेकिन अभी नये एच० एफ० सी० यौगिकों पर ज्यादा खोज नहीं हुई है, बहुत कम आँकड़े उपलब्ध हैं और इनकी सत्यता के बारे में भी शंकाएँ उठायी गयी हैं।

एच० एफ० सी० यौगिकों के बारे में विश्वसनीय आँकड़ों की कमी का नतीजा यही हो रहा है कि पर्यावरण के प्रति वास्तविक चिंताओं से ग्रस्त होते हुए भी आर्थिक दबावों के वशीभूत विविध उद्योगों में सी० एफ० सी० तरल यौगिकों का इस्तेमाल बराबर जारी है, आगे भी चलता रहेगा।

इस समस्या से निपटने के लिए ब्रिटेन की राष्ट्रीय इंजीनियरिंग प्रयोगशाला (एन० ई० एल०) ने तीन महत्वपूर्ण परियोजनाएँ शुरू की हैं। इनमें से कुछ के लिए विश्वविद्यालयों और उद्योगों से सहयोग लिया जा रहा है। इनका उद्देश्य यह है कि ऐसे हैलोजनयुक्त हाइड्रोकार्बनों का पता लगाया जाये जो पर्यावरण की दृष्टि से निरापद ताप-भौतिकीय गुणों वाले हों और ताप-विनिमय की सभी खूबियों के बावजूद उनके लिए ऐसे हीट-एक्सचेंजर (ताप-विनिमायक) इस्तेमाल किए जाएँ, जिनसे पर्यावरण को कोई ख़तरा न हो।

ताप-भौतिकीय गुण

जिन औद्योगिक प्रक्रमों में इन यौगिकों का इस्तेमाल ज़रूरी है, उनमें नये यौगिकों की आर्थिक और तकनीक क्षमता परखने के लिए यह आवश्यक है कि जो तरल इस समय काम में लाये जा रहे हैं, उनके भौतिक गुणों के बारे में मानकीकृत आँकड़े उपलब्ध हों, लेकिन मुश्किल यह है कि अनेक वांछनीय ताप-भौतिकीय विशेषताओं को मापना बड़ा कठिन है ख़ासतौर से संचालकता की। अतः सबसे ज़रूरी बात यह कि मापने की सुधरी तकनीकें खोजी जाएँ। शोध केन्द्रों में हैलोजनयुक्त हाइड्रोकार्बनों और उनके ए० जी० ओ० ट्रोपिक मिश्रण के ताप-भौतिकीय गुणों विशेष रूप से तापीय संचालकता ज्ञात करने के तरीके खोज जा रहे हैं।

निम्न तापमान पर तरल अवस्था से लेकर उच्च तापमान और उच्च दाब पर गैसीय अवस्था में अनेक प्रकार की परिस्थितियों में माप लिए जायेंगे। खासतौर के एच० एफ० सी० वर्ग के उन यौगिकों पर ध्यान दिया जा रहा है जिनका ताप-विनिमय के क्षेत्र में विशेष योगदान है। उदाहरणार्थ प्रशीतन व वातानुकूलन के उपकरणों तथा इन्सुलेटिंग फोम और बोर्ड में बोइंग एजेन्ट के रूप में काम आने वाले यौगिकों के रूप में इस्तेमाल होने वाले एच० एफ० सी० यौगिक हैं।

वर्तमान शोध कार्य में मापने की तकनीक गरम तार वाली विधि है, जो विशेष रूप से इम्पीरियल कॉलेज, ब्रिटेन के **प्रोफेसर वेक हेन** द्वारा सन् 1970 के बाद के दशक के मध्य में खोजी गयी तकनीक का ही अधिक विकसित और सुधरा रूप है। तरल और गैस दोनों ही अवस्थाओं में तरल पदार्थों की तापीय-चालकता ज्ञात करने का यह तरीका अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक मात्र मान्य विधि है।

पुष्टिकरण

एच० एफ० सी० यौगिकों की नई श्रेणी पुराने सी० एफ० सी० यौगिकों की तुलना में कम टिकाऊ होती है। अतः यह ज़रूरी हो गया है कि इनको जाँचने के तरीके में सुधार किया जाये। कम टिकाऊ होने की वजह से इनका जल्दी तापीय विघटन और आयनीकरण हो सकता है। कुछ शोध केन्द्रों पर प्लेटिनम की बजाय ऑक्सीकृत टेंटेलम के तारों के उपयोग से मापने में आसानी हुई है।

शोध परियोजनाओं की समाप्ति पर, निम्न ताप-

मान पर एच० एफ० सी० यौगिक प्रशीतन और वातानुकूलन संयंत्रों से ताप विनिमय करने में कितने कामयाब होंगे, इसके बारे में पूरी जानकारी मिल सकती है। इसके लिए एच० एफ० सी० यौगिकों को अकेले भी परखा जाता है और दूसरे लूब्रीकेंटों के साथ मिलकर भी। नये एच० एफ० सी० यौगिकों को प्रशीतक रसायनों के रूप में इस्तेमाल करने से जुड़े भौतिक गुणों पर अनुसंधान के अतिरिक्त प्रशीतन रेफ्रीजरेशन) के काम आने वाले उपकरणों पर उनके प्रभाव का अध्ययन भी कर रहा है। नए प्रशीतक रसायन ज्यादा कीमती हो सकते हैं, लेकिन पर्यावरण के प्रति निरापद होने की वजह से उनका इस्तेमाल बढ़ेगा और अनुसंधान से उनकी लागत घटाने के लिए उपयोग में आने वाली मात्रा कम की जा सकती है।

मिली-जुली बातें

जिन ताप विनिमयकारी प्रणालियों पर उद्योगों में विचार और अनुसंधान चल रहे हैं, उनमें मुख्यतया प्लेट फिन हीट एक्सचेंजर यानी पी० एफ० एच० ई० प्रणाली को उपयोगी पाया गया है। दूसरी प्रणाली पी० सी० एच० ई० या प्रिन्टेड सर्किट हीट एक्सचेंजर कही जा रही है। इसे मूल रूप से प्रशीतन प्रणालियों के अवशोषण-चक्र के लिए विकसित किया गया था। इससे पहली वाली प्रणाली प्रशीतन के क्षेत्र में उपयोगी पायी गयी। लेकिन दोनों ही प्रणालियाँ, वर्तमान प्रौद्योगिकी की दृष्टि से, पूरी तरह वांछित नहीं मानी जा सकतीं। इनकी अपनी सीमाएँ हैं। उदाहरणार्थ पी० एफ० एच० ई० में स्टेनलेस स्टील की इकाइयाँ काम आती हैं, जिनके कारण यह उतनी सुगठित नहीं बन पायी है और आकार भी बढ़ा है। इसकी तुलना में पी० सी० एच० ई० प्रणाली अधिक सुगठित है, लेकिन कम दाब की गैस इस्तेमाल करते समय यह प्रणाली ताप-विनिमय के लिए उपयुक्त नहीं है। इसके साथ ही प्रशीतन और ब्वायलरों तथा कंडेसरों में छोटे पैमानों के कामों के लिए भी आर्थिक दृष्टि से इतनी लाभप्रद सिद्ध नहीं होती। इसका समाधान यह खोजा गया है कि पी० सी० एच० ई० और पी० एफ० एच० ई० इन दोनों प्रणालियों की सभी खूबियों को मिलाकर और कमियों को मिलाकर एक इस तरह की ताप-विनिमयकारी प्रणाली बनायी जाये जो अधिक कारगर हो। इन अनुसंधानों से अंततः ओज़ोन की परत को सुरक्षित रखने वाले यौगिक संबंधित उद्योग और उपभोक्ताओं को हानि पहुँचाये बिना खोजे जा सकेंगे।

□□

वन एवं वन्य जीव संरक्षण के प्रयास

अशोक कुमार

धरती पर पिछले करोड़ों वर्षों के उत्क्रमण काल में जीवों की अनेक प्रजातियों की उत्पत्ति हुई और प्रत्येक जाति अपने विशिष्ट ढँग से पर्यावरण के भौतिक एवं जैविक माँगों की सहायता से जीवन निर्वाह करती है। प्रत्येक प्रजाति एक कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण सन्तुलन बनाये रखने के लिए प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाली सभी प्रजातियों का अस्तित्व आवश्यक है। इन प्रजातियों को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए वनों का होना नितान्त आवश्यक है। एक ओर जहाँ वनों का प्रतिशत मात्र 22.9% रह गया है वहीं पर हमारे वन गुणात्मक रूप से भी अच्छे नहीं हैं।

वैसे तो वन्य प्राणियों का विनाश मनोरंजन के रूप में प्राचीन काल से होता रहा है लेकिन ब्रिटिश शासन काल में वनों का दोहन उद्योग-धन्धों हेतु कच्चा माल जुटाने के लिए किया गया, जिससे वन्य प्राणियों का सफ़ाया हुआ। आज़ादी मिलने के बाद भी इनका विनाश नहीं रुका। उजड़ चुके वनों को तो पुनः हरा-भरा किया जा सकता है किन्तु जीव प्रजाति के विलुप्त होने के बाद उसे पुनः स्थापित नहीं किया जा सकता।

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद–211002

1950 1970 के मध्य भारतीय वन्य जीवों की जितनी क्षति पहुँची उतनी शायद पिछले दो शताब्दियों में भी नहीं हुई। पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के लिए वन्य जीवों की सुरक्षा अति आवश्यक है और इस दिशा में समाज सेवियों, संस्थाओं एवं सरकार ने अपना महत्वपूण योगदान दिया।

भारत सरकार ने सर्वप्रथम 1970 में बाघों के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया जब **श्री कैलाश साखला** ने मात्र 2500 बाघों की संख्या का साक्ष्य प्रस्तुत किया। उसके बाद 1972 में वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम पारित हुआ, तथा राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों की स्थापना होने लगी। आज देश में 60 राष्ट्रीय उद्यान 257 अभयारण्य, 16 टाइगर रिज़र्व तथा एक बायोस्फीयर रिज़र्व स्थापित किये जा चुके हैं।

जीवों का अर्थ हमें मात्र वनों में रहने वाले जीवों से ही नहीं लगाना चाहिए बल्कि अपने आस-पास एवं जल में रहने वाले जीवों को भी वन्य जीवों की श्रेणी में रखना चाहिए।

वन तथा वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए कई आन्दोलन चलाये गये तथा संस्थायें स्थापित हुई हैं। **'चिपको आन्दोलन'** उत्तर भारत में **सुन्दर लाल बहुगुणा** तथा दक्षिण में **'अपिको आन्दोलन' पाण्डु रग हेगड़े** के नेतृत्व में चल रहा है। इसी प्रकार का एक आन्दोलन गोवा की पीपुल्स सोसायटी' द्वारा 'पश्चिम घाट बचाओ आन्दोलन' है जिसका नारा **'जंगल बचाओ, मानव बचाओ'** बुलन्द हो रहा है। समुद्र में मछली पकड़ने की स्वचालित नौकाओं और मत्स्य सम्पदा के अन्धाधुन्ध दोहन से न केवल सागर तटों पर प्रदूषण बढ़ा है वरन् अनेक प्रजातियों की मछलियों का का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है, जिसके विरुद्ध मछुआरों के अखिल भारतीय संघ ने **'जल बचाओ, जीवन बचाओ आन्दोलन'** शुरु किया है। वन्य जीवों के अध्ययन एवं रक्षा हेतु फ्रेंड्स ऑव नेचर सोसायटी की स्थापना की गयी, जिसे इस समय नर्मदा सागर बाँध से होने वाले जैव विनाश के अध्ययन का काम सौंपा गया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने एवं वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु कदम उठाया गया है। भारत में अभी तक पशु-पक्षियों को ध्यान में रख कर ही अभयारण्यों का विकास किया गया है, उनमें भी अधिकतर एक जाति के विकास तथा प्रसार पर ध्यान दिया गया जैसे टाइगर रिज़र्व्स। लेकिन **यूनेस्को** ने अपने **मैन एण्ड बायोस्फीयर कार्यक्रम** के अन्तर्गत बायोस्फीयर रिज़र्वस विकसित करने पर ज़ोर दिया है, जिसमे जन्तुओं व वनस्पतियों सहित समस्त पारिस्थितिक तंत्र के सभी अंगों का विकास किया जायेगा। भारत मे पहला बायोस्फीयर रिज़र्व नीलगिरि में स्थापित हुआ इस प्रकार कुल 13 रिज़र्व स्थापित करने की मंजूरी सरकार ने प्रदान की है।

वर्ल्ड वाइड फण्ड फॉर नेचर वन्य जीवन में अग्रणी संगठन है जिसका मुख्यालय स्विटज़रलैण्ड में है और 23 देश इसके सदस्य हैं।

साइट्स (CITES कन्जरवेशन ऑन इन्टर-नेशनल ट्रेड इन एण्डैजर्ड स्पीशीज़), एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है जो समस्त विश्व में समाप्तप्राय एवं विलक्षण वन्य जीवों की सूची, जिसे 'रेड लिस्ट' (Red List) कहते हैं, में भारतीय गैंडा, चित्तीदार बिल्ली एवं लघु पुच्छ वानर (लायन-टेल्ड मॅकाक शामिल हैं।

पृथ्वी सरक्षण कोष की स्थापना पर्यावरण सरक्षण की दिशा में एक कदम है, जिसका उद्देश्य तकनीकी का इस्तेमाल कर पर्यावरण संकट समाप्त करना है। संरक्षण का एक महत्वपूर्ण पहलू विलुप्त प्राणियों की खोज है। इस दिशा में भी प्रयास हो रहे हैं। फिन्स बया, जडनी करसर पक्षी, हेस्पाडहेयर तथा पिग्मी हॉग स्तनधारी, जो लुप्त हो गया था, पुन. खोज लिया है। इस कार्य में 'जूलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया' तथा 'बोटेनिकल सर्वे ऑव इण्डिया' ने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। भारतीय वन एवं वन्य प्राणी सम्पदा के अध्ययन तथा संरक्षण में 'बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी' 1883 से अमूल्य सेवा करती आ रही है।

वन एवं वन्य प्राणी संरक्षण की दिशा में सरकार, स्वयंसेवी संस्थायें एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं, किन्तु लक्ष्यप्राप्ति के लिए सभी को इनकी महत्ता को स्वीकारते हुए इस दिशा में ध्यान देना होगा। □□

विज्ञान एवं तकनीकी के बढ़ते कदम

डी० एन० भटनागर

(1) मधुमक्खी के नृत्य का अर्थ

वैज्ञानिक अक्सर कई काम ऐसे करते हैं कि आम आदमी उनकी उपयोगिता के बारे में अटकलें ही लगाता रह जाता है। इसका एक ताजा उदाहरण पश्चिम जर्मनी और डेनमार्क के दो वैज्ञानिकों द्वारा बनाई गई एक **रोबोट मधुमक्खी** है। इन्होंने तीन वर्ष की लगातार मेहनत से कांसे के शरीर और रेजन ब्लेडों से काटकर बनाए गए पंखों वाली एक ऐसी रोबोट मधुमक्खी बनाई है जो असली रानी मधुमक्खी के ही समान पंखों को हिलाकर नृत्य कर सकती है।

इसके पंख हीरे के तराशे बियरिंगों पर घूमते हैं। इसे तारों से जोड़ा गया है और इसकी पीठ से निकली एक कड़ी नली कम्प्यूटर नियंत्रित सर्वोमोटरों से जुड़ी है, इसमें मीठे जल का छोटा-सा कुंड भी है।

यह मधुमक्खी एक सेंकड में अपने पंखों को 250 बार और अपने पिछले भाग को 15 बार हिला सकती है। यह छत्ते की भीतरी दीवार पर अंग्रेज़ी के आठ अंक की तरह की गति बहुत तेज़ी से करती है और अपने मुँह से मीठा पानी निकालती जाती है।

जब इस मधुमक्खी को वैज्ञानिकों ने एक छत्ते में घुमाया और उससे पंखों को घुमाकर रानी मक्खी के समान नृत्य कराया तो उसके पीछे अनेक श्रमिक मक्खियाँ आने लगीं। हालांकि उनकी संख्या उतनी नहीं थी जितनी कि आमतौर पर असली रानी मक्खी के पीछे आने वाली मक्खियों की होती है। इसे बनाने वाले वैज्ञानिकों को विश्वास है कि वे इस रोबोट मधुमक्खी की अगली पीढ़ी को और कुशल बनाने में सफल होंगे।

मधुमक्खियों के जीवन-चक्र को और भी बारीक़ी से जानने के प्रमुख उद्देश्य से बनाई गई यह मधुमक्खी, यह जानने के लिए कि आपस में संदेश देने के लिए मक्खियाँ क्या तरीक़ा अपनाती हैं, विशेष उपयोगी पाई गई। वास्तव में अब से लगभग 30 वर्ष पहले जर्मन जीव वैज्ञानिक **कार्ल वान फ्रिश** ने यह खोज की थी कि मधुमक्खियाँ नाच-नाच कर एक दूसरे को यह संदेश देती हैं कि शहद किस दिशा में मिल सकता है। तभी से अनेक अनुसंधानकर्त्ता एक ऐसी बनावटी मक्खी बनाना चाहते थे, जिसकी मदद से वे निश्चित रूप से यह जान जाएँ कि मक्खियाँ आपस में संदेश देने के लिए नृत्य की भंगिमाओं का सही-सही किस क्रम में उपयोग करती हैं। यद्यपि अभी और भी परिष्कृत रोबोट मधुमक्खियों का विकास होना बाकी है, वैज्ञानिक इस मधुमक्खी की मदद से इतना अवश्य जान गए हैं कि अँधेरे छत्ते में मधुमक्खियाँ अपने एन्टेना में बने विशेष अंगों से नाचने की आवाज़ को सुनकर रानी मक्खी की गति का अनुकरण करती हैं।

(2) ग्रामीणों के लिए अधिक रोशनी देने वाली उन्नत लालटेन

शहरों में रोशनी करते बड़े-बड़े चमकदार बल्बों को देखकर यह सोचना भी कठिन होता है कि हमारे देहातों में अधिकतर रोशनी अभी भी छोटे-छोटे टिमटिमाते दियों, ढिबरियों या फिर मिट्टी के तेल की लालटेन से की जाती है।

हमारे देश में एक वर्ष में अनुमानित 36 लाख टन मिट्टी का तेल केवल घरों में रोशनी करने के ही लिए खर्च किया जाता है। यह देश में मिट्टी के तेल की कुल खपत का लगभग 60 प्रतिशत है।

लालटेन अपने वर्तमान रूप में सदियों से इस्तेमाल में आ रही है। इसकी रोशनी कम होती है, बत्ती को बार-बार काटना और साफ़ करना पड़ता है और इसकी चिमनी भी जल्दी-जल्दी टूटती है और बदलनी पड़ती है। मिट्टी के तेल पर आधारित रोशनी करने की दूसरी प्रमुख युक्ति है पेट्रोमैक्स लैम्प जो यद्यपि अधिक कुशल है, पर महँगी है और अपेक्षाकृत असुरक्षित है।

डी–720, सरस्वती विहार, दिल्ली—110034

लालटेन की कमियों को दूर करने का एक सफल प्रयत्न महाराष्ट्र में फाल्टन स्थित निम्बकार कृषि संस्थान में किया गया है। यहाँ बनाई गई उन्नत लालटेन में पैट्रोमैक्स लैम्प की खूबियों का सम्मिश्रण है। यह एक कम खर्च और सुरक्षित युक्ति है जो साधारण लालटेन से तिगुनी, चौगुनी अथवा 25 वॉट के बिजली के एक बल्ब बराबर रोशनी देती है। इसमें बत्ती तक मिट्टी के तेल का प्रवाह बनाये रखने के लिए किसी दबाव का इस्तेमाल नहीं किया जाता फिर भी इसकी रोशनी देने की क्षमता को पैट्रोमैक्स लैम्प जितना बढ़ाया गया है। इसकी बत्ती जलकर नष्ट नहीं होती क्योंकि इसे उच्च ताप सह पदार्थ से बनाया गया है। यह विशेष काँच रेशे की बनी होती है।

इस लालटेन को बनाने में इसके बर्नर के डिज़ाइन, बत्ती और मेंटल पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसका बर्नर इस प्रकार का है कि उसमें हवा और तेल वाष्प का उपयुक्त मात्रा में सम्मिश्रण होता है और लपट तापमान 1100 से 1200° सेन्टीग्रेड के बीच पहुँच जाता है जिससे मैन्टल चमकने लगता है। यदि इसे रोज 4 घंटे जलाया जाए तो इसका मैन्टल आसानी से एक माह तक चल जाता है।

इस लालटेन में एक घंटे में 34 मिलीलीटर मिट्टी का तेल इस्तेमाल होता है। इसकी टंकी में एक बार में 850 मिलीलीटर तेल भरा जा सकता है जो अगर इसे रोज 4 घंटे जलाया जाए तो 7 दिन के लिए क़ाफी होता है। इस प्रकार इससे मिट्टी के तेल की बचत होती है। इसे बनाने का काम कुटीर स्तर पर किया जा सकता है। इसकी जानकारी 'नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कॉरपोरेशन, कैलाश कॉलोनी एक्सटेंन्शन, नई दिल्ली—110048' से उपलब्ध है। □□

(सम्प्रेषण)

नीम गाछ | डॉ॰ श्रीमती मंजु गुप्ता

आरी के दाँतों-सी
कटावदार
पत्तियों के
सब्ज़ गुच्छों को
चँवर-सा डुलाता
नीम गाछ,
पत्तों के फ़िल्टर में
दूषित हवा को छानकर
चहुँ ओर
शुद्ध ऑक्सीजन का
स्प्रे कर रहा है।
पकी निंबोलियों को
धरती पर चुआकर
निपुण वैद्य-सा
मुफ़्त में
ओषधि-वितरण कर रहा है।
हवा के साथ-साथ
मस्ती से झूमता
हरित सरोवर-सा
गगन के विशाल केनवस पर
हरी लहरों का
रंग भर रहा है।
बीमार दुनिया
स्वास्थ्य बुलेटिन-सा
स्वास्थ्य समाचार प्रसारित करता
सूचना पट्ट-सा फहरा रहा है।
विज्ञापनवादी युग में
छालधारी तापस-सा
चुपचाप
जनसेवा कर रहा है।
ज़रा देखो तो
रोगाणु भरी
दुःखों की मिट्टी में खड़ा
अनासक्त नीम गाछ
सबसे हलो करता
कैसा मुस्करा रहा है। □□

406 हवा सिंह ब्लॉक, खेलगाँव, नयी दिल्ली—110049

विज्ञान वार्ता | डॉ० अरुण आर्य

(1) कीड़ों का आदान-प्रदान

हाल ही में जब संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि सम्बन्धित वैज्ञानिकों का एक दल चीन की यात्रा पर गया तो वह अपने साथ एक अनोखा उपहार ले गया। यह था कुछ बर्रें अथवा तैतया का समूह और वापसी में यह दल अपने साथ लाया हरे 'लेसविग्स', परभक्षी कुटकी तथा परजीवी बर्रें।

प्राचीन काल में खोजी नाविक अपने साथ ले जाते थे चौंका देने वाले जीव-जन्तुओं एवं पेड़-पौधों को, जो उन देशों में देखने को नहीं मिलते थे, या उनमें कुछ विशेष प्रकार के गुण होते थे।

लेकिन यह चीनी-अमेरिकी वैज्ञानिकों का प्रयास कुछ चौंका देने वाला साथ ही रोचक भी है। अमेरिकी कृषि विभाग के वैज्ञानिक **डॉ० जॉन वैलेस** के अनुसार अमेरिका में बहुत से ऐसे कीड़े मकोड़े हैं, जो कृषि पर निर्भर करते हैं। परन्तु उनके कोई प्राकृतिक शत्रु नहीं हैं फलतः वे तेजी से वृद्धि करते हैं और फ़सल को काफ़ी नुकसान पहुँचाते हैं। अमेरिका को चीन का यह उपहार कपास और तम्बाकू पर लगने वाले कीड़े-मकोड़ों को सब्जियों एवं नीबू जाति के फलों पर लगने वाली कुटकी (माइट्स) और परजीवी जिप्सी माथ्स और जंगलों में पाये जाने वाले कीड़ों को कम करेगा।

अमेरिकी बर्रें चीन में एफिड्स और लार्वो को कम करेगी। चीन में इन कीड़ों को विभिन्न विश्वविद्यालयों में भेजा गया है जहाँ संगरोधी नियमितताओं के अन्तर्गत इन्हें खेतों में प्रयोगिक तौर पर आज़माया जायेगा।

(2) आलू स्वास्थ्य के लिये खतरनाक भी

आलू के गुणों की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह कम है। जिस प्रकार फलों का राजा आम है उसी प्रकार सब्जियों का राजा आलू है। मण्ड (स्टार्च) के अतिरिक्त इसमें फॉलिक अम्ल (एसिड), पेन्टोथेनिक अम्ल, पाइरीडॉक्सिन तथा विटामिन 'सी' होता है। यह पोटैशियम का एक अच्छा स्रोत है। इससे हमें गंधक, आयोडीन, सोडियम तथा मैग्नीशियम भी थोड़ी मात्रा में प्राप्त होता है।

आलू में लगभग 50 विभिन्न रसायन पाये जाते हैं जिनकी मनुष्य के लिये कोई खाद्य उपयोगिता नहीं है। नाइट्राइट्स, टैनिक अम्ल, ऑक्सैलिक अम्ल और सोलेनाइन एलकलायड्स इस समूह के कुछ रसायन हैं। किण्वन प्रक्रिया का कम करने वाले, साइनाइड रूपी जहरीले तत्वों का निर्माण करने वाले और कीड़ों तथा कवकों द्वारा उत्पन्न होने वाले अनेक पदार्थ भी इनमें हो सकते हैं। गर्भवती महिलाओं द्वारा 'पक्षेती झुलसा रोग' या लेट ब्लाइट ऑव पोटैटो (**Late Blight of Potato**) से ग्रसित आलुओं को खाने से नवजात शिशु जन्मजात बीमारियों से युक्त पाये गये। स्त्रियों को गर्भ के दौरान इस प्रकार के आलू जो **फाइटॉफ्थोरा इन्फेस्टान्स** (***Phytophthora infestans***) से रोगयुक्त हो, नहीं खाना चाहिये।

कभी-कभी आलू का कोई भाग हरा हो जाता है। इसे 'ग्रीनिंग' कहते हैं, जोकि **क्लोरोफिल** (पर्णहरित) के निर्माण के कारण होता है। हरे आलुओं में सोलेनीन ग्लाइको एलक्लॉयड होता है जो कि स्वाद में कड़वा है। चक्कर आना, पेट की खराबी, उल्टी होना, दस्त होना गले में जलन का अनुभव होना आदि कुछ लक्षण एलक्लॉयड विष के हैं। यद्यपि इनकी मात्रा में उबाले जाने से कुछ कमी होती है, फिर भी यह सलाह दी जाती है कि हम फफूंदजन्य, हरे अथवा काले आलुओं को न खायें, क्योंकि इनमें ज़हरीले तत्व हो सकते हैं।

(3) अखरोट के नीचे कुछ क्यों नहीं उगता

हम सभी ने वट वृक्ष देखा है। बरगद के नीचे

प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, म० स० रा० विश्वविद्यालय, बड़ौदा—390002

पायी जाती हैं अनेक जड़ें और ऊपर पत्तियों से आच्छादित 'कवर' (छतरी) के नीचे अन्य पेड़-पौधों का जीवन सम्भव नहीं। यद्यपि मिट्टी में सभी पोषक तत्व विद्यमान होते हैं, परन्तु पौधों को उनके कार्बन संश्लेषण हेतु प्रकाश उपलब्ध नहीं होता। लेकिन अखरोट में ऐसा नहीं है। इसमें पेड़ के चारों ओर कुछ दूरी तक कुछ भी नहीं उगता, ऐसा अखरोट के पेड द्वारा उत्पन्न किये गये कुछ रसायनों के कारण होता है।

प्राकृति में पौधे एकाकी नहीं होते। वे समूहों में रहना पसन्द करते हैं जैसे कि जीव-जन्तु। पौधों का यह समूह बेतरतीब नहीं होता। वातावरण जो कि इन्हें नियन्त्रित करता है, एवं जीव-जन्तुओं के इस समूह को पारिस्थितिक-तन्त्र (इकोसिस्टम) कहते हैं। साधारणतया जीव-जन्तुओं, वृक्षों एवं वातावरण के बीच एक बहुत बारीक संतुलन होता है।

पौधे अनेक प्रकार के रासायनिक पदार्थ उत्पन्न करते हैं। इनमें केन्द्रकीय अम्ल (न्यूक्लीइक एसिड), सेल्यूलोज, अमीनों अम्ल, वृद्धि नियन्त्रक एवं प्रोटीन्स प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पौधों में अन्य अनेक प्रकार के रसायन बनते हैं। इन रसायनों का क्या उपयोग है? जीवों की तरह पौधों के भी अनेक दुश्मन हैं, जैसे दूसरे पेड़, चरने वाले जानवर, कीड़े-मकोड़े, रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु, विषाणु आदि आदि। जीव-जन्तुओं की भाँति वृक्ष चल फिर नहीं सकते अत: उनमें आकारकीय, कायिक एवं रसायनिक विधियों द्वारा बचाव होता है।

अखरोट (**जुगलान प्रजाति**) के वृक्ष के नीचे अन्य पौधों के न होने का कारण है—**जुगलान** (5-हाइड्रोक्सी 1,4 नेप्थोक्वीनॉन)। यह अखरोट की पत्तियों एवं जड़ों में पाया जाता है। यह जहरीला नहीं होता, परन्तु जब यह वर्षा द्वारा घुलकर मिट्टी में पहुँचता है तो ऑक्सीकृत होकर जहरीला हो जाता है और दूसरे पौधों को बढ़ने से रोकता है।

बहुत से पेड़ अपनी रक्षा हेतु रासायनिक पदार्थों का निर्माण करते हैं। **वेराट्रम** (हेलबोर) और तम्बाकू ऐसे ही एलक्लॉयड्स का निर्माण करते हैं और अपने इसी गुण के कारण प्राचीन काल से ही कीटनाशकों के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। **डेरिस** (दूबा) की जड़ों से निकाले गये रोटीनॉयड्स एवं गुलदावदी के फूलों से निकाले गये पाइरेथ्रिन्स का कीटनाशकों की तरह प्रयोग किया जाना सर्वविदित है।

अनेक पौधों ने सूक्ष्मजीवों से अपनी सुरक्षा हेतु विविध उपाय विकसित किये हैं। सूक्ष्मजीवों के आक्रमण पर वे प्रतिजैविक तत्वों का निर्माण करते हैं। इन्हें 'फाइटोअलैक्सिन' कहा गया है। **फेसियोलस वल्गेरिस** (सेम) 'टोबेको नेक्रासिस' के विषाणु के आक्रमण के फलस्वरूप 4-फाइटोअलेक्सिन का निर्माण करता है, जो आइसो फ्लेवानॉयड समूह के हैं। **शकरकंद** (**आइपोमिया बटाटस**) में **सिरेटोसिस्टिस फ्रिम्बियेटा** नामक कवक के द्वारा 'आइपोमिया मेरॉन' नामक फाइटोअलेक्सिन का निर्माण होता है। यह एक असामान्य सेसक्वीटरपीनायड है। इसी प्रकार आलू से'रिसिटिन', चने से 'साइसेरिन' और गाजर से 'आइसोक्यूमेरिन' नामक फाइटोअलेक्सिन प्राप्त किये गये हैं।

कुछ पौधे अपने को चरने वाले जानवरों से बचाने के लिये रसायनों का निर्माण करते हैं। **रीड केनेरी** घास में पाये जाने वाले अलकलॉयड्स के कारण भेड़ें उसे खाना पसन्द नहीं करतीं। कुछ **वरनोनिया** प्रजातियाँ पालतू जानवरों की चरागाह में बिलकुल अनछुयी खड़ी रहती हैं। ऐसा उनमें पाये जाने वाले सेसक्वीटर पीनलेक्टॉन ग्लूकोसाइड के कारण होता है।

अनेक कवक पौधों में परजीवी के रूप में पाये जाते हैं और उनमें विविध बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं, जैसे **क्लेवीसेप्स पुरपुरिया** राई में '**एरगट रोग**' उत्पन्न करता है तो **पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रिटीसाई** गेहूँ में 'रतुआ' और **यूस्टीलेगो** 'स्मट' बीमारियाँ उत्पन्न करते पाये जाते हैं। आलू में पक्षेती गलन रोग **फाइटॉफ्थोरा इन्फेस्टान्स** के कारण होता है। कुछ उच्च वर्ग के पौधे भी दूसरे पौधों पर परजीवी के रूप में आश्रित रहते हैं, भोजन के लिये नहीं तो उपयुक्त स्थान के लिये जैसे कि अंजीर (**फिग**) प्रजातियाँ। इस प्रकार पोषक एवं परजीवी बृक्ष में प्रकाश, जल एवं खनिज तत्वों के लिये लगातार संघर्ष चलता रहता है। इस तरह पौधों में भी जन्तुओं की भाँति अनेक विधियों के द्वारा अपने को दूसरे जीव-जन्तुओं से सुरक्षित रखने के उपाय पाये जाते हैं। □□

महान रसायनविद् प्रोफेसर नीलरत्न धर

दिनेश मणि

इस चराचर जगत् में जीवों का जन्म लेना व मृत्यु को प्राप्त करना तो कोई नयी बात नहीं है, परन्तु आवागमन के इस चिर शाश्वत क्रम में वे व्यक्ति धन्य माने जाते हैं जो अपने को "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" समर्पित कर देते हैं और अपने महान कार्यों, अनुकरणीय गुणों से अपने जन्म लेने को सार्थक सिद्ध कर जाते हैं। जीवन पर्यन्त अनुसंधान के प्रति समर्पित विश्वविख्यात रसायनशास्त्री **प्रो० नील रत्न धर** एक ऐसे ही यशस्वी, उदार व्यक्तित्व वाले महान परोपकारी व्यक्ति थे।

2 जनवरी, 1892 ई० को कलकत्ता से लगभग 75 मील दूर जैसोर क़स्बे में (जो अब बांग्लादेश में है) जन्मे प्रो० धर प्रारम्भ से ही प्रखर बुद्धि के थे। इनके पिता **श्री प्रसन्न कुमार धर** एक वकील थे। इनकी माता का नाम **श्रीमती नीरद मोहिनी** था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने ही क़स्बे के ज़िला परिषद् के स्कूल में प्राप्त की थी। सन् 1907 ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा में प्रथम आकर इन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा का प्रथम परिचय दिया। इसके बाद इन्होंने रिप्पन कॉलेज व प्रेसीडेन्सी कॉलेज में भी शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने जुलाई 1911 ई० में एम० एस-सी० में प्रवेश लिया था और **आचार्य पी० सी० रे** के निर्देशन में शोधकार्य सम्पन्न किया। स्मरण रहे कि आपने हाई स्कूल से लेकर एम० एस-सी० तक की सभी परीक्षायें प्रथम श्रेणी में (अच्छे अंकों के साथ) उत्तीर्ण की थीं। जुलाई 1913 में रिसर्च फेलो के रूप में आपकी नियुक्ति कलकत्ता विश्वविद्यालय में हो गयी।

3 सितम्बर, 1915 को प्रो० धर भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर यूरोप के दौरे पर गये और 1915 ई० में सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में आपने

प्रो० जे० सी० फिलिप्स के निर्देशन में डी० एस-सी० उपाधि के लिये अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया तथा अल्पावधि में ही अपना शोधकार्य अच्छे ढँग से सम्पूर्ण करके सबको आश्चर्यचकित कर दिया। लन्दन में आपकी नियुक्ति मेमोरियल कॉलेज ऑव साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी में रसायनशास्त्र विभाग में हुयी। प्रो० धर ने मई 1917 में लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। यहाँ पर इनकी मुलाकात **जे० जे० थामसन, रदरफोर्ड, सॉडी, परकिन, बेकर, रेल** आदि प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों से हुयी। लन्दन में अपनी शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद प्रो० धर की इच्छा **आरहीनियस** के निर्देशन में कार्य करने की हुयी। उन दिनों स्वीडेन जाना एक कठिन कार्य था, क्योंकि उस समय जर्मनी आक्रमण पर था। इसलिये आरहीनियस ने प्रो० धर को अपने पास आने से मना कर दिया। तत्पश्चात् प्रो० धर ने **सबातीये** को एक पत्र

शोध छात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, 5 लाजपत राय रोड, इलाहाबाद—211002

लिखकर उनके कुशल निर्देशन में अपने शोध-कार्य के विषय में अपनी इच्छा प्रकट की, किन्तु इसे आपका दुर्भाग्य ही कहा जाय कि सबातीये की प्रयोगशाला युद्ध में जल जाने के कारण आप उनके निर्देशन में अपना कार्य नहीं कर सके। फिर भी लगन और परिश्रम के धनी प्रो० धर ने इसी साल (सन् 1917 में पेरिस में) **प्रो० उरबेन** के निर्देशन में कार्य करने के लिये प्रार्थना-पत्र भेज दिया और स्वीकृति मिल जाने पर भयंकर युद्ध के बावजूद भी अक्टूबर 1918 तक अपना शोध कार्य फ्रेंच भाषा में लिखकर पूरा कर दिया और जनवरी 1919 में 'स्टेट डॉक्टरेट' की उपाधि प्राप्त की। आपके शोध-कार्य की प्रशंसा अनेक वैज्ञानिकों ने की। पेरिस में आपको **क्यूरी दम्पत्ति, ला सातालिये**, जैसे वैज्ञानिकों का सहयोग मिला। जनवरी 1916 में आप पुनः लन्दन लौट आये।

प्रो० धर ने म्योर सेन्ट्रल कॉलेज, इलाहाबाद में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (अकार्बनिक एवं भौतिक रसायन) का पदभार 19 जुलाई 1919 को ग्रहण किया (प्रथम भारतीय आई० ई० एस० के रूप में)। पुनः मई 1928 में आपको यूरोप जाने का अवसर प्राप्त हुआ। इस यात्रा में अपने कई देशों का भ्रमण किया। इसके बाद स्वदेश लौटकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान विभाग में अध्यापन कार्य करने लगे।

सन् 1930 में प्रसिद्ध वैज्ञानिक **कु० शीला राय** से आपका पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ, किन्तु सन् 1949 में असमय ही स्वर्गवासिनी हो जाने से सन् 1950 में प्रो० धर ने कलाविद् **कु० मीरा चैटर्जी** (एम० ए०, लंदन) से विवाह किया। दोनों ही विवाहों से आपको कोई सन्तान प्राप्त न हो सकी।

एकेडेमीशियन के रूप में प्रो० धर

प्रो० धर भारत एवं अन्य देशों की विभिन्न उच्च समितियों, प्रतिष्ठानों, संस्थाओं से आजीवन जुड़े रहे तथा आपका जीवन पूर्णतया विज्ञान अनुसंधान के प्रति समर्पित रहा। प्रो० धर सन् 1919 में **'केमिकल सोसाइटी'** के फेलो तथा 1919 में ही **'रॉयल इंस्टीट्यूट ऑव केमिस्ट्री**, के फेलो चुने गये। आप सन् 1961 में रुड़की में हुये **'भारतीय विज्ञान कांग्रेस'** के अध्यक्ष थे। इसके पहले आप **'इण्डियन केमिकल सोसायटी'** के भी निर्वाचित अध्यक्ष रहे। आप **'इण्डियन एकेडमी ऑव साइंसेज़'** के संस्थापक सदस्य थे एवं 1935 व 1936 में इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुये। आप 'नेशनल एकेडमी ऑव सांइसेज़, इण्डिया', 'नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑव सांईसेज, इण्डिया' के भी संस्थापक सदस्य थे।

आप सन् 1937 में हालैंड में आयोजित 'अन्तर्राष्ट्रीय कृषि कांग्रेस' के सदस्य रहे। आपकी विशिष्ट प्रतिभा को सम्मानित करते हुये सन् 1956 में 'फ्रेंच एकेडमी ऑव एग्रीकल्चर' ने आपको विदेशी सदस्य के रूप में चुना। आप सन् 1961 की 'फ्रेंच एकेडेमी ऑव साइंस' के भी सदस्य रहे। इसके अतिरिक्त प्रो० धर ने निम्न अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों, सम्मेलनों में भाग लिया—

इण्टरनेशनल कांग्रेस—उपसला (1953-54), स्टाकहोम (1958)।

इण्टरनेशनल स्वायल साइंस कांग्रेस—पेरिस (1956), विस्कान्सिन (1960)।

इण्टरनेशनल फर्टिलाइजर कांग्रेस—यूगोस्लाविया (1961), स्वायल साइंस कांग्रेस, रूमानिया (1964)।

प्रो० धर को अनेक बार ऑक्सफोर्ड, लंदन, कैम्ब्रिज, एडिनबरा, एवरडन विश्वविद्यालय (इंग्लैंड), सोरबोन, टाहलोंज एवं बियारिट्ज विश्वविद्यालय (फ्रान्स) तथा यूगोस्लाविया, स्पेन, रूमानिया, अमेरिका, हालैंड आदि देशों के तमाम विश्वविद्यालयों एवं यूरोप की प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थाओं में व्याख्यान देने के लिये आमंत्रित किया गया और सम्मानित किया गया।

प्रो० धर 'नोबेल पुरस्कार' विजेताओं का चयन करने वाली 'नोबेल प्राइज कमेटी' के सदस्य भी रहे। आप जिस 'नोबेल प्राइज़ कमेटी' के सदस्य रहे, उसके द्वारा सन् 1938, 1948 तथा 1952 में रसायन-

शास्त्र के 'नोबेल पुरस्कार' के विजेताओं का चयन किया गया था।

सन् 1968 में पोप के आमन्त्रण पर आप रोम में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सिम्पोज़ियम—'आर्गेनिक मैटर एण्ड स्वायल फर्टिलिटी' पर व्याख्यान देने के लिये गये।

कलकत्ता विश्वविद्यालय. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने आपको डी० एस-सी० की मानद उपाधियों से अलंकृत किया। प्रो० धर ने अपने 75 वर्ष के विज्ञान जीवन में लगभग 200 शोध-छात्रों को डी० फिल व डी० एस-सी० उपाधियाँ प्रदान कीं और 600 से अधिक मौलिक शोध-पत्रों को तैयार किया। अभी तक विश्व के किसी एक ही वैज्ञानिक द्वारा यह सम्भव नहीं हो सका है। **प्रो० विक्टर कोब्डा** (सोवियत रूस) और **लेडी ईव बोफोर** (इंग्लैंड) ने प्रो० धर का नाम 'नोबेल पुरस्कार' के लिये प्रस्तावित किया था।

उदारता की प्रतिमूर्ति

प्रो० धर ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, विश्व-भारती विश्वविद्यालय एवं कलकत्ता विश्वविद्यालय को विज्ञान अनुसंधान विकास के लिये बीस लाख रुपये दान किये। 'चितरंजन सेवा सदन' (कलकत्ता) को एक लाख रुपये, 'सर जे० सी० बोस लेक्चरशिप' (कलकत्ता विश्वविद्यालय) के लिये एक लाख रुपये दान किया। आप सन् 1935 में स्थापित 'शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान' के संस्थापक एवं अजीवन मानद निदेशक थे।

मृदा रसायनज्ञ के रूप में

सतत् शोध के प्रति समर्पित प्रो० धर ने फ़िज़िकल केमिस्ट्री, कोलाइडल केमिस्ट्री, इलेक्ट्रोकेमिस्ट्री, केमिकल काइनेटिक्स, बायोकेमिस्ट्री, फोटोकेमिस्ट्री आदि से सम्बन्धित अनेक शोधों के अतिरिक्त स्वायल साइंस (मृदा विज्ञान) से सम्बन्धित अनेक शोध कार्य किये। आपकी सबसे महत्वपूर्ण खोज 'नाइट्रोजन स्थिरीकरण पर प्रकाश का प्रभाव'. 'भूमि से नाइट्रोजन का ह्रास' एवं 'मिट्टी में नाइट्रोजन व फॉस्फोरस स्तरों के बीच सम्बन्ध' है। इसके अतिरिक्त ऊसर भूमियों के सुधार से सम्बन्धित आपका शोध कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रो० धर का यह अपना व्यक्तिगत अनुभव रहा है कि मृदा-ह्यूमस (Soil humus) को भारी मात्रा में दिये बिना फ़सल में स्थायी उत्पादन वृद्धि असंभव है, भले ही एन पी के (NPK) उर्वरक भारी मात्रा में दिया जाता रहे।

प्रो० धर के 1953-54 में उपसला में प्रकाशित निबन्ध में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है कि फ़सल-उत्पादन की वृद्धि को स्थायी बनाने के लिये प्रति एकड़ भूमि में प्रतिवर्ष लगभग 4 टन गोबर की खाद (FYM) देना होगा। अगर खेत में ऊपर से दी जाने वाली खाद में जैविक पदार्थ की मात्रा कम होगी तो रासायनिक उर्वरक एन पी के देने के बावजूद वर्ष प्रति वर्ष फ़सल-उत्पादन गिरता जायेगा। भारत, मेक्सिको तथा फिलीपीन्स, जो उष्णकटिबन्धीय देश हैं, में यूरोप की तुलना में स्थिति और भी कठिन है। इन देशों में भूमि का तापक्रम यूरोप से काफी अधिक रहता है तथा जैविक पदार्थ और भूमि के ह्यूमस ऑक्सीकरण (Oxidation की गति उष्ण-कटिबन्धीय देशों में यूरोप की अपेक्षा बहुत ज्यादा रहती है। यह प्रतीत होता है कि मेक्सिको, फिलीपीन्स या भारत में स्थायी फ़सल वृद्धि के लिये प्रति एकड़ 10 से 12 टन जैविक खाद से कम में काम नहीं चलेगा। प्रति एकड़ 10 से 12 टन जैविक खाद प्रदान करने पर स्थायी फ़सल वृद्धि सम्भव हो सकेगी। अगर उत्पादन वृद्धि की दृष्टि से इसके साथ एन पी के (NPK) भी प्रदान किया जायेगा तो उससे मृदा-ह्यूमस में उल्लेखनीय रूप से कमी होगी।

जैविक खाद और कैल्शियमफॉस्फेट की उपयोगिता के बारे में प्रो० धर का कहना था कि कैल्शियम फॉस्फेट और जैविक पदार्थ उल्लेखनीय रूप से वायुमंडलीय नत्रजन (नाइट्रोजन) को भूमि में स्थिर करते हैं तथा इसमें भूमि के नत्रजन-क्षय को रोकने की क्षमता है। जैविक पदार्थ और कैल्शियमफॉस्फेट

(रॉक फॉस्फेट या हड्डी चूर्ण या बेसिक स्लेग के रूप में) का मिश्रण देने से पौधों और फ़सलों में छूत की बीमारियों, कीट-आक्रमणों, व्याधियों आदि का सामना सफलता पूर्वक करने की शक्ति आती है इसके साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों से उत्पन्न अन्न की तुलना में, उक्त मिश्रण देकर उत्पन्न किया गया अन्न पोषण की दृष्टि से अधिक समृद्ध होता है—उसमें अधिक मात्रा में विटामिन, प्रोटीन और खनिज पदार्थ होते हैं।

नि:सन्देह प्रो० धर ने सारी दुनिया के सामने 'जनसंख्या विस्फोट' स्थिति से निपटने के लिये अन्न-उत्पादन को बढ़ाने के भरपूर प्रयत्न किये। अमेरिका के विशिष्ट जीवशास्त्रियों—**डॉ० बोरलॉग, डॉ० चान्दलर** आदि-ने जिस 'हरित क्रान्ति' आन्दोलन को आनुवंशिकी के बल पर आगे बढ़ाया, प्रो० धर ने उसे मृदा विज्ञान में उत्कृष्ट योगदान देकर पूर्णता प्रदान की।

प्रो० धर एक सफल वक्ता थे। विश्वविद्यालय की कक्षाओं अथवा उनके बाहर दिए गए उनके व्याख्यान विद्वतापूर्ण और रोचक होते थे। प्रसिद्ध वैज्ञानिक **डॉ० आत्माराम** को रसायनशास्त्र पढ़ने की प्रेरणा उनका व्याख्यान क्लास रूम के बाहर से सुनने के बाद ही हुई थी। आचार्य धर का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के अनन्य उपासक थे। हिन्दी भाषा के माध्यम से विज्ञान का जनमानस में प्रचार-प्रसार करने वाली संस्था 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के सभापति (1930-33) पद को भी उन्होंने सुशोभित किया। 'विज्ञान' पत्रिका के पुराने अंकों में उनके लेख आज भी सुरक्षित हैं।

शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान (इलाहाबाद) के वे आजीवन संस्थापक निदेशक रहे। विज्ञान के प्रति उनके समर्पण का एक प्रमाण तो यही है कि 'इंडियन एकेडेमी ऑव साइन्सेज' का भवन प्रो० धर द्वारा प्रदत्त भूमि पर ही स्थित है। इस महान वैज्ञानिक का जीवनदीप 6 दिसम्बर 1986 को बुझ गया पर अपने गौरवमय कृतित्व में वे सदैव जीवित रहेंगे। □□

श्रद्धांजलि

स्वर्गीय डॉ० रामकुमार अग्रवाल

डॉ० राजीव अग्रवाल

डॉ० रामकुमार का जन्म 25 मई 1924 को उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद ज़िले में हुआ था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा वहीं हुई। राजकीय इण्टर कॉलेज, मुरादाबाद से हाई स्कूल एवं इंटर की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं एवं इंटर में पूरे उत्तर प्रदेश में दसवाँ स्थान प्राप्त किया। बी० एस-सी० इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं एम० एस-सी० (गणित) लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् 1948 में दिल्ली विश्वविद्यालय से बी० टी०, 1956 में आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० एवं 1963 में लखनऊ विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। 1963 में ही सर्वश्रेष्ठ अनुसंधान पुरस्कार—'बैनर्जी रिसर्च पुरस्कार'—से भी आपको सम्मानित किया गया।

अस्थि रोग विशेषज्ञ, के० जे०—26 कविनगर, गाज़ियाबाद—201002

विज्ञान के साथ ही आप साहित्यानुरागी भी थे। आपको हिन्दी, अंग्रेजी एवं फ्रेन्च—तीनों ही भाषाओं में महारथ हासिल थी। 1963 में आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से फ्रेन्च भाषा का 2 साल का प्रोफिशिएन्सी सर्टीफिकेट प्राप्त किया और पूरे विश्वविद्यालय में प्रथम रहे।

13 फरवरी 1952 को आपका विवाह हो गया। आपकी पत्नी का नाम **उर्मिला देवी** था। आपके दो पुत्र हैं। एक अमेरिका में कम्प्यूटर वैज्ञानिक और दूसरे गाजियाबाद में हड्डी रोग विशेषज्ञ हैं।

आपने करीब 35 वर्षों तक स्नातकोत्तर कक्षाओं में गणित का शिक्षण एवं शिक्षण जीवन के अंतिम वर्षों में कम्प्यूटर साइन्स की भी शिक्षा दी। रुड़की विश्वविद्यालय में रीडर, इंजीनियरिंग कॉलेज इलाहाबाद एवं उदयपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और उसके बाद प्राचार्य मेरठ कॉलेज, मेरठ एवं प्राचार्य श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय रहे और वहीं से 1983 में अवकाश ग्रहण किया। तत्पश्चात् आप गाजियाबाद में बस गये और दो वर्षों तक आई० एम० टी० (गाजियाबाद) में माननीय प्रोफेसर के रूप में अध्यापन किया।

आपको अपने जीवन काल में बहुत से सम्मानों से अलंकृत किया गया जिसमें नेशनल एकेडेमी ऑव साइन्सेज, भारत एवं अन्तर्राष्ट्रीय बायोग्राफी एसोसियेशन कैम्ब्रिज की फेलोशिप शामिल हैं। आपका बायोग्राफी स्कैच तीन अन्तर्राष्ट्रीय एवं तीन राष्ट्रीय पुस्तकों में प्रकाशित हुआ। आप नेशनल एकेडेमी ऑव साइन्सेज, विज्ञान परिषद् और गणित से सम्बन्धित अपने देश की लगभग सभी विशिष्ट संस्थाओं के आजीवन सदस्य थे।

आपने 25 शोध-पत्र स्वयं एवं 32 शोध-पत्र अपने मार्गदर्शन में लिखवाए। आपके चार विद्यार्थियों को पी एच-डी० की उपाधियाँ मिलीं। आपके 43 लेख हिन्दी विश्वकोष, जो कि नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से 12 खंडों में प्रकाशित हैं, में छपे। आपने तीन माध्यमिक स्तर एवं तीन स्नातक स्तर की गणित की पुस्तकें हिन्दी में लिखीं। स्नातक स्तर की पुस्तकें हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर के आग्रह पर लिखीं।

अवकाशप्राप्ति के बाद आपकी रुचि कम्प्यूटर्स में हुई एवं आपने इसका गहन अध्ययन किया और दो पुस्तकें लिखीं। पहली पुस्तक 'प्रोग्रामिंग विथ फोरट्रान 77' टाटा मैग्रा हिल, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई एवं दूसरी 'प्रोग्रामिंग इन एन सी सी' वेस्ट एजूकेशनल पब्लिशिंग कम्पनी यू एस ए से प्रकाशित हो रही है। अपने अन्तिम समय में आप 'मैथेमेटिक्स फॉर इंजीनियर्स' नामक पुस्तक लिखने में व्यस्त थे।

आपने अपने जीवनकाल में तीन बार विदेश यात्रायें की एवं अमेरिका और कनाडा में भी रहे।

अवकाश के बाद आपने सामाजिक कार्यों में गहरी रुचि ली एवं 'सीनियर सिटिजेन एसोसियेशन गाजियाबाद' नामक संस्था स्थापित की जिसके आप प्रधान थे। आप जे ब्लाक कविनगर रेजिडेन्ट वेलफेयर सोसाइटी' के प्रधान भी थे। आपने अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक सस्थाओं में आमन्त्रित अतिथि के रूप में व्याख्यान दिए। आपके प्रिय विषय थे 'प्राचीन भारत में गणित', 'प्राचीन भारतीय गणित में गुणन विधियाँ', 'हिन्दू गणित में मैजिक स्क्वैअर' आदि।

डॉ० रामकुमार जी एक सिद्धान्तवादी, सच्चे, कर्मठ, शीश उठाकर चलने वाले, ईमानदार महामानव थे। आप स्पष्टवादी एवं सरल हृदय थे। किसी बात को आप छिपाना जानते ही न थे, क्योंकि आपका भीतर और बाहर एक था। आपका व्यक्तित्व असाधारण था क्योंकि साधारण बातों का आपको अनोखा ज्ञान था। श्रम और परिश्रम के बिना आप जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। आपने जीवनपर्यन्त अपने सिद्धान्तों से कभी समझौता नहीं किया। आपने नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के लिए सदा संघर्ष किया। ऐसे समय में जब इन मूल्यों का बहुत तेज़ी से ह्रास हो रहा है 2 अगस्त 1990 को आपका इस संसार से अन्तिम विदा लेना विज्ञान जगत् और देश की अपूर्णीय क्षति है। आप आज हमारे बीच नहीं हैं किन्तु अपने कृतित्व में आप अमर हैं। आपके विचार आने वाली पीढ़ियों को अनुप्राणित करते रहेंगे हम आपके बताये हुए रास्ते पर चलें, आपके अधूरे कार्य को आगे बढ़ायें, यही आपके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। □□

पीलिया रोग | डॉ० अनुराग श्रीवास्तव

यकृत या जिगर हमारे शरीर का सबसे बड़ा अंग है, जिसका वज़न लगभग 1.4 किलोग्राम होता है। पाचन-क्रिया द्वारा हमारे भोजन के विभिन्न अवयव यथा—शर्करा (कार्बोहाइड्रेट्स), वसा एवं प्रोटीन्स, छोटी-छोटी इकाइयों में परिवर्तित हो जाती हैं, जोकि आँत द्वारा शोषित होकर रक्त में पहुँचती हैं। रक्त-परिवहन द्वारा ये इकाइयाँ यकृत में पहुँचती हैं, जहाँ या तो ऊर्जा उत्पन्न करने के काम आती हैं अथवा भविष्य के लिए संग्रहीत हो जाती हैं।

यकृत शरीर के भीतर बने एवं शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाले हानिकारक विषैले पदार्थों को विषमुक्त करने का कार्य भी करता है। बिलिरूबिन उनमें से एक है। लाल रक्त कणिकाओं की टूटफूट के उपरांत लाल रक्त कण (हीमोग्लोबिन) ही बिलिरूबिन में परिवर्तित हो जाता है।

रक्त में बिलिरूबिन की सांद्रता सामान्य सीमा 0.3–0.8 मिलीग्राम प्रति 100 मिलीलीटर से अधिक हो जाने की अवस्था पीलिया, कँवर या जॉन्डिस कहलाती है। रक्त बिलिरूबिन 4 मिलीग्राम प्रति 100 मिलीलीटर से कम रहने पर पीलिया गुप्त रहता है (लेटेंट जॉन्डिस) एवं इससे अधिक होने पर त्वचा, आँखें एवं म्यूकस झिल्ली पीली पड़ जाती है एवं पीलिया स्पष्ट हो जाता है (क्लिनिकल जॉन्डिस)। पीलिया के लिए उत्तरदायी प्रमुख संभावित कारण निम्नवत् हैं—

(i) यकृत द्वारा उत्सर्जित करने की सीमा से अधिक मात्रा में बिलिरूबिन का निर्माण,

(ii) पित्त के ड्यूडिनम (जहाँ आमाशय और आँत जुड़ती हैं) में प्रवाह में कोई बाधा, और

(iii) यकृत कोशिकाओं की कार्यक्षमता में आई कमी, जिससे कि यकृत बिलिरूबिन को डाइग्लुकरोनॉयड में परिवर्तित कर पित्त में उत्सर्जित करने में असमर्थ हो।

पीलिया मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है—हीमोलिटिक पीलिया, अवरोधक पीलिया एवं यकृती पीलिया।

(1) हीमोलिटिक पीलिया

इस प्रकार का पीलिया लाल रक्त कणिकाओं की टूट-फूट में वृद्धि के कारण होता है। यदि इस टूट-फूट की दर इतनी बढ़ जाए कि बनने वाले उत्पादों (बिलिरूबिन समेत) को उत्सर्जित कर पाने में यकृत सक्षम न हो तो रक्त में बिलिरूबिन का बढ़ना ही इस प्रकार के पीलिया का कारण बनता है। ऐसा विभिन्न संक्रमणों—जैसे मलेरिया व अन्य वाइरल या विषाणु संक्रमण से विषाक्त पदार्थों से, हीमोलिटिक एनीमिया में व रोगी को बेमेल रक्त दिए जाने पर होता है।

(2) अवरोधक पीलिया

पित्त, पित्ताशय से पित्तवाहिनी नलिका द्वारा आँत में पहुँचकर पाचन में सहायक होता है। यदि पित्त के इस सामान्य बहाव में अवरोध उत्पन्न हो तो इसे अवरोधक पीलिया कहते हैं। इसके उत्पन्न होने के सामान्य कारण निम्नवत् हैं—

(i) पित्त, प्रवाह के रास्ते में पथरी का होना,

(ii) ग्रन्थि का अत्यधिक बढ़ जाना या अग्न्याशय के मुख पर ट्यूमर होना और

(iii) पित्तवाहिनी का संकीर्ण होना (शल्यक्रिया के परिणामस्वरूप)।

(3) यकृती पीलिया

विषाक्त पदार्थों द्वारा पैरेन्काइमा कोशिकाओं की क्षति यकृत की कार्यक्षमता को विपरीत रूप से प्रभावित करती है। दूषित जल द्वारा **हेपेटाइटिस विषाणु** इस प्रकार के पीलिया का सर्वप्रमुख एवं सामान्य कारण है। कई ज़हरीले रसायनों जैसे—कार्बन टेट्राक्लोराइड, क्लोरोफॉर्म, ट्राइनाइट्रोटालुइन, डाइनाइट्रोफीनॉल, हैलोथेन, फेरस सल्फेट, सोना, आर्सेनिक,

1 डी, स्ट्रीट 4 ए, सेक्टर 9, भिलाई—492006

फॉस्फोरस के विभिन्न यौगिक जैसे विषाक्त पदार्थों एवं 'सिरोसिस' (सूत्रण रोग) की वजह से भी यह पीलिया हो सकता है। यह पीलिया आमतौर से दूषित जल के प्रयोग से होता है।

कुछ नवजात शिशुओं में बिलिरूबिन को उत्सर्जित करने की क्षमता का पूर्ण विकास न हो पाने से भी 'शरीर कार्यिकी पीलिया' (फ़िज़ियोलॉजिकल जॉन्डिस) हो जाता है।

सामान्य लक्षण

कमज़ोरी, थकान, जी मिचलाना, बुखार, यकृत का मुलायम होना, भूख न लगना, घी-तेल से बनी चीज़ों के प्रति अरुचि, विभिन्न उदर विकार, पेटदर्द, पेशाब का गहरा पीले रंग का हो जाना, गहरे भूरे एवं चिकने (वसायुक्त) मल का विसर्जन इत्यादि।

क्या करें क्या न करें ?

(1) विषाक्त एवं संक्रामक पीलिया में जब तक भूख की कमी दूर न हो जाए, पूर्ण विश्राम करना चाहिए।

(2) कुशल एवं योग्य चिकित्सक से ही परामर्श एवं उपचार लेना चाहिए।

(3) मल-मूत्र का रंग सामान्य होने से ही अस्वस्थता समाप्त होने के संकेत मिलते हैं। वैसे सही स्थिति का अनुमान रक्त की जांच (जैसे बिलिरूबिन, क्षारीय फॉस्फेट व एस० जी० पी० टी० एन्जाइम इत्यादि) कराने से ही लगता है। अतएव रक्त की जाँच अवश्य ही करानी चाहिए।

(4) रोगी के कपड़े, बर्तन एवं अन्य वस्तुएँ उबले पानी में भली-भाँति साफ़ करना चाहिए। इन्हें दूसरों को प्रयोग में नहीं लेना चाहिए। रोगी की देख-भाल करने वालों को भी स्वच्छता के प्रति सचेत रहना चाहिए।

(5) ऐसा भोजन, जिसमें अधिक कार्बोहाइड्रेट्स (शर्करा) एवं पर्याप्त प्रोटीन्स हों, अच्छी तरह पकाकर आकर्षक ढँग से परोसना चाहिए, ताकि रोगी की भूख खुल सके एवं भोजन के प्रति रुचि बनी रहे।

(6) वसा एवं वसायुक्त पदार्थों तथा अधिक मसालों का प्रयोग वर्जित मानना चाहिए।

(7) बुखार की स्थिति में फलों का रस देना चाहिए।

(8) मदिरापान पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए, क्योंकि इससे विभिन्न उदरविकार उत्पन्न होते हैं और भूख भी कम लगती है।

(9) सदा छाना हुआ क्लोरीन द्वारा उपचारित शुद्ध जल उबाल कर ही प्रयोग में लाना चाहिए।

(10) रोगी के कमरे और घर की सफ़ाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए। □□

बनाये रखना हो यदि समस्त रिश्तों को

अनिल श्रीवास्तव

तुम्हारे हाथों में जकड़ी
आरी और कुल्हाड़ियाँ
टूट पड़ीं
और उसके लहकते-हरियाले जिस्म को
छिन्न-भिन्न कर डाला,
ढह गया
उसका समूचा अस्तित्व,
छितर-बिखर गयीं
एक-एक डालें,
फल-फूल और पत्ते,
एक आह ! सी निकली
उसके अन्दर से
गिरते वक्त,
मगर वह मात्र पीड़ा नहीं थी

ग्राम—परसोहर, पोस्ट—जरवल रोड, ज़िला—बहराइच (उत्तर प्रदेश)—271901

एक चेतावनी थी
जो सावधान करते हुये कह रही थी
कि वह मात्र
पत्तों-छालों में लिपटी लकड़ी नहीं है
जो खड़ी रहती है
तेज़ धूप-लू में जलती
आँधी, वर्षा और सर्दी में तड़पती
निर्जीव बनी।
वह तुम्हारी माँ है—
अपनी गोद में
पक्षियों को घोसला बनाने की अनुमति देकर
और उनकी चीं-चूं,
हँसने-रोने, सुख-दुख में शामिल होकर,
और उससे भी बढ़कर तुम्हारे लिये
फल उपलब्ध कराकर।
वह बाप है—
छाया के रूप में
सर पे हाथ रखे,
फ़सलों के लिए
बादल बुला, वर्षा कराकर
और वायु को शुद्धकर
हमारी साँसों के लिये आरोग्यकारी बनाकर।
वह भाई है—
सीमा पर खड़े प्रहरी की तरह
फ़सलों को बाढ़ से बचाने
और मिट्टी की कटान को
रोकने के लिये तैनात।
वह बहन है—
सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी करके
सोंधी-सोंधी रोटियाँ
सेंककर खिलाने के लिये।
वह पत्नी है—
सोफ़े, बेड, मेज़-कुर्सी के रूप में
जीवन भर साथ निभाने के लिये
दृढ़ प्रतिज्ञ;
दरवाज़ों, खिड़कियों,
अलमारियों की
खटर-पटर में बन्द होती
रंग-बिरंगे पेंट,
रंगों की सजीली साड़ी में लिपटी
हरदम मुस्कराती।
इसलिए, जो तुम
हरे वृक्षों को काट रहे हो
वास्तव में,
वृक्ष नहीं काट रहे हो
काट रहे हो—
अपनी माँ को, बाप को
भाई-बहन और पत्नी को।
यदि बनाए रखना चाहते हो
अपने समस्त परिवार
और रिश्तों को,
तो रोक लो कटने से
हर एक हरी पत्ती और डाल।
बचा लो,
मरुस्थल में तब्दील होते वन।
और रोपो,
निशदिन एक पौधा
अपने खेतों, बागों और वनों में,
अब तक काटे गये वृक्षों के
प्रायश्चित रूप में। □□

डॉ० गोविन्द राम तोशनीवाल नहीं रहे पर स्मृतियाँ जीवित हैं

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

[**डॉ० तोशनीवाल** देश के चोटी के उद्योगपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में फ़िज़िक्स विभाग में प्रोफेसर, अनुसंधानकर्ता, बैज्ञानिक, विज्ञान, तकनीकी और राष्ट्रभाषा हिन्दी के पोषक थे। उन्होंने देश में विज्ञान और तकनीकी के विकास के लिए अथक परिश्रम किया, आयनोस्फीयर, स्पेक्ट्रॉस्कोपी, एक्स-रे पर अनेक उच्च स्तरीय शोधपत्र प्रकाशित किए, दिल्ली और कोडाइ-कैनाल में मौसमविज्ञानी के रूप में भी कार्य किया। कोडाइकैनाल में बन्द पड़ी चुम्बकीय

ऋतम्भरा, विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

प्रेक्षणशाला को पुनः चालू करने का श्रेय डॉ० तोशनीवाल को ही रहा है। 1943 में वे न्यूयार्क के इंस्टीट्यूट ऑव इलेक्ट्रिकल एण्ड इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियर्स के चयनित सदस्य रहे। 1972-73 में चण्डीगढ़ में सम्पन्न 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' की इंजीनियरिंग और मेटलरजी सेक्शन के अध्यक्ष, 1981 में 'मैगनेटिक्स सोसायटी ऑव इंडिया' के अध्यक्ष, और 1987 में 'इंडियन नेशनल एकेडमी ऑव इंजीनियरिंग' के फेलो रहे।

वे देश की चोटी की विज्ञान संस्थाओं से आजीवन जुड़े रह कर लोगों का मार्गदर्शन करते रहे। अनेक शिक्षण संस्थाओं से भी वे आजीवन जुड़े रहे। महिला शिक्षा में उनका विशेष योगदान रहा। 21 जनवरी 1904 को जन्मे गोविन्द राम जी का 29 सितम्बर 1990 को अजमेर में निधन हो गया। विज्ञान परिषद् तो उनकी चिरऋणी रहेगी। वैसे उनका पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं है, पर अपने कृतित्व में वे अमर रहेंगे। दिवंगत आत्मा को परिषद् परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है।

—सम्पादक]

3 मास मारीशस रहकर अक्टूबर के अंतिम सप्ताह में मैं जब दिल्ली लौटा तो विज्ञान परिषद् के पूर्व प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र के एक पत्र से ज्ञात हुआ कि मेरे पुराने साथी **डॉ० गोविन्दराम तोशनीवाल** का निधन 29 सितम्बर, 1990 को हो गया। इस समाचार को पाते ही मेरी अनेक पुरानी स्मृतियाँ जाग्रत हो गईं। प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग से 1926 में गोविन्दराम जी ने एम० एस-सी० की परीक्षा भौतिकी में उत्तीर्ण की। 1927 में इसी विश्वविद्यालय से रसायनशास्त्र से मैंने एम० एस-सी० किया और उसके अगले वर्ष 1928 में **दौलत सिंह कोठारी** ने भौतिकी में एम० एस-सी० किया। इस प्रकार हम तीनों ने एक-एक वर्ष के अन्तर से एक ही विश्वविद्यालय में विद्याध्ययन किया। हम तीनों को ही **प्रो० नीलरत्न धर** एवं **प्रो० मेघनाद साहा** के समान आचार्यों के सान्निध्य में आने और उनसे शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त हुआ। सुविधानुसार हम तीनों ने अपने-अपने क्षेत्रों में शोध कार्य भी किये। शनैः-शनैः अपने-अपने विभागों में प्रयाग में डिमांस्ट्रेटर बने एवं मैंने तथा तोशनीवाल ने अपने-अपने गुरुओं के निर्देशन में विश्वविद्यालय की उच्चतम उपाधियाँ (डी० एस-सी०) प्राप्त कीं। दौलत सिंह डॉक्टरेट की उपाधि के लिए विदेश गये।

वर्तमान् शती का प्रत्येक दशक ही नयी शोधों के लिए युगप्रवर्तक रहा है। प्रो० मेघनाद साहा के 1923 में प्रयाग आने पर **स्पेक्ट्रॉस्कोपी** विषयक प्रयोगशाला भौतिकी विभाग का अंग बनी और प्रारम्भ में गोविन्दरामजी ने भी इस प्रयोगशाला में काम किया। उसके शीघ्र ही बाद प्रो० साहा के निर्देशानुसार गोविन्द राम जी एक नये विभाग वायरलेस (बेतार के तार) में काम करने लगे। बेतार के तार का यह नया युग था और उत्तर प्रदेश में इस विभाग का

कार्य भी नया आरम्भ हुआ था। गोविन्द राम जी ने बड़े धैर्य, उत्साह और कुशलता से इसमें रुचि ली और प्रयाग से बाहर के केन्द्रों से, दूरदेशीय केन्द्रों से, तरंगें पकड़ना प्रारम्भ किया। यह सफलता डॉ० गोविन्द राम जी के प्रयोग की कुशलता का प्रमाण है। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक दिन सन्ध्या काल काफी देर तक इन तरंगों को सुनने के लिए उत्सुकता से गोविन्द राम जी की प्रयोगशाला में मैं भी प्रतीक्षारत रहा। संसार में एक नये युग का अवतरण हो रहा था। पर आज दूरदर्शन एक बहुत ही साधारण वस्तु बनकर रह गयी है।

गोविन्द राम जी अजमेर (राजस्थान) के निवासी थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान वे अपने साथ अपनी पत्नी और भाइयों को भी प्रयाग ले आये। पुरानी बात है। जीरो रोड के पास **प्रो० सालिगराम भार्गव** का भी मकान था। मेरे पिताजी ने एक मकान वहीं बनवाया था। गोविन्द राम जी भी एक मकान लेकर पास में रहते थे। मेरी माताजी के साथ उनके परिवार के लोग हिल-मिल गये थे। हम दोनों परिवारों में अच्छी आत्मीयता थी। बच्चों का यहीं जन्म हुआ। **भगवान दास तोशनीवाल** सहित गोविन्द राम जी के कई भाई-भतीजे मेरे विद्यार्थी रहे।

राजस्थान के व्यापारी परिवार से आये तोशनीवाल जी के लिए विश्वविद्यालय की नौकरी बहुत छोटी थी और उनके सपने बड़े थे। अन्ततोगत्वा गोविन्दराम जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। प्रो० मेघनाद साहा भी इलाहाबाद छोड़कर कलकत्ता चले गये।

गोविन्द राम जी ने विदेशों से वैज्ञानिक यन्त्रों के आयात का कार्य प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे इन नये यन्त्रों के निर्माण का कार्य भी प्रारम्भ किया और अजमेर, बम्बई तथा कलकत्ता में अपने परिवार के लोगों के साथ इस कार्य का विस्तार किया उनके इस विस्तार के कारण उनके परिवार के उदीयमान युवकों के सामने अपनी जीविकाओं का कोई प्रश्न ही नहीं रहा। जो व्यापार शिल्प एवं विद्युत यन्त्र देश में नहीं बनते थे, वे अब यहीं बनने लगे। प्रत्येक केन्द्र के कारखानों में गोविन्दराम जी ने दरिद्र, अशिक्षित श्रमिकों को जीविकायें प्रदान कीं। तोशनीवाल जी का समस्त परिवार आज वैभवसम्पन्न है और देश के नामी व्यापारियों में हैं। इनका परिवार व्यापार के साथ ही साथ देशहित के अनेक कार्यों में रुचि रखता है, ध्यान देता है। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से वे हमारे लिए गौरवपूर्ण है। 1983 में अजमेर में 'महर्षि दयानन्द निर्वाण शती' दीपावली के अवसर पर बड़े धूमधाम से मनाई गई थी। भारतवर्ष के अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों को विभिन्न क्षेत्रों में सराहनीय कार्य के लिए आर्य जगत् द्वारा सम्मानित किया गया था। उस समय डॉ० गोविन्द राम तोशनीवाल जी 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के अध्यक्ष थे। गोविन्द राम जी को भी हमने शताब्दी **'स्वर्णपदक'** प्रदान कर सम्मानित किया था। 'स्वर्णपदक' देश की तत्कालीन प्रधानमन्त्री **श्रीमती इन्दिरा गांधी** ने दिया था। जब कभी भी मैं अजमेर जाता भाई तोशनीवाल जी से मिले बिना न रहता। दिल्ली हो या अजमेर या प्रयाग, एक दूसरे से मिले बिना हम दोनों को शून्य सा लगता था। तोशनीवाल जी व्यापार और शिल्प सम्बन्धी अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे।

गोविन्द राम जी को देश और राष्ट्र भाषा हिन्दी से अगाध प्रेम था। उन्होंने अपना जीवन देश की सेवा में होम कर दिया। 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' से वे गहरे जुड़े थे। उन्होंने और उनके परिवार ने 'विज्ञान परिषद्' की अनेक बार आर्थिक सहायता की है। 20,000 रुपये की एक धनराशि देकर 'प्रो० सालिग राम भार्गव स्मृति व्याख्यानमाला' की स्थापना की। इस व्याख्यानमाला का प्रथम व्याख्यान दिल्ली में **प्रो० अजितराम वर्मा** द्वारा दिया जा चुका है।

प्रो० सालिग राम भार्गव मेरे और तोशनीवाल जी, दोनों के गुरु थे। वे 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के चार संस्थापकों में से एक थे। 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की स्थापना 1913 में **महामहोपाध्याय पंडित गंगानाथ झा, प्रो० रामदास गौड़, प्रो० सालिग राम भार्गव और मौलाना हमीदउद्दीन साहब** द्वारा हुई थी।

आज गोविन्द राम जी हमारे बीच नहीं रहे पर उनकी मधुर स्मृतियाँ आजीवन सुरक्षित रहेंगी। □ □

हमारे पक्षियों का मूल्यांकन : दर्शन अथवा विज्ञान

आर० के० रणजित डेनियल्स

सन् 1859 में जैसा कि पहली बार **चार्ल्स डारविन** का 'प्राकृतिक चयन सिद्धान्त' प्रतिपादित किया गया, सिद्धान्त में यह सुझाव निहित था कि विलोपन अपरिहार्य है। उनका कथन, जैसे-जैसे नए फॉर्म (नई प्रजातियाँ) निरन्तर और धीरे-धीरे उत्पन्न किए जा रहे हैं, जब तक हम यह विश्वास नहीं करते कि विशिष्ट फार्मों की संख्या निरन्तर और प्रायः अनिश्चित रूप से बढ़ती जा रही है, संख्याओं का अनिवार्यतः विलोप होना चाहिए, संरक्षण के विरुद्ध प्रतिकूल तर्कों का आधार रहा है। इस तरह के तर्कों का सामान्य सिद्धान्त यह है कि विलोपन पूर्णतः प्राकृतिक विकासात्मक प्रक्रिया है, जो लाखों वर्षों से मानव की सहभागिता के बिना चलती आई है। यदि हम प्रकृति के कार्य में केवल हाथ बँटा रहे हैं तो फिर चिंता क्यों? एक और विचारधारा, जिसकी जड़ें धर्म में गहरी हैं, के अनुसार पृथ्वी अपने समस्त लाइफ फार्मों (जीव प्रजातियों) के साथ पूर्णतः विनाश की दिशा में अग्रसर है। पृथ्वी अपने समस्त जीवों से युक्त पापपूर्ण तथा शापग्रस्त है—विनाश अवश्यंभावी है। हमारे समाज में ऐसे विचार सचमुच प्रचलित हैं। अतः आगे की पंक्तियों में मैं (1) पक्षियों के संरक्षण की क्या आवश्यकता है ?, (2) क्या सभी पक्षियों का समान मूल्यांकन होना चाहिए ? और (3) पक्षी-संरक्षण से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीतियाँ कैसी होनी चाहिए ? जैसे प्रश्नों पर विचार-विमर्श करूँगा।

वैधानिक तथा दार्शनिक यह दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयास करते आए हैं कि जीव प्रजातियों (लाइफ फार्मों) के अपने मूल्य हैं, अतः इन्हें कायम रखना चाहिए। फिर भी, उनमें पारस्परिक मतभेद हैं। वैज्ञानिक किसी भी लाइफ फार्म का मूल्यांकन इस आधार पर करते हैं, चाहे वह पक्षी ही क्यों न हो, कि उससे हमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्या लाभ है। उदाहरण के लिए, शकरखोरे (सन बर्ड्स) जिन पौधों का परागण करते हैं वे पौधे इस धरती पर हमारे जीवन के लिए लाभदायक हैं। इसके अलावा कुछ मक्खीमार (फ्लाई कैचर) तथा ड्रान्गोज हैं जो हमारी फ़सल को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों को नष्ट करते हैं। वैज्ञानिकों और दार्शनिकों की दृष्टि में जंगलीमुरगी महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनमें मानव के आहार बनने की प्रत्यक्ष क्षमता है अथवा 'हार्डी जेनेटिक स्टाक', जिनका इस्तेमाल हम अपने घरेलू मुरगी पालन की गुणवत्ता सुधारने में कर सकते हैं। अभी हाल के तर्क के अनुसार सभी पक्षियों में कुछ ऐसी क्षमता निहित है जिसका अभी हमें पता नहीं लग सका है किन्तु सम्भव है भविष्य में हम पता लगाना सीख जाएँ। यह तर्क भी सामने आया है कि यह पक्षी विज्ञान शिक्षा और खोज में प्राकृतिक उपकरण के रूप में सहायक हो। इस तर्क के आधार पर पक्षियों का मूल्यांकन किया जा सकता है। इन्हीं तथाकथित मूल्यों को "माँग मूल्य" की संज्ञा दी गई है। दूसरे शब्दों में मूल्यों का आधार है मानव को पक्षियों से होनेवाले लाभ।

दूसरी तरफ़ दर्शनशास्त्र का तर्क यह है कि पक्षियों को बनाए रखना चाहिए क्योंकि उनका एक "आन्तरिक मूल्य" होता है। यह पक्षियों का वह मूल्य है जो अन्य किसी लाइफ फार्म की उपादेयता पर निर्भर नहीं है। यह आवश्यक है कि पक्षियों के सभी फार्मों की रक्षा की जानी चाहिए। उन्हें जीने का अधिकार है।

दार्शनिक **ब्रियान जी. नोरटन** ने अपनी पुस्तक "ह्वाई प्रिज़र्व नेचुरल वैराइटी" में यह विचार प्रस्तुत किया है कि लाइफ फार्म्स के 'रूपान्तरित मूल्य"

परिस्थिति विज्ञान केन्द्र, भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलोर—560012

होते हैं। उनके शब्दों में "किसी भी लाइफ फार्म का 'माँग मूल्य' के विपरीत 'रूपान्तरित मूल्य' होता है, यदि वह केवल संतुष्ट करने की अपेक्षा उसकी जाँच अथवा परिवर्तित करने का अवसर उपलब्ध कराता है।" इसे समझाने के लिए मैं उस उदाहरण का उद्धरण प्रस्तुत करूँगा जिसका स्वयं उन्होंने प्रयोग किया है। "बालक पक्षियों के घोसलों के अंडे नष्ट कर रहा है। वयस्क उस बालक को बड़े प्यार से समझाता है कि अंडों से पक्षियों के छोटे-छोटे बच्चे निकलेंगे, इसलिए इन अंडों से बच्चे निकालना अत्यन्त आवश्यक है। और उस बालक को वह वयस्क एक अन्य घोंसले में पक्षी के छोटे-छोटे बच्चे भी दिखाता है। बालक बहुत प्रभावित होता है, देखता है कि उन चूज़ों को मादा चिड़िया आहार दे रही है, और नतीजा यह होता है कि वह बालक अपना यह विनाशकारी खेल वहीं खत्म कर देता है। अब वह बालक पक्षियों के हित की बात सोचता है और वयस्क से अनेक प्रश्न करता है। अंततः वह शौकीन पक्षिविज्ञानी बन जाता है और अकथनीय आनन्द का अनुभव करता है। इस तरह प्रारम्भिक विनाशकारी प्रवृत्ति में परिवर्तन आ जाता है।"

मुझे ऐसा लगता है कि जैवीय संरक्षण की दिशा में प्रगति की गति न केवल संरक्षण विरोधी विचारों के कारण धीमी हो रही है बल्कि इस कारण भी कि क्या लाइफ फार्मों का संरक्षण प्रधानतया उनके "माँग मूल्यों" के आधार पर हो या केवल वैसे ही सामान्यतः उनका संरक्षण किया जाए। अनेक संरक्षण जीवविज्ञानी जो अपनी संरक्षण नीतियों की आलोचना का सामना करने में कुछ संकोच का अनुभव करते हैं (क्योंकि प्रधानतया उन्हें मानवकेंद्रित की संज्ञा दी गई है) अब समझौता करने का प्रयास कर रहे हैं कि ये नीतियाँ विवेकपूर्ण हो जाएँ। यदि यह निश्चित रूप से मालूम हो जाए कि केवक पक्षी ही नहीं वरन् अन्य लाइफ फार्मों को नष्ट करने से इस पृथ्वी पर हमारे अस्तित्व को ख़तरा है तो प्रकृति को सुरक्षित रखने के लिए हर संभव प्रयास अनिवार्य है। यह सोचना है कि, किसी भी संरक्षण प्रयास का मूल कारण मानव-केन्द्रवाद है, अपराध-बोध नहीं है। लाइफ फार्मों का उनके वास्तविक मूल्यों के कारण परिरक्षण करने की विचारधारा की अवहेलना की जा सकती है बशर्ते हम एड्स रोगाणु को बनाए रखने के इच्छुक हों। दुनिया जो भाई चारे और प्रेम के सन्देश का मज़ाक उड़ाती प्रतीत होती है, क्या नोरटन के रूपांतरण का सन्देश ग्रहण करेगी ? मुझे नहीं लगता। यदि प्रकृति मानव की विश्व-विचारधारा को रूपांतरित कर सकती है, उसी प्रकार संगीत, कला और नैतिक कथाएँ भी। सड़क के कूड़ादान के इर्द-गिर्द मँडराते और जूठन को देखते हुए उन भूखे बच्चों के आम दृश्य की कल्पना करें। ऐसे दृश्य को देखकर कहाँ तक हम रूपांतरित हुए हैं ? हमारे दैनिक जीवन में कितना आहार नष्ट होता है।

जब हम पक्षियों के संरक्षण मूल्यों की बात करते हैं, हमेशा एक प्रश्न उठता है, "हम पक्षियों का मूल्यांकन किस आधार पर करते हैं ?" जब मैंने पहली बार पक्षियों के संरक्षण मूल्यों पर वार्ता प्रस्तुत की, किसी ने मुझसे पूछा, क्या मेरा तात्पर्य अदला-बदली से है। एक हॉर्नबिल की रक्षा करने के लिए हम कितने बच्चों को मरने दे सकते हैं ? मुझे एक सुप्रसिद्ध संरक्षण जीवविज्ञानी की बात याद आ रही है। संरक्षण से सम्बन्धित पहलुओं पर चर्चा करते हुए अत्यन्त चिन्तित परिस्थिति-विज्ञानी के एक समूह को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा है कि यदि वह और उनका बच्चा एक द्वीप पर असहाय हो जाएँ और यदि उनका बच्चा भूख से तड़प रहा हो, ऐसी स्थिति में वह किसी भी ऐसे जानवर को मारकर अपने बच्चे की भूख मिटाएंगी जो उनकी पकड़ में हो, चाहे वह जानवर धरती पर पाए जानेवाले भयंकर से भयंकर प्राणियों में से ही क्यों न हो। मेरा अनुमान है कि कोई भी ऐसी स्थिति में यही करेगा। शायद ही कोई संरक्षण विज्ञानी पक्षियों का मूल्यांकन मानवजाति को तराजू में रखकर उसके बराबर करेगा। प्रस्तावित 'साइलैंट वैली प्रोजेक्ट' जैसी हाइड्रोइलेक्ट्रिक परि-

योजना की लागत और लाभों की तुलना में पक्षियों का मूल्यांकन करना बेकार साबित होगा। पक्षियों का मूल्य किसी भी करेन्सी में नहीं लगाया जा सकता। और यदि किसी ने ऐसा प्रयास किया भी तो वह यथार्थ के कहीं भी समीप न होगा। तो फिर इस प्रश्न का उत्तर क्या है?

पक्षियों का मूल्यांकन एक दूसरे की तुलना में ही किया जा सकता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या सभी पक्षियों का मूल्यांकन एक जैसा ही है? यदि मैं आपसे ही पूछूँ कि कौआ और मोर में किस पक्षी का मूल्य अधिक है? मोर हमारा 'राष्ट्रीय पक्षी' है। हिन्दू पुराण में इसे विशेष स्थान दिया गया है। इसके वसा से निकाला गया तेल औषधियों की दृष्टि से गुणों से सम्पन्न है। इन गुणों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विश्व के सुन्दरतम पक्षियों में इसकी गिनती है। किन्तु कौआ? कौए की जरूरत किसे है? यह बहुत बड़ी संख्या में मौजूद है और सचमुच दुःखदायी है। क्या इसी तरह से हम पक्षियों का मूल्यांकन करते हैं?

नहीं। चूँकि हम अपने अधिकांश पक्षियों के अंदर छिपे मूल्यों को नहीं जानते और क्योंकि हम सभी मौजूदा पक्षियों का संरक्षण करना चाहते हैं, संरक्षण जीवविज्ञानी सभी पक्षियों की प्राथमिकता मूल्य निर्धारित करने की प्रणालियों पर शोधकार्य में लगे हुए हैं। अन्य पक्षियों की अपेक्षा पक्षियों की कुछ किस्मों को बचाने की अत्यावश्यकता के आधार पर प्राथमिकता मूल्य निर्धारित किए जाते हैं। जो पक्षी अभी हाल में विलुप्त हुए हैं और वे जो दुनिया भर में विलुप्त होने के ख़तरे का सामना कर रहे हैं, उनकी विशिष्टताओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गया है कि वे वही पक्षी थे जो बहुत छोटे भौगोलिक क्षेत्रों में पाये गये। उनकी संख्या कम थी। कुछ को तो मनुष्यों और कुत्तों, बिल्लियों और सुअरों जैसे उसके पालतू जानवरों ने समाप्त कर दिए। शरीर का विशाल आकार, पुनरोत्पादन की निम्न गति या आहार शृंखला में उच्चतर होने की स्थिति कुछ अन्य पक्षियों में प्रतिकूल परिस्थिति थी। अन्य लाइफ फर्मों के साथ पारिस्थितिक सम्बन्ध कुछ पक्षियों के दुर्भाग्य का कारण बना। पक्षियों में इन विशिष्टताओं में से एक से अधिक के मिश्रण से प्रतिकूल परिणाम हो सकते हैं। यह ध्यान में रखते हुए जब हम संरक्षण नीतियों का निर्धारण करते हैं, इस प्रकार के अभागे पक्षियों को अत्यधिक प्राथमिकता मूल्यों की श्रेणी में रखना चाहिए। इन पक्षियों को साधारण संरक्षण मूल्य दिए जाएँ। उदाहरण के लिए, **नीलगिरि लॉफिंग थ्रश,** पक्षी का एक ऐसा फॉर्म, जो केवल नीलगिरी पर्वतों पर ही पाया जाता है। इस पक्षी का मूल्य, गाय-बगुला जो दुनिया भर में पाया जाता है, की अपेक्षा उच्चतर होना चाहिए। हर तरह के प्राकृतिक वास वाले क्षेत्रों में पाये जाने वाले जंगली कौओं की अपेक्षा केवल गीले जंगलों में पाए जाने वाले इंडियन हॉर्नबिल जैसे पक्षियों का मूल्य अधिक होना चाहिए। इस तरह के मूल्यांकन में प्रयुक्त भौगोलिक मापदंड सार्वभौम हो सकते हैं या राष्ट्रीय। चूँकि हमारे पास विश्व एवं भारतीय उपमहाद्वीप के समस्त पक्षियों के प्राकृतिक वास की अभिरुचियों और भौगोलिक क्षेत्रों के विवरण सहित सम्पूर्ण परीक्षण-सूचियाँ उपलब्ध हैं, ऐसा मूल्यांकन कठिन नहीं है। फिर भी, चूँकि हमारे पास अधिकांश पक्षियों के लिए तादाद के सही प्राक्कलन उपलब्ध नहीं हैं, तादाद के आकारों पर आधारित मूल्य सभी पक्षियों को एक जैसे निर्धारित नहीं किए जा सकते। अन्य विशिष्टताओं पर आधारित मूल्यों को संक्षेप में दोहराया जा सकता है और उनके संकट की तुलनात्मक मात्रा के लिए मूल्यों के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। पक्षी का कोई फार्म जितना अधिक संकटग्रस्त है उसे उतना ही अधिक मूल्य प्राप्त होगा। किसी फार्म के टेक्सोनामिक (वर्णिकी) अद्वितीयता के द्वारा समान मूल्य निर्धारित करना सम्भव है। दूसरे शब्दों में, उसे आनुवंशिक मूल्य कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, पक्षियों की पैंसठ विशिष्ट क़िस्मों जैसे काक-परिवार की अपेक्षा क्रैब (केकड़ा)—प्लोवर (टिटिहरी) परिवार जैसे पक्षियों की एकल क़िस्मों के

प्रतिनिधित्व के अधिक मूल्य निर्धारित किए जा सकते हैं। मूल्यांकन की इस प्रणाली से स्थिरता आती है और इसमें अवास्तविकता भी कम से कम रहती है।

जब एक बार देश या किसी राज्य अथवा ज़िले के पक्षियों की सभी क़िस्मों का उपरोक्त पद्धति से मूल्यांकन हो जाता है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्षियों के संरक्षण के क्षेत्रों की तात्कालिक आवश्यकता को जानने का काम आसान हो जाता है। दूसरे जहाँ किसी क्षेत्र के बारे में यह विवाद उत्पन्न हो जाता है कि यह स्थान पक्षियों के लिए सुरक्षित रखा जाए या विकासोन्मुख परियोजना के लिए दे दिया जाए, तब मूल्यांकन की यह पद्धति बहुत प्रभावशाली सिद्ध हो सकती है, क्योंकि ऐसी स्थिति में कुछ क्षेत्रों की बहुत जल्दी तुलना की जा सकती है, और विवादास्पद क्षेत्र अन्य प्रयोजनों की अपेक्षा अपने पक्षियों के लिए अधिक उपयुक्त है इस आधार पर विवेकपूर्ण निर्णय लिए जा सकते हैं।

मानव स्वयं अपना बचाव कर लेता है, यह हमें बिना कोई बहाना किए स्वीकार कर लेना चाहिए। पक्षियों के संरक्षण में दार्शनिक और नैतिक विचार प्रभावशाली साबित नहीं हो सकते। किसी भी विवेकशील मानव को पक्षियों के संरक्षण के लिए दार्शनिक तथा नैतिक कारणों की अपेक्षा वैज्ञानिक कारण अधिक आकर्षित करता है। विज्ञान की यह भविष्यवाणी है कि पक्षियों की निरन्तर क्षति अंततः हम पर उल्टी पड़ सकती है। अतः मैं इन शब्दों के साथ लेख समाप्त कर रहा हूँ, "पक्षियों की सुरक्षा करें ताकि आपका भला हो और आप दीर्घायु हों।" ☐☐

[विज्ञान परिचय से साभार]

'नेहरू का वैज्ञानिक दृष्टिकोण' पर गोष्ठी

देश के प्रथम प्रधानमन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू के 101वें जन्म दिन पर नेहरू का वैज्ञानिक दृष्टिकोण विषय पर विज्ञान परिषद् में विचार गोष्ठी हुई। विषय प्रवर्तन करते हुए विज्ञान पत्रिका के सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने पं० जवाहर लाल नेहरू के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि उनकी पुस्तक 'पिता के पुत्र पुत्री के नाम' को जूनियर हाई स्कूल के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया जाना चाहिए। शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान के निदेशक प्रो० शिवगोपाल मिश्र ने नेहरू जी के भाषणों के उन अंशों की चर्चा की जिसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण (साइन्टिफिक टेम्पर) पर बल दिया गया है।

इस विचार गोष्ठी में डॉ० सुप्रभात मुकर्जी, डॉ० रामसुरंजन धर दुबे, सर्वश्री दिनेशमणि, राजेश कुमार केसरी, अशोक कुमार आदि ने भी विचार व्यक्त किए। अन्त में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

विज्ञान परिषद् की वाराणसी शाखा से

आचार्य जगदीश चंद्र बोस की 132वीं जयंती के अवसर पर परिषद् द्वारा व्याख्यान का आयोजन :

गत 30 नवम्बर 1990 को, आचार्य जगदीश चन्द्र **बोस की 132वीं** जन्म तिथि के अवसर पर **विज्ञान परिषद्** की वाराणसी शाखा द्वारा एक व्याख्यान का आयोजन किया गया। **प्रो० महाराज नारायण मेहरोत्रा** ने इस आयोजन की अध्यक्षता की।

आरम्भ में विज्ञान संकाय के संकाय-प्रमुख **प्रो० देवेन्द्र कुमार राय** ने आचार्य बोस के व्यक्तित्व की महानताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया। बोस का जन्म ऐसे समय में हुआ था जबकि हमारा देश परतंत्र था। अँगरेज़ों को भारतीयों की प्रतिभा और क्षमता पर विश्वास नहीं था। आचार्य बोस ने अपने कार्यों से अँगरेज़ों की इस भ्रान्ति को दूर किया, और भारतीय प्रतिभा को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने शिक्षा और शोध दोनों ही क्षेत्रों में ख्याति अर्जित की। उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह रही कि उन्होंने भारतीय साधनों का ही उपयोग करके उच्च कोटि के वैज्ञानिक उपकरण बनाए और विज्ञान के व्यवसायीकरण से सर्वथा दूर रहे। उन्होंने सबसे पहले रेडियो तरंगों की खोज की किन्तु उन्होंने इसे पेटेंट नहीं कराया, जिसके कारण आज दुनियाँ में लोग यह नहीं जानते कि रेडियो तरंगों के अन्वेषक आचार्य जगदीश चन्द्र बोस हैं, वरन् यह श्रेय **मार्कोनी** को दिया जाता है। आचार्य बोस के इन महान गुणों का अनुकरण करने का प्रयास ही वास्तव में उस महान व्यक्ति के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

तदन्तर, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के जाने माने चिकित्सा शास्त्री **डॉ० कमलाकर त्रिपाठी** ने रक्तचाप पर अत्यन्त रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक व्याख्यान दिया। डॉ० त्रिपाठी ने बताया कि प्राचीन चिकित्साविदों को रक्त-संचार तथा नाड़ी प्रवाह आदि का तो ज्ञान था किन्तु उनका ध्यान "रक्त-

चाप" की ओर नहीं गया। आगे चलकर फ्रांस के एक प्रसिद्ध भौतिकीविद डॉ० पायसाँ ने रक्तचाप की अवधारणा और इसकी उपयोगिता की ओर चिकित्सकों का ध्यान आकृष्ट किया। तब से इस विषय में काफ़ी शोध किया गया है। हृदय में दो प्रकोष्ठ हैं। इसके स्पन्दन के साथ रक्त सारे शरीर में जाता है, ऊतकों में से अशुद्धियों को दूर करता है और मिश्रित होकर हृदय के दूसरे प्रकोष्ठ में वापस आता है। वहाँ से यह फेफड़े में जाता है और शुद्ध होकर पुनः हृदय के पहले प्रकोष्ठ में आ जाता है। इस परिसंचरण के लिए रक्त प्रवाह में एक निश्चित दाब बने रहना आवश्यक होता है। हृदय की बनावट स्वाभाविक रूप में ऐसी होती है कि उसकी मांस-पेशियाँ रक्त को एक निश्चित दाब से प्रवाहित करती रहती हैं। इस दाब का नियंत्रण मष्तिस्क तथा गुर्दे द्वारा होता रहता है। रक्त चाप पर चिन्ता, मानसिक तनाव, आहार तथा शरीर में रक्त की कुल मात्रा आदि का प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए रक्त का एक निश्चित दाब आवश्यक होता है। इस आवश्यक मात्रा से अधिक होने पर मनुष्य रक्त चाप की बीमारी से ग्रस्त कहा जाता है। शरीर में किसी रोग के कारण रक्त की मात्रा बहुत कम हो जाने पर रक्त दाब कम भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में उसे अल्प रक्तचाप का रोग हो जाता है। जीव का विकास जल में ही हुआ है अतएव उसकी शारीरिक क्रियाओं पर सोडियम प्रभाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। नमक गुर्दे तथा रक्तचाप को प्रभावित करता है। यही कारण है कि रक्तचाप होने पर बहुधा चिकित्सक नमक के प्रयोग को कम करने की सलाह देते हैं। डॉ० त्रिपाठी ने बताया कि यह सदैव आवश्यक नहीं है कि रक्तचाप बढ़ने पर नमक खाना कम कर दिया जाय। यह भी हो सकता है कि किसी व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताएँ बढ़े हुए रक्तचाप के अनुकूल हों और गुर्दे के लिए नमक भी आवश्यक हो। ऐसी स्थिति में रक्त चाप के नियंत्रण के लिए नमक का नियमन करना आवश्यक नहीं हो सकता है।

अंत में विज्ञान परिषद् के उपाध्यक्ष **डॉ० ब्रज रतन दास गुप्त** ने व्याख्याता तथा समस्त उपस्थित श्रोताओं को धन्यवाद दिया।

प्रस्तुति—डॉ० श्रवण कुमार तिवारी
सचिव, विज्ञान परिषद्,
वाराणसी शाखा □□

प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, (सी० एस० आई० आर०) हिलसाइड रोड, पूसा गेट, नई दिल्ली—12

घोषणा

जन-संचार माध्यमों के लिये हिन्दी में विज्ञान लेखन पर कार्यशाला

प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी० एस० आई० आर०), नई दिल्ली, केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के सहयोग से "जन संचार माध्यमों के लिये हिन्दी में विज्ञान लेखन" विषय पर दिल्ली में दिनांक 18-23 फरवरी, 1991 तक एक कार्यशाला का आयोजन कर रहा है।

राष्ट्रीय विकास में वैज्ञानिक और तकनीकी साधनों का बड़ा महत्व है। आम आदमी तक उनकी भाषा में विज्ञान की बातों को पहुँचाने का काम अनेक जन-संचार माध्यमों से हो रहा है। इनमें समाचार-पत्र, पत्रिकायें, आकाशवाणी और दूरदर्शन आदि प्रमुख हैं। इन माध्यमों के द्वारा जनोपयोगी विज्ञान और प्रौद्योगिकी की जानकारी को प्रचारित करने के लिये, हिन्दी में उपयुक्त भाषा व शैली तथा विधाओं का विकास करना इस कार्यशाला का उद्देश्य है।

कार्यशाला हेतु प्रस्तावित विषय निम्न प्रकार हैं–

1. विज्ञान और समाज : अंध-विश्वासों का वैज्ञानिक निवारण

2. तकनीकी मिशन : पीने का शुद्ध पानी, खाद्य तेल, वेस्ट लैण्ड

3. जन-स्वास्थ्य : वेक्सीन, घटिया नकली-मिलावटी हानिकारक दवायें, एड्स

4. पर्यावरण : ओज़ोन, ग्रीन हाउस प्रभाव, कीटनाशकों का दुष्प्रभाव

5. इस वर्ष के नोबेल पुरस्कार : चिकित्सा विज्ञान, भौतिकी और रसायन

6. मानव जीनोम कार्यक्रम : रेडियो के लिये

7. राष्ट्रीय विज्ञान दिवस (28 फरवरी) के लिये वैज्ञानिकों से भेंट वार्तायें : दूरदर्शन के लिये

8. वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं, संस्थानों की नई उपलब्धियों पर वैज्ञानिकों से साक्षात्कार

9. जन-निवास : बिल्डिंग मेटीरियल्स

10. अन्य-प्रतिभागियों की रुचि के उपयोगी विषय

कार्यशाला में हिस्सा लेने वाले सहभागियों को लगभग 1,500 शब्दों की एक पाठावली लिख कर तैयार करनी होगी। सभी पाठावलियों पर, पहले टोली स्तर पर और फिर सामूहिक स्तर पर विचार-विमर्श होगा। साथ ही विषय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये चित्रों आदि पर भी विचार-विमर्श होगा।

कार्यशाला के पहले दिन उद्घाटन के उपरान्त सहभागियों को इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी दी जायेगी। समापन सत्र में सभी पाठावलियों पर सामूहिक विचार-विमर्श किया जायेगा। कार्यशाला की समाप्ति पर ये पाठावलियाँ केन्दीय भाषा संस्थान को सौंप दी जायेंगी और उन पर व्यावहारिक परीक्षण आदि की अगली कार्यवाही उनके द्वारा की जायेगी।

भारतीय भाषा संस्थान इनको अलग-अलग क्षेत्रों में पाठकों को सौंप देगा और उनकी प्रतिक्रियायें आमंत्रित करेगा। साथ ही विज्ञान संचार के क्षेत्र में लगे कार्यकर्त्ताओं को भी यह जानकारी दी जायेगी तथा उनके विचार आमंत्रित किये जायेंगे। इन सभी विचारों के परिप्रेक्ष्य में पाठावलियों को बाद में अंतिम रूप दिया जायेगा।

इस कार्यशाला में देश के कोने-कोने से हिन्दी में विज्ञान लेखन के विविध क्षेत्रों के लगभग 40 मूर्धन्य विशेषज्ञ भाग ले रहे हैं।

प्रतिभागियों से निवेदन किया गया है कि वे अपनी रुचि के अनुसार कार्यशाला से सम्बन्धित किसी भी विषय का चयन करके पाठावली की सामग्री अथवा प्रारम्भिक लेख अपने साथ लायें। इसके लिये वे किसी भी विधा का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु भाषा और शैली आम पाठक को ध्यान में रखते हुये सरल एवं सुबोध होनी चाहिये, कार्यशाला को सफल बनाने के लिये सम्बद्ध सुझाव आमंत्रित हैं।

इस कार्यशाला से सम्बन्धित अन्य जानकारी के लिये कार्यशाला संयोजक एवं वैज्ञानिक ई० 1, श्री तुरशन पाल पाठक, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिल-साइड रोड, पूसा गेट, नई दिल्ली—110012 से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। □□

नया साहित्य

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशक	मुद्रक	संस्करण
1.	प्रदूषण	धर्मेन्द्र वर्मा	ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी दिल्ली-110006	राधा प्रेस, गांधी नगर, दिल्ली	प्रथम 1990 सर्वाधिकार सुरक्षित, मूल्य : पचास रु०, पृष्ठ सं० : 160
2.	जनसंख्या प्रदूषण और पर्यावरण	हरिश्चन्द्र व्यास	विद्या विहार, 1685, कूचा दखनी राय, दरियागंज, दिल्ली–2	कलाभारती, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032	प्रथम 1989 सर्वाधिकार सुरक्षित पृष्ठ सं० 184 मूल्य पचहत्तर रुपये
3.	समाज और पर्यावरण		प्रगति प्रकाशन, मास्को, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लि० 5ई, रानी झाँसी रोड, नई दिल्ली—110055		हिन्दी संस्करण राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लिमिटेड चमेली मार्केट, एम० आई० रोड, जयपुर-302001 मूल्य : 6 रु० 60 पैसे, पृष्ठसं० 192
4.	पर्यावरण प्रदूषण और निवारण के उपाय		सूचना एवं जनसंपर्क विभाग उत्तर प्रदेश (लखनऊ)	नवज्योति प्रेस, लखनऊ	अगस्त 1989, पृष्ठ सं० 17
5.	वैज्ञानिक लघु कथाएँ	डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय	प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1685 कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली पिन—110002	दुर्गा मुद्रणालय, सुभाष पार्क एक्सटेंशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32	प्रथम 1988 मूल्य : पचास रु० पृष्ठ सं० 163
6.	विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक	राजीव गर्ग	फैमिली बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, एफ–2/16 अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली--110002	गोयल ऑफसेट वर्क्स, ए-60/1, जी० टी० करनाल रोड, दिल्ली वितरक : गोयल ऑफसेट वर्क्स, ए-60/1 जी० टी० करनाल रोड, दिल्ली	चौथा 1989, मूल्य : पेपर बैंक 18 रुपये सजिल्द 30 रु०
7.	विश्व प्रसिद्ध चिकित्सा पद्धतियाँ	अशोक कुमार शर्मा	फैमिली बुक्स प्रा० लि० एफ-2/16, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली पिन-110002	शिवाजी इण्टर प्राइजेज, दिल्ली वितरक : पुस्तक महल खारी बावली, दिल्ली–6	तीसरा 1990 मूल्य पेपर बैक 18 रुपये, सजिल्द 30 रुपये

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण !

आपके हाथों में 'विज्ञान' का दिसम्बर 1990 अंक पहुँचते-पहुँचते वर्ष 1990 का अवसान हो रहा होगा और हफ्ता-दस दिन बाद नये वर्ष का आगमन। नया वर्ष आप सबके लिए शुभ एवं मंगलमय हो। नया वर्ष लाए आपके लिए ढेर सारी खुशियाँ।

आपके लिए एक और शुभ समाचार—'विज्ञान' पत्रिका का एक विशेषांक–समीर विशेषांक–पर्यावरण निदेशालय, लखनऊ के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हो रहा है। यह विशेषांक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है और पुस्तक का नाम है '**बदलता पर्यावरण**'। आकर्षक कवर, दो दर्जन विचारोत्तेजक लेखों से युक्त लगभग 200 पृष्ठों वाली इस पुस्तक में आपको पर्यावरण से सम्बन्धित नवीनतम जानकारियाँ देना हमारा उद्देश्य है। 'विज्ञान' के वार्षिक, द्विवार्षिक और आजीवन सदस्यों को इसे 'विज्ञान' के जनवरी-मार्च 1991 के अंकों के स्थान पर भेजा जायेगा। अतएव 'विज्ञान' के जनवरी, फरवरी और मार्च 1991 अंक अलग से प्रकाशित नहीं किए जायेंगे।

एक सूचना 'व्हिटेकर पुरस्कार' के सम्बन्ध में। वर्ष 1990 के 'व्हिटेकर पुरस्कार' के लिए लेख (प्रकाशित) भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1991 है। प्रतियोगी पृष्ठ 30 पर प्रकाशित सूचनायें ध्यान से पढ़ें।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि 'कपार्ट' नई दिल्ली; रक्षा प्रयोगशाला; जोधपुर और विज्ञान परिषद् प्रयाग के संयुक्त तत्वावधान में 5-8 दिसम्बर 1990 तक चलने वाला पाँच दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम—'**12वाँ पेयजल गुणवत्ता जाँच प्रशिक्षण कार्यक्रम**'—विज्ञान परिषद् भवन में सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया। इस पाँच दिवसीय कार्यक्रम की सफलता का श्रेय कपार्ट के **श्री मुच्चन** एवं अन्य अधिकारीगण, रक्षा प्रयोगशाला के **डॉ० रामगोपाल, डॉ० सुशीला राय, डॉ० घोष** एवं उनके अन्य सहयोगियों को है। ये सभी बधाई के पात्र हैं। इस कार्यशाला में विभिन्न राज्यों से तीन दर्जन से अधिक प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया और प्रशस्ति पत्र प्राप्त किए। आपकी पत्रिका 'विज्ञान' के सम्पादक के 'विज्ञान परिषद् का प्रदूषण निवारण एवं पर्यावरण संतुलन में योगदान' विषय पर व्याख्यान के तुरन्त बाद परिषद् परिवार में 18 नये सदस्यों की वृद्धि हुई।

8 दिसम्बर को '**डॉ० गोरखप्रसाद स्मृति व्याख्यान माला**' का प्रथम व्याख्यान प्रसिद्ध रसायनविज्ञानी एवं 'आर्य समाज' के प्रचारक परिव्राजक **स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती** जी द्वारा विज्ञान परिषद् के सभागार में दिया गया। स्वामी जी ने स्वर्गीय डॉ० गोरख प्रसाद जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला। डॉ०

गोरख प्रसाद जी ने लम्बी अवधि तक परिषद् की अद्वितीय सेवा की है। इस समारोह की अध्यक्षता रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर के उपनिदेशक **डॉ० राम गोपाल जी** ने की। इस व्याख्यानमाला की स्थापना स्वर्गीय डॉ० गोरख प्रसाद जी के सुपुत्र **डॉ० चन्द्रिका प्रसाद** और दौहित्र श्री **अरुण कुमार** जी के 20,000 रुपयों की आर्थिक सहायता से हुई है। यह व्याख्यान प्रतिवर्ष देश के किसी चोटी के वैज्ञानिक द्वारा दिया जायेगा।

इन्हीं समाचारों के साथ कुछ दुःखद समाचार भी हैं। 2 अगस्त 1990 को परिषद् के आजीवन सभ्य **डॉ० रामकुमार** का निधन हो गया (देखें पृष्ठ15-16)। 29 सितम्बर को परिषद् के पूर्व सभापति और प्रसिद्ध उद्योगपति **डॉ० गोविन्दराम तोशनीवाल** का स्वर्गवास हो गया (देखें पृष्ठ 19-21) और 10 दिसम्बर को परिषद् के एक और सभ्य **डॉ० राजेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव** का मस्तिष्क की नस फट जाने से अचानक दुःखद अन्त हो गया। 55 वर्षीय डॉ० राजेश्वर प्रसाद जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एक एसोसिएट कॉलेज—सी० एम० पी० डिग्री कालेज—के वनस्पति विज्ञान विभाग में वरिष्ठ अध्यापक थे। आपके शोधपत्र देश-विदेश की अनेक ख्यातिप्राप्त शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। डॉ० श्रीवास्तव 'नेशनल एकेडेमी ऑव साइंसेज, इलाहाबाद' और 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' से गहरे जुड़े हुए थे। इन तीनों महानुभावों के निधन से परिषद् की अपूरणीय क्षति हुई है। परिषद् परिवार की ओर से इन्हें भाव-भीनी श्रद्धांजलि अर्पित है।

मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि नया वर्ष हम सभी में एक नई चेतना का संचार करेगा और हम नई ऊर्जा, नये संकल्प के साथ परिषद् के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्राणपण से जुट जायेंगे।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव